

Publishers :

Shree A. B. B. Sthanakwasi
Yajn Shastiroddhar Samiti
Near Green Lodge
Rajkot (Saurashtra)

卐

FIRST Edition Copies 1000
Vir Samwat 2485
Vikram Samwat 2015
A D 1959

卐

ક્રુષ્ણ જાગૃક મુદ્રણ સંસ્થા
આવૃત્તિ મિલનદાસ શાહ
નીચકમલ પ્રીતરી
પીકાયા નગરેશ્વર વાંડા રોડ
અમદાવાદ

卐

Printer

Jadavji Mohanlal Shah
at Nilkamal Printery
Ghee Kantu Nagarseth Vanda Road
Ahmedabad.

પ્રાપ્તિસ્થાન :

શ્રી અ. બા. મ્લે સ્થાનકવાસી
જેમ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
જીન લોજ નાસે
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

પ્રેક્ષી આપ્તિ : પ્રત ૧

વિર સમ્વત : ૨૪૮૫

વિક્રમ સમ્વત : ૨ ૧૧

ખ્રીસ્તીકાલ : ૧૯૫૯

卐

એ બોલ

આ અપૂર્વ કલ્પસૂત્ર આપ શ્રી સંધોના કરકમળમાં મુકાય છે. તેનો પ્રથમ ભાગ અગાઉ બહાર પડેલ છે. અને આ બીજો ભાગ પૂર્ણ થાય છે જેને અનેક સૂત્રો અને ગ્રંથોના આધારે પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ તૈયાર કરી સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કર્યો છે. તેથી આપણો સમાજ તેઓશ્રીનો મહા ન્હાઈ છે. તે ન્હાઈથી આપણે કદી મુક્ત થઈ ન શકીએ.

પ્રથમ ભાગ ઘાટકોપરના રહીશ સમાજ બ્રુણ મહાન સેવાભાવી, ધર્મનિષ્ઠ, પરમ ઉદાર, સંઘ આગેવાન શેઠ શ્રી માણિકલાલભાઈ અમુલખરાય મહેતા તરફથી-ફા. ૩૦ ૧૭ મળતા તેઓશ્રીના વતી બહાર પડેલ છે. તેવી રીતે આ બીજો ભાગ પણ શેઠ શ્રી માણિકલાલભાઈએ સમિતિને મોટી રકમ આપી પોતાના જ વતી કલ્પસૂત્રનો બીજો ભાગ પ્રકાશિત કરાવવામાં જે સહયોગ આપેલ છે તે બદલ સમિતિ તેઓશ્રીનો ધન્યવાદ સાથે આભાર માને છે. જેમ શેઠ માણિકલાલભાઈએ ઉદારતા ખતાવી, તેમ પ્રમાણે જો આપણા સમાજના દરેક ભાઈ-બહેનો આ સમાજોત્થાનના પવિત્ર આગમ કાર્યને વેગ 1પવા જરા ઉદાર ભાવે શુશ્રુણુરાગી બની હાથ લંબાવે તો આ મહાન ભગી-રથ કાર્ય વહેલામાં વહેલી તકે પાર કરી શકાય. આ પરમ પવિત્ર અપૂર્વ કલ્પસૂત્રનું વાંચન કરી સમાજના દરેક આત્માઓ આત્મોત્થાન કરે તેવી આશા છે.

એજ લિ: મંત્રી

- विषयार्कः—
- १ भगवान् के जन्मकाल का वर्णन १-१४
 - २ मेघदूतदि विषयमार्तियों का आगमन १५-२०
 - ३ शकेन्द्र के आसन का कंठिग होना और भगवान् के ईर्ष्यार्ष उसका जाना २१-२५
 - ४ भगवान् के दुर्कर्मार्थ आये हुए देवों का स्मरण २६-३१
 - ५ भगवान् के जन्ममहोत्सव के लिये भगवान् को लेकर शकेन्द्र का मेघ पर जाना ३२-४०
 - ६ भगवान् को उत्सव में लूका अभिषेक सिंहासन पर शकेन्द्र का बैठना ४१
 - ७ भगवान् का जन्ममहोत्सव करने की इच्छा पाछे देवों के मनोमान का वर्णन ४२-४४
 - ८ देवों के आनन्द, माठ प्रकार के कलश, शकेन्द्र की बिठा और मेघकान्त का वर्णन ४५-५०
 - ९ मेघ के कान्त से सुवनप्रथमें रहे हुये नीबों को मय होना, शकेन्द्र की चिन्ता, कम्पन के कारण को जानना, मष्ट से समयापचना ५१-५४

१० ऋतुतेन्द्रादिकों से किये हुये भगवान् के अभिषेक का वर्णन, सर्व देवों का श न्द्र के साथ त्रिशूला मशरानी के पास भगवान् को

विषयार्कः—

- रत्नकर अपने अपने अपने स्थान पर जाना ५७-६३
- ११ सिद्धार्थने मनाया हुआ भगवान् के मम महोत्सव का वर्णन ६४-७२
- १२ त्रिशूला द्वारा की गई पुष्प की प्रशंसा का वर्णन ७३-८३
- १३ भगवान् के नामकरण का वर्णन ८४-९०
- १४ भगवान् की वात्स्यावस्था का वर्णन ९१-९६
- १५ भगवान् के कलाधार्य के समीप प्रस्थानका वर्णन और कलाधार्य का भगवान् के आगमनकी प्रतीक्षा करना ९७-१०१
- १६ भगवान् का कलाधार्य के समीप अव्ययन करने की अनुचितता का प्रतिपादन करना १०२
- १७ भगवान् का कलाधार्य के पास जाना जानकर शकेन्द्र का आसन कल्यायमान होना, शकेन्द्र का आभय रूप से आकर प्रश्र करके भगवान् के सर्वश्राद्ध होने का प्रकाशन करना १०१-१०४
- १८ भगवान् को सर्वश्राद्धाभिष्ट जानकर कला वार्पार्थिकों का परम आनन्दित होना १०५-१०६
- १९ इन्द्र द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर सुनकर लोगो का और कलाधार्य का आनन्दित होना १०७-१०८

विषयांक:-

पृष्ठाङ्क:

- २० इन्द्र द्वारा भगवान् को चरमतीर्थकर रूप से प्रकाशित करना १०९
- २१ भगवान् का अपने प्रासाद में आना और मातापिता का आनन्दित होना ११०
- २२ भगवान् के विवाह का वर्णन १११
- २३ भगवान् के स्वप्नो का वर्णन ११२-११५
- २४ भगवान् के मातापिता विरोह का वर्णन ११६
- २५ दीक्षित होने के लिये भगवान् का नन्दि-वर्धन के साथ का संवाद का वर्णन ११७-१२१
- २६ निश्चय ज्ञानवान् भगवान् का दो वर्ष गृहस्थावास में स्थित होना १२२
- २७ भगवान् को दीक्षा के लिये लोकान्तिक देवों की प्रार्थना १२३
- २८ भगवान् का वार्षिक दान, अभिनिष्क्रमण और शक्रादि देवों का आगमन १२४
- २९ दीक्षा के लिये लोकान्तिक देवों की भगवान् से प्रार्थना १२५-१२६
- ३० भगवान् ने वर्षादान में दान दी हुई सुवर्णमुद्रा की संख्या का वर्णन १२७
- ३१ भगवान् के अभिनिष्क्रमण में आये हुवे इन्द्रादि देवों का वर्णन १२८
- ३२ भगवान् का दीक्षाभोत्सव का वर्णन १२९-१३१

विषयांक:-

पृष्ठाङ्क:

- ३३ भगवान् की शिविका (पालखी) का वर्णन १३२-१३३
- ३४ भगवान् की शिविका को वहन करने का प्रकार का वर्णन १३४
- ३५ सुरेन्द्रादि देवों का पूर्वादि दिशाओं का क्रम से वहन करने का वर्णन १३५
- ३६ देवेन्द्रादि द्वारा शिविका में भगवान् को ज्ञातखण्डोद्यान में लाना १३६
- ३७ शिविका द्वारा भगवान् का ज्ञातखण्डोद्यान में आगमन १३७
- ३८ भगवान् का सर्व अलङ्कार का त्याग करना और सामायिक चारित्र का एवं मनःपर्यवज्ञान की प्राप्ति का वर्णन १३८-१४०
- ३९ भगवान् का शक्रादि देवेन्द्रकृत अभिनन्दन और भगवान् का अभिग्रह धारण करने का वर्णन १४१
- ४० भगवान् का पञ्चसुष्टिक लुंचन करना और सामायिक चारित्र अंगीकार करने का वर्णन १४२
- ४१ भगवान् को मनःपर्यवज्ञानप्राप्ति का वर्णन १४३
- ४२ शक्रादि देव और मित्र स्वजन ज्ञात्यादि जाने के पीछे भगवान् का अभिग्रह ग्रहण करना १४४-१४५

चिप्यांक:-

४३ मगवान् क विरह स नन्दिरर्पण भादि

के विभाप का वर्णन

१४६-१६०

४४ गोप द्वारा किय हुए मगवान् क

उपसर्ग का वर्णन

१६१-१६३

४५ गोपकृत उपसर्ग के निवारण के लिये

इन्द्र का भागमन

१६४

४६ सहायता के लिये इन्द्रकृत प्रायना का

अस्वीकार करना

१६५

४७ इन्द्रद्वय देवदूत्यवच से भी मगवान् ने

कमी जरीर आच्छादित नहीं किया

१६६

४८ मगवान् के उपसर्ग का वर्णन

१६७-१६९

४९ इन्द्र द्वारा गोपका विरस्कार करना

१७०

५० गोप को मारने के लिये उद्यत इन्द्र को

मगवत्कृतनियेष

१७१

५१ सहायता के लिये इन्द्र की मार्चना का

अस्वीकार

१७२

५२ बछ के पारलें में मगवान् का शत्रुस

नामक प्राक्षण के घर में पशारना

१७३-१७४

५३ मगवान् की भिंसा देने से वधुस

प्राक्षण क घर में देवकृत पाँच दिव्यों

का मगान् होना

१७५

चिप्यांक:-

५५ मगवान् से यज्ञकी क्षमाप्रार्थना

१८०

५६ श्वेताश्विका नगरी प्रति मगवान् के

विचार का वर्णन

१८३-१८७

५७ विकट मार्ग में चंडकौशिकसर्प के

शरीर के पास मगवान् के कायों

त्सर्ग करने का वर्णन

१८८

५८ श्वेताश्विका नगरी के मार्गस्थित

चंडकौशिकसर्प का वर्णन

१८९-१९०

५९ विकट जंगम के मार्ग से जाते हुए

मगवान् को गोपाद्वारा नियेष करना

१९१

६० चंडकौशिक के विषय में मगवान् के

विचार का वर्णन

१९२-१९५

६१ चंडकौशिक सर्पत्री शरीर क पास

मगवान् का कायात्सग में स्थित होना

१९६

६२ चंडकौशिकसर्प का मगवान् क उपर

विषमपाग और मगवान् के चंडकौशिक

को प्रतिबोध करने का वर्णन

१९७-२०३

६३ उत्तरधावाहल गामर्म नागसेन के घर पर

मगवान् के भिंसा प्रक्षण का वर्णन

२०४-२०६

६४ मगवान् के प्रतिबोधित होने से

नागसेन के घर में पाँच दिवस

विषयांक:-

६५ गंगा नदी में सुदंष्ट्रदेवकृत भगवान् के उपसर्ग का वर्णन	२०८-२१५
६६ उपकारक और अपकारक के प्रति भगवान् के समभाव का वर्णन	२१६
६७ भगवान् के संगमदेवकृत उपसर्ग का वर्णन	२१७-२१९
६८ भगवान् के चातुर्मास का और तप का वर्णन	२२०-२२१
६९ भगवान् को संगमदेवकृत उपसर्ग का और भगवान् के चातुर्मास का वर्णन	२२२-२२६
७० भगवान् के अनार्य देश में प्राप्त परीपह एवं उपसर्ग का वर्णन	२२७-२२८
७१ घोर परीपह एवं उपसर्ग प्राप्त होने पर भी भगवान् के मन के अविश्रुत स्थिति का वर्णन	२२९
७२ भगवान् की आचारविधि का वर्णन	२३०
७३ भगवान् के समभाव का वर्णन	२३१-२३५
७४ भगवान् की आचारविधि का वर्णन	२३६
७५ भगवान् के अनार्यदेश में उपस्थित परीपह एवं उपसर्ग का वर्णन	२३७
७६ भगवान् के विहारस्थानों का वर्णन	२३८
७७ भगवान् के समभाव का वर्णन	२३९

विषयांक:-

७८ भगवान् के विहारस्थान का वर्णन	२४०
७९ भगवान् के उपसर्गों का वर्णन	२४१-२५३
८० भगवान् की आचारपरिपालन विधिका वर्णन	२५४-२६१
८१ भगवान् के अभिग्रह का वर्णन	२६२-२६७
८२ अभिग्रह की पूर्ति के लिये फिरते हुवे भगवान् के विषय में लोगों के तर्क वितर्क का वर्णन	२६८-२७३
८३ अभिग्रह की पूर्ति के लिये फिरते हुवे भगवान् के चन्दनवाला के समीप पहुँचने का वर्णन	२७४
८४ भगवान् को आहार ग्रहण के लिये चन्दनवाला की प्रार्थना	२७५
८५ भगवान् को भिक्षा ग्रहण किये बिना ही पीछे फिरते देखकर चन्दनवाला के अश्रुपात का वर्णन	२७६
८६ धनावाह श्रेष्ठ के घर में पांच दिव्य प्रगट होने का वर्णन	२७७
८७ चन्दनवाला के चरित्र का वर्णन	२७८-२९२
८८ अन्तिम उपसर्ग का वर्णन	२९३-३००
८९ भगवान् के विहार का वर्णन	३०१-३०३
९० भगवान् के दश प्रकार के महा-स्वप्नदर्शन का वर्णन	३०४-३०५

- १०८ इन्द्रपुति का दीक्षाग्रहण और उनका समयप्राप्तन का वर्णन ३७७
- १०९ अग्निपुति ब्राह्मण का कर्म के विषय का संक्षेप निवारण और उन की दीक्षाग्रहण का वर्णन ३७८-३८९
- ११० वायुपुति ब्राह्मण का 'तृतीयवत्सरीर' के विषय में संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहणवर्णन ३९०-३९५
- १११ व्यक्त नामक ब्राह्मण का पंचमृत के अस्तित्व विषयक संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहण का वर्णन ३९६-४००
- ११२ सुषर्मा नामक ब्राह्मण का 'समानभव' विषयक संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहण का वर्णन ४०१-४०७
- ११३ 'मण्डिक' नामक पंडित का 'वन्यमोक्ष' के विषयक संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहण का वर्णन ४०८-४१०
- ११४ मौर्यपुत्र पंडित का वेदों के अस्तित्व विषयक संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहण का वर्णन ४१०-४११
- ११५ मण्डिक पंडित का 'वन्यमोक्ष' के विषय में संक्षेप का निवारण और उनकी

- ९१ ईर्षादि पांच समिति के लक्षण का वर्णन ३०६
- ९२ मनोगुप्ति का वर्णन ३०७
- ९३ एतोगुप्ति का वर्णन ३०८
- ९४ कायगुप्ति का वर्णन ३०९-३१०
- ९५ भगवान् की अवस्था का वर्णन ३११-३१४
- ९६ भगवान् का विहार वर्णन ३१५
- ९७ दृग्न महात्म्य दर्शन का वर्णन ३१६-३१८
- ९८ दृग्न महात्म्य कर्म का वर्णन ३१९-३२४
- ९९ भगवान् का फेबलकानदर्शन भाषि का वर्णन ३२५-३२८
- १०० केशवतोष्य का वर्णन ३२९-३३०
- १०१ चतुर्थाभाष्य (मरुछेरा ४) का वर्णन ३३१-३३४
- १०२ आध्यात्मिक (मरुछेरा १०) का वर्णन ३३४
- १०३ पाचपुरी और वरा का राजा का वर्णन ३३५-३३६
- १०४ पाचपुरी में सोमिम ब्राह्मण का यज्ञ का वर्णन ३३७-३३९
- १०५ भगवान् का समस्तसण और उनकी शोभा का वर्णन ३४०-३४८
- १०६ यज्ञ के धाके में उपस्थित ब्राह्मणों का वर्णन ३४९-३६३
- १०७ इन्द्रपुति ब्राह्मण का आत्मविषयक संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहण का वर्णन ३६४-३७६

विषयांक:-

- ११६ मौर्यपुत्रका देवों के अस्तित्व के विषय में संशय का निवारण और उनके दीक्षाग्रहण का वर्णन ४१५-४१६
- ११६ अचलभ्राता नामक पंडितका पुण्यपाप के विषयमें संशय का निवारण और उनके दीक्षाग्रहणका वर्णन ४१७-४२०
- ११७ अकम्पित नामक पंडित का 'परमव में नारक नहीं है' इस विषयके संशयका निवारण और उनके दीक्षाग्रहणका वर्णन ४२०-४२१
- ११८ अचल भ्रातानामक पंडित का पापपुण्यविषयक संशय का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहणका वर्णन ४२२-४२४
- ११९ मेतार्य पंडितका परलोकविषयक संशयका निवारण और उनके दीक्षाग्रहण का वर्णन ४२४
- १२० प्रभास पंडितका निर्वाणविषयक संशय का निवारण ४२५
- १२१ मेतार्य का परलोक विषयक संशय का निवारण और उनके दीक्षाग्रहण का वर्णन ४२६-४२७
- १२२ प्रभास पंडित के दीक्षाग्रहण का वर्णन ४२८

विषयांक:-

- १२४ गणधरों के शिष्यसंख्या का वर्णन ४३०
- १२५ मेतार्य पंडित का परलोकविषयक संशय का निवारण और उनके दीक्षाग्रहण का वर्णन ४३१-४३२
- १२६ प्रभास नामक पंडितका निर्वाण विषयक संशय का निवारण और उनके दीक्षाग्रहण का वर्णन ४३२-४३३
- १२७ गणधरों के संदेह का संग्रह ४३५
- १२८ गणधरों के शिष्यसंख्या का वर्णन ४३६
- १२९ चतुर्विधसंघ की स्थापना और चातुर्माससंख्या कथन ४३७
- १३० गणधरों को त्रिपदीप्रदान का वर्णन ४३८
- १३१ नवप्रकार के गणों के भेदका वर्णन और भगवानकी धर्मदेशना का वर्णन ४३९
- १३२ भगवान के चातुर्मास संख्या का कथन ४४०
- १३३ चन्दनवाला के दीक्षाग्रहण का वर्णन ४४१
- १३४ चतुर्विधसंघ की स्थापना और गणधरोंको त्रिपदीप्रदान का वर्णन ४४२
- १३५ नवप्रकार के गणों का भेदप्रदर्शन ४४३
- १३६ भगवान् की धर्मदेशना का वर्णन ४४४-४४५
- १३७ गौतमस्वामीको देवशर्म ब्राह्मण को प्रतिबोधित करने के लिये नजदीक के गांवमें भेजने का वर्णन ४४६-४४७

१३८ मगवान् क निर्वाण का वर्णन	४४८-४५३
१३९ गौतमस्वामी के विषय का वर्णन	४५४-४५५
१४० गौतमस्वामी के भव्यशिक्षणप्रयोग	
करन का वर्णन	४५६
४४१ गौतमस्वामी के केवलज्ञानप्रसिद्धि का वर्णन	४५७
४४२ दीपावली आदि की प्रसिद्धि के कारण का वर्णन	४५८
४४३ गौतमस्वामी के विषय का वर्णन	४५९
४४४ गौतमस्वामी के भव्यशिक्षणप्रयोग का वर्णन	४६०
४४५ गौतमस्वामी के केवलज्ञानप्रसिद्धि का वर्णन	४६१

१४६ गौतमस्वामी के केवलज्ञानप्रसिद्धि से देवों के उसका भवितव्य मनाने का वर्णन	४६२
१४७ दीपावली आदि की प्रसिद्धि के कारण का वर्णन	४६३
१४८ मगवान् के परिवार का वर्णन	४६४-४६९
१४९ अन्वक्तृत्वप्रमाण का वर्णन	४७०-४७१
१५० मगवान् के पाठ का वर्णन	४७२
५५१ सुप्रमस्वामी के परिचय का वर्णन	४७३-४७४
१५२ जम्बुस्वामी के परिचय का वर्णन	४७५-४८१
१५३ मगवस्वामी के परिचय का वर्णन	४८२-४८५
१५४ उपसंगार और अन्यप्रमाण	४८६-४९०
१५५ भी महावीरस्वामीकृत तप का कोष्ठक	४९१



जैनचार्य-जैनधर्मदिवाकर-यूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज विरचितस्य श्रीकल्पसूत्रस्य
संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनगमनिष्ठात-प्रियव्याख्यानिपण्डितसुनिश्री-

कन्हैयालालजी-महाराज-विरचितायां कल्पमञ्जरी-व्याख्याया
पञ्चमवाचनादि-नवमवाचनान्तो

द्वितीयो भागः ।

मूलम्—जं समयं च णं तिसला खचियाणी दारयं पमया तं समयं च णं दिव्वुज्जोएणं तेलुक्कं
पयासियं, आगासे देवदुंदुहीओ आहयाओ, अंतोमुहुत्तं णारयजीवाणपि दसविह-खित्त-वेयणा परिक्खीणा,
अन्नोन्नवेरं च तेसि उवसमिय. अयणा संचदणा कलिय-ललिय-कमल-सिद्धी बुद्धी जाया । फारा वसुहारा बुद्धा,
पवणा य मुहफासणा मंजुला अणुकूला मलयज-उण्णल-सीयला मंदमंदा सोरब्भणंदंदा तं दारग फासिउं विव
पवाया । देवेहिं दसद्धवणाइं कुसुमाइ निवाइयाइं, चेलुक्खेवे कए, अंतरा य आगासे 'अहो जम्मं अहो जम्मं' ति धुट्ठं ।
उज्जाणाणि य अकालम्मि चैव सव्वोउय-कुसुम-निहाणाणि सजायाणि । वावी-ऊवतडागाइ-जलासएसु जलानि
विमलानि जायाणि । जणवए य जणमणा हरिस-परिस-वसेण पवनवेगेण सरसि वणरसानिव विसप्पमाणा
संजाया । वणवासिणो जंतुणो जम्मजायाणि वेराणि विहुणिय सहाहारिणो सहविहारिणो य जाया । अवर-
मंडलं धाराहरा-डंवर-विहुरं अमलं चक्खिक्खंचियं जायं । कोइलाइपक्खिणो साल-रसाल-तमालपमुह-साहि-
साहासिहा-वलंविणो सहयार-सरस-मंजरीरससाय-मायो-दंचियंपंचमस्सरा मुहरा अणंतगुण-गाम-धाम-पहु-
ललाम-जस-गायग-सूय-मागह-चारण-विडंविणो महरं परं कुइउमारभित्था ॥अ०५५॥

ળાપા--યસ્મિન્ સમયે જ સત્ત્વ મિલ્લતા હામિયાઓ દારફે માણ્ણ, ળસ્મિન્ સમયે જ હલ્લુ પિચ્ચા-
 દ્યોતેન પ્રેક્ષોચ પ્રકાશિષ્ય, માકાતે વેપદુનુચ્ચો વાધિગા, અન્વદ્યુષ્ચે નારક્ષનીવાનામણિ રક્ષાચિષ-કેષ-
 વેના: પરિમીળા, અન્યોઽન્યેરેં વ વેપાચ્છ ળપશચિવદ્ । અમના સપન્દના કલિત-સલિત-અમલ-અધિદિનિવા ।
 સ્કારા વસુધારા દૃષ્ટા । પન્નાચ્છ મુલસ્યર્થેના મશુભા મનુષ્ઠા મક્ષયજો-સાલ-કોવલા મન્દમન્દ્યા: સૌર-

પચ્ચમવાચના સે નવમવાચનાપર્યન્ત

ત્રિતીચ ઁગા

મૂલ કા અર્થ--'જ સમય' રૂપાધિ । મિત સમય મિલ્લતા હામિયાળી ને પુત્ર કો જન્મ ત્રિપા,
 ળત સમય ત્રિવ્ય ળરણેત સે ળીનોં લોક પ્રકાશિત હો ગયે । માકાળ મેં વેપદુનુમિયા વમને 'લગો' । અન્ત
 મુંદ્યેં કે ચિષ નરક કે બીતોં કી મી દચ પ્રકાર કો ક્ષેત્ર વેદનારેં જ્ઞાન્ત હો ગયે । ળન્દોને વાપસ કા
 વેર ત્પના ત્રિયા । મેષોં કે અમાવ મેં મી, વન્દ્ન કી ગન્વ સે પુત્ત, સુન્દર કમલોં સે પુત્ત વર્પા હુરે ।
 ળોને કી મનુર વર્પા હુરે । સુલ્લ સર્વેં ચાલા, મનોર, અનુષ્ઠ, મલ્લજ વન્દ્ન ળીર કમલ કે સમાન
 જીતલ, સુગવ સે જ્ઞાન્ત્વ વેને ચામા મન્દ-મન્દ પવન વલને જ્ઞા, માનો વાલ્ય અવસ્યા મેં સ્થિત મગવાન

પચ્ચમવાચનાથી નવમવાચના પર્યન્ત

બીલે ઁગા

મૂળનો અર્થ-- 'જ સમય' ળર્યાધિ જે સમયે ત્રિમલ્લા શર્વીલે પુત્રને જન્મ આપ્ચે । તે સમયે, ત્રિલે
 ળોકમાં પ્રકાશ કરેલ આકાશમાં વેવદુરુષી વામવા લાગ્યાં । અતઃપુરુષત ળુખી, નારક્ષિવ ળવોની દચ પ્રકારની ક્ષેત્ર-
 વેદના ળાત વડ અડ નારકીલે । અકર અકરેમે વેર જાન જુલી ગયા.

વરસાદની વેરકાન્તીમાં પવુ, અદનવી સુમધવાળા સુકર કમલોને વરસાદ વરસેલ. ળોના ળાદરોની
 પવ વૃષિ કર્ક

સુગવ સ્પશ કસવાળો, મનોહર, અનુષ્ઠ, મલ્લાચિન્નિયા અદન નેની શીતલતા આપવાળો, કમળ જેવો
 રસ, અને સુમધિત તેમજ જ્ઞાનકાંટારી પવન મદ મદ રીતે વહવા લાગેલો બાલે આ પવન તે જાલકને સ્પર્શ

स्वाद-मादो-वञ्चित-पञ्चमस्वरा मूलरा जमन्त-गुणब्राम-भाय-ग्रह-स्लाम-यज्ञोगायक-सुत-भागध-चारण-
विहस्मिनो मधुरं परं कूनिदुमारोमिरे ॥छ०५५॥

टीका—‘अं समयं च बं’ इत्यादि । यस्मिन् समये च भवतु मित्रला सत्रियाणी वारक=गुप्त प्रायत=
भजनपद, यस्मिन् समये च लख दिव्योद्घोषणेन=देवमहासेन अदभुतमहासेन वा त्रैलोक्य=योक्तव्यं प्रकाशितममृत ।

जनित आनन्द तं पंचम स्वर में बोलने लग और अनन्त गुणगण क घाम भगवान क स्याम यत्र का
गान करने वाले सुत, मागध और चारणों को भी मात करत हुए कूनन लग ॥छ०५५॥

टीका का कर्ष—‘अं समयं’ इत्यादि । जिस समय में मित्रला सत्रियाणी ने गुप्त को जन्म लिया, उस समय दिव्य-अमृत
प्रकाश से तीनों लोक प्रकाशित हो गये । आकाश में दशदुर्गियां चरने लगीं । अन्तर्मुहूर्त क लिए नरक

बायीं ते वज्रते तेजो आश्रमी भवद्विभेनो रशारशः देवी होवासी, वधारे आनर्दिन ज्युती छनी. आ
होवाहो पञ्चम स्वरां अवाच करवा छात्री

अनन्त श्रेष्ठाना धाम जेवा भजननया शुक्लभ्रमर अने मय जावावाणा जर्दिलेनो व्याज्ज अने व्याधटने
पञ्च शुक्ल गायत्रां टपी जत्ता न होव । तेभ ज्युत्तु छे अनेक विविध पक्षिज्योने कुआरव व्याज्ज आटनी गायन
कथाने पञ्च बटानी अथ तेवो छेवा (छ०५६)

टीकाने कर्ष—‘अं समयं’ छम्पादि. भगवान भट्टापीरने च भयतांवर, स्वर्ग भुज्ज अने पाताल जेटदलीभ्य होक-अधोदोह
अने तिरछाहोहमां प्रकाश छपार्थ रको. देवोज्जे, पीतान्ता दिव्य वाह्ये वठे कर्षवाड कुने तत्तु होहमा उदरन्यवता
व्यापी रहीं सन्नेत्र आनन्त भज्ज अथाप रकां देवदुर्गुपीना गोटो यत्तु यथा. देवो पीताने कर्षं व्याज्ज कुस्वा,
‘ज्जे कन्म ! ज्जे कन्म !’ ने दिव्य ध्वनि करवा छात्रां समकिति देवोने तो ज्जे जेणना आटां अनाभासे
महो अथां तेना कर्षं चत तेजो जनी अथां भिज्यात्पी देवो पञ्च समकिति देवाना आनन्तमा कुट्टक छ प्पिज्जे, भाग
देवा छात्रां देवअन्ताजो पञ्च भजननया च योत्सव भनाववा छात्रां. नेने जेवो श्रवे तेवो उत्सव भाषवा छात्रां
पीतानी चर शक्तिजोने जहार हाकी तेना पडिक्कण्णा छरी पीताने दुइजगत कर्षं व्याज्ज करवा छात्रां.

આકાશે=દેવપથે દેવદુન્દુભયઃ આહતાઃ=તાહિતાઃ=વાદિતાઃ । નારકજીવાનામપિ અન્તર્હૃતં દશવિધક્ષેત્રવેદનાઃ=દશ-
વિધાઃ=ચીતો૧-આ૨-કુધાર-પિપાસા૪-કણ્ઠ૫-પરતન્ત્રતા૬-મય૭-શોક૮-જરા૯-વ્યાધિ૧૦-રૂપા દશ વિધાઃ=વિનષ્ટાઃ ।
પ્રકારાઃ યાસાં તાસ્તથામૃતા યાઃ ક્ષેત્રવેદનાઃ=સ્વામાત્રિકયોડનન્તા નરકક્ષેત્રવેદનાસ્તાઃ પરિક્ષીણાઃ=વિનષ્ટાઃ ।
તથા-તેષા નારકજીવાનામ્ અન્યોડન્યૈરૈ=પરસ્પરશત્રમાત્રશ્ચ ઉપશાન્તમ્ । તથા-અથના=મેઘવર્જિતા-મેઘં વિના,

કે જીવોં કીં મીં (૧) શીત, (૨) ઉષ્ણ, (૩) શૂલ, (૪) પ્યાસ, (૫) સુજલી, (૬) પરાધીનતા, (૭) મય, (૮) શોક, (૯) જરા, (૧૦) વ્યાધિ યદ્ દશ પ્રકાર કીં નરક ક્ષેત્ર મેં સ્વમાવતઃ હોને ત્રાલીં અન્તરહિત વેદનાઈ મિટ ગઈં । નારકીં જીવોંં કા પારસ્પરિક વૈરમાત્ર મીં જાન્ત હો ગયા ।

નારકીના ભવોને અન્યોન્ધની વેદના હોય છે અને પગ્માધર્મીઓ તરફથી પણ તીવ્ર ત્રાસ આપવામા આવે છે આણુ તેા હ ખ અનણુ છે. તે ઉપરાંત સ્થાનાધીન હુ.ખો કાયમી રહેલા છે, જેણુ વર્ણુન વચન દ્વારા થઈ શકે તેમ નથી તેમજ સામારિક હુ ખોની સાથે તેની સરખામણી થઈ શકે તેમ નથી.

નારકીના ભવોને ઠડી-ગરમી પુષ્કળ લાગે છે ત્યાના નારકીના ભવને, આપણા હિમાલયના ઠરેલા ઘરફ નારકીના ભવોને ઠડી-ગરમી પુષ્કળ લાગે છે આવી ભય ! આથી કલ્પી દ્યો કે ત્યાંની સ્થાનિક ઠંડી ફેટલી ઉપર કદાચ સુવાડવામા આવે તેા, તેને ઘસઘસાટ ઉંઘ આવી ભય ! આથી કલ્પી દ્યો કે ત્યાંની સ્થાનિક ઠંડી ફેટલી હશે ! આવી રીતે ગરમીના પ્રમાણુનું પણ મમળ લેણુ

શીત ૧, અને ગરમી ૨, ઉપરાત, નારકીના ભવોને, કુધા ૩, તરસ ૪, પરાધીનતા ૫, દાહ ૬, ખુજલી ૭, લથ ૮, શોક ૯, જરા ૧૦, આ પ્રકારની ક્ષેત્ર વેદના હોય જ છે, આ દશ વેદનાઓનું નિવારણ, જેમ મનુષ્ય લોકમા થઈ શકે છે તે રાહત મળે છે, તેમ નરકમાં બનતું નથી. કારણ કે, ત્યાં એકલા પાપણુ જ પરિણામ લોગવવાનું હોય છે, અહિં પાપ અને પુણ્ય બન્નેના પરિણામો લોગવાય છે

નારકીમા, કુધા-તરસણુ નિવારણ કરવાના કોઈ સાધન પ્રત્યક્ષ નથી શારીરિક રોગ કાટી નીકળેલા હોય છે પણ કોઈ તેની શાતિ માટે ભોનાર પણ નથી. પરાધીન પણાને તેા કોઈ આરો તારો નથી ! કણુ એક પણ, પરમાધર્મીઓ, નારકીના ભવોને છટા મૂકતા નથી, તેમજ માર-પીટથી, નિરંતર ભયચક્રત રાજો છે કોઈ દયા ખાનાર હોતું નથી ભવે, જે નારકીના પાપોના બંધો બાંધ્યા હોય તે સર્વે, લોગવીનેજ છટા થવાનું હોય છે. તેમાં રજ જેટલો પણ ફરક પડતો નથી, આ છે ત્યાંની સ્થાનિક-નિરંતર વર્તતી ક્ષેત્ર વેદના !

આવી વેદનાઓથી તરફડતાં નારકીના ભવોને, લાગવાન મહાવીરનો જન્મ થતાં, અંતર્મુક્ત સુધા સર્વ

मानन्दना=चन्दनपङ्कसिद्धि कर्मित-चरित-कर्मल-सृष्टिः-कलितवा=शुभा कलितानां=सुन्दरानां कर्मणानां सृष्टिः=सर्ग-उत्पत्तिर्यथा तथानिषा सृष्टि जाता। स्फारः=मञ्जुरा वसुधारा दृष्टा। पक्वाना=सुखस्पक्षना=सुखस्पक्षयन्तो मनुष्याः=मनोकपुण्यपुण्यवहस्वेन सुन्दराः श्रुतुलाः=सकलजनानन्दजनकाः, मसयजो=स्पष्ट-श्रीतला-मल यज=चन्दनम्, उत्पल=कर्मल, सुदुमयवत् श्रीतला=श्रीतलपर्वी, पुनः मन्दमन्दा=अतिमन्दा, सौरध्याऽऽनन्दाः=सुग-येनाऽऽनन्दकाः, तै=तैर्लोकं वारकं=पालक समुद्रमिव प्रवताना=प्रवसिषाः। तथा वैवैः दशार्द्धवर्णानि=

तथा-येषां के चिन्ता ही, चन्दनमिमित, सुन्दर-कर्मल-युक्त फलसृष्टि होने लगी। मञ्जुर सम्पत्ति (स्पर्श) ही वर्षा हुई। सुखदायी स्पर्श वाला, अनेक पुष्पों के सौरभ को वान करने के कारण सुन्दर, सभी प्राणियों का आनन्द देने वाला, चन्दन एवं कर्मल के समान श्रीतल, अतिस्वय मन्द, सुगन्ध से आर्मादि प्रदान करने वाला एव वलने लगा।

क्षेत्रवेदनाको यात पड़ी अर्ध तेमल, गण्डरीको सुभ्रु कर पस्तपन्तो वेरभाव यक्ष ली गला, ने यातचित्ते ठमा रक्षा करम आरुभ डेढा लोभुत धटनाकोतु सभन समु।

विराध दोह (भयदोह-युद्धदोह)भां अत्रवान ल भतानी आरु, जेवा भेयानी वृष्टि यक्ष डे मेक व्यावता देवावा वासु। ने पञ्चीके आखे कीकी आहीनु व्याप्याइन कभु न होम। तेम जेवाभां आसु

सोना-भेयेशानी वृष्टि यक्ष यक्ष धननी तो हाथ आखे डिभत ल न होय तेम तेम पोधभार प्रवाक, सुभ्रु ईरे ठिपरकी पम्मा लागे आ सुवय प्रवाक आखे पूछीने पोवाभवन बनावतो होम। तेम तेनी धाराके आटपवै पलवा वागी

भयभक्तिभिं सुपाठ रक्षेक पवन यक्ष शीतल भड सुभ्रुभरये पावा लागे। आखे आवाचान्ता इयन कस्वा भाटे ठो। न रक्षेते। होय तेम वात्रतो ठो। आ पवनते। सुभ्रु यक्ष आठ सुभी प्रशस्ति यक्ष, अनेक लोचने रूपय करी तेमने सुग्ध बनावतो आ पवन यक्ष कोटहो भक्ति अने भ्रुभ्र भाकुभ पलतो ठो। डे भ्रुभ्र अने वरस छिपाठ लाव अने शेरभेशम वृत्ति आवी नती, सादा वरु कशैल शेरभेशयो भरेवी भावा सर्वोत्रे वाओ अने प्रसुद्धिदत यक्ष नती

पञ्चवर्णानि कुसुमानि=पुष्पाणि निपातितानि=आकाशाद् वर्षितानि, पुनर्देवैः चेलोत्क्षेपः कुतः=वस्त्रदृष्टिः कृता । अन्तरा च आकाशे=आकाशमध्ये देवैः 'अहो ! जन्म अहो जन्म' इति द्रुषितम्=उच्चैश्चारितम्, उद्यानानि च अकाले एव=स्वपुष्पण समयाभावेऽपि सार्धतुल्य-कुसुम-निधानानि=सार्धतुल्यकुसुमानां=सकलऋतुसम्भवविपुषाणां निधानानि संजातानि । तथा-वापी-रूप-तडागादि-जलाशयेषु-वापी=दीर्घिका, कूपः=प्रतीतः, तडागः=सरः, तदादिपु=तत्प-

तथा-देवों ने पाँचों वर्णों के पुष्पों की आकाश से वर्षा की और वस्त्रों की भी वर्षा की । आकाश के बीच 'अहो जन्म, अहो जन्म' का उद्घोष किया । अर्थात् अहो-आश्चर्यकारी तीनों लोकों को अपूर्व आनन्द देने वाला भगवान का जन्म हुआ ।

तथा-उद्यान, असमय में फूलने का समय न होने पर भी, सभी ऋतुओं के फूलों से समृद्ध बन गये । वापी, कूप, सरोवर आदि जलाशय निर्मल पानी से भर गये । देश भर में जन-जन के मन हर्ष की अधिकता से ऐसे चंचल हो उठे, जैसे वायु के वेग से सरोवर का वारि चंचल हो उठता है ।

द्वेयोन्मे, उपरोक्त उत्सव उपरान्त सोना-मोहरा अने हिव्य वस्त्रो यषु वर्षाव्या. छत्रे ऋतुयोना 'हवी पञ्चरंगी' इंदो यषु वर्षाव्या

भाग-भगीयाओ, जे ग्रीष्म ऋतुमा सुहाय गयां इता, ते यषु नमपदवित थया. तेओमां येतन अने उवत आवुं. रज-परागरज, रग अने सुगंधयो, सर्व प्रकाग्ना इंदो। भीदी उठया सर्व प्रकाग्नी वनस्पति इंदी नीकदी, अनेकना अंकुरे। इंदवा दाग्या, ने अनेक गाठमा आवेदा उद्याने, भनोहर अने आंभने ठंडक आये तेवा उभरावा दाग्यां. करमाई गयेद कणीओ, जखु इसती इसती जहार आवती होय तेम जथावा दागी इंदोनी हुनिथाने यषु, आ ओक अनोयो अने अनेदे। उत्सव उज्ज्वलाने होय, तेम जथावा दाग्युं. आ इंदोओ पोतानी सौरभ, सर्वशक्ति द्वारा, भिदववा माडी. ने जगत ने पोताने। परिन्थ आपवा तैथार थया होय तेम तेओ देभावा दाग्यु.

पाणीना सुकडा अने भादी जलाशयो यषु वगार वरसादे उभरावा दाग्यां. पृथ्वीओ पोतानामा सन्थकरी राभेलुं अने सधरी राभेलुं पाणी, जरणा अने घोध द्वारा, वहेतुं सुकवां माड्यु. जेना परिणामे, ठेर ठेर कूवा, नदी, वावडी विजेरे पाणीथी लराय गया ने ग्रीष्म ऋतुने वर्षा ऋतु तेमज वसंत ऋतु जेवी बनानी दीधी.

शाखा-शिखा-वल्ग्विनः-तत्र-सालाः=वृक्षविशेषाः, रसालाः=आम्राः, तमालाः=वृक्षविशेषाः, तत्प्रभृतयो
 ये शाखिनो=वृक्षास्तेषां याः शाखाः तासां याः शिखाः=शिरःप्रदेशाः तद्वल्ग्विनः=तदाश्रयिणः-तद-
 धिष्ठायिनः सन्तः सहकार-सरस-मञ्जरी-रसाऽऽ-स्वादमादो-दक्षित-पञ्चमस्वराः-सहकाराणाम्=आम्राणां
 याः सरसाः=रसयुक्ता मर्ज्यः, तासां यो रसास्वादस्तेन यो मादः=हर्षस्तेन उदक्षितः=उद्गतः पञ्चमस्वरः=स्वर-
 विशेषो येषां तथाभूताः, अत एव-एल्लराः=शब्दं कुर्वन्तः, अनन्त-गुण-ग्राम-धाम-प्रभु-ललाम-यशो-नायक-
 मृत-मागध-चारण-विडम्बिनः-अनन्ता=अन्तरहिता ये गुणाः=ज्ञानादयः तेषां यो ग्रामः=समूहः, तद्धाम यः
 प्रभुः=वीरः तस्य यल्लाम=शोभन यशः तद्गायकाः=तद्गानकर्तारो ये मृताः=यन्दिनः-स्तुतिपाठकाः, मागधाः=
 वंशपरम्परावर्णकाः, चारणाः=वन्दिद्विशेषाश्च, तद्विडम्बिनः=तत्सादृश्यं भजन्तः सन्तो मधुरं=मिष्टं परं=प्रकृतं
 कृजितुमारेभिरे=अव्यक्त शब्दं कर्तुमाव्यवन्तः ॥सू०५५॥

तथा-साल, रसाल, तमाल आदि वृक्षों की चोटियों पर चढ़े हुए कोकिल आदि पक्षी-आम्रों की
 सरस मंजरियों के रसास्वादन के आनन्द से निकले हुए पंचम स्वर में मुखरित हो उठे-शब्द करने लगे
 तथा अनन्त गुणों के आधार प्रभु के सुन्दर यश के गायक मृतो-वन्दी जनों मागधी-वंशपरम्परा का
 बखान करने वालों, तथा चारणों को भी मात करते हुए मधुर और उत्तम रूप से कूजने लगे ॥सू०५५॥

रक्षोनेो दिव्यधनि, पृथ्वी उपरना ढोके। सावणी शके तेवो तीव्र अने उच्च श्रेणीना हुतो। क्रिददेश-गधवों पोतानी
 गाथनकणा अने नृत्यो उच्चश्रेणीना देवोने अतावी रह्या हुतां विद्याधरो, पोताना पडाडे। परनी रान्धानीओने,
 शबुगारी तेजेभय अनावी रह्या हुता ने पोतानी पुत्रीओने, ते सभारवोना उत्सवो भाषवा, प्रेम्णा करी रह्यां अता-
 डेयल-डेकिदा-पोपट विगेरे ज्ञानवरो पणु कही नहि लोगवेल ज्येवो आभरस पाछ रह्या हुता प्रकृति
 (कुहरत) पणु तृषायमान थछ रह्यो तेम ज्योतुं हुतुं। प्ररखु डे, आउपान परना प्रणे। लखी रह्या हुतां ने
 भिक्षाशथी लख्यक अनी रह्या हुता। जगदना अने वनवगडाना पक्षीओने, भगवानना जन्म समये, भिष्ट लोचनेो
 आपवाना धरदाथी, प्रकृतिज्ये कुहरते पणु इण-कृणेनी आडे वगडे, देलभछेव करी भूरी अने आ प्रणेभा
 भादेभाग साकर लरी दीधी होय तेम ज्योतुं।

आभ्रमंजरीना रसनी भिक्षाशथी, धराछ गयेव डेयलो, गीतो गाछ रवी हुतीं ने छननो
 अलुपम मोज, सर्व पक्षीज्यो भाषी रह्यां हुता (सू०५५)

समीपमागच्छत्सु, उत्पतत्सु=उपरि गच्छत्सु च सत्सु, सति सप्तम्यर्थे प्राकृतत्वात् तृतीया, एको महान् दिव्यः= अद्भुतः देवोद्द्योतः=देवप्रकाशः, देवसंनिपातः= देवसम्मिलनं, देवकलकलः=देवानामागतानां सामूहिकशब्दः, उत्पिञ्जलकभूतः=देवानामत्यन्तसंवाधश्चापि वभूव ।

अथ=अनन्तरं देवा देव्यश्च एकां महतीममृतवर्षां=सुधावृष्टिं, गन्धवर्षां=गन्धद्रव्यवृष्टिं, चूर्णवर्षां=सुगन्धि-चूर्णवृष्टिं, पुष्पवर्षां च हिरण्यवर्षां=स्वर्णवृष्टिं रजतवृष्टिं वा रत्नवर्षां=रत्नवृष्टिं च अवर्षन्=कृतवन्तः ॥सू०५६॥

मूलम्—तए नं आसणेसु कंपमाणेसु छत्पन्नं दिसाकुमारीओ ओहिनाणोवओणेण भगवओ सिरिमहा-वीरस्स संसारताव्हारं जम्मं जाणिय सोकरिसहरिसा सिग्घं पम्भुधरं समागया, त जहा—

भोगंकरा १, भोगवई २, सुभोगा ३, भोगमालिणी ४, सुवच्छा ५ वच्छमिता ६ वारिसेणा ७ बलाहगा ८; एयाओ अट्टदिसाकुमारीओ अहोलोगाओ आगया तित्थयरं तित्थयरमायरं च कमणिज्जाभावभरिय-चेयसा अभिवंदिज्ज पम्भुधरं संवट्ठवाएण विसोहिता सुगंधवरगंधियं गंधवट्ठिभूयं किच्चा भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए य अदूरसामंते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठिसु ॥सू०५७॥

आने-जाने से लोगों में एक महान् अद्भुत प्रकाश फैल गया। देवों का सम्मिलन हुआ। आये हुए देवों का कल-कल शब्द हुआ। तथा देवों की खूब भीड़ हुई, अर्थात् इतने बहुत देवों और देवियों का आगमन हुआ कि राजभवन विशाल होने पर भी उसमें समाना कठिन हो गया।

इसके पश्चात् देवों और देवियों ने एक बड़ी सुधा की वर्षा की, सुगंधित द्रव्यों की वर्षा की, पुष्पों की वर्षा की, पुष्पों की वर्षा की, सोने-चाँदी की वर्षा की और रत्नों की वर्षा की ॥सू०५६॥

देवो अंहरो अहर सणता जुंदता हुता, तेथी 'इल-इल' शब्दो शोर भडोर पथु थो। हुतो. आ शोर अरुडुट रछेतो। अने देव-देवीओनी पथु वीउ नभी हुती।

त्यारबछी देवो अने देवीओओ ओक धण्णी मोटी अभुतवषां करी, सुगंधवषां करी, पुष्पवषां करी, सोनाचाँदी अने रत्नोनी पथु वर्षां करी (सू०५६)

छाप — हा। तसु आसनेसु कम्पमानेसु पट्टपञ्चाशत् दिक्कुमार्यः अविद्याज्ञानोपयोगेन भगवत् श्री महावीरस्य समारतापरां जन्म ज्ञात्वा सातर्थावर्षा नीघ्रं श्रीघ्रं प्रवृत्तिरुह समागताः। सद्यः—

भोगद्वारा १, भोगवती २, सुभोगा ३, भोगमात्रिणी ४, सुवत्सा ५, वत्समित्रा ६ वारिसना ७ वत्सरा ८। एता अष्टदिक्कुमार्योऽप्येवमोदागताः, तीर्थकरे तीर्थकरमातरं ९ कमनीयमावधुतचेतसाऽभि-
नय प्रवृत्तिरुहं सर्वज्ञातेन विद्याय सुगन्धपरगन्धित गन्धर्वविभूत कृत्वा भगवत्तीर्थकरस्य तीर्थकरमातुष
अदस्तामनं प्रागायन्त्याः परिगायन्त्योऽतिष्ठन् ॥सू०५७॥

मूल का अर्थ—‘तप न’ इत्यादि। तत्पश्चात् आसनों के काँपने पर छप्पन दिक्कुमारी दक्षिणा, अविद्याज्ञान का उपयोग समा कर भगवान् भीमरावीर का संसार के तप को हरने वाला जन्म जान कर, प्रत्ययिक द्रष्टा होकर जन्मी-जन्मी प्रवृत्तिरुह में आयीं। वे इस प्रकार थीं—

(१) भोगवती (२) भोगमात्रिणी (३) सुभोगा (४) भोगमात्रिणी (५) सुवत्सा (६) वत्समित्रा (७) वारिसना (८) वत्सरा; यह आठ दिक्कुमारियाँ अमोलोक से आयीं। य तीर्थकर को और तीर्थकर की माता को, प्रमत्त मानों स भर हुए बिना स नमस्कार करके, प्रवृत्तिरुह को सर्वत्र वासु से शुद्ध करके, भेष्ट सुगन्ध स सुगन्धित करके, गंध की बत्ती जैसा बना कर, भगवान् तीर्थकर और तीर्थकर की माता से न अधिक दूर न अधिक समीप अर्थात् थोड़ी दूरी पर तल्ली २ आगान और परिगान करने लगीं ॥सू०५७॥

भूतने। अर्थ—‘तप न’ इत्यादि। आसन क पादभान यत्, छप्पन दिक्कुमारीको, अवविद्याज्ञाने उपयोक्तुं भूति भूति, तेभने व्यस्यवभा आन्सु हे स साक्षा ताप कस्यावाणा अत्रवान भद्रोपरी देवने। अन्म द्यो हे आधी, तेको। वकी द्रष्टा बहने, उतावणी-उतावणी प्रवृत्तिरुहमां आधी पछोन्नी

आ दिक्कुमारीको हेटवीं अने अभा कथा प्रकानी कती त नीधि भुज्ज वसु ववाभा आवे छे, ने तेजोनु सु य मान होब छे तेनी वृद्धेया पवु जताववाभां आवे छे।

दिक्कुमारिजिनोना प्रकाश—(१) भोगवती (२) भोगवती (३) भोगवती (४) भोगवती (५) सुवत्सा (६) वत्समित्रा (७) वारिसना (८) वत्सरा आ आठ दिक्कुमारिजि आधीतोहमाभा आनी

आ कुमारीको पोतानी इत्य अन्मया, तीर्थकर अने तेभनी भाताने, साय अनु तदन कर छे त्वासाह प्रसति अने सपत्त वसु दास साक्षरुहरी शुद्ध कर छे के छे सुगन्धि पदावी दास तेन सुगन्धित

हे अन्म उनी वकी तीर्थकरने दासदां मान छे (सू०५७)

ટીકા—‘તળળં આસનેષુ’ इत्यादि । ततः खलु स्वस्वासेनेषु कम्पमानेषु सत्सु पट्पञ्चागद्विचकु-
 मार्यः=पूर्वादिषु दिक्षु स्थिताः कुमारिकाः अवधिज्ञानोपयोगेन भगवतः श्रीमहावीरस्य संसारतापहारं=भवन-
 जनितसन्तापहारकं जन्म ज्ञात्वा सोत्कर्षहर्षाः=सोत्कर्षः=उत्कर्षसन्ति हर्षः=प्रमोदो यासा तथाभूताः सत्यः
 शीघ्रशीघ्रम्=अतिशीघ्रं प्रसूतिग्रहं=प्रसवभवनं समागताः । तद्यथा—
 भोगङ्करा १, भोगवती २, सुभोगा ३ भोगमालिनी ४, सुवत्सा ५ वत्समित्रा ६, वारिसेना ७
 वलाहका ८; एता अष्टदिक्कुमार्योऽधोलोकाद्=अधोलोकै गजदन्तगिरिचतुष्टयस्य अग्रस्ताद् स्थितेभ्यः स्वस्व-

ટીકા કા અર્થ—‘તળળં’ इत्यादि । अने-अपने आसनों के कम्पायमान होने पर छापन दिशाकुमा-
 रियों अर्थात् पूर्व आदि दिशाओं में स्थित कुमारियाँ, अवधिज्ञान के उपयोग (व्यापार) से भगवान् श्रीमहा-
 वीर का, भवजनित संताप को हरण करने वाला जन्म जान कर, अत्यधिक हर्षयुक्त होकर अत्यन्त शीघ्र
 डी प्रसूतिग्रह में आ पहुँचीं । वे इस प्रकार थीं—

(१) प्रसूतिग्रह (२) भोगकरा (३) सुभोगा (४) भोगमालिनी (५) मुवत्सा (६) वत्समित्रा
 (७) वारिसेना और (८) वलाहका; ये आठ दिशाकुमारियाँ अधोलोक से अर्थात् अधोलोक के चार गजदन्त

ટીકાનો અર્થ—‘તળળં’ इत्यादि. परम पीतरागी युरुषेनो जन्म यथा, कुदन्ती कानून अनुभार, छापन दिशाकुमारियोना
 आसन हयमयी ठडे છે અને अस्थिर માલુમ પડે છે આવા આસનો કદાપિ પણ ચલાયમાન થતાં નથી.
 છતા તેમણે ચલિતપણું ભેદ, ઘડી એક ભર વિચારમગ્ન બની બાય છે. વિચારમગ્ન થતા, કોઇ સમજણ
 નહિ પડવાથી, પોતાના અવધિજ્ઞાનનો ઉપયોગ કરે છે આ જ્ઞાનદારા, ઘણે હર હર બનતા બતાવે ભેદ,
 ક્રાંતિ નિર્ણય પર આવી બાય છે તદ્દનુસાર, ઉપયોગ દારા, ભોતાં જણાયું કે, ભરતક્ષેત્રમા આ ચોવીશીના
 અતિમ તીર્થ કરનો જન્મ, ત્રિશળા રાણીની ફૂળથી થયો છે.

આ બાણુ થતાની સાથેજ, તમામ કામ પડતા મૂકી, ઉતાવલી-ઉતાવલી દોડતી આવી, પ્રસૂતિ ગૃહમા હાજર
 થઇ ગઇ. ભગવાનને ભોતાં, તેમનો દેહ-મન અને વાણી પ્રકુલિત થયાં.

આ આઠ કુમારિઓ, નીચે અધોલોકમા વાસ કરીને રહે છે તેઓનો વાસ, હાથીના દંતુજળના આકારે
 રહેલાં પર્વતોની નીચે બનેલાં ભવનોમા હોય છે.

मयनेभ्य आगता' सत्य' तीर्थकर=आधितीयकुराधे बुद्धिविषयीकृत्य प्रयोगात् सम्मत्यपि तीर्थकरं, च=पुनः तीर्थकरमातरं कमनीयमायतृतेतसा=वर्षसनीयमायपूर्णमनसा अभिवन्द्य=आणम्य प्रयतिगृह=मत्सपुष्टं सवत्कृत्वातेन=संवत्कृतमकृत्वायुना विशेष=समाख्ये सुगन्धबरागपिपतम्=उष्णमान्धुगन्धित तथा=गन्धवर्धितभूतम्=मनेकविषयगन्ध-गुटिकायां यथा सौरभ्य तारुसौरभ्यवत्त्वेन तत्सदृशं=नानागन्धान्वितं कृत्वा भगवतः तीर्थकरस्य तीर्थकरमातुष्य मदूर सामन्ते=नातिदूरे नाविसमीचे आणयन्त्या=गीतमारम्भकाळे मन्त्रस्वरेण गायन्त्य परिगायन्त्यः=गीतमारम्भा नन्तर तारस्वरेण गायन्त्य अविष्ठान=स्थितवत्य' । सू० ५॥

पूर्वों के नीचे रहे हुए अपने-अपने मयनों स आयीं । उन्होंने तीर्थकर को (भावी तीर्थकरत्व का आश्रयण कर वर्षमान में मी 'तीर्थकर' कृम्य का प्रयोग किया गया है) तथा तीर्थकर की माता को, मयंसनीय मावों से परिपूर्ण मन स बन्दन किया । बन्दन करके प्रयतिगृह को सर्वकृ नामक वायु से स्वच्छ किया । उत्तम गंध से सुगंधित किया । अनेक गंधों वाली बची में जैसा सौरभ्य होता है, वैसे ही सौरभ्य स युक्त होने के कारण गंधवर्धी के समान किया अर्थात् नाना प्रकार की सुगंधों से युक्त किया । फिर तीर्थकर और तीर्थकर की माता से न ज्यादा दूर न ज्यादा समीप में वे आगान तथा परिमान करने लगीं । अर्थात् गीत मारंभ करते समय मन्त्र (बीमे) स्वर से तथा मारंभ करने के बाद तार (जैसे) स्वर से गाती हुई लड़ी रहीं । सू० ५॥

तेजो हरिस्तु आवोषी, आश वीतमगी पुरुषने तथा तेभनी आताने, वदन-नभरकार करे छि ने पेटांनी हरन उचर वडी बच छि । आ दुभारिजोनी हरन प्रथम भणते प्रयतिगृहं येष्ठ उपाधी, हेही छि तेने साहसुर करवाणु छेय छि । आ जालोले, अष्टादाश, निधेयमात्रमा साह करी नाचे तेवा व्यप्तर बल्लर करता सक्तीक नभमा वायुने उपेयन करे छि । त्पस्याह सुत्रधि पदाथोना छटाका करी प्रसुति गृहने, भव-भवावधान जनावी भूरे छि ने आता तेभन गाणकने बते साह करी गाणकने पारव्याभा सुपाधी पछेछि बल्लर गु आय छि अने ज्वा इर उणी रहे छि । (सू० ५०)

मूलम्—मेहंकरा १, मेहवई २, सुमेहा ३, मेघमालिनी ४, तोयधरा ५, विचिता ६, पुष्फमाला ७
अग्निदिया ८; एयाओ अट्ट एड्डलोगाओ आगया, पंचवर्णापुष्फबुद्धिं किच्चा भगवओ महावीरस्स तन्माऊए य
अद्रसामते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठिसु । १६ ।

नंदोत्तरा १, नंदा २, आणंदा ३, नंदिवद्धणा ४, विजया ५, वेजयंती ६, जयती ७, अपरा-
जिता ८; एयाओ अट्ट पुरत्थिमाओ रुयगपन्वयाओ आगया आयसहत्थगयाओ भगवओ तिसलाए य पुरत्थिमेणं
चिट्ठिसु । २४ ।

समाहारा १, सुप्पइण्णा २, सुप्पबुद्धा ३, जसोहरा ४, लच्छीवई ५, सेसवई ६, चित्तगुत्ता ७,
वसंधरा ८; एयाओ दाहिणाओ रुयगपन्वयाओ आगया भिगारहत्थगयाओ भगवओ तिसलाए य दाहिणेणं
आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठिसु । ३२ ।

इलादेवी १, सुरादेवी २, पुढवी ३, पउमावई ४, एगणासा ५, णवमिया ६, सीया ७, भद्दा ८;
एयाओ अट्ट पच्चत्थिमाओ रुयगपन्वयाओ आगया तालियंटहत्थगयाओ भगवओ तिसलाए य आगायमाणीओ
परिगायमाणीओ चिट्ठिसु । ४० ।

अलंबुसा १, मियकेसी २, पुडरीगिणी ३, वारूणी ४, हासा ५, सव्वगा ६, सिरी ७, हिरी ८;
एयाओ अट्ट उत्तरिद्धाओ रुयगपन्वयाओ आगया चामरहत्थगयाओ भगवओ तिसलाए य उत्तरेण आगाय-
माणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठिसु । ४८ ।

चित्ता १, चित्तकगगा २, सएरा ३, सोयामिणी ४; एयाओ चउरो विदिसिरुयाओ आगया
दीवियाहत्थगयाओ भगवओ तिसलाए य चउसु विदिसासु आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठिसु । ५२ ।

रूवा १, रूवंसा २, सुरूवा ३, रूववई ४; एयाओ चउरो रुयगमज्झाओ आगया भगवओ तित्थ-
यरस्स चउरंगुलावसिट्ठं नाभिनालं कप्पित्ता भूमीए निहर्णिंसु । ५६ ।

तए णं छप्पन्नं दिसाकुमारीओ तित्थयरं 'भवउ भगवं पन्वयाउए'—त्ति वडत्ता आगायमाणीओ परिगाय-
माणीओ चिट्ठिसु ॥ मृ० ५८ ॥

छाया—मेघद्वारा १, मेघवर्षी २, मृगेया ३, मेघमासिनी ४, तोयधरा ५, विचित्रा ६, पुष्यमाला, ७, प्रमिन्दिता ८; एता अष्ट ऊर्ध्वलोकात् आगताः पञ्चवर्णेष्वष्टि कृत्वा भगवतो महावीरस्य तन्मातृभ्यः भद्रासाम्भवे आगायन्त्यः परिगायन्त्यः अभिष्टुन । १६।

नन्दोत्तरा १, नन्दा २, आनन्दा ३, नन्दिषर्द्धना ४, विजया ५, वैभयन्ती ६, मयन्ती ७, अपरा
जिवा ८, एता ऋषीरस्यैव रुचकपर्यन्तात् आगता आदर्शस्तगता मगनसिद्धतायाश्च
पन्थः परिगणयन्त्यो विद्यन् । २४ ।

समाहार १, सुमतिश २, मुमपुदा ३, यज्ञोपरा ४, स्क्सीवती ५, शेषवती ६, चिचगता ७,

मूल का अर्थ—'मेघकटा' इत्यादि। (१) मेघकटा (२) मेघवती (३) सुमेधा (४) मेघमालिनी (५) होयराता (६) तिचिन्ना (७) पुष्पमाला और (८) अनिदिन्ता; ये आठ विद्याकुमारियाँ कर्बलोक से आयीं। वे पाँच वर्ष के फूलों की वर्षा फरके भगवान् महावीर और उनकी माता से कुछ दूर, आगान-परिगान काली हुई लड़ी रहीं (१६)

(१) मन्वन्तरा (२) नन्दा (३) आनन्दा (४) नन्दिर्वर्द्धना (५) विजया (६) वैजयन्ती (७) जयन्ती और (८) भाराजिता; ये आठ पूर्वे दिशाके दिशाकुमारियाँ स्वक पर्वत से आयीं और आयना हाथ में लिये मगवान तथा पिशला के पूर्वे दिशा में आगान तथा परिगान करती हुईं स्वर्णी रहीं। (२४)

(१) समाहारा (२) सुमविज्ञा (३) सुमपुद्गा (४) यक्षोघरा (५) स्रक्ष्मीक्ष्वी (६) वित्रण्णा मोर

[illegible]

(૧) નદોત્તર (૨) નદા (૩) આનદા (૪) નદિધન્યા (૫) વિજ્યા (૬) વજ્યન્યા (૭) જ્યન્યા (૮) અપરાજ્યા, જે આઠ પૂવ દિશામાં રહેલી વિશાખાસરખાણે, સુચક પર્વત ઉપરથી ઉતરી આવી તેઓના દાશમાં ૬૫ સુન્દર, ભગવાન અને તેમની માયાને વિધિમુક્ત થકન કરી, જ્યાં દૂર ઉભી રહી, હાલરડાં ગાવા લાગી ને ભગવાનને કિલોગથ લાગી (૨૪)

(१) सभाकाश (२) भूगर्भ (३) अग्नि (४) वायु (५) वज्र (६) ऐश्वर्य (७) विष्णु

वसुन्धरा ८; एता अष्ट दक्षिणस्मात् रुचकपर्वतात् आगता भृङ्गारहस्तगता भगवतः त्रिशलायाश्च दक्षिणेन आगायन्त्यः परिगायन्त्यः अतिष्ठन् । ३२ ।
 इलादेवी १, सुरादेवी २, पृथ्वी ३, पद्मावती ४, एकनासा ५, नवमिका ६, सीता ७, भद्रा ८;
 एता अष्ट पाश्चात्यात् रुचकपर्वतात् आगतास्तालवृत्तहस्तगता भगवतः त्रिशलायाश्च
 यन्त्यः परिगायन्त्यः अतिष्ठन् । ४० ।
 अलम्बुषा १, मितकेशी २, पुण्डरीकिणी ३, वारुणी ४, हासा ५, सर्वगा ६, श्रीः ७, ह्रीः ८;
 एता अष्ट उत्तरीयाद् रुचकपर्वतात् आगताः चामरहस्तगताः भगवत्त्रिशलायाश्च उत्तरेण आगायन्त्यः परिगा-
 यन्त्यः अतिष्ठन् । ४८ ।

वसुन्धरा; ये आठ दिशाकुमारियाँ दक्षिण दिशा के रुचक पर्वत से आईं। इनके हाथों में भृङ्गार (झारी) था। ये भगवान् और त्रिशला के दक्षिण भाग में आगान-परिगान करती हुई खड़ी रहीं (३२)।
 (१) इलादेवी (२) सुरादेवी (३) पृथ्वी (४) पद्मावती (५) एकनासा (६) नवमिका (७) सीता और (८) भद्रा; ये आठ दिशाकुमारियाँ पश्चिम दिशा के रुचक पर्वत से आईं। इनके हाथ में पंखे थे।
 ये भगवान् और त्रिशला के पश्चिम भाग में आगान-परिगान करती हुई खड़ी रहीं। (४०)
 (१) अलम्बुषा (२) मितकेशी (३) पुण्डरीकिणी (४) वारुणी (५) हासा (६) सर्वगा (७) श्री और ह्री; (८) ये आठ दिशाकुमारियाँ उत्तर के रुचक पर्वतसे आईं। इनके हाथमें चमर थे। ये भगवान् और

चिपा १, चिक्कनका २, छतेरा ३, सौदामिनी ४; एताम्बतल्लः विविङ्गुरुक्कत्तु आगताः दीपिका-
इस्तगताः मगन्तुविद्विजसायां चरुत्तु विद्वु आगायन्त्यः परिगायन्त्यः अविष्टुन् । ५२ ।

रूपा १, रूपांशा २, मुरूपा ३, रूपावती ४; एताम्बतल्लः रुक्कम्बप्यात् आगता मगन्तस्तीर्यकरस्य
चतुःसुक्कमश्रिष्टं नागिनालं कसियत्वा मूर्यां न्यसन् । ५६ ।

शतः सल्ल पट्टम्बाञ्चद्द विद्वान्कमार्यः तीर्थकरं 'मन्तु मगवान् पर्वतायुष्कः' इति उदित्वा आगायन्त्यः
परिगायन्त्योऽविष्टुन् । ५८ ।

(१) चिपा (२) चिक्कनका (३) छतेरा (४) सौदामिनी; ये चार विद्वान्कमारिया विद्विजामों
(विद्वन्कमारों) से आ' । इनके हाथ में छोटे-छोटे दीपक थे । ये मगवान और विद्वन्का के चारों विद्विजामों
में आगाल-परिगत करती हुई लट्ही रहीं । (५२)

(१) रूपा (२) रूपांशा (३) मुरूपा और (४) रूपावती; ये चार विद्वान्कमारियाँ रुक्क पर्वत के
मध्यभाग से आईं । इनोंने मगवान तीर्थकर के चार अंगुल श्रेण नाम का काट कर भूमि में गाड़ दिया । (५६)
ये छपन विद्वान्कमारियाँ 'मगवान पर्वत के समान चिरायु हों' इस प्रकार के आशीर्वाद बचन
बोल करके आगाल-परिगत करती हुई लट्ही रहीं ॥ ५८ ॥

आमळ विद्वन्कमारिओ उतरना रुक्कमप्रदेश पदो आवी तेजोना काम्भा 'अभर' कर्ता, तेजो आधन इत्ती, नल्लुडमां
उत्ती रली. (५८)

(१) बिना (२) चिक्कनका (३) छतेरा (४) सौदामिनी; आ चार पुभारिओ विद्विजालो (विद्विजालो) भांभी
उत्तरी आवी तेजोना काम्भा नाना बीपडो' कर्ता आ चारे ज्योओ प्पुजालोभा उक्की रली दावरदां
आर रली (५२)

(१) रूपा (२) रूपांशा (३) मुरूपा (४) रूपावती; जे चार पुभारिओ रुक्क पर्वतना मध्य भागभांभी
आबी रली आ पुभारिओओ, मगवानना चार अंगुल प्रमाण नगने भापी अग्निभा हाटी बीधा (५६)
आ छपन विद्वान्कमारिओ मगवान पर्वतनी समान विराजु यालो' आ प्रकार रली आज्ञां जाली
जेड प्पारु उत्ती रली. (५८)

टीका—‘मेहंकरा’ इत्यादि । स्पष्टम्, ऊर्ध्वलोकात्=भद्रशाल्वनस्य समभूतलात् पञ्चशतयोजनोच्चनन्दन-
 वनगतपञ्चशतयोजनप्रमाणाऽष्टकूटरूपस्थानात् । अदूरसामन्ते=नातिदूरे नातिसमीपे । १६ ।
 ‘नंदोत्तरा’ इत्यादि । स्पष्टम्, नवरम्-आदर्शहस्तगताः-हस्तगतः=हस्तस्थः आदर्शो=दर्पणो नासां ताः=
 हस्तगृहीतदर्पणा इत्यर्थः । ‘हस्तगत’ शब्दस्य परनिपातः प्राकृतत्वात् । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । २४ ।
 ‘समाहारा’ इत्यादि । स्पष्टम्, भृङ्गारहस्तगताः-भृङ्गारः=‘क्षारी’ इति भाषामसिद्धः, स हस्तगतो
 यासां ताः ॥ ३२ ॥ स्पष्टम्, नवरम्-तालट्टन्तहस्तगताः-तालट्टन्तानि=व्यजनानि हस्तगतानि
 ‘इलादेवी’ इत्यादि ।
 यासां ताः-तालव्यजनधारिण्य इत्यर्थः । ४० ।

टीका का अर्थ—‘मेहंकरा’ इत्यादि । ‘मेहंकरा’ इत्यादिका अर्थ स्पष्ट है । केवल विशेष इतना ही है
 कि ये ऊर्ध्व लोक से आईं अर्थात् भद्रशाल वन के सम भूभाग से पाँच सौ योजन ऊँचा नन्दन वन है,
 उसमें पाँच सौ पाँच सौ योजन प्रमाणवाले आठ कूटों से आईं । ‘अदूरसामन्ते’ का अर्थ है—न अधिक
 दूर, न अधिक समीप । इन्हीं पाँच वर्ण के फूलों की वर्षा की ।
 ‘नंदोत्तरा’ आदिका अर्थ स्पष्ट है । केवल ‘आदर्शहस्तगताः’ का अर्थ है—उनके हाथों में दर्पण थे । २४ ।
 समाहारा इत्यादि स्पष्ट है । ‘भृङ्गारहस्तगताः’ अर्थात् इनके हाथों में क्षारी थी । ३२ । इलादेवी आदि स्पष्ट है ।
 केवल इनके हाथों में ताड़-पंखे थे, इतना समझना चाहिए । ४० ।

टीकानो अर्थ—‘मेघकरा’ इत्यादि. सूत्रनो अर्थ स्पष्ट छि. इक्षत लेह आटुंज छि इ उर्ध्वदोऽथी आवी
 अटवे बद्रशाण वतन्ती समलूमिथी पांयशो लेजन ठांयुं नंदनवन छि. त्यां पायसो पांयसो योजन प्रमाणवाणा
 आठ इटो आवेक्षा छि ते इटोथी आवी. अदूरसामन्ते नो अर्थ—नडि हर नडिं नलुङ्क, तेवो थाय छि. (१६)
 ‘नंदोत्तरा’ विगेरेनो अर्थ स्पष्ट छि. केवण-आदर्शहस्तगता नो अर्थ ओवो थाय छि इ तेओना हाथमां
 हर्पथु इतां (२४) समाहारा इत्यादि स्पष्ट छि भृङ्गारहस्तगता नो अर्थ ओवो थाय छि इ हाथमां ‘आरी’
 इती. (३२) इलादेवी विगेरेनो अर्थ स्पष्ट छि. इक्षत तेओना हाथमा ताडना पंथा इतां, तेवो अर्थ अडिं कराय छि. (४०)

‘ब्रह्मपुसा’ इत्यादि। स्याद्यम्, नवरम्, नवरम्-यामरइस्तगता! = चामरधारिण्यः। ४८।

‘विषा’ इत्यादि । स्पष्टम्, नक्षत्रम्-दिपिप्पाहस्वगता=दीपधारिण्यमृतस्रः । ५२ ।

‘स्वा’ इत्यादि। सद्यम्, नवरम्-स्वाद्यप्यतसो नाभिनासरेवेतिन्यं । ५६ ।

स्वकपर्वतो हि जम्बूद्वीपस्यैकपर्वतस्य प्राकाररूपेण वर्तते इति बोध्यम् ॥

‘तए न इत्यादि । एत सख ता एल्लोका’ पदगुणाश्चपि विष्णुभार्यः ‘हे भगवन् ! भवान् पर्वतायुष्काः= पर्वतवत् चिरायुष्को भवतु’ इति=इत्यम् आशीर्षनं शीर्षेणम्-उविस्वा=उक्त्वा आगायन्त्यः परिगायन्त्योऽविजुन् ॥ सु० ५८ ॥

असंखुपा भाशि स्पष्ट है। सिर्फ़ यह विशेषता है कि ये चामरचारिणी की। १४८।

विमान आदि स्पष्ट है। सिर्फ़—यह विशेषता है कि ये बार वीषक लिये थीं। १५३।

स्वा भादि स्पष्ट है। सिर्फ़-यह विशेषता है कि ये चार नाम छेदन करने वाली थीं। ५६।

स्वक पव नमूना के प्रकार (परफोट) के रूप में अवस्थित है, ऐसा समझना चाहिए।

हो आशीष के वन रुख कर आगान और परिगान करती हुई स्थित हुई ।सु०५८॥

सकम्पुण आनिंग जार्ज भव्य रूपत छि विप्रिपदा कोटवी हे मा! दिश्याभ्रभ्रिस्त्रिपदा सायमा, 'क्याभद',
रहेना बतल (४८)

જિજ્ઞા આદિ સ્પષ્ટ છે. નિગ્રેથમાં તે ગારના હાથમાં 'દીવા' હતું. (પર)

કાળા બ્લાક રપબ્ડ છે વિચીરતા એ કે-તે ચાર કિશોરમારીઓ નાળ છેડ કમવાવાળી પકોડ, જૂ વૂં ફોપના પ્રકાર સમાન દેખાય છે. એવી. (૫૬) રૂબડ

આ સવ હાપ્તન વિદ્યાપ્રમણિએ જણાવનને, હે જાગરન! તમે પર્વતની સમાન વિરાધુ માએ! એવા આદિપવરને યોગી, આતાં આતાં ઉભી રહી (૨૦૫૮)

मित्रप्रेरिताः, क्रियन्तश्च देवीप्रेरिताः=सदेव्या प्रेरिताः, क्रियन्तश्च कौतुकाऽऽ-लोकनो-त्कण्ठिताः-कौतुकं=कुतूहलं तस्याऽऽलोकन=निरीक्षणं तत्रोत्कण्ठिताः=उत्सुकाः, क्रियन्तश्च अद्भुतम्=आश्चर्यं द्रष्टुम्, क्रियन्तश्च देवाः तीर्थंकरजन्ममहोत्सवं द्रष्टुम्, क्रियन्तश्च भगवन्तं द्रष्टुम्, क्रियन्तश्च 'अयं भगवान् मुक्तिमार्गस्य=मोक्षमार्गस्य दर्शको भविष्यति' इति कृत्वा=इति बुद्ध्वा, क्रियन्तश्च 'अस्यामवसर्पिण्याम् अस्मिन् भारते वर्षे अयं चरमः=अन्तिमः तीर्थंकरः' इति कृत्वा, क्रियन्तश्च आत्मीयभावेन, क्रियन्तश्च देवा भक्तिभावेन अवलन् ।।सू०५९॥

मूलम्—जं समयं च णं देवा चलिता ते समयं च णं तत्थ पट्टमाणेहिं नाणाविह-दिब्ब-सुडिय-सद्-संनिनाएहिं घटाणिणाएहिं तप्पडिज्जुणीहिं देवदेवीकलकलेहिं च अहंढं आगासमडलं गुंजियं आसि ।

तसि समयमि कोडिसो देवविमाणेहिं विमलमवि आगासं संकिणं जायं ।

तत्थ सीहागिइविमाणवासिणो देवा गयागिइविमाणारूढे देवे कहिसु—“भो भो अगे सरंतो देवा ! सये सये हत्थिणो एगअओ करेमाणा चलंतु, अब्बहा दुद्धरो मम केसरी तुम्हाणं हत्थिणो हणिस्सइ । एवं महि-सागिइविमाणारूढा आसागिइविमाणारूढे गरुलागिइविमाणारूढा भुयंगागिइविमाणारूढे, चित्तगागिइविमाणारूढा मेसागिइविमाणारूढे देवे य कहिसु ।

देवी के आग्रह से चले, कितनेक कुतूहल देखने की उत्कंठा से चले, कितनेक आश्चर्य देखने के लिए चले, कितनेक तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव देखने के लिये चले और कितनेक भगवान् का दर्शन करने के लिए रवाना हुए । कोई-कोई यह समझ कर गये कि यह भगवान् मोक्षमार्ग के दर्शक होंगे, और कोई-कोई यह सोच कर कि इस अवसर्पिणी काल में, इस भरतक्षेत्र में यही अन्तिम तीर्थंकर हैं । कुछ देव आत्मीयभाव से चले तो कुछ भक्तिभाव से प्रेरित होकर चले ।।सू०५९॥

आग्रहशी उपडथा, डेटलाक डुवुडल जेवान्नी उत्तंठाथी उपडथा, डेटलाक आश्चर्य जेवाने माटे उपडथां, डेटलाक तीर्थंकरने। जन्ममहोत्सव जेवाने माटे उपडथा, अने डेटलाक बागवानना दर्शन करवाने माटे रवाना थायां डे। डे। अब्ब जेम समजने गया डे आ बागवान मोक्षमार्गना दर्शक थशे, अने डे। डे। अब्ब जेम धारीने गया डे आ अवसर्पिणी काणमा, आ भरतक्षेत्रमा आ ज अन्तिम तीर्थंकर छि. डेटलाक डेवे। आत्मीयभावशी गया तो। डेटलाक बाकितावथी प्रेराने गया. (सू०५९)

केवदया देवा उत्सुपणणेन मिते मोचण अगे वसिधु। केवदया कर्हिदु-मो मापरा। चिदंहु चिदंहु अग्नेवि आगच्छामो। केवदया अगे अगे वसिठे विवार्य कुणमाणे कर्हिदु-मं अज्ज पव्वदिण पट्ठर, अगे तुहरीं चेव आगच्छंहु।

एवं गगनमन्त्रे गमणेण देवाणं सिरसि आसंनिगीए धंवकिरणपट्टणेण निज्जरा अनि देवा अरामेतेमिव सोमिदु। देवदुदेसु ठिया सारा धडसारा सभिसिज्जिदु, गळेसु य ता रयणगेवेज्जगार्ह पिव वीसिदु, देवसरीरेसु य सा सेयविदुणोव्व आसिदु। ॥८०६०॥

छाया—यस्मिन् समये च सखु देवाभ्यलितास्त्वस्मिन् समये च सखु तत्र प्रवर्तमानैः नानाविध-विष्य-मुदित-रुद्र-संनिनदैः पण्डानिनदैः तत्प्रतिध्वनिभिर्देवदेवीकलकलैश्च अलङ्कृतमाकाशमण्डलं गुञ्जितमासीत्। तस्मिन् समये कोटिशा देवविमानैर्विशालमप्याकाशं संकीर्णं जातम्।

तत्र सखु सिंहाऽऽकृतिविमानवाप्तिनो देवा गनाऽऽकृतिविमानास्त्वन देवान् अक्षययन्—“मो मो

मूल का अर्थ—‘जं समये च जं’ इत्यादि। जिस समय देव स्वाना हुए, उस समय वहाँ होने वाले विविध विषय वाद्यों के झुंझों की ध्वनि से, पटाओं की ध्वनि से, और उस ध्वनि की प्रतिध्वनि से तथा देवों और देवियों के कलकल-नाद से सम्पूर्ण आकाशमंडल गुंज उठा। उस समय कोटि-कोटि देवविमानों से विशाल आकाश भी सँकड़ा जान पड़ने लगा।

वहाँ सिंहाकार (सिंह के समान आकृति वाले) विमानके धासी देव गजाङ्क-विमानों पर आरुढ़ देवों से करने लगे-‘अजी आगे-आगे चलने वाले देवों! अपने-अपने हाथियों को जरा एक किनारे

भुलने। अध—‘जं समये च जं’ इत्यादि ने समये देवे। स्वाना वर्यां ते समये, स्वर्गदोहर्मा, विविध विष्णु वाचोना। ध्वनि यत्त एको। पटाञ्जोनी ध्वनिपट्टे, ध्वनिञ्जोना प्रतिध्वनिञ्जो वठे देव-देवीञ्जोना ‘कलकल’ना नादवठे, सपुल्ल आकाशमण्डल आलु लुलु ते समये कटोला देव-विमानोशी आकाश मण्डलं जयु लोभ। तेम अक्षयया दाम्भु भिंदाशर पाळा विमानभां खठिळा देवे। अलङ्कार नियानोना देवाने कळेवा लाज्या हे ‘दे देवे।’ तमे

अग्रेसरन्तो देवाः ! स्वकान् स्वकान् हस्तिन एकतः कुर्मन्तश्चलन्तु, अन्यथा दुर्दरो मम केसरी युष्माकं हस्तिनो हनिष्यति । एवं महिषाऽऽकृतिविमानारूढा अश्वाकृतिविमानारूढान्, गरुडारूतिविमानारूढान् भुजङ्गाकृतिविमानारूढान्, चित्रकाकृतिविमानारूढान् मेपाकृतिविमानारूढान् देवाश्च अरुथयन् ।

कियन्तो देवा उत्सुकत्वेन मित्राणि मुक्त्वाऽग्रचलन् । कियन्तोऽरुथयन्-भो भो भ्रातरः ! तिष्ठन्तु तिष्ठन्तु, वयमपि आगच्छामः । कियन्तोऽग्रे चलिषुं विवादं कुर्वाणान् अरुथयन्-यद् अद्य पर्वदिनं वर्तते, अतस्तूष्णीमेव आगच्छन्तु ।

एवं गगनमण्डले गमनेन देवानां शिरसि अतिसन्निधेः चन्द्रहिण्णतनेन निर्जरा अपि देवा जरायन्त करके चलिषु, नहीं तो हमारा पराक्रमी सिंह आपके हाथी की हत्या कर देगा !' इसी प्रकार महिषाकार-विमान-वालों ने अश्वाकार-विमानके वासियों से, गरुडाकार विमान वालों ने भुजंगाकार विमानके वासी देवों से कहा ।

कितने ही देव उत्कंठा के कारण अपने मित्रों को छोड़ कर आगे चल दिये । कोई-कोई कहने लगे—“भाइयो, ठहरो ठहरो, हम भी आ रहे हैं ।” कोई-कोई आगे चलने के लिए विवाद करने वालों से बोले—“आज उत्सव का दिन है, अतः चुपचाप चले आओ” ।

इस प्रकार आकाश-मंडल में चलने से देवों के मस्तक पर अत्यन्त निकटता से चन्द्रमा की

आगण आगण आदधा जाये। छ। पशु तमारा छ।थियोने ओक तरक्ष तारवी अभने आगण न्वाहो, नडितर अभारा पराक्रमी सिंहा तमारा छ।थीओनी छत्या करी मेसशे।” आ प्रभारे ले सना आशारवादा देवो तेमनी आगण नीकणी चुडेला अश्वाकार विमानना देवोने पराशरता, गरुडाकार विमानीओ, सर्पाकार विमानियोने येहेन इक्षता, अित्ताना आशारवाणा विमानियो, घेराना आशारवाणा विमानियो ने धमकावता ।

कुटलाक देवो उत्कंठाथी अने छोशना कारणु चेताना भित्रोने पशु छोडी आगण-आगण नीकणी नतां. छ। छ। छ। तो ओक जीअने कही पशु देता छे “लाछो। नरा थोभी नव, अमे पशु तमारी साथे आनीओ छीओ” छ। छ। छ। तो, आगण मार्ग काढवा वातो।शिया अने हवीदथाज देवोने साक्ष शब्दोमा संवणावी पशु देता छतां छे “आज उत्सवनेो दिवस छे माटे झूपथाप रही, वणतसर पडोच्यी नव, नडितर रही नशे।

आकाशम उणमां न्द्रतु स्थान न्था आवी रहेतु छे ते स्थाननी नशुक देवो प्रयाणु करी रहां छतां ।

इवाऽशामन्त । देवमर्दुसु स्मितास्तारा घटाकारा अलस्पन्त, गलेषु च ता रत्नप्रेरेयस्यानि इव शरश्यन्त, देवराश्रीषु च ता स्वेदपिन्त्र इव अभासन्त ॥सू०६०॥

टीका—‘अं समयं चे’—स्पादि । यस्मिन् समये च खलु, प्राकृतत्वाद्यत्र सप्तम्यर्थे द्वितीया, देवाभ्यः सिताः, तस्मिन् समये च खलु तपःदेवमार्गे प्रवर्तमानैः=आयमानैः नानाविधविन्यमुदितद्वन्द्वसंनितादे—नाना विधानि=अनेकप्रकाराणि यानि दिग्गानि मुदितानि=वादिद्याणि तेषां द्वन्द्वसंनितादे—द्वन्द्वैः=सामान्यद्वन्द्वैः सनि नादैः=सप्तम्यर्थे व्याप्तैः शब्दैः, तथा=प्रकटानिनादै, तत्प्रतिष्ठापितभिः=दिव्यवापणप्राप्तविश्वदैः देवदेवीकृत्यन्यैः= देवानां देवीनां कृतकृत्यशब्दैश्च अलस्पन्तम् आकाशमण्डलं गुञ्जितम्=मधुरान्यक्तसन्दृग्गताम् भासीव ।

किरलै पठ रती गी । इस कारण वे देव निर्जर (जरा-मुद्रापे से रहित) होकर भी नरावान्-(बुद्ध) जैसे दिवायो विदे । देवी के सिर पर स्थित तारे पट जैसे विल्लाई देते व । गले मं वे रत्नमय व्याभूषण सरीखे नजर आते व और देवी के खीर पर पसीने की बुँदों की तरह चमक रहे व ॥सू०६०॥

नीला का अर्थ—‘अ समयं च बं’ इत्यादि । जिस समय देव स्वाना हुए, उस समय देवी के मार्गमें होने वाले नाना प्रकार के दिव्य वार्जों के सामान्य शब्दों से तथा सम्यक् प्रकार से ज्पात हो जाने वाले शब्दोंके-निनादों से, घंटायों की ध्वनि से, दिव्य वायों एवं पंटाओं की प्रतिध्वनि से, देवी तथा

व द्रव्यनां श्वेत शिखिः, देवीना भाषा पर पडवासी ते देवे निर्दश-जेटदेव-गडपण-वज्ररता होवा छटा वश-वाता कोटहै बुद्ध नेवा देवावा छायां

देवोत्पत्ति भाषा पर आवेला ताराको बुद्ध नेवा दीयना बना ने गजभां आवेला ताराको अत्रभग अत्रभग भटा होवाने का-ले देवीना रत्नमय आभूषणो सभान दृष्टियेकर वनां वतां आ उपशत, देवीना शरीरपर आवेला ताराको परसेवाना दीपां बाले जा-ना न होवा । तेम दण्डुता, क्षण के देवा आ तापमद्योनी वयभा क्षणेन पसार धटा वतां (सू० ६०)

दीधाने अर्थ—‘अ समयं च गंछन्धादि ने शमये देवो रवाना वषा, त्वादे देवीना भाजं भां धता निबिध प्रभारना दिव्य वाळ तोना आभा-म अवा-वसी तथा सारी शीते प्रभरी वता अवा-वसी घटीना अवा-वसी दिव्य वाळो अने घटीना प्रतिध्वनिभी

मूलम्—तए णं आसणांसि कंपमाणंसि सक्के देविदे देवरया ओहिणाणेण चरमतित्थयरस्स जम्मणं जाणिऊण सिद्धाणं तित्थयरस्स य 'नमोत्थु णं' दलङ्ग, दल्लित्वा हरिणेगमेसिणं देवं पायत्ताणीयाहिन्वं जोयण-परिमंडलं सुघोसं घंटं घोसिउं आणवेइ। तए णं हरिणेगमेसिणा देवेणं सुघोसाए घटाए घोसियाए समाणीए सोहम्ममे कप्पे अणोसु वत्तोसविमाणसयसहस्सेसु अण्णाइं एगुण्णं वत्तीसघंटासयसहस्साइं जमगसमणं कणकण-रावं काउं पक्खाइं। तए णं अकम्मा आसाइयाए सपयाए दीणा विव तम्मि समयम्मि सव्वे देवा य देवीओ य दिव्वं आण्णं अणुहंथिसु।

तए णं हरिणेगमेसिदेवेणं घोसियं सक्किदस्स आणं सोच्चा सव्वे देवा हहत्तुद्वा हरिसव्वस-विसप्पमाणा-हियया समयसयविमाणमारुहिय चलिया। तथ केवइया इंदस्स आणाए, केवइया भित्तिपेरिया, केवइया देवी-पेरिया, केवइया कोउणालोयणुकंठिया, केवइया अब्भुयं दंहुं, केवइया तित्थयरजम्ममहोच्छवं दंहुं, केवइया भगवंतं दंहुं, केवइया इमो भयवं घुत्तिमगस्स दरिसगो भविस्सइ-त्ति कट्ठु, केनइया इमाए ओसप्पि-णीए अस्सि भारहवासे इमो चरिमो तित्थयरो-त्ति कट्ठु, केवइया अप्पणिज्जभावेण, केवइया भत्तिभावेण चलिणु ॥सं ५९॥

छाया—ततः खलु आसने कम्पमाने शक्रो देवेन्द्रो देवराजः अग्रधिज्ञानेन चरमतीर्थंकरस्य जन्म ज्ञात्वा सिद्धेभ्यः तीर्थंकराय च नमोत्थु ण—(नमोऽस्तु खलु) ददाति, दत्त्वा हरिणैगमेपिणं देवं पदात्यनीकाधिपतिं

मूलका अर्थ—'तए णं' इत्यादि। तत्पश्चात् आसन कोपने पर शक्र देवेन्द्र देवराज ने अग्रधिज्ञान से चरम तीर्थंकर का जन्म जान कर सिद्धों को तथा तीर्थंकर को 'नमोत्थु णं' दिया, देकर पदात्यनीकाधि-पति (पैदल सेना के सेनापति) हरिणैगमेपी देव को एक योजन घेरा वाली सुघोषा नाम की घंटा बजाने की आज्ञा दी। हरिणैगमेपी देव ने जब सुघोषा घंटा बजाई तो सौधर्म देवलोक के एक कम बत्तीस लाख

भूणोना अर्थ—'तए णं' इत्यादि. शक्रेन्द्रो पथु सिंहासन अदित थता ते (वत्थार ऊरवा दाग्था. अवधि-सानना उपयोग वडे दृष्टि के कृता, तेने तीर्थंकरने जन्म थये जळ्थये। सिद्ध लगवान अने तीर्थं करने नमोत्थु णं ने। पाठ जोली नमस्कार कर्था

त्यार पाठ पायदण सेनाना अधिपति इत्थिणैगमेपी हेवने, 'सुघोषा' नामने। घंट थाअववा लूकम कर्था आ घंट जोक जेज्जनता घेरावावाणे। अनेदो। इतो.

योजनपरिमण्डलां घुपोपां घटां घोषयितुम् आह्वययति । ततः सख हरिणैरगमयिष्या देवेन घुघोपायां घट्यायां घोषितायां मत्स्यां सीपमे कल्ये मन्त्रेषु एकोनद्वार्षिभृशविमानस्रसहस्रेषु अन्यानि एकोनानि द्वात्रिंशद्वयष्टा नवसहस्राणि युगपद् फनकनारायं कर्तुं शक्यमानि । ततः सख अकस्मादासादितया सम्पदा दीना इव तस्मिन् समये सर्वे देवाश्च देव्याश्च दिव्यमानन्दमन्त्रपूजनं ।

ततः सख हरिणैरगमेयिष्या देवेन घोषितां शक्रेन्द्रस्य आज्ञां मुक्त्वा सर्वे देवा इष्टयुष्टा हर्षवत्स-वि सर्पद-वृक्षयाः स्रस्तविमानमास्त्रं चरित्वा । स्रष्ट कियन्त इन्द्रस्य आग्रया, कियन्तो मिश्रभेरिताः, कियन्तो देवीभेरिताः, कियन्त कक्षिका-कोकनो-त्कण्डिका , कियन्तोऽज्रस्रुवं द्रवुं, कियन्तः तीर्थकरज ममहास्त्रवं द्रवुं,

विमानों में अन्यान्य एक कम कचीस साल घंटाये सनसतनानं करीं । उस समय जैसे दीनोंको अस्त्रानक ही सम्पत्ति मिल गई हो, इस प्रकार समस्त देवों और देवियों को दिव्य आनन्दका अनुभव हुआ ।

तत्पश्चात् हरिणैरगमयी देव द्वारा घोषित की हुई शक्रेन्द्रकी आज्ञा को सुनकर सब देव वृष्ट-सुष्ट हुए । सबके हृदय हर्ष से तिल गये । सब अपने-अपने विमानों पर सवार होकर चल पड़े । उनमें से कार्य कोई इन्द्र की आज्ञा से, काय-कार्य मित्रों की प्रेरणा से, कोई-कोई अपनी देवी के अनुरोध से, काय-कोई कौतुक देखने की उत्कण्ठा से, कोई कोई अद्भुत दृश्य देखने को, कोई-कोई तीर्थकर का जन्म

घट वायवतानी आद्ये सौभ्रम देवदोहना ज्ये ज्योष्ठ जतीस द्वात्र विमानोना ज्ये ज्योष्ठ जतीस द्वात्र घटाज्योतो प्रवृषज्यट कथा द्वात्रेये । जेभ गरीज भाकुष्टे ने, जाग्रदिभक्त सधृत्त भगी आश ने जेवे आनन इ न्यायी रहे, तेवे । जे अनुसन्धे ।

हरिदैवमित्री देव द्वात्र, घोषित कयेहो शक्रेन्द्रनी आशाने सजिणी सर्व देवे, युष्ट-युष्टाण यथा । जेभ उद्येनभट यथा । इहेक ज्येष्ठ, योतयोताना विमान पर जेसी, आहतां यथा ।

होष्ठ देवे । उन्द्रनी आज्ञा यथाशी रवाना यथा होष्ठ देवे । मित्रेनी प्रेरणाको प्रशाना होष्ठ योतानी देवीना आग्रहने बाधि जेबाधा होष्ठ कौतुक देवदानी कृत्तहासी आकरोमा होष्ठ आक्षेयकारक घटनासी दोशना होष्ठ वीर्यकरने जन्म भवेत्तय जेबाधी आननाको होष्ठ होष्ठ वायवतानी इष्ट न इष्टवाना ज्जिबाधी यत्त उपदम्भ,

क्रियन्तो भगवन्तं द्रष्टुं, क्रियन्तः 'अयं भगवान् मुक्तिमार्गस्य दर्शको भविष्यति' इति कृत्वा, क्रियन्तः—'अस्या-
मवसर्पिण्याम् अस्मिन् भारतवर्षे अयं चरमस्तीर्थहरः' इति कृत्वा, क्रियन्त आत्मीयभावेन, क्रियन्तो भक्ति-
भावनावलम्बन ॥सू०५९॥

टीका—'तए गं' इत्यादि। ततः खलु आसने कम्पमाने सति शक्रः=तदाख्यो देवेन्द्रः=सुरपतिः,
देवराजः=देवनायकः अवधिज्ञानेन=अवधिज्ञानोपयोगेन चरमतीर्थकारस्य=अन्तिमचतुर्विंशतितमतीर्थकरस्य जन्म
ज्ञात्वा सिद्धेभ्यः तीर्थकराय च 'नमोस्तु गं' ददाति, दत्त्वा पदाल्यनीकाधिपति=पदचारिसैन्यनायकं हरि-
जैगमेर्विणं देवं योजनपरिमण्डलां सुघोषां=सुन्दरघोषवतीत्यन्वर्थसंज्ञां घण्टां घोषयितुं=वादयितुम्, आज्ञा-
पयति=आज्ञां ददाति।

महोत्सव देखने को, कोई भगवान् का दर्शन करने के लिए, कोई यह समझ कर कि यह भगवान् मोक्ष-
मार्ग के दर्शक होंगे, कोई यह जानकर कि इस अवसर्पिणी काल में, इस भरत क्षेत्र में यही अंतिम तीर्थ-
कर है, कोई आत्मीयभाव से और कोई भक्तिभाव से खाना हुए ॥सू०५९॥

टीका का अर्थ—'तए गं' इत्यादि। तदनन्तर आसन काँपने पर शक्र नामक देवाधिपति देवनायक
ने अवधिज्ञान द्वारा अन्तिम चौबीसवें तीर्थकर का जन्म जान कर सिद्ध भगवान् को तथा तीर्थकर को
'नमोस्तु गं' दिया, अर्थात् 'नमोस्तु गं' का पाठ पढ़ कर नमस्कार किया। फिर पैदल सेना के नायक हरि-
जमेधी देव को एक योजन के घेरे वाली सुघोषा-मनोहरध्वनिवाली इस यथानाम तथागुण वाली घंटा को
बजाने की आज्ञा दी।

इहाँ आ भगवान् मोक्षमार्गना दशकं अथे अम ञ्जुने रवाना थया. आ अवसर्पिणी क्षाणमां, अहिं भरतक्षेत्रे,
भगवान् अ तिम तीर्थ'कर छे अम समल्ल डोछ देवे, प्रयाणु क्यु"; इहाँ भक्तिभावथो जे आछ आदी नीकज्यां.
अम विविध दृष्टिकोणु राभीने सौधभ' देवदोडना देवोको, भरतण्डमा आववा रवानगी दीधी (सू०५९)
टीकाते। अर्थ—'तए गं' इत्यादि. त्याख्याह आसन ध्रुजता थके नामना देवाधिपति देवनायके अवधिज्ञानद्वारा अन्तिम
चौबीसमा तीर्थ'करने जन्म थयानु ञ्जुने सिद्ध भगवानने तथा तीर्थ'करने "नमोस्तु गं" दीछु, ओटवे डे "नमोस्तु गं"
ने. पाठ ञ्जुने नमस्कार क्यो पछी पाथदण सेनाना नाथक हरिजैगमेधी देवने ओछ योजनना घेरावावाणो
सुघोषा-मनोहर अवाज वाणे, यथानाम तथा. गुणवाणो घ'ट---वगाडवाली-ध्वनिसी-ध्वनिसी. अर्थात् मूर्ताह

ततः=तदनन्तरं तत्तु हरिर्लैगयेषिणा देवेन सुयोपाया पट्टाणां घोषितायो=वादिताया सत्यां सौषर्मे कल्पे अन्येषु एकोनदानभिधियमानश्वसक्षेपु अन्यानि एकोनानि=एकन्यूनानि द्वात्रिंशद्व्यष्टाश्वतसशस्त्राणि=अष्टानां द्वात्रिंशत्सन्नाणि युगपत्=एककालवच्छेदेन 'जयगमय' इति युगपदर्थे देवीयशब्दाः, कनकनारवं=कनकनेति शब्दं कर्तुं प्रवृत्तानि=उद्यतानि। ततः=तदनन्तरं तत्तु अकस्मात्=तदहसा आसादितया=प्रापया सम्प्रदा दीनाः=रुद्धा इव सर्वे वेसा देव्यय दिव्ययुग्म=भद्रद्वयम् आनन्दम्=पशुभन्मथस्यजनित प्रमोदय् अन्यमवतः=यन्नुभूतवन्त् । ततः तत्तु हरिर्लैगयेषिदेवेन घोषिता=सुचितां शक्रेन्द्रस्य आह्वाय्=आज्ञावचने शुक्ता सर्वे देवा इष्ट-सुष्टा=भक्तिमयसक्ता हर्षवत्-वितर्पवत्-शुद्धाः=इष्टोत्कृष्टमानसाः स्वस्त्विमानय आरुह्य=आभित्य चक्रित्वाः=मस्थिताः। तत्तु=चक्रितेषु देवेषु मरये कियन्तो देवा इन्द्रस्य आह्वाया अवलम्बिति परेभान्यय । एवमग्रेऽपि। कियन्त्वथ

तत्तत्तत्तत्तु हरिर्लैगयेषी देव के सुयोपा पट्टा बजाने पर सौषर्मे कल्प में एक क्रम वर्चसि लाल विमानों में, एक क्रम वर्चसि लाल पट्टायें एक ही साथ घनने लगों।

उस समय समस्त देवों और देवियों को प्रभु के जन्म का समाचार सुनकर ऐसे अद्भुत आनन्द का अनुभव हुआ, जैसे दरिद्र को अचानक ही सम्पदा की प्राप्ति स होता है।

तत्पश्चात् हरिर्लैगयेषी देव द्वारा उचित शक्रेन्द्र की आज्ञा सुनकर सभी देव इष्ट और सुष्ट भयात् कल्पन्त प्रसन्न हुए। हर्ष से उनका हृदय फूल उठा। सब अपने-अपने विमानों पर चढ़ कर चले। उन देवों में कितनेक इन्द्र की आज्ञा से चले, कितनेक मित्रों की प्रेरणा से चले, कितनेक अपनी

हरिर्लैगयेषी देवे सुष्टोपा पट्टा बजाने पर सौषर्मे कल्प में एक क्रम वर्चसि लाल विमानों में, एक क्रम वर्चसि लाल पट्टायें एक ही साथ घनने लगों।

उस समय समस्त देवों और देवियों को प्रभु के जन्म का समाचार सुनकर ऐसे अद्भुत आनन्द का अनुभव हुआ, जैसे दरिद्र को अचानक ही सम्पदा की प्राप्ति स होता है। तत्पश्चात् हरिर्लैगयेषी देव द्वारा उचित शक्रेन्द्र की आज्ञा सुनकर सभी देव इष्ट और सुष्ट भयात् कल्पन्त प्रसन्न हुए। हर्ष से उनका हृदय फूल उठा। सब अपने-अपने विमानों पर चढ़ कर चले। उन देवों में कितनेक इन्द्र की आज्ञा से चले, कितनेक मित्रों की प्रेरणा से चले, कितनेक अपनी

तस्मिन् समये कोटिशो देवविमानैः विशालमपि आकाश संकीर्ण=देवगणभृत्त्वात् सूच्या अपि प्रवेशरन्त्यं जातम्। तत्र=विमानचारिणु देवेषु खलु सिंहाऽऽकृतिविमानवासिनः=सिंहाऽऽकारविमानस्था देवा गजाऽऽकृति- विमानारूढान्=हस्याकारविमानासीनान् देवान् अकथयन्=उक्तवन्तः, किम्? इत्याह- भो भो अग्रे सरन्तः= चलन्तो देवाः! स्वकान् स्वकान्=निजान् निजान् हस्तिन एकतः=एकपाश्र्वे कुर्वन्तः चलन्तु=गच्छन्तु, अन्यथा=एकतः करणाभावे दुर्द्धरः=वली मम केसरी=सिंहः शुष्माकं हस्तिनो हनिष्यति। एवम्=अनेन प्रकारेण महिषाऽऽकृति- विमानाऽऽरूढाः=महिषाऽऽकारविमानाऽसीना देवा अश्वाकृतिविमानाऽऽरूढान् देवान्, गरुडाऽऽकृतिविमानाऽऽरू- ढाः=गरुडाकारविमानाऽसीना देवा भुजङ्गाऽऽकृतिविमानाऽऽरूढान् देवान्, चित्रकाऽऽकृतिविमानाऽऽरूढाः=चित्रको=

देवियों के कलकल नाद से, समस्त आकाश गूँजने लगा-मधुर एवं अस्फुट शब्दों से व्याप्त हो गया। उस समय करोड़ों विमानों से विस्तीर्ण आकाश भी, देवसमूह से भर जाने के कारण संकीर्ण हो गया-सुई भी न समा सके, इस प्रकार का हो गया।

उन विमानचारी देवों में जो सिंह की आकृति वाले विमानों में आरूढ़ थे, उन्होंने हाथी के आकार के विमानों पर चढ़े देवों से कहा-‘अरे आगे २ चलने वाले देवो! अपने-अपने हाथियों को एक वगल में करके चलो, अन्यथा-एक वगल में न करने पर हमारा वली सिंह तुम्हारे हाथियों का हनन कर देगा। इसी प्रकार महिषाकार (भैंसे के आकार वाले) विमान में बैठे देवोंने अश्वाकृतिवाले विमान के वासियों से कहा। गरुडाकार विमान पर आरूढ़ देवों ने भुजगाकृति के विमान वालों से कहा।

देवो तथा देवीयोनो कलकलनादथी आप्थुं आकाश शुंलु उड्युं, मधुर अने अस्फुट शब्दोथी ध्वाद्य गयुं। ते समये करोडो विमानोथी विस्तीर्णुं आकाश यषु देव-समूहथी बराद्य ब्रवाने डारणु साङ्कुं थद्य गयुं-ओङ सोय यषु समाद्य न शङ्के ओषु थद्य गयुं। ते विमानचारी देवोभां जेओ सिङ्हुनी आकृतिवाणां विमानोभां जेठेडा इता तेमणु छाथीना आकारना विमानोभा जेठेडा देवोने कहुं-“अरे आगण यादनारा देवो! पोत-पोताना छाथीयोने ओङ आप्णु करीने यादो, नडि तो-ओङ आप्णु न करवाथी अमार भणवान सिङ्हु तमार छाथीयोनी इत्या करी नाथसे. ओङ प्रमाणु मडिधाकार (बेंसना आकारवाणां) विमानभां जेठेडा देवोओ अश्वाकृतिवाणां विमानभा रूहेडाओने कहुं. गरुडाकार विमानभां जेठेडा देवोओ भुजङ्गाकृतिना विमानवाणोने कहुं. चित्ताना आकारना विमानभां जेओ।

वन्धयशुजाति । तदाकृति यद् विमान सदास्था देवाः सैवाऽऽकृतिविमानाऽऽस्थान् देवांश्च अकृपयन्=कृपितवन्त ।
 कृपयन्तो देवाः=उत्पुङ्गवत्वेन=सौन्दर्यवत्तया मित्राणि द्रुसवा=स्वयम्वा अग्रे अचलन्, कृपयन्तो देवा अकृप
 यन्=‘मा आभर’ । तिष्ठन्तु तिष्ठन्तु, वयमपि आगाच्छाम=गुह्याभिः सह गन्तु य सङ्घातया वयमपि विशुला
 नन्दन मोत्सवविहसया आयाय, कृपयन्तो देवा आहमभिमिकया अग्रेऽग्रे चस्मिदु=गान्तुं विवाहं कुर्वाणान् अकृप
 यन्=कृपितवन्तो, यद् अथ पर्वदिन वर्तते, अतो सवन्त तूष्णीं=समौनम् आगच्छन्तु ।

अथ देवानामागमनसमयस्वरूपमाह—

एवं=पूर्वोक्तप्रकारेण गगनप्रवृत्ते=आकाशप्रदेशे गमनेन देवानां शिरसि=मस्तके अतिसन्निवित -
 भरणवसनीयात् चन्द्रकिरणपतेनेन=चन्द्रकिरणगमेन निर्जरा=दृढत्वरातिता अपि भवेतवर्षाकरपातजनितवाक्कवय

चीवाके आकार के विमान पर जो आरुढ़ य, उन्होंने येप (मझे) के आकार के विमान वाकों स कहा ।

कितने ही देव उत्पुङ्गवा के कारण मिर्चों को छोड़ कर आगेर वस दिये । कितने ही कहने
 लगे-ये माइयो ! ठरों ठरता, हम मी आते हैं । हम मी विशुलानन्दन का जन्मोत्सव देखने की इच्छा
 स तुम्हार साथी बन कर साथ २ पकते हैं । कितने ही देवों ने, ‘मैं आगे वट्टे, मैं आगे चट्टे’ इस प्रकार
 ह्द का विवाद करने बाड़े देवों ने कहा—आम उत्सव का दिन है, अतः आप लोग खुशचाप आइए ।

अब देवों के आगमन के समय का स्वरूप करते हैं—

पूर्वोक्त प्रकार से आकाश में गमन करने से देवों के मस्तक पर भस्पन्त समीप से चन्द्रमा की

छेदेडा कता तंभवे येप (येथे)मा आकारना विमानवाजाकोने ठहल, डेटबाय देवा उत्पुङ्गवाने क्षास्त्रे भित्रोने भूहीने
 आगमन=आती नीलवन्ध डेटबाय ठहेवा लाआ—“छे बाउको ! कश दोवो, दोवो, अग्रे यण् आनीजे छीजे अग्रे
 पण् निशदान इनेने अन्धेरासव कोवानी छिअशी तभारा साथीबाए जनीने साथे आनीये छीजे, डेटबाय देवोको
 ‘हु आगमन आसु हु आगमन बासु’ आम ठहीने विवाह करेनाश देवोने ठसु ‘आज उत्सवनेो दिवस छे, भाए तसे
 दोहो धान्तिपुनठ आये”

देवे देवोना आगमनना सुभसना स्वरूपने ठहे छे—पूर्वोक्त प्रकारे देवा आकाशमा
 जमन एही पछा कता तभारे तेभन्ना भस्पन्ते बाइभानी पत्ती नल्लठ डेटबायो अन्धेराभना प्रकाशित कियेले तेभन

धवलमिना पलितायमानतया जरावन्तः=वृद्धा इव अशोभन्तः=शोभितवन्तः; तथा-अतिसन्निधितः देवसूर्यसु=देव-
शिरस्तु स्थिताः तारा घटाऽऽकारा अलक्ष्यन्त। गलेषु=देवानां कण्ठेषु च ताः=ताराः रत्नग्रेव्यकानि=रत्नमिवरचित-
कण्ठभूषणानि इव अदीप्यन्तः=शोभितवन्तः। तथा-ता देवशरीरेषु च स्वेदविन्दवः=मार्गचलनजन्यश्रमजलरूपा
इव अभासन्तः=शोभितवन्तः ॥ सू० ६०॥

मूलम्—तए ण सक्के देविदे देवराया पालगजाणविमाणमारुहिय दिव्वाए देविड्ढीए दिव्वाए ठेवजुडंए
दिव्वेणं देवाणुभावेणं मयसयविमाणारूढेहिं सयलपरिचारेहि य परिबुडो नंदीसरदीवे दाहिणपुरत्थिमे रउगर-
पवए तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुडं दिव्वं देवाणुभावं सयसयविमाणारूढे सयलपरिचारे य पडिसाहरिय
जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणनगरे जेणेव जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तित्थयरजम्मण-
भवणं तेण दिव्वेण जाणविमाणेण तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेड, करित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-
भवणस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए चउरंगुलमसपत्ते धरणिगले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवेड, ठवित्ता जेणेव
भयवं तित्थयर तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेड, करित्ता

श्वेत किरणें गिरने से निर्जर (जरा-रहित) भी देव जरावान्-बूढ़े के समान शोभायमान हुए, क्यों कि
श्वेतवर्ण की चन्द्रमा की किरणों के गिरने से उनका मस्तक चमकने लगा था; जिससे ऐसा प्रतीत
होता था कि उनके बाल धौले हो गये हैं। बहुत पास में देवों के सिर पर स्थित तारे मस्तक पर घट
की तरह प्रतीत होते थे। वही तारे देवों के कंठ में रत्नमय आभूषण सरीखे शोभित होते थे और वही
तारे देवों के शरीर पर मार्ग चलने के परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूंदों के समान प्रतीत होते थे ॥मू० ६०॥

पर अक्षय्यकित पण्डे प्रकाशित थता होवाने झरण्डे तेमना भस्तडोनां वाण, आत्यंत श्वेत आने तेलेभय दागता हुता,
तेथी जेनारने ज्येभ दागतुं डे बुवान देवो पण्डे वृद्ध भनी गयां छे। अक्षय्यकित ताराओनां भूभभाओ। पण्डे तेमनां
भाथा पर आवी रहडां छेड, भाथा उपर भूडेदा धडाओ। नेवां दागता हुता, गणापर आवेदा ताराओ। भातीना
झारोनी गरज सारता हुता। परसेवा पर सूथने प्रकाश पडवाथी नेम परसेवाना भिडुओ। यणडाट भारे छे तेम
नाना ताराओ। देवानां शरीर पर भिडुरूये यणडाट भारतां हुतां। (सू० ६०)

भानोए च व पयामं करे, करिषा करय्यपरिग्राहियं सिरसावच मयथए अजन्निं कट्टु एव वयासी-नमोरपु णं
 त त्पमकट्टिच्छपरिए' जगणइइदीविए! सवजजगमगलस सव-नीष-वक्खुपुयस्स मुणस्स सव-जगनीव-वच्छ
 सस्स त्रियकारागममा-दसिय-वागिदिह-विह-ण्णस्स जिणस्स नाथास्स बुद्धस्स बोधगस्स सन्नजोग
 नादस्स निम्ममस्स पवर-भुम-सपु-मवस्स जाइए लवियस्स जं सि भोगुणमस्स जणणी, पण्णाडसि ठ, कयत्थासि।
 अरथं दवाणुणिए! मगक्खो तित्थयरस्स जम्मणमइयि कस्सिमाभि, तथा तुमहिं णो मीइयब्बं-सि कट्टु
 आसावमिं निरं बुद्ध, इल्लिषा णं व सक्खे विउव्वा सत्य एगे सक्खे मयव तित्थपरं कोमळेण करयस्सपुडेणं
 गिणइ १, एगे सक्खे पिट्ठमा पबन्निमा-जिय-पराब्बवं आपवच घरेइ २, इवे सक्खे उमभो पासि सिय-
 वामक्खेवं करो'ते ४, एगे सक्खे वज्जणणी पुदंरे भगवमो तित्थपरस्स रत्तह सुरओ पक्खए ॥मृ०६१॥

ज्ञाना-रत खलु शक्रो देवन्द्रा चैवराज पाळक्यानिदिमानमास्म दिव्यया दवमद्धया दिव्यया दव-
 पुत्या दिव्येन दवाणुमावन स्वस्वविमानास्ते सरूपपरिवारैश्च परिहृतो नन्दीश्वरीये दक्षिणपूर्वे रतिकारपर्वत
 तां दिव्यां देवद्विं दिव्यां दवपुतिं दिव्यं दवाणुमात्र स्वस्विमानाभ्यान् सकल्पस्त्विचाराश्च प्रतिसंगुत्य यत्रैव
 भगवत्पर्यैकारस्य जन्मनगरं यत्रैव नममवन तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तोयकरजममवनं तेन दिव्येन

मूक का अर्थ—'तए णं' इत्यादि। तत्पञ्चाद देवेन्द्र देवराज शक्र, पाकरूपान विमान पर आरू-
 पोकर दिव्य देवक्रुद्धि, दिव्य देवपुति और दिव्य दवप्रमात्र के साथ अपने-अपने विमानों पर आरूढ
 सकल परिवार से यिरे हुए, नन्दीश्वर द्वीप में, आग्नेय कोण में, रतिकार पर्वत पर उस दिव्य देवक्रुद्धि,
 दिव्य देवपुति दिव्य देवप्रमात्र तथा अपने-अपने विमान पर आरूढ सकल परिवार को स्थापित करके,
 जहाँ भगवान् पर्यैकार का जन्मनगर था और जहाँ जन्म-मवन था, वहीं आय। आकर तीर्थंकर के जन्म

भूकेतो आर्ष—'तए णं' इत्यादि। तत्पञ्चाद देवेन्द्र देवराज शक्र पाळक्यानिदिमानमास्म दिव्यया दवमद्धया दिव्यया दव-
 पुत्या दिव्येन दवाणुमावन स्वस्वविमानास्ते सरूपपरिवारैश्च परिहृतो नन्दीश्वरीये दक्षिणपूर्वे रतिकारपर्वत
 तां दिव्यां देवद्विं दिव्यां दवपुतिं दिव्यं दवाणुमात्र स्वस्विमानाभ्यान् सकल्पस्त्विचाराश्च प्रतिसंगुत्य यत्रैव
 भगवत्पर्यैकारस्य जन्मनगरं यत्रैव नममवन तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तोयकरजममवनं तेन दिव्येन

भूकेतो आर्ष—'तए णं' इत्यादि। तत्पञ्चाद देवेन्द्र देवराज शक्र पाळक्यानिदिमानमास्म दिव्यया दवमद्धया दिव्यया दव-
 पुत्या दिव्येन दवाणुमावन स्वस्वविमानास्ते सरूपपरिवारैश्च परिहृतो नन्दीश्वरीये दक्षिणपूर्वे रतिकारपर्वत
 तां दिव्यां देवद्विं दिव्यां दवपुतिं दिव्यं दवाणुमात्र स्वस्विमानाभ्यान् सकल्पस्त्विचाराश्च प्रतिसंगुत्य यत्रैव
 भगवत्पर्यैकारस्य जन्मनगरं यत्रैव नममवन तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तोयकरजममवनं तेन दिव्येन

यानविमानेन त्रिकुत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा भगवत्तत्तीर्थकरस्य जन्मभवनस्य उत्तरपूर्व दिग्भागे चतुरङ्गलमसम्प्राप्ते धरणिर्तले तत् दिव्यं यानविमानं स्थापयति, स्थापयित्वा यत्रैव भगवोस्तीर्थकरः तीर्थकरमाता च तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य त्रिकुत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा आलोक्ये एव प्रणामं करोति, कृत्वा कर्त-
लपरिगृहीतं शिरस्याऽऽवर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत-नमोऽस्तु खलु ते रत्नकुक्षिधारिके ! जगत्प्रदीप-
दीपिके ! सर्वजन्मङ्गलस्य सर्वजीवचक्षुर्भूतस्य सर्व-जगज्जीव-वत्सलस्य हितकारक-मार्ग-देगिक-विशुभाग्रुद्धि-प्रमो-
र्जितस्य ज्ञानिनो नायकस्य बुद्धस्य बोधकस्य सर्वलोकनाथस्य निर्ममस्य प्रवर-कुल-तमुद्भवस्य जात्या क्षत्रियस्य

भवन की उस दिव्य यानविमान से तीनवार दक्षिण से आरंभ करके प्रदक्षिणा की, और भगवान् तीर्थकर के जन्मभवन के उत्तरपूर्व-ईशान कोण-में पृथ्वीसे चार अंगुल की ऊँचाई पर अपने यान-विमान को उहरा दिया। उहरा कर जहाँ भगवान् तीर्थकर थे और तीर्थकर की माता थी, वहाँ आये। आकर तीन बार आदक्षिणप्रदक्षिण किया और दृष्टि पड़ते ही प्रणाम किया। प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर आवर्त एवं अंजलि करके इस प्रकार बोले-हे उदर में रत्न को धारण करने वाली ! हे जगत् के प्रदीप की जननी ! तुम्हें नमस्कार हो। क्यों कि तुम समस्त जगत् के हितकारी, प्राणीमात्र के लिए नेत्र के समान, अखिल संसारी जीवों के वत्सल, मोक्षमार्ग का प्रकाश करने वाले, विशाल वचन-वृद्धि के स्वामी, जिन, ज्ञानी, नायक, बुद्ध, बोधक, सर्वलोक के नाथ, अनासक्त, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, जाति से क्षत्रिय और लोका

पोताना दिव्ययान-विमानधी तीर्थंकरना जन्मभवनना ध्यानक्रोडिषुभां पृथ्वीथी चार आंगणनी उन्थाईओ पोतानुं विमान स्थापित कथुं।

आ काथं पतावीने, ज्यां तीर्थंकर लगवान अने तेनी माता हुतां त्यां आवी त्रयु वार प्रदक्षिणा करी, ने तेमनी दृष्टि पडे तेम, त्रयु वथत प्रणाम कयां. प्रणाम भाद भस्तकपर अंजली करी जोदया 'हे उदरमां रत्न धारण करवावाणी, हे जगतना दीपकने प्रगट करवावाणी, तमने नमस्कार कइं धुं; हेमहे समस्त जगतना हित करवावाणा, आर्षुभावनना नेत्र समान, अणिल संसारना लुवोने वत्सलस्वरूप, मोक्षमार्गना प्रकाशक, विशाल-वचनइपी वृद्धिना स्वामी, लन, ज्ञानी, नायक, बुद्ध, जोधक, सर्वलोकना नाथ, अनासक्त, श्रेष्ठकुलमा उत्पन्न, सातिथी,

करोति, कृत्वा भगवत्स्तीर्थकरस्य अन्यमदनस्य उषरगौरस्त्ये = उषरगौरान्वराळे दिग्भागे=ईशानकोणे
 चतुरस्र्यात्म=मन्मथुक्षिप्रवृत्तयश्च भवत्माते=व्यासृष्टे परणितछे=भूतछे, तच्च दिव्य यानविमानं स्यापयित्वा
 यौव भगवत्स्तीर्थकरस्तीर्थकरमाता च सौख्य उपगम्यच्छदि, उपगम्य भिक्षुः भगवत्सिगमदक्षिणं
 करोति, कृत्वा आलोके एव=दर्शनभागे सति प्रणाम=वन्दनं करोति, कृत्वा कारतलपरिगृहीतं=
 इत्थतलपरिगृह्य शिरस्याऽऽवर्चं मस्तकेऽङ्घ्रिं कृत्वा वैमयवाहीव=रे रत्नकुसिधारिके !-रत्न=मगधद्वयं कुसौ
 परतीति तस्संपुटौ, सवा=रे भगवत्पदीपदीपिके=भगवत्पदीपः=जगत्प्रकाशको भगवान्-तस्य दीपिके=
 अन्यदत्तेन प्रकाशिते ! ते=दुग्धं जम्बो=जम्बुद्वीपः अस्तु=मवतु, त्वं यत्=यस्माद् हेतोः सर्वजगन्मङ्गलस्य=सर्वेषां
 जगतां=जगतां लोकानां मङ्गलस्या=मङ्गलस्वरूपस्य, पुनः सर्वजीवचक्षुर्धृतस्य=सकलजीवनेमस्तत्वरूपस्य=चक्षुषो

वस्त्रिणाप्य से घुमना आरंभ करके वस्त्रिणाप्य में ही जाकर उभरे। इस प्रकार प्रदक्षिणा फरके भगवान्
 तीर्थकर के जम्बुद्वीप में घुमिष्ठ से चार श्रृंग कपर उस यानविमान को उभराया।
 उभरा कर नौ भगवान् तीर्थकर और तीर्थकर की माता थीं, वही आये। आकर तीन बार प्रदक्षिणा की
 और दर्शन होते ही प्रणाम किया। प्रणाम करके दोनों हाथों को ओढ़ कर सिर पर आवर्च और अंजलि
 करके इस प्रकार कहा—

हे रत्नकुसिधारिके ! अर्थात् दूत में भगवान्-रूपी रत्न को धारण करने वाली ! हे भगवत्-
 पदीपदीपिके ! अर्थात् जगत् के प्रकाशक भगवान् को अन्य देकर प्रकाश में करने वाली ! तुम्हें नमस्कार
 हो, क्यों कि तुम तीनों लोकों के छिपे मङ्गलस्वरूप, सब जीनों के नेत्र के समान, अर्थात्-जैसे नेत्र घटपट आदि

अन्भगवन्ता ईशान देवधर्मा भूमिगतयो भार आंजन छिन्ने ते विमाने उक्षु शशु चो न्या भगवान् तीर्थकर
 जने तेभन्ना भावा इतां त्वां ते आन्धा आनीने यक्षु वार प्रक्षिप्वा हरी जने इशानं इतां न प्रक्षाम भवो,
 प्रक्षाम हरीने जने दक्षिणे गस्तके पर आवत जने अन्ध्रि हरीने आ प्रक्षिप्वा हरीने—

“हे रत्नकुसिधारिके ! जोहो के दूधर्मा भगवान् रूपी रत्नने धारण करवाणी ! हे भगवत्पदीपदीपिके !
 जोहो हे भगवन्ता प्रकाशक भगवान् जने अन्धा आनीने प्रकाशर्मा आववाणी ! तभने नमस्कार हो, धारण के तमे यक्षे
 दक्षिणे भाटे भजणस्वरूप. लक्षणा लोचनानां नेत्र भगवान्. नेत्र नेत्र घट-पट आदिना प्रकाशक छे जेअ हीते जिनहेन

यथा घटपटादिप्रकाशकत्वं तथा जिनस्य सदसद्वस्तुप्रकाशकत्वाद् नेत्ररूपत्वम्, तथा-लवजगज्जीवत्सत्त्वस्य=सकलबुधवर्तिप्राणिनां पुत्रवत् परिपालकस्य, तथा-हितकारक-मार्ग-देशिक-विशु-यादृद्धिप्रभोः-हितकारको मार्गो=मोक्षमार्गः-सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र्यरूपः, तस्य देशिका=उपदेशिका, तथा-विभ्वी=सर्वभाषस्वरूपेण परिणमनात् सर्वव्यापिनी-सकलश्रोतृजनहृदयसंक्रान्ततात्पर्यायां, एवंविधा या चादृद्धिः=मावसंपत्. तस्याः प्रभुः=स्वामी तस्य, सातिशयवचनलब्धिकस्येत्यर्थः; 'विशु' शब्दस्य मूले परनिपातः प्राकृतत्वात्; तथा जिनस्य=रागद्वेषजयिनः, ज्ञानिनः=सातिगयज्ञानवतः, नायकस्य=धर्मवरचक्रवर्त्तिनः, बुद्धस्य=ज्ञातृत्वस्य, बोधकस्य=भविजनबोधदायकस्य, तथा-सर्वलोकनाथस्य=सर्वलोकस्वामिनः-बोधिवीजाऽऽधान-संरक्षणाभ्यां योगक्षेमकारित्वात्, तथा-निर्मसस्य=ममतारहितस्य, तथा-प्रवरकुलसमुद्भवस्य-प्रवरं=श्रेष्ठं यत् कुलं=सिद्धार्थश्रितियवंशः, तत्र समुद्भवस्य=उत्पन्नस्य, जात्या क्षत्रियस्य=क्षत्रियवर्णस्य, पुनः लोकोत्तमस्य-ओकेपु=सर्वजनेषु मध्ये उत्तमस्य=श्रेष्ठस्य जनन्यसि, तत्=तस्माद्धेतोः धन्याऽसि, तथा-कृतार्थाऽसि=कृतकृत्याऽसि, इत्येव भगवन्मातरं त्रिशला

का प्रकाशक है, उसी प्रकार जिनदेव सत्-असत् वस्तु के प्रकाशक हैं, अतएव चक्षु के सदृश, समस्त-संसारवर्त्ती जीवों का पुत्र के समान पालन करने वाले, सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य-रूप हितकारक मोक्षमार्ग का प्रकाश करने वाली तथा समस्त भाषाओं के रूप में परिणत होनेवाली होने से सर्वव्यापिनी वचन-लब्धि के स्वामी, अर्थात् अतिशय-युक्त वचन-ऋद्धि के धारक, राग-द्वेष के विजेता, सातिगय ज्ञान के धारक, धर्मवरचक्रवर्त्ती, तत्त्वों के ज्ञाता, भव्य जनों को बोध देने वाले, बोधिवीज (सम्यक्चक्र) को देने और रक्षण करने वाले, अतः योगक्षेमकर होने से समस्त लोक के नाथ, ममत्त्व से रहित, सिद्धार्थ क्षत्रिय के श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने वाले, जाति (वर्ण) से क्षत्रिय और समस्त जनों में उत्तम (भगवान्) की माता हो! इस कारण तुम घन्य हो, कृतार्थ हो!

सत्-असत् वस्तुना प्रकाशक छे, तेशी यक्षुना जेवां, सभस्त संसारवर्ती छवेणुं पुत्रनी जेम पालन करनार, सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य रूप हितकारकी मोक्षमार्गने प्रकाश करनारी तथा सभस्त भाषाओना इये परिणुत थनारी होवाथी सर्वव्यापी वचनलब्धिना रक्षत्री, ओटखे छे अतिशय युक्त वचन-लब्धिना धारक, रागद्वेषना विजेता, अतिशय ज्ञानना धारक, धर्मवरचक्रवर्ती, तत्त्वोना ज्ञाणभार, भव्य बनेने ओध हेनार. बोधिबीज (सम्यक्त्व) ना हेनार अने रक्षक, क्षेमकर होवाथी सभस्त होकना नाथ, भगवथी रहित, सिद्धार्थ क्षत्रियना श्रेष्ठ कुलमां उत्पन्न नार, जाति (वर्ण) थी क्षत्रिय, अने सभस्त युरोभा उत्तम (भगवान्) नी माता छे तेथी घन्य छे, कृतार्थ छे.”

चन्द्रिता सुता च स्वामिमायामिन्द्रं प्रकटयति—“अर्णो” इत्यादिना, अहं लच्छ देवानुमिये! भगवत्सत्तीयक-
 रस्य जन्मपरिमानं=ज मोत्सवं करिष्यामि, तव=तस्मात् देतोः युष्माभिः नो भेतव्यम्=भयं न कर्तव्यम्, इति
 कुता=इति उक्त्वा भवत्पापनी=स्वपनकारणीं निद्रां ददाति, दद्या पञ्चपञ्चसस्यकानि शकस्यापि विक्रोति=
 भैक्षियदत्तयादायति, सप्त=षोषु पञ्चसु शक्येषु मध्ये एकः शकः=न्द्रो भगवन् तीर्थकरं कोमलेन=मृदुना
 करसमस्तुटेन=स्वतलस्तरसस्युटेन दृढाग्नि=चारयति १, तथा एकः=अस्यो द्वितीयः शकः प्रुष्टः=प्रुष्टमयेनो
 पबन्मिजितपरास्मयं=पबन्मिजना=ज्वेतत्वेन मितं परास्मयं=सप्तसो येन तादृशम् आतपत्र=छत्र धरति २, द्रौ शकौ
 उभयो=भगवतो द्वयोर्वाग्दक्षिणयो पार्श्वयो चामरोत्थेयं=चामरोद्भिजनं कुस्त ४, एकः=अस्य अत्र पुरन्दरः
 शकः दक्षपाणि=वज्रहस्तः सन् भगवत्सत्तीयकरस्य रसायं पुरतः=भगवतोऽग्रे मवर्तते=मवलन्ति ॥सू०६१॥

इस प्रकार भगवान् की माता जिसका को बन्दना करके तथा स्तुति करके इन्द्र अपने अन्तिम
 अभिप्राय को प्रकट करते हैं—‘हे देवानुमिय! मैं भगवान् तीर्थकर का जन्ममहात्सव कर्सेगा, अत आप
 मय न करें।

इस प्रकार वह कर इन्द्रे उन्हें अवत्पापनी निद्रा में डूना दिया। फिर पाँच शक क स्त्रों की
 चिक्रिया की, अर्थात् वैक्षिप्य शक्ति से अपने पाँच रूप बनाय। उन पाच इन्द्रों में स एक ने भगवान् तीर्थकर को
 अपने मृदुल कस्तस्युट में प्राण किया, एकने अपनी ज्वेतवा से इस के पत्र को भी जीतने वाला छत्र
 धारण किया। दो इन्द्र भगवान् के दोनों पसवालों में चामर बीजने लगे। एक पुरन्दर इन्द्र हाथ में वज्र
 लेकर भगवान् तीर्थकर की रसा के लिए आगे-आगे बढे ॥सू०६१॥

आ प्रभावे भगवाननी आता त्रिशङ्खाने बन्दना तथा स्तुति करीने धन्द्र पोताने अन्तिम आशय बडे छे—
 ‘हे देवानुमिये! तुं भगवान तीर्थकरने अ भ=भेद्योत्सव करीय, तो आप करेया भा ”

आ प्रभावे करीने धन्द्रे तेभने अवत्पापनी निद्राभां पोदाडी दीया। पञ्ची वैक्षिप्यशक्तिशी पोतानां पांच
 रूप बनाया ते पांच धन्द्रोभांभी कोहे भगवान तीर्थकरने पोतानां द्वाभण करसस्युटभां मृपाडी दीया, कोहे येतवतां
 कसनी पोअने पञ्च भेद्योत्सव करेया छत्र धारण करुं, जे धन्द्र भगवानने अन्ने पडजे आभर दाजवां बाब्यां कोहे
 पुरन्दर धन्द्र बायाभां वज्र धारने भगवान तीर्थकरनी वज्रकने भाडे आभरण=आभरण बाब्यां कोहे (सू०६१)

मूलम्--तए णं से सके देविदे देवराया नंदीसरदीवे पुव्वमागएहिं सयसयरइगरपव्वए सादरिय-
 सय-सय-इइहि-जाण-विमाणेहिं सयसयपरिवारपरिवुडेहिं तिसइहिंदेहिं सद्धिं संपरिवुडे जेणेव मेरुपव्वए
 वलयागारेण ठियस्स चउण्णवइअहियचउस्सयजोयणपरिमियविकवंसस्स चउत्थपंडगन्नस्स चउमु दिसासु
 सेयसुवण्णमया अद्धचंदगारा पुव्व-दक्खिण-पच्छिमु-त्तर-कमेण णिआ पंडुकंवल-अइपंडुकंवल-रत्तकं-
 वल-अइरत्तकंवल-भिहाणाओ चउरो अभिसेयसिलाओ वट्ठति, तासु जेणेव अइपंडुकंवलसिला जेणेव य
 अभिसेयसीहासणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तसि सीहासणंसि सब्बलोगसहायगं तिहुयणनायगं सयंसि
 अंकपण्णंगंसि अहियासिय पुरत्थाभिमुहे संनिसण्णे ॥सु०६२॥

छाया--ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजो नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वमागतैः स्वक-स्वक-रतिकरपर्वते
 संहृत-स्वक-स्वक-ऋद्धि-यानविमानैः स्वक-स्वक-परिवारपरिवृतैः त्रिपट्टीन्द्रैः सार्द्धं सपरिवृतः यत्रैव मेरु-
 पर्वते वलयाकारेण स्थितस्य चतुर्नवत्यधिकचतुःशतयोजनपरिमितविष्कम्भस्य चतुर्थपण्डकवनस्य चतसृषु
 दिक्षु श्वेतसुवर्णमयः अर्द्धचन्द्राकाराः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरक्रमेण स्थिताः पाण्डुकम्बला-तिपाण्डुकम्बल-रक्त-

मूल का अर्थ--'तए णं' इत्यादि। तत्पश्चात् नन्दीश्वर द्वीप में पहले से आये हुए, अपने अपने
 रतिकर पर्वत पर अपनी-अपनी ऋद्धि एवं यात्र-विमानों को छोड़ देने वाले, तथा अपने-अपने परिवार
 से युक्त तिरसठ इन्द्रों के साथ, वह शक्र देवेन्द्र देवराज जहाँ अभिषेक-सिंहासन था, वहाँ आये। मेरु पर्वत
 पर वलयाकार (चूड़ी की तरह गोलाकार) स्थित तथा चार सौ चौरानवे योजन विस्तार वाला जो चौथा पण्ड-
 कवन है उसके चारों तरफ, श्वेतसुवर्णमयी अर्धचन्द्र के आकार की, क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और
 उत्तर में स्थित जो पाण्डुकम्बला, अतिपाण्डुकम्बला, रक्तकम्बला और अतिरक्तकम्बला नामक चार अभिषेक-शिलाएँ

भूणोते अर्थ--'तए णं' इत्यादि त्थारथशी नदीश्वर द्वीपमा पड़ेथी आवेला पोतपोताना रतिकर पर्वत
 पर पोतानी ऋद्धि अने यानविमानोने भूंकवावाणा, अने पोतपोताना परिवारथी युक्त ओवा नेसठ धन्दोने।
 साथ मेदवी, ते शक देवेन्द्र देवराज न्यां अलिषेक-सिंहासन हतुं त्यां आन्वा।

मेरु पर्वत उपर थारसो थोराळुं (४८४) जेजन्ना विस्तारवाळुं युडीना आझरे रडेळुं थोथु पंडकवन छे.
 आ वननी थारे भाण्णु, श्वेतसुवर्णभय, अर्धचंद्राकारवाणी, पूर्व-दक्षिण-पश्चिम अने उत्तर दिशाओमां
 अचुकमे आवेदी पाण्डुकंभला, अतिपाण्डुकंभला, रक्तकंभला, अने अतिरक्तकंभला नामवादी थार शिलाओ छे. आ

पश्यन्त्या-निराश्रयस्याभिधाना चतस्रोऽभिषेकशिला वर्तन्ते, तामु यत्रैव अतिपाण्डुरम्बलशिला यत्रैव प
 अभिषेकनिवासत नरैव उपागच्छति, उपागत्य तस्मिन् सिंहासने सर्वलोचसहायकं चिमुकुननायक स्वके अङ्ग-
 पर्यन्ते भूपास्य वृत्राभिमुन् संनिपण्य ॥मृ०६२॥

टीका—‘तृष ण् से सके’ इत्यादि। ततः तल्लु नामो देवेन्द्रो नन्दीश्वरीप पूर्वम्—माक
 आगते सत्तराश्रयविक्रपर्यन्ते मिश्रिजरातिश्रगिरी सद्यत्तकस्वर्द्धियानविमानैः—स्यापितनिजनिज
 कृदियानविमानैः स्वस्वकपतिवारणखैतैः—निमनिवपरिजनपरिवेष्टितैः त्रिषटीन्त्र सार्द्धं—सठ संपरि-
 इत—नयक परिचष्टिः मन मेरुपर्वते यत्रहन्—यस्मिन्नेव स्थाने वनयाकोप—मृदुलाकारेण
 स्थितम्ब—विद्यमानस्य चतुर्वायविकचतुर्द्वययोगनपरिमितविकल्मस—चतुर्नन्त्यषिक्चतुर्द्वयसम्ययाजनपरिमितवि
 न्नासत—चतुर्पण्डकवनस्य चतस्रु विष्टु श्वेतसुवर्णमय्य’ अर्द्धचन्द्राकाराः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरक्रमेण

हैं। इन चारों में न जहाँ अधिपान्धूकवनशिला थी और आँ अभिषेक—सिंहासन था, वहाँ (शक्र) आये।
 आकर वह उस सिंहासन पर समस्त क्रूर के सहायक और त्रिमुज के नायक तीर्थंकर भगवान् को
 अपनी गान्धर्वी पत्नी में गिरा कर, पूर्व दिशा की आर हूँ हाके बैठे ॥मृ०६२॥

टीका का अर्थ—‘तृष ण्’ इत्यादि। तदनन्तर शक्र देवेन्द्र देवराज नन्दीश्वर शीप में परछे से आय हुए, अपने-
 अपने रविकर गिरिपर चिन्तने अपनी-अपनी कृद्धि और अपना-अपना परिवार छोड़ दिया या और जो
 अपने-अपने परिवार से वष्टित व ऐस तिरसठ इन्द्रों के साथ, उनस विर हुए, मरु पर्वत के ऊपर जिस
 स्थान पर गाढाभार स्थित तथा चार सौ कीरानवे योजन विस्तार बाना पण्डक नामक चौथा वन है,
 उस वन की चारों दिशाओं में श्वेत मोने की पत्नी हुई, अर्द्धचन्द्राकार, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में

शिलाओं अभिषेक-शिलाओं। कहेवाय छि ने स्थाने अतिपाण्डु भगशिला छि अने तथा अभिषेक निहायन छि,
 त्वां देवेन्द्र आ व त्वां आपी पडोदीपणी जेहा पछी, भगवानने जेणामा बीधा, ने पूव दिशा। तश्च भो कही
 पोते शिखर आग्रन भु” (सं०६२)

टीकाओं का अर्थ—‘तृष ण्’ इत्यादि। त्वार पछी शक्र देवेन्द्र देवराज नन्दीश्वर शीपमा पडोदीपो आवेक, पोतपोताना रतिकर
 पत पर जेजो पोतपोतानी कृद्धि अने पोताना चरित्रासने भूमी तथा कृत्वा अने जेजो पोतपोताना पस्तिारनी साथे
 कृत्वा, जेना त्रेस इन्द्रोनी साथे, तेभनाथी वीरगायेथा सेठ पर्वतनी उपर ने स्थान पर पर्वताभाए ठसेक तथा
 आरसे भो। त्रु योजनमा विस्तारपण्ड पकड़ नाथन थोडु वन छि ते वननी आरे त्रियाजोभां श्वेत सुवर्दनी

स्थिताः=वर्तमानाः पाण्डुकम्बला-तिपाण्डुकम्बला-रक्तकम्बला-तिरक्तकम्बलाभिधानाः-पूर्वदिशि पाण्डुकम्बला, दक्षिणदिशि अतिपाण्डुकम्बला, पश्चिमदिशि रक्तकम्बला, उत्तरदिशि अतिरक्तकम्बला चेति चतस्रोऽभिषेकशिला वर्तन्ते, तासुन्तासां मध्ये यत्रैव=दक्षिणदिशि अतिपाण्डुकम्बलशिला, तथा यत्रैव च अभिषेकसिंहासनं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तस्मिन् आभिषेकिके सिंहासने सर्वलोकसहायकं=सकललोकोपकारकं त्रिभुवननायकं=त्रिलोकीनाथं स्वके=निजे अङ्कपर्यङ्के=कोटरूपे पत्यङ्के अध्यास्य=उपवेश्य पूर्वाभिमुखः संनिपणः=उपविष्टः ॥सू० ६२॥

मूलम्—तएणं तेसद्धीवि इदा नियनिय-परिवार-परिखुडा तत्थ सयसयआसणे ठिया। तएणं सव्वे देवा य देवीओ य एगओ मिलित्ता सयसयकज्जपवत्ता सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए सव्ववलेण सव्वसमुदएण सव्वसंभमेणं सव्वारोहेहिं सव्व-पुण्ण-गंध-मल्ला-लंकार-विभूसाए सव्व-दिग्ग-दुडिय-निनादेणं महयाए इड्ढीए महया हिययोल्लासेणं महया रवेणं एणं महं तित्थयरजम्माभिसेयं काउं इंदस्स आणं अभिकंखेति।

जं समयं च णं भगवओ तित्थयरस्स जम्माभिसेओ भविस्सइ-ति णायं, तं समयं च णं देवगणो तिसिओ जलं पाउमिव, जम्मदीणो इट्टिसिद्धिं लद्धुमिव, रोगी आरोगं पत्तुमिव, निराधरो आधारमवत्तुमिव, असरणो सरणं पत्तुमिव विमलं पट्टमुहकमलं लोयणगोयीरीकाउं नित्तुंकंठियंसंतो आसि ॥सू० ६३॥

क्रम से विद्यमान चार अभिषेक शिलाएँ हैं—अर्थात् १-पूर्व में पाण्डुकम्बला, २-दक्षिण में अतिपाण्डुकम्बला, ३-पश्चिम में रक्तकम्बला, और ४-उत्तर में अतिरक्तकम्बला शिला है। इन चारों में से जहाँ अभिषेक-सिंहासन है वहाँ पहुँच कर उस अभिषेक-सिंहासन पर सकल लोक के उपकारक और त्रिलोकी के नाथ तीर्थंकर को अपनी गोदरूप पलंग में बिठला कर स्वयं पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गये ॥सू० ६२॥

अनेही, अध्वंश-न्द्राकारनी पूर्वं, दक्षिण, पश्चिम અને उत्तरમાં અનુક્રમે વિદ્યામાન ચાર અભિષેકશિલાઓ છે, એટલે કે (૧) પૂર્વમાં પાંડુકમ્બલા, (૨) દક્ષિણમાં અતિપાંડુકમ્બલા, (૩) પશ્ચિમમાં રક્તકમ્બલા, અને (૪) ઉત્તરમાં અતિરક્તકમ્બલા શિલા છે. જો આદેમાંથી ન્યા દક્ષિણ દિશાની અતિપાંડુકમ્બલા શિલા છે અને ન્યાં અભિષેક-સિંહાસન છે, ત્યાં પહોંચ્યાં. ત્યાં પહોંચીને તે અભિષેક-સિંહાસન પર સકળ લોકના ઉપકારક, અને ત્રિકોકના નાથ તીર્થંકરને યોતાના ખોળા રૂપી પદ્મગમાં બેસાડીને યોતે પૂર્વ-દિશાની તરફ મુખ કરીને બેસી ગયાં. (સૂ० ૬૨)

प्राया—उत' ललु त्रिपट्टिरपीन्द्राः निभनिजपरिवारपरिवृताः तत्र स्वस्वाप्तने स्थिता । उतः ललु सर्वे देवाय देव्यय एकतो मिलित्वा स्वकस्वकर्मायमवृथा सर्वदणों सर्वपुत्या सर्वबलेन सर्वसमुदयेन सर्ववरेण सर्वविपुत्या सर्वसम्पेण सर्वाऽऽरौ सर्वे-पुण्य-गन्ध-मान्या-लङ्कार-विभूषया सर्वे-दिन्य-मुद्रित निनावेन मासया मुद्रया महाता इवगोछासेन महता रवेण महान्तं तीर्थहरजन्माभियेकं कर्तुम् इन्द्रस्य आज्ञामभि हासन्ति ।

गस्मिन् समये च ललु 'भगवत्तीर्थकरस्य जन्माभियेको भविष्यती'—ति ज्ञात, तस्मिन् समये च ललु देवगणः दृष्टिगतो बलं पावुमिन्, जन्मशील इष्टमिदं लब्धुमिन्, रोगी आरोग्यं प्राप्नुमिन्, निरापार आधार

मूच का अर्थ— 'तप नं' इत्यादि । तत्पश्चात् त्रिसठ इन्द्र श्री अपने-अपने परिवार के साथ, अपने-अपने आसन पर स्थित हुए । उस समय सभी देव और सभी देवियाँ, एक साथ मिल कर अपने-अपने काम में जुट गये और सम्पूर्ण कृदिते, सम्पूर्ण धृति से, सम्पूर्ण बल से, सम्पूर्ण समुद्रय से, सम्पूर्ण आदर से, सम्पूर्ण विभूति से, सम्पूर्ण संज्ञम से, सम्पूर्ण समारोह से, पुण्य, गण, मासा, अलंकार एवं विभूषा के साथ, समस्त दिव्य वाघों की ध्वनि के साथ, बड़े ठाठ से, बड़े इवगोछास से और महान् इन्द्रोंसे एक महान् तीर्थकर का जन्माभिषेक करने के लिए इन्द्र की आज्ञा की अभिलाषा-यतीसा करने लगे ।

निस समय देवगण ने जाना कि भगवान् तीर्थकर का जन्माभियेक होगा, उस समय जैसे प्यासा नल पीने को, जन्म का इष्टि इष्टसिद्धि पाने को, रोगी आरोग्य प्राप्त करने को, निरापार आधार पाने

भूलगे। अर्थ— तप नं धत्वादि त्वाश्पछी धीमान् आदि त्रेख ध्रुवो पोटपोताना इन्द्र व साधे पोटपोताना आसनो पर वेसी नभा ते सुभरे सप देव-देवोन्वे। ज्येदीमाथे भगोने पोट-पोताना इभभां भरोवाध मभा सपुखुं रिदि, पुति, जण, सयुद्ध, आदर, विभूति, जैश्वर्य, सभम अने समारोहशी अने पुण्य, गण, भागा, ज्येष्ठार अने दुईबना ठेठाराखी अने भकान् शण्ठोथी जेकर भकान् पीबे'इसना जन्माभियेक करवा आठे तेथार रहीने, धु'द्रीती-आज्ञानी राक नेवा ठेठा कर्ता ।

उपरोक्त तैथारी पूरी कर्ता सर्व देवो, भगवान् पुण्य आनन्द नेवा तवथापक यहुं रकां कर्ता। नेम तारस्य पाणीनी प्रतीक्षा करता ठेठा होता है नेम इति धु'दपुण्डु भोजनपानी बाकसे पाद भेड़ रको होता है

मवाचुमित्र, अशरणः शरण प्राप्तुं नैव । ननु "प्रभुमुलकमलं लोचनगोचरीकृतं नितान्तो-रुण्ठित-स्वान्त आसीत् ॥सू० ६३॥

टीका—‘तए णं सक्किद्वज्जा’ इत्यादि । ततः खलु त्रिपष्टिसह्यका अपि इन्द्राः=ईशानादयो निज-निजपरिवारपरिवृताः=स्वरूपरिजनपरिवेष्टिताः सन्तः, तत्र=अतिपाण्डुकम्बलशिलासमीपे मत्स्यासने स्थिताः । ततः खलु सर्वे देवा देव्यश्च एकतः=एकत्र मिलित्वा स्वरुक्ककार्यप्रवृत्ताः सन्तः सर्वद्वय=सकलसम्पत्त्या, सर्वद्वय=सर्वप्रकाशेन, सर्ववलेन=सर्वपराक्रमेण सर्वसैन्येन वा, सर्वसमुदयेन=सर्वपां=स्वपरिवाराणां समुदयेन=समूहेन सर्वेण सम्यगुदयेन वा, सर्वोऽऽदरेण=सर्वप्रकारेण आदरेण, सर्वविभूत्या=सर्वभूषणेण, सर्वसंप्रमेण=सर्वप्रकारया त्वरया, सर्वोऽऽरोहैः=सर्वसंनद्धीकरणैः, सर्व-पुष्प-गन्ध-मालया-लङ्कार-विभूषया, तत्र सर्वत्यस्य पुष्पा-

को, शरणहीन शरण प्राप्त करने को उत्कंठित होता है, उसी प्रकार देवगण भी भगवान् का निर्मल मुल-कमल देखने के लिए उत्कंठितचित्त हो गये ॥सू० ६३॥

टीका का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । तत्पश्चात् ईशान आदि तिरसठ इन्द्र भी अपने-अपने परिवार से वेष्टित होकर अतिपाण्डुकम्बलशिला के समीप अपने-अपने आसन पर बैठ गये । तत्र तत्र देव और देवियाँ एक साथ मिल कर अपने-अपने कार्य में लग गये । समस्त सम्पत्ति से, समस्त प्रकाश से, समस्त पराक्रम से या समस्त सेना से, अपने-अपने समस्त परिवार से या सम्यक् उदय से, सब प्रकार के आदर से, समस्त ऐश्वर्य से, समस्त त्वरा से, समस्त समारोह-तैयारी से, पुष्पों से, समस्त गंधों, समस्त मालाओं, समस्त अलंकारों

नेत्र देशी शोभना निवारणुनी राक्ष नेष्ट रह्यो होय छे, नेत्र निराधार आधारने वणगवानुं विचारी रह्यो होय छे, नेत्र शंरक्षुडीन शरक्ष प्राप्त करवाने अंभी रह्यो होय छे, तेम सर्व देव-देवांगनाओ, भगवाननुं निर्भण अने सौम्य सुभ नेवानि तादावेदी सेवी रह्यां छता. (सू० ६३)

टीकाके अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि. त्पार भाह ध्यान आदि त्रैसठ ईन्द्र पशु पोतपोताना परिवारथी वीटणाधने आतिपांडुकम्बलशिलानी पासो पोतपोताना आसन पर गेसी गया. त्पारे सधणा देव अने देवीओ जोइ साथे भणीने पोतपोताना कामे वणगी गयां. समस्त संपत्तिथी, समस्त प्रकाशथी, समस्त पराक्रमथी, समस्त सेनाथी, पोतपोताना समस्त परिवारथी अथवा सम्यक् उदयथी, अधी भतना आहस्थी, समस्त ऐश्वर्यथी, पूरी त्वरथी; पुष्प सभारोह-तैयारीथी, पुष्पोथी, समस्त गंधो, समस्त भाणाओ, समस्त आभूषणो, अने

विभिः प्रत्येकं सम्बन्धः, तेन सर्वपुण्येण, सर्वपापेण, सर्वमात्मेन, सर्वविधपुण्यान्सर्वं
 शोभया सर्वविशिष्टाऽऽपुणेन वा, तथा सर्व-विषय-मुद्रित-निर्वादेन-सर्वेषां विष्णुनां=विभि भवानाम् अब्रह्मणो
 वा, मुद्रितानां=वापानां निर्वादेन=अवदेन, महत्या=विशालया क्रुद्धया=सम्पण्या महता=अधिकेन ब्रह्मयोष्टासेन=
 विचानन्देन, महता रसेण=अवदेन एकम्=अद्वितीयं महान्तं=विशाल तीर्थक्षरन्नामियेकम्=तीर्थक्षरज नामियेकम्पुम्
 उत्सर्गं कर्तुम् इन्द्रस्य=वक्रोद्गस्य आश्रमम् अमिकाकुलान्ति=अभिलषन्ति। यस्मिन् समये च खलु भगवत्स्तीर्थक्षरस्य
 जन्माभियेको भविष्यतीति देवगणेन ज्ञातं, तस्मिन् समये च खलु देवगणः, द्रुपिः पानीयं पातुमिव, जन्म
 दीनः=अन्यददि शृष्टिमिद्विष्य=अभिलषितवस्तुसिद्धिं लब्धुमिव, रोगी आरोग्ये=नैक्यं प्राप्नुमिव, निराधारः=
 निरावलम्बो जनः आचार्य=अवलम्बनम् यथादुम् इव, अक्षरगणः=अक्षररहितः क्षुरण प्राप्नुमिव, विमलः=स्वच्छं
 मण्डलरूपं लोचनगोचरीकृतं=द्रव्यं निवान्तोरुक्षितस्वान्तः=अस्पृश्योत्सुकमता आसीत्। इहैकदेवगणस्यो
 पमेयस्य द्रुपिः विषहूपापमानसत्त्वात् मानोपमाऽऽह्वारः ॥सू०६३॥

और समस्त शोभाओं के साथ या समस्त विशिष्ट आयुषणों से, तथा सब दिव्य बानों की छानि से, विशाल
 रुद्धि से, महान् विष के उच्छस (आनन्द) से, महान् ब्रह्मों से तीर्थक्षर का जन्माभियेक रूप एक-भद्रि
 तीय उत्सव मनाने के लिए इन्द्र की आज्ञा की श्रमिकापा करने लगे।

वष देवगण को ज्ञात हुआ कि भगवान तीर्थक्षर का जन्माभियेक होने वाला है तो वह भगवान्
 का निर्मल मूल-रूपल देवने के लिए अत्यन्त ही उत्कण्ठितविष हो गये, जैसे घ्यासा पानी पीने के
 लिए, जल का द्रिदि मन चारी वस्तु की प्राप्ति के लिए, रोगी आरोग्य पाने के लिए, निराधार जन
 आधार पाने के लिए और अक्षरगण क्षुरण पाने के लिए उत्कण्ठित होता है।

समस्त शोभानां साधै जेटहे हे विशिष्ट आभ्युद्योधी, तथा सधणा दिव्य वाचिनोना भवनिधी, विशाल रुद्धि, विचित्र
 चित्तना अत्यन्त उच्छस (आनन्द) भी, महान् द्रव्योधी तीर्थक्षरना जन्माभियेकनो ज्येष्ठ आयुषम दित्यव उच्यमाने
 भाटे इन्द्रनी आश्रमानी अभिलाषा कस्या आश्रमं लभ्यते देवयजुने अथु यद् हे भगवान तीर्थक्षरनो न भागिनेके
 यवानो हे लभ्यते तेजो अश्वानना निर्भण पवन-कृपणा इयन्ने भाटे जेटहा अथ आदुर यद् जवां जेटहा
 वरस्या पाप्मीने भाटे, जन्मभद्रिः द्रुपिः पवनपुनी प्राप्तिने भाटे, शशी आदेशज्य भेजववाने भाटे, निराधार
 आधुस आधार भेजववाने भाटे अने अक्षरगण यजु भेजववाने भाटे आदुर जेव छे।

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं देवपमोओ अईव अलोइओ जाओ।

“ तयायणं देवगणप्पमोयं, वागीसरी नत्थि अलं पवत्तुं।

अच्चंतसंता य हविसु देवा, सदायई जत्थ पडंतसूई ॥१॥”

तए णं ते देवा य देवीओ य हरिसुक्करिसेण तहा एकताणमाणसा जाया जहा तंसि समयंसि गिरिवरपडणेणावि तेसिं दिट्ठीओ लेसमित्तमावि चलिया न भविज्जा। तए णं सुवणमया १, रययमया २, रयणमया ३, सुवणरययमया ४, सुवणरयणमया ५, रययरयणमया ६, सुवणरययरयणमया ७, मट्टिया-मया ८ जे कलसा, तेसिं कलसाणं ईक्किक्काए जाईए अट्टुत्तरसहस्सं अट्टुत्तरसहस्सं ईक्किक्कस्स इदस्स आसी। एवं चउसट्ठीए इंदाणं छण्णावइ-अहिइ-सोलससहस्स-संजुयाइ पंचलववाइ कलसाणं दट्ठण मक्कस्स देविदस्स देव-रत्तो इमेयारूवे अज्झत्थिए पत्थिए चित्तिए कप्पिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—“जं इमा वालो सिरीस-कुसुम-सुउमालो पहू एवइयाणं जलसंभियाणं महाकलसाणं महइमहालयं जलधारं कहं सहिस्सइ”—त्ति। एवंविहं सक्कस्स अज्झत्थियं ५ ओहिणा आभोइय तस्संसयनिवारणट्ठं अउलवलपरक्कमो भयवं सयपादंगुट्ठणेणं सीहासणास्स एगदेसं फुसइ। तए णं भगवओ तित्थयरस्स अंगुट्ठगफासमेच्चेणं मेरू ‘महापुरिसाणं चरणफासेण अहं पावणो जाओम्हि’—त्ति कट्ठु हरिसिओ विव कंप्पिउमारद्धो ॥सू०६४॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये देवप्रमोदोऽतीवालौकिको जातः।

यहाँ एक देवगण उपमेय है और प्यासे आदि बहुत-से उपमान हैं। इस कारण मालोपमा अलंकार है ॥सू०६३॥

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि। उस काल और उस समय में देवों को अतीव अलौकिक

अर्थात् अलौकिक देवगणों उपमेय छे आने तस्स्या आदि थीणं यथा उपमान छे. ते आरब्धे भादोपमा अलंकार छे. (सू०६३)

भूणने। अर्थ—“तेणं कालेणं” इत्यादि. ते आणे आने ते समये देवोने अतिथय अलौकिक छे थये.

“तदातनं देवगणप्रमोद, वागीश्वरी नास्ति अल प्रवक्षुम् ।
अत्यन्तशान्ताश्च वसुधुर्देवा, शब्दायते यत्र पतत्सूची ॥ १ ॥”

उतः सद्य ये वेषाश्च देव्याश्च इषोक्तयेष्व त्रया एकतामामसा जाताः, यथा तस्मिन् समये गिरिराजपुत्रने नापि तेषां इष्टयो लेखमात्रमपि चक्षिवा न भवेयुः । ततः सद्य सुवर्णमयाः १, रजतमयाः २, रत्नमयाः ३, सुवर्णरत्नमयाः ४, सुवर्णरत्नमया ५, रजतरत्नमयाः ३, सुवर्णरत्नरत्नमयाः ७, युविकामयाः ८ ये कलशाः, तेषां कल्पशानाम् एकैकस्य आत्या शृणोत्तरसरसम् शृणोत्तरसरसम् एकैकस्य इन्द्रस्य आसीत् । एवं चतुष्पट्टेन्द्रिणां रूपं हुआ ।

उस समय के देव-गण के आनन्द को सरसरी भी करने में समर्थ नहीं हैं । उस समय देव एकदम इतने शीत हो गये कि गिरती हुई सूई का भी शब्द सुनाई दे ॥ १ ॥

उप देवी और देवियों का मन रूप के उत्कर्ष से एकाग्र हो गया । उनकी दृष्टि ऐसी निश्चल हो गई कि बड़े पर्वत के गिरने से भी लेखमात्र चलायमान न हो ।

तत्समात् (१) स्वर्ण के, (२) चादी के, (३) रत्नों के, (४) सोने-चांदी के, (५) सोने-रत्नों के (६) चांदी-रत्नों के, (७) सोने-चांदी-रत्नों के तथा (८) युविका के, इन आठ प्रकार के कलशों में से एक-एक जाति के, प्रत्येक इन्द्र के पास एक हजार आठ कलश थे । इस तरह वर्तित इन्द्रों के कुल पाँच लाख, सोलह हजार, छपानवे कलश हुए । इतने कलशों को देख कर देवेन्द्र देवरान श्रद्धा को ऐसा

“ये सम्भयना देवप्रजना आनन्दु वल्लन हरिषाने सहस्रपदी पञ्च शक्तिमान नदी को बधते इवो ज्येष्ठा अथा शान्त यत् अथां ई नीक्ष पटती सं वतो अनाञ्च पञ्च साजग्री शुक य ॥ १ ॥

त्यारै देवो अने देवीकोना भन कथना अतिदेवकी ज्येष्ठा यत् अथा तेभनी पक्षेहा ज्येष्ठी अथी निक्षेड यत् अथ ई मोटे पत्र पठे तो पञ्च अशये यक्षाभमान न थाय । त्यार आठ (१) सुवर्णना (२) चादीना (३) रत्नना (४) सोना-चादीना (५) सोना-रत्नना (६) चांदी-रत्नना (७) सोना-चांदी अने रत्नना तथा (८) चादीना, को आठ प्रकारना कलशोनांकी जो कलश प्रकारना अनेक छन्दनी पठे ज्येष्ठ ज्येष्ठ आठ कलश जना । आ प्रभावे जोयस ई-कोना कुल पाञ्च लाख सोण ज्येष्ठ छन्द (५१६००६) कलश यथा आठवा अथा कलशान

पणवत्य-धिक-षोडशसहस्र-संयुतानि पञ्च लक्षानि कलशानां दृष्ट्वा शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अयमेतद्रूपः
 आध्यात्मिकः १, प्रार्थितः २, चिन्तितः ३, कल्पितः ४, मनोगतः ५ संकल्पः समुदपद्यत—“यद्यं बाल-
 शिशुरीषकुसुमसुकुमारः प्रभुः एतावतां जलसंयुतानां महाकलशानां महामहतीं जलधारां कथं सहिष्यते”
 इति। एवंविध शक्रस्य आध्यात्मिकम् ५ अवधिना आभुज्य तत्संशयनिवारणार्थम् अतुलवलपराक्रमो
 भगवान् तीर्थंकरः सकपादद्गुह्येण सिंहासनस्यैकदेशं स्पृशति। ततः खलु भगवत्स्तीर्थंकरस्य अद्भुतास्पृश-
 मात्रेण मेरुः ‘महापुरुषाणां चरणस्पर्शेन अहं पावनो जातोऽस्मि’ इति कृत्वा हर्षित इव कम्पितुमारब्धः ॥सू० ६४॥

टीका—‘तेजं कालेजं’ इत्यादि। तस्मिन् काले तस्मिन् समये देवप्रमोदः=देवानां हर्षः अतीव=

आध्यात्मिक, प्रार्थित, चिन्तित, कल्पित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि शिशुरीष के कुसुम के समान सुकुमार
 यह शिशु भगवान् इतने जलपूर्ण महाकलशों की अत्यन्त विशाल जलधारा को किस प्रकार सहेगे?

शक्र के इस प्रकार पाँचों प्रकार के विचार अवधिज्ञान से जान कर, उनकी शंकाको दूर करने
 के लिए, अतुल बल और पराक्रम वाले तीर्थंकर भगवान् ने अपने पैर के अंगूठे के अग्रभाग से सिंहासन
 के एक भाग का स्पर्श किया, तब भगवान् तीर्थंकरके अंगूठे के स्पर्शमात्र से मेरु पर्वत काँपने लगा,
 मानो ‘महापुरुषों’ के चरणस्पर्श से मैं पावन हो गया’ ऐसा सोचकर हर्ष से हिलने लगा हो ॥सू० ६४॥

टीका का अर्थ—‘तएजं’ इत्यादि। उस काल और उस समय में देवों को अतीव लोकोत्तर आनन्द

लभने देवेन्द्र देवराज शक्र ने जेवो आध्यात्मिक, प्रार्थित, चिन्तित, कल्पित, मनोगत संकल्प उत्पन्न थये। ऊँ
 शिशुरीषना इस जेवो सुकुमार आ आणक (सगवान) आटवा अधां, जणथी सदेवां महाकणशेनी अत्यंत विशाल
 जलधारोने डेवी शीते सहन करी शकशे? शकना आ प्रकरना पाचे विचारोने अवधिज्ञानथी लणीने तेनी शंकाजुं
 निवारणु करवा भाटे, अपार जण अने पराक्रमवाणा तीर्थंकर सगवाने पोताना पगना अंशुहाना अत्रबागथी
 सिंहासनना जेक बागोना स्पर्श कर्यो त्याहे सगवान तीर्थंकरना अंशुहाना स्पर्श भात्रथी ज मेरु पर्वत कंपवा
 बाग्यो लण्ठे “महापुरुषोनां चरणस्पर्शेन हुं पावन भई गयो”-जोम धारीने हर्षथी डालवा लाग्यो (सू० ६४)

टीका ने अर्थ—‘तेज कालेजं’ धत्यादि, ते काले अने ते समये हेवोने अत्यंत लोकोत्तर आनंद थये। ते

अविश्रयितः भौतिक संकोचो नरो जातः। तस्मिन् समये नितरां शान्तिरासीदिति दशैयितुमार—'तुपायं' इत्यादि।

तदा तर्ज-वदा-वस्मिन् काष्ठे भवं-जात, देवगणप्रमोदसु-देवानां गणस्य-समूहस्य प्रमोद-ईप्सु, वागीश्वरी-नारसुत्री अपि बहु-वर्णमिश्र अल-समर्पा नास्ति-न विद्यते। देवास्तत्र मृत्यन्तश्चान्ताः-अविश्रयि-रनिमग्नमनसो बभूवुः। यत्र-यस्मिन् देवगणशान्तिस्थले पतत्युची-पतन्वी सूची श्रव्यायते-श्रुतं करोति-श्रुतं कुर्यादित्यर्थः। ततः सख ते-शान्तविषा देवास्य देव्यस्य ईप्सोत्प्रेण-आनन्द्याधिवयेन तया-तेन प्रकारेण एकतात्मनसा-एकाग्रमनसो जाताः, यथा-येन प्रकारेण तस्मिन् समये वेपा-ञ्चान्ताविषानां देवानां दृष्टयः-नेत्राणि निरिरपतनेनापि-अहर्षतनितनेनापि छेदमात्रमपि-किञ्चिदपि चमिता-चञ्चला न भवेयुः।

हुवा। उस अस्तर पर एकदम शान्ति थी, यह कहाने के लिए करते हैं—

“तथायण देवगणप्यमोय, वागीसरी नतिय अल पवतु।

अच्चतसता य हविसु देवा, सदायई जत्थ पढतसुई ॥१॥” इति।

अर्थात् उस समय देवों के समूह को जो प्रमोद हुआ, उसका वर्णन करने में सरसती भी समर्थ नहीं है। वहाँ देव अत्यन्त ही शीघ्र एकत्रविष्ट हो गये, इतने शान्त हो गये कि गिरती हुई मूर्त को भी आवाज आये बिना न रहे।

अब सदैव वक्ता शान्ति कही तो शयनवा भावें रहें छे—

“तथायण देवगणप्यमोय, वागीसरी नतिय अल पवतु।

अच्चतसता य हविसु देवा, सदायई जत्थ पढतसुई ॥१॥ इति।

कोटह है तो सभसे देवोना समझने के कर्षणसे। तोतु पणुन श्रवणेन सरस्वती पणु समर्थ नारी त्मा देवो कोटह अर्थां शान्त अने जोडाश्रित अल पथा है नीच शोभ पठे तो। तेने। अथान पणु सभगामा विना रहे नही

ततः खलु सुवर्णमयाः १, रजतमयाः २, रत्नमयाः ३, सुवर्णरजतमयाः ४, सुवर्णरत्नमयाः ५, रजतरत्नमयाः ६, सुवर्णरजतरत्नमयाः ७, मृत्तिकामयाः ८ ये कलशा भवन्ति, तेषां कलशानाम् एकैकस्या जाल्या अष्टोत्तरसहस्रम् अष्टोत्तरसहस्रम् एकैकस्य इन्द्रस्य आसीत्। एवम्=एकैकजातीयघटानाम् एकैकस्य इन्द्रस्य अष्टोत्तरसहस्रसत्त्वेन चतुष्पष्टेः=चतुष्पष्टिसंख्यानाम् इन्द्राणाम्=इन्द्रसम्बन्धिनां कलशानाम् पण्णवत्यधिक- षोडशसहस्रसंयुतानि=पण्णवत्यधिकषोडशसहस्राधिकानि पञ्च लक्षाणि ५१६०९६ दृष्ट्वा शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अयमेतद्दुपो=वक्ष्यमाणप्रकार आध्यात्मिकः प्रार्थितः चिन्तितः कल्पितः मनोगतः संकल्पः समुदपद्यत=जातः-

उसके बाद शांतचित्त वे देव और देवियाँ आनन्द की अधिकता से इतने एकाग्रचित्त हो गये कि बड़ा भारी पर्वत गिर पड़े तो भी उन देव-देवियों की दृष्टि लेशमात्र भी चलायमान न हो ।

उसके बाद (१) सोने के, (२) चांदी के, (३) रत्नों के, (४) मिले हुए सोने-चांदी के (५) सोने-रत्नों के, (६) चांदी-रत्नों के, (७) सोने-चांदी-रत्नों के और (८) मिट्टी के, ये आठ प्रकार के कलश थे। इन में एक एक प्रकार के कलश प्रत्येक इन्द्र के पास एक हजार आठ-एक हजार आठ थे, सभी प्रकार के कलश एक २ इन्द्र के पास आठ हजार चौंसठ-आठ हजार चौंसठ थे, अतः चौंसठ इन्द्रों के सब मिल कर पाँच लाख, सोलह हजार, छयानवे कलश हुए। कलशों की इतनी बड़ी संख्या देखकर शक्र देवेन्द्र देवराज के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, प्रार्थित, चिन्तित, कल्पित, मनोगत संकल्प अर्थात् विचार उत्पन्न

ત્યાર બાદ શાંતચિત્ત તે દેવ-દેવીઓ આનંદના અતિરેકથી ચોટલાં બધાં યોગાગ્રચિત્ત થઇ ગયા કે ધણે! બારે પર્વત પડે તે! પણ તે દેવ-દેવીઓની દૃષ્ટિ સ્ફેજ પણ ચલાયમાન થાય નહીં.

ત્યાર બાદ (૧) સોનાનાં, (૨) ચાંદીના, (૩) રત્નોનાં, (૪) મિશ્રિત સોના-ચાંદીના, (૫) સોના-રત્નોનાં (૬) ચાંદી-રત્નોનાં, (૭) સોના-ચાંદી-રત્નોના, અને (૮) માટીનાં, એમ આઠ પ્રકારનાં કળશો હતા. તેમાં પ્રત્યેક ઇન્દ્રની પાસે દરેક પ્રકારના એક હબર આઠ કળશ હતાં. બધા પ્રકારના કળશો મળીને પ્રત્યેક ઇન્દ્રની પાસે આઠ હબર ચોસઠ કળશો હતા. તેથી ચોસઠ ઇન્દ્રોના જ્યાં મળીને એકંદર પાંચ લાખ, સોળ હબર, છન્નું કળશ હતાં. કળશોની આટલી બધી માટી સંખ્યા એઇને શકે દેવેન્દ્ર દેવરાજના મનમાં આ પ્રકારનો આધ્યાત્મિક, પ્રાર્થિત, ચિન્તિત, કલ્પિત,

यस्य मया प्राप्तः, पुनः शिरीषकुसुमसुकुमारः=शिरीषाख्यपुण्यवत् अधिकोमलाश्लोडस्ति, कथमयम् एतावतो (५१६०९६) जलघटानो=अलसपूर्णानां महाकलशानां महाभारतीयः=अतिविशालां अलभारो सधियति ? इति। एवं विषयः=एतत्प्रकारकं शक्रस्म=इन्द्रस्य आध्यात्मिकं मार्गितं चिन्तित कल्पितं मनोगत सङ्कल्पम् अनुसृत्यपराक्रमः=अनुसृत्यपराक्रमो भगवांस्तीर्थकरः भवधिना=अभयिष्ठानोपयोगेन आधुन्य=आत्मा, तत्संयुक्तिवारणापर्यम्=इन्द्र संदेवद्वीकृत्यार्यै स्वधमदाभ्युद्योप्रेण=मित्रवरभाभ्युद्योप्रेणगेन सिंहासनस्थः=सिंहासनकारपरिणतमेरुपर्वतावयवस्य एकदेवम्=एकमार्गं स्पृशति। ततः=स्पर्शनानन्तरं लल्ल भगवत्तीर्थकरस्य अह्युद्योप्रेणस्यमोक्षेण 'महाधुराणां=अधुधुराणां वरजस्येन आं पावनः= पवित्र संज्ञातोऽस्मि' इति कृत्वा=इति ज्ञात्वा मय इषित इव कस्मिन्नु भारव्यः। अथ कलशसंख्यायां पातकीलक्ष्णाद्विज्योतिषेन्द्रादिदत्तकलाविषया वाच्येति ॥सू०६४॥

इमा किं मनु प्राप्नुवते, शिरीष पुण्य के समान अतिशय कोमल हैं। यह पांच साल सोलह हजार छयानवे (५१६०९६) जल-मरे महाकलशों की अत्यन्त विशाल जलभाषा को कैसे सह सकेगे।

इस प्रकारके शक्र के आध्यात्मिक, मार्भित, चिन्तित, कल्पित, मनोगत सङ्कल्प को अनुसृत्य मूल और अनुसृत्य पराक्रम से सम्पन्न भगवान् तीर्थकर ने भवविज्ञान स ज्ञान करके, उनके संशय को दूर करने के लिए, अपने पैर के अंगूठे के अग्रभाग से अपने आधारभूत (जिस पर वह विराजमान थे) मेरुपर्वत के अवयवरूप सिंहासन के एक भाग का टुकड़ा लिया। भगवान् तीर्थकर के अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करते ही 'महाधुराणों के चरण-पर्व' से मैं पावन हो गया' ऐसा ज्ञान कर मानों एवं के कारण मेरुपर्वत को अपने लगा। यहाँ पातकीलक्ष आदिके ज्योतिषी वेद्वन्द आदि देशोंके कलाओंकी विषया नहीं की गयी है ॥सू०६४॥

भनोजत सङ्कप (विचार) कल्पन शयो है प्रभु आनन्द छे, शिरीष-पुष्पना लेवा अतिशय कोमल छे तेजे आ पांच लाख सोलह हजार छन्द छन्द (५१६०९६) जलपूरा महाकलाशोनी अत्यन्त विशाल जलभाषाने इन्हीं नीचे सहन करी शक्यो।

आ प्रहारना शक्रना आध्यात्मिक, मार्भित, चिन्तित इषित, भनोजत सङ्कपने, अनुसृत्य भग आने अनुसृत्य पराक्रमभाषा कलवान तीर्थकरे अवविज्ञानकी आधीने तेनी शक्रने दूर करवा भाटे, योताना पञ्जना अशुभाना अलभाना योताना आधा-ल्लुट (लेना पर तेजे विराजमान देवा) मेरुपर्वतना अवयववेष सिंहासनना ओठ भाजने इषय कर्यो। अजवान तीर्थकरना जलशुभाना अलभाना इषय भर्ता ॥ "महाधुराणोन्मासु-पञ्चश्री छे पावन भर्ता भयो" जेभ गान्धिने ज्यो छपने लीधे मेरु पर्वत छपवा लाग्यो। अकि धातकीअ छे आदिना अशुभतपी देवेअ आदि देवेना जलशोनी विषया करेन नथी (सं०६४)

मूलम्—जं समयं च णं मेरु कंपिउमारद्धो, तं समयं च णं पृथ्वी कंपिया, समुहो खुद्धो, सिहराणि पडिउमारद्धाणि। तेसिं समय-जगजीवजाय-हिय-विदारगो भयभैरवो महासहो समुब्भूओ। तिहुयणंसि महं कोलाहलो जाओ। लोगा भयभीया जाया। सब्वजंतुणो भयाउला समययट्ठणाओ निस्सरिय ‘को अम्हाणं तायगो’ भविस्सइ-त्ति ऋट्टु सरणमबेसिउं विव जत्थ तत्थ पलाइउमारद्ध। सव्वे देवा देवीओ यावि भउब्बि-गमाणसा जाया।

तए णं से सके देविदे देवराया एवं चित्तेइ-‘जणं अयं विसालो मेरु इमस्स कमलाओवि कोमल-स्स वालगस्स पृहुणो उवरि पडिस्सइ, तो अस्स वालगस्स का दसा भविस्सइ?, इमस्स वालगस्स अम्मापि-ज्जणं समीवे कहं गमिस्सामि? किं कहिस्सामि?—त्ति कट्ठु सक्किदो अट्ठञ्जाणोवगओ झियायइ। तओ ‘केण एवं कडं’—त्ति कट्ठु सके देविदे देवराया आसुहेत्ते मिसिमिसंते कोवगिणा संजलिए ओहिं पंउजइ। तए णं ओहिणा नियदोस विण्णाय भगवओ तित्थयरस्स पायमूले करयलपरिगहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठु एवं वयासी-णायमेयं अरहा! विण्णायमेयं अरहा! परिणायमेयं अरहा! सुयमेयं अरहा! अणुहूयमेयं अरहा! जे अईया जे य पडुप्पन्ना जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वेडवि अणंतवलिया अणंतवीरिया अणंत-पुरिसकारपरक्कमा हवंति-त्ति कट्ठु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नियअवराहं खमावेइ ॥सू०६५॥

छाया—यस्मिन् समये च खलु मेरुः कम्पितुमारब्धः, तस्मिन् समये च खलु पृथ्वी कम्पिता, समुद्रः क्षुब्धः, शिखराणि पतितुमारब्धानि। तेषां सकलजगज्जीवजातहृदयविदारको भयभैरवो महान् वादः

मूल का अर्थ—‘जं समयं च णं’ इत्यादि। जिस समय मेरु पर्वत कांपने लगा, उस समय निश्चय ही सारी पृथ्वी कांप उठी, समुद्र क्षुब्ध हो गया, शिखर गिरने लगे, समस्त संसार के जीवों के हृदय को विदारण करने वाला महान् भयंकर नाद हुआ। तीनों लोक में बड़ा कोलाहल हो

भूणने। अर्थ—‘जं समयं च णं’ इत्यादि। जे समये सुभेडु पर्वते कं'पन शरु कथु" ते समये आभी पृथ्वी कं'पवा लागी. समुद्रो अणभणी डइयां. शिखरो छपरा-छपरी पडवा भ उयां. समस्त सं'सारी छुयोना। हृदयने खेदी नाये तेवो हारुथु अवाज थयो. नबु दोकभां केलाहद भयी गयो. दोके। उरना भायां लयलीत थवा लाग्यां.

समुद्बुधः। भिक्षुने यशः कोमारलो जातः। लोका मयमीठा जाता। सर्वनवयो मयाऽऽकुलाः स्फ-
 स्फस्त्वानाह निःसृत्य 'कोऽस्माकं प्रापको मयिष्यति'-इति कृत्वा अरण्यमन्वेपयितुमिव यत्र यत्र पञ्चायिदु-
 भारम्भाः। सर्वे देवाश्च देव्यश्च मयोद्विन्मानसा जाताः।

तदा स शक्रो देवेन्द्रो देवराज एव चिन्तयति-यत् सख्य अयं विशालो येरुस्य कमलादपि कोमलस्य
 शालकस्य प्रमोक्षरि पतिष्यति, ततोऽस्य शालकस्य का दक्षा मयिष्यति, अस्य शालकस्य अम्बापित्रोः समीपे रूप
 गमिष्यामि? किं कथयिष्यामि? इति कृत्वा शक्रः आर्चयानोपगतो द्यायति। तत 'केन एव कुत'-मिति कृत्वा
 शक्रो देवेन्द्रो देवराज आशुक्लो मिसमिसायमानः कोपामिना संज्वलितः अवर्षि प्रयुङ्क्ते। ततः सख्य अवर्षिता

गया। लोग हर मये। सब माणी मयसे ब्याकुल होकर, अपने-अपने स्थान से निकल कर 'कौन हमारा
 प्राण करेगा' ऐसा सोच कर शरणा लोजने के लिए इधर-उधर भागने लगे, और सभी देवी-देवताओं
 का चित्त भी मय से हँपने लगा।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने इस प्रकार विचार किया-'अगर यह विशाल मेरु पर्वत, कमल से
 भी कोनख, शालक-वाछे इन पशु के ऊपर गिर जायगा तो इनकी क्या दशा होगी? कैसे मैं इनके
 मातापिता के पास जाऊँगा! क्या जाँगा?'। इस तरह विचार करते-करते अचानक आर्चयान से युक्त होकर
 चिन्ता करने लगे।

फिर 'किसने ऐसा किया है?'-यह सोच कर शक्र देवेन्द्र देवराज को क्रोध आगया। क्रोध की

प्रबुद्धि आम तब होरामम करवा लाया। सब एवमगु लपथी आशुल-ब्याकुल बल रहा। 'नाहि नाहि' ना
 पात्रशे। बवा लाया शयक शोधवा आम तब भयामय करी रहा। सर्व देव-देवीजोना भन पशु लपथी दुष्ट ठाम।
 येरु पर्वत, आ होमल शरीस्थाना लान प्रशु छपर जलदी पड़ेगे तो तेननी शु दया यशेई, दु तेभनी भाता
 पावे शु शिदु बछने जर्दशई, तेभने कर्ष करीतबी वादेर करीशई, जावा प्रभारना विद्याशेनी पर पशाने बोपि
 तेषु भन ठामने पशु ने ते आर्चयान करवा लाये।

आवा बाबो भनभा आकत, तेभनभा तीम होथानि शयनी ठामे। होभनी न्यायजाने बीप आशु

निजदोषं विज्ञाय भगवत्स्तीर्थकरस्य पादमूले कलतलपरिहीतं शिरस्याऽवर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमवा-
दीत्-ज्ञातमेतत् अर्हन् ! विज्ञातमेतत् अर्हन् ! परिज्ञातमेतत् अर्हन् ! श्रुतमेतत् अर्हन् ! अनुश्रुतमेतत् अर्हन् ! ये
अतीताः, ये च प्रत्युत्पन्नाः, ये च आगमिष्यन्तोऽर्हन्तो भगवन्तस्ते सर्वेऽपि अनन्तवल्किना अनन्तवीर्या अनन्त-
पुरुषकारपराक्रमा भवन्ति' इति कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा निजापराधं क्षमयति ॥सू० ६५॥

टीका—'जं समयं च णं' इत्यादि। यस्मिन् समये च खलु मेरुः कम्पितुम् आरब्धः, तस्मिन् समये

अग्नि से वह प्रज्वलित हो गये। उनने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। तब अवधिज्ञान से अपना ही दोष जान
कर भगवान् तीर्थकर के चरण-मूल में दोनों हाथ जोड़ कर और मस्तक पर आवर्त एवं अंजलि करके
वह इस प्रकार बोले—'हे भगवन् ! मैंने जाना है, हे भगवन् ! मैंने अच्छी तरह जाना है, हे भगवन् !
मैंने खूब अच्छी तरह जाना है, हे भगवन् ! मैंने सुना है, हे भगवन् ! मैंने अनुभव भी कर लिया है, कि जो
अर्हन्त भगवान् अतीत काल में हो चुके हैं, जो अर्हन्त भगवान् वर्तमान में हैं, और जो अर्हन्त भगवान्
भविष्य में होंगे, वे सभी अनन्तवली, अनन्तवीर्यान्, अनन्त पुरुषकार-पराक्रम के धनी होते हैं।' इस प्रकार
बोल कर उनने वन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके अपने अपराध को खमाया ॥सू० ६५॥

टीका का अर्थ—'ज समय च णं' इत्यादि। जिस समय सुमेरु पर्वत कम्पायमान हुआ, उस समय
सारी की सारी पृथ्वी काँप उठी। समुद्र धुब्ध हो गया। पर्वतों के शिखर गिरने लगे। कापती पृथ्वी,

शरीर भगवा लाग्यु. भगवतर थता तेबु अवधिज्ञानेन। उपयोग भूयै, तेभा तेभने सर्व छडीकत विदित थध, ने
चोतानो दोष नष्टातां, से हाथ नेडी, भाये अंजली धरी, भगवान पोसे गणगणा-हृदये ओलवा लाग्भा हे " हे
भगवन्त ! हुं सर्वं लब्धी युक्तये, सारी रीते भने सर्वं सम्बन्धुं, मे' सांभण्युं छि अने अत्यादे अनुभव पषु करी
दीधो छि हे अतीत, वर्तमान अने भावी कानना अर्हन्त भगवानो, अनन्त वीर्यवान्, अनन्त पुरुषकारना भण्णी,
अने अनन्तपराक्रमी होय छि. आवा प्रभारवुं कथन नअभावे प्रगट करी, शेकेन्द्रे भगवानेने वंदन-नमस्कार करी,
शेयै अपराधनी भाद्री भागी (सू० ६५)

टीकानो अर्थ—'जं समयं च णं' इत्यादि. येरु पर्वत त्रेबु दोकने आवरी हे तेवो होवार्थी, ते लंभाध, पक्षोणाध अने ठंवाधभां,
स पृथ्वी रीते विस्तृत छि, आथी तेना कं'पननो स्थर्शं त्रेबु दोकभां अनुभवायो. कं'पनना दीधे, धरती पषु धषु-

વ નમ્ર પૃથિવી કામિયાદાડ્યત્, સમુદ્રઃ કુરુષોડ્યત્, ચિત્તરાણિ=ગિરિયુક્તાણિ પશ્ચિમ્ આરબ્યાનિ । તેયાન્કમ્મો
 નુત્તમપૃથિવી-સોમોન્મુલસમુદ્ર-પતનોન્મુલચિત્તરાણી સકલનગજીવજાતહૃદયવિદારક=સર્વસુનત્વમાગિગણહૃદય-
 મેદનતારકઃ મયૈરસઃ=મયકુરઃ મરાન=દિગ્બ્યાપકઃ સન્દ સમુદ્પૂતઃ=સમુત્પન્નઃ । ત્રિસુવને મરાન=ઉપૈ કોઆ
 ર્શ=સ્તકક્રમો જાત' । સોકા મયમીતાઃ=મયપુષ્પા જાતાઃ । સર્વમન્ત્રઃ=સકલમાગિનઃ મયાકુઆન્મયયોદિન્નાઃ
 સન્તઃ સ્વસ્તકૃત્યાનાત=નિર્માનિનસ્થાનાત નિન્નુરય=નિર્ગતય “કાન્નો જન અસ્માકં પ્રાયકઃ=સત્ત્વો મવિવ્યતિ ?”-
 રિવિ કૃત્યા=રિવિ રેતોઃ કરણેન્સક્રમ્ અન્વેપવિતુમ્ રૂવ યથ તન્નત્તસ્તઃ પશ્યાવિતુમ્ આરબ્યા' । સર્વે દેવા દેવ્ય
 માયિ મયોદિન્માનસા=મયપ્રસ્તવિષા જાતાઃ ।

તતઃ સમ્ર સ ક્રમો દેવેન્દ્રો દેવરાજ પર્વન્સ્વમાત્મયકાર ચિન્તયતિ=વિચારયતિ । શકચિન્તનોયમાર-

હુમ્મ સમુદ્ર ઔર પતનોન્મુલ ગિરિ-ચિત્તરોં કા, હીન ત્રોક કે સમસ્ત માગિયોં કે હૃદય કો મેદને જાળા,
 મયંકર ઔર સઽ વિશાબોં મેં બ્યાપી ક્રમ્દુ જુઆ । હીનોં સોહોં મેં હીત્ર કોલારહ ફેલ ગયા । લોગ મયમીત
 હો ડહે । સમસ્ત નીચ મય સે બ્યાકુલ હોતે રુપ અપને-અપને સ્થાન સે જાહર નિકુલ કર 'કોન હમારા
 રસક હોગા' એસા સોચકર કરાળ લોજને કે લિપ રૂપ-ઉપર માગને લગે । તયા સમી દેવી-દેવતાઓં કા
 વિષ મી મય સે બ્યાકુલ હો ગયા ।

તથ શક દેવેન્દ્ર દેવરાજમે રસ મકાર સોવા-જો યદ મશન મેરુપર્વત કમલ સે મી કોમલ રૂન

ખણી થી, ખસી બહુધણ્યાં, સમુદ્રડ પાણી ઉછળી આબુ, તે આ ઉછળાને લીધે, આરે જાણુ જગજગાર સહ રહી
 ઉછળવાતથી, ખસીના આધારે રહેલા નાના-ચોટા શિખરો પશુ સ્વસ્થાનેથી ચ્યુત થતાં બજાવા
 થોડા-સવારને પારે છે, યારણ અને આશ્રય વિનાના સહ બપાથી, ઠેઠાડત ઠરી મૂકે છે માનવોના આશ્રય
 સ્થાનો તો, જલ અને અસ્થિર છે, તે તો કંઈ જાગતા પડી જાય છે પશુ દેવોના આશ્રય સ્થાનો-દેવાલયો,
 વિમાનો, કીર્તિચલો સર્વે અજલ અને સ્થિર છે, છતાં તેમને પશુ કંઈતો સ્પર્શ થતાં, પડવાનો જય ઉપસ્થિત થયો
 ને યોડ-ચોડ થઈ રહ્યાં.

આવી વિચિત્રીકર્ય થોડોમાં આવી રહી હતી. આઠ મહેન્દ્રના અનર્માં પશુ ચિત્ર-ચિત્ર તરંગે ઉડવા લાગ્યા.

“यत् खल्वप्यम् विशालो=महान् मेरुः अस्य=पुरोवर्तिनः कमलादपि=कमलपुष्पापेक्षयाऽपि कोमलस्य=सुकुमारस्य बालकस्य=बालवयोवर्त्तिनः प्रभोरुपरि पतिष्यति, ततः अस्य बालकस्य का दशा=परिस्थितिर्भविष्यति ?, अहं च अस्य बालकस्य अम्बापित्रोः समीपे कथं=केन प्रकारेण गमिष्यामि ? तथा किं कथयिष्यामि ? इति कृत्वा=इति चिन्तयित्वा शक्रन्द्र आर्तध्यानोपगतः=आर्तध्यानवस्थितः सन् ध्यायति=चिन्तयति। ततः ‘केन एवं कृतम्=ईदृशं उत्पतः कृतः’ इति कृत्वा=इति मनसि चिन्तयित्वा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः आशुरुषः=अतिकुपितः मिसमिसायमानः=जाज्वल्यमानः कोपाग्निना=क्रोधरूपवह्निना संज्वलितः=आतः सन् अवधिम्=अवधिज्ञानं प्रयुङ्क्ते। ततः=अवधि-ज्ञानोपयोगानन्तरं खलु अवधिना=अवधिज्ञानद्वारा निजदीपं विज्ञाय भगवतः तीर्थकरस्य पादमूले=चरणतले कर-तलपरिगृहीतं=हस्ततलभूतं शिरस्यावर्त्त=शिरसि आवर्त्तः=प्रदक्षिणतया भ्राम्यं यस्य तं तत्राविधम् अञ्जलिं=हस्त-द्वयसम्पुटं मस्तके=शीर्षे कृत्वा=संस्थाप्य एवं=वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत=उक्तवान्, तद्वक्तव्यमाह--‘णायमेयं’

बालवयवाले प्रभु के ऊपर गिरे तो इनकी क्या दशा होगी ?, मैं इनके माता-पिता के समीप किस प्रकार जाऊँगा और क्या कहूँगा ?। इस प्रकार विचार करके शक्रन्द्र आर्तध्यान-युक्त होकर चिन्ता में पड़ गये। तदनन्तर ‘किसने ऐसा किया है--इस प्रकार का उत्पत मवाने वाला कौन है ?’ यह सोचकर शक्र देवेन्द्र देवराज अतिकुपित हुए, क्रोध की आग से प्रज्वलित हो गये। ‘यह उत्पत करने वाला कौन है’-यह जानने के लिये उन्होंने अवधिज्ञान में उपयोग लगाया, और अवधिज्ञान से अपना ही दीप जानकर भगवान् तीर्थकर के चरणों में शिर झुका कर, दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर आवत्तयुक्त अंजलि करके, आगे कहे अनुसार कहा-हे भगवान् ! मुमेरु के

कहाय मेरु पर्वतना शिखराने तो हु आडे हाथ दध, भगवानना डोभण-भाणशरीर पर पडतां, अटकावी भक्ष्य, पथु मेरु पर्वत गभडी पडतां हुं, भगवानने डेवी रीते भायावी शक्षीय ?, ने तेभनी भाताने विवाभोको नध शुं नवाध आपीश ?

आवा विथादोथी तेभनुं भन घेराध गथुं, युद्धि अने विथाशक्ति कुंठित थध गर्ध, ने भूढ नेवा थध गथ। अथानक पोतानी दिव्यशक्ति ‘अवधिगान’ने विथार स्फुरी आव्यो, ने ते शक्तिनेा दक्षु व्येकभां उपयोग करतां नथ्याथुं डे, आ सर्वना ड-भनेा कर्ता हुं छुं : धारथु डे, अरिहं तोनी अनंत शक्तिमा भादेा विश्वास उगभगी उडेा, तेथीन भगवाननी सडनशक्तिभां भने अपूर्णता बासी. भने विश्वास पूर्ण करवा सारुं भगवाने स्वयं प्रेरित

रपादिना। हे अहं ! हे निन ! एतत्=मेरुक्रमनादिनिमित्तं ज्ञातं भया, हे अहं ! एतत् विज्ञात=विशेषेण ज्ञातम्, हे अहं ! एतत् परिज्ञातम्=परिज्ञात=सर्वथा ज्ञातम्, हे अहं ! एतत् श्रुतम्=आकर्षितम्, हे अहं ! एतत् श्रुत=तत्पत्त्येव अनुभवविषयीकृतं, यद् ये अहंताः अतीताः=भूतकालीनाः, ये च अहंताः प्रत्युत्पन्नाः=वर्तमानाः, ये च अहंताः आगमिष्यन्ताः=भविष्यन्तस्ते अहंता भगवन् सर्वेऽपि भगवन्तः श्लिष्टाः=भगवन्तः=वृत्तसम्पन्नाः भगवन्तः=अनन्तनीर्याः=अनन्तशक्तिसम्पन्ना अनन्तात्मका वा, तथा-अनन्तपुरुषकारपराक्रमा भवन्ति-इति कृत्वा=इत्युक्त्वा अहंते भगवन्तं धारयतीत्येवं श्रुत्वा वन्दते नमस्यति च, चन्द्रित्वा नमस्यित्वा च निमापरायं=सापरायं समपति । सू० ६५॥

मूलम्—उप नं सन्ने इवा हरिस्-वम-वित्तपमाण-रिपया सम्बिद्भीष्ट जाव महया त्वेणं अनुश्रुदाह कमेण भगव वित्यपरं वित्यपरामित्तेणं अभिमर्षिचिह्नु ।

उप नं सम्बिदेण अनुसमसावीर्याचवियचणेण कपियमेरुचणेण 'भीममयमेव उरालं अवेनयाहय

कौपने आदि का कारण मैं जान गया, हे भगवान् ! अच्छी तरह जान गया, और हे भगवान् ! पूरी तरह जान गया। हे भगवान् ! मैंने सुना है, हे भगवान् ! मैंने अनुभव भी किया है कि जो अहंता भगवन् सुदृढाल में हो चुके हैं, जो अहंता भगवन् वर्तमान कालमें हैं, और जो अहंता भगवन् भविष्य में होंगे, वे सभी अहंता भगवान् क्षीरसम्बन्धी अनन्त बल से सम्पन्न होते हैं, आत्मसम्पन्नी अनन्त शक्ति से युक्त होते हैं, तथा अनन्त पुरुषकारपराक्रम से युक्त होते हैं। ऐसा कर कर सब अहंता भगवान् को वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं, वन्दना और नमस्कार करके अपना अपना पराय समारं हैं ॥६५॥

अर्थात् आ वहीभरना पाँववन्तुत्तमां येतानी वीरता दाखवी.

येताना न दोषद आयेपुव इमी, अगजणे देये अगवान आयु न्नेछ, धयेअ अशशधनी भाशी भाजी, दोषयुद्ध इया आभा सोइ-इनेा विषयदोष नयी तेमअ तेनी यद्धाभां अपुसुता इती तेम पयु न इत्तु; परत अजयुइये, आवाअ दोमण देवाना बदायेकां दोष छ, तेसी येतानी अपेक्षाजे, अगवानना दुःअनी अयुनी इरे छ, अने ते इ अनेा इ प अते अनुभव छे ने अनुभवतां प्रतिहार इरवाना इस्ता पयु जोगी इरे छ आ छे अगवानना वारइअभापवपणा अहो-अ शुद्ध इये। (स० ६५)

परिसहं सहस्सिहं—ति कहु य भगवओ गिवाणगणसमत्वं अत्थयामं सिमिहानीरेति नामं कयं ।

तए णं सके देविदे देवराया पंच सकखे विउवइ । तत्थ एगे सके भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिणइइ, एगे सके पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे सका उभओ पालिं चामखखेवं करेति, एगे सके वज्जपाणी सुरंदरे पुरओ पवइइ ।

तए णं से सके देविदे देवराया चउरासीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहिं भगवइ—णाणमंतर—जोइसिय—वेमाणिएहि देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिउडे सविइडीए जाव महया रवेणं ताए उकिट्ठाए जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयर जेणेन जम्मणभवणे जेणेन य तित्थयरमाया तेणेन उवागच्छइ, उवागच्छिता भगवं तित्थयरं माऊए पासे ठवेइ, उवित्ता तित्थयरमाऊए आंसावणिं निइ पडिसाहइ । एवं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहोच्छवं करिय सव्वे इदा सव्वे देवा य देवीओ य जामेन दिसिं पाउव्थया तामेव दिसिं पडियया ॥सू० ६६॥

छाया—ततः खलु सर्वे इन्द्राः हर्षवशविसर्पदृष्टयाः सर्वद्वर्था यावत् महता रवेण अच्युतेन्द्रादिक्रमेण भगवन्तं तीर्थकरं तीर्थकराभिपेकेण अभ्यपिञ्चन् ।

ततः खलु शक्रेन्द्रेण अनुपममहावीरताचञ्चितत्वेन कम्पितमेरुत्वेन 'भीमभयभैरवम् उदारम् अचेल-

मूल का अर्थ—'तए णं' इत्यादि । तत्पश्चात् हर्ष से विरसित चित्तवाले होकर सब इन्द्रोंने पूरे ठाठ के साथ यावत् महान् घोष करते हुए, अच्युतेन्द्र आदि के क्रमसे भगवान् तीर्थकर का अभिषेक किया ।

तत्पश्चात् शक्रेन्द्रेण, अनुपम महावीरता से युक्त होने के कारण, मेरु पर्वत को कम्पित कर देने

मूलको अर्थ—'तए णं' इत्यादि । इधंथी विकसित थलने तमाम धन्द्रोब्बे, पूरा ढाढमाढ सहित, महान घोषणा करी, ने भगवानने अभिषेक कर्यो. आ आलिषेकनी किया अच्युतेन्द्रे थारु करी, अने कसप्रभण्डि उत्तरनी श्रेणीना धन्द्रो वडे, पूरी करवाभां आवी.

भगवाननुं अनुपम गण जेधने, भविष्यमां पणु धारुणु हुंणेना ते सहनशीलतापूर्वक सामनेा करशे, तेभज उपसर्गोनी अवगण्णना करीने पणु, पोतातुं ध्येय खंसस करशे, जेवी नीउरता अने भक्कभता आणपणुथी न

नादिक परिपह सपिण्यत' इति कृत्वा च मगततो गीर्वाणगणसमसम् अर्थेषाम धीमहावीरेति नाम कृतम् ।

ततः तस्य शक्रा देवन्त्रो देवराजः पञ्च शक्ररूपाणि विकीरोति । तत्र एकः शक्रः वीर्यकरं करतल-
सम्पुटम् युष्मति, एकः शक्रः श्रुतः आतपत्रं पति, द्वौ शक्रौ उभयपार्श्वे चामरोत्क्षेपं कुरुतः, एकः शक्रो
नखपाणिः पुनर्द्वारः पुरतः प्रवर्तते । तत्र तल्ल स शक्रो देवेन्द्रो देवराजः चतुरशीत्या सामानिकसारस्त्रीभिः
यावत् प्रत्येः मयनपति-व्यन्तर-उपोतिपिक-वमानिकैः देवैश्च देवीभिश्च सन्दर्प सपरिवृतः सर्वद्वर्षा यावत् मरता
रूपेण तया उत्कृष्टया यावत् यैव मगतस्तपोपकारस्य नमनगरं यैव जन्यमञ्ज यैव च तीर्थकरमाता

के काल, तथा 'यह मगवान्, मयित्व-काल में धीर भय से मयानक अवेलता आदि बटे-बटे
परीयों को सतन करने' यह सोचकर, देवों के समूह के सामने मगवान् का गुणनिष्पन्न 'धीमहावीर'
ऐसा नाम रखता ।

तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजने पाँच शक्र के रूपों की विकृति का की । एक शक्रने मयवान वीर्य
कर को दोनों हाथों में लिया, एक शक्रने पीछे से हाथ फिखा, दो शक्र दोनों तरफ से चामर बीजने
मगे, और एक पुनर्द्वार लक्ष हाथ में त्रज छेकर आगे-आगे चलने लगे । सब वह शक्र देवेन्द्र देवराज
पौराणी इतार सामानिक देवों के साथ, यावत् अन्य मयनपति, व्यन्तर, उपोतिपिक तथा वैमानिक देवों
और देवियों के साथ, उन सब से गिरे हुए, सब प्रकारकी कृति सहित, यावत् मगत पोष के साथ, उत्कृष्ट

पारशी लक्षणे, शक्र-इ, तेभु नाम देवाना अत्रल्लिपु समुद्धनी वच्चे, शुष्मनिष्पन्न 'महावीर' कोडुं शम्भु

इत्येवमीति किं स एव' तथा आह, शक्रेन्द्र, पोताना देवशरीरणी विष्णुस्य हरीने पांय शक्रेन्द्रो सन्त्यो
कोऽशक्रे, मगवानने पोतानी लक्षणीभां उपासया वीज्यजे मगवानना भरतक उपर छत्र धारयु कडुं' त्रीज्यजे
अने क्षीमाक्षे वाने जला छत्र व्याभर वीज्यया भाक्षया पांज्यया शक्रेन्द्र दाधर्मा वज्र लक्ष, मगवाननी आभजण
याक्षया दाज्य ।

आ प्रभाक्षेण समसस साक्षे शक्रेन्द्रनी सेधर्मा, क्षीमाक्षी क्षभर साध्यानिष्ठ देवा लता तथा भवनपति
व्यन्तर, उपोतिपिक अने वैमानिक देवा पोतानी सुवोत्तम सिद्धि साधे क्षत्र देवा, ते सर्वे आ मगवाशक्रमा
साक्षे आक्षया क्षमा ।

तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य भगवन्तं तीर्थं करं मातुः पार्श्वे स्थापयति, स्थापयित्वा तीर्थं करमातुः अवस्थापनीं निद्रां प्रविशंहरति । एव भगवतस्तीर्थं करस्य जन्ममहोत्सवं कृत्वा सर्वे इन्द्राः सर्वे देवाश्च देव्यश्च यस्यामेव दिशि प्रादुर्भूताः तामेव दिशं प्रतिगताः ॥सू० ६६॥

टीका—‘तएणं सन्वे इंदा’ इत्यादि । ततः=शक्रेन्द्रस्य निजापराधक्षमणानन्तरं खलु, सर्वे इन्द्राः हर्षवशविसर्पदृष्ट्याः=आनन्दोत्फुल्लमनसः सन्तः सर्वद्वार्याः यावत्पदेन ‘सर्वद्युत्या सर्वत्रलेन सर्वसमुदयेन सर्वादरेण सर्वविभूत्या सर्वसंभ्रमेण सर्वाऽऽरोहेः सर्वपुष्पगन्धमाल्यालङ्कारविभूषया सर्वदिव्यवृत्तितिननादेन महत्या ऋद्ध्या

दिव्य गति से यावत् जहाँ भगवान् तीर्थं कर का जन्म नगर था, जहाँ जन्म-भजन था, और जहाँ तीर्थं कर की माता थी, वहीं आये । आकर भगवान् तीर्थं कर की माता के पास स्थापित कर दिया । स्थापित करके तीर्थं कर की माता की अवस्थापनी निद्रा को दूर कर दिया ।

इस प्रकार भगवान् तीर्थं कर का जन्ममहोत्सव करके सभी इन्द्र, सभी देव, और सभी देवियाँ जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में चले गये ॥सू० ६६॥

टीका का अर्थ—‘तएणं’ इत्यादि । इन्द्र के अपना अपराध खमा लेने के बाद, सभी इन्द्रोंने, हर्षवश-विकसित-चित्त-वाले होकर, सब ऋद्धि से, सब द्युति से, सब बल से, सब समुदय से, सब आदर से, सर्व विश्रुति से, संभ्रम (त्वरा) से, समस्त अद्भुत-दिव्य वार्धों के घोष से, अच्युतेन्द्र आदि के क्रम से भगवान् तीर्थं कर का अभिषेक किया ।

घोषणा अने हिंथनाह करता करता, तथा जन्मनगर હતું, तथा જન્મભવન હતું, तथा માતા નિદ્રાધીન થયેલાં હતા તે સ્થાને તેઓ બધા આવી પહોંચ્યા, ને ભગવાનને માતાની ગોદમાં મૂક્યા. ત્યારબાદ માતાને આવ-રણ કરી રહેલા અવસ્થાપની નિદ્રાને હર કરી સર્વ દેવ-દેવીઓ ને સ્થાનેથી આવ્યા હતા, તે સ્થાને જવા રવાના થયા. (સૂ० ૬૬)

ટીકાનો અર્થ—‘તપળં’ ઇત્યાદિ ન્યારે શકેન્દ્ર, આ હુઃખમય ઘટનાઓથી વિમુક્ત થયા, ને થયેલ આશાતાનાની માટે પ્રભુની માણી માગી, ત્યારે જેમ દેશુદાર ખણમાંથી મુક્ત થાય ત્યારે છેલ્લા શાંતિનો શ્વાસ જેવે છે, તેમ તેનું હૃદય હળવું ફેલ થઈ ગયું, ને અગાઉની માફક પ્રકુલિત-વહને ઊભા રહ્યા.

મરતા હવેયોછાસેન"—હવેપો સમગ્ર, તથા-મરતા રવેળ, 'સર્વદર્શી' સ્વારમ્ય 'રવેળે'—સ્વન્તાનો બ્યારુયા પૂર્વે ગતા। હત્યમ્ મન્યુતેન્નાવિક્રમેણ મગવન્તે સીર્ષકર્ તીર્થકારામિષેકેણ અમ્પિચન્=સ્પિતવન્તઃ।

તથા=તીર્થકારામિષેકાનન્તરં શક્રેન્નેણ અનુપમમહાવીરતાચ્ચિત્તવેન, સર્વાવિશાપિપરાક્રમયુક્તવેન, કમ્પિતમેક્રુત્વેન=સ્વાહ્યુપસર્કેન મેષર્વત્તસ્ય કમ્પનયા વ, તથા-મીમમયેમરવ=યોરમયેન મયક્કુરમ્, ઉદારમ્=વિશામ્, અવેસ્તાદિકં પરિપરં સશિવ્યતે=દત્તિ કૃત્વા=દત્તિ ક્ષાન્તા મગવત્સ્તીર્થકરસ્ય ગીર્વાજગણસમસં=દેવક-

તીર્થકારામિષેક કે વખાત શક્રેન્ન ને, મગવાન્ કો અસાધારણ મહાવીરતા સે યુક્ત જાન કર, સર્વો રક્ષણ પરાક્રમ સે યુક્ત હોને કે કારણ તથા અપને ચપૂઠે કે સર્વમાસ સે મેષ પર્વત કો રૂપા વેને કે કારણ બીર મરિવ્ય મેં યહ પોર મય સે મયંકર, વિશાલ અવેસ્તા આદિ પરિપરોં કો સરન કરેંગે, એસા જાન

આ બધુ કલ્પવશમાં જની અંતુ, ને કય વિરેદે બદ્ધમ સ્થા, ત્યારે દેવ દેવીઓએ પણ પુચ્છીને। હમ બેચ્છો અને અંતે અંતે જાગ તેઓને યાતા વળી થી બર પહેલાં તેા સર્વેના હમ તાળવે કોટી અથા હવા, ને 'શુ જાનુ ને શુ જાનુ' તેની કામદાશ જરી રહ્યા હતા, ને જ મ-મરણની વચ્ચે જોલા ખાઈ રહ્યા હતા હરેકને હમણાં અંધાં કે જમ્ 'જોવોજ બચ બ્યાપી રહ્યો હતા। ત્યાં તેા સપ્તાર્માં, કાગળ બવળદોમ ચક્કર ફરી અંતુ સર્વ વેદનાઓ નાશ થામી બાકીને ઠેકાણે સતોમ અને જ્ઞાન હ છવાઈ અંધાં બપુ જૂગણ સદામટીના રૂપમાં ફેરવાડુ ને દોહના વિષે હવ-જુલોએ નિર્ણત જનુભવી

બધ ફર થતાં દેવ-દેવીઓએ જ્ઞાનકો ઈશ્વરે ઠાહ્યો હરેક પ્રકારની જે જે સામગ્રીઓ, જુદે જુદે હથ યોજોથી, લેખી ફરી હવી તે સર્વેના ઉપયોગ, જગવાનના જાણિયેકમાં થયો।

તેમ ડાએ'મ મુનિએ, સર્વત યજ્ઞને "કમમો પરિયાપા જુમ્"—કે સર્વના! તુ બચયુક્ત છે—અમ્મ કહ્યું ને શબ બાવથી યુક્ત થાતા અભયજાનનું મહારમ સમન્વે। તેમ દેવોને પણ 'અભયજાન' ની મહત્તાનો પૂરેપૂરો જ્ઞાવ બાલ્યો ને આ ભગવાનની વીસ્તા જનુ' છે તેવુ તેમને જ્ઞાન થયુ આવુ જળ, વીર' અને પરાક્રમ પણ માનવ દેહમાં હોય છે—તેમ જ્ઞાવ જ્ઞાવતાં તેઓનો જવ જળવા માંડયો ને પૂજું' ભક્તિત પ્રદર્શિત કરીને, ભગવાનનો જાણિયેક થયો।

બધ દેવી દીતે ઉરવત થયો તેવુ જ્ઞાન બ્યાદે શકને જામ્મુ ત્યારે દેવદેવીઓ જામ્મુમાં બરકાત થય

दृन्दसमक्षे अर्थधाम=सार्थकं श्रीमहावीरेति नाम कृतम् ।

ततः=चरमतीर्थंकरस्य श्रीमहावीरेतिनामकरणानन्तरं, शक्रो देवेन्द्रो देवराजः पञ्च शक्ररूपाणि वि-
करोति=वैक्रियशक्तयोत्पादयति, तत्र=पञ्चानां शक्ररूपाणामध्ये एकः शक्रो भगवन्तं तीर्थंकरं=चरमतीर्थंकरं श्री-
महावीरं करतलसम्पुटेन गृह्णाति, एकः शक्रः पृष्ठत आतपत्रं=उत्रं धरति, द्वौ शक्रौ उभयपार्श्वे=वामदक्षिण-
पार्श्वद्वये चामरोत्क्षेपं=चामरवीजनं कुरुतः । एकः=अपरः-पञ्चमः शक्रो वज्रपाणिः=वज्रहस्तः पुरन्दर इन्द्रः
पुरतः=अग्रे प्रवर्तते=प्रचलति ।

ततः शक्रो देवेन्द्रो देवराजः चतुरशीत्या=चतुरशीतिसंख्याभिः सामानिकसाहस्रीभिः=सामानिकानां

कर भगवान् का देवगणों के सामने 'श्रीमहावीर' ऐसा सार्थक नाम रखला ।

चरम तीर्थंकर का 'श्रीमहावीर' ऐसा नाम रखने के पश्चात् शक्र देवेन्द्र शक्र देवराजने शक्र के पाँच
रूपों की विकुर्वणा की-पाँच रूप बनाये । उन पाँच शक्र के रूपों में से एक शक्रने भगवान् को
अपने करसंशुट में लिया, दूसरे शक्रने पीछे से छत्र धारण किया, दो शक्रों ने दाहिनी और बाँई ओर
चामर पीजना आरंभ किया । एक-पाँचवाँ पुरन्दर इन्द्र हाथ में वज्र लेकर आगे-आगे चले ।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र चौरासी हजार सामानिक देवों के साथ, तैत्तिस त्रायस्त्रिंश देवों के

गया. अन्धियेकी कृपा पूरी थता, मोटा समुहाथनी वन्द्ये 'भगवाननुं' नाम 'महावीर' राभवाभां आवे छे'-
ज्येवी हिन्य घोषणुा करी शकेन्द्रे सर्वने न्गणु करी, अने आ न्गणु करतांणी साथे, भगवानना अतुलशणनुं विवरणु करता
गया, अने 'क'प' थवाता करणु। पुट्ठा करी, हरेकने समन्गणु आपता गया.

"भाणयणुभांज पोताना पराक्रमने, आपणुने परथे भताब्धे, ने आ न्गणवभा, पोताना पूवे' करेत्त शुभा-
शुभ क्रमोना, वीरतापूर्वक सामने करी, पुड्ढा करी नाथथे, ने ते कर्म' यकथूर करवाभां अनंत सडनशक्ति
धारणु करी, अने प्रगट करी, साथे आवेला उपसर्गा अने परीषडोने, आनंदथी वधावी देखे, भाटेज आ प्रभुनुं
नाम नास्तबिकरीते शुषसंपन्न 'महावीर' छे।' नोभ्ये"-ज्येभ दढतापूर्वक न्हिरात थतां ते 'नाम' ने सर्व देवाज्ये
वधावी लीधुं.

शकेन्द्रनी पासे केट्ठे। देवसमुहाथ हतो तेनुं वणुन करतां टीकाकार कहे छे इ चोरासी हज्जर सामान्य

देवनां सत्त्वैः, 'यावत्'-पदेन "अवर्तिष्यता आयासितकौ, चतुर्मिलौक्यासैः, अष्टाभित्त्रमरिपीभिः सपरिवारमिं, विष्टभिः परिवर्तिभिः, सप्तद्विनीचपिपिभिः, वतद्यभिः चतुर्द्वीत्याऽऽत्तरप्रदेशसारसीभिः (पट्टत्रिभुजसत्त्वान् पितृसप्तप्रपेय)-इत्येषां सप्तत्रयः, जन्मैः=वर्तितैः। अवनपितृव्यन्तरव्योतिषिचैरुमानिकैः वयैः देवीभिश्च सार्धैः=सप्त संप्रतिष्ठः=शुक्लः, सर्वद्वर्षा 'यावत्' पदेन-'सर्वपुत्र्ये'-स्यादि 'भारता इदयोद्यासेने'-त्यन्तानां सप्तद्वयः, स चापैव द्वे पूर्वकुलोऽवसेषे। प्राणा=उचै रवेण=मेयोधिबन्धनेन, तथा=युर्वोक्या मसिद्वया वा उत्कृष्टया=उत्तमया, 'यावत्'-पदेन स्वरिण्या=उत्कृष्टावद्याच्छीघ्रया, आन्तराभियाप्योऽप्येया भवतीत्याह=व्यस्यया=काय-वोऽपि वक्ष्यन्त्या, चक्षया=उन्नयाऽऽसुक्ष्मवर्णयोगेन, सिंघा=सिंहसहस्रया त्वारण्यैर्येयैः, उद्धतया=दर्पातिशयेन

साध, चार ओक्कपलों के साथ, जाठ सपरिवार यष्टमरिपियों (पटरानियों) के साथ, तीनो परिपदों के साथ, सात बनीकों के साथ, सात बनीकापिपितियों के साथ, चार बीतासी हजार आत्मरसक देवों के साथ (अर्थात् तीन छात्र लक्षीस हजार आत्मरसक देवों के साथ), और इनके अतिरिक्त मदनपति, व्यन्तर, ल्योविकल एवं वैमानिक देवों तथा देवियों के साथ, सर्वस्रद्धिसहित, सर्वपुनिसहित सर्वबलसहित, सर्वसमुद्रय सहित, सर्वोदरसहित, सर्वविद्युतिसहित, सर्वसमादरसहित, पुण्यसहित, सभी प्रकार के गंध, माल्य और अन्नद्वार की शोभा से युक्त होकर, तथा क्षिप्य चाणों की ज्वनि से, मधवी क्रुद्धि से, महान् मानसिक उच्छास से और मेरी भादि राजों के मन्त्राग्नि से युक्त होकर, उत्कृष्ट, स्वरित-उत्तंठा के कारण क्षीघ्रगतावली, आन्तरिक अभिप्राय से भी यह होती है इस कारण कहा है-वपणा, अर्थात् काय से भी

हृदयान् देवा इत्य, तेन्द्रीय नावस्त्रिय देवा इता, चार दोषायाह देवा इता, आह आग्रभद्विभोजो तेभना परिवार आह इती, यद्य परिपदो इती, सात अनीकापिपितियों (सिन्धुपितियों) जने शोरास्त्री इत्यह आत्मरसक देवा इता।

जा अत्रत परिवार उपरान्त, भूज जन्म या इत्यान्मा शुक्ल, चार भतना देवा, देवीज्या, भवनपति विजेश्वर पञ्च दोषाह इतां। जा अन्तररसक आधारीक पूज्य शीते दिग्ग वाद्यत्रा आदिनी साथे अन्न शर्मा, पूज्य शीते शोभाकमन कर्ष, भानसिंह उवकाय जने उदंठा धारण करी, इत्या-पूज्य कल्याणने कर्षने पात्रा आपवा आन्मा। उपरान्त आधारीकभा देव-देवीज्यानी कालवी इती (१) वपणा (२) जन्म, (३) उश्म, जने (४) जन्मा जा आह भद्विज्या देवीने परकी ज्ञेयने कि वपणा जेहरे अन्धवी आ पात्रा, आह जेहरे उवर्तताप गति, वम जेहरे

वेगवत्या, जयिन्या=जयशीलया, छेक्या=निपुणया दिव्यया=अद्भुतया, देवगत्या=इत्येषां सङ्ग्रहः। यत्रैव=यस्मिन्नेव प्रदेशे भगवत्स्तीर्थंकरस्य जन्मनगरं, तत्र यत्रैव=यस्मिन्नेव स्थले जन्मभवनं=जन्मग्रहम्, तत्र यत्रैव=यस्मिन्नेव स्थाने तीर्थंकरमाता=श्रीवीरजननी त्रिशलाऽऽसीत्, तत्रैव=तस्मिन्नेव स्थाने उपागच्छति, उपागत्य भगवन्तं तीर्थंकरं मातुः=त्रिशलाख्यजनन्याः पार्श्वे स्थापयति, एवं=पूर्वप्रकारेण भगवत्स्तीर्थंकरस्य वीरजमन्याः, अवस्वापनीं=शयनकारणभूतां निद्रां प्रतिसंहरति=अपनयति, एवं=पूर्वप्रकारेण भगवत्स्तीर्थंकरस्य जन्ममहोत्सवं कृत्वा सर्वे इन्द्राः सर्वे देवा देव्यश्च यस्यामेव दिशि प्रादुर्भूताः=प्रकटिताः, तामेव दिशं प्रतिगताः=प्रतिनिवृत्ताः ॥सू०६६॥

मूलम्—तए णं उदंचंतउस्सवो सिद्धत्थभूवो पच्चूसकालसमयंसि पमोय-कयंव-मोयग-पहुजम्मण-सूयग-जायग- निउरवं देणसेणपराभवसुणं करीअ। नागरियसमायवणमवि रायराय-कमला-विलास-हास-वसु-सलिलाऽऽसारेहि फारेहि दुक्ख-दानानल-समुज्जलंत-कीलकवल-पवल-मयाओ विमोइज्जण उब्भिभंदताऽमंदा-नंद-कंदं-कुर-पूरं करीअ। कारागार-निगडिय-जणवारं च निगडाओ मोईअ। उत्तरोत्तरोल्लसंतपत्ताहेण उस्साहेण तं खत्तिक्कुंडगांमं नयरं सव्विभतरत्ताहिरियं आसित्त-संमज्जिओ-वलित्तं संघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महा-

चंचल, वण्डा-उत्कर्ष के योग से चंड, उग्रा-सिंह के समान दृढ़ता एवं स्थिरतावाली, दर्प की अधिकता के कारण उद्धत, जयिनी-जयशीला, निपुण तथा अद्भुत देवगति से जहाँ भगवान् तीर्थंकर का जन्म-नगर था, और जिस जगह जन्मग्रह था, तथा जहाँ तीर्थंकर महावीर की माता थीं, उसी स्थान पर (शक्र) आये। आकर भगवान् तीर्थंकर को त्रिशला माता की वगल में स्थापित कर दिया। स्थापित करके पहले दी हुई माता त्रिशला की अवस्वापनी निद्रा को दूर कर दिया।

इस प्रकार भगवान् तीर्थंकर का जन्ममहोत्सव करके सभी इन्द्र, सभी देव और सभी देवियाँ जिस दिशा से आये थे-प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये ॥सू०६६॥

सिंहनी सामान दहता अने स्थिरतावाणी तथा दर्पवाणी, तथा ओटहे नयशीला, तथा अद्भुत-देवगतिवाणी गमन करीने, देवे। जन्मभवनमां पहोअया, लगवाने भातानी गोदमां स्थापित करी, पोतानी इरअ यथायोग्य अल-वाध गंध तेने। आनंद अने उत्साह लध, देवे। पोतपोताना स्थाने नवा विहाय थया. (सू०६६)

पर-परेषु सिष-सुर-संगह-रस्यतगा-यज-नीरियं गंधार्द्रमेषकलियं
मातृछोऽगमजुषं गोसीस-सरास-रत्नवंदण-द्वार-दिस-पंचगुलितलं
तोरण-पटिदुवार-देसमाग आसणो-यसच-बिउल-अ-वधारिय-भट्टाराम-कलायं पंचवक्क-सरस-सुरारि-मुक्क-
पुष्पजुओ-वयार-कलिय कामागुह-पवार-कुदक्क-पुल्ल-यूय-उज्जंत-यक्कसवत-गयुवपूया-भिरामं सुगंयवर
गेपियं गंपवट्टियं नह-उदग-भट्ट-भट्ट-मुट्टिय-वेल्लवग-पयग-काग-पावग-सासग-आरक्कसग-संन-तुणइह-
उंपरीणिय-अणेगतापारा-जुनरियं कारावेइ । जूयसइसस मुक्कसइससं च अयाइसा पगओ ठवावेइ, जण
मसिस्स मरोच्छनसि कोवि सगरे वा इहे वा ओ वाइउ, नो वा मुसठेरि किंचिपि लंठउणि । सु० ६७॥
छाया-उतः तल्ल उदइउत्सवः सिद्धार्थपुपः मय्यपकात्सयणे

छाया-यतः तल्ल उदञ्जदुस्सवः सिद्धार्थेषुपः मत्तूपफाल्मसमये प्रमोद-कदम्ब-मोचक-प्रभुजन्मसुचक-यान-
वह-निङ्गारम् दैन्य-सैन्य-पराग्रह-शून्यमहरोत् । नागरिकसमाजवनमपि रामरान-कमला-विद्यास-वास-वसु
सत्सिमा-ऽसुरैः स्फुरैः दुःख-दाषानल-सङ्गुञ्जकश्चक्रीकवल-प्रबल-मयात् विमोच्य उद्दिन्यद-मन्दान-नव-

मूल का अर्थ—‘एष जं’ इत्यादि। तत्पश्चात् रामा सिद्धार्थने उक्त्व मनाना आरंभ किया। माता-कात् होने पर उन्होंने जानन्द के समुदाय को देनेवाले मष्ट-जन्य के सूचक अन्तःपुरके श्रुत्यों के तथा याचकों के समूह को दैन्योन्त्य के परामर्श से शून्य कर दिया—मगवान् के जनके एवंके उपलक्ष्य में मष्टजन्य सूचक अन्तःपुरके दासदासियों को और वृद्धों को इतना दान दिया कि उनकी इच्छिता दूर हो गई। नागरिक-समान स्त्री वन को भी, कुंभर की सम्पदा का उपयोग करनेवाले वनरूपी पानी की विशाल धाराओं से वर्षा करके, दुःखरूपी शवानल की आश्वस्त्यमान शिलाओंका आस बनने

મૂળનો અર્થ—“તપશ્વ” કન્યાદિ. શબ્દ ચિદાકે. શબ્દ ઉત્પન્ન મનાવવાનું થયું કેમ? પ્રાપ્તશબ્દ થતાં, પ્રભુના આત્મ, ને તેઓની હૃદયની કૃપાથી વીધુ-શબ્દ-વાસી નોકર-આકર વિશેષને અલગ કરી દેવા નામચિહ્નની દરિદ્રતા દૂર કરવા કૃષિના બંધારને પશુ પરી જાળ તેવો તેમનો બંધાર હતો. આ બંધાર મહિન પદ, વરસાદની ખાસબોની ખાસ વહેવ યજમાન આત્મ આ પદ દાસી કાંઈક નહોતી. આ બંધાર મહિન

कन्दाकुर-पूरमकरोव, कारागार-निगडित-जनवारं च निगडादमोचयत् । उत्तरोत्तरलसत्प्रवाहेणोत्साहेन तव क्षत्रियकुण्डग्रामं नगरं साभ्यन्तरवाह्यम् आसित्त-संमार्जितो-पलितं शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु सित्त-शुचि-संगृष्ट-रथ्यान्तरा-ऽऽपण-वीथिकं मञ्चातिमञ्चकलितं नानाविध-राग-भूषित-ध्वज-पताका-मण्डितं लेपोल्लेपयुक्तं गोशीर्षि-सरसरक्तचन्दन-प्रचुर-दत्त-पञ्चाङ्गुलि-तलम् उपचित-चन्दन-कलशं चन्दन-घट-सुकृत-तोरण-प्रतिद्वार-देशभागम् आसक्तोत्सक्त-विपुल-वृष्ट-पलम्बित-माल्यदाम-क्रयपं पञ्चवर्ण-

के प्रवल मय से युक्त करके उत्पन्न होने वाले असीम आनन्द-कन्द के अंकुरों के समूह से युक्त कर दिया । कैदवाने में रहे हुए कैदियों की वेडियाँ खुलवा दीं । उत्तरोत्तर बढ़ते प्रवाहवाले उत्साह के साथ क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगरी को भीतर और बाहर खूब सौचा, झाड़ा और लीपा हुआ करवाया, अर्थात् सजवाया । शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और पथों में, रथ्याओं के मध्यभागों तथा बाजारकी गलियों में सिंचन करवाया, इनकी सफाई करवाई, मचानों और मचानों पर मचानों से युक्त कर दिया । तरह-तरह के रंगों से शोभित ध्वजाओं एवं पताकाओं से मण्डित करवाया । गोवर आदि से लिपवाया, खड़ी आदि से पुतवाया । गोशीर्षचन्दन तथा लालचन्दन के बहुत से हाथे लगवाये । चन्दन

ने गरीब वर्गों ने आर्थिक लयमांथी, हंभेथने भाटे सुकत कथो, ने आ वर्गमा आनंदना अंकुरे। डूटवा दाभ्या.

नेकना डेहीओने भधनसुकत कथां, उत्तरोत्तर उत्साह वधासीने, नेटला अथे गरीब-गरभाने धन द्वारा संतोषाय, नेटला अथे संतोष्या.

क्षत्रियकुंडग्राम नगरने गडारथी अने अंहरथी, साक्षसूक्ष्म करी, तभाम प्रकादे सुशोभित भनाब्धुं. शहरनी इरती दिवालो रंगावी-घोणावीने आकर्षक रीते थीतरी. अंहरना रस्ताओ बेवा डे शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ, पथ, रथ्या विजेरने साक्ष करी, तेना परना क्यारोने हर करी पाणी छंटाब्धुं.

शहरनेो मध्यभाग, भजदेश अने गली-थुंथीओमांथी गंधवाड विजेरे हर करावी, तेनी पर पाणीनुं सियन कथुं, ने डउती धूण अने तेनी र्नेनेने मेसाडी दीधी. ध्वजओ अने पताकाओ वडे, शहरनी शोभाभां वृद्धि करी, उत्तम प्रकारना रंगरोगान वडे दिवालो अने कभाडे घोवाब्ध्यां अने रंगाब्ध्या. गोशीर्षचन्दन अने साक्षचंदनना थाया हरेक भारी भारवा उपर लगान्यां, ने चंदनथी सुगंधित भनावेला इणशो, हरेक चेही, डुकानो अने कार्यालय-क्येरीओमां भूकान्या.

सास-मुनिमुक्त-गुणपुञ्जो-यवार-कलितं कालागुरु-मपरकुन्दरक्त-तुरक्त-धूप-वशमान-मसरद-नान्वोदधुता-
 भिरामं युगन्त्यवरगन्धितं गन्धर्वतिथल नट-नर्तक-ग्रह-ग्रह-मौष्टिक-विलम्बक-द्रावक-रूपक-पाठक-सासका-
 ऽऽसक्त-सद-दृष्टानुधुधरीयिका-नेकालसारा-नुचरितं कारयति। गुणसाक्ष सुखसरस व भानाथ्य पश्य
 स्वापयति, यत् सद्यः भस्मिन् मशोत्सवे फोडपि छट्टानि वा ह्मनि वा नो वाहयतु, नो वा सुखै किञ्चित्
 लब्धयतु-इति ।।पृ० ६७।।

से त्रिद्व कलत्र स्थापित करताये। द्वार द्वार पर चन्दनस्मि घटों स रमणीय शोण बनवाये। नीचे से
 ऊपर तक के माग को स्पर्श करने वाली विस्तीर्ण गोल और छम्पी फूलमाळाओं के समूह से सुशोभित
 करताया। नलने वाले उपम काळे अगर, कुन्दुरक्त (पीङ्गा), तुरक्त (लोभान) तथा धूप की फैलती हुई
 गंध के प्रसार से रमणीय कराया। तबम धूपों की गंध से सुगन्धित करताया। गंध की च्दी के समान
 बनवाया। नटों, नर्तकों, जहों, मछों, मीटिङों, विस्मयकों, प्यासकों, कयकों, पाठकों, सासकों, मासकों,
 खिलों, दृष्टान्तों, सम्प्रदीपिकों तथा अनेक तालवतों से युक्त कराया। इनतों क्ये तथा इनतों मूसल
 मंगलकार एक नगर रत्ना दिये कि इस मशोत्सव के अवसर पर कोई गाड़ी या हल न जाये, और न
 मूसलों से कुण कूटे ।।पृ० ६७।।

इस वस्त्रा इत्यादि इत्यादि, बहुतसी देयमेवा बढानेला तोरखे। ज्वाला, तोरख पद, नीचे उपर
 बढावटी बांणी अने प्देवटी इदमाळावा लटकाववाभां आवी. एकराओ देवोनी शोभावटे आ तोरखेने विशेष
 योनिद धर्मा आ देवोनेम रम अने सुगंध वस्त्रा उम हवां।

इस देर उत्तम अमलपत्ती कुन्दुरक्त (पीङ्गा), तुरक्त (लोभान) नी छ्पी अनावन्वाजा धूपे अणभाववाभां
 आला, आ धूपोभां पश्य कति सुगंध छुटे तोर्वा खिली ललारववाभां आला सच न लब्धे सुगंधु न साआल
 होम। दोरी सुवास देवाववाभां आनी।

दोरीमे दोरीमे अने उदीमे-अलीमे, नट-नर्तक-असक्त मश-मौष्टिक-विह लक-आवाक-इयक-पाठक-सासक
 आवाक-संन पक्षायत-सुअवीखिड तथा अनेक पावकथे द्वाववाभां आला।

कनदेश लेवतों अने कनदेश सजियां, आआमे आभभांणी ललानी बीभां, अने अने ठेकावे अलवां दोनां
 धर्मां भवकल जे हवां के, जेवी ललवानना न भवकलसवना मुल ललसर उपर ठावपल जलकने कल के भाव

टीका—‘तए णं उदंचंत-’ इत्यादि । ततः खलु उदञ्चदुत्सवः=उद्यदुत्सवः सिद्धार्थभूषः प्रत्यूपकालसमय=प्रातःकालावसरे, प्रमोद-कदम्ब-मोचक-प्रभुजन्म-सूचक-याचक-निकुरम्बं, तत्र-प्रमोदकदम्बमोचकम्=आनन्द-वृन्ददायकं यत् प्रभुजन्म तस्य ये सूचकाः=ज्ञापका याचकाः=भिक्षुकाश्च तेषां निकुरम्बं=समूहं, दैन्यसैन्य-पराभवा-शून्यं=दाद्रिच-रूप-सैनिक-पराजय-रहितं-दाद्रिचमुक्तम्, अकरोत् । तथा-स नागरिकसमाजवनमपि=नगरवासि-जनसमूहरूपवनमपि, राजराज-रमला-विलास-हास-वसु-सलिला-ऽऽसारैः-राजराजः=कुबेरः, तस्य या कमला=लक्ष्मीः-सम्पत्तिः, तस्या यो विलासः=विलासनं, तं हसतीति तादृशं यद्वसुधनं तद्रूपं यत्सलिलं=जलं तस्या-ऽऽसारैः=धारासम्पातैः, तैः कीदृशैः? इत्याह—स्फारैः=विशालैः, दुःख-दावानल-समुज्ज्वलत्कील-कवल-प्रवल-भयात्-दुःखमेव यो दावानलौ=वन्यवह्निः तस्य यः समुज्ज्वलन्=ज्वलन् कीलः=शिखा-ज्वाला तस्य यत् कवलं=ग्रसन तस्मात् यत् प्रवलं=पक्रुष्टं भयं तस्मात्, त्रिमोच्य=पृथक्कृत्य, उद्भिन्दद-मन्दा-ऽऽनन्दा-ङ्कुर-पूरम्-उद्भिन्दन्=प्ररोहन्-उत्पद्यमानः अमन्दाऽऽनन्दाङ्कुरपूरः=अतिशयितप्रमोदरूपाङ्कुरसमूहो यस्य यस्मिन् वा ताद-

टीका का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । त्व राजा सिद्धार्थ उत्सव मनाने के लिए उद्यत हुए । प्रातः-काल के अवसर पर उन्होंने आनन्द के समूह को देने वाले भगवान् के जन्म को सूचित करने वाले दया, अन्तःपुर के दासदासियों को तथा भित्तिारियों को दीनतारूपी सेना के पराजय से रहित कर दिया, अर्थात् सदा के लिए उन्हें दरिद्रता से मुक्त कर दिया । तथा नगर-निवासी जनसमूहरूपी वन को भी कुबेर की लक्ष्मी के विलास का उपहास करने वाले, अर्थात् अत्यधिक, धनरूपी जल की विशाल धाराएँ बरसा कर, दुःखरूपी दावानल की जलती हुई ज्वालाओं का ग्रास होने के प्रवल भय से मुक्त करके, उत्पन्न होने वाले अतिशय प्रमोदरूपी अङ्कुर-समूह से सम्पन्न कर दिया । अभिप्राय यह है कि सिद्धार्थ राजाने कुबेर के धन से भी अधिक धन देकर नागरिक जनों को दरिद्रता के दुःख से रहित

टीकानो अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । भाषायने पोताना पुत्रनो जन्म-उत्सव उज्जववाभां आनंद होयन्, यथु आवा होकिनाथ यवाणा पुत्रनो जन्म-उत्सव उज्जववाभां तो आशु-ये राष्ट्र तैथार थछ गयु. राजन्ने, पोतानो-अन्ननो खुल्लो भूझी दीधो, ने गरीभवर्गना दुःखो भटाडवाभां झंघपणु भणु राभी नहिं. पोताना आशये पडेवा नोकिरीयात वर्गने तो, राजन्ने न्यास करी दीधो, ने तवंगरनी कक्षाभा ते सर्वने सुझी दीधो.

सप्त अक्रोद। सिद्धार्थो राजा वैश्रवणपुत्रादिद्विषयिषयदानेन नागरिकजनान् क्षात्रियदुर्गलरहितान् कृत्वाऽमन्त्रा-
 नन्दपुत्रान् अक्रोदिति भावः। स सिद्धार्थराजः पुनः कारागार-निगडित-जन-वारं कारागारे निगडितान्
 नियन्त्रिता ये जनाऽभ्यपरापितो लोकाः तेषां वारं-समूह च निगडात्-वृक्षगतः अमोचयत्=मुक्तकरायत्।
 पुनः स उपरोचरोद्धतप्रवारेण-उचरोचरयत्=अमन्त्रः उद्धतसन्=वर्षमानः प्रवारेण-वारा यस्य वादनेन, उत्सारेण=
 अयवसायेन, तत्=यसिद्धं सभियकुडग्राम नगरं साम्यन्तरवाङ्मय=वश्यन्तरे वरिम आसिक्त-संमार्निवो-पस्मि-
 पूर्वमासिक्तं नष्टेन पुसिष्टमनाय, तदा सम्मार्जितं=संशोधितं मार्जन्या, तदा उपस्मिन्=गोमयपुचिकार्यां यत् वादस्य,
 तथा-वृक्षटक्=त्रिक्त-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुल-महापय-पयेयु, तत्र-वृक्षटक्=भिकोजस्यानय, त्रिक्त=मार्गत्रयमिक्त-
 स्यानय, चतुष्क=मार्गचतुष्टयमिक्तमस्यानय चत्वर=चतुर्मुखमिक्तमस्यानय, चतुर्मुलं=चतुर्द्वारस्थानं, महापयः=राजमार्गः,
 बना दिया, और तीव्र आनन्द से युक्त कर दिया। इसके अनिश्चित सिद्धार्थ राजाने कारागार में कैद किये
 हुए जो अपराधी जनों के समूह थे, उनको चेदियों से मुक्त करा दिया।

राजा सिद्धार्थ के उत्साह की वारा उपरोचर बढ़ती जा रही थी। उन्होंने सभियकुडग्राम को
 भीतर से भी आर बाहर से भी खूब सनवाया। परछे पूल को ज्ञात करने के लिए जल से
 सिंचवाया, फिर पुनारी से झकवाया और फिर गोबर तथा मृषिका से छिपवाया। वृंगटक (विक्रोने स्यान्),
 त्रिक्त (तीन रास्तों का संगमस्थल), चतुष्क (चार मार्गों के मिलने का स्थान-चौराहा), चत्वर (बहुत रा-
 स्तोंका संगम स्थल), चतुर्मुल (चार द्वारों वाला स्थान), महापय (राजमार्ग) और पय (सामान्य रास्ता) में

बन्धनपूर्वक सुधीनी श्वेद शिक्षाओं पक्ष आये करवाया आधी, अने श्वेद देवीने, इरीषी डेहल अन्धकार
 लेखभां अन्धकार लेखों न थाय ते अर्थ आधिक भव अने धमा शब्दार्थ (विशेषनी विपुल प्रभावार्थ
 अत्रवदल्लो आधी लेख-पक्षीको पक्ष, आनदधी नाभी छेदा, अने पोतायु आधीतु छपन सु हर रीते
 विद्यावध तत्पर श्यां।

आ उपर्युक्त अनेक आनन्दान् कुटुम्बिनी अरीण अन्धितलोने, लेखले तोरवा प्रभावार्थ अन्ध रीते अन्ध
 धन आधी स रत्नियान जनाया लेने पक्षिसे, तेमनी छे श्वेदनी अण् आधी।
 नन्धन-न सन्धनदेह श्वेदलीको पक्षम-पक्षी उच्छन्नशब्दाको अने अने अने अन्धितलोने अने अने अन्धितलोने

पन्थाः=सामान्यो मार्गश्चेतेषु=एतद्वच्छेदेन, सिक्त-शुचि-संमृष्ट-रथ्यान्तराऽऽ-पण-वीथिकं, तत्र-सिक्तानि=आद्री-
कृतानि शुचीनि=पवित्राणि संमृष्टानि=शोधितानि च रथ्यान्तराणि=मार्गमध्यानि आपणवीथिकाः=हट्टमार्गौश्च यस्य
तत्तादृशं, तथा-मञ्चातिमञ्चकलितं-मञ्चाः=महोत्सवविलोकनार्थं जनानामुपवेशननिमित्तं मालकाः, अतिमञ्चाः=
मञ्चानामुपरिस्थिता मालकाश्च तैः कलितं=युक्तम्, तथा-नानाविध-राग-भूषित-ध्वजपताका-मण्डितं-नाना-
विधाः=अनेकप्रकारा ये रागाः=रञ्जनद्रव्याणि तैर्भूषिताः=रञ्जितत्वेन शोभिता या ध्वजपताकाः=ध्वजाः=सिंहा-
दिरूपचित्रिता बृहत्प्रमाणा वैजयन्त्यः, पताकाः=लघुप्रमाणा वैजयन्त्यश्च तामिमण्डितं=शोभितम्, तथा-‘लाउ-
छोइयजुजं’ लेपोष्ठयुक्तम्-लेपः=गोमयादिना भूमौ लेपनम्, उल्लेपः=सुधाचूर्णादिना भित्त्यादीनां धवलीकरणं,
ताभ्यां युक्तम्, तथा-गोशीर्षि-सरस-रक्तचन्दन-प्रचुर-दत्त-पञ्चाङ्गुलि-तलं, तत्र-गोशीर्षं=हरिचन्दनं, सरसं

जो भी मार्ग के मध्यभाग थे, तथा बाजार की गलियाँ थीं, उन सबको सिंचवाया, साफ कराया और
शोधित कराया। महोत्सव को देखने के लिए लोगों को बैठने के वास्ते मंच (मंचान) बनवा दिये,
और उन मंचानों पर भी मंचान बनवा दिये। नाना प्रकारके रंगों से विभूषित और ध्वजा-पताकाओं से
मण्डित करा दिया। जिन पर सिंह आदि के चिह्न बने रहते हैं और जो बड़े आकार की होती हैं वे
ध्वजा या वैजयन्ती कहलाती हैं। छोटी-छोटी ध्वजाएँ पताकाएँ कही जाती हैं। इन रंगों, ध्वजाओं और
पताकाओं से नगर को सुशोभित कराया। भूमितल गोबर से लिंपवा दिया गया, और दीवारों पर चूना
आदि से सफेदी करा दी गई। गोशीर्षं=हरिचन्दन तथा सरस लालचन्दन के बहुत से दीवाल आदि

राजकचेरीओ, जहिर भकानेो विगेरेने संपूखुं रीते सुधारी, देनकभां दाववाभां आन्धां.

अभदो-जहिर रस्ताओ तेभज भानगी गृहनी शेरीओना पखु, वाणीओणी सुधध भनावी, सुगंधि द्रव्यो
वडे सिञ्चित करी शहेरने धन-पताका वडे शबुगारबाभां आन्व्यो. जहिर रस्ताना चौटाओभां भंथो अने भांयडाओ
उपर, जहिर जनता मेसी, नाटयारबो-नाटके-मेवो-तभासाओ सुभपूंक जेध शके तेवी व्यवस्थाओ उबी करी.

ध्वज अने पताका उपर चित्र विचित्र चित्राभयो दोरवाभां आन्धां छतां. मोटी ध्वजओने, दोके ‘वैजयन्ती’
कहेता अने नानी ध्वजओने ‘पताका’ ना नामथी ओणभता.

अनेक प्रकारे शहेरना आंतर तेभज आद्य भागोने जेवी सुंदर रीते शबुगार्भां अने बसकाभंध भनाव्या

रक्तपन्दनं च, ताभ्यां 'द्वार'—प्रपुराः=बाहो द्वाः पञ्चाङ्गुलित्वा=स्वकाः कुटपादिषु यत्र तादृश, 'द्वार' इति प्रपुरार्थे येषो ज्ञेयः पुनः=उपनिषत्पन्दनकलसम्=उपचिताः=शुश्रून्तर्माणवतुकेषु स्थापिताः पन्दनकलसः=पन्दनमिदमस्मा यत्र तादृशम्, पुनः=पन्दनघटकुटवोरणमपिद्वारवेषमागम्=पन्दनपटैः मुकुतानि=रमणीयानि शोणानि प्रतिद्वारवेषमगो=द्वारस्य द्वारस्य वेषमगो यत्र तादृशम्, तथा=आसक्तो=स्वक-विपुल-वर्ष-मममिव-मास्यदाय-कलापं, तत्र=आसक्तो=शुभिलम्नः, उत्सक्तम्=उपरि मनो विपुलो=विस्तीर्णो वर्षः=यदुःखः 'दय्यारिये'—मममिवतो मान्यदायकम्प=पुण्यमाभासमूहो यस्मिन् तादृशम्, तथा=दुःख-पञ्चकम्=सप्त-सुरभिषुष्यपुडोपचारकसितै-दुक्ताः=अवकीर्णं ये पञ्चकर्णानां=कृष्णनीसपीतरकयुक्तस्यकर्मण्यपञ्चकवतो सरसानां=द्वतनानां शोसनानां वा सुरभीणां=सुगन्धयुक्तानां पुष्पाणां पुष्पाः=समृद्धास्तैर् उपचारः=द्वीमा तेन कश्चित्=युक्तम्, 'सुप' ज्ञेयस्य मूले भाकृतत्वात् परनिपातः; तथा=कालादृश-प्रवर-कुन्दुरक्त-मुहुरक्त-सुप-प्रमान-न-

स्थान-स्थान पर हाथे लगा दिये। घरों के भीतर, चौकों में चन्दन के छेप से युक्त कलश रखवा दिये। नगर के द्वार-द्वार पर चन्दन-क्षिप्त घंटों के रणनीमि तोरण बनवा दिये। तथा उन द्वारों को, नीचे अमीन से लगी हुई और ऊपर तक पूर्ण हुई श्रुत-सी गोलाकार और सप्ताकार मालाघी के समूह से मण्डित करना दिये, नौ-वौं दिखरे हुए काळे, नीळे, पीले, लाल और शुक्ल-एन पाँच रणों के सुन्दर और सुरभितम्ब गुणों के समूह की ओमा से युक्त करवा दिये।

કર્તા છે, વધીકાર આપણે સીદિવ થઈ જઈએ, અને જમમાં પડીએ છે શું તમા પ્રત્યક્ સ્વપ્ન' હશે કે દેમ? તે જોવાનું પશુ મુશ્કેલ પડે!

[illegible]

પ્રસર-દ્ગન્યો-દ્ધુતા-મિરામં, તત્ર-કાલાગુરુ=કૃષ્ણાગુરુ, પ્રવરકુન્દુરુવકં=વીરગમિધાનં ગન્ધદ્રવ્યં, તુરુવકં=સિદ્ધકં
 ‘લોહવાન’ ઇતિ પ્રસિદ્ધમ્, ધૂપઃ=દશાદ્રાદિરનેકસુગન્ધિદ્રવ્યસંયોગજનિતવિલક્ષણગન્ધઃ, एतेषां दक्षमानानां यः
 પ્રસરન્ ગન્ધઃ, તસ્ય યદ્ ઉદ્ધૂતં=વાયુના પ્રેરિતં સત્પ્રસરણં તેન અમિરામં=શોભનમ્, તથા-સુગન્ધવરગન્ધિતં-
 સુગન્ધવરણાં=શ્રેષ્ઠસુગન્ધદ્રવ્યચૂર્ણાનાં યો ગન્ધઃ, સ જાતો યસ્ય તાદૃશં-પ્રકૃષ્ટગન્ધયુક્તમ્, અતएव-ગન્ધવર્તિभूतं=
 ગન્ધશુદ્ધિકાસદૃશં, તથા-નટ-નર્તક-જહ-મહ-મૌષ્ટિક-વિલમ્બક-પ્રાવક-કથક-પાઠક-લાસકા-Sડરક્ષક-લદ્ધ-
 તુણાત્-સુમ્બવીણિકા-Sનેકતાલચરા-નુચરિતં, તત્ર-નટાઃ=નાટયિતારઃ, નર્તકાઃ=સ્વયં નૃત્યકર્તારઃ, જહ્લાઃ=વરત્રા-

તથા-કૃષ્ણાગુરુ, શ્રેષ્ઠ કુન્દુરુવક (ચીડા-નામક ગંધદ્રવ્ય), તુરુવક-(લોવાન), તથા ધૂપ-દશાંગ આદિ,
 જો અનેક સુગંધિ દ્રવ્યોં કી મિલાવટ સે વનતી હૈ, ઓર जिसकी गंध विलक्षण होती है, इन सब के
 जलाने से उत्पन्न हुई गंध, हवा से चारों ओर फैल रही थी, और इस प्रकार सारे नगर को मनोहर वन-
 वाया। वटियाँ सुगंधित चूर्णों की गंध से भी सुगंधित कराया, अर्थात् नगर को उत्कृष्ट गंध से व्याप्त
 करवा दिया। इस कारण वह ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे गंध-द्रव्य की वड़ी हो।

તથા-નટ, નર્તક (સ્વયં નાચને વાલે), જહ્લ (વરત્રા પર-રસી પર સ્થેલ કરને વાલે), મહ્લ, મૌષ્ટિક

સુગંધિ દેલાવવા માટે, કથી પણ ક્યાથ રાખી ન હતી. સુગંધિ-જળના છંટકાવ ઉપરાંત, સુગંધિ ધૂપો
 અને ઉંચી ઊંઘનાવટની અગરબત્તીઓ, વૃણોં તેમજ સુગંધી દ્રવ્યોના તે કોઇ હિસાબ રાખ્યો જ ન હતો.
 આખું શહેર મહેક-મહેક બની રહ્યું હતું, તે ખુશબોની સુવાસ ચોમેર પથરાઇ રહી હતી. મધમધાયમાન થયેલું
 સમસ્ત પાટનગર, સુગંધને લીધે, મહેકી ઉઠ્યું હતું.

લોકોને જમવા માટે, રાત્રીના રસોડાં ખુલ્લાં મૂકી દીધાં હતાં. જ્યાં સુધી ઉત્સવ ચાલે ત્યાં સુધી, કોઇએ
 પણ પોતાના ઘેર, રસોડા કરવાની હતીજ નહિં, જમ્યા પછી, આનંદ પ્રમોદ માણવા, ઠેર ઠેર ચોકમાં મંચો ગોઠવી
 દીધા હતા તે મંચો ઉપર ભેસી, લોકો પોતાને યોગ્ય લાગે તે ભાતની કલાઓ ભેધ શકતા.

આ કલાઓનું પ્રદર્શન દિવસ-રાત ચાલુ રહેતું હતું. કલાઓના પ્રકારો ઘણા હતા તે તે કલાઓના નિષ્ણતો.
 લોકોમાં ખુંદા ભુદા નામથી ઝોળખાતા હતા.

વેષ પરિધાન કરી, કોઈ પૂર્વે થઈ ગયેલ વ્યક્તિના ચિતાર રબુ કરનારને લોકો ‘નટ’ તરીકે ઝોળખતા.

उत्प्लेखः (रक्तूपरि खेडकाः), मल्लः=मसिदाः, मूर्ष्टिकाः=दृष्टिपराका मल्लगतीयाः, विलम्बकाः=विदूषकाः -
 मुत्तविकारादिना जननां हास्यकारिणः, हास्यकाः=वर्णावुल्लुङ्घयितारः, कथकाः=सरसकथावकारः, पाठकाः=
 सुकाशीनां पठितारः, सासकाः=रासमानकारिणः, आसकाः=रसकाः-“सिपाही”-ति मापासमिदाः, मल्लः=वंश-
 प्रलेखकाः, मन्त्रीयिकाः=वीणावादकाः, मनेकवालधराः=मनेके=मन्त्रो ये वालधराः-तामिश्चरन्ति ये ते तया-
 तालदानेन प्रेसाकारिणः, यथा-तालान् कुट्टयन्तो ये कथां कथयन्ति ते तालधराः, वैरनुचरिते=संयुक्तं

(द्विसे-बाबी करने वाले एक प्रकार के मल्ल), विलम्बक (विरल-मुलविकार आदि करके जनता को
 रसाने वाले), प्लेखक (समांग मार कर गड़रे आदि को रसाने वाले), कथक (मजेदाग कसानी करने
 वाले), पाठक (मुक्तिप्राप्त सुनाने वाले), सासक (रस-गान करने वाले), आसक (शुभाशुभ कुतूहल करने
 वाले नैमिषिक) सत्त (सत्त के ऊपर खेल करने वाले), रूपावन्त (तृणा नामक वाना बनाकर किया करने
 वाले)-इन सब से त्मार को युक्त करवाया।

रम्य नाम भवया वाणाने नृत्यकारं कहेता. का नृत्यनी कला, श्री तेमल पुरम वन्ने कलवी शाल्यां, तेवी पुरम
 कलाधरने 'नृत्यकार' कहेता कहेता अने कीने 'नृत्तिम' कहेता 'रथी' पर हुवा बायो 'अष्ट' कहेवाते. वाहुमज मताववा
 बायो 'अष्ट' तदीह जेजजताते. ठोश भासवार्मा कुयल ठोश तेने 'भौटिक' तदीह जेजजताते. शोदाबी
 विष्टु काव प्रजद करवा बाणाने, 'विद्वज' कहेता. कलाधरने 'विद्वज' कहेता. कलाधरने 'विद्वज' तदीह
 जेजजताते. बाण्य कादने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता.
 तदीह जेजजताते. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता.
 कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता.
 कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता.

कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता.
 कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता.
 कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता.
 कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता.
 कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता. कलाधरने 'कला' कहेता.

कारयति, तथा-यूपसहस्रं=युगसहस्रं, मुशलसहस्रं=मुशलानि प्रसिद्धानि, तेषां सहस्रं च आनाय्य, एकतः=एकपाश्वे
स्थापयति। अत्र हेतुमाह-यत=यस्मात् खलु अस्मिन् महोत्सवे=श्रीमहावीरप्रभुजन्मनिमित्तमहोत्सवे कोऽपि जनः
शकटानि वा हलानि वा नो वाहयतु=दृष्टभावादिना न चालयतु, मुशलैर्वा किञ्चिदपि धान्यादिकं न खण्डयतु=

विदलयतु-इति ॥ सू० ६७ ॥

मूलम्-तएणं सा ललिय-सीला-लंक्रिय-महिला-गिइ-कुसला तिसला कमणिज्जुणजालं विसालभालं वालं
विलोगिय समुच्छलंता-मदाणंद-तरलतर-तरंग-महासिणेह-वरुणगिह-णिमामज्जमाण-माणसा इत्थी-पुरिस-लक्ख-
ण-गाण-वियक्खणा पईयपुत्तलक्खणा तं थविउयुक्कमित्था-किं गुणगणवज्जिएहिं वहुहिं तणएहिं?, वरमेगोवि
अंतदो कुलकेरवचंदो भवारिसो असरिउज्जलणुणो सुओ, जो पुराकयसुकयकलावेण पाविज्जइ, जेण य गंधवाहेण
परिमलराजी विव माउण्डिपसिद्धी दिसोदिसि विततिज्जइ, सोरब्भ-भरिया-मिलाण-कुसुम-भार-भासुर-सुरतरुणा
नंदणुज्जाणमिव य तेहोक्कं गुणगणेण वासिज्जइ, अतेलपूरेण मणिदीवेणेव य पगासिज्जइ, अपासिज्जइ य
हियदरीचरी चिरंतणाणाणतिमिराई। सच्चं बुत्तं-

पत्तं न तावयइ नेव मलं पसूए,
णेहं न संहरइ नेव गुणे खिणेइ।

तथा-हजारों जूए और हजारों मूशल मँगवाकर एक किनारे रखवा दिये, जिससे कि इस महोत्सव
में, अर्थात् श्रीमहावीर प्रभु के जन्म के उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले उत्सव के समय, कोई भी मनुष्य
गाड़ी और हल न जोते, तथा किसी भी धान्य आदि वस्तु को न कूटे, अर्थात् सभी लोग उत्सव में
सम्मिलित होकर आनन्दका उपभोग करें ॥ सू० ६७ ॥

भांडवुधियाभा अनाब्ब विगेदे भाडवाथी आरंल थाय, ते आरंभने रेडवा भाटे साणेला विगेदे
राब्भभेडलभा सूडाव्या.

डाडपसु नतना डामभाथी युक्त होय तो, मनुष्य जन्म-महोत्सव भाषी थडे को धरादाथी, सर्व नतना
व्यापार थ थ करेववा, उत्सवभा भाग लेवा रान्य तरक्षथी ढढेदे गडार पाडथानुं सयन कसुं. (सू० ६७)

दृग्वावसाणसमए चलयं न धाइ,
पुत्तो इमो कुलनिहे किल को वि दीवो ॥ १ ॥
दमो नोपवरुणपणुभो मुभो पधूपणमोयं जणपय । अवि य—

सीयल चंदण वुत्त, तओ चंदो सुसीयलो ।
चदचदणओ सीओ, मह णदणसगमो ॥२॥
सिया उ महुरा नूण, सुहाद्धमहुरा तओ ।
तेहिं वि अस्त यालस्त, सगमो महुरो मह ॥३॥

कणग मुहय लोप, रयण च महासुह ।

तेहि वि य महासोम्वो, अस्स बालस्स सगमो ।४॥ सु० ६८ ॥

छाया—इतः खलु सा सखित-दीप्ता-सङ्कृत-परिष्ठा-कृति-कुञ्चला विद्वत्ता कर्मनीयगुणजातं विद्वत्सा-
 मात्रं धामं विनीतय समुच्चक्ष्ण-भन्दा-नन्द-चालतर-गङ्गा-पादसेन-वल्गुशुभ-निर्मापस्यमान-भानसा स्त्री-युक्तप-
 क्षसमाधान-मदिवत्सवा प्रसीतपुष्पलक्षणा तं स्तोत्रद्वयवक्रमे-किं गुणगणवर्तिनैरनल्पेऽपि तनूयैः, वरमेकोऽप्यतन्द्रः

प्रत्यर्थ—‘अहं मलिनपत्नीधार्मिक्य’—स्वयम्भिः। फिर उत्सव की समाप्ति के बाद वह शीघ्र से सुन्दर, मरिचिकाओं के कर्णन्य में कुशल, उलझती हुई अर्पित-वैश्व आनन्द-रूपी शरीरों से युक्त महाशक्तिरूपी समुद्र में वैरागी हुई, लिखे हुए कमल के समान तुलसी, ली-पुष्पों के गुमापुष्पलगा जानने वाली, तथा रामक के मरण को परवाने वाली प्रियता रानी, सुन्दर दणों से अलंकृत, विद्याल मालबाजे पाठक की स्तुति करने लगी—

મુદાસ—‘મહા સલિયસીલાસંકિપ’ પત્રાવિ. શીઘ્રી સુદર, સંજીના કતબમાં મુદ્રણ અને ઉછળતા
 એવા અત્યંત જાણ્યા જાણ્યા તરંગોથી મુદ્રિત મહાસ્ત્રોતરથી અમુદમાં હિલોળા ખાતી, ખીલોલા કમળોના
 નેવા મુખનાની સી-પુલ્યોના ચાર-નરમાં હલ્લોને બલ્યુવાણી, તેમજ જાળકન્દા હલ્લોને જોળખવાણી
 નિયંત્રણી, મુદ્ર સુલોચી મુદ્રોગિત વિશાલભાવના પોતાના જાળકની સ્વર્ણ કરવા લાગી.

कुलकरवन्द्यो भवाद्दशोऽसदृशोज्ज्वलगुणः सुतो, यः पुराकृतमुकृतकलापेन प्राप्यते, येन च गन्धवाहनं परिमलराजिरिव मातापितृप्रसिद्धिर्दिशि दिशि वितन्त्यते, सौरभ्य-भरिता-म्लान-कुसुम-भार-भासुर-सुरतरुणा नन्दनोद्यानमिव च त्रलोक्यं गुणगणेन वास्यते, अतैलपूरेण मणिदीपेनैव च प्रकाश्यतेऽप्रास्यते च हृदयदरीचरी चिरन्तनाज्ञानतिमिरराजी । सत्यमुक्तम्—

गुणविहीन बहुत पुत्रों से भी क्या?, किन्तु अप्रमादी, कुलरूपी कैरव-रात्रिविकासी कमल-को विकसित करने में चन्द्र-रूप, तेरे जैसा अनुपम उज्ज्वल गुणवाला एक ही पुत्र अच्छा है, जो पुत्र पूर्वजन्मोपार्जित प्रचुर पुण्यों से प्राप्त होता है। जैसे-गन्धवाह-पवन पुण्यों की सुगन्धि को दिशा-विदिशाओं में प्रसारित करता है, उसी प्रकार जो पुत्र अपने मातापिता के नाम को सर्वत्र प्रसिद्ध करता है। जैसे सुगन्धियुक्त अम्लान (खिले हुए) पुण्यों के भार से सुशोभित कल्पवृक्ष, नन्दनवन को सुवासित करता है। उसी प्रकार जो पुत्र अपने गुणगण से तीनों लोक को सुवासित करता है। तथा-जैसे तैलरहित मणिदीप गृहादिक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तेरे जैसा पुत्र तीनों लोक को प्रकाशित करता है, और जो त्रैलोक्यवर्ती जीवों के हृदयरूपी गुफा में संवरण करने वाले चिरकालिक अज्ञानरूप अन्धकार-समूह को दूर करता है। कहा भी है—

शुशु वगरता धष्ठा पुत्रोत्थी पथु शु ? परंतु अप्रमादी कुण्डपी कैरव-रात्रि-विकासी कमलने भीलवनाभां यद् सरणो तारा सरणा अनुपम उज्ज्वल शुशुवाणो व्योम्न पुत्र उत्तम छे, जे पुत्र पूर्वजन्मोपाजित अनेक पुष्टयता योगे प्राप्त थाय छे. जेवी रीते गन्धने लछि जनार पवन पुष्पोनी सुगंधिने दिशा-विदिशाओंमां इलावे छे, तेवीर रीते उत्तम पुत्र पोताना मातपिताना नामने सर्वत्र प्रसिद्ध करे छे. जेवी रीते सुगन्धयुक्त निर्मल भीलवां पुष्पोना बारम्बा सुशोभित कल्पवृक्ष नन्दनवने सुवासित करे छे, तेवीर रीते सुपुत्र पोताना शुशु-समूहथी त्रक्षे लोकने सुवासित करे छे. तथा तेव-वगरना भविषीर जेवी रीते गृहादिकने प्रकाशित करे छे, तेवीर रीते तारा जेवो पुत्र त्रक्षे लोकने प्रकाशमान करे छे, अने त्रक्षे लोकमां रूढेला श्रवोना हृदयस्थी शुक्षमां संवरण करवावाणा धष्ठा लाया कण्ठथी रूढेला अज्ञानद्वय अन्धकारसमूहने दूर करे छे कछुं पथु छे—

पात्रं न तापयति नैव मल प्रसूते,
स्नेहं न सहरति नैव गुणान् क्षिणोति ।
द्रव्यावसानसमये चलतां न धत्ते,
पुत्रोऽयं कुलच्छेदं किल कोऽपि दीपः ॥१॥

एष लोकोत्तरगुणगणयुतः सुतः प्रभूतप्रभोदं जनयति । अपि च—

शीतल चन्दन प्रोक्त ततश्चन्द्रं सुशीतलं ।
चन्द्र-चन्दनतः शीतो महान् नन्दनसङ्गमः ॥२॥

“जो पाप को सतत नहीं करता, मल को उत्पन्न नहीं करता, स्नेह का सहार नहीं करता, गुणों का नाश नहीं करता और द्रव्य के विनाश काल में अस्थिरता को प्राप्त नहीं होता है, ऐसा यह पुष्प्य दीपक, कुक्कुमी छह में कोई विसृष्ट ही दीपक है” ॥ १ ॥ इति ।

यह लोकोत्तर गुणगणों से युक्त पुत्र बहुत आनन्ददायी होता है । और मी कहा है—
चन्दन शीतल कहा गया है, उससे मी शीतल चन्द्र है और चन्द्र-चन्दन से मी महान् शीतल पुत्र का स्पर्श है ॥ १ ॥

मिस्सी मीठी होती है, उससे मी मीठा अमृत होता है, और उससे मी मीठा पुत्र का स्पर्श होता है ॥ २ ॥

ये धातने सतप्त करते नहीं, भक्षने उत्पन्न करते नहीं, स्नेहने नाश नहीं करते, शुद्धिने विनाश नहीं करते, तेमन् इन्धना विनाश क्षणमां अस्थिरताने धातने नहीं, तेवेर आ पुत्रक्षय दीये कुलक्षपी घरमा छेछं निवृत्तक्षय दीये छे ॥ १ ॥ इति ।

आ दोड़ोत्तर शुद्धिखेदी शुद्ध पुत्र वक्षान् आनन्दने आपवापाणी दोष छे वणी पक्ष इच्छ छे—

आनन्द शीतल छेवामां आनन्द छे, तेमन् तेनामी पक्ष शीतल आ छे, अने आ तया आनन्द पक्ष भक्षान् शीतल पानेने पक्ष छे ॥ २ ॥

सिता तु मधुरा नूनं सुधातिमधुरा ततः ।
ताभ्यामप्यस्य बालस्य सङ्गमो मधुरो महान् ॥३॥

कनकं सुखदं लोके रत्नं च महासुखम् ।

ताभ्यामपि च महासौख्यः अस्य बालस्य सङ्गमः ॥४॥ सू० ६८ ॥

सम्प्रति देवाधुरनरनिकरनमस्कृतचरणचक्रबालस्य स्वबालस्य सुखरुमलं विलोक्य त्रिशलाया हृदये यो भावः समजनि तमाह—‘त ए गं सा ललित्यसीलालंक्रिय’-इत्यादि ।

ततः=उत्सवानन्तरं खलु सा ललित-शीला-लङ्कृत-महिला-कृति-कुशला-ललितं=शोभनं-निर्दोषं यत् शीलं=स्वभावः सदृष्टं वा, ‘शीलं स्वभावे सदृष्टे’-इत्यमरः, तेन अलङ्कृताः=शोभिताः-युक्ता या महिलाः=स्त्रियः, तासां या कृतिः=रुतन्व्यं, तत्र कुशला=निपुणा त्रिशला देवी, कमनीयगुणजालं=कमनीयं=मनोहरं

सोना इस लोक में सुखदायी है, उसकी अपेक्षा रत्न अधिक सुखदायी है, इन दोनों से भी बढ़कर इस अनुपम पुत्र का स्पर्श महासुखदायक है ॥ ३ ॥

टीकार्थ—देवी, अधुरों और मनुष्यों के समूह से जिसका चरण-चक्रबाल वन्दित है, ऐसे अपने बालक का सुखकमल देखकर, त्रिशला देवी के हृदय में जो भाव उत्पन्न हुआ, उसको सूत्रकार ‘अह ललित्यसीलालंक्रिय’-इत्यादि सूत्र-द्वारा प्रदर्शित करते हैं—

इस के बाद, सुन्दर-निर्दोष शील-स्वभाव अथवा सदृष्ट से युक्त महिलाओं के कर्त्तव्य में निपुण,

साकर भीड़ी होय छे, तेनाथी पणु भीड़ुं अश्रुत छे, अने तेथी पणु भीड़ा पुत्रनो स्थं छे ॥ ३ ॥

सोनु आ लोकभां सुभदायक छे, तेथी पणु रत्न अधिक सुभदायक छे. ओ अनेथी पणु अधिक सुभ आपनार आ अनुपम पुत्रस्पर्श भडा सुभदायक छे ॥ ४ ॥ (सू० ६८)

टीकार्थ—हृदये देवो, अधुरो, अने मनुष्योना सम्बन्धी जेनुं चरणचक्रवण वन्दित छे ओवा पोताना आणकनुं सुभकभण जेधने त्रिशलादेवीना हृदयभा जे भाव उत्पन्न थयो तेने अत्रकार ‘अह ललित्यसीलालंक्रिय’ इत्यादि सूत्र द्वारा प्रदर्शित करे छे.

त्यारपणी सुन्दर-निर्दोष शील-स्वभाव अथवा साश वर्तनथी युक्त, श्रीजोना कर्त्तव्यभां नियोषु,

गुणनामै=गुणसमूहो यस्य स तथा ते तादृशे, पुनः विनाममाल=विश्रामा=विस्तृताः=शुभसंज्ञासम्पन्नाः मालाः=अनन्यं यस्य स तथा ते तादृशे बाने महावीरं विलोम्य, समुच्छलद=मन्दा=नन्द=शरणवर=शरण=महास्नेहवर्णशृङ्ग-निमामग्यमान=मानसा=समुच्छलन्त=सम्पुष्पुत्पन्त अमन्दानन्तस्थाः तरलतराः=अतिवञ्चलाः सरका यस्मिन्नेता इयं यद् महास्नेहवर्णशृङ्ग=अत्यधिकस्नेहरूपः समुद्रः, तत्र निमामग्यमानय=अतिश्रयेन भज्यत् मानस=मनो वस्याः सा तथा, परमानन्दसन्दोदयमन्त्रितत्वातेत्यर्थ, पुनः कीदृशीत्याद=कीपुरुषलक्षणज्ञानमविचक्षणा=कीपुरुषलक्षणा परिग्राने कुत्रवा, पुनः प्रतीकपीतारामलक्षणा=प्रतीक=ज्ञात पीतरामलक्षण=वीतरागस्य=वीर्यकरस्य लक्षणं=पुष्पसम्बन्धि मरणे गया सा तथापुता पूर्वोक्ता भिन्ना चेवी तन्मूर्त्तिकगुणगणसमभूतं स्वद्वर्त=स्तोत्रं=मञ्जसिद्धम् उपपन्नम=भारेमे। सा केन प्रकारेण स्तोत्रमुपवक्रमे? इत्याह=‘किं गुणगणवञ्जित्वा’ इत्यादि। गुणगणवञ्जि ते=गणाः=पैर्योदायदिसदृशणा, तेषां या गणाः=समूहस्तेन वर्जितैः=रहितैः=निर्गुणै, अनस्य=वस्तुभिः तनयैः=पुत्रः किम्=किं प्रयोजनम्?, नाभि गुणरहितपुत्राणां भिमपि प्रयोजनमित्यर्थ। एतदपेक्षया हे पुत्र! महादृढः=मास्तदः असह्यशक्त्यनुज=असह्यता=अद्वितीयाः उज्ज्वला गुणा यस्य स तादृशः, अतन्द्र=निस्त

की=पुत्र के सहाय-परिधान में कुछन तथा जिसने अपने पुत्र के लक्षण जान लिये हैं, ऐसी उस विश्वला दरीने, मनोरगुणगणवाये, शुभलक्षणपुक्त समाट वाछे अपने पुत्र महावीर को देख कर, उछलते हुए अतिश्रय वचन भानन्दरूप तरङ्ग वाछे महास्नेहकी समुद्र में डेरती हुई, पूर्वोक्त गुणगण से सुशोभित अपने उस अनुपम पुत्र की प्रशंसा करना प्रारंभ किया। वह इस प्रकार—

‘पैर्ये, औदार्य आदि सदृशों ने रहित बहुत पुत्रों से क्या?, अर्थात्=येसे निर्गुण पुत्रों का कुछ भी प्रयोजन नहीं है। इस की प्रशंसा की हे पुत्र! तुम्हारे=सह्य अद्वितीय विपुल गुणपुक्त, अतन्द्र=उत्तारी,

श्री=पुत्रस्य लक्षण-परिधानम् उद्यम अने पौताना पुत्रस्य वीतराग लक्षणने भानुनारी ते त्रिधारेवी, भन्दोदर उपसभूकवाणा, शुभ लक्षणोशी मुष्ट लघावणा पौताना पुत्र भद्रावीरने जेहने उद्यमता जेवा अतिशय चरण आनन्दपी तद्वर्णवा महास्नेहशी समुद्रभां झुंझती अर्थात् परम ज्ञान इना समूहशी मुष्ट दृश्यवाणी, पौलीन उपसभूकवा मुद्रोभित पौताना ते अनुपम पुत्रनी प्रशंसा करवा छागी ते आवी रीते=‘पैर्ये’ औदार्य आदि सदृशों की रक्षित क्या पुत्रोकी मु। अर्थात् जेवा निर्गुण पुत्रोउ लक्षण प्रयोजन नहीं तेना करती तो हे पुत्र! तमस्त जेवा अद्वितीय विपुललक्षणशी मुष्ट अतन्द्र जेदरे पैर्योशी, उद्यमशी हेरन=जेत

न्द्रः=निरलसः कुलकैरवचन्द्रः=कुलमेव कैरव=श्वेतकमलं, तत्प्रबोधने चन्द्रः=कुलप्रकाशक एकोऽपि सुतः= पुत्रः वरं, यो हि सुतः पुराकृतसुकूनकलापेन=पूर्वजन्मोपाजितपुण्यसमूहेन प्राप्यते=लभ्यते । पुनः प्रशंसति=येन च भवादृशेन सत्पुत्रेण मातापितृप्रसिद्धिः=मातापित्रोः ख्यातिः दिशि दिशि वितन्यते=विस्तीर्यते । केन किमिव वितन्यते ? इत्याह—‘गन्धवाहेन परिमलराजिरिवे’-ति । यथा गन्धवाहेन=वायुना परिमलराजिः=सुगन्धसमूहः दिशि दिशि प्रसार्यते, एवमेव भवद्विधेन सत्पुत्रेण मातापित्रोर्यशः कीर्त्तिश्च सर्वत्र प्रसार्यते इति भावः । तथा भवादृशेन सत्पुत्रेण इदं त्रैलोक्यं=लोकत्रयं गुणगणेन=गुणसमूहेन वास्यते=भाव्यते, इदं त्रैलोक्यं गुणयुक्तं क्रियते इत्यर्थः । केन किमिव ? इत्याह—सौरभ्यभरितेत्यादि । सौरभ्य=भरिताम्लान-कुसुम-भार=भासुर=सुरतरुणा=सौरभ्येण=सुगन्धिना भरितानि=युक्तानि यानि अम्लानानि=म्लानतानुभूतानि कुसुमानि=पुष्पाणि तेषां यो भारः=समूहस्तेन भासुरः=प्रकाशमानो यः सुरतरुः=कल्पवृक्षस्तेन नन्दनोद्यानमिव=नन्दनवनमिवेति । अयं भावः=यथा कल्पवृक्षेण स्वपुष्पसौरभ्येण सकलमपि नन्दनवनं

कुलरूपी कैरव=श्वेत कमल के प्रबोधन करने में चन्द्ररूप एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, जो पुत्र पूर्वजन्मोपाजित पुण्य से प्राप्त होता है । हे पुत्र ! तुम्हारे जैसे सत्पुत्र के द्वारा माता-पिता की ख्याति दिशा-विदिशाओं में सर्वत्र फैल जाती है, जैसे-वायुद्वारा दिशा-विदिशाओं में पुष्पों की सुगन्धि । अर्थात्-जिस प्रकार वायु-द्वारा पुष्पों की सुगन्धि दिशा-विदिशाओं में सर्वत्र प्रसारित होती है उसी प्रकार तुम्हारे-जैसे सत्पुत्र से मातापिता की ख्याति दिशा-विदिशाओं में सर्वत्र फैलती है । तथा हे पुत्र ! तुम्हारे-जैसे सत्पुत्र से यह तीनों लोक गुणगण से सुवासित होते हैं, जैसे-सुगन्धियुक्त खिले हुए पुष्पों के गुच्छों से शोभित कल्पवृक्ष से नन्दनवन । अर्थात्-जैसे कल्पवृक्ष अपने पुष्पों की सुगन्धि से समस्त नन्दनवन को सुगन्धित

कभणने भीदववाभा व्यद्रूप व्येकत्र पुत्र श्रेष्ठ छे, के ने पुत्र पूर्वजन्मना पुह्ययोगथी प्राप्त थाय छे । हे पुत्र ! तारा नेवा सत्युत्र द्वारा माता-पितानी जथाति दिशा-विदिशाओभा सर्वत्र द्रैदाध भय छे, नेम वायुद्वारा दिशा-विदिशाओभा पुण्योनी सुगन्धि. अर्थात् नेवी रीते वायुद्वारा पुण्योनी सुगन्धि दिशा-विदिशाओभां सर्वत्र प्रसारित थाय छे तेवीज रीते तमारा नेवा सत्युत्रथी माता-पितानी जथाति दिशा-विदिशाओभां सर्वत्र द्रैदाध भय छे तथा छे पुत्र ! तारा नेवा सत्युत्रथी आ त्रष्टे दोकं शुष्णगणथी सुवासित थाय छे, नेम सुगन्धवाणा भीदिदा पुण्योना शुन्धाथी शोभित कल्पवृक्षथी नन्दनवन. अर्थात् नेवी रीते कल्पवृक्ष पोताना पुण्योनी सुगन्धिथी

सुरभीक्रियते शब्देन मयाहयेन सत्युज्ज्वल स्वयम्भसमूहः समस्तमयीव प्रैलोभ्यं गुणयुक्तं क्रियते—इति । तथा—मयाहयेन मुनेन इदं प्रलोभ्यं प्रकाशयते—प्रकाशितं क्रियते, केनेन ! अतल्लपरेण मणिदीपेनेवेति । अयं मावः—यथा संस्तु पूरवर्तिनो मणिदीपः सततं समानरूपेण पुरादिकं प्रकाशयति तथैव मयाहयः सत्युज्ज्वलः समस्तमयीव प्रैलोभ्यं सततं समानरूपेण प्रकाशयतीति । तथा—मयाहयेन सत्युज्ज्वल प्रलोभ्यवर्तिनीयानां हृदयवरीचरी—हृदयस्पर्शद्वाराऽभ्यन्तरपारिषी चिरन्तनाज्ञानविमिराणी—चिरन्तनाग्निः—अनादिकाष्ठिकानि यानि अज्ञानविमिराणि—अज्ञानान्य कारास्थेषां राज्ञी—यशुक्तिः—अनादिकालीनाज्ञानपरम्परैस्पर्यायः, अथास्पृते—दूरीक्रियते इति । पुनः सत्युज्ज्वलस्य इदं—वक्ष्यमाणं यत् सत्यं—वास्तविकम् उक्तं—कथितम्, किमुक्तम् ? इत्याह—‘पात्र न तापयति’ इत्यादि ।

करता है, उसी प्रकार तुम्हारे—जैसा सत्युज्ज्वल अपने गुणों से इस समस्त लोह को क्षीमित बनाता है । तथा—दे पुत्र ! तुम्हारे—जैसे पुत्र से या तीनों लोक प्रकाशित किये जाते हैं, जैसे वस्त्र विना मणिदीप से यह घर आदि । अर्थात्—निस प्रकार तेसरहित मणिदीप सर्वदा समानरूप से घर आदि को प्रकाशित करता है उसी प्रकार तुम्हारे—जैसे सत्युज्ज्वल तीनों लोकों को सतत समानरूप से प्रकाशित करता है । तथा घरे—जैसा सत्युज्ज्वल तीनों लोक के भीतों के हृदयवरीचरी द्वारा के अभ्यन्तर में संचरण करने वाले चिरकालिक—अनादिकालीन अज्ञानरूप अवधार की परम्परा को दूर करता है ।

फिर खती है—‘पात्र न तापयति’ इत्यादि ।

समस्त अज्ञाननेन मुत्र भवणु इरे छ तेवीन शीते वाश जेवा सत्युज्ज्वल शीताना सुखीया आ समस्त दोहने सुशोभित भगवे छे, तथा छे पुत्र ! वाश जेवा पुत्रभी आ नखे दोह प्रकाशित करत छे, जेभ तेव वज्रना भविषीपत्री आ घर आदि अर्थात् जेवी शीते तेसरहित मणिदीप सवश समान रूपी अरु आदिने प्रकाशित करे छे, तेवीन शीते तभारा जेवा सत्युज्ज्वल दोहने सतत समानरूपी प्रकाशमान करे छे तथा वाश जेवा सत्युज्ज्वल नख दोहमां रेहेवा छे जेवना सुखरूपी अज्ञानी अरु समस्त अज्ञानावाणा निरक्षारिक अर्थात् अनादिकालीन अज्ञानान्तरपी अज्ञानरानी परप्रधाने इरे छे ।

કુલદેહે=વંશરૂપે શુદ્ધે અયં પુત્રઃ=સત્પુત્રઃ કોઽપિ અનિર્વચનીયો દીપઃ કિલ=નિશ્ચયેન વર્તતે, યો હિ પાત્રં=પાત્રીભૂતં સત્પુરુષં લોકં ન તાપયતિ=સ્વાચરણેન ન સન્તાપયતિ, અથવા-પાત્રમ્=સ્વાધારમૂતં માતાપિત્રાદિકં ન તાપયતિ=સ્વાચરણેન સંતપ્ત ન કરોતીત્યર્થઃ। તથા-મલં=પાપં નૈવ પ્રસૂતે-પાપાચરણકારી ન ભવતીત્યર્થઃ। તથા-સ્નેહં = પ્રેમ-દયામિત્યર્થઃ, ન સંહરતિ=ન દૂરીકરોતિ, કસ્મિન્નાપિ જને સ્નેહં=દયાં ન પરિત્યજતીત્યર્થઃ। તથા-ગુણાન્=સદ્ગુણાન્ દયાદાક્ષિણ્યાદીન્ નૈવ ક્ષિણોતિ-નૈવ નાશયતીત્યર્થઃ। તથા-દ્રવ્યાન્ વસાનસમયે=ધનામાવસમયે ચલતામ્=અસ્થર્ય ન ધત્તે=ન ધારયતિ। અયં ભાવઃ-દીપો હિ પાત્રં=સ્વાધારપાત્રં

इस का अर्थ यह है—कुलरूप-वंशरूप घर में यह सत्पुत्ररूप अलौकिक दीपक निश्चय ही कोई अपूर्व त्रिलक्षण दीपक है, जो सत्पुत्ररूप दीपक पात्र को अर्थात् सज्जन पुरुषों को सन्ताप नहीं पहुंचाता है, अथवा अपने आधाररूप मातापिता आदि को अपने आचरण से कभी भी संतप्त-दुःखित नहीं करता है, कभी भी पापाचरण नहीं करता है, स्नेह को-प्रेम को अर्थात् दया को कभी भी नहीं छोड़ता है, इस का अभिप्राय यह है कि वह किसी के ऊपर दया-रहित नहीं होता है, दया-दाक्षिण्य-आदि सद्गुणों का नाश वह कभी भी नहीं करता है, तथा द्रव्य के अवसान काल में, अर्थात् धन के क्षीण हो जाने पर चंचलता-अस्थिरता को धारण नहीं करता है, अर्थात् किसी भी परिस्थिति में वह नीतिमार्ग का परित्याग नहीं करता है। इस श्लोक का अभिप्राय यह है—दीप्त अपने आधारपात्र को संतप्त करता है, मल अर्थात्

એનો અર્થ એ છે કે કુળરૂપ-વંશરૂપ ઘરમાં આ સત્પુત્રરૂપી અલૌકિક દીપો નિશ્ચય કોઈ અપૂર્વ વિલક્ષણ દીપો છે જે સત્પુત્રરૂપ દીપો પાત્રને અર્થાત્ સત્પુરુષને સંતાપ પહોંચાડતો નથી, અથવા પોતાના આધારરૂપ માતાપિતા આદિને પોતાના આવરણથી કોઈપણ વખતે સંતપ્ત-દુઃખિત કરતો નથી, કોઈપણ વખતે પાપનું આવરણ કરતો નથી. સ્નેહને-પ્રેમને અર્થાત્ દયાને કોઈ વખતે છોડતો નથી. એનો અભિપ્રાય એ છે કે તે કોઈની પણ ઉપર દયારહિત થતો નથી. દયાદાક્ષિણ્ય-આદિ સદ્ગુણોના નાશ તે કોઈપણ સમયે કરતો નથી. તે દ્રવ્યના અવસાન કાળમાં અર્થાત્ ધનનો નાશ થાય ત્યારે અંબળતા-અસ્થિરતાને ધારણ કરતો નથી, અર્થાત્ કોઈપણ પરિસ્થિતિમાં તે નીતિમાર્ગનો ત્યાગ કરતો નથી. આ શ્લોકના અભિપ્રાય એ છે કે—દાપક પોતાના આધારપાત્રને અંતપ કરે છે,

तव करोति, मलं = कज्जलं प्रसूते, स्नेह = तैलं = तैलं संश्लिष्ट, गुणान् = गर्भिणा नाशयति, तैलस्य द्रव्यामात्रसमये च मत्स्येयं वचे, परन्तु कुङ्कुमरूपो दीपस्तथा न भवति, प्रसूत सर्वथा एतद्विलस्यो भवतीति ।

अतो ! एष लोकोत्तरगुणगणयुतः = प्रतीकगुणसमूहसमन्वित सुतः = पुत्रः प्रभूतभोगैः = भूषणमानन्दं जनयति = उत्सादयति ।

अपि च = नुनम पिडला सङ्कुलोद्भवं पुंषं प्रशसति = 'श्रीतलं चन्दनं मोक्तुम्' इत्यादिना । चन्दनं श्रीतलं = श्रीतलस्य युक्तं मोक्तुं = कथितम्, तत्र = चन्दनात् = चन्दनापेक्षेत्यर्थः, चन्द्रः सुश्रीतलः = समपिङ्गुश्रीतलस्पर्शान् कथितः, तथा = चन्द्रचन्दनतः = दूतैर्लोकवत् चन्दनापेक्षयाऽपि नन्दनसंगतः = सुप्रसन्नं महान् = अत्यधिकः श्रीतलः = श्रीतलो भवति ॥२॥

कज्जलं उत्सव्य करता है, स्नेह-तेल का क्षोषण करता है, गुण का नाश करता है, और तैलरूप द्रव्य के अभाव-ममय में अस्थिरता को प्राप्त करता है, अर्थात् बुढ़ने स्मृता है । परन्तु सत्युरूप दीपक तो ऐसा नहीं होता है, वह तो सर्वथा इससे विलसण होता है ।

आ ! यह लोकोत्तर गुणों से विभूषित सत्युष अतिवय आनन्ददायी होता है ।
पिडला रानी फिर कटती है—इस लोक में चन्दन श्रीतल है, उपरी अपेक्षा चन्द्रमा अधिक श्रीतल है, परन्तु चन्द्र और चन्दन की अपेक्षा पुत्र के आह का स्वर्ग भस्वन्त श्रीतल होता है ॥ २ ॥

भगवन् श्रीतलं कज्जलं भक्तं ने छिन्नत करे छे, स्नेह-तेलनु शेषव करे छे, सुखेन-भक्तो (दीवेर) ने नाश करे छे अने तेकदशी इत्यन्तं अभावमा अस्थिरता प्राप्ते छे अर्थात् लोकावर्त्तं अत्र छे परंतु सत्युत्तरेय दीपक ने जेवो होता नथी ते तो कथिआ जेनाथी विप्रक्षय होय छे ॥ १ ॥

अहो ! दोहोतम शुद्धोषी विभूषित सत्युष अतिवय आनन्द आनन्द होय छे त्रिषदाशायी इरीषी करे छे—
आ दोहोभा वचन श्रीतल होय छे अने तेसी पण अतिशय श्रीतल व्यग्रभा छे परंतु व्यहन अने पद इनी अपेक्षा जे पुत्रपु अत्रो कथरी अत्यन्त गीन-त ते ॥ २ ॥

तथा-सिता=शंकरा तु वृत्तं=निश्चितं मधुरा=मधुररसवती भवति, रतः=तस्याः सिताया अपि-
शर्कराऽपेक्षयाऽपीत्यर्थः, सुधा अतिमधुरा=प्रकृष्टमधुररसयुक्ता भवति, पुनः ताभ्यामपि=सितासुधाभ्यामपि
अस्य बालस्य संगमो महान् मधुरो भवति ॥३॥

तथा-बालस्य संगमो महान् मधुरो भवति ॥३॥
अस्य बालस्य संगमो महान् मधुरो भवति ॥३॥
तथा-बालस्य संगमो महान् मधुरो भवति ॥३॥
अस्य बालस्य संगमो महान् मधुरो भवति ॥३॥

महामुखं भवति, च=पुनः ताभ्यामपि=कनकरत्नाभ्यामपि
सुखविशिष्टो भवतीति ॥४॥ सू० ६८ ॥

मूलम्—तए नं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो, एकारसमे दिवसे विवक्कते, निव्वत्ते
सुणो, संपत्ते वारसाहे, विउलं असणपाणसाइमसाइय उव्ववड्डावित्ता मित्त-गाइ-सयण-
संवधि-परियणे उव्वनिमत्तेति, उव्वनिमत्तिता बहूण समण-माहण-क्किण-णीमग-भिच्छुंड-गारंतीणं विच्छुड्ढेति,
दायाएसु नं दायं पज्जाभाएति, पज्जाभाएत्ता मित्त-गाइ-सयण-संवधि-परियणे भुंजावेति, भुंजावित्ता
मित्त-गाइ-सयण-संवधि-परियण-समक्खं एस एयारूवं कहेति-जण्णभिः च नं अम्हं इमे दारए गब्बं वइक्कते,
तप्पभिं च नं इमं कुलं विउलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धण्णेणं विहवेणं ईमरिणं रिद्धीए नं सिद्धीए नं
समिद्धीए नं सक्कारेणं सरुमाणेणं पुरक्कारेणं रज्जेण रट्ठेणं वाहणेणं कोसेणं क्कोट्टागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं

मिसरी मीठी होती है, और मिसरी से अमृत अधिक मीठा होता है, परन्तु मिसरी और अमृत
इन दोनों से भी बालक का स्पर्श अत्यन्त मीठा है ॥ ३ ॥

तथा-इस लोक में कनक-सोना सुख देने वाला है, रत्न सोने से भी अधिक सुखदायी होता
है, परन्तु पुनः का स्पर्श तो इन दोनों से भी महान् सुखदायी है ॥ ४ ॥ सू० ६८ ॥

साकर मीठी होय छे, अने साकरथी अमृत वधाहे भीहुं होय छे. परंतु साकर अने अमृत अ.। अन्नेथी
पषु अधिक मीठी पुनना अंगनेो स्पर्श छे. ॥ ३ ॥

आ दोकभा कनक-सोनुं सुथ आपवावाणुं छे, पषु रत्न सोनाथी अधिक सुथ आपवावाणुं होय छे. परंतु
पुननेो स्पर्श तो अे अन्नेथी पषु महान् सुथदायी होय छे. ॥ ४ ॥ (सू० ६८)

भोजयित्वा मित्र-ज्ञाति-रज्जन-सम्बन्धि-परिजन-समक्षम् ददमेतद्रूपं वचनं वदतः-यत् प्रभृति च खलु अस्मा-
कमयं दारक्यो गर्भं व्युत्क्रान्तः, तत्प्रभृति च खलु इदं कुलं विपुलेन हिरण्येन सुवर्णेन धनेन धान्येन विभवेन
ऐश्वर्येण कुद्धया खलु सिद्धया खलु समृद्ध्या खलु सत्कारेण सम्मानेन पुरस्कारेण राज्येन राष्ट्रेण बलेन वाहनेन कोषेण
कोष्ठागारेण पुरेण अन्तःपुरेण जनपदेन जानपदेन यशोवादेन कीर्तिवादेन शब्दवादेन श्लोकवादेन स्तुतिवादेन
विपुल-धन-कनक-रत्न-मणि-मौक्तिक-शङ्ख-शिलाप्रवाल-रत्नरत्नादिकेन सत्स्नापतेयेन प्रीतिसत्कारसमुद्देन
अतीवातीव परिदुर्द्धं, तद् भवतु खलु अस्य दारकस्य गुण्य गुणनिष्पन्न नामधेयं 'वर्धमान' इति कृत्वा भगवतो
महावीरस्य 'वर्धमान' इति नामधेयं कुरुतः। श्रमणो भगवान् महावीरो गोत्रेण काश्यपः। तस्य खलु इमानि

सम्बन्धीजनौ और परिजनौ को भोजन कराया। फिर मित्रों, ज्ञातिजनौ, स्वजनौ, सम्बन्धीजनौ और
परिजनौ के समक्ष इस प्रकार का यह वचन कहा-जब से हमारा यह बालक गर्भ में आया,
तभी से यह कुल विपुल हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, विभव, ऐश्वर्य, ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि, सन्मान, पुरस्कार,
राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोप, कोष्ठागार (कोठार), पुर, अन्तःपुर, जनपद, जानपद, यशोवाद, कीर्ति
वाद, वर्णवाद, शब्दवाद, श्लोकवाद, स्तुतिवाद से तथा विपुल, धन, स्वर्ण, रत्न, मोती, शंख, शिला,
प्रवाल, लालरत्न आदि वास्तविक सम्पत्ति से और प्रीति तथा सत्कार की प्राप्ति से खूब-खूब वृद्धि को
प्राप्त हुआ है। अत एव इस बालक का गुणमय गुणनिष्पन्न 'वर्द्धमान' नाम हो। इस प्रकार कह कर
भगवान् महावीर का 'वर्द्धमान' नाम रखवा।

सुप्रवास देवा योऽक्रित यथा, त्वादे सर्वनी समक्ष, राज्ञ सिद्धार्थे ऽच्छेद कथुं" डे न्यारथी आ भाणक गर्भमां
आण्ये। छे त्थारथी छिरुय-सुवर्ण-धन-धान्य-वैभव-ऐश्वर्य-ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धि-सत्कार-सन्मान-पुरस्कार-
राज्य-राष्ट्र-मण-वाहन-कोष-कोष्ठागार (कोठार)-पुर-अ त पुर-जनपद-जानपद-यशोवाद-कीर्तिवाद-वर्णवाद-शब्द-
वाद-श्लोकवाद-स्तुतिवादमा तेमज (विपुल-धन-सुवर्ण-रत्न-मोती-शंख-परवाणां-शिला-वालरत्न आदि वास्तविक
संपत्तिमा, उत्तरेत्तर वधादे शतेज गये। छे दिन-प्रतिदिन आनंदनी वृद्धि यतां, अमे तेनुं नाम शुभमय
शुक्रिण्यन्न 'वर्धमान' राथीजे छीये।

श्रीणि नामधेयानि परमाख्यापये-अम्बापितृसरके 'धर्ममान' इति, सासमुदितया 'धर्मण' इति, इन्द्रसत्कं 'महावीर' इति ॥ सू० ६९ ॥

टीका—'तप ण समणस्से'—त्यादि । ततः खलु भ्रमणस्य मगवतो महावीरस्य अम्बापितृो परासुश्रे विवसे ब्यतिक्रान्ते-अप्यतीरे, निवृत्ते-समाप्ये सुतके-अम्बाश्रीधे, सम्पाप्ये द्वादशारे-द्वादशे दिवसे विपुलं= बहु अवनपानलादिस्यादिसम् उपस्कारयतः=निष्पादयत, उपस्कार्ये=निष्पाप मित्र-श्रुति-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनान्, तत्र-मित्राणि प्रसिद्धानि, श्रातयः=समानभातिकाः, स्वजनाः=निजलोकाः, सम्बन्धिनः=पुत्राणां पुत्रीणां स्वपुत्रादयः, परिजनाः=दासीदत्तप्रभृतयश्च तान् उपनिमन्त्रयतः=भोक्तुमाश्वयतः, उपनिमन्त्र्य बहुभ्यः

भ्रमण मगवान् महावीर काश्यपगोत्रीय यः । उनके तीन नाम इस प्रकार करे जाते हैं-माता-पिता द्वारा रक्सा हुआ नाम सर्वमान, तपधरण्यक के कारण भ्रमण, और इन्द्र का रक्ता नाम-महावीर' ॥ सू० ६९ ॥

टीका का अर्थ—'तप णं समणस्स' इत्यादि । तदनन्तर भ्रमण मगवान् महावीर के माता-पिताने ग्यारह दिन बीत जाने पर और सुतरु-बन्ध संबंधी अशौच-दूर हो जान पर, बारहवें दिन बहुत सा अन्न, पान, स्नाय, स्नाय तैयार करवाया और मित्रों को, श्रुतियों-सम्रातीय जनों को, स्वजनों-आत्मीय जनों को, संबंधियों-पुत्र और पुत्रियों के अन्तर आदि संबंधियों को, तथा परिजनो-दासीदास आदि परिजनो को भोजन के लिये

आ प्रभावे कोष्ठ बाण्ड देवाके भजनानु नाम 'महावीर' शब्द, त्यारे भीष्म आणु आटा-पिताके 'वध भान' शब्द भजनान् 'द्वारकप्रेम' भा अ येव देवाधी ते 'द्वारकप्रेम' पण दहेवान् छे (सू० ६८)

टीकाने अर्थ— तप णं समणस्स धर्मादि कोष्ठि-अवधारभा, प्रसूति यथा आह, अग्नीत्याह दिवस मुधी भाताने तथा व्यजने भाटे अशौच' अर्थात् छे

सुतक समय बीत्या आह, अनावधारिष्ठ दृष्टिके, आरभा दिवसे, पुत्रादी जताववा, स्यान्धावां-भित्त-श्रुति सन्धी-वर्धने अभादवाभा आवे छे ।

आ प्रभावे भजनाने अन्ध यदा तेनी पुत्रादीभा सिद्धार्थ-गणके, विपुल कोजननी आभरी देवार भरी, पूज प्रेम जने वात्सल्य आवाधी तेभने अभादवां, तेजो पण भूज-पूज आनंदित अर्थ 'वध भान' नाम पादराभां दारिद्र्य अनुसिद्धन आन्ध

श्रमण-ब्राह्मण-कृपण-वनीपक-भिक्षोण्डका-उगारस्थेभ्यः, तत्र-श्रमणाः=शाक्यादयः, ब्राह्मणाः=प्रसिद्धाः, कृपणाः=दीनाः, वनीपकाः=याचकाः, भिक्षोण्डकाः=भिक्षाजीविनः, अगारस्थाः=गृहस्थाधेति तेभ्यः, विच्छेद्यतः=भोजनवसनादि दत्तः, दायादेषु=पैतृकसम्पत्तिभागिषु दायं=सम्पत्तिं पर्याभाजयतः=परितो वण्टयतः, पर्याभाज्य=दायादेषु सम्पत्तिं परियण्ट्य, मित्रं ज्ञाति-तज्जन-सम्बन्धि-परिजनान् भोजयतः, भोजयित्वा मित्र-ज्ञाति-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनसमक्षम् इदमेतद्रूपं=इदमप्यमाणलक्षणं वचनं वदतः=यत्प्रभृति=यस्मात् कालादारभ्य खलु अस्माकम् अयं दारकः=बालकः गर्भं व्युत्क्रान्तः=गर्भे समागतः, तत्प्रभृति=तस्मात् कालादारभ्य च खलु इदम्=अस्मारुमेतत् कुलं विपुलेन हिरण्येन=रजतेन, सुवर्णेन, धनेन=गन्नाश्वगजादिना, धान्येन=व्रीहिशालियवगोधूमादिरूपेण, विभवेन=निर्वृत्त्या-आनन्देनेत्यर्थः, 'विभवो धननिर्वृत्त्योः' इति हेमः, तथा-ऐश्वर्येण=धनाधिपतित्वेन जनाधिपतित्वेन वा, कृद्धया=सम्पत्त्या, सिद्ध्या=अभिलषितवस्तुप्राप्त्या, समृद्ध्या=प्रय-

बुलाया-निमन्त्रित क्रिया। उन्हें निमन्त्रित करके बहुत-से शाय आदि श्रमणों, ब्राह्मणों, कृपणों-दीनों, वनीपकों-याचकों, भिक्षोण्डों-भित्कारियों और गृहस्थों को भोजन-यसन आदि का दान दिया। जो लोग पैत्रिक सम्पत्ति में भागीदार थे, उन्हें सम्पत्ति का वँटवारा किया। वँटवारा करके मित्रों, ज्ञातिजनों, स्वजनों, संबंधियों और परिजनों को भोजन कराया। भोजन करार मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबंधी और परिजनों के सामने आगे कहे जानेवाले वचन कहे-‘जब से हमारा यह बालक गर्भ में आया है, तब से लेकर हमारा यह कुल विपुल हिरण्य से-चांदी से, सुवर्ण से-सोने से, धन से, गाय घोड़ा आदि से, धान्य से-व्रीहि, शालि, जौ, गेहूँ आदि से, विभव से-आनन्द से, ऐश्वर्य से-धन या जन के अधिपतित्व से, कृद्धि से-सम्पत्ति से, सिद्धि से-इष्ट वस्तुओं की प्राप्ति से, समृद्धि से-यहती हुई सम्पत्ति से, सत्कार से-जनता-

लागवानना जन्म-निमित्ते वेरभाव उपशांत थता, सर्वत्र आनन्द-भंगण व्यापी रह्यो, अने ते आनन्दने प्रदर्शित करवा गरीब-गुरथा विगेदने यषु विपुल प्रमाणमां भिष्टलोभन करावी तेभने हरेक शीते सतोषवामां आब्या।

हिरण्य कहेता आढी, सुवर्ण कहेता सोनुं, धन कहेता गाय-घोड़ा-लेस आदिना धषु, अथवा गोशुण, धान्य कहेता व्रीहि-शालि-जव-धउं विगेदे, विभव ओटडे आनन्द, ऐश्वर्य ओटडे धन अने भानव समुदायनुं अधिपतिपषुं, कृद्धि ओटडे संपत्ति, सिद्धि ओटडे इष्ट वस्तुआनी प्राप्ति, सत्कार ओटडे जनता द्वारा प्राप्त थयेव

હુમાનસમ્પર્યા, સત્કારણ=જનકુળાનુયાયનાદિના, સમ્માનેન=આસનાદિકાનાદિના, પુરસ્કારેણ=સર્વશ્રેયેષુ અપ્રતઃ
 સ્થાપનેન, રાજ્યન=સ્વાધ્યમ્યાત્મ્યમુદ્ધત્કોપરાટ્ઠગુણમ્ભરુષેણ સપ્તાગ્રેન, રાટ્ટેણ=યેશન, ષષ્ઠેન=સૈત્યન ચાદનેન=રયાદિના,
 ક્રોયેવ=ચરનાત્રિમાઙ્ઘાગારેણ, ક્રોઠાગારેણ=ધ્યાન્યસ્થાપનસુરેણ, પુરેણ=નગરેણ, અન્ત'પુરેણ=અન્ત'પુરસ્થપરિચારેણ,
 જનપદેન=વેદગ્રામીત્વપણ, જાનપદેન=ગ્રામિનિ, યજ્ઞોવાદેન=અહો ! કૌહિલોડયં પુણ્યમાહ'-'સ્ત્યેકદેશઘ્યાપિસાધુ
 વાદેન, કીર્તિવાદેન=ત્વર્તિદિવ્યપિણિમાધુવાદેન, ષબ્દવાદેન=વર્ત્તસાવાદેન, ષબ્દવાદન=અર્થદિગ્ઘ્યાપિસાધુવાદેન, ખ્બોફ

દ્વારા ક્રિય જ્ઞાનવાચે ઉત્થાન આદિ સત્કાર સે, સમ્માન સે-આસન લેને આદિ રૂપ સમ્માન સે, પુરસ્કાર
 સે-સર્વ કામોં મેં અધુવાપન સ, રાજ્ય સે-સ્વામી, અમાત્ય, મિષ, ક્રોય, રાટ્ટ, દુગ ઝીંગ સના इन સાત અર્ગોવાંછે
 રાખ્ય સે, રાટ્ટ સે-વજ્ર સ, વલ્લભ-સના સ, ચાદન સ-ચ્ય આદિ ચાદનાં સ, ક્રાણ સે-રત્નાં આદિ કે
 મહાર સે, ક્રોઠાગાર સ-ધ્યાન્યમહાર સ, પુર સ-નગર સ, અન્ત પુર સે-સ્વનાસ ક પરિવાર સે જનપદ
 સે-વેદગ્રામી સે, જાનપદ સ-ગ્રામ સ, યજ્ઞોવાદ સે-'અહો ! મહા કૃષ્ણા પુણ્યમાર્ગી હ' ' इस प्रकार एकदेशव्यापी
 साधुवाद स, कीर्तिवाद से-सर्वदिशाव्यापी साधुवाद स, वर्तवाद् से-वर्तुसावाद स, शब्दवाद से-अर्थविसा-

स्थान स मान कोटहे योग आसन आदि अपक्ष ढरी जतावतो भूतबोध, पुरस्कार कोटहे सामान्यपक्षे अता
 वातो उद्यम शान्त कोटहे १ स्वाभी २ आभान ३ भिन्न ४ होय, ५ शब्द, ६ दुर्भ, ७ अने ७ सेना आ सात
 अत्रो नेमां होय ते. काल कोटहे अभिन देय जब कोटहे कलहण-मलहण-रक्षण अने भावहणनी सेना, वल्लभ
 कोटहे जमीन-पक्षी अन हवाभा आहता मुखाक्षरीना राधेना होय कोटहे २ कल त्रिआषी भात्री रत्ना आदिना
 अता होम शर आनह आने. शणवाना मेहारे. पुर कोटहे नगर अत पुर कोटहे २ व्योवास, जनपद कोटहे
 प्रात, जनपद कोटहे प्रज यज्ञोवाह कोटहे क्षितिनी सामान्य कल अथवा श्रेष्ठी, क्षितिवाद कोटहे व्यापकपक्षे
 होयकोटहे. वश-गमां २ ने ठाशी प्रभव (वतावे) तमल परेषाकारी अथो यथा होय ते उपरो समावेश
 यय छे. नवारे वश' भा छटा-छटा ठायेनी सामान्य जवनी कवाता होय छे, ने ने काम लेनी काल
 परिपक्ष बहु होय, तेन आवे त वश अथ छे यश' कोट-मांतवना होय छे नवारे क्षिति अभस्त
 प्रदेशोमां व्यापी रहेक वय छे आहता वय अने क्षिति भां ३२४ छे समुवाह कोटहे समुवाहीनी वल्लभ
 समुवाही तमल-नी रोज, वज्रवाद कोटहे प्रक य, शब्दवाद कोटहे अर्थविसा- ३२५ सुखो-अथ वो ३ यय

वादेन=सर्वत्र गुणवर्णनेन, स्तुतिवादेन=चन्द्रिजनकृतगुणकीर्त्तनेन, तथा-विपुल-धन-रत्न-रत्न-मणि-मात्तिक-
शङ्ख-शिला-प्रवाल-रत्नरत्नादिकेन, विपुलेत्यस्य धनादिषु प्रत्येकं सम्बन्धः, तेन विपुलेन धनेन, विपुलेन रत्नकेन=
सुवर्णेन, विपुलेन रत्नेन=रत्नकेतनादिना, विपुलेन मणिना=चन्द्रकान्तादिना, विपुलेन मात्तिकेन, विपुलेन शङ्खेन=
दक्षिणार्त्तेन, विपुलया शिलया=राजपट्टशिलया, विपुलेन प्रवालेन=विद्रुमेण, विपुलेन रत्नरत्नेन=ओहितरत्नेन-पयारा-
गादिना, आदिना चीनाशुभादिखल्वलादीनि ग्राह्याणि, तथा-सत्स्वापतेयेन=विद्यमानप्रधानद्रव्येण, प्रीतिसत्कारस-
मुदयेन-प्रीतिः=मानसी तुष्टिः, सत्कारः=चत्वादिभिः स्मजनकृतः शुश्रूषालक्षणः, तत्समुदयेन=तत्सम्प्राप्त्या अती-
वातीव=अधिकार्थिकं परिदृढम्=अभ्युदयं प्राप्तम्, तत्=तस्मात् अस्य=अस्मदीयस्य दारकस्य=पुत्रस्य गुण्यं=गुणेभ्य
आगतम् अतएव-गुणनिष्पन्नम्=अन्वर्थं नामधेयं=नाम 'वर्द्धमानो' भगवतु-इति कृत्वा=इति उत्तवा भगवतो
महावीरस्य 'वर्धमानः' इति नामधेयं=नाम कुरुतः। श्रमणो भगवान् महावीरो गोत्रेण काश्यपः=काश्यपगोत्र
आसीत्। तस्य खलु इमानि=वक्ष्यमाणानि त्रीणि नामधेयानि=नामानि एवम्=अनेन प्रकारेण आहवायन्ते=

व्यापी साधुवाद से, श्लोकवाद से-सर्वत्र गुणों के बखान से, स्तुतिवाद से-वन्दीजनों द्वारा किये जाने
वाले गुणकीर्त्तन से, तथा-विपुल धन से, विपुल स्वर्ण से, विपुल रत्नेतन आदि रत्नों से, विपुल चन्द्रकान्त
आदि मणियों से, विपुल मोतियों से, विपुल दक्षिणावर्त्तीदि शंकों से, विपुल राजपट्टरूप शिला से, विपुल
मृगों से, विपुल लालों से, तथा आदि शब्द से विपुल चीनी वस्त्र, कंवल आदि से, तथा-विद्यमान प्रधान
द्रव्यों से, प्रीति से-मानसिक तुष्टि से, सत्कार से-स्वजनों द्वारा वत्तादि से किये हुए सत्कार से अधिका-
धिक वृद्धि को प्राप्त हुआ है। इस कारण हमारे इसःवाल्क का गुणों से प्राप्त, गुणनिष्पन्न नाम 'वर्द्धमान हो।'

द्वारा मानवसमूह्यी ने उच्याराय ते, श्लोकवाद ओटवे लाट-चारखो वडे छ'द-चोपट अने ह्दक्ष्यो द्वारा वजाषु थाय
ते स्तुतिवाद ओटवे अ'द्विज्जो शुष्कीत'न करे ते. उपरनी सर्व आभतोना धारो यतो गये. ते उपरात विपुल धन,
विपुल स्वर्ण, कर्द्धतन आदि सर्व-श्रेष्ठ रत्नो, अर्द्धकान्त आदि सर्वोत्तम मणियो, दक्षिणावर्त्तीदि शं'ओ अने राजपट्ट
विगेरे उत्तम शिवाओथी, विपुल प्रवाल, विपुल लाल ओटवे लातरत्न-विशेषथी अने धवुा प्रकारना उत्तम वओथी
राज्यल'डार सरावा लाग्यो. तेथी आ आणकनु' नाम शुष्कनिष्पन्न 'वर्धमान' राखवामां आवे छे.

उच्यन्ते, तानि यथा-अन्वापितुसक्तम्-अभ्याशितौ सन्तौ-विषयानौ कर्तृत्वेन यस्य तदं, मातापितृवृत्तमिति मतः; 'दर्शनाः' इति प्रथमं नाम १। तथा-सहस्रद्वितीया-सहस्रान्विन्या तपःश्रुणाद्विषयया 'भ्रमणः' इति द्वितीयं नाम २। तथा-इन्द्रसक्तम्-इन्द्रकृतं 'महावीर' इति तृतीयं नाम ३ ॥ मृ० ६९ ॥

॥ इति पठ्यमी वाचना ॥

मृतम्-उप न मगवं महावीरे क्रमेण घबल-इल-विक्सत-वितिया-वंदोज्ज सोम्मकरेहि संतगुणनियरेहि निरिद्धरत्नहीणे वषणपायवेव वषण सेवद्धइ । एवं से मगवं महावीरे मकरपरत्तकागपवत्सतोहीहि सबएहि सिद्धहि सद्धि बालवभोऽणुक्क गोविणसत्त्व कीजेइ ।

पुनया देवलोए देवगालेकियाए सुहम्माए सहाए समासीजो सुणासीरो सोहम्मिदो भणुक्कमगुणेहि वद्धमावत्स वद्धमावत्स पडुगां परक्कम वब्बिउं उक्कमइ । तं सोचा निसम्म सब्बे देवा देवीजो य हरितवत्तविषय माणवियया सजाया । तत्थ कोऽपि पिच्छाविही देवो तं पडुपरक्कमपरिम असरत्तो इत्ताद्धज्जो अगीकयदुग्गभावजो मणुत्सकोणं इन्वमागम्म बालेहि कीम्मण भयवं नियपिट्ठमि समारोहिय सयवेउच्चियसत्तीए सरीरं सण्हतालववरं रिन्धिय लंबमाण विउच्चिय पडु विषय उवरि आणासतक्कआ आो पाडिउमारभीय । त दग्ग उवत्तण्येव पणिरमील्लो सिद्धुणो सिन्धुं सित्त्य पप्पाउमारद्ध । चाठरीवडू पडू ओरिया देवक्क उवरवं सुणिय एवं चित्तेइ-न एए

इस प्रकार कर कर मगवान् महावीर का नाम 'वर्द्धमान' रक्खा । भ्रमण भगवान् महावीर काइयप-गावीय व । उनके पर तीन नाम इस प्रकार करे जाते हैं-माता-पिता का रक्खा हुआ नाम 'वर्द्धमान' । समातिनी (जन्म-जात) तपस्यां प्रादि की शक्ति के कारण दूसरा नाम-'भ्रमण' । इन्द्र द्वारा रक्खा हुआ तृतीय नाम-'महावीर' ॥ मृ० ६९ ॥

॥ इति प्रथम वाचना ॥

अत्र वाचनान् तस्य नामाणि आ प्रभावे छि-भावा-पिताब्जे राजेसु 'वर्द्धमान' नाम तपक्षयो व्यादिना साभक्ष्यं ते वीधि भयव्य धं त्रे राजेसु 'महावीर' (सू ६८)

(इति प्रथम वाचना)

वाला ममं पेमाणुणे अम्मापण्णा कहिस्संति, ते णं मं उवद्वसंखुलं विणाय मा खेयखिन्ना हवहु-त्ति सिग्घं तं दुरासय दिविसय नमइउं तप्पिट्ठमज्झासीणो एव पहू मूढगूढासयणू तप्पिट्ठवरि नियसरीरस्स अप्फारं भारं आरोवीअ। तेणं सो दुरासओ देवो तारेण सरेण चिक्कारिय पुढवीतले निवडिओ। तए णं देवाणं जयज्झणी सुरज्झुणि समजणि। तए णं गयजगीवो सो देवो खामियदेवाहिदेवो पत्तसम्मत्तो सयधामं पत्तो। मू०७०॥

छाया-ततः खलु भगवान् महावीरः क्रमेण धवल-दल-विलम्-द्वितीया-चन्द्र इव सौम्यकुरैः सद्गुण-निकरैः गिरिकन्दरा-ऽऽलीनश्मपकपादप इव वयसा संवर्द्धते। एवं स भगवान् महावीरो मयूरपक्षकाकपक्षलोभिभिः सवयोभिः शिशुभिः सार्द्धं वालवयोऽनुरूपं गोयितस्वरूपं क्रीडति।

एकदा देवलोके देवगणालङ्कृताया सुधर्माया सभायां समासीनः शुनासीरः सौधर्मन्द्रः अनुपमगुणैर्वर्धमानस्य वर्धमानस्य प्रभोः पराक्रमं वर्णयितुमुपक्रमते, तं श्रुत्वा निशम्य सर्वे देवा देव्यश्च हर्षशक्तिर्युद्धदयाः संजाताः।

मूल का अर्थ—‘तए णं इत्यादि। तव क्रम से, शुक्ल पक्ष की द्वितीया का चन्द्र जैसे अपनी सौम्य किरणों से बढ़ता है उसी प्रकार भगवान् महावीर सद्गुणों के समूह से, तथा जैसे पर्वत की गुफा में स्थित चम्पक-वृक्ष क्रम से बढ़ता है उसी प्रकार वय से, बढ़ने लगे। इस प्रकार भगवान् महावीर मयूर-पक्ष से सुशोभित चौटी से शोभायमान समवस्त्रक शिशुओं के साथ, अपने असली स्वरूप को गोपन करके, वाल्यावस्था के अनुरूप क्रीडा करने लगे।

एक बार देवलोक में देव-समूह से अलंकृत सुधर्मा सभा में बैठे हुए इन्द्र सौधर्मन्द्रने अनुपम गुणों से बढ़ते हुए वर्धमान प्रभु के पराक्रम का वर्णन करना आरंभ किया। उसे सुनकर और समझकर सभी देवों और देवियों का हृदय, हर्ष के वशीभूत होकर खिल गया। किन्तु उनमें से प्रभु के पराक्रम की

भूलने। अर्थ—‘तए णं’ धत्यादि नेभ शुद्ध पक्षने। यद्रभ, दिन-प्रतिदिन क्वाओभां वधते। अथ छि तेभ भगवान् महावीर पशु, सहशुणोभां वृद्धि पाभवा लाग्थां। नेभ पर्वतनी शुभाभा उगेल थं पक्ष वृक्ष, इमे इमे विक्षास पासे छि, तेभ भगवान् पशु वयथी वृद्धि पाभवा लाग्थां।

भारती पाण्थी सुशोभित चोटलीवाळा समान वयना सुंदर भित्तो साथे, भगवान् पोतातुं पराक्रम जापवी गण्णिने, वाड्यावस्थाने अनुपप क्रीडाओ ज्ञाने रभते। करवा लाग्थां।

तत्र कोऽपि मिथ्याहन्तिर्देवस्य प्रभुपराक्रमपरिमानम् अथारचान इत्याहुकोऽङ्गीकृतदुर्मायनो मनुष्यलोके श्रीप्रभामागम्य
 शत्रुः क्रोडन्तं मगान्तं निजपृष्ठे सपातोप्य स्वकैश्चिक्यस्रया शरीरं सप्ताष्टशालतरुपरिमितं समन्मानं विकल्प्य
 प्रभुं त्रिर्गामुद्वेष्टया निर्भयं प्रहरन् उपयौक्तावहमाश्रयः पातयितुमारब्धः, तद् दृष्ट्वा तत्सम्पत्तेव प्रकृतिमीर्यः क्षिप्तः
 श्रीप्र शीघ्रं एसायितुमारब्धः, चामुरीशुचुः प्रभुराविना देवकृतमुग्रवं शान्ता एष चिन्तयति—यदेते शरणा
 मय येनवन्तो अन्नापितरौ कथयिष्यन्ति, तौ खलु माय उपद्रवसङ्क्रमं विहाय या खेदविमौ मरताम्—इति श्री

महिमा पर विवस्स न इतरा इया, ईपांछु तथा दुर्मायना को अगीकार करतेवाला एक मिथ्याहन्ति देव
 शीघ्र ही मनुष्यलोक में आया। उसने बाछकों के साथ झीङ्गा करते हुए मगवान् को अपनी पीठ पर
 बिठा कर, अपनी चैक्रिय कृत्ति से अपने शरीर को सात-आठ ताड़के हसों जितना लम्बा (ऊँचा) कर
 लिया। वह मगवान् का इनन करना चाहता था। अतः उन्हें ऊँचे आकाशतल से नीचे गिराना आरम्भ
 किया। यह हस्य देवतकर स्वभाव से इरापोक बालक उसी सण जल्दी-जल्दी मागने लगे। अपनी कतुर्गार
 के लिए मसिद्ध प्रभुने अवपिह्वान से इस उपद्रव को देवकृत नानकर इस प्रकार विचार किया—‘यह बालक
 मेरे स्नेहवीर्य माता-पिता से कौने। वे मुझे उपद्रव में फँसा हुआ समझकर खेदलिप्त न हों, इस प्रकार

देवों को वचने, देवलोकांभ, देवाना समूह वच्चे लड़िका पछेडा देवलोकांभ छन्द्यं शीघ्रर्शेन्द्रे अत्रवाना
 अनुपम उपेयुं वचुं करवानु शरु हनु” आ सांजको, अर् देव-देवोन्मोना दुर्दये कर्षी पुत्रावित शर्मा।

आ देवा भये मेध कोर देवने, प्रभुना पशुशेयना भक्तिभा उपर विधास लेसे नकि, तेवी शीघ्रपत्थे
 मुल्लोडोकांभ आये। आ देव, ते वज्रत भिन्नाहन्ति अणुतो, तंभज तेना स्वभाव छेन्मोवाणा अने दुर्भाववाणा इया
 आ देव, मुल्लोडोकांभ आवीने, जहाँ आनवान पोवाना सुभान वचरर आणहेत साधे रभेत। दभत्तां इत्तां,
 त्वां पछोदी जये, पछोच्या नाद, तुस्तज आनवानने पोतानी पीड भर लेसाखी दीधा, ने पोतानी नैकिन सन्तिना
 प्रताये, पोतानु शरीर सात-आठ ताड-मुझे नेटकु ठंमु जगवी दीधु करवु हे आभ करीने, ते आनवाननु
 इन्नन करवा मानेता इते। आभ छेन्मोने, आकाशयांवी नीखे पुन्मी पर पशुअवपानु शरु हनु”

आपु इस लेख स्वभाववी इरापोक कोवा आणहेत, नास-आग करवा बाज्यां प्रभु तेा कतुर अने विवक्ष्य
 इत्तां तेभये अनविज्ञान द्वारा जाली वीधु हे, आ उपद्रव देवकृत छि आ जगोहे भात भाता-विता भासे जर्ष,
 भारी इयात विषम्वु क छे तो, भिन्न अशी

तं दुराशयं दिविषदं नमयितुं तत्पृष्ठमध्यासीन एव प्रभुर्महद्गङ्गाशयज्ञस्तत्पृष्ठोपरि निजशरीरस्थस्फारं भारमारोपयत् । तेन स दुराशयो देवस्तारेण स्वरेण चीत्कृत्य पृथिवीतले निपतितः । ततः खलु देवानां जयध्वनिः सुराध्वनिः मज्जनि । ततः खलु नतग्रीवः स देवः क्षामितदेवाधिदेवः प्राप्तसम्यक्त्वः स्वकथाम प्राप्तः ॥सू०७०॥

टीका—‘तए णं भगवं मन्वीरे’ इत्यादि । ततः=नामकरणानन्तरं खलु सद्गुणनिकरैः=सद्गुणसमूहैः भगवान् महावीरः सौम्यकरैः=आह्लादककिरणैः धवलदलविलसद्द्वितीयाचन्द्र इव—धवलदले=शुक्लपक्षे विलसन्=विराजमानो यो द्वितीयाचन्द्रः=वालचन्द्रमाः स उन. तथा—गिरिकन्द्राऽलीनः=पर्वतगुहास्थितः चम्पकवृक्ष इव वयसा क्रमेण संवर्धते । एवम्=अनेन प्रकारेण स भगवान् महावीरो मयूरपक्षकापक्षशोभिभिः—मयूरपक्षसुशोभितेन

सोचकर दुष्ट-आशय-वाले उस देव को नमाने के लिए, उसकी पीठ पर चढ़े-चढ़े ही, उस मूढ़ के गूढ़ आशय को जाननेवाले प्रभुने अपने शरीर को थोड़ा सा भारी कर दिया । इस कारण दुष्टाशय देव उच्च स्वर से चीत्कार करके भूतल पर गिर पड़ा । तब आकाश में देवों ने जय-जयकार की ध्वनि की । तत्पश्चात् नतग्रीव-भगवान् के चरणों पर गिरा हुआ वह देव भगवान् से अपना अपराध खमाया और सम्यक्त्व लाभ करके अपने स्थान पहुँचा ॥सू०७०॥

टीका का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । नामकरण के बाद भगवान् महावीर क्रमशः अपने सद्गुणों के समूह से उसी प्रकार बढ़ने लगे, जैसे शुक्लपक्ष में विराजमान द्वितीया का चन्द्रमा बढ़ता है, तथा वय से ऐसे बढ़ने लगे जैसे पर्वत की गुफा में स्थित चम्पक वृक्ष बढ़ता है । इस प्रकार वह भगवान् मयूर के पंखों

आबु विचारी, लगवाने, आ देवना सान ठेकाखे लाववा भारे, तेनी पीठ पर छोटाछोटा, पोतानु शरीरु वजन वधारी हीधु, असह्य लारने लोधि, आ देव वाके। वणी गये, ने राठ नाभी, पृथ्वी पर पटकाई गये। आ तभासे जेध, आकाशना देवाये ‘जय जयकार’ शब्दोनी घोषणा करी लोढा। पडेढा आ देव, लगवानना यरण्णमां आवी नभी पडयो ने थयेल अपराधनी भाझी भागी। पोताने। मिथ्यात्वबाव तल्ल, सायी सभण्ण लल्ल स्वस्थाने विहाय थये। (सू०७०)

टीकानो अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि नामकरण पछी लगवान महावीर कमश. पोताना सद्गुणोना समूहथी जेवी रीते वधवा लाग्था के जेम अज्जवाणियाभा भीज्जेना यन्द्र वधे छे वणी पर्वतनी गुफाभां रहेल चम्पक वृक्ष जेम वधे छे तेम वयभा वधवा लाग्था आ रीते ते लगवान महावीर पोताना महान् शक्तिमय स्वइयने

कारुण्येण=स्वित्वात् केन क्षोभनशीलैः सारयोभिः=समानवयस्कैः शिशुभिः=बालैः सार्द्धे=सह वासवपोऽनुसर्गः=

एकत्रयः पृथक्स्मिन् समये द्वेयस्योक्ते वेत्तव्यान्मृद्वर्थोक्तिभिरायां सुषर्मायां समायां समासीनः॥

उपविष्टः सौषमेन्द्रः सौषमर्ष्यस्यसामी शुनासीरः=इन्द्रः अनुपमगुणैः वर्षमानस्य=वृद्धिं गच्छतो वर्षमानस्य प्रभाः

पराक्रमे=वीर स्वययितुमुपक्रम=आरम्भ । हे=साराक्रमे वंशमाने श्रुत्या=सामान्यतः कृष्णगीचर कृत्वा । नञ्म्ये=

[illegible][illegible]

... ..

से युक्त चोटियों से सोरनेबाड़े, समान बघवाड़े बालक्री के साथ, बाल्यावस्था के योग्य, अपने मान

[illegible]

इस पक्ष पर वे। उन्होंने अपने अनुग्रहणों से वर्धमान (बढ़ते हुए) वर्धमान प्रभु के पल-पाश्र्व का इस समय देलाक न प्रगना। स सुवामनप सुवना मान का तभी न मानन देलाक की त्वना।

वर्षाने भारीम किया। उस वर्षाने किये जानेवाले पराक्रम को फानों से सुनकर और हृदय में पाएण करके

सब देवों और देवियों का मानस रूप से विकसित हो गया। उन देव-देवियों में से किसी एक मिथ्या

राष्ट्र दल को भगवान् भागीर के पराक्रम पर विस्वास नहीं हुआ। वह हल्लाखि था, अतः

चमक नगम पुमो(न) उत्तम ह। पर। वह वित्काल, मनुष्यजात म जायो और बालका क साथ क्रम।

કુષાવીને મોરારજીભાવણી શિખાઓથી ચોખતાં સમયબદ્ધ બાળકોની સાથે દીઠા કરવા લાગ્યા.

શ્રી વેમ્બે પિતાના અનુપમ શ્લોકોથી, જર્માન (વધવી) બર્ષમાન પ્રજાનાં ૭૫-૮૦% પ્રજાઓને વડોદરામાં રહેવાની સલાહ આપવામાં આવી હતી.

[illegible][illegible]

शीघ्रम् आगम्य बालः सह क्रीडन्तं रममाणं भगवन्तं वर्धमानस्वामिनं निजपृष्ठे=स्वपृष्ठोपरि समारोह=
संस्थाप्य स्वकैक्रियशक्त्या=निजवक्रियसामर्थ्येन शरोरं=देहं, सप्ताष्टतालतरुप्रमित=सप्ताष्टसंख्यतालवृक्षप्रमाण-
लम्बमानं=दीर्घं विकृत्य=निर्माय प्रभुं=महावीरस्वामिनं जिघासुः=हन्तुमिच्छुः उपरि=ऊर्ध्वं आकाशतलात्=न्याग-
नमण्डलात् अग्रः=नीचः पानयितुम् आरब्ध । तत् दृष्ट्वा तत्क्षणमेव प्रकृतिभीरवः=स्वभावकातराः शिशवो=
बालाः, शीघ्रं=अतिशीघ्रं पलायितुमारभन्त । चातुरीचुञ्चुः=स्वचातुर्येण प्रसिद्धः, प्रभुः=महावीरस्वामी
अवधिना=अवधिज्ञानेनपयोगेन देवकृतम् उपद्रवम्=उपसर्गं ज्ञात्वा एवं=वक्ष्यमाणप्रकारं चिन्तयति, यत् एते बालाः
मम प्रेमवन्तौ=स्नेहेयुक्तौ अम्बापितरौ कथयिष्यन्ति=देवकृतोपद्रवं 'निवेदयिष्यन्ति', तच्छ्रुत्वा 'तौ खलु माम्
उपद्रवसङ्कुलम्=उपसर्गयुक्तं विज्ञाय खेदखिन्नौ=दुःखभाजौ मा भवताम् इति चिन्तयित्वा शीघ्रं तं दुराशयं=

करते हुए भगवान् वर्द्धमान स्वामी को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। उसने अपना वक्रियशक्ति से अपने
शरीर को सात-आठ ताड़ वृक्षों-जितना लम्बा-ऊँचा बना कर महावीर स्वामी का हनन करने की इच्छा
की। उसने प्रभुको ऊँचे आकाशतल से नीचे गिराना आरंभ किया।

यह दृश्य देख कर स्वभाव से भीरु बालक उसी समय भागने लगे। अपनी चतुराई से प्रसिद्ध
महावीर स्वामीने, अवधिज्ञान का उपयोग लगा कर जान लिया कि यह उपसर्ग देव का क्रिया हुआ है।
तब उन्होंने ने इस प्रकार सोचा-ये बालक मेरे स्नेहशील माता-पिता से कहेंगे-अर्थात् देवकृत इस संकट
की बात उन्हें बतायेंगे। उसे सुनकर माता-पिता मुझे संकट-ग्रस्त जानकर चिन्तायुक्त न बनें, इस प्रकार

डोडा करता, भगवान् वर्द्धमान स्वामीने 'पोठा' पर बसाड़ी दीथां, तेछे पोतानी वैद्विय शक्तिथी पोतानां
शरीरने सात-आठ ताड़ वृक्षों जितना लम्बा-ऊँचा बना कर महावीर स्वामीनी हत्या करवानी छच्छा करी, तेछे भस्मावीर
प्रभुने जितना आकाशतलवर्धी नीचे डेक्वानु शरं कर्युं ।

आ दृश्य नेछेने इत्येक स्वभावना भाणके तो तसत, न नासवां लाग्यां, पोतानी व्यतुराधथी प्रसिद्ध
भस्मावीर स्वामीने, अवधिज्ञानेन उपयोग करीने, नष्टयुं डे आ उपसर्गं देव वडे करयेव छे, त्यारे तेभेछे आ
प्रभावे विचार कर्यो-ते भाणके भारां स्नेहाव माता-पिताने आ आश्रतनी-देवथी करयेव आ उपसर्गानी बात
करथे त सावणीने माता-पिता भने संकटमां भूझयेवे। आलीने चिन्ता न करे, जेवे विचार करीने तसत न ते

दुष्टमात्र विविपदं=देव नमयितुं=नवीकृतं सत्यम् अयासीनः=उपविष्ट एव प्रभुः=वीरस्वामी मृदुगुहाश्रयः-
 मृदुस्य तस्य देवस्य यो गुहाश्रयः=पच्छमाश्रयः तद्वत्=दन्तावा तस्युद्योपरि निजशरीरस्य अस्फोरं=स्वल्पं
 मास्य आरोपयत्=स्थापितवान्। तेन=मृदुकुवशरीरस्त्वभारस्पापनेन तं स्वल्पमास्यसहमानः स दुराश्रयः=
 दुरात्मा देव शारेण=अशुभैः स्वरेण चीकुर्य=वीकारं कृत्वा पृथिवीतले निपतितः। ततः=तत्पतनानन्तरं सख
 देवानां नयध्वनिः=अपदन्धः सुराध्वनिः=आकाशे समजनिः=अभूत्। सखः सख नरघीव =नवा ग्रीवा यस्य स तथा,
 मृदुवाचापित्विद्रिा इत्यर्थः, स दब सामितदेवाधिवचः=सामितः=समां कारितः देवाधिवचः=सर्वदेवनायः स्वापराव
 परिमार्जनाय येन स तर्पापूतः सन् प्राप्तसन्त्यवः=अथसम्पत्सवः स्वकृपाभः=निजस्याभं प्राप्तो=गतवान् ।।३०७०॥

मूलम्—नृप न अथया कथाइ पदुस्त अन्मापिउणो सपलकलाकलियपि कलियवच्छट्टण कसाकलाव
 सिक्खेहं महाभरोण मरोवहारोण भगवज्जेसु वज्जेसु कज्जमाणेसु पठरपरिहारपरियरियं तं कजापरियसविहे णिति ।
 मयव उ ओरिप्पु मन्नि क्खमिण्युमुपाए अन्मापिज्जाभणुरोहेण कजापरियपासे णट्ठियो । पदुस्त सोइणमागमणे
 अवगमिय कजापरिमो पसमो उवात्तणमज्झसीणो महीणमोयपीणो अहुणेव तरन्तरहारो अणुणयपरिवारो
 रापकुमारो भात्तमाणो वदमाणा मयंहिए आनामिस्सा-पि इहु तप्पडिच्च करोभ । किंतु तंदिअ-कजा-मंदिओ

विचार करके दीघ ही उस दृष्ट भविष्य वाळ देव को नमाने के लिए, देव की पीठ पर चढ़े-चढ़े ही
 अपने शरीर को घोड़ा-सा मारी कर दिया। प्रभु के शरीर का स्वल्प भार पड़ने पर वह देव उसे भी
 सहन न कर सका। वह दुरात्मा दब बहुत उच्च-स्तर से चीत्कार करके पृथ्वीतल पर आ गिरा। उसके
 गिरने पर आकाश में दबा की मयध्वनि हुई। तत्पश्चात् भगवान् के चरणों पर चिर रत्न कर वह उपद्रव
 करने वाला दब भगवान् से अपना अपराध क्षमाया और सम्पत्तव प्राप्त कर अपने स्थान पर चला गया ।।३०७०॥

इष्ट आश्रयवाणा देवने नमयवया भाटे देवनी पीड पर रहेवा जेनां तेभजे पोवाना शरीरने थोडु भारे भुजु
 प्रभुवा शरीराना थोडो भार वधवा न ते देव तेने पवु लकन हरी खड्यो नही इष्ट देव थकु। आ शरीर नीस
 भाडीने भूतक पर भावीने पड्यो तेने चटना न आकाशमा देवाजे अन्नाह भयो। त्पार भाइ भगवानां भारे। पर
 पोवाना भयान भूडीने ते उपद्रव करनार देव भगवान पासे पोवाना अश्रयानी क्षमा आशीने तथा सम्पत्तव
 वाडीने पोवाना स्थाने न हवा भयो। (Sanskrit)

पंडितों कि अखंडकलामंडियं तं पुरिसुत्तमं सयलणत्रज्ज-विज्जाडहिंदाई-देवया-विहेय-वंदणं भयवं पाडिउ सक्कि-ज्जा?, परिसुद्धं कंचणं किं सोद्विज्जा?, अंतर्गुह्यं तोरणोहिं किं अलंकरिज्जा?, अमयं महुदव्वेहिं किं वासिज्जा?, सरस्सई पाठविहिं किं सिक्खिज्जा?, चंदम्मि धवलत्तं किं आरोविज्जा?, सुवणं सुवणजलेण किं परिकरिज्जा? जो भयवं पाणत्तिगमहालओ महाविण्णानजलही महासामत्थणिही महावुदी महाधीरो महागंभीरो य अत्थि सो अप्पणाणिणो अतिए पडिउं गच्छिज्जन्ति मंह असमंजसं। एयाए पवित्रीए देवलोए सुहम्माए सहाए सक्कस्स देविंदस्स देवरणो आसणं चलिं। तए ण आसणे चलिए समाने ओहिणा आमोगिय सक्किदो सिम्यं तओ पट्टिओ माहणरूवेण पट्टुसमीवे आगमिय पंडु उच्चासणे उवणिवेसिय जाः पण्हाइं कळायरियहियए संसयरूवेण ठियाइं ताइं चैय पण्हाइं पुच्छेइ, तत्थ इंदेण वागरणविसयं पण्हं कयं, भगवया तं वागरिय संखेवेण सव्वं वागरणं कहियं। तओ पच्छा इंदेण णयप्पमाणसरूवं पुच्छियं तं भगवया संखेवेण आघविय सव्वं णायम्मम पयासियं। तओ पच्छा तेण धम्मविसए पुच्छियं। भगवया धम्मसरूवं आघवमाणेणं उवसमो आघविओ, उवसमं आघवमाणेणं विवेओ आघवित्रो, विवेगं आघवमाणेणं विरमणं आघवियं, विरमणं आघवमाणेणं पावणं कम्मणं अगरणं आघवियं, तं आघवमाणेणं णिज्जरावंधमोक्खसरूवं आघवियं ॥ सू०७१ ॥

छाया—ततः खलु कदाचित् प्रभोः अम्बापितरौ सकलकलाकलितमपि ललितवात्सल्येन कलाकलापं शिक्षयितुं महामहेन महोपहारेण अनन्वद्येषु वाद्येषु वाद्यमानेषु प्रचुरपरिवारपरिकरितं प्रभुं कलाचार्यसंविधौ नयतः। भगवांस्तु अवधिज्ञोऽपि अनभिज्ञमुद्रया अम्बापित्रोरनुरोधेन कलाचार्यपार्ष्वे प्रस्थितः। प्रभोः शोभनमगमनम्

मूल का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि। तत्पश्चात् किसी समय प्रभु के माता-पिता ने सकल कलाओं के ज्ञान से युक्त प्रभु को अतिशय वात्सल्य के कारण कला-कलाप सीखने के लिए बड़े उत्सव और बहुत उपहारों के साथ तथा विपुल परिवार के साथ कलाचार्य के समीप भेजा। उस समय मनोहर वाजे बज रहे थे। भगवान् अवधिज्ञानी होने पर भी अनभिज्ञ-सरीखी आकृति बनाये, माता-पिता के

भूजने। अर्थ—“तए णं” इत्यादि। त्थार याद डैअ सभये भगवानना मातापिताये सङ्ग ङ्गाय्थेनाना ज्ञानथी युक्ता भगवानने अतिशय वात्सल्येन करखे ङ्गाय्थे शीथवाने भाटे मोटा उत्सव तथा धणी ब लेट-सोगाटो साथे तथा विपुल परिवारणी साथे उसायार्थनी पासे सोइय्थां, ते सभये वाजं वागतां हुतां। भगवान् अवधिज्ञानी होवा छता पथु अणइया नेवी भुण्हात्ति राभीने, माता-पिताना अनुदोधथी उसायार्थनी पासे बवा रवाना थयां।

अगम्य कनाऽऽचार्यः प्रसन्न उपासनमध्यासीनः श्रीनमोदीपनिः अयुनेव तरलतरङ्गारोऽनुगतपरिवारो राजकुमारो
 प्राप्तमानो यमानो ममान्तिके आगमिष्यतीति कुत्रा तत्पतीयामकरोत् । किन्तु लघितरुल्लामण्डितः पण्डितः
 स्मितसङ्कलामण्डित तं पुरुषोत्तमं सकृन्नाम्यव-विद्या-पिण्डदेवता-निवेद्य-वन्दनं शिशुलानन्दनं भगवन्त
 पाठयितुं वचनुयात् ? परिशुद्ध काञ्चनं किं ओध्येत् ? आभ्रतरुं तोरयैः किमलङ्कुरियेत् ? अमृतं मयुद्रव्यैः
 किं शाल्येत् ? सरस्वती पाठनिधिं किं शिख्येत् ? चन्द्रे पदमस्त्रं त्रिषु भारीयेत् ? सुवर्णं सुवर्णवर्णेन किं
 परिचिख्येत् ? यो भगवान् ज्ञानविक्रमहास्रणो महाविज्ञानमन्त्रि महासामर्थ्यनिधिः महापुद्गिः महापीरो महा

अनुतोष से कलाचार्य के निकट जाने को खाना हुए । भगवान् का शुभागमन ज्ञान कर कलाचार्य प्रसन्न
 हुआ । जैसे आसन पर बैठ गया । अतिशय प्रमोद से फूल गया । अनुपम द्वार का पारक परिवारसमेत
 राजकुमार अभी मेरे पास आने वाला है, ऐसा सोच कर उसकी प्रतीक्षा करने लगा । किन्तु योड़ी-सी
 कला को जानने वाला पण्डित, सकल कलाओं से सुशोभित, समस्त समीचीन विद्याओं के अविच्छाद्यक
 देवता-द्वारा वन्दना करने योग्य शिशुलानन्दन भगवान् को क्या पढ़ा सकता था ! पूर्णरूपसे
 शुद्ध सुवर्णको क्या बोधा जाय ! आभ्र वृक्ष को तोरणों से क्या सिंघारा जाय ! अमृत को मधुर द्रव्यों से
 क्या चासित किया जाय ! सरस्वती को पढ़ना क्या सिलाया जाय ! वन्दना पर ऊपर से क्या सकेरी
 पोती जाय ! सोने पर सोने का पानी बड़ा कर क्या समझाया जाय ! जो भगवान् तीन ज्ञान के महान्
 स्थान थे, विपुल विज्ञान के वारिधि थे, महान् सामर्थ्य के मण्डार थे, महापुद्गिजाली, महापीर और

भगवान् शुभ आनन्दन अर्द्धोने कलाचार्य प्रसन्न वर्य, शिष्या आरुने विसी जरा, अतिशय आनन्दी भवती ठुगल
 अनुपम काशने धारण करनार शब्दकुमार वर्यमान परिवार साथे दुभयं न भारी पसे आनवाना छे कोम विचारिने
 तेभनी राक्षस्ये बाया, रक्षु योदी केवी कणने लवणार ते भद्रित, सवर्णी कणकोशी सुशोभित, समस्त कपीचीन
 विद्याकोना अविभाषक देवता क्षात्र वदना कर्षवने भव निशब्दाना पुत्र पुरुषोत्तम भगवानने शु भाषावी शङ्खवाने
 केते ! एवं रति शुद्ध सुवर्णने तावनाशी शु वगे ? आणने तोरखोः शु शब्दगारी शङ्ख ! अमृतने मधुर
 द्रव्योशी शु स्वातिरु करी शङ्ख ! सरस्वतीने शु भाषावी शङ्ख ! अन्ध्रमा पर उपरशी शु श्वेरी कजारी शङ्ख !
 शिष्या नमो भवती आनन्दन शु तेने आरुने अर्द्धोने कलाचार्य प्रसन्न वर्य, शिष्या आरुने विसी जरा, अतिशय आनन्दी भवती ठुगल

गम्भीरश्च अस्ति, सोऽल्पज्ञानिनोऽन्तिके पठितुं गच्छेदिति महदसमञ्जसम् । एतया पृथ्वा देवलोके सुधर्मायां सभायां शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आसनं चलिताम् । ततः खलु आसने चञ्चिते सति अत्रिणा आभ्युज्ज-
शक्रेन्द्रः शीघ्रं ततः प्रस्थितो ब्राह्मणरूपेण प्रभुसमीपे आगत्य प्रभुपूजासने उपनिवेश्य ये प्रश्नाः कलाऽऽचार्य-
हृदये संशयरूपेण स्थिताः तां एव प्रश्नान् पृच्छति । तत्र इन्द्रेण व्याकरणविषयः प्रश्नः कृतः, भगवता तं
व्याकृत्य सङ्क्षेपेण सर्वं व्याकरणं कथितम् । ततः पश्चात् इन्द्रेण नयप्रमाणस्वरूपं पृष्ठम्, तद् भगवताः सङ्क्षेपेण

महागंभीरं ये, वे अल्पज्ञानी के पास पढ़ने जाएँ, यह गड़ी ही अट-पटी बात थी ।

इस प्रवृत्ति से देवलोक में, सुधर्मा सभा में, शक्र देवेन्द्र देवराज का आसन चलायमान हुआ ।
तब आसन चलिता होने पर अत्रिज्ञान से जान कर शक्रेन्द्र शीघ्र ही वहाँ से आये । ब्राह्मण का रूप
धारण करके, प्रभु के पास आकर और प्रभु को ऊँचे आसन पर आसीन करके, जो प्रश्न कलाचार्य के
हृदय में संदिग्ध-रूप में स्थित थे, वही प्रश्न पूछे । इन्द्र ने पहले व्याकरण के विषय में प्रश्न किया ।
भगवान् ने उसका उत्तर देकर संक्षेप में सारा व्याकरण कह दिया । तत्पश्चात् इन्द्र ने नय और
प्रमाण का स्वरूप पूछा । तब भगवान् ने संक्षेप में समाधान करके न्याय का समस्त रहस्य प्रकाशित कर
दिया । तत्पश्चात् उसने धर्म के विषय में प्रश्न किया । धर्म का स्वरूप बतलाते हुए भगवान् ने उपशम

हुतां, विपुल, विज्ञाननां सागर हुता, भूदान सामर्थ्यनां भंडार हुता, भूधायुद्धिशाली, भूधार्थीर, अने भूभागंबीर
हुता, ते अल्पज्ञानीनीः] पासे लघुया नाथ ते धृष्टी न अटपटी वान हुती ।

आ प्रवृत्तिशी देवलोकमा, सुधर्मा सभायां, शक्र देवेन्द्र देवराजस्य आसनं चलायमानं भूयुः । त्वादे आसनं
चलिता भवान् शक्रस्य तस्मै न अवधिज्ञानशी लघुनि शक्रेन्द्र तस्मै न त्यांशी ब्राह्मणस्य इयं लघुनि, प्रभुनी पासे
आवीने अने प्रभुने जेचि आसने भेसाडीने, ने प्रश्नो कलाचार्यनां हृदयमां संदिग्धइये रहैला हुता, जेन प्रश्नो
लगवानने पूछ्यां । हुन्द्रे पछैलां व्याकरणना विषयमां प्रश्न पूछ्यो । भगवाने तेनां नवाण आपीने संक्षिप्तमां व्याख्यं
व्याकरण कही दीधु । त्यारभाह हुन्द्रे 'नय' अने 'प्रमाण' तु स्वरूप पूछ्युः । त्वादे भगवाने संक्षिप्तमां समाधान
करीने न्यायतु समस्त रहस्य प्रकाशित करी दीधुः । त्यारभाह तेखे धर्मा विषयमां प्रश्न पूछ्यो । धर्मनुं स्वरूप

आन्त्याय सर्वे न्यायमर्म प्रकाशितम् । ततः पश्चात्तेन धर्मविषये पृष्टम् । भगवता धर्मस्वरूपम् आचसाणेन उपश्रम आख्यातम्, उपश्रममाचसाणेन विवेक आख्यातम्, विवेकम् आचसाणेन विरमणम् आख्यातम्, विरमणम् आचसाणेन पापानां कर्मणाम् अकरणम् आख्यातम्, तत् आचसाणेन निर्मार्गान्यमोक्षस्वरूपमाख्यातम् ॥ सु० ७१ ॥

टीका—‘तप णं भणया’ इत्यादि । ततः सख्य भन्यदा कदाचित् प्रभोः=महावीरस्वामिनः, अस्या पितरौ=मातापितरौ, सख्यकलाकामितमपि=सर्वकलावन्तमपि सखितयास्तत्वेन=अविशयमेव्या कलाकलाप=कला-समूहं=कलाशिक्षां शिष्यादिभ्यो आह्वयितुं भगवद्भने=महोत्सवेन महोपहारेण=पुष्कलोपायनेन अनवेषणु=शोभनेषु वायेषु=वादिषु वायमानेषु प्रभुपरिवारपरिकरितं=प्रभुपरिजनपरिषेष्टितम्, प्रभु=श्रीमद्वावीरस्वामिनं कलाचार्य-सर्विवे=कलाशिक्षकाचार्यं नयतः=आपयतः, भगवान्=श्रीवर्षमानस्तु अवशिजोऽपि=अरधिज्ञानसम्पन्नोऽपि अनभिज्ञ इत्यपान्नानास्येव चेष्टया अस्यापि सोऽनुरोधेन=आग्रहेण कलाचार्यपार्षे=कलाशिक्षकनिष्ठे प्रस्थितः=पययौ ।

कहा, उपश्रम करते हुए विवेक कहा, विवेक करते हुए विरमण कहा, विरमण करते हुए पाप-कर्मों का भकरण (न काना) कहा, पाप-कर्मों का भकरण करते हुए निर्मरा, षण और मोक्ष का स्वरूप कहा ॥ सु० ७१ ॥

टीका का अर्थ—‘तप णं’ इत्यादि । तदनन्तर किसी समय भगवान् महावीर स्वामी के माता-पिता ने समस्त कलाओं के ज्ञाता प्रभु को भी प्रगाढ प्रेम के कारण, कलाओं का ज्ञान प्राप्त कराने के लिए महोत्सव के साथ, भारी भेंट के साथ, मनोहर गानों-बाजों के साथ और बहुत बड़े परिवार के साथ, कलाशिक्षक के समीप पहुँचाया । भगवान् वर्षमान भवधिज्ञान से विपुषित होकर भी भजनान की सी चेष्टा करके, माता-पिता के आग्रह से कलाचार्य के समीप पयारै कलाचार्य, श्रीवर्षमान स्वामी का सोमन

जतावा भक्त्याने उपश्रम कहा उपश्रम की आये विवेक कहा (नेवेकनी आये तिरमण् कथु विरमण्वनी आये पाप-कर्मो अउरप (न कस्तु ते) कथु पाप-कर्मोनां अउरमण्वनी आदेशरिन्करा, णं अने मोक्षेण कथु (सुखेण) टीकाते अर्थ—‘तप णं भणया’ इत्यादि त्वात्माह हेतुं सभये भगवान् महावीर स्वामीना आता-पिताअे समस्त कलाअेने आसुनार प्रभुने षण् प्रगाढ प्रेम्ने हाखे कलाअेनु ज्ञान आपापण आते अकोरकनी आये तथा आये सेठ आये, भनोकर पावनी आये तथा वया आता धनियानी आये कलाशिक्षकनी पाखे मोहवा. अजयान वर्षमान अरधिज्ञानी होय छतां पण आये अलापका होय जेवी, कथु अने आता-पिताना अउरेश्वरी कलाचार्यनी पाखे पयारै कलाचार्य भी पयमान कलाअीनां सुख आनयनअने आखीने प्रमद कर्मा, अने कर्मा अजयान पर छेदक ते

कलाचार्यः प्रज्ञोः=श्रीवर्धमानस्वामिनः शोभनम्=प्रशस्तम् आगमनम् अवगम्य=बुद्ध्या प्रसन्नः=सन्तुष्टः उच्चासनम्
 आध्यासीनः=आश्रितः अदीनप्रमोदीनः=अमन्दानन्दपुष्टः अयुनैव=इदानीमेव तरलतरहारः=अनुपमहरारः कः
 अनुगतपरिवारः=परिजनसहितः, राजकुमारः=सिद्धार्थनृपुत्रः भासमानः=गम्भीर्यादिगुणैः शोभमानः वर्द्धमानः=
 तदाख्यः कुमारो मम अन्तिके=पार्श्वे आगमिष्यति-इति कृत्वा=इति बुद्ध्या, तत्प्रतीच्छां=श्रीमहावीरागमन-
 नाटनिरिक्षणम् अकरोत्=कृतवान् । किन्तु खण्डितकलामण्डितः=अल्पकलाभिन्नः पण्डितः किम् अखण्डकलामण्डितं=
 सकलकलाभिन्नं तं=श्रीवर्धमानस्वामिनं पुरुषोत्तमं=पुरुषश्रेष्ठं सकला-नवधा-विद्या-अधिष्ठातृ-देवता-विषेय-वन्दनं=
 सर्वसमीचीनविद्याअधिपतिदेवताकर्तव्यवन्दनं-सरस्वत्याऽपि वन्दनीयं त्रिशलानन्दनं=त्रिशलापुत्रं भगवन्तं पाठयितुं=
 शिक्षयितुं शक्नुयात् ? अपि तु न शक्नुयात्, तस्य स्वतः संबुद्धत्वात्, अमुमेवार्थं प्रकारान्तरेणाह—
 परिशुद्धं काञ्चनं=स्वर्णं किं शोध्येत ? अपि तु न शोध्येत, स्वतः परिशुद्धत्वात्, आम्रतरुः=आम्रवृक्षः तोरणैः

आगमन जानकर प्रसन्न हुआ और ऊँचे आसन पर बैठा हुआ वह हर्ष की तीव्रता से फूल उठा-पुष्ट
 हो गया । अद्वितीय हार के धारणहार, गंभीरता आदि गुणों से सुशोभित, सिद्धार्थ महाराज के पुत्र
 राजकुमार वर्धमान अभी-अभी परिवार-सहित मेरे समीप आएँगे, इस प्रकार विचार कर कलाचार्य उनके
 आने की बात जोहने लगा ।

किन्तु थाड़ी-सी कलाओं का ज्ञाता पंडित, समस्त कलाओं में निपुण, पुरुषों में उत्तम, सब
 श्रेष्ठ विद्याओं के अधिपति देवता के द्वारा भी वन्दनीय, अर्थात् सरस्वती के द्वारा भी स्तवनीय त्रिशला-
 नन्दन भगवान् को क्या पढ़ाने में समर्थ हो सकता था ? अर्थात्-नहीं हो सकता था, क्यों कि वे तो स्वयं-
 संबुद्ध थे । इसी अर्थ को दूसरे प्रकार से कहते हैं-पूर्ण रूप से शुद्ध स्वर्ण को क्या शोधा जाता है ? नहीं

इसकी तीव्रतायी इतनी गयी अनुपम डारने धारण करनार, गंभीरता आदि सुशोभित, सिद्धार्थ महाराज
 राजनार युव, राजकुमार वर्धमान हर्मणं न परिवार साथे भारी पासे आवेशे ज्येवा विचार करीने कक्षाचार्य तेभना
 आगमननी राह ज्येवा दाग्या. पण थोडी ज्येवी कणाज्यो. ज्युनार पंडित, समस्त कणाज्योभा नियुध, पुरुषोभां
 उत्तम, अधी श्रेष्ठ विद्याज्योना अधिपति हेवता वडे पण वन्दनीय, ज्येठे के सरस्वती द्वारा पण स्तवनीय त्रिशला-
 नन्दन भगवदने लघुाववने शुं शक्तिमान थध शकता हता !. आज अर्थ थोली नीते दर्शावे छ. शुं शुद्ध तदन सोनाने

किम् अमर्त्यक्रियत=मृत्येत? अपि तु न, स्वतः पट्टवित्ताव, अमृतं मनुष्यत्वैः किं वास्येत?, अपि तु न वास्येत, स्वतो मनुष्यत्वात्, सात्त्वती=आरादा देवी पाठविधि=पठनक्रमम् किं श्रित्येत=वीर्येत, अपि तु न श्रित्येत, स्वतः श्रितित्वात्, चन्द्रे पश्यत्वं=शुक्लत्वं किम् आरोप्येत=स्यायेत, अपि तु नाऽऽरोप्येत, स्वतो पश्यत्वात्, सुवर्णं मुकुटं नखेन किं परित्यज्येत=संस्क्रियेत?, अपि तु न, स्वतः परित्यक्तत्वात्, यो मगवान् ज्ञानत्रिकुमाहास्यः=महि-भृत्य-रूपिज्ञानत्रयमाप्यदागारः अश्विज्ञानजलभिः=सकलकलसासद्गन्धः, महापीरः=वीराग्रगण्यः महागम्भीरः=सावित्र्यगाम्भीरीपणोपेतम् अस्ति। स एवैविवो वर्धमानस्वामी अल्पज्ञानिनः कलाचार्यस्य अन्तिके=पात्रे

नोषा जाता; क्यों कि वह तो स्वतः शुद्ध है। मान के हल को तोरणों से क्या सिंगारा जाय?, नहीं, नहीं, वह तो स्वयं ही पर्वों से युक्त है। अमृत को मधुर द्रव्यों से क्या वास्तव किया जाय?, नहीं, क्यों कि वह तो स्वभाव से ही मधुर होता है। खादा देवी को क्या पाठविधि सिलाने की आवश्यकता होती है?, नहीं, क्यों कि वह तो स्वयं सीली हुई है। चन्द्रमा में धममा का आरोपण क्या किया जाय?, आरोप करने की आवश्यकता नहीं, क्यों कि उसमें निरर्ग से ही पवन्ता है। सोने का सोने के पानी से संस्कार करने की आवश्यकता है?, नहीं है, वह तो स्वयं ही परित्युक्त है।

जो मगवान् तीन ज्ञान-महि श्रुत अश्वि-के मण्डार, समस्त कथाओं के सागर, विशाल अकि के निधान, महान् महिमान्, महापीर-वीरों में अग्रगण्य और अत्यधिक गंभीरता आदि गुणों से संपन्न

वाचकभा आये छै, वाचकभा आबतु नथी; आबतु ते ते चेतो जे शुद्ध होय छै आबाने तोरबोली शु शबगारी यथाय छै, ना ते तो चेतो जे धानपयो छै अमृतते शु मधुर द्रव्येथो स्वादिष्ट करी यथाय छै, ना, आबतु ते ते तो अहस्ती शीते जे अहुँ होय छै अहस्ती देवीते शु पद्म-विधि सिजपवानी आरयकता रहे छै, ना, ते तो चेतो जे जे यीयेत होय छै अमृतमा धरकवाय आशेषण शु करी यथाय छै, ना तेनी आवरकता जे नथी, आबतु ते तेभा अहस्ती रीते जे धरकवा रहेत होय छै शु सोना जर सोनानु पावी यथावधानी अद्वैत रहे छै, ना, ते तो जेतो जे परिशुद्ध छै

ये भगवान् त्रय ज्ञान-पति, शुभ, अवधिना कदाह, समस्त ज्ञानोना सागर विधाग यजिना निधान, महान् महिमान् महापीर-वीरभा अग्रगण्य जने अतिशय अकीरता आदि श्रेयोवर्णां कर्ता ते नम आन स्वाभी

पठितुं गच्छेदिति महत्=अत्यन्तम् असमञ्जसम्=अयुक्तम् । एतया=अनया प्रवृत्त्या=भगवतः कलाचार्यसमीपे शिक्षाग्रहणार्थगमनरूपया देवलोके सुधर्माणां समायां शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आसनं चलितम् । ततः खलु आसने चलिते सति अवधिना=अवधिज्ञानोपयोगेन आशुज्य=आसनकम्पनकारणं ज्ञात्वा शक्रेन्द्रः शीघ्रं ततः=तस्मात् देवलोरान् प्रस्थितः=प्रचलितो ब्राह्मणरूपेण प्रसुसमीपे आगम्य प्रभुम् उच्चासने उपनिवेश्य=संस्थाप्य ये प्रश्नाः कलाचार्यहृदये संशयरूपेण स्थिताः तान्=सन्दिग्धानेव प्रश्नान् पृच्छति, तत्र=प्रश्नेषु प्रथमम् इन्द्रेण व्याकरणविषयः प्रश्नः कृतः, भगवता=श्रीवर्धमानस्वामिना तं=प्रश्नं व्याकृत्य=समुचितरूपेण व्याख्याय संक्षेपेण=स्वल्पाक्षरेण सर्व=समस्तं व्याकरणं=शब्दशृङ्खलं कथितम्=उक्तम् । तत्प्रभृति जैनेन्द्रव्याकरणं प्रसिद्धम् । ततः

ये, वे वर्धमान स्वामी, अल्पज्ञानी कलाचार्य के पास पढ़ने जाएँ, यह अत्यन्त अयुक्त बात थी । भगवान् के कलाचार्य के समीप शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाने की प्रवृत्ति से देवलोक में, सुधर्मा समा में, शक्र देवेन्द्र देवराज का आसन चलायमान हुआ ।

आसन कम्पायमान होने पर अवधिज्ञान का उपयोग लगाने से आसन के कंपने का कारण ज्ञात हो गया । तब शक्रेन्द्र शीघ्र ही देवलोक से चला और ब्राह्मण का रूप बना कर प्रभु के पास आया । प्रभु को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करके, जो प्रश्न कलाचार्य के हृदय में संशय रूप से स्थित थे, वे ही प्रश्न पूछे । उन प्रश्नों में सर्वप्रथम इन्द्र ने व्याकरणसंबंधी प्रश्न पूछा । भगवान् वर्धमान स्वामी ने उस प्रश्न की उचित रूप से व्याख्या करके, थोड़े ही क्षणों में समस्त व्याकरणशास्त्र कह दिया । तभी से 'जैनेन्द्र व्याकरण' की प्रसिद्धि हुई ।

अवधपशानी कलाचार्यनी पासो बलुवा नथ, ओ वात अत्यन्त अयोग्य હતી. કલાચાર્યની પાસે વિદ્યા પ્રાપ્ત કરવા જવાની ભગવાનની પ્રવૃત્તિથી દેવલોકની, સુધર્માં સભામાં, શક્ર દેવેન્દ્ર દેવરાજનું આસન ડોલવા લાગ્યું. આસન ધ્રજતા અવધિજ્ઞાનના ઉપયોગથી શકેન્દ્ર આસન ધ્રુજવાનું કારણ બાણ્યું. ત્યારે તરત જ શકેન્દ્ર દેવલોકમાંથી ઉપડ્યો અને બ્રાહ્મણરૂપ થઈ ભગવાનની પાસે આવ્યો. પ્રભુને ઉત્તર આસન પર વિરાજમાન કરીને, જે પ્રશ્નો કલાચાર્યના હૃદયમાં સંશયરૂપથી રહેલા હતાં એ જ પ્રશ્નો તેણે ભગવાનને પૂછ્યાં.

તે પ્રશ્નોમાં સૌથી પહેલાં ઇન્દ્રે વ્યાકરણ વિષે પ્રશ્ન પૂછ્યો ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીએ તે પ્રશ્નની યોગ્ય રીતે વ્યાખ્યા કરીને, થોડા જ અક્ષરોમાં આપું વ્યાકરણશાસ્ત્ર કહી દીધું. ત્યારથી "જેનેન્દ્ર વ્યાકરણ"ની પ્રસિદ્ધિ થઈ.

पमान्=वदनन्तरम् इन्द्रेण नयममाणस्वरूपं=नयानाम्=नैगमादीनां प्रमाणयोः=परमपरोक्षयोश्च स्वरूपं
 पृष्टम्, तत् भगवता संक्षेपेण आख्याय सर्वं न्यायमर्म=न्यायशास्त्रारः प्रकाशितं=प्रकटीकृतम् ।
 ततः पश्चात्=वदनन्तरम्, तेन=इन्द्रेण परमविषये पृष्टम्, भगवता=भगवत्पदानेन परमस्वरूपम् आचक्षणात्=निरूप-
 पयता सत्ता उपग्रहम्=अन्वयविरूपिणश्च आख्यातः=स्वरूपितः, उपग्रहमाचक्षणात्=विवेकः=रूपव्याकृत्यव्यपहार्य-
 विवेचनम् आख्यातः, विवरकम् आचक्षणात्=विरमणः=सावध्यापाराशिवर्जनम् आख्यातम्, विरमणम् आचक्षणात्=वि-
 पापानी=माणादिपादादीनां कर्मकार्यम् आख्यातम् । तत् आचक्षणात्=निर्गतरावन्मोक्षस्वरूपमाख्यातम् । अ० ७१ ॥

मूमम्—एषसि गं एषां च विषयकारपक्षेण सागरणेन तत्पट्टिया सखे जया विमिया जाया ।
 क्वायस्मिन् वि पक्षविषयो संज्ञाम् । तस्मै पञ्चा तेन विवित्य=अच्छेरयमिणं गं एषा दुदुष्टहेन सुडमाळेण
 बाळेण एयारिस्मिन् विज्ञा कजो सिवितया ? जो मय मणसि चिरकालो संवेरो भासी, जो य न केजवि
 अक्षपक्षेव निरास्मिन्, सो सखो अज्ञ अणेण निरास्मिन् । सखमेयं, न महापुरिसिम्म एयारिसा गुणा इवति

व्याकरण-विषयक प्रश्न के पश्चात् इन्द्र ने नैगमादिनयों का तथा प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रमाणों का
 स्वरूप पूछा । भगवान् ने संक्षेप में उसका उत्तर देकर सम्पूर्ण न्यायशास्त्र का सार प्रकाशित कर दिया ।

तत्पश्चात् इन्द्र ने परमं क विषय में प्रश्न किया । भगवान् भी वर्तमान ने परमं का स्वरूप बत
 नाते हुए उद्बल-मनोनिग्रह करा । उपरम पक्षे हुए विरमण (सावध व्यापारों का त्याग) करा । विरमण
 करते हुए माणादिपाद-भावि पापों का न करना कहा । पापों का न करना ब्रह्म कर निर्मला, बंध और
 मोक्ष का स्वरूप कहा । अ० ७१ ॥

व्याकरण-पक्षी १८१ पृष्ठ १५ पक्षी छन्दे नेरमादि नयेनु तथा प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रमाद्येन स्वप्रप पृष्ठ
 अत्रानेन दृष्टव्यम् ततो नयान् भाषीने स पूर्य न्यायशास्त्रेण सार प्रकाशित करी दीया । तथा आदि छन्दे परमं-ना
 विषयमां प्रश्न कश्चो अत्रान् श्री वधमाने धर्मन् स्वप्रप अतापता उपग्रह-अनेनिग्रह कक्षो उपग्रह-मदी साधे
 विवेक (उपग्रह-अक्षर-पक्षी) विवेचन) कक्षो विवेक-मदी साधे विवेक (सावध व्यापारो) तथा कक्ष विवेक-मदी
 साधे प्रावृत्तिपाद भावि पक्षो न करण विवे कक्ष साधे न करण कक्षीने निरूपण, अथ अने मे कक्ष
 २५३५ कक्ष (२५००)

चेव । केरिसं अस्स गांभीरियं जं एयारिसणुणगणसंपणोऽन्वि एसो एत्थ पढिउं समागओ । सच्चं अद्धभरिओ वडो सई करेइ न पुणो, दुब्बलो चिक्करेड न स्रो, कंसं गुंजेइ न कणयं, महापुरिसा णियमहिं न पयासेति । तए णं से सक्के देविंदे देवराया णियं इंदरूव पगडिय सयल-गुण-णिदिणो महानीरपहुणो अउल-बल-वीरिय-बुद्धि-पहुत्तं तत्थट्ठिए जणे परिचाइंसु-जं इमो सयलगुणआलबालो सुउमालो बालो न साधारणो, किं तु सव्वसत्थपारीणो सव्वजगजीवोणीरक्खणपरायणो विरिउद्दमाणो चरमत्तिथयो अत्थि-त्ति ।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसि पाउब्भूए तामेव दिसि पडिगए ।

पहु य सुसज्जीकयं गयमासिहिय तेण जणसमुदाएण अवलोइज्जमाणे अवलोइज्जमाणे सप्पासायं सप्पा-

सायं अभिगमीअ । एयारिसपवित्तपट्ठुपवित्तिओ माउपियाईणं चेयसि भुज्जो भुज्जो अमंदा-णंद-सिधू-च्छलंत-तरल-तरंगो न संमाओ ॥मू०७२॥

छाया—एतेषां खलु प्रश्नानां वित्तचमत्कारप्रवृत्तेन व्याकरणेन तत्र स्थिताः सर्वे जना विस्मिता

जाताः । कलाऽऽचार्योऽपि प्रसन्नचित्तः संजातः । ततः पश्चात् तेन चिन्तितम्-आश्चर्यमिदं यत्-एतेन दुग्धमुखेन

सुकुमारेण बालेन एतादृशी विद्या कुतः शिक्षिता ? यो मम मनसि चिरकालात् संदेह आसीत्, यश्च न केनापि

अद्यत्थेन निवारितः, स सर्वोऽद्यानं निवारितः । सत्यमेतत्-यन्महापुरुषे एतादृशा गुणा भवन्त्येव, कीदृशमस्य

मूल का अर्थ—‘एएस णं’ इत्यादि । इन प्रश्नों के चित्त में चमत्कार उत्पन्न करने वाले उत्तर

से वहाँ स्थित सभी जन चकित रह गये । कलाचार्य भी प्रसन्नचित्त हुआ । तत्पश्चात् कलाचार्य ने सोचा

यह आश्चर्य है कि इस दुग्धमुंहे सुकुमार बालक ने ऐसी विद्या किससे सीखी ? मेरे मन में चिरकाल से

जो संदेह था और जिसें आजतक किसी ने दूर नहीं किया था, वह सब आज इसने दूर कर दिया ।

मूलने। अर्थ—‘एएसि णं’ इत्यादि कलाचार्यनी न्न लछ, आह्वाणुना इपभा शकेन्द्रे पूछेला प्रश्नोता जवाबो, सर्वनी शकने विहारी नाणे तेव आववाथी, सर्वं समुदाय अकित थई गथे। कलाचार्य पषु विशेष प्रसन्न थयां।

कलाचार्यने आश्चर्य प्रगट थये। हे आवा नाना आणकने आणुं सान केह्ले आणुं ? विरक्षणथी धर करी न्हेल मारा मननी शक्योणुं निवारणु आ आणकना प्रत्युत्तरथी सहेले आवी गथुं ।

ગામ્નીર્ગમ્ ! યદ્ ઇતારકગુણગણસમ્બોડપિ ઇપોડ્મ પઠિતું સમાગતઃ, સત્યમ્, અર્દેશ્વતો ષટઃ ક્રબ્દ્ કરોષિ ન ઈર્ણં, દુર્ગમધીત્કરોવિ ન શૂરઃ, કાંસ્યં યુઝાતિ ન ક્લનક્રમ્, યથાપુરુષા નિજમશિમાન ન પ્રદાશ્યન્તિ ! તવઃ સ્વત્ત્વ ત ગ્લો દેવેન્દ્રો યેસરામો નિજમિન્દ્રસ્મ પ્રકટ્ય સકલગુણનીરનિયેર્મદાવીરમ્પોતુલવલ્લીયૈર્યુદિમમશ્વલ્લં ત્વ સ્વિતાગ્રનાન્ત્ પર્યાયયત્-યત્ અર્થ સકલગુણભવાલઃ શુકુમારો યાલો ન સાધારણઃ, કિન્તુ સર્વશક્ષપારિણઃ સત્ત્વગાઙ્ગીયોનિરસજપરાયબઃ પ્રીત્વર્થમાનધરમતીર્થકરોડસીવિ ।

સવ હે મરાપુરુષ મેં એસે ગુણ હોસે હી હેં । કેસી ગંધરિતા હે રસમેં, જો એસે ગુણ-ગમ્ સે સમ્મલ્લ હોફર મી યા યૌ પડ્ને આયા ! સવ હે, આવા મરા હુઆ વક્કા હી આવાજ કરતા હે પૂરા મરા નહીં, દુર્બલ હી વીત્ત્કાર કરતા હે શૂર નહીં; કાંસા આવાજ કરતા હે, સોના નહીં । મરાપુરુષ અપની મશિમા કા આપ પ્રદાશ નહીં કરસે ।

તત્ત્વમાત્ દ્રઢ દેવેન્દ્ર દેવરાજ ને અપના રુદ્ર કા રુપ પ્રકટ કરવેકે સકલ ગુણોં કે સમાર વીર પ્રહ કે અતુલ પલ્લ, વીર્ય, બુદ્ધિ ઔર પ્રમાલ્લ કા પરિવ્રજ દિયા ફિ-યહ સમસ્ત ગુણોં કા અલ્લવાલ (વચારી) યુકુમાર શાલક સાપારજ નહીં હે, કિન્તુ સમસ્ત શક્તિોં મેં પારંગત જગત્ કે સર્વ પ્રાણિયોં કી રસા મેં તત્ત્વ ધ્રી રૂપમાન વ્રમ હોયેકર હે ।

મંબોરિતાપુત્ર અને શાન્તકપતિ હોવા છતાં, વધારે શાન્ત રેણવવાની પુંખાએ આ બાળક અદિ આન્બેલ તે વિચારથી વધુ ઠંડાવાજ થયું પ્રસન્ન થઈ

ઠંડાવાજ, આ બાળકની સંકલ્પ અને નિરભિમાનપણુ એક, વિશ્વાસ્વા લાગ્યા હે, અપુરાં મહાબોલ્લ છકકામ છે, પૂરા નહિ ! નમકા અનના અવ્સોલ્લ ઠિઠિવારી પાડે છે, શ્યા નહિ ! કંઠુજ અવાજ અને ખણખણાટ કરી મૂકે છે સોનુ નહિ ! ડંકમા, મહાપુરુષ, કશ્ચિ પલ્લ, પોતાની શક્તિ અને શુભોને આવિભેદ કરતાં જ નથી પ્રશ્નચિત્તિ અને કળ્યાપના મનડુ મથન પૂરુ કર્યાં પછી, કાશ્વરુપે આવેલાં શકેન્દ્ર પોતાનું અસલ સ્વરૂપ પ્રખટ કર્યું, તે ત્યાં આવેલાં સર્વજનોને પ્રભુના અતુલ, બલ, વીર્ય, બુદ્ધિ અને પ્રભાવને પરિવ્રજ કરાંબો, ને કહ્યું હે ' સકલ શુભોને કાશર, મુકુમાર આ બાળક કોઈ સામાન્ય બાળક નથી, વધુ અમસ્ત શાસ્ત્રોર્મા પારંગત અને સર્વ પ્રાણીઓનું રક્ષણ કરવાર્થ કદા તરુપર એવા અશ્વ તીર્થ કરુની પદવીને ધારક છે "

ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, बन्दिता नमस्यित्वा यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतामेव दिशं प्रतिगतः ।

प्रभुश्च सुसज्जीकृतं गजमारुह्य तेन जनसमुदायेन अवलोक्यमानोऽवलोक्यमानः सप्रसादं स्वप्रासाद-मभ्यगच्छत् । एतादृशं पवित्रप्रभुपूजितो माता-पित्रादीना चेतसि भूयो भूयोऽमन्दानन्दसिन्धुच्छलत्तरलतरतरो न सम्मितः ॥सू०७२॥

टीका—‘एष सि णं पण्हणं’ इत्यादि । एतेषां=व्याकरणनयप्रमाणधर्मस्वरूपविषयाणां खलु प्रश्नानाम् चित्तवृत्तकारप्रवृत्तेन=मनस्सन्तोषकारकेण व्याकरणेन=उत्तरेण तत्र स्थिताः सर्वे जना त्रिस्मिताः=आश्चर्ययुक्ता जाताः, कलाचार्योऽपि प्रसन्नचित्तः=सन्तुष्टमनाः संजातः, ततः पश्चात् तेन=कलाचार्येण चिन्तितं=विचारितम् ;

तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना=नमस्कार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये ।

भगवान् सिंगारे हुए हाथी पर आरुढ़ होकर, बार-बार उस जनसमुदाय द्वारा अवलोकन किये जाते हुए, प्रसन्नता के साथ अपने प्रासाद की ओर चले । प्रभु की इस पवित्र प्रवृत्ति से माता-पिता के चित्त में पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली तीव्र आनन्द-सागर की उछलती हुई चपल लहरें समाई नहीं ॥सू०७२॥

टीका का अर्थ—‘एष सि णं’ इत्यादि । इन व्याकरण, नय, प्रमाण एवं धर्मसंवंधी प्रश्नों के चित्त में सन्तोष उत्पन्न करनेवाले उत्तर से वहाँ स्थित सभी लोग आश्चर्ययुक्त हो गये । कलाचार्य का अन्तःकरण भी सन्तुष्ट हुआ । तत्पश्चात् कलाचार्य ने विचार किया । क्या विचार किया सो कहते हैं—‘अहा, आश्चर्यजनक

त्यारणाद, शङ्करे, भगवानने वन्दना=नमस्कार किये, ने जे दिशामाथी आव्या हता, ते दिशामां आल्या गया. भगवादीन पणु, हाथी उपर आरुढ थई, प्रसन्नचित्ते, भईल तरङ्ग वल्यां रस्तामा दोडो. भगवानने जेई जेईने पणु धर्मांतां न हता तेओने तेमनामां अथाग प्रेम हतो. मागाप पणु प्रभुनुं आटखुं गधु अतुल सान जेई, निरभय पार्या, ने आनंदनी लहेरीओमां समाई गया. (सू०७२)

टीकानो अर्थ—‘एष सि णं’ इत्यादि व्याकरण, नय, प्रमाण अने धर्मसंवंधी ओ प्रश्नानां चित्तमां संतोष उत्पन्न करनार उत्तरेथी त्यांरहेल गधा दोडो आश्चर्यचकित थई गयां. कलाचार्यानां अंतःकरणमां पणु संतोष थयो. त्यार भाइ कलाचार्ये विचार कयो, जे विचार कयो ते कहे छि—‘अहा, आ इधमुथ होमण पाणेहे चित्तमां अभङ्गार करनारी

किम् ? इत्याह-आभयर्म्य=विस्मयकरम् इदम्, यत् एतेन=अनेन दुग्धद्वयेन सुकुमारेण=कोमलेन बाछेन एतादृशी=
 चेतनमत्कारिणी विद्या कुतः=कस्मात्-जानात् शिलिता=मुद्रिद्विषयीकृता, मम मनसि या संवेदः=संसय चि-
 दाभात् भासीद, यद्य सदेहो न केनापि जनेन अपरपर्यन्तम्=अद्यापि निवारितः=दूरीकृतः, स सर्वः संवेदः अद्य=
 अस्मिन् क्षिपते अनेन=धीनर्षमानेन बाछेन निवारितः, एतत्=वत्स्यमाणं सत्यम्=परार्थम्, यत् महापुरुषे=विशि-
 ष्टपुरुषे एतादृशः=विचयमत्कारका गुणा मन्त्येव=आप्तव एव, अस्य=वासस्य कीदृशं गान्धीयम्=गान्धीरता,
 यत् एतादृशगुणगणसम्प्लेजिपि=विचयमत्कारकगुणसमूहानपि एयः=धीनर्षमानो बालः अस्मभिरुक्ते पठितुं=
 क्षिप्तो प्रीतुं समागतः। सत्यम्=परार्थे यत्=अर्थसूत्रः=अर्थदेखावच्छेदेन अस्मसहितो घटः, शब्दं करोति, न तु
 पूर्वम्=मुत्पर्यन्ते अस्मदुतः, दुर्बला=बलरहित एव अतः चीत्करोति=चीत्कार करोति न तु पूर्णः। कांस्थं=कांस्य
 पार्श्वं गुञ्जति=वर्द्ध करोति, किन्तु कनरु=मुकुणं न गुञ्जति, एवमेव महापुरुषाः=उच्चमपुरुषा निजमहिमानं=

है कि इस दुपसुंदे कोमल बालक ने ऐसी विच में चमत्कार करने वाली विद्या किस मनुष्य से सीखी है ?
 मेरे मन में जो झुका बहुत समय से बनी हुई थी और आजतक जिस झुंका का किसी ने भी समाधान
 नहीं किया था, वह सब झुका आन बालक वर्धमान ने तुर कर दी। यथार्थ ही है महापुरुषों के गुण
 विष में चमत्कार उत्पन्न करन बाड़े होत ही हैं। इस बालक की गंभीरता कैसी है कि चमत्कारिक
 गुणों के समुद्र से सम्पन्न हान पर भी यह मेरे पास शिला प्ररण करने के लिए बका आया। यह
 ठीक ही कहा जाता है कि, आया मरा हुआ पड़ा ही आवाज करता है पूरा मरा नहीं; दुर्बल जन ही
 बिछावे हैं गूर नहीं, कांसा बजता है, किन्तु स्वर्ण नहीं बजता। इसी प्रकार महापुरुष अपनी महिमा को
 प्रकाशित नहीं करते !

भावी विद्या क्या मनुष्य पासेथो सीखी छै ? भास अनर्भा आब सुधी ने यहा देखे कती जने आब सुधी ने
 यहादे देखे भज समान न कुं न कतु ते अपी यहाजोत न। आब आगत बध भाने निवारण कही नापुसु बधाय' न
 छै ते महापुरुषभां आवा जित। यमहादे वीरपन इनास सुखो होब छै ब, आ आगतनी अकीरता देखी अपी
 छै ते नमरागति सुखोना समुद्रवाये होवा छदा पवु ते भारी पासे विद्या प्राप्त करवा भाये आबने आबने छै
 जे जलन न देखे छै ते अपुहे भोजन आबन करे छै पूरे। अरेतो आवाज इने। नथी दुबल भावुध न
 यहादे अरे छै रस नकई, सोसु बाजे छै मुनय नही जेन प्रभाजे पकापुषण ऐतानी मकदाने अरेके इतनी नथी

स्वमहत्त्वं न प्रकाशयन्ति न प्रकटयन्ति । ततः=तदनन्तरम् स शक्रो देवेन्द्रो देवराजो निजं=स्वकीयम् इन्द्ररूपम् प्रकटयन्=प्रकाश्य, सकलगुणनीरनिवेः=सर्वगुणसमुद्रस्य महावीरप्रभोः=महावीरस्वामिनः, अतुलबलीर्येबुद्धिप्रभुत्वं=तुलनारहितबलपराक्रमबुद्धिर्नैपुण्यम्, तत्र स्थितान् जनान् पर्यचायत्=ज्ञापितवान्-यत् अयं पुरस्थितः सकल-गुणालवालः-सकलानां=सर्वेषां गुणानां=दयादाक्षिण्यादीनाम् आलवालः सुकुमारो बालः साधारणो नास्ति, किन्तु-सर्वशास्त्रपारीणः=सर्वशास्त्रपारङ्गतः, तथा-सर्वजगज्जीव्योनिरक्षणपरायणः-सर्वेषु जगत्सु या जीवानां=प्राणिनां योनयो=मनुष्यादियोनयस्तासां रक्षणे=रक्षाया परायणः=तत्परः, श्रीवर्धमानः=तदाख्यः चरमतीर्थहरः=अन्तिमचतुर्विंशतितमतीर्थहरः अस्ति=विद्यत इति ।

ततः=श्रीवीरपरिचयख्यापनानन्तरं खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यथाः दिशः=यां दिशमाश्रित्य प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः=परावृत्य गतः ।

तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने अपने इन्द्र-रूप को प्रकट करके समस्त गुणों के समुद्र भगवान् महावीर के अतुल बल, बी । छि और प्रभुता का वहाँ स्थित जनों को परिचय कराया कि-यह दया-दाक्षिण्य आदि सब गुणों के आलवाल (वयारी) सुकुमार बाल सामान्य नहीं हैं, किन्तु समस्त शास्त्रों के पारगामी तथा सारे संसार में जीवों की जो मनुष्यादि योनियाँ हैं, उनकी रक्षा करने में तत्पर श्री-वर्धमान-नामक अन्तिम-वैवीसवें तीर्थंकर हैं ।

श्रीवीर भगवान् का परिचय देने के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये ।

त्यार थाह शक देवेन्द्र देवराजे पोताना धर्ननां इपने प्रगट करीने, समस्त शुश्रोमा सागर, लगवान महावीरना अतुल अण, वीर्य, बुद्धि अने प्रभुताने। त्यां आवेल भावुसोने परिचय करान्ये। डे आ हथा, दाक्षिण्य-आदि सधणा शुश्रोने। आलवाल (वयारी) सुकुमार आणक सामान्य नथी, पणु समस्त शास्त्रोने। पार पाभनार तथा आणा ससारमा एवेनी ने मनुष्यादि येनीओ। छे, तेमनी रक्षा करवाने समर्थ श्री वर्धमान नामना अन्तिम-वैवीसमा तीर्थंकर छे.

श्रीवीर लगवानेनो परिचय आप्या पछी शक देवेन्द्र देवराजे श्रमणु लगवान महावीरने वंदन कथो, नमस्कार कथो, अंदन-नमस्कार करीने ने दिशामा प्रगट थयां इतां ओण दिशामां आहया गयां.

प्रथम=श्रीवर्षमानस्वामी च मुसझीकृत=सम्पत् सञ्चित, गर्ल=वस्तिनम् आरुह्य=गजोपरि समुपविश्य तेन=गद्गाऽज्योतेन विज्ञास्थानमेव च जनसमुदायन=परिजनसमूहेन कर्तुंजनसमूहेन च अवलोकयमानोऽवलोक्यमान=पुन पुनरनिनरदगिरिस्थगमान समसाद=प्रसक्तपूर्वकं यथा स्वाध्याया स्वभासाद=व्यकीयराजमवनम् अभ्यगाद=गतगान, एतादृगविषयप्रयुग्विजितः=इन्द्रकृतप्रसमाधान-कलाचार्यसन्तोषण-सकलजनप्रसादनरूप-निर्मेतभीरिस्तापिसमापराद, यातापिचादीना=मातापिभोः, आदिना द्वाष्टप्रवृत्तीनामपि वेतसि=मानसि धूयो धूयः॥ चारं चारुमयदाऽज्जनन्विगिन्युच्छन्तरस्तदाह=अतिहर्षसमुद्रोदगच्छपयोभिः-हर्षतिष्ठपुसाह्लादिकवृत्तस्यैविल-तरङ्गो न संमितः= न भवे। अश्रुमिषेण आनन्दो वरिगत् इति भावः ॥सू०७२॥

श्रीवर्षमान स्वामी बहिया सजाये हुए गजराज पर सवार होकर साथ आये हुए, एवं विज्ञास्थान में एकत्र हुए जनसमूह द्वारा तथा परिजनसमूह के द्वारा पुनः पुनः निर्निमेष दृष्टि द्वारा देखे जाते हुए प्रसक्तपूर्वक अपने राजमहल में बठे गये।

इन्द्र द्वारा दिये गये प्रभों के समाधान, कलाचार्य को संछुट कला एवं सकल जनों को प्रसन्न कराना-रूप प्रकारकी श्रीभीरस्वामी की मधुचि स माता-पिता के तथा आदि छन्द से आई वीरेर एक मन में प्रथम हर्ष-रूपी सागर की बा-जार उछलती एवं बबल तरों समा न सकी। आह्वय यह है कि यह हर्ष नीतर न समाया तो आँसुओं के बहाने बाहर निकल पड़ा ॥सू०७२॥

श्रीवर्षमानस्वामी आशी रीति शय्यभूदेका भवभार पर सवार होने आये आये तदा विज्ञास्थानभां ज्योतन सवेक जनसमुदाय तदा परिवन्तसमूहद्वारा हरी-हरीबी अनिधेय नन्दे ज्येवात् प्रसक्तपूर्वक योताना शान्तमहेवभां आत्मा भव।

इन्द्र द्वारा प्रगवेष्ट प्रभोऽनु समाधान, कलाचार्यने सुदृष्ट कस्तु अपने सधना वीरेने प्रसन्न कस्तु, आ प्रभोनी श्रीवीरस्वामीनी भवृत्तिबी माता-पितानां तदा आदि शब्दभी आर्ष वीरेनां भनभां भनण ६५ इपी आभरनी बारवार उछलती अपने ज्येवण वीरेने समाप्त शब्द नहीं आशय जे छे हे ते ६५ आभर समाभे नहीं तो इपीभूदेने नन्दार निगनी पड़ेले। (सू०७२)

मूलम्—तए णं तं समयं भगवं महावीरं उम्मुक्कवालभावं विण्णायपरिणयमेत्तं णवंगमुत्तपडिवोदिय जाणिय अम्मापियरो सागेयपुरादिवस्स समरवीरस्स रत्नो धूयाए धारिणीए देवीए अंगजायाए जसोयाए राजवरकूनाए पाणिं पिण्हाविंसु ।

तत्त्रो णं समणस्स भगवओ महावीरस्स पियदंसणेति नामं धूया जाया । सा च जोव्वणगमणुप्पत्ता सयस्स भाइणिज्जस्स जमालिस्स दिवा । तीसे पियदंसणाए धूया सेसवईति नामं जाया । समणस्स भगवओ महावीरस्स पिउणो कासवगोत्तस्स सिद्धत्थेत्ति वा, सेज्जंसेत्ति वा, जसंसेत्ति वा तओ नामधेज्जा ।

माउणो वासिह्मुत्ताए तिगळेत्ति वा, विदेहदिणेत्ति वा, पियकारिणीति वा तओ नामधेज्जा । भगवओ पित्तियए सुपासे कासवगोत्ते, जेहे भाया णंदिवदणे कासवगोत्ते । जेह्वा भइणी सुदंसणा कामवगोत्ता । भज्जा जसोया कोडिणगोत्ता । धूयाए कासवगुत्ताए अणोज्जाइ वा पियदंसणाइ वा दो नामधिज्जा । णत्तुईए कोसियगोत्ताए सेसवईति वा जसवईति वा दो नामधिज्जा होत्था ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था । ते णं वहू समणोवासगपरियागं पाउणित्ता अपच्छिमाए संलेहणाए झोसणाए झोसियसरीरा कालमासे कालं किच्चा वारसमे अब्बुए कप्पे देवत्ताए उववणा, तत्त्रो णं महाविदेहे सिज्जिस्संति । सु०७३॥

छाया—ततः खलु त श्रमणं भगवन्तं महावीरम् उन्मुक्कवालभावं विज्ञातपरिणतमात्रं नवाङ्गमुत्तमप्रतिवोधितं ज्ञात्वा अम्बापितरौ साकेतपुराधिपस्य समरवीरस्य राज्ञो दुहितुः, धारिण्या देव्या अङ्गजाताया यशोदाया

मूल का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । तत्पश्चात् श्रमण भगवान् को वाल्यावस्था से मुक्त परिपक्व ज्ञान वाला तथा नौ अंग जिनके जाग गये हैं—अर्थात् युवावस्था के कारण नौ अंग जिनके विकसित हो गये हैं—ऐसा जान कर मातापिताने साकेतपुर के अधिपति समरवीर राजा की कन्या, धारिणी देवी की अङ्गजात

भूइने। अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि। णाणइ वर्धमान, आल्यावस्थाथी मुक्त थां, युवान वयने आस थां, तेना नव आगे। परिपूणुं युवानीने क्षीधे णत्थां ओट्ठे विकसित थां, तेनुं सान पसु परिपक्व थयुं आ अणुं अञ्जातां, माता-पिताओ, साकेतपुर (अयोध्यानगरी) ना अधिपति समरवीर राजनी पुत्री अने धारिणी राणीनी

ततः खडु श्रमस्य सगत्तो महावीरस्य 'मियदर्शना' इति दुरिता जाता । सा च यौवनकमलमुपासा स्वरूपे भागिनेयाय जमलये दत्ता । तस्याः मियदर्शनाया दुरिता 'शेषवती' इति नाम जाता ।

श्रमस्य सगत्तो महावीरस्य पितु काश्यपगोत्रस्य सिद्धार्थ इति वा, भेर्यास इति वा, यक्षस्त्री इति वा, ग्रीणि नामधेयानि ।

ममृत्तश्चिष्टगोत्रायाः 'भिमन्' इति वा 'विदेहदा' इति वा 'मियकारिणी' इति वा ग्रीणि नामधेयानि । सगत्तः पितृव्यः सुपाथः काश्यपगोत्रः, ज्येष्ठो भ्राता नन्दिर्वर्नः काश्यपगोत्रः । ज्येष्ठा सगिनी मूर्धन्या काश्यपगोत्रा । सार्वा यक्षोदा कौटिल्यगोत्रा । दुरिहः काश्यपगोत्रायाः 'अनवपा' इति वा 'मियदर्शना' इति वा 'यक्षोदा' नामक श्रेष्ठ राजकन्या कं साय पाणिग्रहण (विवाह) कराया ।

पश्चात् श्रमण सगत्तान् महावीर की 'मियदर्शना' नामक कन्या का जन्म हुआ । जब वह यौवन की प्राप्ति हुई तो सगत्तान् के भागिनेय (वरिन के लड़के) जमालि के साथ उसका विवाह हुआ । मियदर्शना की पुत्री 'कुपवती' हुई ।

श्रमण सगत्तान् महावीर के काश्यपगोत्रीय पिता के तीन नाम थे—सिद्धार्थ, भेर्यास और यक्षस्त्री । चात्रिष्ठगोत्रीया माता के तीन नाम थे—विश्रामा, विदेहदा और मियकारिणी ।

सगत्तान् के कारका सुपाथ थे, जो काश्यपगोत्रीय थे । वड़े माई नन्दिवर्न थे, वे भी काश्यपगोत्र के थे । बड़ी बरिन मूर्धन्या काश्यपगोत्र की थी । उनकी पत्नी यक्षोदा कौटिल्यगोत्र की थी ।

अनन्तर यक्षोदा नामधेय कन्या साक्षे 'पथमान' दु पाण्डित्यश्रवण (कर्म) कथन

श्रमण वीरता, 'वर्द्धमान' ने तथा मियदर्शना नामधेय कन्या भेर्यास श्रेष्ठ का कन्याने प्राप्तवये 'वर्द्धमान' ना काहेन जमालि साक्षे परवृत्ती देवार्थ आयी का मियदर्शनाने, शेषवती नामधेय की पुत्री पञ्च वीरस्य ।

अनन्तर महावीरना श्रमणपञ्चेनी पितान्, तस्य नाम कता—(१) सिद्धार्थ, (२) भेर्यास, (३) यक्षस्त्री । तेभनी पाण्डित्यपञ्चेनी भावना पञ्च तस्य नाम कता—(१) विश्रामा, (२) विदेहदा, (३) मियकारिणी । अनन्तराना साक्षा सुपाथ पठित कथु नन्दिवर्न कने भोष्टी जट्टेन सुदर्शना का सय श्रमणपञ्चेनी कता ।

इति वा द्वे नामधेये । नञ्याः कौशिकगोत्रायाः 'शेषवती' इति वा, 'यशस्वती' इति वा द्वे नामधेये अभूताम् । तौ श्रमणस्य खलु भगवतो महावीरस्य अम्बापितरौ पार्श्वोपत्यौ श्रमणोपासकौ चापि अभूताम् । तौ खलु बहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकपर्यायं पालयित्वा अपश्चिमया मारणान्तिकया संलेखनया जोषण्या जोषितशरीरौ कालमासे कालं कृत्वा द्वादशे अच्युते कल्पे देवतया उपपन्नौ, ततः खलु महाविदेहे सेतस्यतः ॥सू०७३॥

टीका—'तए णं समणं' इत्यादि । ततः=नदनन्तरं खलु तं श्रमणं भगवन्तं महावीरम् उन्मुक्त-वालभावं=न्यक्तवाल्यावस्थं, विज्ञातपरिणतमात्रं=परिक्वचिज्ञानं, नवाइसुप्तप्रतिबोधितं=श्रोत्रद्वयं चक्षुद्वयं घ्राणद्वयं

उनकी काइसपणोत्र की लड़की के दो नाम थे—अनत्रवा और प्रियदर्शना । उनकी दौहित्री (नातिन) कौशिक-गोत्र की थी । उसके दो नाम थे—शेषवती और यशस्वती ।

श्रमण भगवान् महावीर के माता-पिता पार्श्वोपत्यीय (पावनाय के अनुयायी) श्रमणोपासक थे । वे दोनों बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय को पालकर अर्थात् श्रावक-अवस्था में रहकर अन्तिम समय में होने वाली मारणान्तिक-संलेखना-जोषणा से शरीर को जोषित करके, मृत्यु के अवसर पर काल करके बारहवें अच्युत नामक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुए । वहाँ से च्यत्र कर वे महाविदेह में सिद्ध होئے ॥सू०७३॥

टीका का अर्थ—'तए णं' इत्यादि । तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर को वाल्य-वय को पार किया हुआ,

'तेभना पत्नी यथोदाहुं' गोत्र "कौडिन्य" इत्तुं भगवाननी काश्यपगोत्री दीक्षरीना जे नाम इता—(१) अनवधा, (२) प्रियदर्शना. अने प्रियदर्शनानी पुत्री कौशिकगोत्री इती. आ दौक्षीनीना जे नाम इतां—(१) शेषवती, (२) यशस्वती.

भगवानना माता-पिता पार्श्वोपत्यीय (पार्श्वनाथ भगवानना अनुयायी) श्रमणोपासक इतां. आ अन्ने ज्वाला, वर्षों सुधी, श्रावकपर्यायजु यथार्थ पावन करी, अन्तिम-समये मारणान्तिक संदेष्टाणानुं सेवन करुं, काव आठ्ये काव करी, बारम्हा अच्युत नामना देवलोकमा देवपण्णे तेजो उत्पन्न थयां. त्यांशी चवी, भक्षाविदेह क्षेत्रमां आवी, त्यां ते क्षेत्र, सिद्ध थये. (सू०७३)

टीकानो अर्थ—'तए णं' इत्यादि. त्यार बाद श्रमण भगवान भक्षावीरने, मात्यावस्था पसार कर्यो पछी जे डान, जे

रमना त्वा मनधेति न च भग्ननि पूर्वं सुप्तानि पूर्वं सुप्तानि पश्चात् यौवनेन प्रतियोगितानि यस्य सप्त-नवयौवनेच्छसितं ज्ञात्वा भग्ना-
पिता साकेतपुराधिपस्य=अयोध्यानगराधिपतेः समरवीरस्य=वदात्म्यस्य राक्षः दुरिष्ठः=दुष्टायाः, चारिण्या=वदा
स्याया देव्या=राक्ष्या भद्रनाताया=दुष्ट्याः यक्षोदाया=वदात्म्यायाः राजवरकन्यायाः=राजभेदपुत्र्याः पार्णि=
कृतम् अग्राहयताम्=विवाह कारितवन्तो ।

वता=पाणिप्रणयनन्तरं खलु कालक्रमेण भ्रमणस्य भ्रमणस्य भ्रमणस्य 'भियदर्शना' इति नाम=तन्नाम्ना
प्रसिद्धा दुरिया=कन्या जाता=उत्पन्ना, सा=भियदर्शना च यौवनक=यौवनावस्थायां अनुभासा=क्रमेण प्राप्ता सती
भगवता स्वकृत्यै भगिनेयाय=निजभगिनीपुत्राय जमालये दद्या । तस्याः भियदर्शनाया दुरिता=कन्या
'क्षेत्रवती' इति नाम जाता ।

भ्रमणस्य भगवतो महावीरस्य पितुः काश्यपगोत्रस्य=काश्यपगोत्रोत्पन्नस्य श्रीणि नामधेयानि सन्ति,

परिपक्व-विज्ञान-शाला, दो कान, दो आँख, दो नाक, रसना, स्त्रवा और मन-यह नौ अंग जो सुप्त थे, उन्हें
यौवन के कारण जागृत हुआ देलकर, मोता-पिता ने अयोध्या के राजा समरवीर की पुत्री और चारिणी
नामक देवी की अंगनात यक्षोदा-नामक भेद राक्षकन्या के साथ उनका विवाह कराया ।

विवाह के बाद कालक्रम से भ्रमण भगवान् महावीर को 'भियदर्शना' नामक एक कन्या की प्राप्ति
हुई । भियदर्शना पीरे-पीरे यौवन भरस्था में पहुँची तो भगवान् ने उसे अपने भगिनेय जमालि को वी-
जमालि के साथ उसका विवाह कर दिया । भियदर्शना की मी कन्या क्षेत्रवती नामक हुई ।

भ्रमण भगवान् महावीर के पिता के, जो काश्यपगोत्र में उत्पन्न हुए थे, तीन नाम थे-सिदाय,

आंश, वे नाश हुआ, लक्ष्य करने भन को नष्ट करने के सुधावरकाभां कर्ता ते बीवने हारखे अश्रुत कर्ता परिपक्व
विज्ञानबलां श्रेय केन्द्रने भाता-पिताके अयोध्याना राजा समरवीरनी पुत्री अने भास्विरो देवीनी अजन्मत भयोहा
नाभनी अंग शब्द-नानी साथे तेभनो विवाह कयो विवाह पछी भानकअे अशेष भगवान् यक्षोदाके भयोहानी ह जे
भियदर्शना नामनी कन्या अई भियदर्शना पीरे पीरे यौवनावस्थाके पहुँची त्पारे भगवने येताना भाखेअ
जमालि साथे तेनो विवाह कयो भियदर्शनाने एक क्षेत्रवती नाये पुत्री अई ।

यथा—‘सिद्धार्थः’ इति वा, ‘श्रेयांस’ इति वा, यशस्वी’ इति वा ।

वाशिष्ठगोत्रायाः=त्राशिष्ठगोत्रोत्पन्नायाः मातुर्नामधेयानि त्रीणि सन्ति, यथा—‘त्रिशला’ इति वा, ‘विदेहदत्ता’ इति वा, ‘प्रियकारिणी’ इति वा ।

भगवतः पितृव्यः सुपार्श्वः काश्यपगोत्रः=काश्यपगोत्रोत्पन्नः आसीत्, ज्येष्ठः=अग्रजो भ्राता नन्दिवर्धनः=तदाख्यः काश्यपगोत्रः=काश्यपगोत्रोत्पन्न आसीत् । ज्येष्ठा भगिनी सुदर्शना काश्यपगोत्रा आसीत् । भार्या यशोदानाम्नी कौडिन्यगोत्रा आसीत् । दुहितुः=कन्यायाः काश्यपगोत्राया द्वे नामधेये स्तः, यथा—‘अनवधा’ इति वा, ‘प्रियदर्शना’ इति वा ।

कौशिकगोत्रायाः नज्जथाः=दौहित्र्याः द्वे नामधेये स्तः, यथा—‘शेषवती’ इति वा ‘यशस्वती’ इति वा । श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्वापितरौ=मातापितरौ पार्श्वपत्नीयौ=पार्श्वनाथस्य शिष्यपरम्परासम्बन्धिन्यौ

श्रेयांस और यशस्वी ।

वाशिष्ठगोत्र में उत्पन्न माता के तीन नाम थे—त्रिशला, विदेहदत्ता और प्रियकारिणी ।

भगवान् के काका काश्यपगोत्रोत्पन्न ‘सुपार्श्व’ थे । वड़े भ्राता काश्यपगोत्रोत्पन्न नन्दिवर्धन थे । बड़ी बहिन काश्यपगोत्रीया सुदर्शना थी । पत्नी का नाम यशोदा था, वह कौडिन्य-गोत्र में उत्पन्न हुई थी । उनकी कन्या काश्यपगोत्रीया के दो नाम थे—प्रियदर्शना और अनवधा । कौशिकगोत्र में उत्पन्न नातिन के दो नाम थे—शेषवती और यशस्वती ।

भगवान् के माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा से संबंध रखने वाले श्रावक थे ।

श्रमण भगवान् महावीरनां पिता काश्यपगोत्रमां नन्ध्यां कृतां । तेभना त्रषु नाम कृतां-सिद्धार्थं, श्रेयासं अने यशस्वी

वाशिष्ठगोत्रमां उत्पन्न थयेव तेभना भातानां पणु त्रषु नाम कृता-त्रिशला, विदेहदत्ता अने प्रियकारिणी । भगवानना काका ‘सुपार्श्व’ काश्यपगोत्रमां उत्पन्न थयेव कृता । भोटा भार्ग काश्यपगोत्रमां उत्पन्न थयेव नन्दिवर्धन कृता । काश्यपगोत्रीया सुदर्शना तेभनी भोटी जेन कृतां । पत्नीनुं नाम यशोदा कृतुं, ते कौडिन्यगोत्रमां उत्पन्न थयेव कृती । तेभनी काश्यपगोत्रीया कन्यानां जे नाम कृतां-प्रियदर्शना अने अनवधा । कौशिकगोत्रमां उत्पन्न थयेव नातिन (हीकरीनी हीकरी) नां जे नाम कृतां-शेषवती, यशस्वती ।

भगवानना भाता-पिता भगवान पार्श्वनाथनी शिष्यपरंपरा साथे संबंध राखनार श्रावक कृतां । तेकां त्रषु

भगवोपासकौ=प्रावकौ चापि अशूराण=मास्ताम् । तौ=महावीरस्य मातापितरौ बहूनि वर्षाणि भगवोपासक-
पर्याय=प्रावकस्य प्राप्तयित्वा अश्विमेधा=सर्वान्वित्तया मारुणान्वित्तया=मरुणाञ्चिदसमयमथवा संछेलनया जोषण्या
ओषितवतीरौ सन्तौ काम्मासे काल कृत्वा द्वायसे=अभ्युत्ते कृत्ये दशतथा=दशरथेन उपपन्तौ । ततः लख
मराणिवेदरुझे तस्य सत्स्यता=सिद्धिं प्राप्स्यतः ॥६०७३॥

पुस्तम्—वेद्यं कोष्ठेण तेष समर्पणं समणे गगवं महावीरे विष्णोर्नगराए अम्मापिकरि देवलोय
गरि समणेहि समचरणे अद्वावीसं वासाइ अगारयन्ने वसित्वा अग्निविहसमणाभिप्पाए यावि होत्था । त
आणिय गगदशो छे, माया वेदिवदणो राया मयव एवं वयसो=दे माय ! अम्मापिकणं वियोगदुख
अच्छादे नो सिस्सिये, ना ण अम्माण सयणपरिययो सोगविमुक्खो संजाओ, एयम्मि अक्सरम्मि तुम्मे अभि-
यिहसमणाभिप्पाया इविय या मम रिययम्मि तए तारं जिक्खेवेह । एणप्पियाणं तुम्हाणं विरहो अम्हाणं
असम्भो अरिह । भगवया करिहं=अम्मापिउवाणीमाइसर्बधो अत्त जीवत्त अणत्तवारं जाओ, एत्थ नो पडिबंको
कायनो=हि । वेदिवदणेणं वुच=माय ! जं मे करिय त सखं सखं, मम अगारेययि तुम्हेहि दो वरिसाई
बाव गिरवासे आत्सं वसियन्व=ति ।

तए ण विच्छयवाणी मयव नियमाज्जो नदिरुद्धत्तस एयम्ह सोबा नितम्म एवं वयसो=जइ एवं
मव कइह सा दो वरिसाई जाव गिरवासे वसाभि, अज्जप्पयिह व णं गिरिम्मि मज्झ निमिष आरंभो समारंभो
वा=नो करयिज्जो । साहुविचीए अं चिट्ठिस्सामि । नंदिरुद्धयो राया तं पडिच्छ ।

ये बहुत शर्षो तक अम्भोपासकपर्याय पालकर सबसे अन्तमें, मरणके समय में होने वाली संछेलना-
जोषणा से शरीर को त्रोपित करके (समाधि=मरण का संन करके) काम्मास में काल कर के वारहे
अशुन-नामक कृत्य में वेद-पर्याय से उत्पन्न हुए । यहाँ से व्यवहार महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होने
और मुक्ति प्राप्त करने । ॥७३॥

येथे सुधी अम्भोपासकपर्याय जानीने छेहे भइल्लमभये खगारी रुद्धेपना=जोषणाशी शरीरने त्रोपित करीने
(समाधिपरावृत्त क्षेत्र करीने) अज्जप्पयिहं वाव करीने अज्जप्पुत=नामक व्यवहार करवाया देवक्षेत्रे उत्पन्न यथा
अपी अमपीने भकविदेह क्षेत्रमा उत्पन्न करी अने शिवा प्रत्यन करे (६०७३)

तए णं समणे भगवं महावीरं तत्थ गिहवासे वसमाणे निबं काउस्सगं करमाणे वमचेरं पालमाणे सरोस्सोहं च वज्जेमाणे एसणिज्जेणं असणाइणा सरीरजत्तं निव्वाहेमाणे विसुद्धज्झाणं क्रियायमाणे सिणणं सरोस्सोहं च वज्जेमाणे एसणिज्जेणं असणाइणा सरीरजत्तं निव्वाहेमाणे विसुद्धज्झाणं क्रियायमाणे

सिणणं सरोस्सोहं च वज्जेमाणे एसणिज्जेणं असणाइणा सरीरजत्तं निव्वाहेमाणे विसुद्धज्झाणं क्रियायमाणे

तए णं समणे भगवं महावीरं तत्थ गिहवासे वसमाणे निबं काउस्सगं करमाणे वमचेरं पालमाणे सरोस्सोहं च वज्जेमाणे एसणिज्जेणं असणाइणा सरीरजत्तं निव्वाहेमाणे विसुद्धज्झाणं क्रियायमाणे सिणणं सरोस्सोहं च वज्जेमाणे एसणिज्जेणं असणाइणा सरीरजत्तं निव्वाहेमाणे विसुद्धज्झाणं क्रियायमाणे

मूल का अर्थ—‘तेज कालेणं’ इत्यादि । उस काल और उस समय में तीन ज्ञान से युक्त श्रमण भगवान् महावीर की, माता-पिता के देवलोक-गमन करने पर, प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई । अर्द्धास वर्ष तक गृहवास में रहकर उन्होंने दीक्षा अंगीकार करने का विचार किया । यह ज्ञान कर भगवान् के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिर्वर्धन राजाने भगवान् से कहा—हे वन्धु ! माता-पिता के वियोग का दुःख अभी तक भूला नहीं है, हमारे स्वजन और परिजन शोक से मुक्त नहीं हुए हैं । इस अवसर पर दीक्षा अंगीकार करने का विचार मत करो, मेरे हृदय के घाव पर नमक (क्षार) मत छिड़को । तुम मुझे प्राणों के समान प्रिय हो । तुम्हारा विरह हमें असह्य है ।

भूणो अर्थ—‘तेज कालेणं’ इत्यादि ते क्षणे ते सभये, तेषु सानयुक्त श्रमेषु भगवान् भडावीरना माता-पिता देवदोक्षमा पधारवाना कारणु तेभनी प्रतिज्ञा भूणु थल गल अङ्गुवीश वर्ष गृडवास (संसार)भां रहा पछी तेभणु दीक्षा अंगीकार करवा निश्चय कथो.

प्रभुनो आ निर्णय ळण्णी लगवानना मोटाणाए न द्विवर्धन राजण्ये भगवानने कछुं ठे ‘छे बाए ! माता-पिताना वियोगनु दु थ छलु हु वीसरी शक्यो नथी. आपणु स्वजन-परिजनो पणु शोकथी छलु मुक्त यथा नथी. केवा सन्नेगोमा तसे दीक्षा श्रद्धेणु करवानी वात न करे, मारा हैयामां पडेला धा छलु इआया नथी त्या भीहुं लभराववानु साइस न जेडे. तसे मारा प्राणुथी पणु अधिक वडाइला छे. तमादे। वियोग भाराथी सहन थशे नकि.

मगरता दृष्टिपट्ट-श्रमार्पितमृगिनीप्रातःसम्बन्धोऽस्य जीवस्य श्रमन्तवार् जातः, अतोऽत्र नो मतिर्ययः कर्तव्य इति । नन्दिशर्मेनोक्तं-प्रातः ! यद् युष्याभिः कथितं तद् सर्वं सत्यं, ममाऽऽश्वरेणापि युष्याभिर्द्वं वर्गे यावद् सुरवासोऽवश्यं वस्तव्यमिति ।

ततः सल्लु निम्नपक्षानी मगवान् निम्नप्रातुर्नन्दिशर्मेनस्य पृथमं भुत्वा निम्नस्य पृथमवासीत्-यवेषं भवान् कथयति तदा हे चर्ये यावद् सुरवास वसामि । अथमद्यति च सल्लु श्वरे मभिमिष आरम्भ समारम्भो वा नो दृशणीयः, साधुदृष्ट्या स्यास्यामि । नन्दिशर्मेनो रामा तद् प्रतीच्छति ।

ततः सल्लु धर्मणो मगवान् महाधीरः तत्र सुरवासं वसन् नित्यं कायोत्सर्गं कुर्वन् ब्रह्मचर्यं पालयन्

मगवान् ने कदा-माता, पिता, चरित्त, माई का सर्वत्र इस जीव का अन्तर्त्त बार हो चुका है, अतः इस विषय में वकाश न दानिष ।

नन्दिशर्मेन बोले-माई ! तुमने जो कहा सा मग सच है मगर मेरा आग्रह मान कर मी तुम्हें दो बर्ष तक सुरवास में भ्रमण रहना चाहिए ।

तब निम्नपक्षानी मगवान् ने अपने माता नन्दिशर्मेन के इस अर्थ को सुनकर और हृदय में पारण कर के इस प्रकार कहा-यदि आप ऐसा कहते हैं तो दो बर्ष तक सुरवास में रहता हूँ मगर आज से मर निमित्त परमं द्यौर्त्त-नमार्त्त न होना चाहिए । मैं साधु-शुचि स रहूँगा । नन्दिशर्मेन राजाने यह बात स्वीकार कर ली ।

तब च धर्मण मगवान् महाधीर सुरवास में रहते हुए, नित्य कायोत्सर्ग करते हुए, ब्रह्मचर्य का भक्षणने अन्तर्त्त आशे-“हे काह ! माता-पिता अपने गहन-भाउते सबध तो आ लवे अनवीधार भयो छे आगे आ विषयमा लवे अतःध न नाजे तो साहे ।”

नन्दिशर्मेने आज्ञा आली छल्ल है के काह ! तब ने छल्ल ते सत्त्व छे परतु भाये आशक भानी अतः तब छल्ल ते वरं गुरुवासमां विताये तो साहे ।

मोहाभाउते आ प्रत्युत्तर आंजनी निम्नपक्षानी प्रभु महाधीर पितामा काह नन्दिशर्मेननी आनी छल्ल। आनी, दूरवर्मा छतारी अपने छिपु है ने आशनी छल्ल अन्तर्त्त आशे न होय तो हूँ कल्ल ते वष गुरुवासमां रहौध, पण शरत्त के हे भास निमित्त, वसमा होई पण मगरने आरत्त-समादल वयो न जोडल्ले हूँ साधु-वृत्तिवाये वधने च रहौध, नन्दिशर्मेने प्रभुनी आ यातने स्वीकार करे।

मोहाभाउत भाये आ वात यथा फले अभय अन्तर्त्त महाधीर गुरुवासमां रहौ दिवसे वीतानमा काम्मा,

स्नान शरीरशोभां च वर्जयन् एषणीयेनानादिना शरीरयात्रा निर्वहन् विबुद्धध्यानं ध्यायन् भावस्थानं वृत्त्यु

यथा तथा 'एकं वर्षमगारवासेऽवसत् ॥ ६०७३॥

टीका—'तेण कालेण तेणं समणं' इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये=मातापितृदेवलोकागमन-
कालावसरे श्रमणो भगवान् महावीरस्त्रिज्ञानोपगतः=नतिश्रुत्ययधिरूपज्ञानवयवान् अम्बापित्रोः=मातापित्रोः
देवलोके=स्वर्गलोके गतयोः सतोः समाप्तमतिज्ञः=पूर्णप्रतिज्ञः सन् अष्टाविंशतिम्=अष्टाविंशतिसंख्यानि नर्पाणि
अगारमये=गृहमध्य उषित्वा=वासं कृत्वा अभिनिष्क्रमणाभिप्रायः=संयमग्रहणाभिलाषुकः अभूत्, तत् ज्ञात्वा
भगवतः=श्रीवीरस्य ज्येष्ठभ्राता नन्दिर्वर्धनो राजा भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनेमववादीत्-हे भ्रातः ! अम्बापित्रोः=
मातापित्रोः वियोगदुःखं=विरहजनितदुःखम् अद्यापि=अद्यपर्यन्तमपि नो विस्मृतम्, तथा-अस्माकं स्वजनपरिजनः

पालन करते हुए, स्नान एवं शरीरशोभा न करते हुए, एषणीय अशन आदि से शरीरयात्रा का निर्वाह करते
हुए, विबुद्ध ध्यान व्यापते हुए, भावस्थिति की वृत्ति से जैसे-तैसे एक वर्ष तक आगारवास में रहे । ॥ ६०७४॥
टीका का अर्थ—'तेणं कालेण' इत्यादि । उस काल और उस समय में अर्थात् माता-पिता के
देवलोकागमन के समय में मति श्रुत और अवधिज्ञान के धनी श्रमण भगवान् महावीर पूर्णप्रतिज्ञ हो
गये, अर्थात् उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई । तब अट्ठाईस वर्ष गृहवास कर के वे संजम ग्रहण करने के
अभिलाषी हुए । यह जानकर श्री महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिर्वर्धन राजा भगवान् वीर स्वामीसे इस

ते दशभ्यान् आ प्रमाणे निधमोनु पालनं कर्त्वा दाञ्छा (१) हरदोज्ज्वालात्सर्गं कर्त्ता (२) अस्त्रयर्थं पुं पालन
कर्त्ता (३) शरीरनी शोभा वधारवाना उपायोथी हर रडेता (४) शरीरना पोषणु पूरतो ज् आहार लेता. ओ प्रभारे
विबुद्ध ध्यान धरता धरता भावमुनि नेवी वृत्तिने आथरता नेम तेम ओठ वर्ष सुधी अगारवासभां (संसारी-
पणुभा) रहेता (६०७४)

टीकाने अर्थ—'तेण कालेण' इत्यादि ते काले अने ते समये ओटवे के प्रभु महावीरना भाता-पिता
देवलोकागमना, मति, श्रुत अने अवधिज्ञानधारी ओवा श्रमण भगवान् महावीरनी प्रतिज्ञा हुवे पूर्यो थल. अ वीस
वर्ष संसारमा रहेता आठ तेभने संयम लेवानी ओटवे के दीक्षा, देवानी लावना अगृत थल. जथादे प्रभु महावीरना
भोटाभाई राजा नन्दिर्वर्धने आ अष्टयुं त्थारे तेमणे भगवान् महावीरने बादेहिये कथुं—' 'बाध, वर्धमान ! भाता-पिताना

मोक्षचिन्मूकः=धम्मदीयमाठापितवियोगजनितशोकरहितो नो संजात, एतस्मिन् अवसरे=ओक्षयति प्रसङ्गे युयम्
 विनिष्क्रमणाभिप्राया भूत्वा मय शते=मातापितृमरणजनितदुःखग्रणयुक्ते इदये=मनसि क्षार=स्ववियोगजनित
 दुःखरूपं यत्नं मा निक्षिपन्त पातयत। प्राणभियाणां=प्राणेशोऽप्यपिकानां गुप्माक विरहो=वियोग
 मस्माकम् असम=तोदुःखजनयोऽस्ति। ततो मगत्रता=भीर्वर्षमानस्वाभिना कथितम्=यत् अम्मापितृमगिनी-
 प्रातुसम्बन्ध मत्स्य जीवस्य अनन्तवारं जात, अतः=अस्मादेतोः अप्र=परिव्रज्यायां प्रतिबन्धः=
 अन्तराय ना कल्प्य इति। सत्पुत्रत्वा नन्विकर्षनन उक्तम्=इं भ्रातृ ! यत् गुप्माभि कथितम् तत् सर्वम्

प्रकार पोछे=माई ! माता और पिता का विरह-जनित दुःख क्यों तक भी मुझे दुःखी कर रहा है तथा
 व्यवसन और परिजन भी इस शोक से मुक्त नहीं हो पायें हैं। इस शोक के प्रसंग पर संयम ग्रहण करने के
 अभिलाषी हो कर हम माता-पिता की मृत्यु के दुःखस्वी याच से युक्त मेरे हृदय पर अपने वियोगजनित
 दुःखका नमक मत छिड़को, क्योंकि दुःखी का अधिक दुःख मत दो। हम प्राणों से भी अधिक मिय
 हो। तुम्हारे वियोग का दुःख हमारे लिये सब नहीं हो सकता।

तप कर्षमान स्वामीने कहा-माता, पिता, बहन और भाई का सर्वत्र इस जीव के साथ अनन्तवार
 हुआ है। मत एव प्रव्रज्या ग्रहण करने में विघ्न न कीजिए।

यह सुनकर नन्विकर्षन पोछे=तुमने का कहा है सा अक्षरस्थः सत्य है। मगर मेरे अन्तरोप-

विरहेतु दुःख तो बहुत भारी हैमाने केतरी मरु छे संतु दुःखभी शोअतुर छे स्वर्जनो अने परिस्वने पयु
 केलाया शोकनी वाचकीभांषी अल्ल यथा नशी जेअ लायु शोकनां वादोवा दुटी पठथा छे, तोभां वणी तसे स भम
 देवानी अनिवावा इशोबीने भावापिताना भुलुने कारखे आबात पायेअ आश देयां छपर तमाश विरोजनां
 दुःख इपी भीकुन कभरावये मज्जात भणवा छानां छे इणी छु अने पधार इणी न करशे तसे आश आयुबी
 पण पधार अने प्रिय छे तमाश वियाअतु दुःख आभारे भाटे अल्ल अछं पठशे”

तबारे पदमान प्रभुने कष्ट—कमेअ लयु। माता-पिता काह अने अहेननो अल्ल अमा लुअने अनती
 बार वषो छे अमा सभअ हांअ नवोअवो नशी, आउ प्रमज्जा (दीक्षा) देवाना आश शुअ कारभां अतश न
 नाअता अन्वयेदान आपो।”

अमा सांकेतीने नन्विकर्षने कष्ट—लयु। तसे ने कहे छे। ते अक्षरस्थ अल्ल छे=अनादान अल्ल छे

અક્ષરશઃ સત્યં=ચાર્થમ્, પરન્તુ મમ આગ્રહેણ=અનુરોધેનાપિ યુષ્માભિઃ દ્વે વર્ષે=વર્ષદ્વયં યાવત્ ગૃહવાસે અવશ્યં વસ્તવ્યમ્=વાસઃ કર્તવ્ય્યમ્ ઇતિ ।

તતઃ સ્વલુ નિશ્ચયજ્ઞાની= 'વર્ષદ્વયાવધિ મમ સંસારવાસોડવશિષ્ટોડસ્તિ' ઇતિ અવધિજ્ઞાનેન નિશ્ચયજ્ઞાનવાન ભગવાન્ શ્રીવીરઃ નિજબ્રાહ્મઃ નન્દિવર્ધનસ્ય एतम्=इमं पूर्वोक्तम् અર્થ=વિષયં શ્રુત્વા=સામાન્યતઃ શ્રવણગોચરીકૃત્ય નિશ્ચય=હૃદિ વિશેષતોડવર્ધાર્ય एवम्=अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् અગાદીત્-યદિ एवम् ભવાન્ કથયતિ તદા દ્વે વર્ષે યાવત્=વર્ષદ્વયપર્યન્તં ગૃહવાસે વસામિ, કિન્તુ-અદ્યપ્રયતિ=अद्याऽऽरभ्य ગૃહે મન્નિમિત્તો=મદર્થઃ આરમ્ભઃ=ઓદ-નાદિપચનક્રિયા સમારમ્ભઃ=तद्विविशिष्टपचनक्रिया वा नो करणीयः, અહં સાયુદ્ધત્યા=મુનિજનવદાચરણેન સ્થાસ્યામિ=નિવસ્યામિ । તતો નન્દિવર્ધનો રાજા તત્=શ્રીવીરવચનં પ્રતીચ્છતિ=સ્વીકરોતિ ।

આગ્રહ સે મી આપ કો દો વર્ષ તક ગૃહવાસ મેં અવશ્ય રહના ચાહિષ ।

તવ નિશ્ચયજ્ઞાની અર્થાત્ 'દો વર્ષ તક મેરા સંસાર-વાસ શેષ હૈ' એસા અવધિજ્ઞાન સે જાનને વાહે ભગવાન્ શ્રીવીરને અપને માર્ઈ નન્દિવર્ધન કી ઇસ વાત કો સુનકર તથા હૃદય મેં વિશેષરૂપ સે ધારણ કર કે ઇસ પ્રકાર કહા—અગર આપ એસા કહતે હૈ તો દો વર્ષ તક ગૃહવાસ મેં રહતા હૈ, કિન્તુ આજ સે ઘર મેં મેરે નિશ્ચિત આહારાદિ કા પચન-પાચન-રૂપ આરંભ-સમારંભ નહીં હોના ચાહિષ । મુનિયો જૈસી કર્યો સે નિવાસ કહૈંગા । તવ નન્દિવર્ધન રાજાને વીર ભગવાન્ કે વચનોં કો સ્વીકાર કિયા ।

પણ મારા અનુરોધ-આગ્રહથી મારા હૃદયને હળવું કરવા પણ તમારે બે વર્ષ સંસારમાં અવશ્ય બેંચી કાઢવા બોધ્યો."

નિશ્ચયજ્ઞાની પ્રભુએ જ્ઞાનના પ્રભાવે બોધું કે હજી બે વર્ષ સુધી મારે સંસારમાં રહેવાનું બાકી છે, ત્યારે પોતાના ભાઈ નન્દિવર્ધનની આ વાતને પાછી ન ઠેલતાં હૃદયમાં વિશેષરૂપે ધારીને કહ્યું—“વડિલ બંધુ ! આપની બે એમ ધૃષ્ટા છે તો બે વર્ષ સુધી હું ગૃહવાસમાં તો રહીશ, પણ આજથી ઘરમાં મારા નિમિત્તે આહાર વિગેરેના પચન-પાચન રૂપ આરભ-સમારંભ થવો બોધ્યો નહિ. હું મુનિઓ જેવી ચર્ચોથી નિવાસ કરીશ, કાળાં વાદળોમાં દશ્યમાન થતી તેજરેખા જેવી પ્રભુની વાણી સાંભળી રાજા નન્દિવર્ધનને ટાઢક વળી અને એટલેથી સંતોષ માની પ્રભુતાં આ વચનોને સ્વીકાર કર્યો.

ततः=नन्दिबन्धनस्य श्रीवीरोक्तस्यीकरणानन्तरं तल्ल अमणो मगवान् महावीरः तत्र=वासिन-सुखावासे
 यस्तन् नित्यं=मतिदिनम् कायोत्सर्गं कुर्वन् ब्रह्मचर्यं पालयन् स्नानं शरीरशोभां च वर्जयन्=स्थमन् प्राप्तुं कैय
 जीपन=निर्दोषं भद्रनादिना शरीरयात्रा=शरीरस्थितिं निर्वहन्=सम्प्राप्यन् विरुद्धध्यानं=धर्मध्यानं ध्यायन्=कुर्वन्
 मातृमुनिद्वय्या=मातृमुनिद्वयचरणेन-यथा-यथा=येन-तेन प्रकारेण एकं वर्षम् अगारवासे=सुखावासेऽवसत्=

अविष्टम् । ॥ २०७४ ॥

मूलम्---तेन कालेन तेन समरणे लोपतिपदेयं अगारिवारणं आसन्नाई चरति । तए न ते
 देवा मगरभो निरवयमामियायं श्रीहिना आयोगिय मगरबो भक्तिए आगमिय अमासे ठिवा मयवं कद
 माणा नमसमाणा एव ययासी=जय जय मगवं ! पुष्पाहि लोगनाह ! सत्त्वमगनीवरत्नमयद्वयद्वयाए पवरेदि
 रम्मतिरिय, जं सत्त्वचोए सत्त्वमणपूयजीवसत्त्वणं सेमकरं आगमेसियवं च मरिस्सह=धि । ज सत्त्वुदुस्सवि
 मगरबो अभिजित्तममत्तय देवान् कालं नं तेहि देवान् जीयस्सयं ।

तथा नं समणे मगवं महावीरे सत्त्वउत्तराणं दत्त्वा, तं जहा पुब्बं मराभो जाव जामं अट्टसयत्तस्साहियं
 एगे कोहि एगदिवत्तण दण्ड । एव एगमि सत्त्वउरे विनि कोठीसयाह अट्टसीई कोठीको मसीई सयत्तस्साह
 (३८८००००००) सुत्तणमुराणं मगवया दिष्साहं । तए णं से नदिवदणे राया मगवो अभिजित्तमण
 मरोच्छ्वं करेह ।

श्रीवीर मगवान् का कथन नन्दिबन्धन द्वारा स्त्रीकार कर लेने पर भ्रमण मगवान् महावीर
 सुखावास में वसते हुए मतिदिन कायोत्सर्ग करते हुए, ब्रह्मचर्य पालने हुए, स्नान एवं शरीरशोभा का
 त्याग करते हुए, निर्दोष अन्न-पान आदि से शरीरयत्ना का निषीर करते हुए मातृमुनि के समान
 आचरण कर के जैसे-तैसे एक वर्ष तक सुखावास में रहे । ॥ २०७४ ॥

आद्याभाई नन्दिबन्धने प्रकृत्य भ्रमणे श्रीवीर भ्रमण महावीर सत्त्वार्थ रत्नेवा क्त्वा साधुयत्ना
 कस्या दाग्वा इशेन अयोत्सर्गं कर्त्ता, यदायत्तं पठन् कर प शरीरशोभा वधारनारा साधने। अने स्नानने।
 त्याग क्यो निर्दोष आहार-पात्री विवेकशी शरीरने नीमावत्ता. आ प्रभावि भर्त्तव्यान् कर्त्ता भावयुनिना (अग्निनी
 भावयन्वावात्ता) तेन आवाक्य कर्त्ता भ्रमणान्तं कोह नई ते। सत्त्वार्थ पसार क्तु (२०७४)

ततो णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अभिणिक्खमणनिच्छय जाणेत्ता सक्कप्पमुहा चउसट्ठी वि इंदा भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिणो देवा य देवीओ य सएहिं सएहिं परिवारेहिं परिवुडा सईयाहिं २ इइहीहिं समागया । तं समयं जहा कुसुमियं वणसंडं, सरयकाले जहा पउमसरो, पउमभरेणं जहा वा सिद्धयवणं, कणियारवणं, चंपयवणं कुसुमभरेणं सोहइ तथा गणतलं सुरगणेहिं सोहइ ॥ मू० ७५ ॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये लोकान्तिकदेवानां सपरिवाराणामासनानि चलन्ति । ततः खलु ते देवा भगवतो निष्क्रमणाभिप्रायमवधिनऽऽभोगयित्वा भगवतोऽन्तिके आगत्याऽऽकारे स्थित्वा भगवन्तं वन्दमाना नमस्यन्तः एवमवादिषुः—जय जय भगवन् !, बुध्यस्व लोकनाथ !, सर्वजगज्जीवरक्षणदयार्थतयै प्रवर्तय धर्मतीर्थ—यत् सर्वलोके सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वानां क्षेमङ्करम् आगमिष्यद्भद्रं च भविष्यतीति । यत् स्वयंबुदस्यापि भगवतः अभिनिष्क्रमणार्थं देवानां कथनं तत् तेषां देवानां जीतकल्पः । ततः खलु श्रमणो

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि । उस काल और उस समय में परिवार-समेत लोकान्तिक देवों के आसन चलित हुए । तब वे देव भगवान् के दीक्षा अंगीकार करने के अभिप्राय को अवधिज्ञान से जानकर भगवान् के समीप आये । आकाश में स्थित हो कर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—‘जय हो, जय हो भगवान् !, बोध प्राप्त करिये, हे तीन लोक के नाथ ! समस्त जगत् के जीवों की रक्षा और दया के लिए धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति कीजिए, जो सर्वलोक में सर्व प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्त्वों के लिए क्षेमंकर होगा, और भविष्य में कल्याणकर होगा । स्वयंबुद्ध भगवान् को भी प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिये देवोंका जो कथन है, वह उनका जीतरूप है—परम्परागत आचार है ।

भूदनेो अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि. ते क्षणे अने ते सभये परिवारसहित सर्वं ढोडांतिङ देवानां आसनेो यक्षाथभान थयां. अवधिज्ञान सुकीने देवेओ जेथुं तेा प्रभु भक्षावीरनी दीक्षालावना देअवाभां आवी. वदना नमस्कार कर्थां. त्थारप्पाह देवेा कडेया बाग्था डे “लगवाननी जय हो ! लगवाननी विजय हो !. हे नाथ ! आप सानना स्वाभी भनेा ! सभस्त जगतवासी एवेोनु रक्षणु अर्थे धर्मतीर्थनी स्थापना कदेा ! जेथी करीने सर्वढोडकां सर्वप्राणी-भूत-एव-सत्त्वने भाटे जे कांछं सुअङ्कर अने कथाएुङ्करी होय ते प्रवतोवेा.” लगवान पोते तेा सानी छे, पणु देवेा आवीने प्रव्रज्या श्रेष्ठु करवानु लगवानने सभअवे छे. ते तेभनेा एतव्यवहार ओटडे पर परागत आचार छे.

मगचान्न महावीरः सवत्सदानं ददाति, यद् यथा-पूर्वं दुरातं यावद् वाममण्डसप्तसाधिकाभ्योक्तं कोटिं मकरिपसेनं ददाति । एषमेकस्मिन् सवत्सरे श्रीणि कोटिश्चतानि, अष्टाशीतिः कोटयः, अश्वीतिः शतसप्तसाणि भुवर्जमुद्राणां मगरुणा दद्यानि । तत् इत्थं न नन्दिवर्षेनो रामा मगवतोऽभिनिष्क्रमणोत्सवं करोति ।

ततः नष्ट भयमस्य भगवतो मारीरस्याभिनिष्क्रमणनिर्णयं शास्त्रा शुक्रमुल्लाघुपट्टिणीन्द्राः
मदनपतिव्यन्तर्यौतिषिदिमानवासिनो देवाश्च देव्यश्च स्वैस्वै परितरैः परित्वाः स्वकीयाभिः २ नृदिभिः
समासताः । वसिन् समये—यथा कुसुमिर्तं वनपण्यम्, अरस्काळे यथा पणसरः पणमरेणं, यथा वा सिद्धार्थकं
चम्पकचर्नं कुटुममरेण नोभते तथा गगनतलं सुरगणैः कोभते । ॥४०७५॥

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् वर्षी-दान देने लगे । वह इस प्रकार-सूर्योदय से पहले एक बार दिन तक एक करोड़ आठ लाख सौनीया एक दिन में दान देते थे । इस प्रकार एक वर्ष में, तीन सौ अठासी करोड़, अस्सी लाख स्वर्णमुद्राओं का भगवान् ने दान दिया । तत्पश्चात् रामा नन्दिवर्षन ने भगवान् का अभिनिष्क्रमण-प्रशस्ति किया ।

तब भयंकर अगवान पहाड़ीर के अग्निनिष्कम्भ का निधय जानकर श्रद्धा यदि व्यनक्ति, व्यन्तर, श्योतिष्क, विमानवासी देव, देवियाँ, अग्ने-अग्ने परिवारों सहित और अपनी-अपनी कृति के साथ भाये । उस समय आकाश घुरगणों से ऐसा सुजीमित हुआ, जैसे सरस्वत में पद्म-सरोवर कमलों से ओभायमान होता है, अथवा जैसे सिद्धार्थन, कर्णिकारवन एवं चम्पकवन कुसुमों के मार से ओभायमान होता है ॥ सू०७५ ॥

ત્યારનાત અમવાન વર્ષીયાન દેવામાં તરફ થયા. તેઓ સુમેશ પટેલાં એક પહેરમાં એક કદાઈ બાઈ લાખ સો પાંચનું એક દિવસમાં દાન કરવા લાગ્યા આ પ્રમાણે કરતા કરતા બીજા એક વર્ષે હરમ્યાન પ્રભુએ ત્રણ સો અઠ્ઠી કદાઈ એટલી લાખ સોનાં મહેરોડાનું વર્ષીયાન યીધું

अत्रवानेनो ज्मिनिभूमणु शमम ज्मिने शङ्क विजरे श्यास भङ्गो, जवनपति, ज्वर, ज्योतिष, जने विमान बाभी देव देवाजो, पेट पोतावा परिवार जने सिद्धि साधे ज्मवी पेशोव्या.

૧૨૭ ગ્રામીણ ઇ. તેથી રાજી સુખભોજી અપામી જાય છે તેમજ સિદ્ધાન્તજન, કવિશાસ્ત્રજન અને પાઠકન પ્રસુમિના ભાગ

ટીકા—‘તેજં કાલેજં તેજં સમણં’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये=प्रथमवर्षे व्यतीते द्वितीयवर्षे प्रारब्धे लोकान्तिकदेवानां सपरिवाराणाम् आसनानि चलन्ति । ततः=आसनचलनानन्तरं खलु ते=लोकान्तिका देवाः, भगवतः=श्रीवीरप्रभोः निष्क्रमणाभिप्रायं=प्रव्रज्येच्छाम् अवधिना=अवधिज्ञानोपयोगेन भोगयित्वा=ज्ञात्वा भगवतः श्रीवीरप्रभोः, अन्तिके=निकटे आगम्य आकाशे स्थित्वा भगवन्तं श्रीवीरस्वामिनं वन्दमानाः नमस्यन्त एवं=वक्ष्यमाणं वचनम् अत्रादिषु=उक्तवन्तः—हे भगवन् ! त्वं जय जय=सर्वोत्कर्षेण चारं चारं वर्तस्व, लोकनाथ ! =हे त्रिलोकीपते ! बुध्यस्व=बोधं प्राप्नुहि, तथा—सर्वजगज्जीवरक्षणदयार्थतयै=सर्वेषां जगद्वर्तिनां जीवानाम् एकेन्द्रियादीनां त्रियमाणानां रक्षणार्थं दयार्थं च धर्मतीर्थं प्रवर्तय । त्रिय-

ટીકા કા અર્થ—‘તેજં કાલેજં’ इत्यादि । उस काल और उस समय में अर्थात् प्रथम वर्ष वीत जाने पर और दूसरा वर्ष प्रारंभ होने पर सपरिवार लोकान्तिक देवों के आसन चलायमान हुए । आसनों के चलायमान होने के अनन्तर लोकान्तिक देव भगवान् की प्रव्रज्या की इच्छा को अवधिज्ञान से जानकर भगवान् के समीप उपस्थित हुए । आकाश में स्थित होकर भगवान् वीर प्रभु को वन्दना-नमस्कार करते हुए वे इस प्रकार बोले—प्रभो ! आप की जय हो, जय हो, (आप पुनः पुनः सर्वोत्कृष्ट होकर वर्तें) । हे त्रिलोकीनाथ ! आप बोध प्राप्त कीजिये, तथा जगत् के एकेन्द्रिय आदि सभी प्राणियों की रक्षा के लिए और दया के लिये धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति कीजिए । अर्थात् मरने वाले एकेन्द्रिय आदि प्राणियों की रक्षाके लिए

ટીકાનો અર્થ—તેજ કાલેજં ઇત્યાદી જ્યારે જ્યેષ્ઠ બંધુ નંદિવર્ધનની આસા અનુસાર ભગવાને સ્વીકારેલા બે વર્ષના ગૃહાવાસ દરમિયાન એક વર્ષ તેા વીતી ચુક્યુ અને બીજા વર્ષનો પ્રારંભ થતાં જ પરિવાર સહિતના લોકાંતિક દેવાનાં આસનો ચલાયમાન થવા લાગ્યાં આ દેવો દેવપણામાં હોવા છતાં પણ વૈરાગ્યવાન અને ઉઠાસીન વૃત્તિવાલા હોય છે. તેઓના સ્થાનોા પણ નિરાલા અને એકાંત જેવા હોય છે. આ દેવો મોક્ષ પથના નિકટ ગામી હોય છે. તેઓનું દિવ્યશુભન પણ લોગની દૃષ્ટિએ અનાસક્ત જેવું હોય છે. કેાઇ પણ માનવી સંસારમાથી મહા અભિનિષ્ક્રમણ કરે અગર વાન્છના કરે છે. જ્યારે તેઓના પચાલમાં તરત આવી બંધ છે. અને તુરત જ તેની પાસે જઇ બોધાયક વચનોા સભળાવી, સંસારદયામાંથી તે મહાયુરુષને બગૃત કરે છે.

આવી મહાન વ્યક્તિાનુ સામર્થ્ય બોધ, ધર્મ પ્રવૃત્તિ ચલાવવા તેમને વિનંતિ પણ કરે છે. કારણ કે જગતના છવેા વ્યાધિ અને ઉપાધિથી સજળી રહ્યા છે, તેમના આ હું-જો મટાડવાની તીવ્ર ભાવના આ દેવોમાં હોય છે. આજો લોક બળીજળી રહ્યો છે, તેથી એકેન્દ્રિયથી માડી પંચેન્દ્રિય સુધીનાં છવેાની રક્ષા માટે “(મા-હલો,

ममभानो नीबानां रसमार्गं 'मा हन मा हन' इति 'इत्यस्व इत्यस्व' इति च उपवेशं कुरु, इति भावः । यद् परमंतीय सर्वानोके । सर्वभागयुतगीयसमभानां—सर्वे ये भाषाभन्निप्रिषत्तुरिन्द्रिया, भूताः=वरवः=ननस्पदयः, नीचाः=ज्जोन्द्रियाः सन्ताः=युक्तिरप्युजोनायकस्तेषाम् समभानं=कस्याणाकरम् आगमिज्यम्रु=मविज्यत्काळे कस्याणाकरं च मरिप्यतीति । इत्थं यद् सगमुद्रय=दशगो बोधतोऽपि भगवतः अभिनिष्क्रमणार्थे=ममभयप्रार्थार्थं लोकान्तिष्ठानो देवानां भगवन्तं प्रति कथनम्, सत् कथनं तेषां लोकान्तिष्ठानां देवानां नीतिरुक्त्य=मीवास्त्यः कस्यः ।

१ ममया दि-नि-चतुः भोक्ता; भूतास्तु तत्त्व। स्वभाः। जीवा पञ्चेन्द्रियाः प्रोक्ताः शेषाः सप्त उद्गीरिताः॥१॥

‘मा इत्, मा इत्’ अर्थात् ‘मत् मारा, मत् मारो’ ऐसा, तथा ‘कृया करो’ ऐसा उपदेश कीजिए । यह धर्मार्थी समस्त लोक में अद्वैतिय प्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय रूप प्राणियों को, मूर्खों (बनस्पतियों) को, जीवों (पंचेन्द्रिया) को तथा सर्वों (पृथ्वी, वायु, अग्नि, तेजस्काय, वायुकाय) को कल्याणकारी है और भविष्य में भी कल्याणकारी होगा ।

इस प्रकार स्वर्गोप को मास भगवान् को बीसा ग्रण करने के लिए लोकान्त्रिक देवों का जो करना है, तो उनका नीतिरूप (परंपरागत आचारमात्र) ही है ।

મ.ન.વેલે) લેલું. નહિ-લેલું નહિ-લેલું કરો.” એવા કડક વલનો વટે આ લેશવિદે હોય, મહાપુરુષના આત્માને જાગૃત કરે છે. આ લોક વેળાનાં કુલ પર જાણનાં વ્યવહારનાં માર્ગો છે. જાને તે પ્રાચીન જાગૃતરી, આવા પ્રકારનાં માર્ગો કરે છે. આ લોક ફળ વેળાનાં સુદિ પદ પરનાં આચાર છે.

અંગીતના પીઠાર સાંભળતાં જ આ જગતના અનિત્ય ધનને, લોકાપોગી કામમાં વાપરવા, ભાવી તિથિ કરો ઉપન થાય છે; તેમજ 'દાન' જે ધર્મનો મુખ્ય સિદ્ધાંત છે અને મુખ્ય પાથો પણ છે તેવું જગતને હાવાવા તેવું પ્રતિપાદક બરાવે છે અને તેથી જ વસીલાનની અખરબશ તંત્રીની આશ્ચર્ય વહેવા માટે છે. કારણકે જો કોઈ આઠ વાળ સોના મકોશિંગા ધાનનો વિચાર કરતાં વરસે દરકારે તે રકમ, તથા અળજ અડધી કરોડ જેટલી લાખ મુખી પહેલ છે

તતઃ સ્વહુ શ્રમણો ભગવાન્ મહાત્વીરઃ સંવત્સરદાનં=ગર્વિરુદાનં દદાતિ=કરોતિ, તદ્વથા=શ્રવ્યોદયાત્ પૂર્વમા-
રમ્ય યામમ્=એકં મહર્ં યાવત્=એકમહરપર્યન્તં સુવર્ણમુદ્રાણામ્ અષ્ટશતસહસ્રાધિકામ્=અષ્ટશતસહસ્રોત્તરામ્=અણ્ણશાધિકામ્
एकां कोटिम् (१०८०००००) एकदिवसे=एहस्मिन् दिने ददाति । एवम्=प्रतिदिवसमष्टशतैककोटिपरि-
मितसुवर्णमुद्रादानेन भगवता एहस्मिन् संवत्सरे सर्वैर्मरुलनया सुवर्णमुद्राणां=दीनारणां त्रीणि कोटिशतानि
अष्टाशीतिः कोटयः अशीतिः शतसहस्राणि च (३८८८०,००,०००) दत्तानि ।

તતઃ સ્વહુ સ નન્દિવર્ધનો રાજા ભગવતઃ અભિનિષ્ક્રમણમહોત્સવં=દીક્ષામહોત્સવં કરોતિ ।
તતઃ સ્વહુ શ્રમણસ્ય ભગવતો મહાત્વીરસ્ય અભિનિષ્ક્રમણનિશ્ચયં=દીક્ષાનિશ્ચયં જ્ઞાત્વા શક્રમુખાઃ=
शकादयः चतुष्पष्टिः इन्द्राः भवनपति-व्यन्तर-ज्यौतिषिह-विमानवासिनो देवाश्च देवपथ स्वकैः स्वकैः=स्वैः स्वैः

તદનન્તર શ્રમણ ભગવાન્ મહાત્વીર ને વર્ષીદાન દેના આરંભ ક્રિયા । વહુ ઇસ પ્રકાર-
सूर्योदय के पहले से आरंभ करके एक महर-पर्यन्त एक करोड़ आठ लाख सुवर्णमुद्राएँ प्रतिदिन देते
थे । इस प्रकार सबका जोड़ करने से एक वर्ष में तीन अरब, अठ्ठासी करोड़, अस्सी लाख स्वर्णमुद्राएँ दीं ।

તતપશ્ચાત્ નન્દિવર્ધન રાજાને ભગવાન્ મહાત્વીર કા દીક્ષા-મહોત્સવ કા પ્રારમ્ભ ક્રિયા ।
तव श्रमण भगवान् महावीर के दीक्षा अंगीकार करने के निश्चय को जानकर शक्र आदि चौसठ
इन्द्र, भवनपति, व्यन्तर, ज्यौतिषिक, विमानवासी देव तथा देवियाँ अपने-अपने परिचारों से युक्त तथा अपनी-

જેમ લોકો વિવાહ પ્રસંગે અહળક ધન ખર્ચે છે. તેમ દીક્ષાના હિમાયતીઓ, તેના મહોત્સવોને ખૂબ
હાઠમાઠથી ઉજવે છે. આ પ્રયંસનીય પગલું છે જગતને લાત મારીને જે નીકળે છે. તેનું યહુમાન કરવું જ
જોઈએ. અને તે મહાન પુણ્ય છે, અને સુક્તિ માર્ગોમા આ એક સુખ્ય માર્ગ છે. આનો અતિરેક કયાં વિના,
દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ અને લાવ પ્રમાણે, તેનું આચરણ કરવું જોઈએ. આવો અપૂર્વ પ્રસંગ કોઈ પરમ ભાગ્યશાળીને જ
લાધે છે, તેથી નંદીવર્ધન, ભાગવાનનો દીક્ષા મહોત્સવ ધામધુમથી ઉજવ્યો.

ભાગવાનનું મહાભિનિષ્ક્રમણ એ કોઇ મામુલી નથી. રજે રંગમા અને હાડે હાડમાં જેને વૈરાગ્યનો રંગ
લાગ્યો છે, જેને આ 'ભવ' સિવાય અન્ય કોઈ ભવનથી, તેવી મહાન વ્યક્તિનાં અભિનિષ્ક્રમણની વાત, અવધિજ્ઞાન
દ્વારા પ્રાપ્ત થતા ચોસઠ ઇન્દ્રો, તેમની સર્વ સિદ્ધિ સંપત્તિ સાથે આવવા લાગ્યાં, જોત જોતામાં આપુએ આકાશ

परितोऽपरिजनेः परिहृताऽसंवेष्टिताः सन्तः सर्वेति सर्वेति स्वकीयाभिः स्वकीयाभिः अदिभिः विमानादि
सम्पत्तिभिः सह समागताः । तस्मिन् समये यथाऽयेन प्रकारेण कुसुमितेऽपुष्पिते वनपट्टे, तथा-द्वारकाछे-
शरद्वृत्तसमये यथा पक्षसतः-पक्षसरोवरः पक्षभरेण-पक्षसमूहेनः यथा वा-सिद्धार्थवने-सर्पवने, कर्णिकारवने-
द्रुमोत्पलवने ' छत्रम्या ' इति स्थातस्य वने, चम्पकवन वा कुसुमसमूहेन-पुष्पसमूहेन शोभते तथा-तेन प्रकारेण
गगनवलम्-आकाशमण्डले सुरगणे-देवसमूहेः शोभते ॥ ५०७५ ॥

युष्म-उप नं से चउसदी वि इवा देवा य देवीभ्यो य वरपदवभारिष्ठारितिलेहि सयसहस्रेहि वुरेहि
तयवितयययमुसिरेहि चउलियेदेहि आउउजेरि य वज्रमाणेहि आजह्यसपहि ऋट्टिजमाणेहि सन्नादिष्वुदियसर
निनाएण सगण रेणं मरुए विरुए मडया य रिणोछासेणं मरुं वित्थयरनियलमणमरुं करिउमारिमिमु, तंजहा-

सके दर्शिते वरराया कपिलरगाइनान्नाविहविचचिचिय वारद्वारापुसणभूसियं मुनाहल्यपरजालविसद्व
माणसोह, आन्नायथिलं पन्नायभिज्ज पठमकयमसिचिच नानाविहरयणमणिपकलसिहविचित्त आणावण्यपटा
पडागपरिमिदियम्मसिहं मरुद्वियसयाणपीडमीदासणं एण मरुं पुरिससहससचारिणिं वंदणमं सिचिय विउज्जइ,
विउज्जिवा नेणेण समणे मयवं महावीरे तेणेण उवागच्छा, उवागच्छिवा समण भगव महावीरं तिवसुसो
आयाहिण-य्याहिं कइ, करिवा वदइ नमसइ वदिवा नर्मणिवा परिदियवमुद्धाभरणलोमयवस्य भगवं
वित्थयरं सिचियाए निसियावेइ ।

तए पं सकीसत्ता दोवि इदा शहि पासेहि मज्जिरयणनरयंदहाहि चामराहि भगवं वीर्यति ।

तए नं तं सिचिय पुब्ब पुब्बयरोमकूवा हरिसवसित्थियमाणहियया मयुस्ता उच्चरति, पच्छा अमुरिदा
सुरिदा गार्गिदा सुवण्णिदा य उच्चरति । तत्थ तं सिचियं पुब्बविसाए सुरिदा, दाहिणाए विसाए नागिदा,
पच्छिमदिसाए असुरकुमारिदा उत्तरविसाए मुक्कणकुमारिदा उच्चरति । ५०७६ ॥

अपनी विमान आदि दिशूति के साथ आये । उस समय भैसे पुष्पित वनपट्ट तथा शरद्वृत्त में कमल-
युक्त सरोवर अथवा सरसा का वन, कनेर का वन एवं चम्पा का वन पुष्पों के समूह से शोभित होता
है उसी प्रकार आकाशमण्डल सरसमूहों से शोभायमान हुआ ॥ ५०७५ ॥

अधुना जने ०५५० बता तद्विचार पञ्च ०७५० (५०७५) २५१ न ६०१ ॥ अश्वमे ते वधते आभासते । देव्या ५५५
अश्वमेधमे जने अश्वमेधमे जने ०७५० (५०७५) २५१ न ६०१ ॥ (५०७५)

છાયા—તતઃ સ્વલુ તે ચતુષ્પટિરપીન્દ્રાઃ દેવાશ્ચ દેવ્યશ્ચ વરપટહભેરીશ્છલરીશ્ચેત્યુ શતસહસ્રેષુ તૂર્યેષુ તતત્રિતતઘનશુષિરેષુ ચતુર્વિધેષ્વાતોષેષુ ચ ત્રાઘમાનેષુ આનર્તકશતેષુ નર્ત્યમાનેષુ સર્વદિવ્યચુટિતશન્દ્યનિનાદેષુ મહતા રવેણ મહત્યા ઋદ્રથ્યા મહત્યા વિભૂત્યા મહતા ચ હૃદયોહ્યાસેન મહાન્તં તીર્થકરનિઙ્કમણમહં કર્તુમારપ્સત, તથયા—શક્રો દેવેન્દ્રો દેવરાજઃ ઋતિ-તુરગાદિનાનાવિધચિત્રચિત્રિતાં હારાર્દ્ધહારાદિભૂષણભૂષિતા મુક્તાફલમકરજાલ-વિવર્દ્ધમાનશોમામ્ર આહાદનીયાં પ્રહાદનીયાં પદ્મકૃતમક્તિચિત્રાં નાનાવિધરત્નમણિમયૂશ્વશિલાવિચિત્રાં નાનાવર્ણ-

મૂલ કા અર્થે—‘તથ ગં’ इत्यादि । उस समय विशाल पटह (ढोल), भेरी, झालर और शंख (आदि) बजने लगे । तत, त्रितत, घन और ‘शुषिर’-इस प्रकार चार तरह के वाद्य बजने लगे । सैकड़ों श्रेष्ठ श्रेष्ठ नचैया नाचने लगे । समस्त दिव्य वाजों की ध्वनि होने लगी । चौसठ इन्द्रोंने, देवोंने और देवियोंने महती कृद्धि, महती विभूति और महान् हृदयोह्यास के साथ भगवान का महान् तीक्ष्णमहोत्सव मनाना आरंभ किया । वह इस प्रकार—

शक्र देवेन्द्र देवराज ने चन्द्रप्रभा नामक एक बड़ी शिबिका (पालकी) की विकीर्णता की । वह पालकी हाथी, घोड़ा आदि अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित थी । द्वार और अर्धद्वार आदि आभूषणों से आभूषित थी मोतियों के समूह के गवास उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । वह आह्लाद और विशिष्ट आह्लाद उत्पन्न करने वाली थी । कमलों द्वारा की हुई रचना से अद्भुत थी । अनेक प्रकार के

भૂषणો અર્થઃ—‘તત્પણ’, ઇત્યાદિ. તે સમયે, વિશાળ ઢાલ, ભેરી, ઝાલર, અને શંખ આદિ વાજા વાગવા લાગ્યા તત્રિતતઘન અને શુષિર આદિ ચાર પ્રકારનાં લાળો વાદ્યત્રો-વાજા વાગવા લાગ્યાં. સે’કડો શ્રેષ્ઠ નર્તકો નાચવા લાગ્યાં. સમસ્ત દિવ્ય લોકના વાણંત્રો વાગવા લાગ્યાં. ચોસઠ ઇન્દ્રો-દેવો અને દેવીઓએ મહાનક્રુદ્ધિ-મહાન્ વિભૂતિ, અને મહાન્ હૃદયોહ્યાસ સાથે, તીર્થંકરનો દીક્ષા મહોત્સવ ઉજવવાનો આરંભ કર્યો. આ પ્રસંગ કેવા રીતે ઉજવાયો તેનું વર્ણન આ રહ્યું.

ચક્રેન્દ્રે ચંદ્રપ્રભા નામની એક ચોટી શિબિકા (પાલખી) તૈયાર કરી આ પાલખી વૈક્રિય શક્તિદ્વારા ઘનાવવામાં આવી હતી તેમા હાથી-ઘોડા-વિગેરેના અનેક પ્રકારના ચિત્રો વડે ચિતરવામાં આવો હતો. તેને હારતોરાશી અર્ધ ચંદ્રકાર વિગેરે આભૂષણોદ્વારા સુશોભિત કરવામાં આવી હતી. ચોતીયોના ગોખલાઓ તેની શોભામાં વૃદ્ધિ કરી રહ્યા હતાં. આ પાલખી ઉત્તમ પ્રકારનો આનંદ ઉત્પન્ન કરવાવાળો હતો કમળોવડે કરવામાં આવેલી રચનાથી તે અદ્ભુત લાગતી હતી. અનેક પ્રકારનાં મણિ અને રત્નોના કિરણોથી તે ચિત્ર વિચિત્ર ભાસતી હતી. તેની ઉપરનું

गणपताकापरिमण्डिताग्नितारां मण्डलितसप्तपदीठासिंहासनाय् एकां महतीं पुरुषसहस्रादिनीं वन्द्यमायां शिविकां
 विक्रोति, चिकुर्य यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरः, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं
 प्रिकृत्य आदक्षिण-प्रदक्षिणं करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यत्वा परिश्रितवहुमुन्यामरणसौ
 मन्वच्च भगवन्तं तीर्थकरं शिविकायां निपादयति ।

ततः सल्लु श्लेष्टशानौ द्वावपीन्द्रौ ब्रूयोः पार्थयोर्यणिस्त्वस्मिन्तद्वैश्वामरैः भगवन्तं कीजयतः ।

ततः सल्लु तां शिविकां पूर्व पुलकितरोमकृपा हर्षवशकिसर्पद्वया मनुज्या तद्वन्दन्ति, पश्चात् घुरेन्द्रौ

रत्नां और मणियों की किरणों से चित्रनिविष्ट थी । उसका ऊपरी खिलर नाना रंगों के घंटाओं और
 पताकाओंसे सजिष्ठ था । उसके मध्य में पादपीठ सरित् सिंहासन रक्ता था । एक हजार पुरुषों से बान
 करने (उठाई जाने) योग्य थी ।

इस पालकी की विकुरुष्या फरके जाँह श्रमण भगवान् महावीर थे, वही (वृद्ध) आये । आकर
 तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणपूर्वक श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार कीया । वन्दना-नमस्कार
 करके, बहुमूल्य आभरण और सौम्य वस्त्र धारण किये हुए भगवान् तीर्थकर को शिविका में विटलान्ये ।

सब सौर्यमं और ईशान-दीनों इन्द्र धानों वगैरों में (लूटे होकर) मणियों और रत्नों से जड़े हुए
 रंग बाले चामर भगवान् पर घीजने लगे ।

उस शिविका को पारलेखी पुलकित रोमरूप बाले और हर्ष से विकसित हृदय वाले मनुज्यों ने
 शिखर (बिम्बिषे) रत्न दण्ड करने पलाशजो वड़े शकुन्तारवाभां आन्यु कतु तेनी भस्मभां पादपीठ सजिष्ठ जोड
 सिंहासन भुम्भभां आन्यु कतु आ पादभीने उपादवा भादे जोड डंगार पुरुषेणी बदर पडे तेवी भारे
 वज्रपादर कती

आ पादभीने तैभार करीने जथा श्रमण भगवान् महावीर भीरावत्ता कता त्वां शकुन्त पधायो, जने
 आदक्षिण-प्रदक्षिण पूरक श्रमण भगवान् महावीरने त्रयुवार वडना-नमस्कार करी बल्ल्यां भुम्भवान् जने
 आप वज्रन-बाण आजारवो जने वज्रोपी सल्लु श्लेष्टा तिष्ठैकर भगवानने तेभा जेसाडवा.

सौभर्म जने प्रधान देवताडना सौभर्मैन्ड जने प्रधानेन्द्र देवोजे पडजे डंगा रकी भवि जने स्तोत्री
 अटलजिह डववाका चामर भगवान् उपर वीजवा बाज्या

आ पादभीने सौ प्रथम शैभरेशभ जेनां प्रमुनिकत जना छ जेद जेजु केवशी निमसिष्ठ वसु छ तेवा

असुरेन्द्रो नागेन्द्रो सुपर्णेन्द्रो च उदाहन्ति । तत्र ता शिविकां पूर्वदिशि सुरेन्द्राः, दक्षिणस्या दिशि नागेन्द्रो, पश्चिमदिशि असुरकुमारेन्द्रो, उत्तरदिशि सुवर्णकुमारेन्द्रो उद्वहन्ति ॥ सू० ७६ ॥

टीका—‘तए णं ते चउसडीचि’ इत्यादि—ततः=आगमनानन्तरं खलु ते समागताः चतुष्पष्टिरपि इन्द्राः देवाश्च देव्यश्च वरपटहभेरीशृङ्खरीशङ्खेषु, तत्र-वरपटहाः-चराः=विशालाः पटहाः=‘ढोल’ इति भाषामसिद्धाः भेर्यः=दुन्दुभयः=शृङ्खर्यः शङ्खाश्च प्रसिद्धास्तेषु तथा-शतसहस्रेषु=लक्षसंख्येषु तूर्येषु=मृदङ्गादिषु, ततविततग्रनशुपिरेषु-ततं=वीणादिकं, विततं=पटहादिकं घनं=कास्यतालादिकं, शुपिरं=छिद्रान्वितवंशादिकम् । उक्तं च—

ब्रह्म किया; बाद में सुरेन्द्र, असुरेन्द्र नागेन्द्र और सुपर्णेन्द्रों ने ब्रह्म किया । उनमें से उस शिविका में पूर्वदिशा में सुरेन्द्र लगे, दक्षिणदिशा में नागेन्द्र लगे, पश्चिमदिशा में असुरकुमारेन्द्र और उत्तर दिशा में सुवर्ण कुमारेन्द्र लगे ॥ सू० ७६ ॥

टीका का अर्थ—आने के पश्चात् उन चौंसठ इन्द्रों ने, देवों ने और देवियों ने भगवान् महावीर का दीक्षा-महोत्सव मनाना आरंभ किया । बड़े-बड़े ढोल बजने लगे, भेरियाँ बजने लगीं ‘झालरो और शंखों की ध्वनि होने लगी । लावों मृदंग आदि वाद्य बजने लगे । वीणा आदि तत, पटह आदि वितत, कासे के ताल आदि घन और बांसुरी आदि शुपिर; इस प्रकार चार प्रकार के वाद्य बज उठे । कहा भी है—

भद्रुथोऽग्रे उपाडी त्थारथाह तेने वहुन करवाभा सुरेन्द्र असुरेन्द्र. नागेन्द्र अने सुपर्णेन्द्र तेभनी साथे न्नेउया. आ पावणीना यार हाथा यार दिथाओ हाता. पूर्वदिथानो हाथो सुरेन्द्र पडुरथो हातो, दक्षिणदिथानो नागेन्द्रोऽग्रे उकाओ हातो, पश्चिमदिथानो हाथो असुरकुमारेन्द्रना हाथभा हातो न्यादे उत्तरदिथानो हाथो सुवर्णकुमारेन्द्रना हाथभा हातो. (सू० ७६)

टीकाનો अर्थ—आव्या पछी ते योसठ इन्द्रोऽग्रे देवोऽग्रे अने देवीओऽग्रे भगवान् महावीरनो दीक्षा-महोत्सव उज्जयवानो आरंभ कथो. चौटां चौटां ढोल वागवां हाथा, लेरियोना नाह थवा हाथो, न आलरो अने श जेनो नाह थवा हाथो. मृदंग आदि, हाथो वालो वागवां हाथा. वीणा आदि तत (तंतु वाद्य). पटह विगेरे वितत, कासाना ताह आदि घन अने बांसुरी विगेरे शुपिर-ओ प्रभाखुनां यार प्रकारनां वाद्य वागवां हाथा. इधु पणु छि.—

“तुलं वीणादीकं ज्ञेयं, पितृतं पटशदिकम् ।

घनं तु कस्यतामादि, यथादि धुपिरं मतम् ॥१॥ इति ।

इत्येतेषु चतुर्विधेषु चतुर्धन्यायेषु आतोयेषु सायेषु च वाद्यमानेषु तथा-आनर्तक्येयेषु-समीचीननर्तक्येयेषु
नर्त्यमानेषु-नाट्यमानेषु, सर्वश्रुतिव्यभिचारादेन-सकलवाद्यव्यभिचारादेन, यथा-दीर्घेण रवेण-अन्वेनेन महत्या
कृद्गण-सम्पन्ना महत्या विभूत्या-मैत्रेयेन भरता इदयोच्छासेन-विशेषासाहेन, यथा-तु-वृहन्तं वीर्यकर-
निष्कम्पजय-वीर्यकुटीरसामोत्सवं कर्तुम् आरयन्त-आरम्भं कृतवन्तः, तस्या-शको वेवेन्द्रो देवराजः
शिविदा-‘पासकी’ इति मल्लिदां, विक्रोतीसुपुत्रेण सम्पन्वः । तत्र कीदृशीं शिविकां ? इत्याह-कवितु

“तुलं वीणादीकं ज्ञेयं, पितृतं पटशदिकम् ।

घनं तु कस्यतामादि, यथादि धुपिरं मतम् ॥१॥ इति ।

वीणा आदि को तुल, पट (डोल) आदि को पितृ, कसि से के ताल आदि को घन और
चकुली आदि को धुपिर माना गया है ॥१॥

उपम-उत्तम सैकड़ों नर्तक नाट्य करने लगे । समयत राज्यों के सङ्घों की ध्वनि से, महान्
सङ्घों से, मरती सम्पत्ति से, मरती विभूति से तथा महान् शक्ति उच्छास से समीपे वीर्यकर का महान्
वीर्यसामोत्सव करना आरंभ किया । पर इस प्रकार—

“तुलं वीणादीकं ज्ञेयं, पितृतं पटशदिकम् ।

घनं तु कस्यतामादि, यथादि धुपिरं मतम् ॥१॥ इति

वीणा आदिने तुल, पट (डोल) आदिने धुपिर मतम् ॥१॥ इति
घन अने न मरी आदिने धुपिर मानवाभां जान्यां से ॥१॥

संकोची स अन्वार्थ उत्प्रेषण-नर्तक नाट्य करवा जाय्वा, अमरुत वाद्ययंत्राणां शब्दोनां नादधी, अक्षान्

शब्दोनां, विपुल संपत्तिषु, विपुल विभूतिषु तथा अतिशय कवि क उच्चारणशी अर्थानि तीक्ष्ण-
प्रवेष्टन उच्चरवायेन अपरक इषीं ते आ शीते-

शब्द देवेन्द्र देवराज विनिष्क (अक्ष-पि)नी विभूति-शरी जेकर ३ ३०८ - ३०९ वी पासकी अन्वार्थी ते

गादिनानात्रिचित्रचित्रितां=इत्यन्वादिग्रहप्रकारकचित्रसहितां, हाराद्धहारोद्विभूषणभूषिताम्, तत्र-हारः=अष्टा-
दशसरिकः, अर्द्धहारः=नवसरिकस्तदादिभिर्भूषणैः भूषितां=शोभिताम्, मुक्ताफल-प्रकर-जालविवर्धमानशोभां
मुक्ताफलानि-मौक्तिकानि, तेषां प्रकराः-समूहाः, तेषां यानि जालानि=गवासास्तैः विवर्धमाना=वृद्धि प्राप्नुवती
शोभा यस्यास्ताम्, तथा-आलदनीयाम्=चित्तालादिनीम् प्रहादनीयाम्=परुषेण मनःप्रसादिनीम्, इशोभयत्र
बाहुलकात् कर्तारि अनीयप्रत्ययः, तथा-यमकृतभक्तिचित्राम्-यैः=कर्मैः कृता=विरचिता या भक्तिः=रचना
तथा चित्राम्=प्रदृष्टा, तथा-नानाविधरत्नमणिमयुखशिलात्रिचित्राम्-नानाविधाः=अनेकरूपकाराः ये रत्नमणयः-
रत्नानि=कैकेतनादीनि, मणयो=वैडूर्यादयः, तेषां ये मयूखाः=क्रिस्ताः, तेषां या शिला=दीप्तिः, तथा विचित्राम्=
विचित्रवर्णांम्, तथा-नानावर्गगण्डापताकारिमण्डिताग्रशिलाराम्-नानावर्गाः=अनेकवर्णा या गण्डाः पताकाश्च,
ताभिः परिमण्डितं=मुशोभितम् अग्रशिलरं=शिलराग्रभागो यस्यास्ताम्, मध्यस्थितसपादपीठसिंहासनं-मध्यस्थितं
सपादपीठं=पादपीठसहितं सिंहासनं यस्यास्ताम्-एवाटशीम् एकां महतीं पुरुषसहस्रबाहिनीं=सहस्रसंख्यपुरुषवहनीयाम्,
इह बाहुलकात् कर्मणि निमित्तयः, चन्द्रप्रभा-तन्नाम्नीं शिबिकां विस्तरोति=वैक्रियसक्योत्पादयति, विकृत्य=

निर्माण किया। वह पालकी कैसी थी, सो कहते ह-ठापी घोंड़े आदि के बहुत प्रकार के चित्रों से युक्त
थी। हार (अष्टारह लड़ों का), अर्द्धहार (नी लड़ों का) आदि भूषणों से भूषित थी। मोतियों के समूहों
के जालों (गवासों) से उसही शोभा बढ़ रही थी। चित्र में आनन्द उत्पन्न करने वाली और अतिशय
मानसिक आह्लाद उत्पन्न करने वाली थी। कमलों द्वारा की गई रचना से अनुपम थी। अनेक प्रकार के
कैकेतन आदि रत्नों तथा वैडूर्य आदि मणियों की किरणों की दीप्ति से जगमगा रही थी। निम्न रंगों के
घंटाओं और पताकाओं से उसके शिलर का अग्रभाग सुशोभित था। उसके बीच में पादपीठ सहित
सिंहासन रखवा था। इस प्रकार की एक बड़ी हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य चन्द्रप्रभा नाम की

पालथी डेवी હતી તે કહે છે-તે હાથો, ઘોડા આદિ ઘણાં પ્રકારનાં પ્રતીકોવાળી હતી. અઢારસરો હાર અર્ધ હાર
નવસરો હાર આદિ અભ્યુષણોથી શોભાયમાન હતી. ચોત્તીઓના સમૂહોથી તેના ગોળોની શોભા ખૂબ વૃદ્ધિ પામતી
હતી. ચિત્રમાં આનંદ ઉત્પન્ન કરનારી અને અતિશય માનસિક આહ્લાદ ઉત્પન્ન કરનારી હતી. કમળો વડે ફરવામાં
આવેલ રચના વડે તે અનુપમ લાગતી હતી. અનેક પ્રકારના કકૈંતન, આદિ રત્નો તથા વૈડૂર્ય આદિ મણીઓનાં
કિરણોનાં તેજથી અમમગી રહી હતી. વિવિધ રંગના ઘંટ અને પતાકાઓથી તેના શિખરનો અગ્રભાગ શુષોભિત હતો.
તેની વચ્ચે પાદપીઠ સાથેનું સિંહાસન ગોઠવેલું હતું. આવી એક હજાર પુરુષો વડે ઉચકી યાત્રા તેવી અન્દ્રપ્રભા

बलीन्द्रौ, नागकुमारेन्द्रौ-धरण भूतानन्देन्द्रौ, सुपर्णकुमारेन्द्रौ वेणुदेववेणुदालिनामानौ च, एते पद् भवनपतीन्द्राः, तेऽमी क्रमेण उद्भवन्ति। तत्र-शिविकासुदुवहस्तु सुरेन्द्रा-सुरकुमारेन्द्र-नागकुमारेन्द्र-सुपर्णकुमारेन्द्रेषु मध्ये सुराः तां=श्रीवीराभिष्ठितां शिविकां पूर्वदिशि=पूर्वादिभागावच्छेदेनोद्भवन्तीत्युत्तरेण सम्बन्धः, नागकुमारेन्द्रौ-धरणभूतानन्देन्द्रौ, दक्षिणस्यां दिशि=दक्षिणादिभागावच्छेदेन तां शिविकासुदुवहतः, असुरकुमारेन्द्रौ-चमरवलीन्द्रौ अपरदिशि=पश्चिमदिभागावच्छेदेन तामुद्भवतः, सुपर्णकुमारेन्द्रौ-वेणुदेव-वेणुदालिनामानौ उत्तरदिशि=उत्तरदिभागावच्छेदेनोद्भवतः ॥ सू०७६ ॥

मूलम्-तए गं ते मणुया सुरिदा असुरकुमारिदा गांगकुमारिदा सुवणकुमारिदा य तं सिबियं उव्वहमाणा उत्तरखत्तियकुंडपुरसंनिवेशस्स मज्झमज्जेण निगच्छत्ति निगच्छत्ता जेणेव गायसंढे उज्जाणे तेणेव उवा गच्छंति, उवागच्छत्ता इसिरयणिप्पमाणं अच्छोप्पेणं भूमिभागेणं सणियं पुरिससहस्सवाहिणिं चंदप्पहं सिबियं ठवेंति। तए गं समणे भगवं महावीरे ताओ सिबियाओ सणियं२ पच्चोयरइ, पच्चोयरित्ता सीहासणवरे पुव्वाभिमुदे संनिसण्णे। तओ पच्चा उत्तरपुरत्थिमे दिसीमाए उवागच्छइ, उवागच्छत्ता हारद्धाराइयं सव्वालंकारं ओमुयइ।

तए गं वेसमणेदेवे जुंत्तायपडिए समणस्स भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणे सेयवत्थे आभरणा-लंकारां पडिच्छइ ॥ सू०७७ ॥

धरण और भूतानन्द, नामक नागकुमारेन्द्र, वेणुदेव और वेणुदालि नामक सुपर्णकुमारेन्द्र-ये छह भवनपतियों के इन्द्र क्रमशः वहन करने लगे। शिविका को वहन करने वाले सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों, नागकुमारेन्द्रों तथा सुपर्णकुमारेन्द्रों में से सुरेन्द्र सौचमार्गिदिस वीराभिष्ठित शिविका को पूर्व दिशा की तरफ से वहन किये, भूतानन्द नामक नागकुमारेन्द्रो पश्चिम दिशा की तरफ से, धरण और असुरेन्द्र चमर वलि दक्षिण की तरफ से वहन किये और वेणुदेव तथा वेणुदालि नामक दोनों सुपर्णकुमारेन्द्र उत्तर की ओर से ॥ सू०७६ ॥

अने भूतानंद नामना नागकुमारेन्द्र, वेणुदेव अने वेणुदालि नामना सुपर्णकुमारेन्द्र-अये छ भवनपतियोनां धुन्द्रे कभयः पडन करवा लाग्या. पावणीने उपाडनार सुरेन्द्रो, असुरेन्द्रो नागकुमारेन्द्रो, तथा सुपर्णकुमारेन्द्रोभांथी सुरेन्द्रे प्रभुनी ते पावणीने पूर्व दिशा तरक्ष्णी उपाडी नागकुमारेन्द्रे पश्चिम दिशानी तरक्ष्णी, धरखु अने भूतानंद नामना असुरकुमारेन्द्र दक्षिण तरक्ष्णी अने वेणुदेव तथा वेणुदालि नामना अने सुपर्णकुमारेन्द्रे छ तरनी तरक्ष्णी प्रभुनी पावणी उपाडी ॥ ७६ ॥

छाया—उतः मलु वे मनुजाः सुरेन्द्राः अमरकुमारोन्त्री नागकुमारोन्त्री सुपर्णकुमारोन्त्री च तां शिबिकां मुदपरन्तः उतासविषयिष्यदुपुरसनिवेष्टस्य मय्यमयेन निर्गच्छति निर्गत्य यत्रैव श्रातपञ्चमुपानं तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागस्य पितृनिमज्जाम् असृष्टे भूमिभागे स्नैः स्नैः पुरासस्रवारिनीं चन्द्रमर्मां शिबिकां स्थापयन्ति। ततः तलु भयणो मगवान् मशारीरः तस्याः शिबिकायाः स्नैः स्नैः मत्स्यवतरति, मत्स्यवतीर्यं सिंहासनवरे पूर्वाभिमुखः संनिपठ्यः। ततः पश्चात् मगवान् उधरगौरस्त्ये दिग्भागे उपागच्छति, उपागस्य शारादेशारादिकं सर्वान्मङ्गारयमुञ्चति।

उतः तलु वैशक्वो वेरो जन्तुपातं पवितः भयमस्य मगवतो मशारीरस्य हंसकस्यो वेतवक्त्रे आमरणान्द्वारात् प्रतीच्छति ॥ ३०७७ ॥

मूक का अर्थ—‘तए के’ इत्यादि—तस्यभात् वे मनुष्य, सुरेन्द्र, दोनो अमुरेन्द्र, दोनो नागकुमारोन्त्री और दोनो सुपर्णकुमारोन्त्री उत शिबिका को चान करते हुए उधरस्रविषयिष्यदुपुर संनिवेष्ट के नीचोबीच से निकले। निष्ठानर जहाँ श्रातपञ्च उपाज या रौ पर्वच कर उन्होंने एक साथ से कुछ कम पारती के ऊपर भीरे-भीरे पुरासस्रवारिनी चन्द्रमर्मा शिबिका को स्थापित किया। तब भयम मगवान् मशारीर तब शिबिका से पीरे-भीरे नीचे उतरे। उतर कर भेष्ट सिंहासन पर पूर्व की ओर मुल करके बिराजे।

तस्यभात् मगवान् उ तूर्पर्वं दिग्भा=दिशान कोण में पवारे और पवार कर शार, अर्वाहार भादि सुव मर्मकारों को उतारने लगे। तब वैमक्यदेव, जैसे कोई जन्तु उड़ता हुआ आपका हो-सरसा आ पहुँचते हैं

मूकने का अर्थ—‘तए के’ इत्यादि. त्पार आह मनुष्य-अमुरेन्द्रो भी पक्षी प्रजुनी आ पाछभी, उत्तर कृत्रिय उधर अतिवेद्यनी भयमर्मांभी नीजरी न्या ‘श्रातपञ्च’ दिशान कोण त्पां ते पाछभी पछोबी. पछोन्मा पछी धरतीभी कोउ मशारीर मगवान् उतः, आ पाछभीने स्थापित हस्वामां आनी आ पाछभीजु नीम ‘चन्द्रमर्मा’ संतु पाछभी श्रोतय पछी प्रजु पीर भीर पाछभीभाभी नीचे उतरीने जेष्ठ दिग्भासन उधर पूर्व तश्च मुज सभोने निधान-न्या.

त्पाभी उरि, मगवान् दिशान प्रजुमां पधावो, अद्वार सोरा, नव सोरा क्षार आदि सब अक्ष क्षार। जने आक पवेने उपास्य काम्। ते नभने वेमक्यदेवे, उदतां नृपुनी आहक आनी पछोन्मा पछी धरतीभी नीचे उतरीने जेष्ठ दिग्भासन उधर पूर्व तश्च

टीका—‘तए णं ते मणुया’ इत्यादि—ततः खलु ते=पूर्वोक्ताः मनुजाः सुरेन्द्राः असुरकुमारेन्द्रौ नागकुमारेन्द्रौ सुपर्णकुमारेन्द्रौ च तां=श्रीवीराधिष्ठितां शिविकाम् उद्वहन्ताः=स्कन्धोपरि धारयन्तः—स्थापयन्तः उत्तरक्षत्रियकुण्डपुरनगरस्य मध्यमध्वेन निर्गच्छन्ति=निःसरन्ति, निर्गत्य=निःसृत्य यत्रैव=तस्मिन्नेव स्थाने ज्ञातव्यम्—तदाख्यम् उद्यानम्—अस्ति तत्रैव=तस्मिन्नेव स्थाने उपागच्छन्ति, उपागम्य—ईषद्विप्रमाणम्=इस्त-प्रमाणात् किञ्चिन्नूनं यथास्यात्तथा तथा शिविकया ‘अच्छोत्पेण’—अस्पृष्टे=असंलग्ने भूमिभागे=पृथ्वीभागे सति शनैः शनैः=मन्दं मन्दं पुरुषसहस्रवाहिनीं तां चन्द्रप्रभां शिविकां स्थापयन्ति, ततः=शिविकास्थापनानन्तरं खलु श्रमणो भगवान् महावीरः तस्याः शिविकायां=शिविकामध्यात् शनैः शनैः प्रत्यवतरति, प्रत्यवतीर्य सिंहासनवरे=श्रेष्ठसिंहासने पूर्वोन्मुखः सन् सन्निषण्णः=उपपिष्टः। तत् पश्चात् भगवान्=श्रीवीरप्रभु उत्तर-

और भगवान् के आभरणों तथा अलंकारों को हंस के समान उजले वस्त्र में ले लिये ॥ सू०७७ ॥

टीका का अर्थ—तत्पश्चात् वे मनुष्य, सुरेन्द्र, दोनों असुरकुमारेन्द्र, दोनों नागकुमारेन्द्र, एवं दोनों सुपर्णकुमारेन्द्र श्रीवीर भगवान् द्वारा आश्रित पालकी को वहन करते-कंयों पर धारण करते हुए उत्तरक्षत्रियकुण्डपुर नगर के बीचोंबीच होकर निकले। निकल कर जहाँ ज्ञातव्य नामक उद्यान था, वहीं आये। आकरके एक हाथ से कुल कम ऊपर-अधर में, धीरे-धीरे, उस पुरुषसहस्रवाहिनी (हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य) चन्द्रप्रभा पालकी को उठराया। तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर उस शिविका में से धीरे-धीरे उतरे। उतर कर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा में मुख करके विराजमान हुए।

आश्वघोषोने हंसनी पांथ सभान सङ्केह आस्ता जेवा उबणा वस्त्रमां जीवी वीथां. (ध०७७)

टीकानो अर्थ—प्रभुनी पादधीने उपाडवी जे पषु जेक आडोबाग्य छि; जेम भानी देव-भनुष्यो हथेन-भन्त भनी तेने पोताना अबे उथकता हता ते बादे वज्जनवाणी पादधीने, पोतानी कांध उपर धरने, थोडेरना भेध्य बागभांथी सरधस इये बर्य जता हता ते वथतनुं हस्य अनुपम आने आदौकिं हतुं. पादधीने त्हांना ‘सातण्ड’ नामना उद्यानमा बर्य जवामां आवी.

भगवान् तो स्वयंप्रभु हतां; तेथी तेभने केह गुरुनी सभ्भे छे द्देषा देवानी बडर न हती, तेथी पोते भते पादधीभांथी नीथे वतरी पूर्व दिशाना मुखे रहेवां सिंहासन उपर भेठां.

पीरस्ये=उत्तापुर्णोन्तराले दिग्भागे=ईशानकोणे उपास्यकृति, उपास्य इति शब्दोत्तरादिभ्यः सर्वानङ्कारम्
अबुधवि=भक्तारपति ।

ततः सत्पुत्रैर्भक्त्यो देवः जन्तुपातं परितः-जन्तुविषयं परितः=सहस्राऽऽगतः सन् ईसलक्षणो=ईसवदु
उज्ज्वले नेत्रस्यै नेत्रद्वयस्यै भयस्य अगतौ महावीरस्य आभासात्प्रकाशान् प्रतीच्छति=प्रकाशति ॥ सू०७७ ॥

मृगम्--नेमं काष्ठेणं वेणं समर्थं जेतुं हेमतामं पश्यमासे एवमे पश्ये ममासिरपङ्कले, तस्मै वं
ममासिरपङ्कलस्य दसमीयं तिरीक्ष्यं सुवर्णं विपश्ये, विजयणं सुदुषेण, इत्युच्यते नक्तनेषं वदणं जोगमवगण्यं
प्राद्वर्णमिणीयं छायाय विपद्याय पीरितीयं छट्टेन मयेवं अपाणयणं स्मार्त्तं महावीरं दाहिणेनं इत्येवं दाहिणं, वामेनं
इत्येवं वामं पश्यद्विजयं क्षोणं करिणं सिद्धामं नमोकारं करैः, करिणा "सर्वं मे शक्रणिजं पावकम्" ति वदु
सीरिक्तीयं सामाद्यं चरितं पश्यिष्यः । तं समयं च वं देवासुरपरिसा प्रणयपरिसा य आच्छेयलविचित्रयाविब
चिद्वा । तस्य से सौं देविने देवराया जंतुसायपटिणं समनस्य अगतौ महावीरस्य केसाई वयरायणं
पाठेनं पटिच्छा, पटिच्छिन्ना लीरीयसायार साहस । वं समयं च वं समयं सामाद्यं चरितं पश्यिष्यः
तं समयं च वं अगतौ वदमायस्य चट्टये=अपस्वन्नागे समुपगते ।

सत्यवाद् मगवान् पीरं महुं तथर-पूर्वं विद्याके सन्तराल में-ईशान कोष में-पयारे) पयार करे पार, अर्ध
हार आदि समस्त अर्धकारों को उठारने लगे । तब वैभक्त्य येन उठते जन्तु की तरह 'अवानक' ॥ आपसुंचे
और उन्होंने ईस के समान उनसे भेद प्राप्त में उन भक्तकारों को छेलेलिये ॥ सू०७७ ॥

उचरन्ते सद्यश्चरं घातान् न कृत्ये, पश्य प्रज्वलने कृत्ये तेभी तेभ्यो दोहांनी सभक्त सङ्गं अलक्ष्मीं उवासी
नाभ्यां । छिन्ते तन्नाम सद्यश्चरं-सिद्धिशीघ्री-अग्नि निरेशेन्य तुष्टो पश्य छिन्ते अन्धस्य कोष छि, तेषां पश्येको न स्या
भाटे घातानी नष्ट सभक्त तेनैव त्वाय न कृत्ये ? कोयो अपाठः अवापया भाटे न अजयाने धारस्य इदेव आलक्ष्य
यसो विभेद दोहसमुपगनी सभक्त उवाचं

आ अलक्ष्मीं आनन्दीकृत्य न कृत्यं क्षाप्य के आनन्दीनी सभक्त सङ्गं न शक्तिनी अक्षरानी आ वात कृती
आ आनन्दवत् । ते देवी कृत्यं नेतुं प्रभुने आपस्यो उवाचया आक्षेपं के कोये उवाचं न तु के पक्षीनी मार
अक्षान्तं देवस्यैव आनन्दी पश्येत्तया अने कृषी पश्य आनन्दी उवाचया अनेत नक्षत्रां प्रभुनी अलक्ष्मीने लीली
लीली । (सू०७७)

तए णं सकण्णमुहा चउसद्धीवि इंदा सन्वे देवा य देवीओ य भगवं “जयउ भयवं! पालउ समणधम्मं, नासउ सुक्कञ्छणेण अट्ठविहकम्मसत्तु, पराजयउ रागदोसमल्लं, आरोहउ मोस्खसोहं” इवाइरूवेण अभियणंदमाणाऱ अभियुणमणार आवासे जयञ्छणिं कुणमाणारजामेव दिसि पाउब्भूया तामेव दिसि पडियया । तएणं सपणे भयव महावीरे मित्ठणाइणियगसयणसंवंधिपरियणं पडिविसजेइ, सयं च इमं पयाखवं अभिगहं अभिगिण्हइ—“जमहं वारसगासाइं वोसट्ठकाए चचदेहे जे केइ दिव्वा वा माणुस्सा वा तेरिच्छिया वा उवसग्गा समुप्पज्जिस्संति ते सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि तित्तिव्विस्सामि अहियाइस्सामि नो णं कस्सवि साइज्जं इच्छिस्सामि” चि । ॥पृ०७८॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये यः स हैमन्तानां प्रथमो मासः प्रथमः पक्षः मार्गशीर्षवर्तुः, तस्य खलु मार्गशीर्षवर्तुलस्य दशम्यां तिथौ सुव्रते दिवसे विजये मुहूर्ते इत्युक्त्याभिः नक्षत्रेण चन्द्रे योगमुपगतं प्राचीनगामिन्यां छायायां व्यक्तायां पौरुष्यां पठेन भक्तेन अपानकेन भगवान् महावीरः दक्षिणेन दक्षिणं वामेन वामं पञ्चमुष्टिकं लोचं कृत्वा सिद्धानां नमस्कारं करोति, कृत्वा ‘सर्वं मे अकरणीयं पापकर्म’ इति कृत्वा सिंहदृष्ट्या

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि—उस काल और उस समय में, जो हैमन्त का प्रथम मास था, प्रथम पक्षवाड़ा था अर्थात् मार्गशीर्ष का कृष्णपक्ष था, उस मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि में, सुव्रत दिन में, विजय मुहूर्त में, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, छाया जब पूर्व की ओर जा रही थी, और जब दिन का एक पहर शेष रह गया था, ऐसे समय में, निर्जल पष्ठभक्त (बीबीहारवेला) के साथ भगवान् महावीर ने, दाहिने हाथ से दाहिनी तरफ का और बाँये हाथ से बायी तरफ का पंचमुष्टिक लोच करके सिद्धों को नमस्कार किया । नमस्कार करके ‘मेरे लिए समस्त पापकर्म अकरणीय है’

भक्तो अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि. ते काले अने ते समये हैमन्त ऋतु (शियाणा)ता प्रथम मासवृं प्रथम अडवाडियुं यात्री रह्युं इतुं. ओ भागथर (शुभराती आरतक) मास इतो अने वहीनुं पणवाडियुं इतुं. आ भागथर (शु आरतक) मडिताननी वनी इथमना सुव्रत द्विवसे, विजय मुहूर्ते, उत्तरा श्रावणुनी नक्षत्रने। यं द्रभाने। योय थतां छाया न्यादे पूर्व दिशा तरफ दणी रही ते वण्ठे (सांजना पडोदे) न्यादे द्विवसनो ओइ पडोर आडी रह्यो इतो ते समये छडने। उपवास करीने, नमस्कार करीने, दाहिनी तरफना वाणनुं पंथसुण्डि दीव्य करीने निद्व कर्मावानने श्रीअडवावीर देवे नमस्कार कथो. नमस्कार करी कहुं हे “ इयेथी डाए पणु प्रभारनां

सामायिकं चारित्रं प्रतिपद्यते । तस्मिन् समये च लख देवायुरपरिपत् मनुष्यपरिपत् च आठेस्मयविषयशेव सिद्धति । तदा लख स इको देवेन्द्रो देवराजो जन्तुषां पतितः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य केशान् वधमये स्याछे मनीष्यति, प्रदीप्य तीरदसागरं सहरति । यस्मिन् समये च लख भगवान् सामायिकं चारित्रं प्रतिपद्यते, तस्मिन् समये च लख भगवतो वर्षमानस्य चतुर्थे मनपर्ययज्ञानं समुपपन्नम् ।

ततः लख पाद्मप्रसूतामृतपुष्टिरीन्द्राः सर्वे देवाश्च देव्याश्च भगवन्तु “भवतु भगवन् ! पालयतु श्रमणपरमं, नाशस्तु शुक्ररूपायेन भट्टविषकर्मजघ्नून्, पराजयतां रागद्वेषमहाप्र, आरोहन् मोक्षसौपयम्” इत्यादिकथेन अभिमन्दयन्तु २ अभिमुदुस्तः २ आकाशे जयध्वनिं कुर्वन्तः, यस्या एव विश्वः प्रादुर्भूताः रामेव विश्वं प्रतिगताः ।

इत प्रकर कर कर सिंह-दुति से सामायिक चारित्र श्लाकार किया ।
उस समय निम्न ही धुरों की परिपद, अशुरों की परिपद और मनुष्यों की परिपद और मनुष्यों की परिपद चित्रकित्त के समान रह गई । तब वह एक देवेन्द्र देवराज कचानक आकर भयभ भगवान् महावीर के केशों को वधमय बाल में लिये और तीर सागर में उर्ने प्रसिद्ध कर दिये । जिस समय भगवान् ने सामायिक चारित्र श्लाकार किया, उसी समय भगवान् वर्षमान स्वामी को चौथा मनपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया ।

तस्मात् एक सौरा प्रसिद्ध इन्द्र, सब देव और देवियों भगवान् का अभिस्तन्दन करने लगे- ‘भगवन् ! जयवंता हों, भयभ धर्म का शासन करें, मुक्तलोकान से आठ प्रकार के कर्मधनुषों का विनाश

‘धर इत्थं भवत भट्टे (अशक्यं) बोध नही” आभ ली तेभसे सिद्धदुतिजी आभाविह आदिन आदिहार हेतु”
आ समये, भूरी-आभुरा आने मनुष्यों की श्रेणी-जोनी जोटली लयी अभापट बधुं कटी है, हेतु हेतुन अक-
बनीय छे ने शाति एव अण्णं बन्धुली कटी, बि तोया आणेपित बिन्नेली भाइके, इतल्ल अर्ध शोटाड नयेव नेवी
अभन आने हेसेनी श्रेणी बन्धुली कटी आनेने आनीने भजयाननां हेतुने कज्जम बाणथां लीली बीया आने ते
हेतुने श्रितधनुषां पधसन्था ने धमये भजयाने आभाविह आदिन आदिहार हेतु” ते वधते, तेभने आभ भजयाननां
उत्तस वधु

सेम जानाम्=रेमन्तःसुसन्धिचिनां चतुर्णां मासानां मध्ये प्रथमः-आषाढः, मासः-मार्गशीर्षकस्य मासः, प्रथमः पक्षः
 मार्गशीर्षपक्ष-मार्गशीर्षकृष्णपक्षः, तस्य सत्र मार्गशीर्षपक्षस्य दशम्यां त्रिंशत्, सुयते=दशम्ये दिवसे=विने
 चित्रये=चित्रपदानि ग्रहते=शाल्वविशये, इत्येताभिः मस्येभ्यः=स्तोत्रलिखितोचनसंभवे=उचराफास्युनीनलभ्ये
 सह योग्यपुण्यते=साम्यं यो वने सति प्राचीनगामिन्यां=पूर्वदिग्गमगामिन्यां छायायाम्-अपराह्णकाले व्यक्तायां=
 सप्तायाम्-अश्विष्ट्यायां चतुर्थपक्षरक्ष्मायां पौर्णमासी भयानकनन्जलपानरहितेन पठेन मन्त्रेण=उपवासद्वयरूपेण
 भगवान् महावीरः इतिनेन इतिनेन दक्षिण=दक्षिणमागस्य चायेन=वामपक्षेन वाम=वाममागस्य पञ्चमुष्टिकं,-
 माधविषादादि क्षत्तंसास्वल्पम् अक्षणीयम्=अक्षणीयम् इति कृत्वा=इति इ-परिहया कृत्वा मस्यास्यान-परिहया
 मस्यास्याप तिरिहत्या सामाजिक चारित्रं प्रतिपद्यते=वीकरोति=शुद्धाति। तस्मिन् समये च सत्र वेवापुरपरि

प्रथम मास मार्गशीर्ष या, प्रथम पक्ष-मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष या, उस मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की दशमी तिथि में, सुयत
 नामक दिन में, विषयनामक शुद्ध में, इत्येतन्न से उपलब्ध उचरा नक्षत्र अर्थात् उचराफास्युनी नक्षत्र
 के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, छाया जब पूर्व दिशाकी ओर जा रही थी, अर्थात् अपराह्न के समय में,
 महावीरने दक्षिण हाथ से शरीर की ओर का और बायें हाथ से बायीं ओर का पंचमुष्टिक लोच कर के सिद्धिको
 नमस्कार किया। नमस्कार करके 'मेरे किये समयत प्रमादितप्रातः कादि पाप-सावधकर्म शक्य है' इस प्रकार

(शुभरातीर्षां शस्त्रक) आहतो भूतो, प्रथम पक्ष को-आश्विन-शस्त्रक) आश्विन शुभपक्षनी (वही) इसम दती, सुयत
 नामका जो शुभ दिवसना विशेष विषय नामना उपर्युक्तों का दत्त नक्षत्रकी उपलब्धित उत्तम नक्षत्रभा-कोटि है उत्तम
 शस्त्रकी नक्षत्रनी साथ शस्त्रनी योम शर्त्ता पक्षभागे अथवा पूर्वदिशायां पडतो भूतो त्वारे कोटि है उत्तरा-
 नक्षत्र दिवसने कोटि पक्षोरे आसी भूतो त्वारे कोटि है दिवसनां योमा पक्षोरे निर्णय पक्षभाजानी (अहनी) साथ (के
 दोन्य शरीरने आश्विन शस्त्रक बाण पक्ष शुभरी कोटिने) शिख परमात्माकोने नमस्कार करीने नमस्कार करीने "भावे
 भये सभ्य प्रमत्तचित्त आदि अथवा प्रभुनां पाप-सावधकर्म शक्य है" इस प्रकार

षट्=देवासुरसभा, मनुजपरिषत्=मनुष्यसभा च आखेल्यविचित्रभूता इव=अङ्कितचित्रवत् तिष्ठति । ततः=श्रीवीर-
प्रभोश्चारित्रग्रहणानन्तरं, खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजः जन्तुपातं पतितः=जन्तुरिव पतितः-सहसा समागतः
श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य केशान् वज्रमये=वज्रमणिनिर्मिते स्याष्टे प्रतीच्छति=गृह्णाति प्रतीप्य=गृहीत्वा तान्
केशान् क्षीरेदसागरं संहरति=नयति । यस्मिन् समये च खलु भगवान् श्रीवीरः सामायिकं चारित्रं प्रतिपद्यते=
गृह्णाति, तस्मिन् समये च खलु भगवतो वर्द्धमानस्य चतुर्थ=मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलरूपेषु पञ्चसु ज्ञानेषु
चतुर्थं मनःपर्ययज्ञानं समुत्पन्नम् ।

ततः खलु शक्रप्रभुत्वाश्चतुष्टयिन्द्राः सर्वे देवाश्च देव्यश्च भगवन्तं=श्रीवीरप्रभुं “हे भगवन् ।

इ-परिज्ञा से जानकर और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से त्याग कर निंद्युक्ति से सामायिक चारित्र अंगीकार किया । उस
समय देवों और असुरों का समूह तथा मनुष्यों का समूह चित्रलिखित के समान स्तब्ध रह गया ।

श्रीवीर प्रभु के चारित्र-ग्रहण के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज अचानक ही आ पहुँचे और उन्होंने
श्रमण भगवान् महावीर के केशों को हीरे के थाल में लेकर क्षीरसागर में रख दिये ।

जिस समय भगवान् ने सामायिक चारित्र को अंगीकार किया, उसी समय भगवान् वर्धमान को
चौथा, अर्थात् मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल रूप पाँच ज्ञानों में से चौथा मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न होगया ।

तब शक्र आदि चौंसठ इन्द्र सभी देव और देवियाँ श्रीवीर प्रभु का इस प्रकार अभिनन्दन करने लगे-

प्रत्याख्यान परिज्ञाथी त्याग करीने सिद्ध वृत्तिथी सामायिक्यारित्र अंगीकार कथुं. ते वभते देवा, अयुरो तथा मनु-
ष्येनो। सभूष चित्रवत् स्तब्ध बनी गये।

प्रभुको चारित्र-ग्रहण करतां न शक्य देवेन्द्र देवराज आगण आव्या अने तेभल्ले श्रमसु भगवान् भक्ष-
वीरना देखेने रत्नता थाणमा जीली सीधा अने विनयपूर्वक क्षीर सागरमां यधराव्यां

ने समये भगवाने सम्भ्रष्ट चारित्रने अंगीकार कथुं. ते वेणको भगवान् वर्धमानने चोथुं ओटले हे मति,
श्रुत, अवधि, मनःपर्यय अने देवण को पांथ ज्ञानोभांथी चोथुं भन पर्ययज्ञान उत्पन्न थयुं. शक्य आदि चोसठ इन्द्र
सधणां देव अने देवीकोको श्रीवीर प्रभुने आ रीते अभिनन्दन करवा लाग्या. “भगवन् ! आपनो नय डे। श्रमसु-

मवान् नयतु=सर्वोत्कर्षेण वर्तताम्, भ्रमणार्थम्=साधुधर्मं प्राप्तुम्, अष्टविषयकर्मशून्यम्=अष्टप्रकारकर्मरूपशून्यं
शुद्धच्यवानेन नाशयतु=दूरीकरोतु, रागद्वेषमहं=रागद्वेषरूपमहं पराजयताम्, तथा=योसौसर्वम्=सुक्तिरूपमासादम्
भारोतु=भारही भक्तु” इत्यादिरूपेण विधोत्साजनकचनेन अभिनन्दयन्तः २=पुनः पुनरभिनन्दयन्तः, तथा
अभिदुर्वन्तः २=पुनः पुनः सर्वतो र्वर्णयतः आकाशं नयध्वनि=अयकदं कुर्वन्तः यस्या एव विशः=योमेव विश
माश्रय प्रादुर्भूताः=प्रकटीयूताः तामेव विशं प्रतिगताः=प्रतिनिवृत्ताः।

ततः=तत्कालमिति गमनानन्तरं सख्यं भ्रमणो योगवान् महावीरः मित्र-ज्ञाति-मित्रक-स्वजन-सम्बन्धि-परि
जन, तत्र-मित्राणि=मुहुरदादयः, शासन=संज्ञातयः, निजका=स्वकीयाः पुत्रादयः, स्वजना=परिवृत्तादयः, सम्म
न्निनः=दुषयुषीणां शत्रुरादयः, परिजना=आसीदासादयः, इत्येषां समाशरस्त्वम् प्रतिविजयति निवेदयति स्वयं
च इममवदूषणम्=अनुपदं वक्ष्यमाणम् अभिप्रवृत्तम्=नियमम् अमिश्रवृत्ति=सर्वतोभावेन स्वीकरोति “यत्-अहं द्राव्यं

‘मगवान् सर्वोत्कृष्टं हो कर शौं’। साधुधर्म का पालन कीप्रिए, आठ प्रकार के कर्मरिपुओं को शुद्धच्यवान से
दूर कीजिये, राग-द्वेषरूपो मझों का मान-मर्दन कीजिए, सुक्ति-भार पर आरोहण कीजिए।’ इत्यादि रूप
स विधोत्साहजनक वचनों से पुनः पुनः अभिनन्दन तथा स्तवन करते हुए, आकाश में जय-जयकार करते
हुए, जिस दिशा से प्रकट हुए व उसी दिशा में चले गये।

अब आदि के चले जाने के पश्चात् भ्रमण भगवान् महावीरने मित्रजनो, सजातियो, निजजनो (पुत्रा-
दिको), स्वजनो (काका आदिको), संबंधीजनो, (पुत्र-पुत्री आदि के शत्रु आदि नावेदारो) तथा परिजनो
(आसीदास-वर्गार) का विसर्जन किया और स्वयने इस प्रकार का अभिप्रवृत्त-नियम प्ररण किया-“मैं वारह

अथानु भवाध' पाठन करले आठ प्रकारवा अर्थरिपुजोने शुद्धच्यवान वटे इर करले, राजवध इपी अकरोन्यां सानु
अर्शन इल्ले सुक्तिमहेड पर आरोहण करले” इत्यादि प्रकारे विचर्या अस्ताक उत्पन्न कर-पर वचनोपी इपी इरीबी
अभिनहन अने अभनसेनी कथनाह पैकारता ने विद्यायापी प्रकट कर्वा कर्वा तेज विद्यायां पाठन यावत्वा जथा
उन्प्रशान वजेर यावत्वा जथा पपी सख्य काजवान अकरोपीरे मित्रजनो, स्वजनीजो, निजजनो (पुत्रादिको)
परजनो (काका आदिको) संबंधीजनो (पुत्र-पुत्रीना सखा आदि सजा) तथा परिजनो (आश-दासी वगैर)पी सुख
पदम अने येते न प्रकारेण अतिअन-नियम जथा इ- इ बार वरं सुपी अभिप्रवृत्त करले. उ-अभिमानता

वर्षाणि व्युत्पष्टक्रमायः=कृतकायोत्सर्गः त्यक्तदेहः=परित्यक्तशरीराभिमानः मन् ये केचित् दिव्याः=द्यौः=स्वर्गः,
तद्वासिस्तुरगणोऽपि उपचाराद् द्यौः, तद्भवाः=देवसम्बन्धिनः, वा-अथवा, मानुष्याः=मनुष्यमनुद्भवाः=वा तैश्चाः=
तिर्यग्योनिसमुद्भवाः उपसर्गाः समुत्पत्स्यन्ते, तान्=उत्पन्नान् उपसर्गान् सम्यक्=मनोदाढ्येन सहित्ये=मयाऽभा-
वेन, संस्ये-क्रोधाभावेन, तितितिक्षित्वे दैन्याऽकरणेन, अद्यामित्ये-निश्चलतया, तथा-तदुत्सर्गसहनादिषु कस्यापि देशस्या-
ऽमुस्स्य मनुष्यस्य वा साहाय्यं=प्रतीकारकरणे सहायतां नो खलु एषित्यामि=अभिलषित्यामि । इति ॥श्रु०७८॥

मूलम्—तएणं ममणे भगणं मन्नारीरे इयेयाखुं अगिगहं अभिगिण्हिचा वोसदुत्ताए चत्तदेहे भुदत्तसेसे
दिवसे कुम्मारणांमं पट्टिए ।

तएणं सिरिवद्धमाणसामी जाव नयणपडगामी आसी ताव णंदिवद्वणपमुहा उम्मुहा जणा णियणिप-
ल्लोयणपुढेहिं पडुदरिसणांमं पिचमाणा पहरिसमाणा आसी । अह य पडु जहा तहा दिद्विसरणिओ विण्णक्किओ
जाओ तहा तहा दारिदाणं विव मव्वेसिं सोऽरिसहरिसो पणडुमारभीअ, गिम्हकालम्मि सरोरालं जलमिव हरि-
सोछासो सोसिउयुवाकमीअ, वारिविरहेण पफुल्लं कमन्नुल्लं विव मव्वेसिं हिययदुम्सहेण पडुविरहेण मल्लिणं
जायं, तमुज्जीविणं पव्वतो सोंडीरो सीयलमंदयुगंधिसमीरोसि भुयंगमसासायद, पुब्बं जाओ तद्विरलमदो=उच्च-
नंदणवणे तद्विरिसणकप्पतरुतले इद्धसिद्धीए आणंदब्बरीओ जायाओ ताओ सव्वाओ पडुविरहउच्चानलम्मि पण-
डुओ । पडुस्स दुस्सहो चिरहो चंदविरहो चगोरमिव, हियनिलायं सल्लमिव अत्तिले जणे रहिए करीअ । परिओ
चित्थरिएण फारेण पडुविरहंधयारेण आयल्लोयणेणु समाणेणु चि तत्थद्विया जणा भनयणा जाया, पडुणा समीहिणा
पडुपगासणीणा तत्थच्चा सोहा निव्वणदीवमिहगिहसोदेन नासीअ । पडुम्मि चिरहिए ममाणे पयंसि गल्लिए
नईणुल्लिमिव, रसे गल्लिए दल्लमिव जणमणो मल्लिणो संजाओ, जणनयणाओ फारा गरिगारा पाउमम्मि वुट्टि-

वर्षों तक कायोत्सर्ग किये, देहसमत्त्व का त्याग किये, देवों संबंधी, मनुष्यों संबंधी अथवा तिर्यचों संबंधी
जो भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन उत्पन्न हुए उपसर्गों को मानसिक दृढ़ता के साथ निर्भय भाव से सहन
करूँगा, बिना क्रोध के क्षमा करूँगा, अर्दीन भाव से सहन करूँगा, और निश्चल रह कर सहन करूँगा । उन
उपसर्गों के सहन करने आदि में किसी देव या मनुष्य की सहायता की अभिलाषा भी नहीं करूँगा ॥श्रु०७८॥

त्याग करीने देया, मनुष्यो अथवा तिर्य'चो सं'ंधी ले उपसर्ग (त्रास) उत्पन्न थये ते उपसर्गोने भानसिद्ध दृढता
साथे निर्भय भावथी सहन करीथ, क्रोध कथो बिना क्षमा करीथ, अर्दीन भावे सहन करीथ अने निश्चल रहीने सहन
करीथ. ते उपसर्गो नहिन करवा आदिभां डोअ पणु देव के मनुष्यनी सहायतानी छ'न्धा पणु नाई कइ." (स्०७८)

तथा तथा दक्षिणागमिव सर्वेषां सौत्कर्षद्वयः प्रणष्टुमारभत, ग्रीष्मकाले सरोवराणां जलमिव हर्षोद्भासः गोण्डु-
मुपाक्रमत, वारिविरेहण प्रकुलं कमलमिव सर्वेषां हृदयं दुःसहेन प्रभुविरेहण मलिनं जातम्, तदुज्जीमयितुं प्रवृत्तः
शौण्डीरः शीतलमन्दसुगन्धिसमीरोऽपि भुजङ्गमन्वासायते, पूर्वं याः तद्दीक्षामहोत्सवनन्दनवने तद्दर्शनकल्पतरुतले
इष्टसिद्ध्या आनन्दहर्षो जाताः, ताः सर्वाः प्रभुविरेहवडवानले प्रणष्टाः, प्रभोर्दुःसहो विरेहः चन्द्रविरेह-
अकोरमिव, हृदयनिखातं शल्यमिवाखिलान् जनान् व्यधितान् करोत, परितोः विस्तृतेन स्फारेण प्रभुविरेहान्धकारेण
आयतलोचनेषु सत्स्वपि तत्र स्थिता जना अनयना जाताः, प्राचीना समीचीना प्रभुप्रकाशनवीना तत्रत्या गोमा

नजरों से दूर होते गये, त्यों त्यों दरिद्रों के समान सबका उत्कर्षपूर्ण हर्ष समाप्त होना आरंभ होने लगा।
जैसे ग्रीष्म के समय में सरोवरों का सलिल सूखने लगता है, उसी प्रकार उनका हर्ष सूखने लगा। जैसे
पानी के बिना फूला कमल मुरझा जाता है उसी प्रकार सब का हृदय दुस्सह प्रभु-विरेह से मुरझाने लगा।
उसे ताजा करने के लिए प्रवृत्त हुआ, यह पवन शीतल मन्द और सुगन्धित होने पर भी सांप के भ्वास के
समान जहरीला प्रतीत होने लगा। भगवान् की दीक्षा के महोत्सवस्थी नन्दन कानन में, प्रभु के दर्शन
स्थी कल्पवृक्ष के मूल में इष्ट प्राप्ति से जो आनन्द की लहरें उत्पन्न हुई थीं, वे सभी वीरविरेहरूप वड-
वानल में भस्म हो गईं। चकोर जो जैसे चन्द्रमा का त्रियोग दुस्सह होता है, उसी प्रकार प्रभुका विरेह,
हृदय में चुमे हुए कौटे के समान सभी जनों की व्याध उत्पन्न करने लगा। चारों ओर फैले हुए प्रभु-
विरेह रूप सघन अंधकार के कारण वहाँ खड़े सभी जन बड़े बड़े लोचनों के विद्यमान रहते भी नयनहीन-

गया। तेम तेम दरिद्रोंनी समान स्वर्जनोना इयो ज्योछा थां लाज्यां. जेभ ठेनाणाना प्रभर तापभा सरोवरसुं पाखी
सुकाई जय छे तेम रनेहीजनोना. हर्ष सुकावा लाज्यो. पाखी विना जेभ कभणो। करमाई जय छे तेम प्रभु-
दशन विना सर्वना मन करमावा लाज्या. तेने विकसित करनारा पहेता भंडभंड शीतल अने सुगन्धित पवनो।
पथु तेजोने सर्पना श्वाससग विषभय लागता छेता.

दीक्षाभङ्गोत्सव इपी नंदनवनभां प्रभुदर्शनइपी कल्पवृक्षना भूलभां छुआसिथी जे आनंदनी दहरीआ। ठाती
छती ते भधी दहरीआ। वीरसगवानना विरेह इपी वडवानल-अशिम भणीने भाभ थइ गर्ह. चकोर पक्षीने जेभ
यद्रो। विरोग साढे छे तेम प्रभुने। विरोग सर्वजनोने साढवा लाज्यो. अने आ विरेह शल्यनी भाइक भूंयवा लाज्यो.
प्रभुविरोगने दीधे बोनेर प्रसराजेल प्रभुनिरह इप सघन अंधकारने दीधे त्यां ठेलेता। भधा भाषुसे। मोटी मोटी

निर्वाणदीपजिह्वलशुभोमेवाज्जभवत् । प्रसौ विसिद्धिसे सति पर्याप्ति गच्छिते नदीपुल्लिनमिष, रसे गच्छिते दलमिष
 जन्मनो मन्दिने संमार्ग, जननपनवः स्फारा धारिधारा प्रादापि द्रुष्टिपारेव बोधुमारगत । मधुवराप्रनोडरिमर्दनो-
 नन्दिर्वर्षनो नरेन्द्रः प्रस्फुल्लधामन्यः पतत्पद्मसमृद्धिस्थानोकर इव विगतचेतनोऽवनिवहे सर्वाङ्ग्य घसेतिपतिताः,
 रं हृद्ग्रा सर्वे सायन्ममसुष्टयोऽपि समन्तोऽचनितले निपतिताः । ततः सल्लु निलीनचेतनो नन्दिर्वर्षनो भूयः
 रुक्मपि केतनाजनकेय शीतलोपचारम वेतनो नीतोऽपि अवीर्य व्यथितोऽग्रभवत् । निरन्तरेपयुत्सासल्लिखोच्छलित-
 चारामोचने लोचने प्रवृत्तय प्राणपशुःसमागर्ज स्वभ्रातृमानमेवानिन्दत्-पितृ पिगस्माकं पापविपाकम्, असौ

से हो गये । पोंछे की रौ की मधु के पकाव से दूतन और सलोनी डोभा उसी प्रकार नष्ट हो गई, जैसे
 पीप-द्विष्ठा के बुझ जाने पर घर की ओसा नष्ट हो जाती है । जैसे पानी के बर कर मिक्कल जाने पर
 नदी का ठट डोमाहीन हो जाता है, और जैसे रसमाग मूलभाने पर पचा मस्मिन-कीका-नियम हो जाता है,
 उसी प्रकार मनवा का मन मल्लिन हो गया । वर्षा क्रतु में पानी की धारा की तरह लोगों के मननों से
 आसुओं की धारा प्रकाशित होने लगी । भगवान् के ज्येष्ठ चाचा, रिपुओं का मर्दन करने वाले नन्दिर्वर्षन
 राजा हेमच हो कर पद्मामसे सर्वोग से कटे हुए की तरह-बारी पर गिर पड़े, उनके समी आश्रयण ऐसे
 गिर पड़े, मानो इस के फूट झड़ गये हों । तब गिरा देख कर सभी सामन्त दौरेर भी इषर-उपर भूतल
 पर जा गिरे । तत्पश्चात् संकाहीन नन्दिर्वर्षन राजा किसी प्रकार चेतना उत्पन्न करने वाले क्षीबोपचार से
 होव में आये भी तो अतीव डरप्रा का अनुभव करने लगे । अनन्तर इसके से उज्ज बल की उछलती
 धारा बहाने वाले नेत्रों का पीछकर वा अतीव दुःख के पात्र अपनी आत्मा की इस प्रकार निन्दा करने

आगे होवा कर्ता आधिगा कीव नेत्रा कष्ट अथा, नेत्री रीते क्षीये आलवातां वरणी शोभा नष्ट शर्त्त आभ छि
 तेभी अ रीते र्त्थानी प्रभुता प्रकाशकी धती नवी जने सुदर शोभा नष्ट भव अथ नेत्र नदीमति धोक्क भवत् नदी
 छेदोग बात्रे छि नेत्र रश्त तुसाथ कर्त्ता हण्णैव पन रीक्षां बात्रे छि तेम प्रभुता गणा जाव अग्रस्त अनतानी मम
 रक्षणी रीक्षां देवावा कात्मा, आवण्ण वादरवानी वणी धारानी आक्षेपे दोहोनी आलोकी आसुलोनी भाव पडेवा
 वानी इरमनेनी सड पधवी रे तेवा तेयवा शोभा कर्त्ता नन्दिर्वर्षन भुक्ति कछिने कपेका वृक्षनी अनी भाक्ष भस्ती
 पर र्दी ववा नेत्र वृक्षां हेका नीषे अज्जवा भादे तेम तेमनां आण्णसेः पण्ण केव पत्तं नीषे मज्जवा
 भांक्षा निरुतेअ हरेव नोडवर्षनने विमुद पडेवा नेत्र वप सापपेता नन्दिरे पण्ण छेदुअ कर्त्तं कोम पम पडमा कात्मा

वन्धुविरहः पाकशासनिरशनिरिव अस्मान् निहन्ति । एवं दुस्सहप्रभुविरहदुःखेन खिन्नः प्रजाऽभिनन्दनो नन्दिवर्धनो राजा मुक्तकण्ठमाक्रन्दत् । अथा हस्तिनोऽपि अश्रणि प्रमुञ्चन्तः अस्तोकशोकभागिनोऽभवन् । तदानीं नृत्यशूरैर्भयूरैरपि नृत्यं विस्पृतम्, विटपिनः कुसुमान्यत्यजन्, काननविहरणपरायणा हरिणा उपात्तानि तृणानि, कण-भक्षिणः पक्षिणश्चाऽऽहारं पर्यहरन् । एवं सर्वेषु प्राणिगणेषु प्रभुविरहविधुरेषु स नरवरः प्रभुं चेतसा चिन्तयन्नाह—

“यत्र तत्र च सर्वत्र, त्वामेवाऽलोकयाम्यहम् ।

वियुक्तोऽसीति वीर ! त्वं, दुःखादेवानुमीयते ” ॥ १ ॥

एवं मनसि चिन्तयन्नन्दिवर्धनो राजा स्वनिशान्तं प्रस्थितः ॥ ६०७९ ॥

लगे-‘विकार है, विकार है हमारे पाप के परिणाम को ! यह वन्धु-वियोग इन्द्रके वज्र की तरह हमें चोट पहुंचा रहा है ।’ इस प्रकार प्रभु के दुस्सह विरह के दुःख से खिन्न और प्रजा को आनन्द देने वाले नन्दिवर्धन राजा मुक्त कंठ से आक्रन्दन-रन्दन-करने लगे । घोड़े और हाथी आंस्र वहाते हुए प्रवल शोक करने लगे । उस समय नृत्य करने में शूर मयूर भी नाचना भूल गये । वृक्षों ने कुसुमों का परित्याग कर दिया । वन में विचरण करने में परायण हरिणों ने मुख में ग्रहण किये तृणों को भी त्याग दिया और कण-कण का भक्षण करने वाले पक्षियों ने जुगना वंद कर दिया । इस प्रकार सभी प्राणिगण प्रभु के विरह से व्यथित हो गए । तत्पश्चात् राजा नन्दिवर्धन मन ही मन भगवान् का चिन्तन करते हुए अपने भवन की ओर रवाना हुए ॥ ६०७९ ॥

शीत उपचार वड़े नन्दिवर्धन न्याये होशमां आग्या त्यादे तेभनी व्यथाने पार न छतो. भाष्ये दुःखना वादणे। तुटी पडया गणामा दुमेा बराथो छतो. आसुथी छलकती आंणेने साक्ष करी आत्मनिंदा करवा लाग्या. ‘विकार छे भारा पाचोना परिणामेने ! आ आंधुविरह छन्दना वण्णना भार समान दुःख आथी रह्यो छे ! आभ कही तेज्यो हेयाक्षट देवा लाग्या ने योधार आंसु पाडी विलाप करवा लाग्यां. घोडा, हाथी वगेरे प्राणीज्यो पशु आंसु वडे-वतां प्रभद शोक अनुभववा लाग्यां. आ सभये नाय करनार भयूरेा पशु नाय करवानुं भूली गयां. वृक्षे शोकना चिन्ह तरीके पुंघ्येने। त्याग करवा लाग्या. हरण्यो जे मोढाभां दीधेछुं घास छोडवा लाग्यां; पक्षीज्यो यधुवानुं छोडी दीधुं. आ प्रमाणे सर्व प्राणीज्यो पशु विलाप करवा लाग्यां. आडपान पशु शोकना भाथी अरवा लाग्यां. शोकथी दुःखिन थयेद नदिवर्धन बगवाननुं चितन करतां करतां भीन भावे पोताना भडेवे पड्योअ्यां. (६०७९)

टीका—'तृण्य समय' मगध' इत्यादि—'तृण्य'=दीक्षाप्राप्तानन्तरं सल भ्रमणो भगवान् महावीर इमेवतृण्यम= पूर्वोक्तं स्वमतिश्रुतम् अभिप्रायम् अमिषा=स्वीकृत्य ध्युत्सृष्टकायः=त्यक्तशरीरशुश्रूषः, त्यक्तवेष्टः=परिवृत्तशरीर (मोक्ष), सुहृत्सेवे=अटिकाद्वयमभितृप्ते विषये=दिने, 'कुमार'—'ग्रामे=कुमारालय-ग्राम, प्रस्थितः=विहारं कृतवान् ।

ततः सल यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, श्रीवर्षमानस्यामी नयनपयगामी=दृश्यमान आसीत्, यावत्= यावत्कालपर्यन्तं नन्दिर्वर्षनममुलाः=नन्दिर्वर्षनादयः, जनाः उन्मुला-श्रीवर्षमानानलोकार्थं सदमिमुलाः सन्त, निमज्जिज्जोचनपट्टैः=स्व-स्व-नेत्रपट्टैः, प्रसूदर्यनायुतैः=श्रीवर्षमानस्याभिर्द्वन्द्वपापतं विषन्तः सन्तः प्रहृष्यन्तः=प्रमोदमाना भासन् अय-अयन्न्तरम् च प्रहृष्यन्=श्रीवर्षमानस्यामी यथा यथा=येन येन प्रकारेण दृष्टिसरणिताः=नेत्रपयता, विपकृष्टः=दूरो जानः तथा तत्रा=वेन येन प्रकारेण दृष्टिर्जा=दीनानाम् इव सर्वेषां तत्र स्थितानां

टीका का अर्थ—'तृण्य' इत्यादि । दीक्षा प्राण करने के अनन्तर भ्रमण भगवान् महावीर पूर्वोक्त अभिप्राय को स्वीकार करके शरीर की शुश्रूषा के त्यागी हुए और वेद सर्वषी मोक्ष से रहित हुए, जब अनुमान दो पड़ी दिन होय था, तब 'कुमार' ग्राम की ओर विहार किये ।

उस समय, जितने समय तक श्रीवर्षमान स्वामी विलाह वेते रहे, उतने समय तक नन्दिर्वर्षन इर्दगर्दी भण्ट का पान करते रहे और प्रसन्न होते रहे किन्तु बाद में श्रीवर्षमान स्वामी जैसे-जैसे दृष्टिपथ से दूर होते चले गये, वैसे-वैसे दीनों के समान वहाँ लड़े हुए सभी लोगों का वह उत्कृष्ट

टीकानो अर्थ—'तृण्य'=तृण्य=दीक्षा दीक्षा दीक्षा पछी अभय भगवान् महावीर व्याजण जवाला प्रभावेन्य अमिषादने अजीकार करीने शरीरतो सुश्रूषाणे त्यागी यही रहिर उपरने। मोक्ष छिडये। अन्धारे छे पछी दिवस याही एको त्याह "कुमार" नामनी तहरे विहार कये।

अर्था सुधी गन्धर पछोक्ती रकी-अर्था सुधी श्री वर्षमान त्याभी दृष्टिसेकर रक्य त्थ सुधी नन्दिर्वर्षन वजेरे जने। भगवान् की वर्षमान प्रभुने लेवाने आते तेमनी तहरे युअ छेयु करीने नेत्र-युगेबी मोठ भाडी तेमना दहन इपी अमृतपुत्र पान करवा रक्य जने प्रसन्न बत्ता रक्य, अन् अन् नेत्र श्री वर्षमान त्याभी दृष्टि पछी दूर दूर बत्ता जकां तेम तेम दीन भावेसिनी नेत्र त्या जेपछा बजेका कथा ३.२.१०.

जनानां सोत्कर्षहर्षः=उत्कृष्टानन्दः प्रणष्टु=दूरीभविहृम् आरभत=उपाक्रमत, किंच-ग्रीष्मकाले=ग्रीष्मऋतौ सरो-
वराणां जलमिव सर्वेषां जनानां हर्षोल्लासः शोष्ठुमुपाक्रमत, वारिविरहेण=जलाभावेन प्रफुल्लं=विकसितं, कमलकुलं=
कमलवनमिव सर्वेषां तत्रस्थितानां जनानां, हृदयं=मनः, दुःसहेन=कष्टसहनीयेन प्रभुविरहेण=श्रीवर्धमानस्वामि-
वियोगेन, मलिनं=हृत्प्रभं जातम् । तत्=सर्वजनहृदयम्, उज्जीवयितुम्=उल्लासयितुं प्रवृत्तः शौण्डीरः=निपुणः
शीतलमन्दसुगन्धिसमीरोऽपि भुजङ्गमश्वासयते=भुजङ्गमश्वास इवावर्ति-तद्बृहद्वाहजनको जात इत्यर्थः । पूर्व-
तदीक्षामहोत्सव-नन्दनवने=श्रीवर्धमानस्वामिचारित्रग्रहणो देव्यक-बृहदुत्सवरूप-नन्दनवने तद्दर्शनकल्पतस्तले=श्रीवर्ध-
मानस्वामिदर्शनरूपकल्पवृक्षमूले इष्टसिद्ध्या=अभिलषितसम्पन्नतया या आनन्दलहर्षः=हर्षपरम्पराः जाताः, ताः
सर्वाः प्रभुविरहवडवानले=श्रीवर्धमानस्वामिवियोगरूपसामुद्रिकान्नौ प्रणष्टाः । प्रभोः=श्रीवर्धमानस्वामिनः दुःसहः=
कष्टसहः विरहः चन्द्रविरहः=चन्द्रवियोगः चकोरम् इव=यथा व्यथितं करोति, हृदयनिखातं=हृदयप्रदेशान्तः-

आनन्द दूर होने लगा । जसे ग्रीष्म ऋतु में सरोवरों का जल सूखने लगता है, उसी प्रकार उनका हर्षो-
ल्लास सूखने लगा । जैसे जल के अभाव से विकसित कमलों का समूह शोभाविहीन हो जाता है, उसी
प्रकार धँहा स्थित जनों के हृदय दुस्सह प्रभु-विरह से-श्रीवर्धमान स्वामी के वियोग से मुरझा गया । सब के
हृदय को प्रफुल्लित करने के लिए प्रवृत्त हुआ सुन्दर, शीतल, मन्द और सुगन्धित समीर (पवन) भी साँप
के श्वास के समान संतापवर्धक हो उठा । पहले भगवान् वर्धमान स्वामी के दीक्षा-ग्रहण के निमित्त हुए
उत्सवरूपी नन्दनवन में, श्रीवर्धमान स्वामी के दर्शनरूप कल्पवृक्ष के मूल में इष्टसिद्धि से आनन्द की जो
लहरें उत्पन्न हुई थीं, वह सब प्रभु के विरहरूप वडवानल में भस्म हो गईं । जैसे चन्द्रमा का वियोग
चकोर को व्यथित करता है, उसी प्रकार भगवान् का वियोग लोगों को व्यथित करने लगा । अथवा

थवा दाज्यो. नेम ग्रीष्म ऋतुमा अदोवदेनुं पाष्ठी सूझावा लागे छ तेम तेभने। इधोद्लास सूझावा दाज्यो. नेम
जणना अलावे विक्षसिन् कमणेनो। समूह थीमणाल् जय छे, ओज प्रभाषे त्या उपस्थित थोला भाषुसोनां हुदय असह्य
प्रभुविरहथी-श्री वर्धमानस्वामीना वियोगथी अरवा लाज्यां. सर्वना हुदयने प्रकुडित करी रहेला सुंदर, शीतण,
मद अने सुगन्धित पवन पण सायना जेरी श्वासनी माक्षक सतापी रह्यो छेतो. भगवान वर्धमान स्वामीना दीक्षा-
अक्षु निमित्त प्रकटेला उत्सव इपी नन्दनवनमा श्री वर्धमानस्वामीना दर्शन इपी कल्पवृक्षना भूणमां छि सिद्धिथी
आनंदनी ने लहेरा उत्पन्न थय छती ते अधी प्रभुना विरह इपी दावानणमा लंस्म थय गय्. नेम अन्द्रमानो
वियोग थोडार पक्षीने सतापे छ ओज प्रभाषे भगवानने। वायेग दोकोना हुयाभा अपार व्यथा करवा दाज्यो।

संयमनं कृत्यं च इव यथा जनान् व्यथितान् करोति, तथैव असिखान् जनान् व्यथितान् वीरितान् अकरोत्।
 परिहः=सर्वतः विस्तृतेन=प्रभुतेन स्फारेण=विशालेन प्रभुविरहाव्यकारेण आपतलोभेषु=दीर्घनेत्रेषु सत्स्वपि
 समर्थिताः=धीवर्धमानमन्दरीषास्यानर्पितो जनाः अनयनाः=अन्धा इव जाता। माचीना=पूर्वकालीना, समीचीना=
 क्षोभना प्रभुमहादुन्दरीना=धीवर्धमानस्याभिधिराजनाभिनवा सभत्या=धीवर्धमानस्याभिसमरुद्धतुत्यानोदना क्षोभा
 =रमणीयता, निर्वाणदीपशिल-प्राद्योमेव=विद्ययाददीपस्य मयनस्य रमणीयतेषु अनन्यतु=नष्टाऽनन्यत, प्रमो=भीषी
 रभिने निररिते=विपुलके सति, पयसि=प्रच्छे गलिते=निःशुद्धे, नदीपुमिनम्=नदीसम्यन्वितोयोस्थितवटम् इव=यथा
 मलिनं प्रवति तथा=रसे=श्लसमागे, गलिते=गुल्फे सति दंष्ट्रयश्च इव=यथा मलिनं प्रवति तथैव=जनमनः=खोक इदं
 मलिनं शोतासारं संभ्रातु, जननयनतः=जोक्तानां नेत्र स्फारा=प्रवर्ती वारिषारा=अधुपरम्परा, माहृपि=वर्षाकाळे
 वृष्टिषारा=वर्षाषारा इव=यथा वीरु=स्वन्दिदुग्-आरमत=उपाक्रमत। तथा=महुरजरजः=धीवर्धमानस्वामिष्येष्टघ्राता,
 जैते इदय-यदंष्ट्र नै जुमा इमा इत्य व्यया पडुचता है, जैसे ही वह नियोग सब को व्याप्य देने लगा।

सब ओर फैले हुए विशाल प्रभु-विरा के अन्धकार के कारण दीर्घनेत्र होने पर भी क्षोभास्यान पर
 विषमान जन मेघरीन जैसे हो गये। प्रभु के विराने से नवीन वर्षा की पहले वाली क्षोभा, अर्थात्
 मगवान् वर्धमान के विराने के स्थान की वह रमणीयता उसी प्रकार नष्ट हो गई, जैसे दीपक कंजुस
 जाने पर भवन की क्षोभा नष्ट हो जाती है। जैसे पानी का बराब समाप्त हो जाने पर नदी के तटकी
 क्षोभा मलिन हो जाती है, अथवा रस-माग के सूत जाने पर पंचे निष्कम हो जाते हैं, उसी प्रकार लोगों
 के इदय मलिन-उत्साहहीन हो गये। लोगों के लोचनों से माली अधुषारा ऐसी प्रवर्धित होने लगी, जैसे
 वर्षाकाल में वर्षा की धारा बर रही हो। मगवान् क इयेष्ट घ्राता, अधुषा के विवेता नन्दिर्वर्धन राजा,

अथवा जेम् हायन जैयार्मा पुन्नी अमेला आधनी अण्णी भडो=अन्ध। इरे छे जेवर प्रभावे ते विवेज सोने सदा-
 पया बाब्जे प्रभुनिरुद्धे आठ अ भक्षर मितारइ हैलायने हावे छे आदी अने स्वच्छ आंजिभावा होवा छतां पण
 रीक्षारथान पर उपस्थित हो। अण्जे नेत्रहीन बड़ अर्ध। जनयाननी बाजरीन हावे त्वादी होवाभा ने नवीनता
 अने रमणीयता भावी छती ते बावे छे दीपक गुलाब छतां जननी होला जेम् नाश पाये तेम् नाश पाणी
 जेम् पायडी बलेव अ भ बत्ता नहीन तदनी होला भडो न बड़ लम् छे अथवा इमा सुभाब छतां जेम् पावर्मा
 मुर्ध अने निस्तेज बड़ अन्ध छे जेवर प्रभावे होइनां जेय छे-साक विनायं निरस बड़ अर्ध जेम् वर्षा-
 वरसावानी पाप पर छे तेम् होइनां आंजिभावां आनण कावरेया वरसवा भडोछे।

अरिर्मदनः=शत्रुपराजयी नन्दिवर्धनः=तदाख्यः, नरेन्द्रो=राजा प्रखलदाभरणः=प्रपतदलङ्कारः=सन् पतत्प्रमूनसमूहः=प्रखलत्पुण्यसमुदायः छिन्नानोक्तः=छिन्नवृक्षः इव=यथा विगतचेतनः=निश्चेष्टः सन् अत्रनितले=पृथ्वीतले, सर्वाङ्गिणः=सकलवयवेन धसिति-‘धस्’ इत्याकारकशब्दपुरस्सरं पतितः=अपतत् । तं=नन्दिवर्धनं पतितं दृष्ट्वा सर्वे=सकलाः सामन्तप्रभृतयोऽपि पुरुषाः समन्वतः=सर्वतः अत्रनितले=भूतले निपतिताः=न्यपतन् । ततः=भूतलनिपतनानन्तरम् विलीनचेतनः=निश्चेष्टः, नन्दिवर्धनो भूयो=राजा कथमपि=केनापि प्रकारेण चेतनाकारेण=चेष्टाजनकेन, शीतलोपचारेण=व्यजनदिना शीतीकरणसाधनेन चेतनां=चेष्टां नीतोऽपि=प्रापितोऽपि, अतीव=अत्यन्तं यथा स्यात्तथा व्यथितः=दुःखितोऽभवत् । स च निरन्तरेषु दुष्णा-सलिलोच्छलित-धारामोचने=निरन्तरम्=अचिरतं या ईषदुष्णसलिलस्य=किञ्चिदुष्णजलस्य उच्छलन्ती या धारा=प्रवाहस्तस्या मोचके लोचने=नेत्रे प्रमृज्य=प्रोज्ज्य प्राज्यदुःखभाजनं=बहुदुःखपात्रं स्वकं=निजम् आत्मानमेव अनिन्दतं=अगर्हयत्, तथा हि-धिगृ धिक् अस्माकं पापविपाकं=पापपरिणामम्, असौ=एषः प्रभु विरहः=श्रीवर्धमानप्रभुवियोगः पाकशासनिः=इन्द्रसम्बन्धी अशनिः=वज्रम् इव अस्मान् निहन्ति=नितरां

जिनके आभूषण नीचे गिर रहे थे, इस प्रकार सब अत्रयत्रों से धरती पर घड़ाम से गिर गये, जैसे झड़ते हुए पुष्पों वाला वृक्ष कट कर गिर गया हो । धरती पर गिरने के बाद वह मूर्छित हो गये । फिर-मूर्छा दूर करने वाले शीतल उपचार से-पंखा आदि के द्वारा हवा करने आदि से होश में आये भी तो अत्यन्त ही दुखी हुए । वह लगातार किंचित् उष्ण जल की धारा के समान अशुधारा वहाने वाले नेत्रों को पोंछ कर अत्यन्त दुःखित अपने आत्मा की हो निन्दा करने लगे-हमारे पाप के परिणाम को धिक्कार है ! यह बन्धुवियोग हमको इन्द्र के वज्र के समान व्यथा पहुँचा रहा है । इस प्रकार असह्य प्रभुवियोग-

नेत्रे भरतां पुष्पवाणं वृक्ष कपादनि धरणी पर पड़ी पड़े छे तेम नेनां आलूथे। नीचे पड़ी रक्षां छे अवे।
लगव नना नयेण्ड भाई अने शत्रुओंना विनेता गण नंदिनीवधनं विरहवेहनाथी शरीर उपरने। अशु शुभावतां
धरीम करताक धरणी पर ढणी पड्या, अने मेडोथ थई गया। आनुषाणु अेकडा थयेता प्रबबनेओ तेमनी भूछो
टाणवा शीतण उपचार करीने तेम न पंथा वडे पवन वगेरे नाभतां राण नंदिवधनं वानभां आव्यां। वानभां
आवतां ते अर्थत दुःणी जथुता हना। आंणेभांथी योधार आंसु वही रक्षां हतां। आंणे दुखवा छतां पुरनी
भाइक आंसु उभरातां हतां, दुःभनी केई सीमा न हती। दुःभ भाटे तेओ। पोताना आत्माने धिक्कारवा लाओ।
“ धिक्कार हने अमादा पापना परिणामने. आ कथा लवनां पाप उकथ आव्यां हशे ठे भारी आव्यां सामे भार

निनिस्ति=व्यययवीति भावः। एषम्=अनेन प्रकारेण दुःखमयविपरिहृतः=दुःखसादनीय=धीवर्धमानस्वान्ध्यामिवियोग-
 जनिवत्सेवेन लिप्ताः=दुःखानि। प्रजाऽभिनन्दनः=स्वकीयप्रजाऽभ्यन्दनन्दकारको नन्दिवर्धनो राजा मुक्तकण्ठयुग्मसम्पन्नं
 यथा स्यात् तथा=याक्रन्दत्=उच्चैरोदीत, तस्मिन् समये अथाः इतिनोऽपि, अथुनि=वेकजकानि प्रमुञ्चताः=पातयन्तः
 सन्तः मस्तोऽक्रोशमागिनः=चतुरश्रोऽक्रोशमन्त्र। तदानीं=धीवर्धमानस्वान्ध्यामिवियोगसमये नृत्ययुरैः=नर्तननिपुणैः
 मयुरैरपि नृत्यं विस्तृत्य तथा=विटपिनः=दृशाः, कुसुमानि=पुष्पाणि, मलयजम्=अमुञ्चन्-दृशा मधुविरहेण पुष्प
 क्षोमागिरिता अमचञ्चिता भावाः। तथा=ज्ञाननिर्विरणपरायणाः=ज्ञानविवरणतत्पराः इरिणाः=सुगाः, उपतातानि=
 दूरीतानि=दुष्टानि=यासान्, पर्यहरन्=परित्यक्तवन्तः, व=धुनः कृष्णमणिषः पतिष्णः आहारः=कृष्णमणय पर्यहरन्,
 एषम्=अनेन प्रकारेण सर्वेषु माषिणेषु मधुविरविपरिहृत-धीवर्धमानस्वान्ध्यामिवियोगजनितदुःखानि ससु साः=

धीवर्धमान स्वामी के विरह-जनित खेद से दुःखित होकर मानी मना को भानन्दित करने वाले नन्दिवर्धन राजा
 विच्छिन्-विच्छा कर खून करने लगे। उस समय में अथ और इस्वी मी भाव्य बगले हुए अत्यन्त शोक के भागी हुए।
 धीवर्धमान स्वामी के वियोग के समय नाचने में निपुण मयूर भी नृत्य करना भूल गये। कुत्तों ने कुत्तों का परि
 त्याग कर दिया, अर्थात् वे भी प्रभु के विरह से कुत्तों की क्षोमा से रहित हो गए। तथा कन में विहार
 करने वाले सुगों ने वृन् में स्त्रिया हुआ घास भी त्याग दिया। कृष्ण का मणय करने वाले पतियों ने
 कृष्णमणय करना भी छोड़ दिया। इस प्रकार समस्त प्राणीस्य भगवान् के वियोग से व्यथित हुए। तत्पश्चात्

बाधनो। विधेयः कथे। आ अनुविधेयः तो धन्द्रना वध केवे क्षारी वा भाशे रह्यो छे " योवांनी प्रभाने भानदित
 कस्मात् राजा नन्दिवर्धन प्रभुनो। विधेयः कर्ता पक्षरने पशु पीजनावे तेवा कश्चस्वरे वदोपात कस्य बाध्यो। विरहनी
 कश्चत्ता भारे तस्य व्यारी रही कटी। पक्षिओके व्यकुवाणु मुझी हीमु क्षावीं अने योदाव्यो ने अभाकरने शोभा
 बता कता ते पशु आ वातावरणक्षी मुक्त न रह्यो। तेभनी आन्यो अक्षुस्त कटी। नतन करी रहेवा अयुरोव्यो
 तेभदु नर्तन छी। हीमु वृक्षो पशु वर्जित न रह्यो। नबनोभांभी नेभ आंक्षुय अरे तेभ वृक्षो उपरक्षी पुन्यो
 आंक्षुयनी आरु उपरपर भरवां बांध्यो। बनभां निर्दोष रीते इस्तां वेलार्तां मुनबांज्यो ओंभां लीपिछ कस्य पशु
 छी। हीमु कौ प्रभु। वाशे विधेयः। होने व्यवा नक्षी उपबन्तो। पशु छु। ने पक्षी छे। आननी छु। के देव
 छु। व सव्यना अरवतार जेना प्रभुना जेना वरवतार क्षारी बनराष्ट, पशु, पक्षी आननी अने देवभय होत दुःखनी

प्रभुवियोगविधुरो नरवरो=राजा-नन्दिर्वर्धनः प्रभु=श्रीवर्धमानस्वामिनं चेतसा=हृदयेन चिन्तयन्=स्मरन् कथयति-

“यत्र च सर्वत्र त्वामेवाऽऽलोकयाम्यहम् ।

विद्युक्तोऽसीति वीर त्वं, दुःखादेवानुमीयते” ॥१॥ इति ।

एवं विलपन् नन्दिर्वर्धनो राजा ततः=ज्ञातपण्डवज्ज्ञात स्वनिशान्तं=निजगृहं प्रस्थितः=प्रयातः ॥सू०७९॥
‘मूलम्—तत्थ णंदिवदणेण वुत्तं-हे वीर ! अम्हे ते विणा सुणं वणं विव पिउकाणणं विव भयजणणं भयणं कइ गमिस्सामो ? ।

इति य एत्थ सिलोगा—

तए विणा वीर ! कइं वयामो, गिहेऽहुणा सुणवणोवमाणे ।
गोट्ठीसुह केण सहायरामो, भोक्खामहे केण सहाऽह वंधू ! ॥१॥
सव्वेसु कज्जेसु य वीर-वीरे-चामंतणाइंसणओ तवज्ज ! ।
पेमप्पकिट्ठीइ भजीअ मोयं, गिराऽसया कं अह आसयामो ॥२॥

भगवान् के विरह से दुःखी नन्दिर्वर्धन राजा श्रीवर्धमान स्वामी को हृदय से स्मरण करते हुए कहते हैं—
“यत्र तत्र च सर्वत्र, त्वामेवाऽऽलोकयाम्यहम् ।

विद्युक्तोऽसीति वीर ! त्वं, दुःखादेवानुमीयते” ॥ १”

अर्थात्—हे भ्राता ! मैं जहां तहां सब जगह तेरे को ही देखता हूँ, अतः कौन कहता है कि तेरा वियोग हुआ है, मुझे तो चारों ओर तू ही तूँ दिखाई दे रहा है परंतु हे वीर ! जब अंतर में दुःख होता है तब अनुमान करता हूँ कि तेरा वियोग हो गया है । इस प्रकार मनहीमन बोलते हुए नन्दिर्वर्धन राजा ज्ञातपण्ड उद्यान से अपने भवन की ओर स्वाना हुए ॥सू०७९॥

सुष्ठु न इतु. प्रभु तो गया डवे रडे शेा झयहे ? ओभ विथारी बादे डेये नंदिवर्धन राजा ओभ डहेवा दाग्या डे—
“यत्र तत्र च सर्वत्र, त्वामेवाऽऽलोकयाम्यहम् ।

विद्युक्तोऽसीति वीर ! त्वं, दुःखादेवानुमीयते” ॥ १”

अर्थात्—हे भाई ! तू न्यां त्या अधी ज्योओ तने ज ओठं छुः तो पछी डेओ डहे डे तारे। विथोअ थये।
छे, भने तो थारे तरक्ष तू ज तूं हेभाअ रह्यो छे, पथु डे वीर ! न्यादे अंतरमां डुःअ थय छे त्यादे अनुमान डेउं
छुः डे तारे। विथोअ थय गयो छे. आ प्रभाणे भनमा ने भनमा ओलता नन्दिर्वर्धन राजाओ ज्ञातपंड उद्यानमांथी
पोताना लवननी तरक्ष उगला लयो. (सू०७९)

भारपियं बंधव ! दस्युं ते, सुराजं मासि ह्यऽम्ब अवित्थणं ।
नीरपाशिवोपि

नारागाधिपदानं कथारं अम्भरं, सांस्समी सव्यगुणभिराम ! ॥३॥

इषेवं युज्यो युज्यो विस्मयण्यं तेसि सख्येसि ज्ञच्छयो मोषियमालब्ध फारा अस्तुहारा निस्सिदिड युवाकमीमि । तह य अस्मिष्ठियथाआ अस्तुविदुमुपाहवाणि परिओ विक्तिलिमारगीय । एव सोगमयं समय निरिक्खिय दिनमणीवि मंदायिमी नाओ । एगो भवरस्स दुखलं परोणरं वडु दूयइति विभाविय विव साहस्स-
किरणो कल्लयिओ । मूरे अत्थमिण परा य अवयाराऽऽच्छायणं परीअ, जणा य सोगाउरा विच्छायवयणा सयं सयं गिहं पडिगया ॥६०८॥

बाया—उत्र नन्दिषर्पनेनाक्त—“हे वीर ! त्वं त्वां विना शून्यवनमिव पितृकाननमिव मयोजनं भजनं कथं गमिष्यामः !

नानि वापि स्मोहा — 'त्वया विना शीर ! कथं ब्रह्मणो, दृष्टुना शून्यवनीयमाने । गोप्तिमन्त्रं मेन' ।

मम ह्यर्थं—(१००) —
 न जगत्तुल्यं कृतं सदाशरामा, मात्स्याग्रं कृतं सहायं बन्धो ! ॥१॥

के समान और स्मृति के समान भय-जनक रामभक्त में कैसे जाऊंगा? इस विषय में झोका भी है—
तब किया बीर! काँ बयामो, गिरेऽगुणा सुणवणोवमाणे।
गोवीसर्प केस प्रणम्यते

हे वीर ! तेरे खिलाफ मैंने लिखा था कि तू एक पातकियोगी, माणिलामरु कण सरास्र वंपू ! ॥ १ ॥

६। हे शीर ! हम ब्रिह्म साय गोष्ठी (बाघाबाघ के सुन का अनुभव करेंगे) हे समान जान पड़ता है। हे शीर ! इस समय राजभवन से सुनसान बन के आये हैं। हम किस

के साथ बैठ कर मीजन करेंगे ॥१॥

સુગતો અથ — ‘સર’ સંસ્કૃતિ. વિદ્યાપ દરવાં નિવિધન કહે છે કે, ‘હે વીર ! હું તારા વિના રહ્યો જાને
અથવા નોવા થઈ પડેલાં ભવજનક જાનમાં દેવી થોતે બઈ’” આ વિધવામાં તબુ રચોદો છે તે આ પ્રભાવે છે—
“તરૂ પિના પોર ! કઈ કયામો, ગિરેડફૂળાં સુખજળોયમાણે !
ગોઠીસિદ્ધ કેજ સારસાગે”

“हे वीर ! त्वां विना इदं आ

નેવુ વાગે છે કે નોર ! પાશ કરતાં કે દેની સાથે યોગી કરીશ ? વિનોદ કરીશ ? કે બે ?
 દેની સાથે ત્રીપાતે ભોજન કરીશ ? (૧)

सर्वेषु कार्येषु च वीर-वीर-त्यामन्वणादर्शनतस्तवाऽऽर्घ्ये ! !

प्रेमप्रकृष्टया अभ्यासमोदं, निराश्रयाः कम् अथ आश्रयामः ॥२॥

अतिप्रियं बान्धव ! दर्शनं ते, सुखाञ्जनं भावि कदाऽस्माकमस्याम् ।

नीरागचित्तोऽपि कदाय अस्मान्, स्मरिष्यसि सर्वगुणभिराम ! ॥३॥

इत्येवं भूयोभूयो विलपतां तेषां सर्वेषामक्षितो मौक्तिकमालेव स्फाराऽधुधारा निस्यन्दितुमुपाक्रमत । तथा

सर्वेसु कज्जेसु य वीर-वीरे,-चामंतणाईसणओ तवज्ज ! !

पेमप्पकिट्ठीइ भजीअ मोयं, निरासणा कं अह आसयामो ॥ २ ॥

अइप्पियं बंधव ! दंसणं ते, सुहंजणं भावि कयऽम्ह अक्खिणं ।

नीरागचित्तोऽपि कयाह अम्हे, सरिस्ससी सव्वगुणाभिरामा ॥ ३ ॥ इति ।

हे आर्य ! सभी कार्यो मे 'हे वीर, हे वीर' इस प्रकार तुम्हें संबोधित करके, तुम्हारे दर्शन करके तुम्हारे प्रेम की प्रकृष्टता से आनन्द भोगते थे । मगर आज हम निराधार हो गये । अब किसका आश्रय लेंगे ॥ २ ॥

हे वन्धु ! मेरे नेत्रों के लिए सुखद अंजन के समान तथा अत्यन्त प्रिय तुम्हारा दर्शन अब कब होगा ? हे सर्वगुणाभिराम ! तुम विरक्तचित्त होकर भी कब हमें स्मरण करोगे ? ॥ ३ ॥

सर्वेसु कज्जेसु य वीर-वीरे-चामंतणाईसणओ तवज्ज ! !

पेमप्पकिट्ठीइ भजीअ मोयं, निरासणा कं अह आसयामो ॥ २ ॥

अइप्पियं बंधव ! दंसणं ते, सुहं जणं भावि कयऽम्ह अक्खिणं ।

नीराग चित्तोऽपि कयाह अम्हे सरिस्ससी सव्वगुणाभिरामा ” ॥ ३ ॥ इति,

हे आर्य ! हरेक काममा “ हे वीर ! हे वीर ! ” करीने तमने पोकारतो आने तमारां दर्शन करीने तमारा प्रेमनी प्रकृष्टताथी असे आनंदने अनुभव करता होता, पण आने असे निराधार थतां हुवे केने आश्रय दछ्छे ? (२)

“ हे बन्धु ! मारा नेतेना सुथकारी अंजन समान, तथा धणु ! प्रिय अवे तारा दर्शन हुवे मने क्यारे थशे ? हे सर्वगुणाभिराम ! तसे तो हुवे विरक्त चित्तवाणा थथा छे, छतां केछक दछाडो तो असेने याद तो करशेने ? क्यारे करशे ? (३)

इदानीं शून्यवनसदृशो भवने कथं=केन प्रकारेण व्रजामः=गच्छामः ? हे वन्धो ! अथ=इदानीम् वयं गोष्ठीसुखं गोष्ठी=मित्रमण्डली, तत्र सुखम्=तत्त्वविमर्शजनितमानन्दं केन सह आचरामः=अनुभवामः, तथा केन सह वयं भोक्ष्यामहे ॥१॥

हे आर्य ! सर्वेषु कार्येषु हे वीर ! हे वीर ! इति तव आमन्त्रणात् तत्र दर्शनात्, तव प्रेमप्रकट्या स्नेहप्राप्त्युपेक्षया च एतावद्दिनं मोदम्=आनन्दम् अभजाम=प्राप्तवन्तः, अथ=तत्र विरहसमयेऽधुना निराश्रयाः सन्तो वयं कं जनम् आश्रयामः ? ॥२॥

हे वान्धव ! अस्माकम् अक्षयाम्=नेत्राणाम् सुखाञ्जनं=सुखजनकाञ्जनं अतिप्रियं ते=तव दर्शनं पुनः कदा=कस्मिन् काले भावि=भविष्यति ! हे सर्वगुणाभिराम=हे सर्वगुणसुन्दर ! नीरागचितोपि=रागरहितमना अपि त्वं कदा=कस्मिन् काले अस्मान् स्मरिष्यसि ? ॥३॥

शून्य वन के सदृश भवन में हम किस प्रकार जाएँ ? हे वन्धु ! इस समय हम वह गोष्ठी का सुख-तत्त्व विचारणा से होने वाला आनन्द-किस के साथ अनुभव करेंगे और किस के साथ भोजन करेंगे ? ॥ १ ॥ हे आर्य ! सभी कामों में 'हे वीर, हे वीर,' इस प्रकार तुम्हें संबोधित करके और तुम्हारे दर्शन करके तथा तुम्हारे प्रेम की प्रचुरता से हम आनन्द-लाभ किया करते थे। अब तुम्हारे वियोग में निराधार हो गये हैं। हाय, किसका आधार लें ? ॥ २ ॥

हे वन्धु ! हमारे नेत्रों के लिए सुखजनक अंजन के समान, तथा अत्यन्त प्रिय तुम्हारा दर्शन फिर कब होगा ? हे समस्त गुणों से सुन्दर ! राग-रहित चित्त वाले होकर भी तुम हमें कब स्मरण करेंगे ? ॥ ३ ॥

हे वीर ! तमारा बिना छेदे शून्य वनतां नेवा लवनमां अमे देवी रीते न्धव्ये ? छे अंधु ! आ समये अमे ते गोष्ठीसु' सुख अने तत्त्वविचारणुथी थनार आनंद'ना केनी साथे अनुभव करशुं' अने केनी साथे लोअन करशुं ? ॥१॥ छे आर्य ! अधां अभोमां "छे वीर, छे वीर" आ रीते तमने संजोधीने अने तमारां दर्शन करीने तथा तमारा प्रेम्नी नियुलताथी अमे आनंद प्राप्त करतां छतां. छेदे तमारा वियोगथी निराधार थछ गथां छीअ्ये. छाय, छेदे केनो आधार देवो ? ॥२॥

छे बाध ! अभारी आपोने भांटे सुखजनक आनन्दनां नेवां तथा अत्यंत प्रिय तमारां दर्शन करी क्यारे थशे ? छे समस्त गुणोथी सुंदर बाध ! रागरहित चित्तवाणा थछने पथु तमे क्यारे अभाइं स्मरण करशो ? ॥३॥

ररयेवम् अनेकमकारसीहस्य श्रुयोपुषः=तुनः पुनः विसर्पता=खेदवचनमुवातां नेपां=नन्दिवर्चनशीनां
 सर्वेषां जनानाम् अक्षितः=नेत्रेष्वो मौक्तिकमालेव=मुक्ताफलमालावत् स्फारा=मालती अभुषारा=नेत्रप्रजसपरम्परा
 निस्यन्दिह=निरिवित्तु उपक्रमन्त=आरमत । तथा च=अक्षिशुक्तिकातः=नेत्ररूपशुक्तिभ्याः अभुविन्दुमुक्ताफलानि
 नेत्रजलरूपस्पर्शौक्तिकानि विकिरित्वा=वसर्तुय आरमत, एवम्=एतादृशं शोकसमय=शोकावसरं निरीक्ष्य=
 हृष्टा दिनमभिरपि=युयौऽपि मन्दघृणिः=मन्दकिरणः=मस्तोमुल्लो जातः । एको जनः अपरस्य दुःखं=
 प्रश्रितरदननितखेदं परस्परम्=प्रयोम्य हृष्टा द्रुयते=लिपयति इति=एतत् विभाव्येव=विचार्येव सहस्रकिरणः=सूर्यः
 मस्तमितः=मस्तावन्न गतवान् । सूर्ये=सूर्ये मस्तमिते=मस्तावन्न गतेसति धरा=श्रुयित्री मन्वकाराऽऽस्कादयन्=मन्व
 कारकावस्यम् अपरत्=धरितवती=भूतन्कारावताऽमवविति साव । जना=शोकाय शोकातुराः=शोककुलाः अत
 एव=विच्छादयन्त=नियममुत्साः स्वकं स्वकं=निर्गमं पाप=स्थानं प्रतिगताः=निवृत्तपातवन्त ॥६०८०॥

इस तरह बार-बार दुःखसमय वचन उच्चारण करने वाले नन्दिवर्चन आदि सभी जनों के नेत्रों
 से मोक्तियों की माला के समान माली औंठियों की धारा निकलने लगी, अतः एव मौलों रूपी सीपों से
 मस्तोद्भूत हो गया । एक दूसरे के दुःख को देख कर, परस्पर दुल्लो होता है, मानो यही सोच कर सूर्य
 अस्तावन की ओर चला गया । सूर्य के अस्त हो जाने पर पृथ्वी ने अपकार रूपी काले वस्त्र को धारण
 कर लिया, अपकार अर्थात् ढँक गई । सभी लोग शोक से आकुल हो, अतएव सब के चेहरे लीकें पड़ गये
 थे । वे अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥ ६०८० ॥

आ हीते वारवार दुःखमय वचनोक्तुं उन्मत्तास्तु इत्यादि नन्दिवर्चन आदि सर्वे दोहानां नेत्राभ्यामी शीवी-
 ज्ञेयानां भाषा समान शैली आमुज्ज्वलानी धारा बहेवा लागी, तथी आये। इपी छिपिभांशी आकु इपी शैली आभ
 तेम देवावा लाग्वा।

आ प्रहरने। शोकेने। अवसर लायीने सूर्य पक्ष भइ किरण-अस्तो मुख दक्ष अथो जेकलीकनी हाथ जोडने
 परस्पर दुःखी बाय छि बाये जेवु क्वाहीने अ सूर्य अस्त अस्तावनानी तथर काबो अथो सूर्य अस्त पाभती
 ५०८०० अंधार इपी वरने भासवु ठरी दीक्षु जेदो हे पुथनी अपधारको दक्ष जक्ष सभवा दोहो। शोकेनी आकुल
 कनी तथी वधाना अहेस शीकनी एही भना कतां तेजो पातपीवाने स्थाने आस्थां भव ॥६०८०॥

मूलम्—जया णं समणे भगवं महावीरे स्वत्तियकुंडगामाओ निग्गच्छित्ता कुम्मारगामस्स समीवं समणुपत्ते, तथा णं स्रो अत्थमिओ, स्रो अत्थमिओ साहूणं विहरणं अक्कप्पणिज्जंति कट्ठु भयवं गामासन्नतरुयले वारस-पोरिमिओ काउसग्गे ठिए । भगवं य जाव जीवं परीसह सहणसीले आसि, अओ इंददिण्णेण देवदूसेण वि वत्थेण भगवया हेमंते वि सरीरं नो पिहियं । इंददिण्णं देवदूसं वत्थं जं भगवया धरियं तं ‘सव्वतित्थराणं इमो कप्पो’ त्ति कट्ठु धरियं ।

अभिणिक्खमणसमए जं भगवओ सरीरं सुगंधिद्ववेण चंदणेण य चच्चियं आसि, तगंधलुद्धा झुद्धा सुगंधिपिया भमरपिवीलियाइजंतुणो साहियं चाउम्मासं जाव पट्टुसरीरं ओल्लगिय ओल्लगिय मंसं सहिरं च चोसीअ, परं भगवया णो ते णिवारिया ।

तओ पच्छा वीए दिवसे कोऽवि गोवो बलिवदे पट्टुसमीवे ठविय पट्टु कहीअ—‘हे भिक्खू ! इमे मे वलिवद्दा रक्खणिज्जा, न कर्हिपि गच्छिज्ज’ त्ति—कहिय सो गोवो भोयणपणट्ठं णियगिहे गओ । भुत्तपीओ सो पट्टुपासे आगमिय बलिवदे अदट्ठणं तेसिं गवेसणाए अहोरत्तं वणं वणं भमीअ । एवं गवेसणाए जया नो लद्धा बलिवद्दा तथा सो पट्टुसमीवे आगच्छइ । तत्थ चरियतणे तिचे ठिए बलिवदे पासइ । तए णं से गोवे आसुरत्ते मिसमिसेमाणे पट्टुमेवं कहीअ—

“रे भिक्खू ! किं मम बलिवदे संगोविय मए सह हासं करेसि ? भुंजाहि एयस्स फलं” त्ति कहिय जाव भयवं तज्जेउं तालेउं च सयुज्जयइ ताव दिवि सक्कस्स आसणं चलइ । तए णं से सक्के देविंदे देवराया ओहिणा भगवओ उवसणं आभोगिय मणुस्सलोए हव्वमागमिय तं गोवं एवं वयासी—“हं भो ! गोवा ! अपत्थियपत्थया ! दुरतपंतलक्खणा ! हीणपुण्ण ! चाउइसिया ! सिरिहिरिधिइत्तिपरिवज्जिया ! अधम्मकामया ! अपुण्णकामया ! नरयनिगोयकामया ! अधम्मकंखिया ! अधम्मपिवासिया ! अपुण्णपिवासिया ! नरयनिगोयकंखिया ! नरयनिगोयपिवासिया ! किमइं एरिसं पावकम्मं करिसि ? जं तिलोयनाहं तिलोयवंदियं तिलोयसुहयरं तिलोयहियकरं भगवं उवसग्गेसि’—त्ति कट्ठु तं तज्जेउं तालिउं हणिउं उवाकमीअ । तं दट्ठु करुणावरुणालए भगवं सक्कं देविंदं देवरायं पडिसेहीअ । तए णं से सक्के देविंदे देवराया पट्टु एवं वयासी—“पट्टु ! देवाणुप्पियाणं भग्गेवि बहवे दुस्सहा परीसहोवसग्गा आवडिस्संति, अओऽहं ते निवारिउं तुम्हाणं अंतिए चिट्ठामि । सक्किदस्स वयणं सोच्चा भगवया कहियं—“सक्का ! जे य अईया, जे य अणागया, जे य पट्टुप्पणा तित्थयरा ते सव्वेवि सएण उट्ठाण—कम्म—वल—वीरिय—पुरिसक्कार—परक्कमेणं कम्माइं खवेति अस्सहेज्जा चेव विहरंति, नो णं देवा—

इत्येतत् अनेकप्रकारमीदृश भूयोपूयः=पुनः पुनः गिल्पतां=खेदवचनप्रवृत्तां नेपां=नन्दिवर्धनानीनां
 सर्वेषां जनानाम् अस्ति ननेप्रेभ्यो मौक्तिकमाळेय=मुक्ताफलमालावत् स्फारा=परसी अशुभारा=नेत्रजलपरम्परा
 नित्यन्दिन=निरतिवृत्त उपक्रमत=भारमत् । तथा च=असिधुक्तिकाः=नेत्ररूपधुक्तिकाः अशुविन्दुमुक्ताफलानि=
 नेत्रजलरूपस्य मौक्तिकानि विकिरित्यु=यसर्वस्य भारमत, एवम्=एतादृशं शोकसमय=शोकावसरं निरीक्ष्य=
 दृष्टा दिग्मणिरपि=वर्णाङ्गि मन्दपुष्पि=मन्दकिरण-अस्तोन्मुखी जातः । एको जनः अपरस्य दुःख=
 मसुविरहरनितखेद परस्परशु=अन्योन्य दृष्टा दृश्यते=लियति इति=एतत् विभाव्येय=विचार्यैव सारसंकिरण=सूर्यः
 अस्मिन्=अस्तावत् गतवान् । सूर्ये=सूर्ये अस्मिन्=अस्तावत् गतेसति परा=पृथिवी अन्धकाराऽऽच्छादितम्=अच
 काररूपवत् अपरत्=परितवतो=परापकारादवाप्तमविवृति मावः । जनाः=लोकान् शोकाद्वारा=शोकाकुलाः अत-
 एव=विच्छादयन्तानां=निष्पन्मुखाः स्वर्कं स्वर्क=निर्ममं प्रतिगताः=निवृत्त्यगतवन्तः ॥सु०८०॥

इस तरह बार-बार दुःखमय वचन उच्चारण करने वाले नन्दिवर्धन आदि सभी जनों के नेत्रों
 से मोतियों की माला के समान माली आँसुओं की धारा निकलने लगी, अत एव आँसुओं सभी सीपों से
 अस्तोद्गल हो गया । एक दूसरे के दुःख को देख कर, परस्पर दुःखी होता है, मानो यही सोच कर सूर्य
 अस्तावत् की ओर चला गया । सूर्य के अस्त हो जाने पर पृथ्वी ने अंधकार सभी काळे वस्तु को चारण
 दे । वे अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥ सु०८० ॥

आ शीते वारवार दुःखमय वचनोक्तुं उन्म्याश्च इत्यादि नन्दिवर्धन आदि सर्वे दोहेनां नेत्रांधी भ्राती-
 ज्ञेनां भाषा समान शैली आँसुकोनी धारा बहेवा दानी, तभी आये । इधी छिपिमांधी आँसु इधी भ्राती आभ

आ प्रहारेण शोकेन अपरपर आश्रिते सूर्यं पश्य मम क्रियु-भरतां शुभं कथं अर्धो- कोष्ठपीठनां दुःखं कोष्ठनि
 परस्पर दुःखी साथ ही बहते कोठु पिशाहीने न स्या अस्त अस्तावत्गती तरङ्ग आख्या अयो सूर्यं अस्त पामता
 पृथ्वी अंधकार इपी चरने भाष्य करी दीक्षु कोठे के पृथ्वी अंधकाराधी द शोभं अस्त अर्ध शोभना दोहे शोभनी व्यापुल
 दनां, तेथी जयाना अर्धेन धीक्षां पी अनां कर्ता, तेजा पितृपिताने स्थाने भाषा अर्ध ॥ सु०८० ॥

मूलम्—जया णं समणे भगवं महावीरे खत्तिवकुंडणामाओ निग्गच्छित्ता कुम्मारगामस्स समीवं समणुपत्ते, तथा ण मुरो अत्थमिओ, सुरे अत्थमिए साहूणं विहरणं अकप्पणिज्जंति कट्ठु भयवं गामासन्नतरुयले वारस्स-पोरिमिए काउसग्गे ठिए । भगवं य जाव जीवं परीसह सहणसीले आसि, अओ इंददिण्णेण देवदूसेण वि कथेण भगवया हेमंते वि सरीरं नो पिहियं । इंददिण्णं देवदूसं वत्थं जं भगवया धरियं तं 'सन्वत्तिथयरणं इमो कप्पो' ति कट्ठु धरियं ।

अभिणिक्खमणसमए जं भगवओ सरीरं सुगंधिदब्बेण चंदणेण य चच्चियं आसि, तग्गंधलुद्धा मुद्धा सुगंधिप्या भमरपित्रीलियाइजंतुणो साहियं चाउम्मासं जाव पहुसररीरं ओलण्णिय ओलण्णिय मंसं रुहरिं च चोसीअ, परं भगवया णो ते णिवारिया ।

तओ पच्छा वीए दिवसे कोडवि गोवो बलिव्वे पहुसमीवे ठविय पहुं कहीअ—'हे भिक्खू ! इमे मे वत्थिवा रक्खणिज्जा, न कहीपि गच्छिज्ज' ति—कहिय सो गोवो भोयणपणहं णियग्गिहे गओ । भुत्तपीओ सो पहुपासे आगमिय बलिव्वे अदहूणं तेसि गवेसणाए अहोरत्तं वणं वणं भमीअ । एवं गवेसणाए जया नो लद्धा बलिव्वा तथा सो पहुसमीवे आगच्छइ । तत्थ चरियतणे तित्ते ठिए बलिव्वे पासइ । तए णं से गोवे आसुरत्ते मिसमिसेमाणे पहुमेवं कहीअ—

“रे भिक्खू ! किं मम बलिव्वे संगोविय मए सह हासं करेसि ? भुंजाहि एयस्स फलं” ति कहिय जाव भयवं तज्जेउं ताळेउं च समुज्जयइ ताव दिवि सक्कस्स आसणं चळइ । तए णं से सक्के देविदे देवराया ओहिणा भगवओ उवसगं आभोगिय मणुस्सलोए हव्वमागमिय तं गोवं एवं वयासी—“हं भो ! गोवा ! अपत्थियपत्थया ! दुरतपंतलक्खणा ! हीणपुण ! चाउइसिया ! सिरिद्धिरिद्धिक्कित्तिपरिचज्जिया ! अयम्मकामया ! अणुणकामया ! नरयन्निगोयकामया ! अयम्मकंखिया ! अयम्मपिवासिया ! अणुणकंखिया ! अणुणकंखिया ! नरयन्निगोयपिवासिया ! किमइं एरिस पावकम्मं करिसि ? जं तिलोयनहं तिलोयवन्धियं तिलोयसुहयरं तिलोयहियकरं भगवं उवसग्गेसि’—त्ति कट्ठु तं तज्जेउं ताळिउं ह्णिउं उवाकमीअ । तं दट्ठु करूणावस्सणालए भगवं सक्कं देविदं देवरायं पडिसेहीअ । तए णं से सक्के देविदे देवराया पहुं एवं वयासी—“पह ! देवाणुपियणं अगेवि वहवे दुस्सहा परीसदोयसणा आवडिस्संति, अओडहं ते निवारिउं तुम्हाणं अंतिए चिट्ठामि । सच्चिदस्स तं वयणं सोच्चा भगवया कहियं—“सक्का ! जे य अईया, जे य अणागया, जे य पडुण्णणा तित्थयरा ते सन्वेवि सएण उट्ठाण—कम्म—वल—वीरिय—पुरिसक्कार—परक्केणं कम्माइं खवेति असहेज्जा चेय विहरंति, नो णं देवा—

मुर-याग-त्रयम्-एवम-ईतर-ईपुरिस-गल्ल-गणव-योरगार्गर्णं साहिजं इच्छति”-ति नो नं सका ! मम इम्महि माहज्जभोयण । एवं सोचा सक दम्मि दवराया नियमवराहं त्ममानिय ववइ नमंसाह, धंदिचा नमंमिभा आमेव दिग्नि पाउन्धुण तामव दिसि पडिगए ॥६०८१॥

छाया—यदा मनु भयवां मगवान् महावीरः सत्रियकुण्डग्रामात् निर्गत्य ‘कुमार’-ग्रामस्य समीपं समनुभातः तदा त्वं मृतोऽस्मिन् । मृतोऽप्यभिते साधूनां चिराणमकरानीयमिमि कृत्वा मगवान् ग्रामाऽऽसन्न-तस्मान्न द्वादशपौषिकं दाय्यास्मर्गे स्थित । मगवांश्च यावज्जीवं परीरसन्ननील आसीत् अत इन्द्रदशेण देव-दूयणाणि मगवता हेमनैऽपि वरीरं ना पिरितम् । इन्द्रदश ठवद्वय वल्ल यद् मगवता वृत्त, तत्-‘सर्वतीय वाराणामयं कृप ’ इति कृत्वा प्लवम् ।

मूक का अर्थ—‘मया नं’ न्यादि । तत्र भ्रमण मगवान् महावीर सत्रियकुण्डग्राम से विहार कर ‘कुमार’ ग्राम क समीप पहुँच, तत्र मृत्यु भ्रष्ट हो गया । मृत्यु के भ्रष्ट हो जाने पर साधुओं को विहार करना शक्यता नहीं, यह सोच कर मगवान् ग्राम क समीप में एक वृक्ष के नीचे वाराह पौरुषी का कायो तर्फी करक स्थित हो गए ।

मगवान् यावज्जीवन परीर-सन्ननील थ । अत एव-उन्वोने इन्द्र के द्वारा दिये हुए देवदूत्य वल्ल स मी, इमन्त कृत में मी वरीर नहीं ईका । इन्द्र का दिया देवदूत्य वल्ल जो मगवान ने धारण किया ता ‘समगत् तीर्थकर्तो का गण कल्पई’ ऐसा समझ कर धारण किया ।

भुवनो बर्द्ध—‘वृणर्णं भवार्द्धि’ जेवा श्रमवु अगवान् महावीर कर्त्तव्यदशभमन्नरथी विहार करी कुर्भां आभनी पाउने पछोम्मा ते सभये स्थान्त थवे । स्थान्त थवां साधुज्योने विहार करवे । कप्यतो नथी ज्येभ विथारी अगवान्-आभनी नछाभा ज्येक वृक्ष नीचे जाइ पछोरने । आयोत्सभ’ करी स्थिर ठेवा यहा अगवाने आप छर सुधी पीपछेने सकन करवानु नत वीधु वदु ते अनुसार भुन्द्रे पछोसवेवा देवदूत्य पअथी पवु तेभवे छेमन्त मनुने । सभभ होवा छवां पातावु मरीए हांअयु नदि ।

ई. पछोसवेव देवदूत्य वअने आ अववहार सव’ वीर्द्ध’ जेवा जावदे छि ज्येभ सभछने प्रभुज्जे तेने । मनीमार भवे भते । बीया सभये अगवान्ना मरीर छपर सुअधी दुज्जे तथा मअनने देव करवाभा आऽथे । भते ।

अभिनिष्क्रमणममये यद् भगवतः शरीरं सुगन्धिद्रव्येण चन्दनेन च चर्चितमासीत् तद्गन्धलुब्ध्या सुग्धाः सुगन्धप्रिया भ्रमरपिपिलिकादिजन्तवः—साधिकं चतुर्मासं यावत् प्रसुशरीरेऽवलम्ब्यावलम्ब्य मांसं रुधिरं च अचूषन्, परं भगवता नो ते निवारताः ।

ततः पश्चात् द्वितीये दिवसे कोऽपि गोपो वलीवर्धनं प्रसुसमीपे स्थापयित्वा प्रसुमकथयत्—“हे भिक्षो ! इमे मे वलीवर्धा रक्षणीयाः, न कचिदपि गच्छेयुरि” ति कथयित्वा स गोपो भोजनपानार्थं निजगृहे गतः । भुक्तपीतः स प्रसुपार्श्वे आगत्य वलीवर्दानदृष्ट्वा तेषां गवेषणायाम् अहोरात्रं वनं वनम् अभ्रमत्, एवं गवेषणया यद्वा न लब्ध्वा वलीवर्धाः, तदा स प्रसुसमीपे आगच्छति, तत्र चरिततृणांस्तृप्तान् स्थितान् वलीवर्धान् पश्यति, ततः खलु स गोप आशुरक्तः मिसमिसायमानः प्रसुमेवमकथयत्—

दोषा के समय भगवान् का शरीर सुगंधी द्रव्यों से तथा चन्दन से चर्चित था, अतः उस सुगंध के लोभी सुग्ध एवं सुगंधप्रिय भ्रमर आदि जन्तुओं ने चार मास से भी कुछ अधिक समय तक प्रभु के शरीर में चिपट-चिपट कर उनका मांस और रुधिर चूसा. परन्तु भगवान् ने उनका निवारण नहीं किया।

तत्पश्चात् दूसरे दिन एक गुवाल अपने बैलों को प्रभु के समीप खड़ा करके प्रभु से बोला—‘हे भिक्षो ! मेरे इन बैलों की रखवाली करना; ये रुहीं चले न जाँएँ।’ इस प्रकार कह कर वह गुवाल भोजन पानी के निमित्त अपने घर चला गया। खा-पीकर वह प्रभु के पास आया। बैल दिखाई न दिये। तब वह दिन भर और रात भर सारे वन में बैलों के अन्वेषण में भटकता रहा। इस प्रकार अन्वेषण करने से जब बैल न मिले तो वह भगवान् के पास आया। उसने देखा—बैल वहीं पास खाकर तृप्त हुए बैठे हैं। तब वह गुवाल बहुत क्रुद्ध हुआ और मिसमिसाता हुआ प्रभु से इस प्रकार बोला—

आयी ते सुगंधना दोषी जेवा भ्रमर-कीडिज्यो आदि जंतुज्यो यार भासथी पणु वधाये वणत सुधी प्रभुना शरीरे वजणी रही तेमनु भास अने इधिर थूस्थु, ते छता बगवाने तेभने अटकाव्या नछि.

‘कोई द्विज्यो जो गोवाण पोताना भणहोने लधने आव्यो अने प्रभुनी पासे उला राखी जाह्यो छे ‘हे भिक्षु ! तु आ मारा भणहोनु रक्षणु करणे अने ते क्याथ व्याह्यो लय नछि ते जेतो रडेजे.’ आ प्रभाबु छडी थावा भाटे गोवाण पोताना धेर व्याह्यो गये। जाधपीने ते प्रभुनी पासे आव्यो; त्यारे भणह तेना जेवामां आव्या नछि तेथी तेबु आओ दिवस ने रात आथा वनभा तेनी शोधमां वितावी छतां पणु भणहो नछि भणवाथी ते बगवान पासे आवी पडोअ्यो. अडीं व्यापीने जेथुं तो तेबु भणहोने जेठेदां जेथा अने तेज्या धासा—थाये वागोणी रक्षा छता

“रे भिक्षो ! किं मम वलीचरान् संगोप्य मया सह हास्य करोषि ? सुखं च एतस्य फलम्” इति कथयित्वा यावत् मगधन्तं तर्नयितुं तावद्विषुं च समुपलते तावत् विनि शुक्रस्याऽऽसनं चकति । ततः स भद्रा देवेन्द्रो देवराजोऽयधिना मगध उपसर्गमाशुष्य मनुष्यलोके हन्यमाणस्य तं गोपमेवमवादीत—“रे भो ! गोप ! अपायित पापक ! दुरन्तमान्तलक्षण ! गीरगुण्यचतुर्दशिक ! भी री इतिकीर्तिपरिनिर्मित ! अथर्मकामक ! अगुण्यकामक ! नरकनिगोदकाक्षित ! अथर्मकाक्षित ! अथर्मविपासित ! अगुण्यकाक्षित ! नरकनिगोदविपासित ! किमर्थमीदृशं पापकर्म करापि ? यत् भिक्षोऽनायं त्रिलोकचन्द्रितं विमोक्तुल्लभं विमोक्तुल्लभं मगधगुण्यसमर्थसि” इति कृत्वा तं तर्नयितुं तावद्विषुं हन्तुमुपाक्रमत । तद् दृष्ट्वा करुणा

‘अर भिक्षु ! मरे वैकों को फिंग कर क्या मेरे साथ उपवास कराता है ? अच्छा छे, इस का फल चल छे ।’ इस प्रकार कह कर वह ज्यों ही मगधान की तर्जना और ताड़ना करने को तैयार होता है, उसी समय स्वर्ग में शक्र का आसन खलपमान हुआ । तब शक्र देवन्द्र देवराज अवधिमान से मगधान पर उपसर्ग आया मान फर तरकाम मनुष्यलोक में आय, और शुवाल से बोछे—‘अरे गोप, अमयित के मायीं, कुमपनी, रीन-गुण्य, कृण्य चतुर्दशी को जन्म छेने बाछे, भी री इति और कीर्ति से कोरे, अथर्म की कामना करने बाछे, अगुण्य की कामना करने बाछे, नरक-निगोद की कामना करने बाछे, अथर्म के इच्छुक, अथर्म के प्यासे, अगुण्य के कामी, अगुण्य के प्यासे, नरक-निगोद की इच्छा करने बाछे, नरक-निगोद के प्यासे, किस लिये यह पाप-कर्म कर रहा है ? तीन लोकके नाथ, तीन लोकके चन्द्रित, तीन लोकके मुलकारी और तीन लोकके रितकारी मगधान को उपसर्ग कराता है ?’ इस प्रकार कह कर

आधी ओषाण बोले । उससे बोले ‘अने गोपभी भमभमतो प्रभुने बछेवा बाओ—’ ‘अरे भिक्षु ! छु तु भारा भजहेने छुवाची सपनी भारी भरभारी करवा भागतो बछे ? तो बदे तु आधी पूरे भरभरीनु देण व्याअ !’ आभ बोली भजवानने भारवा तैयार भये— आ सभदे स्वर्जं भां यहेनेनु आसन बजायमान अनु आसन अक्षित बतानी साथे तेछे अवधिमानने उपरोध भूओ। आ मान दास तेना बलवाभां आओ छे भजवान उपर उपसर्ग आओ छे तेमी तलाब ते भमभदोहां ठतरी आओ अने जेवाजने बछेवा बाओ—’ के जमाबित भारी जेतदे भजुना आकनार, उल्लखी, कीवुपुन हूण्य मोदशना भाषा, बलभी, बल्लभ पैय जने इतिभी बल्लव, अथम पंथुछ अथमना आसा पापना भारी, पापना प्यासा नरक-निजोडना पुनसुख शा भाटे आ पाप भारी रको छे ? तु आ त्रिदोषीना बल्लव नैकन जेते दोहना । कतकारी जने सुअकारी जेवा भजवानने इअ

वरुणालયો ભગવાન શકં દેવેન્દ્રં દેવરાજં પ્રત્યવેધત્ । તતઃ સ્વલુ સ શક્રો દેવેન્દ્રો દેવરાજઃ પ્રશુમેવમત્રાદીત્—‘પ્રભો ! દેવાનુપ્રિયાણામગ્રેડપિ વહ્નો દુઃસહઃ પરીપહોપસર્ગો અપતિવ્યન્તિ, અતોઽહ તાન્ નિવારયિતું યુષ્માક્રમન્તિકે તિષ્ઠામિ । શકેન્દ્રસ્ય તદ્ વચનં શ્રુત્વા ભગવતા કથિતં-શક્ર ! યે યાડતીતાઃ, યે યાડનાગતાઃ, યે ચ પ્રત્યુ-ત્પન્નાસ્તીર્થકરાઃ, તે સર્વેઽપિ સ્વકેન ઉત્થાનકર્મવલ્લીર્યપુરુષપ્રાપરાક્રમેણ કર્મોણિ ક્ષયયન્તિ અસહાયા એવ વિહરન્તિ, નો સ્વલુ દેવાઽસુરનાગયક્ષરાક્ષસાકિરકિંપુરુષપરુડગન્ધર્વમહોરગાદીનાં સાહાય્યમિચ્છન્તિ’ ઇતિ નો સ્વલુ શક્ર ! મમ કસ્યાપિ સાહાય્યમયોજનમ્ । એવં શ્રુત્વા શક્રો દેવેન્દ્રો દેવરાજો નિજમપરાધં ક્ષમયિત્વા વન્દતે નમસ્યતિ, વન્દિત્વા નમસ્યિત્વા યસ્યા એવ દિશઃ પ્રાદુર્ભૂતઃ તામેવ દિશં પ્રતિગતઃ ॥શ્વ૦૮૧॥

શક્ર ઉસે તાઙ્ને, તર્જને ઓર હનને કે લિયે ઉઘત હુણ । યહ દેલ્હર કરુણાસાગર પ્રસુને શક્ર દેવેન્દ્ર દેવરાજ-કો મના કર દિયા । તવ શક્ર દેવેન્દ્ર દેવરાજને પ્રશુ સે ઇસ પ્રકાર કહા—‘પ્રભો ! દેવાનુપ્રિય કો આગે મી વહુત-સે દુસ્સહ પરીપહ ઓર ઉપસર્ગ આણ્ગે, અતઃ ઉનકા નિવારણ કરને કે લિયે મે આપકે પાસ રહતા હું ।’

શકેન્દ્ર કા કથન સુનકર ભગવાન્ વોલે—‘હે શક્ર ! જો તીર્થંકર અતીત મેં હુણ હે, ભવિષ્યત્ મેં હોગે ઓર વર્તમાન મેં હું, વે સમી અપને હી ઉત્થાન, કર્મ, વલ, વીર્ય, પુરુષકાર ઓર પરાક્રમ સે કર્મોં કા ક્ષય કરતે હું, અસહાય હી વિચરતે હું । દેવોં, અસુરો, નાગોં, યક્ષોં, રાક્ષસોં, કિન્નરોં, કિં પુરુષોં, ગરુડોં, ગન્ધર્વોં, ઓર મહોરગોં આદિ દેવોંકી સહાયતા કી રૂચ્છા નહીં કરતે । હે શક્ર ! મુજે કિસીકી સહાયતાકા પ્રયોજન નહીં હે ।’

ઇસ પ્રકાર સુનકર શક્ર દેવેન્દ્ર દેવરાજને અપના અપરાધ સ્માકર વન્દના ઓર નમસ્કાર ક્રિયા । વન્દના નમસ્કાર કર કે જિસ દિશા સે વહ પ્રકટ હુણ યે, ઉસી દિશા મેં ચલે ગયે ॥ ૮૧ ॥

આપી રહ્યો છે ?’ આમ કહી શકેન્દ્ર તેને માર મારવા તૈયાર થયા. આ દૃશ્ય બોઈ પ્રભુએ શકેન્દ્રને તેમ કરતા અટકાવ્યા. તે વખતે શકેન્દ્રે પ્રભુને પ્રાર્થના કરી કે ‘હે ભગવન્ત ! આપની ઉપર આગળ ધણા પરીપહો અને હુઃખો આવી પડશે, માટે તેના નિવારણુ અર્થે હું આપની સાથે રહું ?’

શકેન્દ્રણ કથન સાભળી ભગવાન બોલ્યા, ‘હે શક્ર ! જે જે તીર્થંકરે! જીતકાળમાં થયા છે, વર્તમાનમાં થાય છે અને આગામી કાળે થશે તે બધા પોતાના ઉત્થાન કર્મ-બાત-વીર્ય-પુરુષકાર અને પરાક્રમ વડે કર્મના ક્ષય કરે છે અને અસહાયપણે વિચરે છે. તેઓ કદાપિ પણ દેવ-અસુર-નાગ-યક્ષ-રાક્ષસ-કિન્નર-કિંપુરુષ-ગરુડ ગંધર્વ અને મહોરગ આદિની સહાયતા વિના જ વિચરે છે અને તેઓની મદદની લેથ પણ ધરણ સમ્રાજા નથી તેથી હે શક્ર ! મારે કેાઈની પણ સહાયતાની જરૂર નથી. આ પ્રમાણે સાંભળીને દેવરાજે પોતાની વિનંતિ ચોક્કસ રાખી અને

टीका—'नगार्थ' इत्यादि । यदा=यस्मिन् समये खलु भ्रमणो भगवान् महावीर' सत्रियकुण्डग्रामात् निर्गत्य=नि'मृत्प कुमार्ग्रामस्य समीपं समनुमातो=गतवान् तदा=तस्मिन् काले सूरः=सूर्यः अस्तमितः=अस्त गत । सूर अस्तमिते=दृयास्तपनानन्तरं सापूर्णा विहरणं=विहारः अकल्पनीयम् इति नियमोऽस्तीति कृत्वा=इति पुनः भगवान् धीवीरपण्य ग्रामाऽसतस्तच्छब्दे=कुमार्ग्रामस्य ग्रामान्तरिकत्वं विवक्षितम् इदं द्रष्टव्यं शरीरके-द्राक्ष्यमाणस्य=भारतस्य स तथा तस्मिन्-द्राक्ष्यमाणस्य विषये कायोत्सर्गो स्थितः ।

भगवन् यारज्जीवे=धीमनयन्यम्, परीक्षसहस्रश्रीलः=धीतोऽप्यधिसहनकारी आसीत् । इन्द्रसेन देवदूतपण्य=देवप्रेषणादि भगवता हेमन्तेऽपि=हेमन्तभगवानपि शरीरं नो गिरहितम्=नो आच्छादितम् । अन्येषु ऋतुषु तु

टीका का अर्थ—जिस समय भ्रमण भगवान् महावीर सत्रिय कुण्डग्राम से विहार कर कुमार् ग्राम के समीप गये, उस समय सूर अस्त हो गया । सूर्य अस्त होजाने पर सायुधों को विहार करना नहीं कल्पता है, ऐसा नियम है, ऐसा जानकर भगवान् महावीर स्वामी, कुमार् ग्राम के समीप क हस्त के नीचे बारह महर तक श्रिया जाने का कायोंत्सर्ग करके स्थित हो गये ।

भगवान् नीलरूपं च शीत, उष्ण, आदि परिपक्वा को सहन करने वाले थे । उन्होंने इन्द्र के द्वारा दिये हुए देवदूतपण्य सब से मी, हेमन्त ऋतु में मी, शरीर को आच्छादित नहीं किया । इस से यह स्वतः

भगवानने बहान-भक्षार कर्मा बहान-भक्षार इति ने विद्याभाषी आत्मा कृता ते विद्याभां आरम्भ गवा. (सू०८१)
विद्यार्थः—इत्ये जने भावे साधुपण्य अभ्यासात् आरंभेण शुभ्रता आहरी विषी रहेलु भगवानने पादवे तेम न कतु मरुत् के पूर्वें अस्त भ्यात भयोभां अभय भुं कतु ते अभय इत्येभन अपिह शुभाशुभ कर्मो द्वारा आत्मपदेष्ट पर ने भोऽह इपी अगा न भाव अथा कृता तेतु छेदन-वेदन इत्या भाटे निरप शांतिनी अदर कपी आ निरप शांति केह उन्मद जने वेधान प्रदेष्टभां अह केवण आरभ उत्थान अर्धे योग्यवयाभां भावे तो न देखे वागी कहेबाध जे धरावासी कुमीर नाभय आभरी करीपि अर्ध कार पछेनेतो शक्तिअ करी शुद्ध जितवनभां भय वान उला रक्षा शक्तिअ आदरतां भन जे जितवनभां जितप्रोत अथा वायु भावा कहेन-महेन विद्यानी स्थिर मर्ध बजन तो स्थिर इत्याद कतु न नहि मरुत् हे तो तो पछेदेवी न गौनपक्काभां पशवत पाभी गतु कतु आ भन-वजन-हाथान इधनेने जेन धारिणादि शरीरभां 'आवेत्सर्ग' कहे छे

भगवान इत्ये जने भावे गन्ध कत्ता, परतु आवकादि रीते न्यारे पीछे कथा इत्ये साधुपण्य आदिभार इहे छे न्यारे तेभने देवपण्य नाभय वज शरीर कीकथा भाटे देवोपवयाभां भावे छे, पण्य आ वजन अपर्ण्य कतु

સુતરામેવ શરીરં નો વિહિતમિત્ર વોદ્યમ્ । इन्द्रदत्तं देवदूष्यं यद् भगवता धृतम्, तत् सर्वतीर्थकराणाम्=સર્વે-
પામ્ જિનાનામ્ અયં-શકાર્પિતવત્પ્રહરણરૂપઃ કલ્પઃ=આચારોડસ્તિ-इति कृत्वा=इति ज्ञात्वा धृतम्=धारितम् ।

અભિનિષ્ક્રમણસમયે=દીક્ષાપ્રસંગે યદ્ ભગવતઃ શરીરં સુગન્ધિદ્રવ્યેણ=કસ્તૂરીકુહુમાદિના ચન્દનેન=શ્રી-
સ્વપ્નચન્દનેન ચ ચર્ચિતં=લિપ્તમ્ આસીત્ તત્સુગન્ધલુબ્ધાઃ=તૈષાં=સુગન્ધિદ્રવ્યચન્દનનાં સુગન્ધે લુબ્ધાઃ=આસક્તાઃ
અતएव मुग्धाः=મોહં ગતાઃ સુગન્ધપ્રિયાઃ=સુગન્ધાનુરાગિણઃ ભ્રમરગિવીલિકાદિ જન્તવઃ=ભ્રમરકીટિકાપ્રમથતિપ્રાગ્નિનઃ ।
સાધિકમ્=સાતિરેકમ્ ચતુર્માસં=ચતુરો માસાન્ યાત્રત્ પ્રશુ શરીરે અવલગ્નાવલગ્નય=પુનઃ પુનઃ સંવધ્ય માસં સધિરં=

સમક્ષા જા સક્રતા હૈ કિ અન્ય ઋતુઓં મેં મી ભગવાન્ ને અપને શરીર કો વત્ત સે આચ્છાદિત નહીં ક્રિયા ।
इन्द्र द्वारा दिया गया देवदूष्य वत्त जो भगवान् ने ग्रहण किया सो सभी तीर्थकारी का, इन्द्र के द्वारा अर्पित
કિયે ગયે વત્ત કો ગ્રહણ કરના આચાર હૈ, એસા જાનકર ગ્રહણ ક્રિયા ।

દીક્ષા કે અક્સર પર ભગવાન્ કે શરીર મા સુગન્ધિત દ્રવ્યોં સે=કસ્તૂરી-કુંકુમ આદિ સે, તથા શ્રી-
સ્વપ્નચન્દન સે લેપન ક્રિયા ગયા થા, ઉનકી સુગંધ મેં આસક્ત, અત एव मोह को प्राप्त एव सुगंध के अनुरागी
ભ્રમર આદિ જન્તુ, ચાર માસ સે મી કુલ્લ અધિક સમય તક પ્રશુ કે શરીર મેં વાર વાર ચિપટ કર ઉનકે માંસ

અને લેવું તે એક જનવ્યવહાર એટલેકે કટપવ્યવહાર-આચાર થઇ ગયો છે. ભગવાન કોઈ પણ ઋતુમાં વચ્ચને ગ્રહણ કરતા
ન હતા તેમ જ ઇચ્છતા પણ ન હતા તેમજે શરીરને પુદ્ગલનો પિંડ પહેલેથી જ માન્યો હતો અને આત્મદ્રવ્ય એ
શુદ્ધ-નિરંજન-નિરંકાર પર દ્રવ્યથી તદ્દન નિરણું અને સર્વથા ભિન્ન છે એમ અનુભવતા આવ્યા છે એટલે જ્ઞાન-દર્શનની
શુદ્ધતા અને નિર્મળતાને મૂળથી જ શ્રદ્ધાપણે અપનાવી છે એટલે પુદ્ગલ ઉપરની રુચિ અને ભાવ સ્વનિર્ણયની અપે-
ક્ષાએ છૂટી ગયા છે માત્ર તેના પરનો બાહ્ય સંયોગ જ છાડવાનો રહે છે તેથી હિમંત અને અન્યઋતુમાં વસ્યા આદિતું
માનસિક ગ્રહણ પણ તેમને રહેતું નથી. કેવળ આત્મા તરફની રૂચિને સ્થિર કરવા ચારિત્ર ગ્રહણ કરવાગા આવે છે.

ભગવાનના શરીર પર દીક્ષા પ્રસંગે ચઢન આદિના શ્રેષ્ઠ લેવો કરવામાં આવ્યા હતા. જેની સુગંધ મહેક
મહેક થતી હતી. માનવ પણ આ સુગંધથી તેમની તરફ જોવાનો હતો તેા જીવજંતુઓની વાત જ શી ? કારણ
કે જીવજંતુઓને માનવ કરતાં દ્રાણેન્દ્રિય શક્તિ તીવ્ર હોય છે, તેથી સાધારણ પણ ગંધ આજ્ઞતાં તેઓ તે તરફ
આકર્ષાય છે. ન્યારે ભગવાનના શરીર ઉપરની સુગંધ મનોગમ્ય હોવાને કારણે ભમરાઓ અને કીડિઓ વગેરે જંતુઓ
જોવાયાં. સુગંધિતું પાન કરતાં કરતા તેઓને રસ પડ્યો ને તેઓ તેમના શરીરમાં કાણા પાડી, ધરતી માફક તેમાં

नोभितं च अपूपत्, परं=किन्तु-प्रगल्भा ते=आंसरुधिरं विवन्तो भ्रमरादयो जन्तवो न निवारिताः=न दूरीकृताः।

तत्र पद्मात्=दीक्षाप्रारणद्विस्तानन्तरं द्वीवीये दिवसे कोऽपि गोपो=गोपालो बलीवर्दान्=दृढपमानं प्रभु
तमीये स्थापयित्वा प्रभुम् अरुणयद्=रे भित्तो ! इमे=एते ये=प्रम बलीवर्ताः=स्वया रक्षणीया=येन कश्चिदपि
न गच्छतुः इति कथयित्वा स गोपः भोजनपानार्थम् निजगृहे गता, तत्र युक्तपितुः=कुलभोजनपानं सन्
स मृतः=मृत्युशतं प्रमुखांश्च आगम्य बलीवर्तान् अष्टधा तेषां बलीवर्तानाम् गवेषणायाम्=भ्रमेवेषणायाम् अहोरात्र

और रुधिर को बूझते थे मगर सगवान् ने मांस और रुधिर को बूझने वाले उन जन्तुओं को इटाया तक नहीं।
तत्पश्चात् दूसरे दिन कोई एवाम नैलौ को प्रभुके पास लड़ा कर के प्रभु से यौला—'हे भित्तु !
मरे इन वैयों को देखतेच रहना, जिस से यह कहीं बछे न जाएँ। इस प्रकार कह कर वह गुवाळ भोजन-
पानी क मिए अपने घर चला गया। लाने-पीने के पश्चात् वह अपने घर से सगवान् के निकट आया तो

रही बार भर्त्सनाची यक्ष बधाई भजवानना इधिरनु अपने भांसनु बलव्य करतां अत्यडाबा नकि डारवु हे तेकोने आ
उत्तम पुइनुतु दोही भांस काडर लेवां भियां दाज्यां तथी तेकोले वूम बत्ता सुधां भजवाननु इधिर पीया हनु"
आरामा स्व पर प्रभास डहेवाच छि आरामानु ज्योवन्स अने प्रभाव शरीरना सूक्ष्म शैल-शाल द्वारा प्रभट
याच छि नेम जुने। दास आरामा शुद्ध यतो। जव छि तेम शरीरना रकभेला यक्ष भलीनताभांभी शुद्धपशुभां प्ररावत्त
शव छि आभी शरीरनी अर रवेला दास-भांस-जारी-दोही भासोन्धाच यक्ष सुगंधीवाण अने भिडाशवाणा। बवा
भटि छि दोही अने भांसनु आनु यक्षवु बत्तां भजवानने जगत वेडना बवा दाजी तो यक्ष भजवाने तेभने तेम
डरतां शैलभां नकि रवशरीरने तेकोभीजे पीतानु भांसु ज न छेनु तेथी ते शरीर पर पीताने। छेअपक्ष भाजे
न दोतो, डारवु हे आरममान बत्ता तेकोने देह अने आरामा लुटा ज आरामा बत्ता

वीजे परीवड भानवदूत अहाँ वक्षुववाभां आवे छि-

आ आरम प्रदेसभा वसता आरमज्योने देवा युष्मि अने भूज् देव छि देवा 'गोवाळ' ना ह्योत
प यी भली आवे छि तेला शुद्ध आत्मिक अने निरुपशवाणा साधु पुइयेने तेकोना आस आचार-विचारशी
एव ज्योअनी शक्तां नबी जेटहे सुधी तेको भूज् देव छि जेवावपुवा विना ते जेवाण भजवानने दू भ ज्योअवा
तेवर सये। ते जोर जवपक्ष छि जेम आ उपरबी रण्य वरी आवे छि आवा जवपुद्विवाणा आरम प्रदेसोत्तं देवज
दू भ स्वयं उपार्जन करवा भट्टे ज भजवाने बिकार सत्र हये।

यावत् वन वनम्=तन्निवृत्तिं प्रत्येकं वनम् अभ्रमत । एवम्=अनेन प्रकारेण गवेपण्या यदा वलीवर्दी=दृपभाः न लब्धाः-तदा-स गोपः प्रभुसमीपे आगच्छति, आगतमात्रः-स तत्र=श्रीवीरसमीपे चरितवृणान्=भक्षितयासान् अतएव वृणान् स्थितान् वलीवर्दीन् पश्यति ।

ततः=वलीवर्दीर्दर्शनानन्तरं खलु स गोपः आशु रक्तः-शीघ्रक्रोधारूणो मिसमिसायमानः=क्रोधेन प्रज्वलन= उच्चैर् नीचैः पादौ संचालयन् प्रभुं=श्रीवीरस्वामिनम् एवम्=अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अकथयत्-‘रे भिक्षो ! मम वलीवर्दीन् संगोप्य मया सह हास्य करोषि ? शुद्धस्व=अनुभव एतस्य=हास्यस्य फलम्’ इति कथयित्वा यावत् भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनं तर्जयितुं=तर्जन्यङ्गुलीप्रदर्शनपूर्वकं भर्त्सयितुं, ताडयितुम्=चपेटादिनाभिहन्तुं समुद्यतते= उद्युक्तो भवति तावद् दिवि=देवलोके शक्रस्याऽऽसन चलति=कम्पते । ततः=आसनचलनानन्तरं खलु स शक्रो देवेन्द्रो

उसे वहा बैल न दीखे । तब वह बैलों की खोज में दिनभर और रातभर उस वन के निकटवर्ती प्रत्येक वन में भटका । इस प्रकार खोज करने पर भी बैल न मिले तो वह गुबाल लौट कर भगवान् के पास आया । आ कर उसने देखा कि बैल घास खा कर तृप्त हुए वहाँ बैठे हैं ।

बैलो को देखने के अनन्तर गुबाल एकदम क्रोध से लाल हो गया । क्रोध से जलता हुआ-ऊपर-नीचे पैर पटकता हुआ वह श्रीवीर प्रभु से बोला-‘रे भिक्षु ! मेरे बैलों को छिपाकर मेरे साथ हांसी करता है ? छे, इस हांवी का फल भोग ।’ इस प्रकार कह कर ज्यों ही वह भगवान की तर्जना (तर्जनी-अंगुली उठा कर भर्त्सना) करने और ताडना करने (थप्पड़ आदि से मारने) को उद्यत होता है, त्यों ही स्वर्गलोक में शक्र का आसन कौपने लगा । आसन कौपने पर शक्र देवेन्द्र देवराजने अवधिज्ञान से भगवान्

बद्धिभावाधी नेनु हृदय हुंसेशा उछणी रधु छे अने मृत्युहोक्रमां ने कांछ सुक्ष्म के स्थल अनाव अने तेनुं नेने तत्काल नष्ट थाय छे अवा शङ्केन्द्रे बगवानन्ती पास आवी आ भूर्भ शिरोमण्णी बरवाउने भूष ४५६ आभ्ये अने बगवान् पास हुंसेशा तेभना रणेवाण तरौडे रहेवा प्रभुने पिनति करी, जेथी तिर्यंथ अने मानवकृत उप-सर्गोत्तुं पोते निवा-ण करी शङ्के. बगवान तो स्वयं प्रुद्ध इता तेज्यो नानुता इता के जेथु ने जे कर्म आंध्या डोय ते तो तेने जते न कोगववां पडे छे. पोताना न भण अने वीर्यं वडे अनतक्षणनुं आत्मप्रदेशे वागेजुं अज्ञान इपी आवरण्ण जते न भसेजुं पडे तेमा कोइनी सहायता काम आवती नथी.

गद्य उपसर्गो तो निमित्त इय छे. पाछ उपसर्गो अंदरना क्रमेना उदय आव्ये अइर हेभाय छे अने आनी २ जे छे. आतारिक क्रमोदय घण्टा न सूक्ष्म-पुद्गल परमाणुज्यो इय छे; ते अन्यजनशी हेम अटकायी शक्य ?

देवराजः अरक्षितः=अरक्षितोपयोगेन भगवन्तः=धीवीरस्वामिनः उपसर्गम् आशुभ्य=आत्मा मनुष्यलोके इत्यम्ब-
 क्षीयं आगत्य तं गायं पदम्=अनुपदं पदम्पणं वचनम् अवाधीत-ईं मो गोप।=रे गोपाल। 'ईं मोः' इति
 तिरस्कारपूर्वकमागम्यमात्रं, पुनरपि तमं स बोधयति- 'अप्यन्वियपत्य' इत्यादिना रे अर्थावित्पार्थक्यं। न
 केनापि यदमार्थित=गच्छिष्ये-तमणं सत्पार्थक्यं-वदितुं। रे दूरन्तमान्तलम्पणं। दूरन्तानि=दूरतपर्यन्तमानानि,
 मान्दानि=प्रबोधमानानि सधमानि-अन्य-तै=शुभाशुभफलानि ज्ञायते एवमिति लम्पणानि-स्तकृतादिरेवनातिष्ठ
 मपचाक्षिस्वामिं सामुद्रिकशालमसिद्धानि चेष्टिगानि वा यस्य तादृश। रे हीनपुण्यचतुर्वेदिक। इति पुण्यं
 यस्यासौ हीनपुण्यः, चतुर्वेदो मातः चतुर्वेदिक हीनपुण्यमासौ चतुर्वेदिकवेति-हीनपुण्यचतुर्वेदिकस्तत्सुदुर्-
 पापमस्तिपार्थक्यं, तथा भी-ही-इति-कीर्तिं परितर्जित। श्रिया=ओमया वैभवेन वा श्रिया=कञ्जया धृत्या=यैषेण
 कीर्त्यो=लप्याया च परितर्जित=सबतौ रजित। रे अथर्मकामक। अथर्मस्य काम-वाञ्छा यस्य तादृश। रे अशुण्य-
 कामक।=अशुण्येच्छुकः, रे नरकनिगोपकामक।=नरकनिगोपकामत्वमिवापिन्। तथा-रे अथर्मकादृशित।
 अथर्मकादृशायुत। रे अथर्मपिपासित।=अथर्मविपारायुत। रे अशुण्यकादृशायुत। रे अशुण्य

वीररानी पर भाये हुए उपसर्ग को जानकर, और उसी समय मनुष्यभक्त में आकर उस गुवाळ से कहा- 'रे
 गुवाळ ! अरे जिसकी कोई इच्छा नहीं करता उसकी अपाँव घृष्ट की इच्छा करने बाछे ! अरे हुए फल-
 दायक और अधोमान स्वप्न बाछ ! (जिन से शुभ-मशुम समझा जाय वह स्वप्न, सामुद्रिकशास्त्र में प्रतिष्ठित हवेकी
 आक्षि की रस्ताई, तिन, मरा आदि प्रवरा गंठार्ह स्वप्न कासाती हैं) अरे हीन पुण्यबाछे, कृप्य चतुर्वेदी को
 जन्म छेनेबाछे ! अर्थात् पापी ! अरे बी (बोका या वैभवा) ही (लज्जा) धृति (वैर्य) कीर्ति (स्वाति) से
 संवया शून्य ! अरे अथर्म क कामी !, अरे अशुण्य और नरक-निगोप के कामी !, अरे ! अथर्म की काँसा
 करने बाछे ! अथर्म के प्यासे !, अरे अशुण्य की काँसा करने बाछे !, अरे अशुण्य के प्यासे !, अरे नरक-

का भयोइवने आत्मा चेतो न समझ सके अने तेने हेतु ज्ञासता पोते एव् नदकाली सके तेम नही. हेबज सास-
 भाभा इण हये चस्त्रिभती वण्ते पोते तेभां सज्जेव हरी नोदाय नकि, अने पोताना स्वभाव वरह वळु हरी आ
 उदय वरह ईईईई हरे अने वेनाने समभावो वेमारे. आ आतनु सधमपळे वरवतु आतिरिक्त भाव पोता दास न
 चळ सके बीने हेड आ आइनि इवना अने तनी भर्तृपदति श्री सीते समझ सके ? अन्ये समन पळ न भरी
 सके तेा तेनु निवारण एव् ईभ हरी सके ? आ निवणवनेा सुधित उवाय भास न दासभा छे ने भास शिवाय

पिपासित !—अणुण्यपिपासायुत !, रे नरकनिगोदकाङ्क्षायुत !, रे नरकनिगोदपिपासित ! = नरकनिगोदपिपासायुत ! किमर्थम् = कस्मै प्रयोजनाय ईदृशम् = एतादृशम् पापकर्म करोषि यत् त्रिलोकनाथं = त्रिलोकपति, त्रिलोकचन्द्रितं = त्रिलोकमस्तुत, त्रिलोकसुखकरं = त्रिलोकप्रमोदकारिणम्, त्रिलोकहितकरं = त्रिलोककल्याणकारिणम्, भगवन्तम् = श्रीवीरस्वामिनम् उपमर्गयसि = उपमर्गरूपे ?” इतिकृत्वा—इतिकथयित्वा तं गोपं तर्जयितुम्—अहल्यादिना ताडयितुं चपेटादिना, हन्तुं = मारयितुम् यद्यद्यादिना उपाक्रमत = उद्यतोऽभूत् ।

तद्—दृष्ट्वा करुणावरुणालयः = दयासमुद्रो भगवान् श्रीवीरस्वामी शक्रं देवेन्द्रं देवराजं प्रत्यवेयत् = निवारितवान् । ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजः प्रभुं = श्रीवीरस्वामिनम्, एवं—वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीव—प्रभो ! = हे स्वामिन् । देवानुभिगणा भवताम् अब्रुवः = प्रनेके दुःसहाः = रुद्रसहनीयाः परीषहोपसर्गाः = परीषदा—शीतोष्णादयः, उपसर्गाः—देवादिकृताश्च आपतिष्यन्ति = आगमिष्यन्ति, अतः = अहं तान्—निवारयितुं देवानुभिगणामन्ति—के = पार्श्वे तिष्ठामि । ततः शक्रेन्द्रस्य तद् वचनं श्रुत्वा भगवता = श्रीवीरस्वामिना कथितम् ‘हे शक्र ! ये च अतीताः = भूतकालीनाः, ये च अनागताः = भविष्यत्कालीनाः ये च प्रयुत्पन्नाः = वर्तमानकालीनाः तीर्थकराः सन्ति, ते सर्वेऽपि स्वकेन = निजेन उत्थानकर्मवलयीर्यपुरुषकारभराक्रमेण—तत्र उत्थानं = वैष्टविशेषः, कर्म = चलनादिक्रिया, वलयं = शरीर-

निगोद को आकांक्षा करने वाले, अरे नरक-निगोद के प्यासे ! किस प्रयोजन से तू ऐसा पाप कर्म कर रहा है ? जो त्रिलोक के नाथ, त्रिलोकचन्द्रित, त्रिलोक के प्रमोदकारी, त्रिलोक के कल्याणकारी भगवान् महावीर स्वामी को उपसर्ग करता है ?’ इस प्रकार कह कर इन्द्र, गुवाल को तर्जन करने, ताड़न करने और मारने को उद्यत हुए ।

यह देख कर दया के सागर भगवान् श्रीवीरस्वामीने शक्र देवेन्द्र देवराज को रोक दिया । तब वह शक्र देवेन्द्र देवराज वीर भगवान् से इस प्रकार वचन बोले—स्वामिन् ! देवानुमिय को अर्थात् आप को आगे भी अनेक कष्ट-परीषह और उपसर्ग (परीषह शीत, उष्ण आदि, उपसर्ग देवादिकृत कष्ट) आएँगे । मैं उनका प्रतीकार करने के लिए देवानुमिय के पाम रहता हूँ ।

तब शक्रेन्द्र के वचन सुनकर भगवान् महावीर स्वामिने कहा—‘हे शक्र ! जो अतीतकालीन, भविष्यत्कालीन और वर्तमानकालीन तीर्थकर हैं, वे सभी आने ही उत्थान (वैष्टाविशेष), कर्म (चलना आदि

भीष्म डोह डोह करी शकवाने जरा पथु समर्थ नथी ओषु भगवाने पोताना अनन्य लज्ज शकेन्द्रने समजळ्यु त्याहे तेणे पोतानी भूत आने गेरसमजळ्यु कथून करी भगवाननी माथी भागी पोताना स्थाने पाछा क्षया. भगवाने शकेन्द्रने भग-वीर्यना ने ने प्रकाशे अताच्या तेना प्रकाशे पांच छे. तेमां ‘उत्थान’ ओटले डोह पथु प्रकारनी

तं जहा-वसुहारावुद्धा १, दसद्वक्वणे कुसुमे निगाए २, चेलुक्खे कए ३, आहयाओ हुंदुहीओ ४, अंतराचि यणं अगासंसि अहोदानं २ तिघुद्धे-५ य। तएणं से समणे भगवं महावीरे कोल्लागाओ संनिवेशओ पडिणिकखमइ, पडिणिकखमिच्चा जणवयविहारं विहरइ ॥ सु० ८३॥

छाया—ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरः कुमारीग्रामात् निर्गच्छति, निर्गत्य पूर्वोत्तुरी चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् सुखं सुखेन विहरन् यत्रैव कोल्लाकः संनिवेशः तत्रैव उपागच्छति। ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरः पष्ठक्षपणपारणे भिक्षाचर्यार्थं बहुलस्य ब्राह्मणस्य गृहमनुप्रविष्टः। तेन बहुलेन ब्राह्मणेन भक्तिबहुमानेन पाणिपतद्ग्रहे क्षीरं दत्तं, भगवता पारणकं कृतम्। ततः खलु तस्य बहुलस्य तेन द्रव्यशुद्धेन दायकशुद्धेन प्रतिग्राहकशुद्धेन त्रिविधेन भगवति प्रतिलभिते सति गृहे च इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा—वसुधारा वृष्टा १, दशार्द्धवर्णानि कुसुमानि निपतितानि २, चेलोत्क्षेपः कृतः ३, आहताः हुन्दुभयः ४,

मूल का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर कुमारी ग्राम से विहार क्रिये और प्राचीन तीर्थक्षेत्रों की परम्परा का अनुसरण करते हुए ग्रामानुग्राम सुखे-सुखे विचरते हुए जहाँ कोल्लाक संनिवेश था, वहाँ पहुँचे। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर वेल्ले के पारणा के दिन भिक्षाचर्या के लिये बहुलनामक ब्राह्मण के घर में प्रविष्ट हुए। उस बहुल ब्राह्मण ने भक्तिसन्मानपूर्वक करपात्र में क्षीर का दान दिया। भगवान् ने पारणा क्रिया। तत्पश्चात् उम बहुल ब्राह्मण के घर में, द्रव्यशुद्ध, दायकशुद्ध एवं प्रतिग्राहकशुद्ध, इस प्रकार तीन कारण शुद्ध दान से भगवान् को वहराने पर यह पाँच दिव्य प्रकट हुए (१) वसुधारा वरसी (२) पाँच वर्णों के फूलों की वर्षा हुई (३) वस्त्रों की वर्षा हुई (४) आकाश में हुंदुभी वजी और (५) आकाश में ‘अहो दानं, अहो दानं’ का घोष हुआ। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर कोल्लाग

भूजने। अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि। त्थारपछी श्रमणु बागवान भडावीर कुमोर आभथी विहार करी प्राचीन तीर्थ क्षेत्रानी परंपरा अनुसार ग्रामानुग्राम आबता, सुणे समाधे वियरता न्था ‘कोल्लाक’ संनिवेश छतुं त्था आवी पछोन्था छटना पारणु भगवान भडावीर भिक्षाचर्या माटे गहुइ नामना ग्राहणुना घेर दाफल थयां। आ ग्राहणु लक्षितभावपूर्वक पात्रभा गीर वडोरावी आ गीर वडे भगवाने गेवा (छठे) उपवाससुं पारणुं कथुं। गहुइ रे दान आणु ते शुद्ध अने निर्मल तेम न निर्दोष छतुं। दान लेनार पणु पवित्र छता ने आपनारने। बाव पणु इन विशुद्ध अने इणनी दुन्धा विनाने अनासक्त छतो। तणु करणु शुद्ध होवाथी त्यां पांथ हिन्थे। प्रगट थया। न्थे। नाम आ प्रमाणु छे। (१) वसुधारा नो वरसाइ (२) पथरंगी इणोनी वृष्टि (३) वस्त्रोनी वर्षा (४) आकाशमां

मन्तरादपि च तल्लु आकाशं आशदानमहोदानम् इति श्रुपितं ५ च। ततः स भ्रमणो भगवान् महावीरः क्रो
 छाकात् सन्निवेशात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य जनपदविहारं विहरति ॥मु०८३॥

टीका—‘तृणं समणे’ इत्यादि ततः श्रमतिगमनानन्तरं, तल्लु भ्रमणो भगवान् महावीर कुर्माग्रा
 मात् निगच्छति निगत्य पूर्वानुपूर्वी—पूर्वोपान्यावीनानां दीर्घकराणाम् आनुपूर्वीम्—परिपाटीम्—क्रमं चरन्—भ्रमणकुर्वन्,
 ग्रामानुगामं चरन्—एकस्माद् ग्रामाक्षरं ग्राम गच्छन् सुखं मुखेन विहरन्—यत्र कोष्ठाक सन्निवेशं तत्रैव तथा
 गच्छति। तत् चरन्—तदन्तरं नल्लु स भ्रमणो भगवान् महावीरः पटस्रपणपारणकै—पटस्रपणपारणादितसे मित्ताचर्याये
 पर्यन्तं बहुल्य—बहुलनामकस्य ग्राह्यस्य स्रमणमुपगच्छति, येन बहुलेन सक्तिबहुमानेन—मत्तया प्रचुरसत्कारेण
 च पाप्मिणत्वद्वारे—करपात्रे क्षीरे—पायसं दधम्, भगवता—भीमीरस्तामिना तेन क्षीरेण पारणकं कृतम्।

सन्निवेशं स निकछे क्षीर निकल कर जनपद में विचरने लगे ॥मु०८३॥

टीका का अर्थ—लक के चले जाने के पश्चात् भ्रमण भगवान् महावीरने कुर्माग्राम से विहार
 किया और पूर्ववर्ती तीर्थक्षेत्रों की परम्परा से विचरते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव सुखपूर्वक विहार करते हुए
 गाँव छोड़ना सन्निवेश या बँहा पवारे। काष्ठाम सन्निवेश में भ्रमण भगवान् महावीरने पटमक (बेछे) के
 पारणे के दिन मित्ताचर्या के लिये भ्रमण करते हुए बहुलनामक ग्राह्य के घर में प्रवेश किया। बहुत
 ग्रामने सक्ति और अत्यन्त सत्कार के साथ भगवान् के कर—पात्र में क्षीरका दान दिया। भगवान् क्षी-
 रीरसमुने तय क्षीर से पारणा किया।

इहभीनी बौध्वा (५) आश्रमार्थं ‘अहोदान-अहोदान’ ने। अथनाह दथे। होव्वाह सन्निवेशार्थं नीझी अजवान
 भदावीर आनुग्रामुना प्रदेसार्थं विचरन्वा कात्वा, (२०८३)

टीकोने आर्ध—यत्तु आहवा अथा पछी श्रमणु अजवान भदावीर कुर्माग्राम विहार कथे अने पूर्ववर्ती
 होव्वाहसन्निवेशार्थं अथपु अजवान भदावीर पटमक (छे) ना पारव्वाने दिवसे, जोवरीने भाटे इस्ता इस्ता
 जहुं नभना ग्राह्यद्वारां वरमा प्रवेश कथे जहुं ग्राह्ये कथित अने अत्यन्त सत्कार थावे अजवानना कर—पात्रार्थं
 क्षीर बहोवावी, अजवान भीवीरसमुने ते क्षीरभी पायस कथे पायसां पछी आमुक जोवलीध अहनाह इय २०८३

ततः=पारणानन्तरं खलु तेन द्रव्यशुद्धेन=शुद्धद्रव्येण प्रासुकैषणीयाशनादिरूपेण, दायकशुद्धेन=द्रव्यतो भावतश्च शुद्धेन दात्रा, प्रतिग्राहकशुद्धेन=निरतिचारतपःसंयमसम्पन्नेन प्रतिग्राहकेण त्रिविधेन=द्रव्य-दायक-प्रति-ग्राहकभेदात् त्रिप्रकारकेण, त्रिकरणशुद्धेन=दायकशुद्धेन मनोवाक्कायलक्षणकरणत्रयेण भगवति=श्रीवीरे क्षीरं प्रति-लम्बिते=प्रतिग्राहिते सति तस्य बहुलस्य ब्राह्मणस्य गृहे इमानि=अनुपदं वक्ष्यमाणानि पञ्च=पञ्चसंख्यानं दिव्या-नि=देवकृतानि वस्तूनि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा वसुधारा-स्वर्णवृष्टिः वृष्टा देवैः कृता १, दशार्दवर्णानि-पञ्चवर्णानि-कुसुमानि-पुष्पाणि निपातितानि=वर्षितानि २, चैत्योत्क्षेपः=चन्द्रवृष्टिः कृतः ३, दुन्दुभयः आहताः=ताडिताः ४, अन्तराऽपि खलु आकाशे-‘अहो दानम्’ इति घुपितम्=उच्चैरुचारितं देवैः। ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरः, कोट्टाकात् संनिवेशात् प्रतिनिष्काम्यति=प्रतिनिःसरति, प्रतिनिष्काम्य=प्रतिनिःसृत्य जनपद-विहारं विहरति ॥सू०८३॥

पारणा के अनन्तर प्रासुक एषणीय अशनादि रूप द्रव्य से शुद्ध द्रव्य और भाव से शुद्ध, दाता के कारण तथा अतिचार रहित तप और संयम से सम्पन्न ग्राहक (पात्र) के शुद्ध होने से, इस प्रकार द्रव्य, दाता और पात्र, तीनों शुद्ध होने से, तथा दाता के मन-वचन-काय-रूप तीनों कारण शुद्ध होने से भगवान् वीर को बहराने पर उस बहुल ब्राह्मण के घर में आगे कहीं जाने वाली पाँच देवकृत वस्तुएँ प्रगट हुईं। वे इस प्रकार हैं-(१) देवों ने स्वर्ण की वृष्टि की, (२) पंच वर्ण के कुसुम वरसाये (३) वस्त्रों की वर्षा की (४) हुंदुर्भियाँ बजाई, (५) आकाश में ‘अहो दान, अहो दान’ का उच्चस्वर से नाद किया।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर कोट्टाग सन्निवेश से निकले और निकल कर जनपद-विहार विवरने लगे ॥सू०८३॥

शुद्धिथी, द्रव्य અને ભાવથી શુદ્ધ એવા દાતાને કારણે તથા અતિચાર રહિત તપ અને સંયમવાળા ગ્રાહક (પાત્ર)ના શુદ્ધ હોવાને કારણે આ રીતે દ્રવ્ય, દાતા અને પાત્ર ત્રણેની શુદ્ધિ હોવાથી, તથા દાતાના મન વચન કાય રૂપ ત્રણે કસણ શુદ્ધ હોવાથી, ભગવાન મહાવીરને વહોરાવવાથી તે બહુલ બ્રાહ્મણનાં ઘરમાં આગળ બે કહેવાશે તે પાંચ દેવી વસ્તુઓ પ્રગટ થઇ. તે આ પ્રમાણે હતી-(૧) દેવોએ સુવર્ણની વૃષ્ટિ કરી (૨) પાંચ રંગના પુષ્પો વરસાવ્યાં (૩) વસ્ત્રોની વૃષ્ટિ કરી (૪) હુંડિભિ નાહ થયો (૫) આકાશમા “અહો દાન, અહો દાન” નો ઉચ્ચસ્વરે નાદ કર્યો. ત્યારપછી શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે કોટ્ટાગ સન્નિવેશમાંથી બહાર નીકળીને જનપદ-વિહાર કરવા માંડ્યો. (સૂ.૮૩)

मृत्पू—एषण से विहरमाणे भगवं पढम पिचाउम्मासम्मि अत्थियं गाम समणुपचे । तत्थ ये सुल-
 पाप्पिजलसस जयत्तायणे रात्रो काउसगो ठिए । दुइयस्से सो जलसो सयपगहिं भणुसरतो भगवं उवसगो इत्थ
 पुण सो दंसमसगाइ समुप्पाइय पहुं ठेरिं दीसीअ । तेण उवसगोण अक्खुद सयकाणउदं विलोइय विच्छिए उप्पा
 इय ठेरिं दीसीअ । तेण वि अत्थियं अत्थियं पासिय विउम्पिएण मग्गयिसेण मग्गसीविसेण मग्गओ सरी
 रम्मि दीसीअ । तेण वि बायआएण अयम्भिव भवियलं दट्ठं तोण रिन्हा विउत्तिया । ते य पलरणत्तरपा
 एहिं उववीअ । उओ वि भणुत्थियं सयकाणलगं दट्ठं विउम्पिएहिं पुक्कुरापमाणेहिं सुल्लमासुइसुरेहिं सुयरेहिं
 फावीअ । तेअ वि अत्थियं प्राणिसण्यो विलोइय सजो समुप्पाइएणं कुल्लिमगहिलदवगोण करिणा उववीअ ।
 तेण वि दइ पिरं अत्थियल दट्ठं विउत्तिएहिं स्तरत्तरनवदाणेहिं उववीअ । तेण पुणो वि पिरं विरसरीं विलोइय पग्गहीए
 चिउत्तिएहिं केसीहिं स्तरत्तरनवदाणएहिं उववीअ । तेण पुणो वि पिरं विरसरीं विलोइय पग्गहीए
 अत्थियएणेहिं वेयाणेहिं उववीअ । एवं सो दुरासओ जलसो पुणं रत्तिं जाव उवसगो कारं—कारं स्वेय
 विष्णो विसब्बो जाओ, परं भवन् अत्थियणे अग्गइए अग्गीणमाणसे विविहमणवकायपुचे चेव ते
 सचे वि उवमगो सम्मं सरीअ, तमीअ, तित्तिवलीअ, अट्ठियासीअ । तएणं से जलस्से ओहिणा पहुं मणसावि
 अट्ठियं दइ आमोणिअ आहं तमासापरं पहु सयावराहं तमावियं कंदर नमसा, वट्ठिआ नमसिआ सये
 ठाणं गओ । तेण काउणे तेणं समएणं समणे मग्ग मग्गवीरे तत्थ नं अट्ठा—हिं मासदलमणेहिं चाउम्मास वइक्क
 मिए अट्ठियाओ गामओ पट्ठिविरत्तमइ पट्ठिविलमिआ पवणुअ अत्थिइयविहारेण विहरमाणे सेयंयियं
 पयारिं पट्ठिए । इए०८४॥

छाया—उतः सलु स विहरन् भगवान् प्रपमे चतुर्मासे अस्थिकं ग्रामं समनुभासः । तत्र सलु शून-
 पाप्पियसस्य पलाज्जयतने रात्रौ कापोत्सर्गं स्थितः । दुर्लभाः स यथाः स्वमकृतिमनुसरन् भगवन्तमुपसर्गोपति ।

मूल का अर्थ—‘तए णं से’ इत्यादि । तत्पश्चात् विहार करते हुए भगवान् प्रथम चतुर्मास अस्थिक
 ग्राम में पपारे । वहाँ शूलपाजिनामक यज्ञ के यज्ञायतन में रात्रि के समय कायोत्सर्ग में स्थित हुए ।
 शून्य भावना पाछे उस यज्ञ ने अपनी मकृति का अनुसरण करते हुए भगवान् को उपसर्ग किया । पछे

भूनेनो अभं—‘तए वं’ इत्यादि विकार करता करता भगवान् प्रथम चतुर्मासों अस्थिक ग्रामभा-
 यथा, तत्र शूलपाजो नामका मकृता यज्ञायतनम् शुचीना समये कापोत्सर्गम् स्थिर एवम् । इह भगवान्वा ते
 यज्ञे, योतानी प्रदृष्टि अनुभावे भगवतने उपसर्गं आप्नुते । तेभ्य उपसर्गोनी यज्ञपरा यत्तु भवी दीप्ति ।

तत्र पूर्व स दंशमशकानि समुत्पाद्य प्रभुं तैरदंशयत् । तेनोपसर्गेणालुब्धं सदधानलुब्धं विलोक्य दृष्टिक्रानुत्पाद्य तैरदंशयत् । तेनापि अविचल्य अतिकम्पितं दृष्ट्वा विकुर्वितेन महाविषेण महाशीविषेण भगवतः शरीरेऽदंशयत् । तेनापि वातजातेन अचलमिव अविचलं दृष्ट्वा तेन क्रुक्षा विकुर्विताः । ते च प्रखरनखरातेरुपाद्रवन् । ततोऽप्यनुद्विग्नं स्वध्यानलग्नं दृष्ट्वा विकुर्वितैरुधुरायमानैः शूलग्रमुखुरैः शूकरैरस्फालयत् । तेनाप्यधिपणं ध्याननिपणं विलोक्य सद्यः समुत्पादितेन कुलिशाग्रतीक्ष्णदन्ताग्रेण करिणोपाद्रवत् । तेनापि दृढं स्थिरम् अविचलं दृष्ट्वा विकु-

तो उसने डांस-मच्छर उत्पन्न करके उन से प्रभु को डँसवाया । उस उपसर्ग से भी भगवान् को अलुब्ध और धर्मध्यान में अचल देखकर विच्छुओं को उत्पन्न करके उन से डँसवाया । उस उपसर्ग से भी अचल और अकम्पित देखकर विकुर्वणा से उत्पन्न किये हुए अत्यन्त विषैले महान् सर्प से भगवान् के शरीर को डँसवाया । जैसे पवन-समूह से पर्वत अचल रहता है, उसी प्रकार उस सर्पदंश से भी भगवान् को अविचल देखकर उसने रीछों की विकुर्वणा की । उन रीछोंने तीखे नाखूनों से उपद्रव किया । उस से भी अनुद्विग्न और ध्यान में संलग्न देखकर विकुर्वणाजनित, घुरघुराते हुए, काँटे की नौक की तरह तीखे दाँत वाले शूकरों से विदारण करवाया । उस से भी त्रिषद को न प्राप्त और ध्यान-मग्न भगवान् को देखकर शीघ्र ही उत्पन्न किये हुए, वज्र की नौक के समान तीखे दाँतों के अग्रभागवाले हाथी से भगवान् का उपसर्ग कर-

पड़ेला उपसर्ग भां डास-मच्छर उत्पन्न करी भगवानने विपुल प्रमाण भां डास-मच्छर करवाव्या. आ वेदनामा भगवान अलुब्ध रहेवाथी, यक्षे गिले उपमर्ग तैथार कथो तेबु पोतानी दिव्य प्रसावडे, जमीन उपर सेऽडे। विंछीओने पेढा कथा आ विंछीओने ऽण पथ, भगवान सडन करी गया, अने धर्मध्यानथी अदित थया नडि. आ अथल अने अकपित दंशावाणा भगवानने नेछ, यक्षे, व्रिले प्रयोग कथो. आ प्रयोगमा, तेबु ओक भडान विधधारी सर्पनी उत्पत्ति करी आ सर्पऽसथी पथु भगवानने अदित थता न नेवाथी, ते वधारे डेपावमान थछ, जंगली पशुओनी विकुर्वणा करी आ विकुर्वणाभां रिंछो उत्पन्न कथो, ओ रिंछीओ पोताना तीथु। अने उव नणेा वडे भगवानना शरीरने उअरडी नाण्यु. आवी वेदनाभां पथु भगवान अडोत रह्यां. आ अडो-दाताने यक्ष साभी थकथे नडि भगवानने उद्वेग विनाना अने असंविग्न नेछ, तेना भिगज कथो अने तेना डोधनी पारा शीशी वधवा लागी. वैडिअ थकित दारा, धूर धूर करता तीक्ष्ण दांतवाणा सुवरे (भूडे) ने उत्पन्न कथो आ सुवरे दारा, भगवानना शरीरतु विदारण करव्यु आमां पथु प्रभुने दद रहेता नेछ, तेबु धथो विधाद अनुसव्ये. वज्रनी अषी नेवा तीया तगनगता दातोवाणे। डाथी तेबु सज्यो, अने ते डाथी दारा, तीन डःण

विभिः सरतसनसरदंदैर्व्यग्रैरुपाद्रवत् । तेनाप्यविवर्लितं दृष्ट्वा विकुञ्चितैः केसरिभिः सरतसनसरदद्राप्रयातैरुपा
द्रवत् । तेन पुनरपि स्थिरस्थिरं विलास्य प्रकृत्याऽपीचविकारैर्वैतालैरुपाद्रवत् । एष स दुरागो यस्य पूजा
राशिं यावत् उपसर्गान् कारं कारं स्नेहलोको विपण्यो जातः । परं भगवान् अविपण्य भगवित्थः अव्ययितः
अदीनमानसः त्रिविधमनोवचःकायग्राप्त एष तान् सर्वान्पुण्यसर्गान् सम्यक् भसात् अतिविसृत प्रख्यास्त ।
ततः तल्लु स यथोऽवधिना प्रभुं मनसाऽप्यविचिंतं दृष्ट्वायुग्य आगप्य समागमार्ं प्रभुं रम्यपराधं क्षामयित्वा

આપુ આ દુઃખથી પણ ભગવાન અચ્છ રહ્યા. જાવો પહોંચે એવો અચ્છ આદમી બોલ તેનો પિત્તો રહેશે. આથી તેણે વીસુ નખ અને ઢાંઢોળાં વામ તૈયાર કરી તેના હાથા અટુલ દુખ આપુ ભવારે થશે જાદિ પણ દુલ્હને કાચી કાઢતા ભગવાનને ભોલા, ભારે તેણે દેશીસિકની વિધુવધાઈ ઉભી કરી. તેના નખ વઢે, પ્રભુનુ શરીર બીશનુ ઉંઝ વેઢતા હોવા છતાં તેણે મંથરન મુખયગા બધાયા ત્યારવાઢ તેનુ વેર અને ક્રોધ શાંત કરવા પોતે વેઢાવનુ રૂપ ધારણ કરી, અત્યવ વિકશળતા જતાવી અનેક ક્ષેત્રો હાથા તેમને અલિપ્ત કરવા પ્રયાસો કર્યા. છતાં તેમને વિવાદીન બોલો પણ પોતે વિવાદપ્રસ્ત શરૂા ને અત્યવ યોરને પામવા લાગ્યો. ભગવાન તો વિવાદવિહીન, કષ્ટપદાહીન, જાન્યસિત, અદીનમાનસ, તથા મન-વચન-કાયાથી શુસિ રહી મંથરકતાને અનુભવવા લાગ્યા. આવા મરણાન્તિક દુઃખોને પશુસન્મદ પ્રભારે સહન કરી, અટુલશક્તિ પેરા કરવા લાગ્યા. આવા ઉગ્રપ્રયોગ પણ ક્રોધને શમાવી કષ્ટ શમાના સુવ ખિલવવા લાગ્યાં. રૂખનુ વેઢન કરતાં ધનુ દિનતા અનુભવી નહિ ને નિશ્ચલતાના શુભને વધારે ને વધારે પ્રમદ કરતાં યમો આ પરી ભવારે બાણુ કે ભગવાન તો મનથી પણ અલિપ્ત થતાં નથી, આમ બાણી કામાના યાત્રર સામ

वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा स्वस्थानं गतः। तस्मिन् आले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महा-
वीरः तत्र खलु अप्ठ्ठाभिर्मासार्धशपथैः चतुर्मास व्यतिक्रम्य अस्थिराद् ग्रामान् प्रतिनिष्क्रम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य
पवन इवाप्रतिहतविहारेण विहरन् श्वेताश्विका नगरीं प्रस्थितः ॥ ५०८४ ॥

टीका - 'तएणं से विहारमाणे' इत्यादि। ततः खलु स विहरन्=क्रमेण विचरन् भगवान्=श्रीवीर-
स्वामी प्रथमे चतुर्मासे अस्थिकं=तन्नामकं ग्रामं रामनुभासः=गतवान्। तत्र खलु श्रुतपाणिग्रन्थ=श्रुतपाणिनामक-
यशस्य यशायतने राज्ञौ कायोत्सर्गे स्थितः। दुर्लभः=दुर्भावनः सः यशः स्वमकृति=निगसरभावम् अनुसरन्=अनु-
गच्छन् भगवन्तुसर्गयति=भगवत् उपसर्गान् करोति। तत्र=उपसर्गेषु मध्ये पूर्वं=प्रथमं सः=यशः, दंशमशकानि-
दंशाश्च=मशका-क्षेति दंश-मशकम् शुद्धजन्तुत्वेनैकवद्भावः, ततो दंशमशकं च दंशमशकं चेति दंश-
मशकानि=दंशानां मशकानां चानेकसमूहान् चैक्रियजत्वा समुत्पाद्य प्रभुं=श्रीवीरस्वामिनं तैः=दंशमशकैः अदं-

नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके अपनी जगह चला गया। उस काल, उस समयमें, श्रमण भगवान्
महावीर ने उस अस्थिक ग्राम में चातुर्मास क्रिया, और चातुर्मास में अर्धमास-तमण-अर्धमास-त्यमण
किया। इस प्रकार भगवान् आठ अर्धमासखमणों से चातुर्मास व्यतीत करके अस्थिक ग्राम से निकले।
निकल कर वायु के समान अप्रतिवन्धिहार करते हुए श्वेताश्वी नगरी की ओर पधारे ॥ ५०८४ ॥

टीका का अर्थ--तत्पश्चात् क्रम से विहार करते हुए श्री वीर प्रभु पहले चौमासे में अस्थिक
नामक ग्राम में पधारे। वहाँ श्रुतपाणि नामक यज्ञ के यशायतन में, रात्रि के समय, कायोत्सर्ग करके स्थित हुए।

वह यज्ञ दुष्ट भावना वाला था। उसने अपने स्वभाव के अनुसार भगवान् को उपसर्ग दिया।
उसने ढांसों और मच्छरों के अनेक समूह चैक्रियजत्ति से उत्पन्न करके भगवान् को उनसे ऋताया।

प्रभु पासे अपराधनी भाशी भागी भाशी भणता तेभने वंदना-नमस्कार कयो. त्पारपणी पोताना स्थणे ते आदथे गथे.
आ क्षण अने आ समये श्रमणु लागवान मक्षवीरे आ अस्थिक गाभमां चातुर्मास कयुं हुतुं. योभासा हरभथान
तेमहे 'अर्ध'मास अमथु' कयो. आ प्रभावे आ आह 'अर्ध'मास अमथु' चातुर्मासयां पूरा करी, तेओ अस्थिक
गाभमाधी विहार करी गयां वायु समान अप्रतिबंध विहारी भनी तेओ श्वेताणी नगरीमां पधायो. (५०८४)

टीकासे अर्थ--त्यारपणी कचे कचे विहार करीने श्रीवीरप्रभु पडेला योभासामां अस्थिक नाभनां गाभमां
पधायो. त्यां श्रुतपाणि नामना यक्षना यशायतनमां गत्रिने वणते श्रयोत्सर्ग करीने उभा रह्यां. ते यक्ष दुष्ट लावना
वाणे. हुतो. तेहे पोताना स्वभाव प्रभावे लागवानने उपसर्गो कयो. तेहे पोतानी वैक्रियजत्तिथी अंस अने मच्छरैना

नृपदं=विधिवान्, तेन=इंद्रमण्डरादौत्यादिदेन उपसर्गोऽयमुपसर्गः=समीचीनव्यानमन्ने
 ममुं निलोभय=दृष्ट्वा स हृषिकान् उत्पाद्य तैः=हृषिकैस्तस्य अर्धंययत् । तेनापि अविचलं=स्थिरम् अतएव=अवि-
 कम्पितं ममुं दृष्ट्वा स विद्वद्वितेन मरासिपेज=दुर्गारापियवता मराडीनियेण=विशालकायसर्पेण भगवतः स्त्रीरे अर्धं
 श्रयत् । तेनापि वादनागेन=वनसमूहेन=आत्यया अवच=पर्वतमिव अविचलम्=अग्रकर्म्यं तं दृष्ट्वा तेन यक्षेण मुस्ता=
 मष्टिकाः विद्वकिताः । ते च प्रलानलरपातैः=वीक्ष्यनलप्रहारेस्तं ममुम् उपाश्रयन् । ततोऽपि ममुद्रिग्नम्=अग्र
 स्तस्य स्वप्यानभनम्=ग्रतस्वपानासाकं प्रष्टुं दृष्ट्वा विद्वकिताः दुर्गुरायमाजोः=दुर्गुराश्वन् कुर्वन्निः शलाग्रमूलसुरैः=
 शलाग्रमागववीक्ष्यवन्तौ शुक्रैः=शरहोः अस्त्राभ्ययतु=अप्यदारयत् । तेनापि अविषण्य=विषादरहितं ध्याननिपण्य=

भगवान् दांस=मच्छरौ के द्वारा उत्सव किये उपसर्ग से सुख्य न हुए, और प्रशस्त ध्यान में लीन रहे तो
 उसने विद्वकों को उत्सव करके उनसे बँसवाया । इस उपसर्ग से भी भगवान् को विचलित या कंपित
 हुए न देल उसने नैकियवक से उत्पन्न किये गये उग्र विषवाछे विशालकाय सर्प से भगवान् के स्त्रीर
 में बँसवाया । भगवान् इससे अर्कपित रहे, जैसे पवन के समूह से पर्वत अर्कपित रहता है, तब उस यज्ञने
 माछुओं=तोड़ों की विद्वक्या की । माछुओं ने अपने तीक्ष्ण नसों से भगवान् को उपद्रव किया । यज्ञ ने देला
 कि भगवान् उससे भी आस को प्राप्त न हुए और आत्मस्थान में लीन हैं । तो उसने विद्वक्या से उत्पन्न
 किये हुए दुर्गुर अश्व दारवे हुए, काट की नौक के समूह तीक्ष्ण दाँतों बाछे शुक्रों से भगवान् को विदा-
 रण कराया । उससे भी भगवान् को विषाद न हुआ और वे ध्यान में स्थिर रहे तो उसने सत्काल

अनेक समूह उत्पन्न करीने जनवानने तो करदाब्ध। जनवान दांस भच्छये दाश उत्पन्न करदेव उत्पन्न की सुख्य
 यहाँ नहीं आने प्रशस्त ध्यानर्थां लीन रहा त्वादे तेवै वीछिञ्ज। उत्पन्न करीने तेभना दाश दास देवशब्धं। आ उत्प-
 न्नरथी पञ्च जनवानने अस्त्राभान के कंपित यत्ता न लेछने तेवै वैद्विय शक्तिशी उत्पन्न करदेव छत्र विषवाणा वि-
 द्वाजदाभ सर्व दाश जनवानना शरीर पर दास भशब्धं। जेभ पवनना समूह साथे पर्वत स्थिर रहे छे तेभ अत्र
 वान तेनाशी पञ्च अर्कपित रहा त्वादे ते यज्ञे रीछिञ्ज निगोश्व भुम् रीछिञ्जे पोताना वीक्ष्य नलेश्वी जनवानने
 भीम आपी। यज्ञे जेमु छे जनवान तेनाशी पञ्च यज्ञ पाठना नहीं आने आत्मध्यानर्थां लीन रहा छे त्वादे तेवै
 वैद्वियशक्तिशी उत्पन्न करदेव दूर दूर नाद करत्तां भंडानी आशी जेवां वीक्ष्य इतिवाणा श्वयेश (शुक्रैः) वटे अत्रवानज
 विराण्ण भ्रांशु, तेभी पञ्च जनवानने निपाठ न शये आने तेज्जा ध्यानर्थां स्थिर रहा त्वादे तेवै पञ्चन। आत्र-

ध्यानान्नस्थितं प्रभु विलोक्य=दृष्ट्वा सद्यः समुत्पादितेन=तत्कालनिष्पादितेन कुलिशाग्रतीक्ष्ण-दंष्ट्राग्रेण=वज्राग्रव-
भिश्चितदन्ताग्रभागेन करिणा=दंष्ट्रितना उपाद्रवत=उपसर्गयुक्तमकरांत। तेनापि दृढं=दृढतायुक्तं स्थिरं=स्थैर्यसम्पन्नम्
अत एव अचंचलं=भनोवाक्कायेन कायोत्सर्गतोऽचलं त प्रभुं दृष्ट्वा स यक्षो विकुर्वितैः खरतरनखरदंष्ट्रैः=अति-
तीक्ष्णनखदनैः व्याघ्रैः प्रभुमुपाद्रवत। तैनापि अचंचलितं प्रभु दृष्ट्वा स यक्षो विकुर्वितैः केसरिभिः=सिंहः
खरतरनखरदंष्ट्राग्रघातैः=अतितीक्ष्णनखदन्तमहारैः उपाद्रवत। तेन पुनरपि स्थिरं=स्थितचित्तं स्थिरशरीरं=कायो-
तसर्गांचलनाभावेन स्थिरशरीरयुक्तं प्रभुं विलोक्य स यक्षः प्रकृत्या=स्वभावेन अतीवविरुरालैः=अत्यन्तमयङ्कुरैः
वेतालैः=व्यन्तरदेवविशेषैः उपाद्रवत। एवम्=अनेन प्रकरणेन स दुराशयः=दुष्टस्वभावो यक्षः पूर्णो रात्रिं यावत्=
सम्पूर्णरात्रिपर्यन्तं उपसर्गान् कारं=कारं=वारं वारं कृत्वा खेदखिन्नः=परिश्रान्तः अत एव=विपण्णः=विषादयुक्तो
जातः, परं=किन्तु भगवान् महावीरस्वामी अविगणः=विषादरहितः अनाविलः=अफ्रलुपितः=द्रेपवर्जितः अन्य-

ही वज्र के अग्रभाग की तरह तीखे दन्ताग्रभागों वाले हाथियों द्वारा उपसर्ग किया। उस पर भी भगवान्
को दृढ, स्थिर अतएव मन वचन काय से अचंचल देखकर यक्ष ने अत्यन्त तीखे नाखूनों एवं दांतों वाले
व्याघ्रों द्वारा उपसर्ग किया। तब भी प्रभु अचंचल रहे तो यक्ष ने अतिशय तीखे नखों और दाहों के
अग्रभाग वाले सिंहों द्वारा उपसर्ग कराया तब भी भगवान् का न तो चित्त ही चंचल हुआ, और न
शरीर ही। वे कायोत्सर्ग से विचलित न होकर जब स्थिर ही बने रहे, तो यह देख कर यक्ष ने स्वभाव
से विरुराल वैताल नामक व्यन्तरदेवों के द्वारा भगवान् को सताया। इस प्रकार उस दुष्टस्वभाव वाले
यक्ष ने सारी रात उपसर्ग किये। उपसर्ग करके वह स्वयं थक गया, इस कारण उसे विषाद हुआ, परन्तु
भगवान् महावीर स्वामी को विषाद नहीं हुआ। वे द्रेप से अछूते रहे। उन्होंने ने उद्वेग का अनुभव

भाग जेवां तीषुां ढंताग्रभागेवाणा ढाथीओ। द्वारा उपसर्ग कथी, छतां पणु भगवान्ने दढ, स्थिर तथा मन-वचन
काया वडे अविविध जेधने यक्षे आत्यंत तीक्ष्ण नभ्र अने हातवाणा वाघो द्वारा उपसर्ग कथी, तो पणु प्रभु यक्षाय-
मान न थया त्यादे यक्षे अतिशय तीषुां नभ्र अने दाढेना अग्रभागेवाणा सिङ्घो द्वारा उपसर्ग कथी। तो पणु
भगवाननुं चित्त यक्षायमान न थयुं अने शरीर पणु यक्षायमान न थयुं. तेओ कायोत्सर्गाथी विचलित न थतां
न्यादे स्थिर न रह्यां त्यादे ते जेधने यक्षे विकराण वैताल नामना व्यंतर देवो द्वारा भगवान्ने सताव्या.

आ प्रभाखे ते दुष्ट स्वभाववाणा यक्षे आथी रात उपसर्गो कथी. उपसर्ग करीने चोते न थक्री गथो. ते
आखे तेने विषाद थयो. पणु भगवान् महावीर स्वामीने विषाद न थयो अने द्रैप तेभने स्पर्शा थकथो नह्यी. तेभना

पितॄन्नुद्वेगपरिताः श्वदीनमानसः=दीनतायुक्तमनोरहितः, तथा विविधमनोवृत्तिकायगुप्तः=मिश्रितैः=करण-कारणा
 नुमोदनेः कृत्वा मनोवृत्तः=कौतूहलः स-नेत्रं सायं यत्कृत्वा सर्वानप्युपसर्गाय सम्यक् असहस-मयामावेन, अस
 मत-क्रोधाभावेन, अतिविसर्ग-वैभवाकरणेन, अध्यात्म-निबलतया ।

ततः सखु स यतः अग्रपिना=अग्रविज्ञानेन प्रभुं मनसाऽपि अविचलितयुग्म=स्वप्यानादच्युतमतपव हृदं=
 प्रयसस्येययु, आगृह्य=आत्मा आर्षं=तत्सम्यग्दर्शित-भावात्तयुग्मसागरं=परापकारसरनगुणसमुद्रम् प्रभुं=भ्रीमहा
 वीरस्वामिनं स्वपराप=निर्भं बहुविधोपसर्गाकरणन्ययपराभं सामयित्वा बन्धते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्वित्वा च
 त्वं स्वानं गत ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये धर्मयो भगवाय महावीरः तत्र=अस्यिच्छामे भट्टामि.=भट्टसंख्ये
 मासाईसंख्यैः बहुमाससप्तवैरित्यर्थः चतुर्मासं व्यतिक्रम्य=अविशङ्क्य अस्मिकाय ग्रामात् प्रतिनिष्क्रामति=प्रति
 नि सरति, प्रतिनिष्क्रम्य पवन इव अगतिविविधारेण=अगतिव्यवहारेण-विहरन्-वेताम्बीकां=वृद्धास्यां नगरी
 प्रस्थितः । ॥६०८४॥

नहीं किया। उनके मन में दीनता का प्रवेश न हुआ। वे कूठ-कारित-भनुमोदना-रूप शीनों कर्णों से
 युक्त मन रचन काय से गुप्त रहे, और यत्न द्वारा किये हुए समस्त उपसर्गों को निर्भय भाव से, अन्तिपूर्वक
 अमीनता के साथ तथा निश्चल रूप से सहन करते रहे। तब उस यज्ञने अग्रविज्ञानसे जाना कि प्रभु तो
 मन से भी ध्यान से विचलित नहीं हुए। यही नहीं, उनकी प्रबल स्थिरता भी उसने देखी तब अग्रा
 क्षमाके सागर-दूसरों द्वारा किये अपकार को सहन करते रूप के समुद्र-भगवान् से अपने अपराध की
 क्षमा मांगी। उन्हें श्रद्धा की, नमस्कार किया। बन्धना और नमस्कार करके वह अपने स्थान पर चला गया।

उस काल और उस समय में धर्मग भगवान् महावीर ने उस अस्थिक ग्राम में आठ अर्धमास समय
 पर पीछी जसर न सड़ तेभना मनभा दीनतागे प्रवेश कये नई। तेका हुवाधरित भनुमोदना रूप वखे कार-
 वोधी बुद्ध भन-वन्धन हवाधी उपय रकां जने यक्ष दाश कसयेक्ष सधणा उपसवेनि निबध भावधी आन्तिपूर्वक
 अमीनता साथै तथा निश्चल रूपे सहन कस्तां रकां त्वाहे ने यक्षे अग्रविज्ञानधी व्यक्तु हु भगवानेने मनधी पक्ष
 भानभाधी विचलित कर्वा नही जेदक्ष न नई पक्ष तेभनी प्रणज स्थिरता यक्ष तेखे जेक्ष त्वाहे अपराध क्षमाया
 सागर-नील दाश कसयेक्ष अपकारने सहन करी देवाना शुक्ला सागर-काजवान पासे तेखे येताना अपराध भटे
 कथा भाधी तेभने बधना करी नभकार कले नइना जने नभकार करीने ते येताने स्थाने ज्ञाने अये।
 ते धावे जने ते कसये क्षम्यु काजवान भकावीरे ते अक्षिक जाभभां जगद भर्माध कपज (आठ वार ५६२ ५६२

मूलम्—अह य सेयंवियाए णयरीए दो मग्गा संति—एगो वको वीओ उड्जु य । तत्थ जे से उड्जु-मग्गे तत्थ एगा वियडा महाडवी अत्थि । तीए वियडाए महाडवीए चंडकोसिओ णांमं एगो दिट्ठिविसो कालो न्व महाविगरालो कालो वालो णिवसमाणो आसि । सो य नियकूराए तेण मग्गेण गमणाऽऽगमणं कुण-माणे पंथजणे दिट्ठीए जालेमाणे घाएमाणे मारेमाणे दंसेमाणे विहरइ । सो तीए महाडवीए परिभमिय परि-भमिय जं कंचि सउणगमवि पासइ तंपि णं डहइ । तस्स विसप्पहावेण तत्थ तणाणि वि दड्ढाणि, ण य पुणो नवीणाणि तणाणि समुत्तभवन्ति । एएण महोवदवेण सो मग्गे ओरुद्धो आसी । तेण, उड्जुमग्गेण गच्छमाणं भगवं गोवद्वारगा एवं वंसु—“रे भिक्खु ! एएण उड्जुणा मग्गेण मा गच्छाहि, वंकेण गच्छाहि, जे णं कण्णो वुट्ठइ तेण कण्णभूसणेण वि किं पओअणं ? , उड्जुमग्गे महाडवीए एगो महाविगरालो दिट्ठिविसो सप्पो चिट्ठइ, सो तुमं भक्खिहइ” । तं सोच्चा पट्ट णाणवलेण चिंतीअ-जं सो सप्पो जइवि उग्गकोहपगडी तहवि सुलह-वोही अत्थि, जीवस्स कंचिवि अणिट्ठकरिं पयडिं तिब्बत्तेण उदयावलयं पविट्ठं दह्णं जणा तं परिवट्ठणसंभ-ववाहिरं मन्नति, वत्थुओ सा तहा भविउं न अरिहइ, मणस्स कोऽवि असो जया वियडो होइ तथा सो उचिएण उवाएण परिवट्ठिउं सक्किजइ । एयावइयं चेव नो, किं तु अणिट्ठसस्स जावइयं तिव्वं वलं पडिक्खे विसए हवइ तं तावइयं चेव अणुक्खेऽवि विसए परिवट्ठिउं सक्किजइ, काइवि वलवइ चित्तिडिं इट्ठा वा अणिट्ठा वा होउ, सा अइसइओवोगियाए गेज्जा एव, जओ दुविहाऽवि चित्तिडिं समाणसामत्थवइ हवइ, परमिमो भेओ—एगा वट्टमाणक्खणे सुहे पओइया, अन्ना य अमुहे, तह वि दुण्हं कज्जसाहणसामत्थं तुल्लं चेव गणणिज्जं । जीए सत्तीए सुहा वा अमुहा वा परिणामा हवति, सा सत्ती अवस्सं इच्छणिज्जा एव सुणेयन्वा, जहा-आ-मन्नाणं साउपक्कन्नाए पायणे अणेगोवओगित्थूणं भासरासीकरणे य समत्था सत्ती एगाओ चेव अग्गिओ समुत्तभवइ तहा सुहाऽसुहकायव्वपरायणा सत्ती अण्णो एगओ एव अंसाओ उब्भवइ, परं तीए सत्तीए उवओगं (पट्टह-पट्टह दिन के आठ चार के) तपत्थरण करके वह चतुर्मास व्यतीत किया । चतुर्मास व्यतीत करके भगान् अस्थिक ग्राम से निकले और वायु के समान अप्रतिबंध विहार करते हुए श्वेताम्बी नामक नगरी की ओर पधारे ॥सू०८४॥

(पट्टह-पट्टह दिन के आठ चार के) तपत्थरण करके वह चतुर्मास व्यतीत किया । चतुर्मास व्यतीत करके भगान् अस्थिक ग्राम से निकले और वायु के समान अप्रतिबंध विहार करते हुए श्वेताम्बी नामक नगरी की ओर पधारे ॥सू०८४॥

(दिवसदु) तपत्थरषु करीने ते यातुर्मास पसार क्खुं ओटले हे चार मासमां इत्थ आह दिवस आहार-पाणी दीधां. यातुर्मास पसार करीने लगवान अस्थिक ग्रामथी नीकत्थां अने वायुनी नेम अप्रतिबंध विहार करता करता श्वेताम्बी नामनी नगरीमां पधार्थां. (सू०८४)

पितुः=उद्देश्यारहितः शरीरमानसः=दीनतापुत्रकमनोरीतिः, तथा त्रिपिपमनोवचः=आपगुणः=त्रिपिपैः=कुरण-कारणा
नुमोदने कुरण मनोवचः=चर्यैर्गुणैः सन्नेर साय यमकुणान् सर्वानप्युपसर्गाच्च सम्यक् असह-प्रयाभावेन, अतः
मन-क्रोचामावेन, अतिविसह-दैन्याकरणेन, अद्यास्त-निश्चलतया ।

ततः सखु स यतः अग्रयिना=अग्रविद्वानेन प्रभुं मनसापि अविचक्षितम्=स्वध्यानादभ्युपगतम् एव रहन्
प्रसक्त्यैषम्, आमुष्य=इत्या आयागं=तत्सम्पदंरहित-महान्तम् समासारं=परापकारमहान्तगुणसमुद्रम् प्रभुं=धीमहा-
वीरस्वामिनं स्वाराधनं=निर्लेपं बहुविधोपसर्गकरजन्यमपराधं सामर्थ्येन नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा च
सं स्थान गत ।

तस्मिन् ढाले तस्मिन् समये धर्मबो मगवाच मगवाचः तत्र=मासिकप्रामे अष्टाभिः=अष्टसप्तै
मासादशभ्यैः चतुर्मासैरित्यर्थः चतुर्मासं व्यतिक्रम्य=अतिशय अत्यिकाद् ग्रामात् प्रतिनिष्क्रामसि=मति
निस्तरसि, प्रतिनिष्क्रम्य एवम् इव अमतिवचिदारेण=अप्रतिबन्धविहारेण-विहरन्-वेताम्बीकां=वृक्षाख्यां नगरीं
प्रस्थिता । [६०८५]

नहीं किया। उनके मन में दीनता का प्रवेच न हुआ। वे कुत-कारित-अनुमोदना-रूप वीनों कालों से
युक्त मन बचन काय से गुप्त रहे, और यत् द्वारा किये हुए समस्त उपसर्गों को निर्मय मात्र से, छान्तिपूर्वक
शरीरानता के साथ तथा निश्चल रूप से सहन करते रहे। तब तब यत्ने अविद्वानसे जाना कि प्रभु तो
मन से भी ध्यान से विचक्षित नहीं हुए। यही नहीं, उनकी प्रबल स्थिरता भी उसने देखी तब अयाह
समाके सागर-तटों द्वारा किये अपकार को सहन करने का के गुण के समुद्र-मगवान् से अपने अपराध की
समा मानी। उन्हें वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके वह अपने स्थान पर चला गया।

उस काल और उस समय में प्रमद मगवान् महावीर ने उस अत्यिक ग्राम में आठ अर्धमास तप्य
पर पीछली अक्षर न बरि तेभना अनर्था दीनताते प्रवेश कये नहीं, तेजो हुतकारित अनुमोदना इय तये शर-
देयी युक्त मन-वचन अयाशी सुप्त रहलं अने यक्ष दाश कयवेक खण्डा उपसजेने निमग आवबी दान्तिपूर्वक
अदीनता साथे तथा निश्चल रूपे सहन करवा रहलं त्यारे ने यक्षे अपविद्वानको अपरमु हु अग्रयानेन भनवी पय
धानाभांशी निश्चलित यवां नहीं, कोटस अ नहीं पय तेभनी प्रबल स्थिरता यव तेये जेहं त्यारे अपराध खेमाना
सागर-पीठ दाश कयवेक अपकारने सहन करी देखाना युक्त सागर-साजवान् पावे तेये येताना अपपराध भाटे
कमा भायी तेभने वन्दना करी नमस्कार कये। वन्दना अने नमस्कार करीने ते येताने खाने खाये अये।

प्रमद अष्टा मास आठ अर्धमास (मा) बार पहर पहर

नान् दृष्ट्या ज्वलयन् घातयन् मारयन् दशनं विहरति । स तस्यामटव्यां परिभ्रम्य परिभ्रम्य यं कांचिद् शकु-
नरूपमपि पश्यति, तमपि दहति, तस्य त्रिपद्मभावेण तत्र तृणान्यपि दग्धानि, न च पुनः नवीनानि तृणानि समुद्भव-
न्ति । एतेन महोपद्रवेण स मार्गोऽचरुद् आसीत् । तेन ऋजुमार्गेण गच्छन्तं भगवन्तं गोपदारका एवमवादिषुः—
“रे भिक्षो ! एतेन ऋजुना मार्गेण मा गच्छ, वक्रेण गच्छ, येन कर्णखट्वयति, तेन कर्णभूषणेनापि किं प्रयो-
जनम् ? , ऋजुमार्गे महाटव्यामेको महाविकरालो दृष्टिविषः सर्पस्तिष्ठति, स त्वां भक्षिष्यति । तच्छ्रुत्वा प्रभुर्ज्ञा-
नवलेनाचिन्तयत्—“यत् स सर्पो यद्यपि उग्रक्रोधप्रकृतिः, तथापि सुलभवोधिरस्ति, जीवस्य कांचिदपि अनिष्ट-
करीं प्रकृतिं तीव्रत्वेन उदयावलिक्तां प्रविष्टां दृष्ट्वा जनस्तां परिवर्तनसम्भववाह्यां मन्यन्ते, वस्तुतः सा तथा

से आवागमन करने वाले पथिकों को अपनी दृष्टि के विष से जलाता, घात करता, मारता और डँसता था ।
वह उस अटवी में घूम-घूम कर जिस किसी पक्षी को भी देखता, उसी को भस्म कर देता था । उसके
विष के प्रभाव से वहाँ का घास भी जल गया था । वहाँ नवीन तृण तक भी उत्पन्न नहीं होते थे । इस
महान् उपद्रव के कारण वह मार्ग रूक गया था अर्थात् उधर से कोई आता-जाता नहीं था ।

उस सीधे मार्ग से भगवान् को जाते देख कर गोपदारकों ने इस प्रकार कहा—अरे भिक्षु ! इस
सरल मार्ग से मत जाओ; चक्रदार रास्ते से जाओ । जिमसे कान टूट जाय, उस कान के गहने से क्या
लाभ ? इस सीधे मार्ग में, महाटवी में अत्यन्त विकराल दृष्टिविष सर्प रहता है, वह तुम्हें खा जाएगा ।

यह सुनकर भगवान् ने ज्ञान के वल से सोचा—वह सर्प यद्यपि उग्र क्रोधशील है, फिर भी

वटेभार्जुओने ते सर्पं कुरतापूर्वकं चोताना दृष्टिविष वटे भाणी नाभतो, घात कुरतो—भारतो अने उसतो पणु डेतो.
आ अटवीमा ने डेह पक्षा अर्द्धोतर्द्धो डे तेने पणु भाणीने बरस्म करी नाभतो । तेना विषना प्रभावे त्यांनुं
धास पणु भणी गथुं न्यां धास भणी गथुं डतुं त्या नवा अंङ्करो पणु कुरता नडि. आवा उपद्रवने वीधे ते
मार्गं सर्वतर जवाआववा भाटे अंध थयो डेतो तेथी त्यांनुं आवागमन व्यवहार अटवाड पडथे डेतो.

भगवानने सीधे मार्गे श्वेतांथीनगरी तरफ जतां नेह जोवाणीआओ आ प्रभाओ कडेवा दाग्या डे ‘डे
सिधु ! आ सरणमार्गं नडि पडडतां दांणा मार्गे जवानु राणो. जेनाथी काननी छुटीओ पटी भय ते सोनाने
(धरेणाने) पडेरवाथी शे। दाब ? आ सीधा मार्गं भां भडान् अटवी मध्ये ओक काणो इच्छिधर नाग रहे छ ते तमने
भार्ह जशे. ’ आणुं सांभगी लगवाने ज्ञान द्वारा जण्णी वीधु डे आ सर्पने। ओध डेल सुधी हर थयो नथी, छतां ते
आत्मा सुदल जोधी तो जर्रे छे. डेह पणु एवनी वर्तमानदशा अनिष्टकारी प्रवर्तती होय अने आ अनिष्टपणु

सुरे अमुरे वा कुम्भा, इषेयावश्य अस्तिस्व । मणुस्तथैव एवारिसो वियारो मममरियो दीसह, ज विष्वा
अभिप्रायविशिगरी सची सुखो सुखो विकारिय वारि करणिजेचि, परं चेण सह एयं विस्तरति नं मणुस्सत्स
ना सची नावर्यं अपिहं काठं सकेर सा वेव सची इममि तावर्य वेव काठं सकेर, जहा जो चकचदी
नीए सचीए सचमनरयुधविनोमाहं जावथाहं हिसाहूरुम्माह अज्जिउ सकेर, सो वेव चकचदी जइ ते
सपि इहकजे सेमोपइ, ठो तावथाय चेय अहिसाहूरुम्माहं अज्जिय मोवसममि एणु सकेर । जे जीवा सुर
ममुरे वा किपि क्कत्त न सकेवि, जे य वेगदीजा गल्लिवल्लिरा विव होलि, जे य जढा विव जगसचाए आहणिज्जवि,
जेमि पामरयाए मोगल्लससाए शरिरस्स पमायस्स य अवही एव मय्यि, एवारिसा जीवा न किपि काठं स
केति । जेसु पुण अचवत्सोरियायइ होइ ते सुरे अमुरे वा एजाए होहु इच्छणिज्जा एव । जमो अमुर
एजाएवि ते अचवत्सायं जेण अयंसेण निग्गच, तस्स अयंसस्स सचीवि लओवसममावेण वेव जीवेण पा
पिज्जइ । सा सची निमिन्नं पारिय जदिहं परिविउं सक्किअइ, अओ तस्य गमणे लाहो एव—ति चित्तिप मगव
जेणेव उज्जुणा मग्गेय पट्ठिइ । अया मगवं तीए अढवीए पट्ठिइ, तया तस्य धूसी पाणिण गमपागमपाभा-
वामो वराज्जाविपरिया जहट्ठिया वेव । जमनाल्लियाओ जलामायेण सुकाभो । पुष्पा इवला तम्बित्तलानाए
इइहा सुका य । सट्ठियपडियजुअपणाइसाएव यूमियागो आच्छाएओ, वम्मीयसइस्सेहिं सकठो लुचमगो य
आसी । कुडीरा सक्के यूमिसाइओ संजाया । एवारिसीए महाढवीए मगवं जेणेव वडकोसियस्स वम्मीयं चेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छिअ तस्य काउस्तगेण ठिए । ॥ ५७०८५ ॥

छाया—अयं च श्रुताग्निकायाः तगर्याः द्वी मार्गा स्तः एको वक्रो द्वितीयं मृजुय, तत्र यं स मृजु
मार्गस्तत्र एका विकृता महाटवी अस्ति । तस्यां विकृतायां महाटव्यां वण्टकौशिको नाम एको इष्टिबिपः काल
इव महाविकरालः कालो व्यालो निवसन् आसीत् । स च निजकूरतया तेन मार्गेण गमनागमनं कुर्वतः पान्यज

मूल का अर्थ—‘अह य’ इत्यादि । वेताम्बी नगरी के दो मार्ग थे—एक टेढ़ा, दूसरा सीधा । जो
मार्ग सीधा था, उसमें एक विकृत महा अम्बी पड़ती थी । उस विकृत महा अम्बी में चंडकौशिक नामक
एक इष्टिबिप, काल के समान विकराल काला सोंप रहता था । वह अपनी कूरता के कारण उस मार्ग

मूकने अर्द्ध—‘अह य’ अर्थात्, श्रुताग्नि-नदीना के भाग’ कर्ता। जोह आगे अने जेह सीधा, जे भाग सीधा
कैतो तेमो जेह भकान् अढवी व्यापती कैती अइ भक भक अढवीओ व डोहोशिक नामने। जेह इष्टिबिप इष्टिपइ नाम
रहेता कैते। अइ एव भक विवराण अने साकाट अशशर नेवे अशुता कैते। जे अने अयं अयं अशुता एविहो—

रात्मन एकस्मादेवाशादुद्भवति, परं तस्याः शक्त्या उपयोगं शुभेऽशुभे वा कुर्यात्-इत्येतावदवशिष्यते । मनु-
व्याणामेतादृशो विचारो भ्रमश्रुतो दृश्यते-यत् तीव्राऽनिष्टप्रवृत्तिकरो शक्तिर्भूयो भूयो धिक्कृत्य बहिष्करणीयेति ।
परं तेन सह एतद् विस्मरन्ति-यद् मनुष्यस्य वा शक्तिः यावत्कम् अनिष्टं कर्तुं शक्नोति, सैव शक्तिरिष्टम-
पितात्रदेव कर्तुं शक्नोति, यथा-यथक्वर्ती यथा शक्त्या सत्त्वमनःपृथिवीयोग्यानि यावत्कानि द्विसादिकुर-
माणि अर्जयितुं शक्नोति स एव चक्रवर्ती यदि तां शक्तिमिष्टकार्ये संयोजयति, तदा तावन्त्येव भ्रह्मसादिशुभ-
कर्माणि अर्जयित्वा मोक्षमपि प्राप्तुं शक्नोति । ये जीवा शुभमशुभं वा किमपि कर्तुं न शक्नुवन्ति, ये च
तेजोहीना गलिवलीवर्वा इव भवन्ति, ये च जडा इव जगत्सत्तयाऽऽह्नन्ते, येषां पामस्ताया मोगलालसाया

उत्पन्न होती है। इसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्तव्य में प्रयुक्त होने वाली शक्ति आत्मा के एक ही अंग से उत्पन्न होती है। यह बात दूसरी है कि उस शक्ति का उपयोग शुभ में किया जाय या अशुभ में।

“तीव्र अनिष्ट प्रवृत्ति को उत्पन्न करने वाली शक्ति का गार-गार पिछार कर बहिष्कार करना चाहिए।” मनुष्यों का यह विचार भ्रमपूर्ण है। ऐसा विचार करने वाले लोग भूख जाने दें कि मनुष्य की जो शक्ति जितना अधिक अनिष्ट कर सकती है, वही शक्ति उतना ही अधिक इष्टसाधन भी कर सकती है। जो चक्रवर्ती जिस शक्ति से सानेंव नरक में जाने योग्य जितने हिंसादि क्रूर रूपों का अर्जन कर सकता है, वही चक्रवर्ती अगर उस शक्ति को इष्ट कार्य में प्रयुक्त करे-जगाने, तो उतने ही (अहिंसा आदि प्रशस्त कार्य करके) मोक्ष भी पा सकता है। जो जीव सामर्थ्यहीन है-शुभ या अशुभ कुछ भी नहीं कर सकते,

ચિત્તને અગ્નિ સાથે સરળતાવામાં આણું છે. જેમ અગ્નિ કાગ્યા અત્તને પકવે છે અને તેજ અગ્નિ સમસ્ત પદાર્થોને બાળી પશુ ચક્રે છે. આવી બે ધારી શક્તિઓ જેમ અગ્નિમા છે, તેમ ચિત્તમા પણ રહેલી છે. ચિત્ત નો સવળે માર્ગે વળે તો આત્માને ધડીચીક ભરમાં મોક્ષગતિએ લઈ લાય છે અને શક્તિ આવળે માર્ગે કામ કરે તો સાતમી નરકે પહોંચાડી દે છે.

અનિષ્ઠ ઉત્પન્ન કરવાવાળી ચિંતયક્ષિતને વારંવાર પિષ્કાર આપી તેનો ખડિંકાર કરવો જોઈએ તે ગુણ્ય માનતો હોય તો તેની એક પ્રમાણ છે. જે ચિંતયક્ષિત અધિકમાં અધિક અનિષ્ટતાને આકરી શકે છે તેજ ચક્ષિત દંષ્ટતાને પણ તેજ પ્રમાણે આકરી શકે છે. જે ચક્ષિત દ્વારા ચક્રવર્તી નરકમાં જવા યોગ્ય હિંમા આદિના પ્રશ્નન કાર્યો કરી મોક્ષની સાધના પણ કરી શકે છે. જે દૃવ સામર્થ્યહીન છે. શુભ-અશુભ ઠાંધ કરી ચક્રવાની

મર્તિનું નોંધ, મનસઃ ક્રોડ્યન્તો યદા વિઠ્ઠલો મન્વતિ, તદા સ હરિતેનોપાયેન પરિવર્તયિતુ શ્વચયેતે । एतावदेव ना हिन्दु अनिष्टान्दस्य यावत्कं तीव्र बलं प्रतिक्रुद्धे विषये मन्वति तत्र तावत्क्रमेवावुक्रुद्धेऽपि विषये परि वर्तन्ति द्रव्यते । કાચિદપિ વસતી વિષયસ્થિતિઃ । एषा वा अनिष्टा वा मन्वु साऽविचरितोपयोगितया प्रायेच, यतो द्विषाऽपि विषयस्थितिः समानसामर्थ्यवती मन्वति, परमयं मेवः—एका वर्तमानसूने शुभे प्रयो गिता अन्यावाशुदे, तथापि द्वयोः कार्यक्षापनसामर्थ्यं हुरयमेव गजनीयम् । यया वृत्तया शुभा अमुभा वा परिणामा मन्वन्ति, सा शक्तिरवश्यमेवणीयैव ज्ञातव्या यया-आमाभाजान् स्थापयकान्तवया पावने, अनेकोप- योगिवत्तानां मत्सराशीकरणे च समयां शक्तिरेकसावेधानेः समुत्पन्नति तथा शुभाशुभकृतव्यपरायणा शक्ति-
 सुखमवोचि ।

નીચ કો કિસી અનિષ્ટકારી પ્રકૃતિ કો, તીવ્રતા કે સાથ, ઉદયગ્નિકા મેં પ્રવિષ્ટ હેલ કર સોગ માત હેતે હેં કિ યર પરિવર્તન કી સંમાવના સે ચાર હે, કિન્તુ વાસ્તવ મેં યર કાત નરી હે । મન કા કોર મી અઠ મજ વિઠ્ઠલ હો જાતા હે તો ડરિત ઉપાય સે વર વલ્લા જા સકતા હે । યરી નરી, અનિષ્ટ અંશ કા નિતના રજ પ્રવિકૂલ વિષય મેં રોતા હે, હવના હી તોત્ર વર અતુકૂલ વિષય મેં મી પલટા વા સકતા હે । વિષ કી કોઈ મી વસતી સ્થિતિ, જામે વા રવ્ટ હો વા અનિષ્ટ, અવિશ્વય ઉપયોગી રૂપ મેં હી ઉસે પ્રણ કરના વાઠિય । ફાણ યર હે કિ દોનોં (શ્વ ઓર અનિષ્ટ) પ્રકાર કી વિલસિયતિ સમાનશક્તિસમ્પન્ન રોતો હે । દોનોં મેં અન્તર યરી હે કિ વર વર્તમાન મેં શુભ મેં પ્રયુક્ત હો રાતો હે ઓર રૂસરી અશુભ મેં । ફિર મી દોનોં કા, અપને-પ્રાને કાર્ય કો સિદ્ધ કરને કા સામર્થ્ય તો સમાન હી ગિના જાના વાઠિય । જિસ મૂલમૂલ શક્તિ સે શુભ યા અશુભ પરિણામ ઉત્પન્ન રોતે હે, વર શક્તિ અરૂપ હી વાંછનીય હે, એસા સમજના વાઠિયે । ઉદાહરણ કે ચિય મગિન કી શક્તિ કો બીઝિય । વર હી અગ્નિ કી શક્તિ કંચે અન્ન કો અન્છી તર વજાતી મી હે ઓર અનેક ઉપયોગી વસ્તુઓં કો મસમ મી કરતી હે, યર દિવિવ શક્તિ મગિન સે હી

તે છપ પૂઞ જતાવતા હોય, તેનું વર્તન જઠારથી વધુ ખરાબ અને કેરીક હોય તો દોષા કહે છે કે આ છપ પ્રથમિ પણ સુખરી યાશે નહીં; પરંતુ વાસ્તવિક રીતે આ વાત ખરાબ નથી અનેના દોષ જ્યા કહાય વિદ્યુત જની બધ તો ઉચિત ઉપાય વડે તેને સુખારી યામજ છે તેમ જ જઠારની પણ યામજ છે આટલું જ નહિ પણ અનિષ્ટ અશુભ એટલું જન પ્રતિદુઃક વિવરમાં હોય છે તેટલું જ તીમ તે અતુકૂલ વિષયમાં પણ પલટાઈ યામજ છે. ચિત્તની શક્તિ એવી છે કે ધરતા પણ યામે અને અનિષ્ટવા પણ યામે । આટે તેની શક્તિ દોષ શુદ્ધસ્તે વાજનાથી તેના સુદર ઉપયોગ થઈ શકે છે ચિત્તમાંથી ધીં જાને અનિષ્ટ જાને આવો નીકળે છે; પણ શક્તિની અધિકા એ ભવત જાને-ધસ અને અનિષ્ટવ્યગ્રમાં સમાનજનક-નીડથી યામ કરે છે

જન્મભાગેન શુભકા: । જીર્ણ વૃક્ષાસ્તદ્વિજ્વાલયા દગ્ધા: શુભકાશ્ર । સટિતપતિતજીર્ણપત્રાદિસંયત્તેન ભૂમિભાગ આ-
ચ્છાદિતઃ, વલ્મીરુસહસ્રૈ: સક્રાન્તો લુપ્તમાર્ગથાસીત્ । કુટીરાઃ સર્વે ભૂમિશાયિનઃ સંજાતાઃ । પ્તાદૃશ્યા મહાડટ્વ્યાં
ભગવાન્ યત્રેવ ચણ્ડકૌશિકસ્ય વલ્મીકું તૈવ ઉપગન્છતિ, ઉપગમ્ય તત્ર કાયોત્સર્ગેણ સ્થિતઃ ॥૬૦૮૫॥

ટીકા—‘અહ ય સંયંચિયાઈ’ इत्यादि । अथ च भवेताम्भ्याः नगर्याः द्वौ मार्गौ स्तः—एको वक्रः=
कुटिलः, द्वितीयः=अपरो मार्गः क्रुजुः=सरलश्च । तत्र=द्वयोर्मार्गयोर्मध्ये यः स वज्रुर्मार्गः, तत्र एका त्रिकुटा=भया-
नका महादवी अस्ति । तस्या त्रिकुटार्या=भयानकाया महादव्या चण्डकौशिको नाम एकः दृष्टिपिपः—इष्टो विपं

જલ ગયે બે ઔર મૂલ ગયે બે । ભૂભાગ સેઢે પેઢે જીર્ણ પત્રોં કે ઢેર સે ઢૂંક ગયા થા . હજારોં વાત્રિયોં
સે વ્યાપ્ત થા ઔર માર્ગે લુપ્ત હો ગયા થા । વહોં કી સમી છોટી-છોટી કુટિયાં ધરાગાયિની હો ગઈ થીં ।
ऐसी महा अटवी में, जहाँ चंडकौशिक की चांची थी, वहाँ भगवान् पर पहुँच कर वहाँ कायोत्सर्ग में
સ્થિત હો ગયે ॥૬૦૮૫॥

ટીકા કા અર્થ—શ્વતામ્બી નગરી કે દો માર્ગો બે-एक चक्र फाट कर और दूसरा सीधा था ।
इन दोनों में जो सीधा रास्ता था, उसमें एक भयानक जंगल पड़ता था । उस भयानक जंगल में चंड-

સુકાઈ ગયેલા માહુમ પડે છે પુરાણા આડાન ચંડકૌશિકના વિાની જ્વાલાઓ વડે બળી ગયેલા અને ઝુકાઇને ખાજ
જેવા થઈ ગયેલા જ જણાય છે મિમિ પશુ સહેલા અને છુલ્હુ થયેલા પાંદડાથી ઢંકાઇ ગયેલો જણાતી હતી ને ઠેર ઠેર
મોટા ઢગલા ન્યા ત્યા પડેલા જણાતા હતા. આખો માર્ગ ઉઠ્ઠજડ અને વેરાન થઇ ગયો હતો. અગાકેની નાની કુટિરો
પણ પડી-ગપ્પડી ગઇ હતી અને તેનો કાટમાળ લોંબલેગો થઈ ગયો હતો. આવી ભયંકર અટવીમા ન્યાંત્યાં વેળુના
સાફડા જામી ગયા હતા. આ ભયંકર નિર્જન પ્રદેશમા ન્યા ચંડકૌશિકનો ગફડો હતો ત્યા ભગવાન પહોંચી ગયા.

ચંડકૌશિકના સફડા પાસે આવી આજુબાજુ નજર કરી જે જગ્યા તેમને નિદ્રોજ જણાઈ, તે જગ્યાએ પોતે
સાવધપણે કાયાને સ્થિર કરી કાયોત્સર્ગ ધારણ કર્યો અને આત્મસમાધિમા મનને નેડી દીધુ. (૬૦૮૫)

ટીકાનો અર્થ—શ્વેતાંગી નગરીમા જવાના જે બે માર્ગો હતા. તેમાં એક કેડી માર્ગ હતો. ઢોડોડું માનસ
હ મેથા દેકા રસ્તે થઇ, દૃષ્ટિત સ્થલે પહોંચવાનું હોય છે. આવા દેકા રસ્તા, પક્ષાડ-નદી-નાળા વિગેરે અનન્યા
રસ્તે થઇને જ જતાં હોય છે. પહોલો ચીડો પાડનાર માણસ સુદેલ્લી અનુભવે છે. પણ ત્યારપછી માણસોના પગરવ
પડતા, ત્યા એક રીતસરની ફેડી પડી જાય છે. ત્યારબાદ, આ કેડીનો ઉપયોગ ધીમે ધીમે નાના રસ્તા તરીકે થાય છે.

ળીંને એ ધોરી માર્ગ શ્વેતાંગી નગરી તરફ જતો હતો, નગરજનો તે રસ્તાનો જ ઉપયોગ કરી રહ્યા હતા.
પરંતુ કમભાગ્યે ત્યાના રસ્તે કોઈ એક ભયંકર સાથ અવાર નવાર નજરે પડતા આવવા જવાનો બ્યવહાર ચોહો

દાદિપત્ય પ્રમાણસ્ય નાવપિરેષ નાસ્તિ, પરાશ્ચા વીવા ન ક્ષિમપિ કદં શ્વદુવન્તિ । યેપુ પુનરાત્મ્યલક્ષ્યૌપોધિકં
મવતિ, તે શુમેઞ્ચમે વા પયોયે મવન્તુ, ઇપબીયા ઇષ, યતોઽશ્વપર્વાયેડપિ તદ્ બ્રાત્મ્યલ્પાધિકં યેન આત્મમાંશેન
નિષ્પં તસ્ય આત્માન્નસ્ય શ્ચકિરપિ સ્વયોપશ્ચમાવૈતેષ લીલેન પ્રાપ્યતે । સા શક્તિઃ નિમિત્ત પ્રાપ્ય યયેટ્ પરિસિદ્ધં
શ્વચયતે, શ્વત્સવઃ ગમને સામ ઇત્ય ” રૂપિ ચિન્તિયિત્વા મગર્ભાસ્તેનૈવ કલુના માર્ગેણ પ્રસિયતાઃ । યદા મગર્ભાસ્તસ્યા-
મટર્ખ્યાં પ્રવિષ્ટત્વા તપ ધૃતિઃ યાણિનાં ગમનાગમનામાવાદ્ વરુણાદિચિહ્નારિવા યથાસ્થિતા ઇવ । નત્સનાશ્ચિહ્નાઃ

બો ગણિયાર પેલ હી છરા તેનોદીન શોતે હે, જો જુક હી મોણિ જગત્ત હી સુષા સે ક્ષે રહતે હે, મિ
નહી પામતા હી, મોગલાસ્તા હી, રહિતા હી પૌર પ્રમાદ હી કોઈ સીમા હી નહી હે, પેસેમાષી કુહ
મી નહી કર સકતે । જિન મેં આચરલ હે, કોઈ આદિ ગુણ હે, વે વારે શુભ શ્વત્સ્યા મેં હોં યા શ્ચુમ
શ્વત્સ્યા મેં, રાંછનીય હી હે । જ્યોં કિ અશુભ શ્વત્સ્યા મેં મી વર બ્રાત્મ્યલ્પ આદિ મિત્ત આત્માન્ન સે નિવ્યન્ત
હુર હે, તસ આત્માન્ન હી શક્તિ મી શ્વયોપશ્ચ માવ સે હી જીવ કો પ્રાપ્ત હોલી હે । વર શક્તિ નિમિત્ત
પાકર ઇચ્છાસ્તાર શ્વહી જા સચ્ચી હે । અત ઇવ વરો જાને મેં સામ હી હે ।

હસ મકાર વિચાર કર મગવાન્ ને તહી સીચે મર્ત્ય સે પ્રસ્થાન કિયા । જબ મગવાન્ તસ અટવી
મેં પ્રવિષ્ટ હુર તો વૌં હી પૂલ પ્રાણિયોં કા ગમનાગમન ન હોને સે વરજવિહ આદિ સે રહિત, જ્યોં કી
ત્વોં ચી । જલ હી નાભિયોં બસમાવ સે મૂલ ગર્ં ચી । પુરાને પેક વંદકૌશિક કે ત્રિપ કી જ્વાલાયોં સે
શક્તિ ધરાવતો નહી, અગ્નિયા જળવની આદ્ય તેજહીન છે, બદ એવી જન્મતની શક્તિમાં રબાયેલો રહો છે, એને
પ મરવા-લોગલાહવા- રિતા અને પ્રમાદની હોઈ સીમા નહી તેલો બ્રાત્મ્યા જન્મતમાં મંદ પજુ હરી મકતો નહી
એવામાં જા બ્રાત્મજન લોગ, શોઈ બ્રાદિ ગુણ લોગ તે બલે શુભ-અશુભ અરે તે અસ્થ્યામાં પડેલો લોગ
તો પજુ તે વાંછનીય છે કામલ હે જાવા કામલ્યવાન બ્રાત્મ્યાને શ્વરસે વાળવામાં વણિ આવતો નહી.
આ શક્તિ બલે તે સદ્ભાવની લોગ હે અશ્વમાવની ! પરત તે કલોપશ્ચમાવ દાસ પ્રાપ્ત થક છે, જેટલો
શક્તિ તો અશ્વશ્લીલ છે હેર જેટલો છે કે તે અશુભ રસતે દોસ્વાઈ અર્ધ છે તેને પાછી વાળી શુભ રસ્તામાં લેક-
વવાની છે જાવી અશુભ માજે દોશજોલી શક્તિ નિમિત્ત મગર્ભા પાછી વળે છે, અને તેને સદ્ગુણધોમ અર્ધ રહે
છે માં આ સીધે માજે અપ્પમાં વલો લોગ છે, કોમ અપ્પારે સર્પના છપન ઉપરથી કાવવાને બાકી લીધુ ત્યારે
તેજોશી સીમા માજે પ્રશ્નના ફરી ગબા.

આ અટવીમાં પ્રવેશ કરતાં કામવાનના જ્વાલામાં જાવી ગમ્ છે આ જ્વમિ પ્રમાણે જ વાતાનરજ છે આ
જ્વમ પર હોઈ પજુ પ્રાણીનાં પમલોં જ્વાલાં જ્વાલાં નહી પાળોના નાનાં અને બરનાનાં શિરિયા બસેર પાળીનાં અગ્નિ

इष्टा=अनुकूल अनिष्टा=प्रतिकूल वा भवतु, किन्तु सा चित्तस्थिता अतिस्थिता=उत्कर्ष प्राप्ता सता उपयागयता= कार्यकारितेत्येव ग्राह्या=विज्ञेया। तत्र हेतुमुपन्यस्यति-यतः यस्माद्धेतो द्विविधापि इष्टानिष्टभेदात् द्विप्रकाराऽपि चित्तस्थितिः समानसामर्थ्यवती=तुल्यवत्या भवति, परं=किन्तु तयोः अयम्=अनुपदं वक्ष्यमाणः भेदः=अन्तरं वर्तते, एका=प्रथमा चित्तस्थितिः वर्तमानक्षणे=विद्यमानकाले शुभे=शुभफलजनककार्यं प्रयोजिता=व्यापारिता भवति, अन्या=द्वितीया च सा अशुभे=अशुभफलजनककार्ये प्रयोजिता भवति, तथापि=चित्तस्थितेः शुभाशुभप्रयोजितत्वेऽपि द्वयोरपि चित्तस्थित्योः कार्यसाधनसामर्थ्यं=शुभाशुभ फलोत्पादनशक्तिः तुल्यं=समप्रमाणमेव गणनीयम्=मन्तव्यम्। यया शक्त्या=सामर्थ्येन शुभाः वा अशुभाः वा परिणामाः भवन्ति=जायन्ते, सा शक्तिः अवश्यं=निरसंदेहं यथा स्यात् तथा एषणीयेव=अपेक्षणीयेव ज्ञातव्या=बोध्य। यथा=येन प्रकारेण आमात्रा-नाश्व=अप्रकृतपुण्डुलद्यनानाम् स्वादुपकान्तया=स्वादिष्टपकान्तवेन पाचने=पचनक्रियायां, च=पुनः अनेको-

चित्त की कोई भी स्थिति क्यों न हो, अगर उस में बल है, वह सामर्थ्यशालिनी है, तो चाहे वह अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हो, अर्थात् वह कुमार्गगामिनी हो या सुमार्गगामिनी हो, उस उत्कर्षप्राप्त शक्ति को उपयोगी ही मानना चाहिए। कारण यह है कि चित्त की यह दोनों प्रकार की स्थितियाँ तुल्य सामर्थ्य वाली होती हैं। दोनों में भेद है तो केवल यही कि पहले चित्तस्थिति वर्तमान में शुभफलजनक कार्य में प्रयुक्त हो रही है और दूसरी अशुभफलजनक कार्यमें, फिर भी उन दोनों चित्तस्थितियों में शुभ-अशुभ फल को उत्पन्न करने की शक्ति तो समान ही है। अत एव-जिस शक्ति के कारण शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह मूलभूत शक्ति निस्सन्देह अपेक्षित ही है।

जैसे अग्नि की शक्ति कच्चे चावल आदि अन्नो को मलीभाति पकाने में समर्थ होती है, और अनेकानेक उपयोगो वस्तुओं को भस्म करने में भी समर्थ होती है, वह द्विविध शक्ति एक ही अग्नि से उत्पन्न होती है उसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्तव्य में प्रयुक्त होने वाली शक्ति भी आत्मा के एक ही अंश से उत्पन्न होती है।

भगवान् चंद्रकेशिकर्ता भक्तिनवृत्तिने जसेइवा भागता इता. तेनुं चित्त जे इष्ट कार्य भां रमषु करे छि तेभाथी तेने इटावी, अन्य भाव उपर नजर पडता, तेने पातानुं निजस्वद्वय समज्ज नश्ये, जेम भानी, भगवाने या विकट मार्ग पडइये।

चित्तने। यमकारो अने उक्ताव, जेटो। अने जेटवी शक्ति जे अनिष्टता—उपर वणे छि, तेवो ज यमकारो अने उक्ताव अने तेटवी ज शक्ति जे धृष्ट भावो। उपर पणु पडे छि. जे भूणभूत शक्ति चित्तभां काम करी रही छि अने जे शक्ति शुभ अने अशुभ अने वृद्धिआभां काम करे छि ने चित्तशक्तिने यथायोग्य समज्ज तेनुं परीवर्तन करवुं न्छिअ।

स्प=माणिनः कान्चिदपि=कामपि अनिष्टकरीय=अनर्थकारिणीं, प्रकृति=तीव्रतरेन=उग्रतरेन उदयावलितां प्रविष्टाम्=
 उदयावलितावर्गां दृष्टा जनाः तां प्रकृतिं परिवर्तनसम्प्रदायाम्=अपरिवर्तनीयां मन्यते, सस्तुतः=यया
 र्थं सा=प्रकृतिं सया=अपरिवर्तनीयां मचितुं न=नैव अर्हति=अकरोति, मनसः=विचस्य कोऽपि=कश्चिदपि अश्वः=
 भागः यदा=यस्मिन् काले विकृष्ट=विकारयुक्तो भवति, तदा=वस्मिन् काले सः=मनोविकृष्टांशः उपरिवेन=
 याग्यन उपायेन=साधनेन परिवर्तयितुम्=अविकृष्टात्सार्थां परिणमयितुं शक्यते, एतावदेव=मनोविकृष्टांशस्य उपा
 यतनात् परिवर्तनीयता भरतस्येवात्र मात्र नास्ति, किन्तु=अनिष्टाशस्यान्यतोऽनर्थकारभागस्य यावत्=यत्परिमाणं
 तीव्रम्=उग्रम्, सर्व=सामर्थ्यं प्रविष्टो=अनिष्टे विषये भवति, तत=तत्र तावत्कमेव=तत्परिमाणमेव अनुकूल=वृष्टे
 अपि विषय परिवर्तयितुं=परिणमयितुं शक्यते। काचिदपि बभ्रवती=सामर्थ्यसम्पन्ना विचस्यतिः=मनोऽवस्था

एतावत्में के सङ्को की बात सुनकर श्रीमदावीर स्वामी ने अपने शान्तल से विचार किया-‘यद्यपि
 बड़हौलिक तर्प अग्रकोष स्वभाव वाला है, फिर भी है सुकर्मबोधि। जीव की किसी भी अनर्थकारिणी
 प्रकृति को, उग्र रूप उसे, दयावलिता में आई देतकर लोग मान लेते हैं कि उसमें परिवर्तन होना
 संभव नहीं है किन्तु यथार्थ में वह अपरिवर्तनीय नहीं होती। जब विष का कोई भी अंश विकारयुक्त
 हो जाता है तो उचित उपाय स उसे विकृत अवस्था से अधिकृत अवस्था में फल्टा जा सकता है। इतना
 ही नहीं कि विष के विकृत अंश को बदल कर अधिकृत बनाया जा सकता है, किन्तु उस विकृत अंश
 का नितना सामर्थ्य प्रविष्टूल अनिष्ट विषय में होता है, उतने ही सामर्थ्य के साथ उसका अनुकूल=वृष्ट
 विषय में भी हुआ हो सकता है।

थु श्रवणे! कहां? वही सहीर उपरही आऊ तो लगवने पहुँचेंगी व हादी वाप्यो कतो, कोटके सहीरिना थु जे दुःखी,
 दरातु तेभने कतु व नकि आ लधानो विचार करी, कमवान ते रस्ते आबी नीकथा. एथाभां बिचार करतां अवां है,
 आ य होयिक उम सभावावादी छे, छतां सुकल जोषो छे तेने सभभावतां वार बाजे तेम नबी. ते विचारो आ
 अनुकूल हर्मान उदयभा अग्रधयो छे परतु तेनी आनखि वृत्ति निष्पादय छे तो बदर तेनु परिवर्तन यत्त सछे.

इहाथ डोट करवेलें सिराते। अनुकूल अ स विवृत यत्त अथो तो कोम सभभावतु नबी के तेनु आत्तु सिर
 विपदरितने, निजिभर अवस्थाभां ऐली शकय छे करवेलें सिराते। अनुकूल अ स विवृत यत्त अथो तो कोम सभभावतु नबी के तेनु आत्तु सिर
 भागनु बन-अथव दसमान अनेक शुभा शुभ लाने वृत्तिना। वडायेवी होय छे कोटके आरी अने नरबी लाने
 वृत्तिजोषो आस भयेव सिर अनेक सहर अने अनुकर लगेने प्रकट करे छे.

इष्टा=अनुकूल अनिष्टा=प्रतिकूल वा भवतु, किन्तु सा चित्तस्थिता अतिशयिता=उत्कर्ष प्राप्ता सती उपयोगियता=कार्यकारित्वैव ग्राह्या=विज्ञेया । तत्र हेतुमुपन्यस्यति-यतः यस्माद्धेतो द्विविधापि इष्टानिष्टभेदात् द्विप्रकाराऽपि चित्तस्थितिः समानसामर्थ्यवती=तुल्यबला भवति, परं=किन्तु तयोः अयम्=अनुपदं वक्ष्यमाणः भेदः=अन्तरं वर्तते, एका=प्रथमा चित्तस्थितिः वर्तमानक्षणे=विद्यमानकाले शुभे=शुभफलजनककार्यं प्रयोजिता=व्यापारिता भवति, अन्या=द्वितीया च सा अशुभे=अशुभफलजनककार्ये प्रयोजिता भवति, तथापि=चित्तस्थितेः शुभाशुभप्रयोजितत्वेऽपि द्वयोरपि चित्तस्थितयोः कार्यसाधनसामर्थ्यं=शुभाशुभ फलोत्पादनशक्तिः तुल्यं=समप्रमाणमेव गणनीयम्=मन्तव्यम् । यया शक्त्या=सामर्थ्येन शुभाः वा अशुभाः वा परिणामाः भवन्ति=जायन्ते, सा शक्तिः अवश्यं=नान्नसंदेहं यथा स्यात् तथा एषणीयैव=अपेक्षणीयैव ज्ञातव्या=बोध्य । यथा=येन प्रकारेण आमावा-नाम्=अपकृतदुल्लाघनानाम् स्वादुपकावतया=स्वादिष्टपकावत्वेन पाचने=पचनक्रियायां, च=पुनः अनेको

चित्त की कोई भी स्थिति क्यों न हो, अगर उस में बल है, वह सामर्थ्यशालिनी है, तो चाहे वह अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हो, अर्थात् वह कुमार्गगामिनी हो या सुमार्गगामिनी हो, उस उत्कर्षप्राप्त शक्ति को उपयोगी ही मानना चाहिए । कारण यह है कि चित्त की यह दोनों प्रकार की स्थितियाँ तुल्य सामर्थ्य वाली होती हैं । दोनों में भेद है तो केवल यही कि पहले चित्तस्थिति वर्तमान में शुभफलजनक कार्य में प्रयुक्त हो रही है और दूसरी अशुभफलजनक कार्यमें, फिर भी उन दोनों चित्तस्थितियों में शुभ-अशुभ फल को उत्पन्न करने की शक्ति तो समान ही है । अत एव-जिस शक्ति के कारण शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह शक्ति निस्सन्देह अपेक्षित ही है ।

जैसे अग्नि की शक्ति कच्चे चावल आदि अन्नो को भलीभाँति पकाने में समर्थ होती है, और अनेकानेक उप-योगी वस्तुओं को भस्म करने में भी समर्थ होती है, वह द्विविध शक्ति एक ही अग्नि से उत्पन्न होती है उसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्तव्य में प्रयुक्त होने वाली शक्ति भी आत्मा के एक ही अंश से उत्पन्न होती है ।

भगवान् य इष्टेऽशिक्षन्ती भविष्यन्तिने भवेत्सुखा भागता इता. तेनुं चित्त ने इष्ट कार्यं भां रमथु करे छि तेभाथी तेने इष्टावी, अन्य भाव उपर नजर पडता, तेने पोतानुं निरन्वइप समज्ज नथे, जेम भानी, भागवाने आ विकट मार्ग पडथे.

ચિત્તને! ચમકારે! અને ઝુકાવ, નેટલે! અને નેટલી શક્તિ એ અનિષ્ટતા—ઉપર વળે છે, તેવો જ ચમકારો અને ઝુકાવ અને તેટલી જ શક્તિ એ ધણ ભાવે! ઉપર પણ પડે છે. એ મૂળભૂત શક્તિ ચિત્તમાં કામ કરી રહી છે અને ને શક્તિ શુભ અને અશુભ બંને વૃદ્ધિઓમાં કામ કરે છે ને ચિત્તશક્તિને યથાયોગ્ય સમજી તેનું પરીવર્તન કરવું જોઈએ.

पयोगिरस्तुनाम्=बहुकार्यसाधनपदार्थानां भस्मराशीकरणे=भस्मसमूहीकरणे च समर्थां शक्तिरेकस्माद् अपेक्षेव
 समुद्भवति तथा=तेन प्रकारेण भूमाशुभाकृतव्यपरायणा=शुभकार्यसाधनतत्परा अशुभकार्यसाधनतत्परा चेति
 द्विविधा शक्तिः=सामर्थ्यम् आश्रयनः एकस्मादेव अंशाद्=मागाद् उद्भवति=उत्पद्यते, परं=किन्तु तस्या=शुभा
 शुभकार्यसाधिकायाः शक्तेः उपयोगं श्रुते भूयते वा कुर्यात्-रस्येवावत=शुभाशुभकार्यनिर्निर्णयजनमाश्रयम्, अवश्यव्यते=
 प्राप्तिनां स्वापीक्येन अन्विष्टं भवति। अत्र विषये मनुष्यणाम् एतादृश=अनुपदं वक्ष्यमाणो एतादृशो विचारो
 भ्रमयुता=भ्रमपूर्णः दृश्यते यत् सीमा=उप्रा-ग्रहका अनिष्टमवृत्तिकरी=अनिष्टकार्यमवृत्तिकारिणी शक्तिः=
 सामर्थ्यं भूयोपयः=वार्त्तां विदुःस्य=निन्दित्वा वरिष्ठकृषीय=दूरीकृतव्या इति। परं=किन्तु तेन विचारेण
 सार=सार्पम् एतत्=दसमुपदं वक्ष्यमाणं विवचनं ते विस्मरन्ति, यत्=‘मनुष्यस्य या शक्तिः यावद्=यत्परिमाणम्
 अनिष्टम्=अन्तर्धं दृष्टं वृत्तानि सैव शक्ति इष्टमपि=शुभमपि तावदेव=उत्परिमाणमेव कर्तुं वृत्तानि अत्र इष्टा
 तामुपन्यस्यन्=‘यथा’ इत्यादि। यथा=य कश्चित् चक्रवर्ती यथा वृष्टया सप्तमनरकृषिरीयोग्यानि यावन्ति
 उत्परिमाणानि क्रूरकर्माणि=पाप्माविपराधीनि अग्निपितृषु वृत्तानि, स एव चक्रवर्ती यदि=वेत्ता तां शक्तिम्
 इष्टक र्थे=शुभकार्ये सयोजयति तदा=तर्हि तावन्त्यक्=उत्परिमाणा-येव शुभकर्माणि=भ्रंशसाद्रीनि भर्जयित्वा मोक्ष
 अनवयव उभका शुभ कार्य में उपयोग करना, यही क्षेत्र रहता है। यह व्यक्ति का अभी है।

सबका अनिष्ट-मवृत्ति जनक शक्ति वार-वार विचार देकर दूर करने योग्य है। ऐसा जो लोग विचार
 करते हैं वे यह भूल जात हैं कि ‘मनुष्य की जो शक्ति जितना अनिष्ट कर सकती है, वही उतना इष्ट भी
 कर सकती है। इस विषय में चक्रवर्ती का उदाहरण लीजिए।

कोई चक्रवर्ती जिस शक्ति से सातवीं नरकधूमि में जाने योग्य जितने प्राणातिपात आदि घृ-
 र्म उपार्जन करने में समर्थ होता है, वही चक्रवर्ती, उसी शक्ति को अगर शुभ में लगा दे तो उसने ही
 धर्मिणा आदि को उपार्जन करके मोक्ष भी पा सकता है।

ध्या-नन पदव्यानी जने भा-नने व्याप्री नाजव्यानी जेभ ते शक्तिजो आश्रिमां जेभा आवे छ तेवी शीते
 शुभ जने अशुभ जने इत जेभां क्षम करेनी शक्ति जा-ग्याना जेभ जे जे श्रमावी उपपन्न दयेली छ जे जे जापवु
 जेपाव जे रहे छ हे आ शक्तिना रोमां उपपेज करेता? आ शक्तिना शुभ हे अशुभमां उपपेज करवाना अधिकार
 नजि परतेना छेव छ जने ते हाके ज्वजिने जाधिन रहे छ यथा यकवर्तिका जे पातानी शक्तिना उपपेज
 निज आधनमां वापरी आश्रमाय प्राप्त करी जने जीवजो तेज शक्तिना सकार जेव वापरी अशुभ जेभा जांवी
 अपम अतिमां पदेनी यथा

મપિ પ્રાપ્તું શક્નોતિ । એ જીવાઃ=પાણિનઃ શુભમ્ અશુભં વા કિમપિ=શુભાશુભયોર્મધ્યે એકતરમપિ કર્તુ ન શક્નુ-
 ચન્તિ=ન સમર્થા ભવન્તિ, ઘ=પુનઃ એ જીવાઃ તેજોહીનાઃ=નિસ્તેજસઃ, ગલિલીવદ્વાઃ=અત્રિનીતદ્વપમા ઇવ ભવન્તિ,
 ચ=પુનઃ એઃ-જીવાઃ જડા ઇવ જગત્સત્તયા=જગતઃ શક્તયા અધિકારારિરૂપયા આહન્યન્તે=પરાભૂયન્તે એવાં પામ-
 રતાયાઃ ભોગલાલસાયાઃ=ભોગકામનાયાઃ, દારિદ્ર્યસ્ય પ્રમાદસ્ય=આલસ્યસ્ય ચ અવધિરેવ=સીમૈવ નાસ્તિ,
 એતાદૃશઃ-ઈદૃશઃ જીવાઃ=પાણિનઃ કિમપિ=કિંચિદપિ કાર્યં કર્તુ નન્નૈવ શક્નુવન્તિ । એપુ જીવેપુ પુનઃ આત્મ-
 વલશૌર્યોદિકં ભવતિ, તે જીવાઃ શુભે અશુભે વા પર્યાયે વિદ્યમાના ભવન્તુ, ઉભયત્ર પર્યાયે વિદ્યમાનાસ્તે જીવાઃ
 સમાનતયા એષીયાઃ=અભિલષ્ણીયાઃ । તત્ર હેતુમાહ-યતઃ=યસ્માત્ અશુભપર્યાયેડપિ તત્=અનર્થકરમ્
 આત્મવલાદિકં યેન આત્માંશેન કારણીભૂતેન નિર્ઘત્તં=સમ્પન્નમશૂત, તસ્ય આત્માશસ્ય શક્તિરપિ=અનર્થકરં
 સામર્થ્યમપિ ક્ષયોપશમભાવેનૈવ=તદાવરણક્ષયોપશમભાવદ્વારૈવ જીવેન પ્રાપ્યતે । સા ક્ષયોપશમભાવલબ્ધા શક્તિઃ
 નિમિત્તં=કારણં પ્રાપ્ય યથેષ્ટં=યથેચ્છં યથાસ્યાત્તથા પરિવર્તિતું=પરાટૃત્તા મન્વિતું શક્યતે, અતઃ=અસ્માત્ કારણાત્
 તત્ર=ચ્છંડકૌશિકાધિષ્ઠિતસ્થાને ગમને=વિહારે લાભ એવ મન્વિતુમ્ અર્હતિ=ઈતિ=ઈત્યં ચિન્તયિત્વા=વિચાર્યે ભગવાન્
 શ્રીવીરસ્વામી તેનૈવ ઋજુના માર્ગેણ પ્રસ્થિતઃ=પ્રચલિતઃ । યદાન્યસ્મિન્ કાલે ભગવાન્ શ્રીવીરઃ તસ્યામ્=

જો પ્રાણી શુભ ઓર અશુભ, દોનોં મેં સે કિસી મી એક કો ઉગ્ર શક્તિ કે સાથ કરને મેં અસમર્થ
 હોતે હું, ઓર જો નિસ્તેજ હું, ગલિયાર વૈલ કે સમાન હું, જો જહ્નુ કી ખાતિ જગત્ કી શક્તિ સે અભિ-
 ભૂત હો જાતે હું ઓર જિનકી પામરતા, મોગકામના, દગિરતા ઓર પ્રમાદ કી કોઈ સીમા હી નહીં હૈ, એસે
 પ્રાણી કયા કર સકતે હું? ઉનસે કુલ મો નહીં હો સકતા । ઇનકે વિપરીત, જિન જીવોં મેં આત્મવલ હૈ, શૂરતા-
 આદિ હૈ, વે શુભ યા અશુભ કિસી મી પર્યાય મેં કયોં ન હોં, સમાન રૂપ સે વાલ્હનીય હું । કયોં કિ અશુભ
 પર્યાય મેં મી જો આત્મવલ આદિ જિસ આત્માશ સે ઉત્પન્ન હુઆ હૈ, ઉસ આત્માંશ કી શક્તિ-અનર્થકારી
 સામર્થ્ય-મી ક્ષયોપશમ કે દ્વારા હી જીવ કો પ્રાપ્ત હોતી હૈ । વહ ક્ષયોપશમભાવજનિત શક્તિ, કારણ મિલને
 પર ઇચ્છાનુસાર પરિવર્તિત કી જા સકતો હૈ, અતઃ જહાં ચંડકૌશિક રહતા હૈ, વહોં જાને મેં લાભ હો સકતા હૈ ।
 ઇસ પ્રકાર વિચાર કર શ્રીવીર કર શુભીર પ્રશુ ઉસી સીધે માર્ગે સે રવાના હુણ ।

અનુપમ પોતાની શક્તિને ઓળખ્યા વિના પોતાને પામર માનતો થઇ ગયો છે અને આત્મોદ્ધાર કરવા
 તરફ અગર શુભૃદ્ધિ કરવા તરફ તેનું વલણ રાખવા જતા તે હિંમત પોઇ બેસે છે. દરેક આત્મામાં શક્તિ રહેલી
 છે અને તે પણ સોમા સરખા પ્રમાણમાં છે જેણે બેણે આત્મવિકાસ કેળવ્યો તેણે તેણે શક્તિ પ્રાપ્ત કરી.

वण्डकौशिकपिण्डितायास् अष्टव्यां प्रविष्टाः, तथा सस्मिन् काष्ठे तप्त=भट्टव्यां घृष्टिः प्राणिनां गमनाऽऽपमना-
 मायात् चरणाद्विघ्नरहित=गम्याद्विचित्रमूर्तिता, अत एव=यथास्थितैव आसीत् । तथा=अलनालिकाः जन्माभावेन
 शुल्काः आसन् । तथा=ओर्णाः=पुरातनाः केचन वृक्षा तद्विपण्यासया=वण्डकौशिकसर्पविपदोरेन दग्धाऽन्म-
 स्मीभूताः, तथा=केचन वृक्षाः शुल्काः=नीरसाश्च आसन् । तथा=तप्तयो भूमिभागः षट्सप्तवितनीर्गणप्रादि
 संगतेन=अटितानां=नीर्जानां पविठानायां बीणपत्रादीनां संगतेन=समुद्रेन आच्छादितः=आवृत आसीत्, तथा-
 वस्त्रीकृतस्रस्रैः=वस्त्रीकाः=व्यामसूराः-‘बाव्मी’ इति प्राणप्रसिद्धाः, तेषां सप्तस्रैः संक्रान्त=युक्ताः, च=युनः
 लुप्तमार्गाः=अष्टव्यमानमार्गा आसीत् । तथा=सर्वे=वद्वृक्चनस्थिताः सकृदाः कुटीराः=लघुदण्डौ भूमिआयिना=धरापविताः
 सजाताः=प्रभवन् । एतद्वयास्=वैद्व्याम्=आश्यायाय् महाद्वय्यां मगवान् भीबीरस्वामी यत्रैव=यस्मिन् स्थाने
 वण्डकौशिकस्य वस्त्रीकृत आसीत्, तत्रैव=तस्मिन्नेव वस्त्रीकृत्याने उपागच्छति, उपागम्य तत्र=वण्डकौशिका
 चिच्छित्तवस्त्रीकाऽऽसन्नस्थाने कायोत्सर्गेण कायोत्सर्गपुरस्सरं स्थितः ॥६०८५॥

जिस समय मगवान् महावीर उस मगानक अची में प्रविष्ट हुए, उस समय वहाँ की घूल पैरों
 आदि के निदानों से रहित थी, क्यों कि वहाँ आवागमन नहीं होता था, अतएव वर उयों की त्यौं थी ।
 वहाँ की जल की नालियाँ जन्मात्र के कारण सूली पड़ी थीं । कितने ही पुराने पेड़ वंडकौशिक के विप की
 उबावा से मल्ल हा गये थे और कितने ही सूख गये थे । अटवी का मगम सब पेड़ और सूखे पत्तों के डेरों
 से आच्छादित हो गया था और हजारों वाँवियों से व्याप्त था । मार्ग वहाँ दिस्वाई नहीं देता था । वहाँ के
 सभी कुंजीर घरआयी (अमरदोस्त) हो गये थे । ऐसी दुर्गम अटवी में मगवान् वहाँ पहुँचे, जहाँ वंडकौशिक
 की वाँची थी । वहाँ पहुँच कर मगवान् उम बाँबी के पास ही कायोत्सर्गपूर्वक स्थित हो गये ॥६०८५॥

આ શકિત જહારથી આપતો નથી, પરંતુ આ કદરૂપી રીતે રહેલી છે અને તેજ જહાર આવે છે કદર તેને. આ વિશેષ
 કલામાં જહારતા સાધનેનું નિમિત્ત ભૂત થાય છે, ક્યારેકે આપણે કહીએ છીએ કે આ સાધનેથી જ મારી શકિત ખીલી ।
 એ શકિત અદર ન કરતી તે ખીલી ક્યાંથી ? આ બતાવે છે કે કદર આત્મામાં અનંત શકિતને પિંડ પરચે છે
 કદર કેવી રીતે જહાર કાવલે તેજ વિચારવાનું રહે છે

અમગન આ બધું જોતાં જોતાં સર્વનું શરૂઆત આજળ આવી પહોંચ્યા અને તે શરૂઆતી આમુખાસ જ
 આનંદપ્રમ થયા વિચાર કરી. અને તે કદરે કદરે થાય જતી જવા જતા (૬૦૮૫)

मूलम्—तए णं से चंडकोसिए विसहरे कुद्धे समाने विलाओ वाहिरं निस्सरिय काउसगगद्धियं पहुं दट्ठणं चिंतीअ—‘केरिसो इमो मच्चुभयवेषपुक्को मणुस्सो जो खाणू विव थिरत्तणेण ठिओ, संपइ चेव इमं अहं विसजालाए भासरासी करोमि’—त्ति कट्ठु कोदेण धमधम्मंतो आसुरोत्तो मिसिमिसेमाणो विसर्गिण वममाणो फणं वित्थारयतो भयंकरेहि फुक्कारेहिं दिट्ठिं फोरेमाणो मूरं निज्झाइत्ता सारिं पलोएइ। सो न उज्झइ जहा अण्णे, एव दोच्चं पि तच्चं पि पलांएइ तहवि सा न उज्झइ, ताहे पहुं पायंगुट्ठम्मि डसइ, डसित्ता ‘मा मे उवरि पडिज्ज’—त्ति कट्ठु पच्चोसक्कइ। तहवि पहुं न पडइ। काउसग्गाओ लेसमवि न चलइ। एवं दोच्चं पि तच्चं पि डसइ, तहवि णो पडइ, ताहे अमरिसेणं पहुं पलांएंतो अचउइ। एवं तं भगवं संतमुदं अउलकंतिमंत सोम्मं सोम्मवयणं सोम्मदिट्ठिं माहुरियगुणजुत्तं खमासीलं पिच्छंतस्स तस्स ताणि विसभरियाणि अच्छीणि विज्झाइयाणि। तओ कोहपुंजरुवो सो चंडकोसिओ थद्धो जाओ। पहुस्स सतिवलेण तस्स कोहो समिओ। तस्स कोहजालाए उवरिं पहुणा खमाजालं सित्तं, तेण सो सतो सतसहाओ संजाओ। एयारिसं संतिसंपन्नं चंडकोसियं दट्ठूणं पहु एवं वयासी—हे चंडकोसिय ! ओवुज्झ, कोहं ओमुंच ओमुंच, पुव्वभवे कोहवसेणेव कालमासे कालं क्रिच्चा तुवं सण्णो जाओ, पुणोडवि पावं करेसि, तेण पुणोडवि दुगइं पावेहिंसि, अओ अप्पाणं कल्लणम्मणे पवत्तेहि—त्ति। एवं पहुस्स अमियसमं पवोहवयणं सोच्चा चंडकोसिओ विथारसायरे पडिओ पुव्वभवजाइं सरइ। तेण सो गिय-पुव्वभवे कोहपगडीए गियमरणं विण्णाय पच्छायाव करिय हिसयपगडिं विमुच्चिय संतसहावो संजाओ। तए णं से सण्णे तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता सुहेण ज्ञाणेण कालमासे कालं क्रिच्चा उक्कोसओ अट्ठारससारोवमट्ठिए सहस्साराभिहे अट्ठमे देवलोए उक्कोसट्ठिओ एगावयारो देवो जाओ। महाविदेहे सो सिद्धिस्सइ ॥सू०८६॥

छाया—ततः खलु स चण्डकौशिको विपथरः क्रुद्धः सन् विलाद बहिर्निःसृत्य कायोत्सर्गस्थितं प्रभुं दृष्ट्वाऽचिन्तयत्—कीदृशोऽयं मृत्युभयविप्रमुक्तो मनुज्यो यः स्थाणुरिव स्थिरत्वेन स्थितः, सम्प्रत्येवेममहं विप-ज्वालया भस्मराशीकरोमीति कृत्वा क्रोधेन धमधमायमान आशुरको मिसमिसायमानः विपाग्निं वमन् फणा

मूल का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि। तव वह चंडकौशिक विपथर क्रुद्ध होकर विल से बाहर निकला और कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु को देख कर सोचने लगा—‘कौन है यह मौत की भीति से मुक्त मानव, जो ठंठ की भांति स्थिर होकर खड़ा है ? मैं इसको अभी विप की ज्वाला से भस्म कर देता हूँ।’

मूलने। अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि अंउडोशिकनाग गल्लार नीकगता ओधथी धुंवाहुवा थथे। ने प्रभुने स्थिर उसेवा नेध विथार करवा दाज्ये के ‘आ कथे। मानवी छे के ने भेतथी पणु उरतो नथी ? अने ज्वालना हुधानी

विस्तारयन् मयङ्गुरैः फुरकारैरिटि स्मारयन् दूरं निष्पाय स्वाग्निं प्रलोकते । स न दृष्टते यथाऽन्ये । एष द्विरपि चिरपि प्रलोकते, तथापि स न दृष्टते, तथा प्रभुं पादाङ्गुलं दृष्टति, दम्भा 'मा मं उपरि पतेत्' इति कृत्वा प्रत्यक्ष्यलकते, तथापि प्रभुर्न पतति । कायोत्सर्गाद्विषमार्गं न वसति । एवं द्विरपि चिरपि दृष्टति तथापि न पतति, तदाऽऽमर्षेण प्रभुं प्रलोकमान आस्ते । एवं तं मगन्तं शान्त्यद्रुममुलकान्तिमन्तं सौम्य सौम्यवदन सौम्यदण्डि माधुर्यगुणयुक्तं समाशील प्रेक्षमात्मस्य तस्य ते विपश्यते अक्षिणी विख्याते । तदाः क्रोधपुञ्जस्य स

देसा सोच कर क्रोध से 'यम-यम' की आवाज करता हुआ, शीघ्र ही कुपित हुआ, क्रोध से जलता हुआ, विपक्षी यधि का वसन करता हुआ फणा फेलाता हुआ मीपण कुफकार करता हुआ, दूरज की ओर देख कर प्रभु की ओर देखने लगा मगर दूसरों की तरह वह प्रभु नहीं।

सर्वने दूसरी बार और फिर तीसरी बार मीदेला, फिर भी प्रभु न जले । तब उसने प्रभु के पैर के अंगुठे में हँस लिया । हँस कर 'यह मेरे ऊपर ही न गिर पड़े' यह सोच कर दूर सरक गया, तथापि मगवान गिरे नहीं । दूसरी और तीसरा बार हँसा, तब भी मगवान न गिरे । कायात्सग से तनिक भी चम्पित न हुए । तब वह क्रोध से प्रभु की देखने लगा । शान्त मुद्रा बाछे, अटुल कान्ति के पानी, सौम्य, सौम्यमूल, सौम्यदण्डि, माधुरता के गुण से युक्त और समाशील मगवान की देखने बाछे उस

आइक स्थिर बाछ छेले छि ? कमजोर न हु तेने न्यला वडे नागीने जलम करी नाधु छु न्यडोकिङ नाम ज्यपु त्विवादी कोधवी धमधमी ठडेडा शीघ्र होय बभान बतो कोधवेधवी नीङणतो न्यणज्जोने धारव करतो, विष इपी ज्जमिनु वज्जम करतो, देवु तिसुरा करतो, वीरवु दूक्षज आस्तो, सुरभगी आगे देजतो जगवाननी आगे छि करी, परतु जन्म भावसेनी आइक प्रभुने नावी शङ्को नकि जे प्रभावे न्यडोकिङ वीरवार-जीववार छि जगवान तरह करी, परतु प्रभुना शरीरने छिनी ज्ञांज पवु नापी नकि.

छिटि वडे न्यारे जगवानने हाँड पवु जस्सर बाछ नकि त्पारे तेवे प्रभुना ज्जुठे इण भाये। इण आशवादी आ आनवी विवना जेरे हडाव आरी छेपर पे ते वीरवी ते इर सरक्षी जये। छवां प्रभुने तो हाँड पवु वधु नकि. नापी शीते जे न्य वार इण भाये, पवु तेभने हाँड पवु प्रक्षारणी जस्सर न्यपाड नकि तोभ परमा पवु नकि जने जमेलाव भांवी पवु ज्युत बसा नकि. नापी तेने बजे। कोध न्यपी पको जने कोधमुज छिटि जे छए जगवान तरह पविचन करी. छिवाव करतो बोल सडमज्ज आसकात्तिना पली. जेवम. जीवज्जानी कोधविमुज परतु भुजि-

चण्डकौशिकः स्तब्धो जातः। प्रभोः शान्तिबलेन तस्य क्रोधः शमितः। तस्य क्रोधज्वालाया उपरि प्रशुणा क्षमा-जलं सिक्तं, तेन स शान्तः शान्तस्वभावः संजातः। एतादृश शान्तिसम्पन्नं चण्डकौशिकं दृष्ट्वा प्रसुरेचमवादीत—‘हे चण्डकौशिक ! अबबुद्ध्यस्वावबुध्यस्व, क्रोधमत्रमुञ्चावमुञ्च, पूर्वमेव क्रोधवशेनैव कालमासे कालं कृत्वा त्वं सर्पो जातः पुनरपि पापं करोषि, तेन पुनरपि दुर्गतिं प्राप्स्यसि, अतः आत्मानं कल्याणमार्गे प्रवर्तयेति। एवं प्रभो-रमृतसमं प्रबोधवचन श्रुत्वा चण्डकौशिको विचारसागरे पतितः पूर्वभवजर्तिं स्मरति। तेन स निजपूर्वमेव क्रोध-प्रकृत्या निजमरणं विज्ञाय पश्चात्पापं कृत्वा हिसकप्रकृतिं विमुच्य शान्तस्वभावः संजातः। ततः खलु स सर्प-

चण्डकौशिक की विपरीतरी आँखें शान्त हो गईं। क्रोध का पिंड वह चण्डकौशिक स्तब्ध रह गया। प्रभु की शान्ति के बल से उसका क्रोध शांत हो गया। उसकी क्रोध-ज्वाला पर भगवान् ने क्षमा का जल सींच दिया। इस कारण वह शान्त और शान्तस्वभावो हो गया। इस प्रकार चण्डकौशिक को शान्तिसम्पन्न देखकर प्रभुने इस प्रकार कहा—‘हे चण्डकौशिक ! बोध पाओ ! क्रोध की छोड़ो, छोड़ो ! पूर्व भव में क्रोध के बशीभूत होकर ही कालमास में काल करके तुम सर्प हुए। अब फिर पाप कर रहे हो तो फिर दुर्गति पाओगे, अतएव अपने आप को कल्याण-मार्ग में प्रवृत्त करो।’

प्रभु के अमृत के समान यह प्रबोध-वचन सुनकर चण्डकौशिक विचार-सागर में डूब गया। उसे पूर्व के जन्म का स्मरण हो आया। उससे वह पूर्वभव में क्रोध-प्रकृति से अपना मरण जान कर, पश्चात्ताप

वाणा अने क्षमाशील भगवानने नेतां यऽडोशिकनी विषमथ आणे। शांत थल गल ! क्रोधना पिंड समान ज्येव यऽडोशिक स्तब्ध थल थल प्रभुना शातिभण आगण ज्येने। क्रोध शांत पडी गथे। तेनी क्रोधयुक्त ज्वाला उपर प्रभुये क्षमा डपी जणनु सिंथन क्युं. आने दीधे ते शांत अने शांतस्वभावी थल गथे। तेने शांतस्वभावी नेतां प्रभुये तेने नीये प्रभाषे कल्लु

“हे यंऽडोशिक ! सुल ! सुल ! सुल ! क्रोधने तिदांजली आप ! पूर्वभवमां क्रोधने वश थवाथी अने भरलु वणते ज तु क्रोधो ज्येने। होवाथी कण आव्हे भरलु पाभी तुं सर्प ज्येने। क्रोधनी आवी भाडी गति बोगवी रह्यो छे, छता हणु तु क्रोधने बलवा भागते। नथी. जे हणु क्रोधने वश थल आवु पापी जवन ज्येवश ते। आथी पणु वधारे भाडी गतिने पाभीथ, माटे हवे तुं कल्याणना मार्गने अपनाव। अने क्रोधावेशमांथी ह-मे-शने माटे छटी न्।”

प्रभुने आवां अमृत समान मोध साबणी यंऽडोशिक नाग विचारसागरमां डूबी गथे. विचारथेसुी पर यढता तेने पूर्वजन्मनु स्मरण थल आव्हु. आ स्मरणथी तेषु जलस्युं हे पूर्वमेव क्रोध प्रकृतिमां भरलु थवाथी

[illegible]

त्वेन स्थितोऽस्ति । तिष्ठतु नामैषः । किन्तु सम्प्रत्येव=अधुनैव इमं=पुरोवर्तिनम् अहम् विषज्जालया=विषोप्रतजसा भस्मराशीकरोमि=भस्मपुष्पीकरोमि, इति कृत्वा=एतद्विचिन्त्य क्रोधेन=रोषेण धमधमायमानः=‘धमधमे’=तिशब्द-
 कुर्वन्, आशुस्न=शीघ्रकुपितः ‘मिसमिमायमानः’=ज्ञाञ्जल्यमानो विषाग्निं वमन्=उद्गिरन् फणां विस्तारयन्=
 विस्तृता कुर्वन् भयङ्करै=भीषणैः फुत्कारैः=भयङ्करफुत्कारपूर्वकं दृष्टिं=चक्षुः स्फारयन्=विकाशयन् सूरं=सूर्यं निधाय=
 निरीक्ष्य, स्वाग्निं=श्रीवीरप्रभुं प्रलोकते=प्ररूपेण पश्यति, किन्तु विपद्दशा प्रलोकयमानोऽपि सः श्रीवीरस्वामी न
 दहते=न भस्मीभवति, यथा=येन प्रकारेण अन्ये=प्राणिनो भस्मीभवन्ति । एवम्=अनेन प्रकारेण=पूर्ववत् द्विरपि
 त्रिरपि=द्विवारमपि त्रिवारमपि प्रलोकते, तथापि सः=श्रीवीरस्वामी न दहते, तदा स सर्पः पादाङ्गुष्ठे=चरणा-
 ङ्गुष्ठाङ्गुल्यवच्छेदेन दशति, दष्ट्या ‘मे उपरि=मम शरीरोपरि अयं मा=न पतेत्=इति कृत्वा=इति विचार्य प्रत्यव-
 ष्वप्कते=दूरिभवति, तथापि=पादाङ्गुष्ठे दंशनेनापि प्रभुर्न पतति । एतावदेव न अपिच कायोत्सर्गात्=कायो-

खडा है ? यह ठंड के समान अडिग रूप से खड़ा हुआ है । यह भले खड़ा हो, परन्तु इसको अभी-अभी
 त्रिप के उग्र तेज से राख का ढेर करता हूँ ।

इस प्रकार विचार कर चण्डकौशिक रोषवश धमधमाट करने लगा । एकदम कुपित हो गया । क्रोध
 से जल उठा । विषरूपी अग्नि को निकालने लगा । भयानक फण फैलाकर, नेत्र फाड़ कर और सूर्य की
 ओर देख कर भगवान की तरफ देखने लगा । किन्तु विषभरे नेत्रों से देखने पर भी प्रभु भस्म न हुए,
 जैसे दूसरे प्राणी भस्म हो जाते थे । इसी प्रकार उसने दूसरी बार भी देखा और तीसरी बार भी देखा ।
 फिर भी वीर भगवान् भस्म न हुए । तब उस सर्प ने पैर के अंगुष्ठों में काट खाया । काट कर उसने
 सोचा—‘यह कहीं मेरे शरीर पर न गिर पड़े’ अन एन वह दूर सरक गया । मगर अंगुष्ठों में छंसेने पर
 भी भगवान् नहीं गिरे । यही नहीं, किन्तु वे कायोत्सर्ग से लेश मात्र भी चलायमान न हुए । इसी प्रकार

माथाना भानवीञ्चो अर्हा आववानि हिंसत डेवी रीते करी ? तेमाय पणु आडनी भाक्षक स्थिर थधने छे। रह्यो छी ?
 आवुं अक्षपनीय दृश्य ज्येष्ठ धणु। धमधमी छथे। अने क्षणुवारमां ते बगवानने इता न हता करी देवा तैथार थये।

इष्ट माणुस वथत आन्धे चेतानी इष्टता अताववामा पाक्षी पानी करतो नथी, अने ते अंगे तेना सधजा
 प्रयत्न। करी छूटे छे तेम अडकिथि डष्टि, डेष्ठु, डंभ, वगेरे धमपछाडा कर्यो । पणु ज्येष्ठ नेम ते उपाये। अज्भभावतो
 गये। तेम तेम तेना प्रयत्नो निष्कृण थवा दाज्या, आथी छेवटनुं क्षथियार अज्भमाथश करवा सर्व शक्तिज्योने डेन्द्रित
 करी बगवान सांभ अतूट दष्टियात कर्यो, परतु तेमा निष्कृणता अनुभवतां तेना। कोधी स्वभाव थांतपणु परिणुभवा दाज्या।

निश्चित मकानि अन्नदानेन छेदयित्वा भुजेन ग्यानेन कालमासे काल कृत्वा उत्कर्षतोऽष्टावश्रसागरांप्रमस्थितिके
सप्तसागरिभ्येऽष्टमे देवलोके उत्कृष्टस्थितिक एकावतारो यदो नाथः । महाविदेहो स सेत्स्यति ॥ गृ०८६ ॥

टीका—“तप बं से चण्डकोसिण” इत्यादि वतः=भीरीरप्रभो कापोत्सर्गपुरस्सरस्थित्यनन्तरं गच्छ
सा=वष्टिपिपः, चण्डकौशिकः=तन्नामा विपश्नः=सर्पः, क्रुद्धः=क्रोधयुक्तः सन् विलाय् वरिः=वहि प्रदेसो निस्पृह्य=
निर्गम्य कापोत्सर्गस्थित प्रसू भीवीरस्याग्निन, इष्ट्वा अचित्तवत्=चिन्तितवान्-शीरश्चः=तृणमूत अपम=पप मम
बिबन्निहृत स्थितः, मृत्युमप्यपिमुक्त-मृत्योरपि निर्गम्य मृत्योः=मानवोऽस्ति, गोऽय स्याणुरिव स्थिरत्वेन=निश्चल-

कारकं और हिसक मकृति का त्याग करके शान्तस्वभाव हो गया । उत्पन्नात् वह सप अनन्तन से हीस
मक्त छेदन करके बर्षात् पत्रर दिनों का अनखन करके, भुजप्यान के साथ, काष्ठमास में काल करके,
मठारर सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति पाछे सहसार नामक भाठेवें स्वर्ग में उत्कृष्ट स्थिति वाला और
एकावतारी दय हुआ । यह महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा । गृ०८६ ॥

टीका का अर्थ—वीर समाज के कायोत्सर्ग में स्थित हो जाने के पश्चात् वष्टिपिप चण्डकौशिक
नामक सर्व क्रोध से युक्त होकर अपने बिल से बाहर निकला । बाहर निकल कर कायात्सर्ग में स्थित प्रसू
को दम कर वह विचार करने लगा—यह मृत्यु के भय से राहित मनुष्य कैसा है जो मेरे बिल के समीप

आ अतिने दु पायेछे छु आ विचारने चिन्तये तेने पादवदर पश्चात्पाप बये अने हिसाभय प्रवृत्तिने । आन हरी
शांत स्वभावी अथे । याव स्वभावी कर्ता तेवे चहर द्विषयु अणुशयु आद्यु” शुभभानभां स्त्री पूर्वना
अधिनो मुहुरपूर्वक पश्चात्पाप करतो अधिने सकारिने वाड हरी तेनी आदोक्षणो करतो भण हरी अथे—भरखु चाभ्यो ।

अर्थात् मरी ते अठार आनपुअमनी कष्टुष्ट स्थितिवाणा सहसार नामना आठमा देवदोऽग्रभ, ऊर्ध्वस्थ स्थितिवाणो,
कोऽवतारदेव बये । त्वांभीम्बनीभक्तानिदेहीरभमाऊपल्लवर्धकभ नेमो अवसाक्षक हरी सिद्धगतिने प्राप्त करये (गृ०८६)

टीकानो अर्थ—“प्राण अने प्रभुति साबै न लय” जो बड़ेवत घोड़ी नथी अथे तेदेवो प्रथम हस्वामां आवे,
अथे तेदछ मुग्धान काम पक्ष घोवाने अस्वव स्वभाव छुटतो न नथी तन्नुसार आ अथे” उपयेवो प्रदेश रक्ष नेवे,
जानाही दीधो तो पक्ष तेना दोष थात बये नकि पशु रक्षित तथा पथीना कृप्यन विनानो ननी अथे तो पक्ष
तेने शांति धर्ष नकि अक्षिभा नेम नेम पास आदि नपता नपछि तेम तेम अक्षि पधार ने पधार अछुतो आम
छे तेम नेम नेम मात्र दोषन बतो अथे तेम तेम दोष थात बवाने अठार वषतो न नथे अथानने
देवानाही तो तेने तेम बने । आन हरी अथे अने हिसाभय प्रवृत्तिने नथी तो आ भाणा

त्वेन स्थितोऽस्ति । तिष्ठतु नामैषः । किन्तु सम्प्रत्येव=अधुनैव इमं=पुरोवर्तिनम् अहम् विषज्वालय=विषोप्रतजसा भस्मराशीकरोमि=भस्मपुष्पीकरोमि, इति कृत्वा=एतद्विचिन्त्य क्रोधेन=रोषेण धमधमायमानः=‘धमधमे’=तिशब्द-
 कुर्वन्, आशुस्म=शीघ्रकुपितः ‘मिसमिमायमानः’=जाज्वल्यमानो विषाग्निं वमन्=उद्गिरन् फणां विस्तारयन्=
 विस्तृता कुर्वन् भयङ्करै=भीषणैः फुत्कारैः=भयङ्करफुत्कारपूर्वकं दृष्टिं=चक्षुः स्फारयन्=विकाशयन् सूरं=सूर्यं निधाय=
 निरीक्ष्य, स्वामिन्=श्रीवीरप्रभुं प्रलोकते=प्रकर्षेण पश्यति, किन्तु विपदशा प्रलोकयमानोऽपि सः श्रीवीरस्वामी न
 दहते=न भस्मीभवति, यथा=येन प्रकारेण अन्ये=पाणिनौ भस्मीभवन्ति । एवम्=अनेन प्रकारेण=पूर्ववत् द्विरपि
 त्रिरपि=द्विवारमपि त्रिवारमपि प्रलोकते, तथापि सः=श्रीवीरस्वामी न दहते, तदा स सर्पः पादाङ्गुष्ठे=चरणा-
 ङ्गुष्ठानुल्यवच्छेदेन दशति, दष्ट्वा ‘मे उपरि=मम शरीरोपरि अयं मा=न पतेत्-इति कृत्वा=इति विचार्य प्रत्यव-
 ङ्गुष्ठकृते=दूरिभवति, तथापि=पादाङ्गुष्ठे दंशनेनापि प्रभुर्न पतति । एतावदेव न अपिच कायोत्सर्गात्=कायो-

खड़ा है? यह टूट के समान अडिग रूप से खड़ा हुआ है । यह भले खड़ा हो, परन्तु इसको अभी-अभी
 विप के उग्र तेज से राख का ढेर देता है ।

इस प्रकार विचार कर चण्डकौशिक रोषवश धमधमाट करने लगा । एकदम कुपित हो गया । क्रोध
 से जल उठा । विषरूपी अग्नि को निकालने लगा । भयानक फण फैलाकर, नेत्र फाड़ कर और सूर्य की
 ओर देख कर भगवान् की तरफ देखने लगा । किन्तु विपरे नेत्रों से देखने पर भी प्रभु भस्म न हुए,
 जैसे दूसरे प्राणी भस्म हो जाते थे । इसी प्रकार उसने दूसरी बार भी देखा और तीसरी बार भी देखा ।
 फिर भी वीर भगवान् भस्म न हुए । तब उस सर्प ने पैर के अंगुष्ठों में काट खाया । काट कर उसने
 सोचा-‘यह कहीं मेरे शरीर पर न गिर पड़े’ अत एव वह दूर सरक गया । मगर अंगुष्ठों में डंसने पर
 भी भगवान् नहीं गिरे । यही नहीं, किन्तु वे कायोत्सर्ग से लेश मात्र भी चलायमान न हुए । इसी प्रकार

माथाना मानवीजो अर्द्धां व्याववानी हिंमत डेवी रीते करी? तेमाथ पणु आडनी भाक्षक स्थिर थधने छे। रह्यो छे?
 आवु अकल्पनीय दृश्य ज्येष्ठ धल्लो धमधमी छेथो अने क्षणवारमा ते बागवानने इता न इता करी देवा तैथार थयो।

इष्ट माणुस वणत आन्धे चोतानी दुष्टता अताववामा पाथी पानी करतो नथी, अने ते अगे तेना सधजा
 प्रयत्न करी छूटे छे तेम अडकेशिके दष्टि, देख्खे, उअ, वगेदे धमपछाडा कर्यो। पणु जेभ जेभ ते उपाये। अण्णभावतो
 गयो तेम तेम तेना प्रयत्नो निष्कण थवा लाज्या, आथी छेवटुं छेथियोर अण्णमाधथ करवा सर्व शक्तिओने डेन्द्रित
 करी भगवान् सोम अतूट दष्टिपात कर्यो, परतु तेमां निष्कणता अनुभवतां तेना। कोधी स्वभाव शांतपणु परिणुभवा लाज्यो।

स्पर्गाद्रिपातः लेखमपि=किञ्चिदपि न चलति । ततः स एवं=पूर्ववत् द्विरपि प्रिरपि=द्विवारमपि विचारमपि
 दधति, तथापि मृदुनो पतति । तदा सः अमर्षेण=क्रोधेन मधुं मलोक्तमानः=मण्डयन् भास्ते=विद्यति । एवम्=
 अनेन प्रकारेण शान्तमृदु=शान्ताकारम् अलकान्तिमन्त=निरुपमममममकुल, सौम्य=मृदुस्वभावा, सौम्यवदनं=
 सौम्यमुखं सौम्यदर्पि=मृदुनरदं, मापुर्गण्ययुक्तं=मधुरवास्वगुणालंकृतं, समशीर्षं=समारम्भारं तं=सर्वोत्कृष्टं मगवन्तं
 वीरस्वामिनं प्रेसमात्रस्य=मण्डपतः तस्य=वन्दकौशिकस्य सर्पस्य से=कल्याणतत्कालवदिसदृशे विपश्यते=विपश्यणे
 अतिथी=नन्दे विध्याते=शान्तिमार्गने । ततः ललु क्रोपपुञ्जम्=क्रोपरशिसरूप -उग्रक्रोधी स=वण्डकौशिकः-
 सर्पः स्वरूप=कृष्टित जातः । प्रयोः=धीवीरस्वामिनः, शान्तिषलेन=शान्तिप्रभावेण, तस्य=वण्डकौशिकस्य क्रोधाः=
 क्रोधाः क्रमिताः । तस्य=वण्डकौशिकस्य क्रोपज्वालाया उपरि मण्डुणा=धीवीरस्वामिना समानरूपं=शान्तिकम् जलं
 सिक्तम्, तेन=समानजलसेचनेन स शान्तः=माकृत्या शान्तियुक्त शान्तस्वभावः=मकृत्या च शान्तियुक्तः संभावतः ।

उनने दूसरी बार और तीसरी बार मी हँसा, तथापि मधु गिरे नहीं । तबभाव यह तोप के साथ मधु को
 देवता रहा । शीत आकार साहे, अनुपम कान्ति से मंडित, मृदुस्वभाव वाले, मधुरता से मलंकृत और
 समशीर्ष मगवान वीर स्वामी को देखते हुए वण्डकौशिक सर्प की, मलयकाल की भाग के समान, विप
 से परिपूर्ण आँखें कुछ गर्व भरावों दाँत हो गई । वह क्रोप का पुन-उग्र क्रोधी वण्डकौशिक सर्प कुठित हो
 गया । वीर मधु की गति के प्रभाव से उसका क्रोप शीत हो गया । वण्डकौशिक की क्रोप-ज्वाला पर
 मगवान महावीर ने समा का जल सींच दिया, अर्थात् अपनी समा एवं शान्ति के प्रभाव से उसके क्रोप
 को नष्ट कर दिया । समा का जल सींचने से वह आकृति से मी शीत हो गया और मकृति से मी शीत हो गया ।

शान्तिनु आभास अतस्मा अन्तर्गत तेने विचार करकने। अवयव प्राप्त घरे। अशान्तिभां हांय विचार
 आगतो नही, तेम अथोय निराशय पक्ष यक्ष सकु नही. शान्ति अने कोभने। उअयो। वन्नेय अमुकमे व्य स-
 पक्ष अने मरी व्यु कत तेनी विचारभारा कदाहार् आया परम इयाणु समावत अने शीत युद्धावाणा पुरुषने
 नेअ तेना अतस्मां सक वणी अने आनकाश छिअे तेमनी तरअ नेअ इयो अमि क.। पावीधी युजम छे, शीत
 भरणीधी आढी व्य छे, इरेक पक्ष अने नारा तेना विव्द अमुवाणा पदावधी आभ छे अने मृदुतिना नियम छे
 अतस्मां मुद अे अतस्मां प्रवर्त छे (१) क्वकु-धमभमाट प्रवृत्तिगणु केम छे तेनाधी अमस्त अजत प्रवृत्तिजाओ
 प्रमथमी स्वेअ रेआभ छे अेम कवन-कवन-दोआभ-आर नारा-पिआर-कस्ता-अमअमअवत-दोहीनी दोआभ
 विव्द अमारीर नअरी नअरेअम छे । निअरी अरनी अम अमअर दोनी अम अम अम वि नअमअम

एतादृशम्=ईदृशं, शान्तिसम्पन्नं=शान्तिगुणवन्तं चाण्डकौशिकं सर्पं दृष्ट्वा प्रभुः=श्रीवीरस्वामी एवम्=अनुपदं वक्ष्य-
 माणं वचनम् अवादीत=उक्तवान्-‘हे चण्डकौशिक ! त्वम् बुध्यस्व बुध्यस्व=बोधं लभस्व, तथा
 क्रोधं कोपम्, अवसुश्चावसुश्च=सर्वथा त्यज, यतः पूर्वभवे क्रोधवशेनैव कालमासे कालं कृत्वा त्वं सर्पः संजातः ।
 पुनरपि=इह भवेऽपि पापं=क्रोधरूपं पापकर्म करोपि=उपार्जयसि तेन=पापकरणेन पुनरपि=आगामिनि भवेऽपि
 दुर्गति=नरकादिगर्हितगतिं प्राप्स्यसि । अतः=अस्मात् कारणात्-क्रोधस्य दुर्गतिनिमित्तत्वात् त्वम् आत्मानं
 कल्याणमार्गे=मोक्षमार्गे प्रवर्तय=प्रापय-इति । एवम्=अनेन प्रकारेण प्रभोः=श्रीवीरस्वामिनः अमृतसमं प्रबोध-
 वचन=प्रबोधकरोपदेश. श्रुत्वा=श्रवणविषयीकृत्य चण्डकौशिको विचारसागरे=विचारसमुद्रे पतितः सन् पूर्व-
 भर्जाति=पूर्वभवसम्बन्धिनीं स्वकीयां जातिं स्मरति । तेन=स्वपूर्वभवजातिस्मरणेन सः=चण्डकौशिकसर्पः निज-
 पूर्वभवे=स्वपूर्वजन्मनि क्रोधप्रकृत्या=कोपस्वभावेन निजमरणं=स्वकीयकालधर्म=प्राप्तिं विज्ञाय=अनुभूय पश्चात्तापं

इस प्रकार चंडकौशिक को शांत देखकर वीर प्रभु ने उससे कहा-हे चंडकौशिक ! तुम बुद्धी,
 बुद्धी बोध प्राप्त करो, बोध प्राप्त करो, क्रोध को तज दो, तज दो, अर्थात् पूरी तरह त्याग दो, क्यों कि
 पूर्वभव में क्रोध के कारण ही तुम काल मास में काल करके साँप हुए हो । इस भव में भी वही क्रोध रूप
 पाप कर रहे हो । इस पाप का आचरण करने से आगामी भव में भी नरक आदि गर्हित गति प्राप्त करोगे,
 क्योंकि कि क्रोध दुर्गति का कारण है, अतः तुम अपनी आत्मा को मोक्ष के मार्ग में लगाओ ।

इस प्रकार के वीर भगवान् के बोधजनक उपदेश को सुनकर चंडकौशिक विचारों के समुद्र में
 डूब गया । उसे अपनी पूर्वभवंबंधी जाति का स्मरण हो आया । पूर्वभव के जाति स्मरण से उसे विदित
 हो गया कि मैं क्रोध-प्रकृति के कारण ही कालधर्म को प्राप्त हुआ था । तब उसने पश्चात्ताप किया और

आ.वे, तेन तेम, ते आगण धपतो होय छे, तेम आ गरम युद्ध, नेम नेम बडातुं नथ छे, तेम तेम ते विस्तृत थतुं नथ छे
 (२) शीत युद्ध न्नुदा न प्रकारतुं भाडुम पडे छे. ते भक्षार देयातुं नथी, तेनी होऽधाम नग्गरे पडती नथी, ते कोह प्रक्षारे
 डेलन-चेलन वाणु न्नुदातु नथी, परंतु आतरिक पणु प्रसरतुं होह सर्व दावानणने ठडु गार भनाची हे छे. नेम
 डिम अ ठडु कुहरती युद्ध छे, ते शाकबाणु अड-यान विगेरेने गाणीने बरम करे छे. तेमा भक्षारने। अनि होतो
 नथी, परंतु अहरनी सण्ट ताकत होय छे. ठंडा युद्धने भक्षारने। आडंभर होतो नथी, पणु ते अंहरणानेथी सथोट
 काम करी रछे छे. अने गसे तेवा पदथीने नडभूणमांथी उणेडीने निर्भाज करी नाणे छे, तेम भगवाननी ठंडी आत्म
 शाती रुप शक्तिअे, सर्पनी कथय रुप उण्णु शक्ति पर विग्रय भेगण्णे। आ विग्रय प्रस्थान देये, सर्पने विचार
 करतो करी भुंके। अने तेने आत्माना असल स्वभाव तरक्क दाध गये।

कृत्वा रिसप्रकृतिं=मातृकस्वभावं विमुच्य=परित्यज्य शान्तस्वभावः संजातः। ततः स्वच्छ सः=वण्डुकौशिकः
सर्व, विद्वतः=विश्वस्वस्थानि भक्तानि अनन्तान् छेदयित्वा भुगेन=अत्यन्तान् भुगेन कालमासे काष्ठं कृत्वा
उत्कर्तः अष्टावक्रसागरोपमस्यतिके सारस्वतारामिधे=सारस्वतारामके अष्टमे वेवलोके उत्कण्ठस्यतिकः=अष्टा
वनसागरोपमस्यतिकः एकवक्त्रा=एकवक्त्रिको देवो जातः। स च देवायुस्समाप्त्यनन्तरं ततश्च्युत्वा महा
विदेहे सेत्स्यति=विदेहो भविष्यति ॥सू०८६॥

युग्म—एवं ये समने भगवं महावीरं वंढकोसियसम्पोजरि उवथार किष्वा ताओ अहवीओ पढि
सियत्तमर, पढिनिबलमिष्वा उचरपायालामिरे गागे समागच्छ। तस्य एगो भागसेणो नामं गारावरं परिवसइ,
तस्य एगो एव पुणो आसी, सो विदेसगओ शारसवरिसाओ अकालखुडी विव मकन्हा गिरे समागओ। अओ
सो भागसेणा पुचगामणमहोच्छरम्मि विचिरमत्तपायलागमसास्मां उवसलढावेर, उवसलढाविष्वा मिचणार
नियग-सण-संबंधि परियणे युमावेर। तेणं काळेणं तेणं समएणं भगव पदतोववासपारणणे भिक्खापरियाए
तस गिरं अनुप्यविहे। तेण नागसेणेण उच्छिद्धे मच्चियइमाणेण भगवं त्तिरं पडिलामिए। तए गं तस नाग
सेवत्स तेणं दव्वमुदेवं दायगमुदेवं पडिमागमुदेवं विविरेणं विहरागमुदेवं भगवंमि पडिलामिए समणे
गिरंसि य इमां पंच दिव्वाए पाठम्भूयां, तं जरा-रुमारा बुद्धा १, दसदवणे कुट्टमे पिवाए २, वेच्छवसेवे
कए ३, आइयाओ तुट्टीओ ४, अतराउवि य वं आगाससि अओ दावं १ वि बुहे ५ य ॥सू०८७॥

अने हिंसक स्वभाव को त्याग कर शीघ्र स्वभाव धारण कर लिया। तत्पश्चात् वह वीस भक्त अनन्तान् से छेद
कर, प्रशस्त ध्यान के साथ, कालमास में काम करके, अठारह सागरोपम की उत्कण्ठ स्थिति बाँधे सारस्वत
नामक भाठवें देवलोके में अठारह सागरोपम की स्थिति वाला, एक ही मल झरके मोस में जाने वाला देव
हुआ। देवायु की समाप्ति के पश्चात्, वहाँ से श्रुत होकर वह महाविदेह में सिद्ध होगा ॥सू०८६॥

अत्र बानना देव वन्देति, तेन च अष्टं अक्षरं इति। तेन पूर्वकवेन स्वयम् इराज्जु नरक आदि
अवेनी प्राप्तिने २५ योग्य भयाङ्क इराज्जो, वीरप इत्येनी आचर्य इति। कोधने छिद्रवा चारु २ उपदेश देवा भद्रयो
आयु अर्धं ज्ञान कने ईदने इति तेन चतुश्री वन्देना सांजणवाशी, तेन अन शतरसे पस्विभवा आनु
अने ते स्वभां इराज, रिकारपवे इति, ध्यानभज्य यथे। आत्य जितनभा आनुप्य पुरं इति, ते आठमा देवलोके
उत्कण्ठ स्थिति, देवपुत्रे उत्पन्न यथे। त्वांभी वपी लोक कवरी ते सिद्धमतिने चाम्भी। अहंभी अक्कीने भद्रा
निरंके स्वभां च म देहि। त्वांभी कवच केव छिद्रो अहे। अने ते कवचां, आयु पण्य अजिहार इति पण्य पुत्रवाच
ने आत्म स्वभाव प्रपन्न इति, शुद्ध इत्यने म म इति। अने आत्म स्वभाव प्रपन्न इति (सू०८९)

छाया—एवं खलु श्रमणो भगवान् महावीरः चण्डकौशिकसर्पोपरि उपकारं कृत्वा तस्या अटव्याः प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य उत्तरवाचालाभिधे ग्रामे समागच्छति । तत्रैको नागसेनो नाम गाथापतिः परिसर्पति, तस्यैक एव पुत्र आसीत्, स विदेशगतो द्वादशवर्षात् अकालवृष्टिरित्राऽकस्माद् गृहं समागतः, अतः स नागसेनः पुत्राऽऽगमनमहोत्सवे विविधाशनपानखादिमस्वादिमानि उपस्कारयति, उपस्कार्य, मित्र-ज्ञाति-निज-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनान् भोजयति । तस्मिन् काले तस्मिन् समये भगवान् पक्षोपवासपारणके भिक्षाचर्यायै तस्य गृहमनुप्रविष्टः । तेन नागसेनेन उत्कृष्टेन भक्तिवद्गुमानेन भगवान् क्षीरं प्रतिलम्बितः । ततः खलु तस्य नागसेनस्य तेन द्रव्यशुद्धेन दायकशुद्धेन प्रतिग्राहकशुद्धेन त्रिविधेन त्रिकरणशुद्धेन भगवति प्रतिलम्बिते सति

मूल का अर्थ—‘एवं णं’ इत्यादि । इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर चंडकौशिक सर्प पर उपकार करके उस ऋद्धी से बाहर निकले । निकल कर उत्तरवाचाल नामक ग्राम में पधारे । वहाँ नागसेन नामक गाथापति रहता था । उसके एक ही पुत्र था । वह विदेश गया हुआ था । बारह वर्ष बाद अकालवृष्टि के समान वह अचानक ही घर आ गया अतः नागसेन ने पुत्र के आगमन के उत्सव में त्रिविध प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम वनवाये, और बनवा कर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकजनों, स्वजनों, संबंधीजनों और परिजनों को भोजन निमाया ।

उस काल और उस समय में भगवान् अर्धमास खमण के पारणे के दिन, भिक्षाचर्या के लिये नागसेन के घर में प्रविष्ट हुए । नागसेन ने उत्कृष्ट भक्ति और बहुमान के साथ भगवान् को खीर बहराई । तब द्रव्यशुद्ध, दायकशुद्ध, प्रतिग्राहकशुद्ध-त्रिकरणशुद्ध आहार भगवान् को बहराने पर नागसेन के घर में यह पाँच

भूणो अर्थ—‘एवं णं’ इत्यादि श्रमण भगवान् महावीर, अडोशिक सर्प उपर उपकार करी, अटवीथी अहार नीकणी गया त्याही प्रस्थान करी, ‘उत्तर वाचाल’ नामना गाभमां पधायो आ गाभमा ‘नागसेन’ नामनेो गाथापति रहनेो छनो तेने ओक पुत्र छतो, जे विदेशमा गयो छतो. बार वर्ष बाद, अकाले वृष्टिसमान ते अशानक पोताने घर आवी पछोब्यो. पुत्रनुं शुभ आगमन थता, नागसेन धखो। राख थछ गयो अने तेनी खुशाक्षीमा तेखे अनेक प्रकारना भिण्टानो जनानी, विविध प्रकारना भेवा भिण्डओ तैयार करवी, मित्रो-ज्ञातिजनो, स्वजनो, परिजनो, सभधीओ अने ओणजाणु पिछबुवाणा सर्वने नेतयां, अने आनदपूर्वक खोजन करव्या. ते कोणे अने ते सभये, भगवाने ‘अर्धभास भभणु’ कयुं छतुं. अने तेभना पारखानो हिवस आव्ये, अशानक नागसेनना धरमा ते पधायो न गगेने पहुँ बकितापूर्वक अने भान साथे, प्रखुने क्षीरनुं खोजन बहोराव्युं.

स्वपुत्रस्य गृहाऽऽगमननिमित्तकवृद्धदुस्तसे विविधाशनपानखादिमस्वादिमानि=अनेकप्रकारकाऽऽहारपान खाद्यस्वा-
 धानि उपस्कारयति=पावकैर्निष्पादयति, उपस्कार्य=निष्पाद्य मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनान्
 तत्र-मित्राणि=प्रसिद्धानि, ज्ञातयः=सजातयः, निजकाः=स्वकीयाः पुत्रादयः, स्वजनाः=पितृव्यादयः, सम्बन्धिजनः=
 पुत्रपुत्रीणां श्वशुरादयः, परिजनाः=दामीदासादयः, इत्येतान् भोजयति, तस्मिन् काले तस्मिन् समये भग-
 वान्=श्रीवीरस्वामी पक्षोपवासपारणके=अर्द्धमासक्षणपारणादिवसे भिक्षाचर्यायै तस्य-गाथापतेः गृहम् अनुप्र-
 विष्टः। ततः तेन नागसेनेन गाथापतिना उत्कृष्टेन भक्तिवद्भुमानेन=भक्त्या बहुमानेन च भगवान्=श्रीवीरस्वामी
 क्षीरं=पायसं प्रतिलम्बितः। ततः खलु तेन द्रव्यशुद्धेन, दायकशुद्धेन, प्रतिग्राहकशुद्धेन त्रिविधेन विक्रणशुद्धेन
 भगवति महावीरे प्रतिलम्बिते=प्रतिग्राहिते सति तस्य नागसेनस्य गृहे इमानि=वक्ष्यमाणानि पञ्च दिव्यानि
 वस्तूनि प्रादुर्भूतानि=देवैः प्रकटितान्यभवन्, तद्यथा-देवैर्वसुधारा वृष्टा १, दशार्द्धवर्णानि=पञ्चवर्णानि कुसुमानि=
 पुष्पाणि निपातितानि २, चेलोत्क्षेपः=वस्त्रवृष्टिः कृतः ३, दुन्दुभयः आहताः=वादिताः ४, अन्तराऽपि च
 खलु आकाशे 'अहो दानम् अहो दानम्' इति घुषितम्=उच्चैरुच्चारितम् ॥मृ०८७॥

उत्सव मनाया। उस में नाना तरह के अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य : भोजन पाचकों से बननाये।
 बनवाकर मित्रों वों, सजातीयों को, पुत्र आदि निजक जनों को, काका आदि सजनों को, रिश्तेदारों
 को तथा दास-दासी आदि परिजनों को जिमाया। उस काल उस समय में भगवान् वीर प्रभु अर्धमास
 खमण के पारणक के दिन भिक्षाचर्या (गोचरी) के लिए उस गाथापति के घर में प्रविष्ट हुए। नागसेन गाथा-
 पति ने उत्कृष्ट भक्ति और बहुमान से भगवान् को खीर से प्रतिलम्बित किया-खीर बहराई। तत्र
 द्रव्यशुद्ध, दायकशुद्ध और पात्रशुद्ध इस प्रकार त्रिविधशुद्ध और विक्रण (मन, वचन, काय) से शुद्ध दान
 देने से नागसेन के घर में आगे कही जाने वाली पाँच दिव्य वस्तुओं का प्रादुर्भाव हुआ, अर्थात् पाँचदिव्य

वधती गर्भ અને બહારના હુ ખોના નિમિત્તો ઉત્પન્ન કરનાર છવો પથુ, ભાગવાનની અતુલ ક્ષમા અને ધીરજ તેમજ
 સહન શકિતને બોધ, પ્રાત્યોધિત થયા. તેમાંના ઘણા, સ્વપરાક્રમ ક્ષેત્રવી ભગીરથ પુરુષાર્થ આદરી, પાંચમી ગતિએ જશે.
 અર્થાત મોક્ષ પામશે.

પ્રભુ આત્મ-સ્થિરતામા લય થવા તપશ્ચર્યા કરતા અને તે પદર-પદર દિવસ સુધી ચાલ્યા કરતી. આવી તપશ્ચર્યાને
 પાનથે કોઇપણ યોગ્ય ધરમા (ભક્ષાર્થે) પહોંચી જતા. ત્યાં પોતાના હાથને પાત્ર બનાવી, ઉભા રહેતા, અને ધર ધણી નિર્દોષ
 આહાર બે આપે તેનું શ્રદ્ધલુ કરતા

मूल्य—एए न से समणे भगव महावीरे तजो गामाओ निगच्छइ, निगच्छिछा, सेयंविपाए नयरीए मग्गं—मग्गं विहरमाणे जेणेव सुअरिपुरं बयरं सेणेव उवागच्छइ। तत्थ णं सुवहीए पट्ठासट्ठियं विव सागरमिव उच्छन्नतरणतरंगियं गगाणइं उअरिउकामे भगवं सत्तीरे आगमीअ। तएणं से भगवं नावियस्स उग्गहणे तीए नावाए ठिए। पत्तमाणी सा नावा अगाहमल्लमि पत्ता। तत्थ सुदाहानामे एगे नागकुमारदेवो निव सीम। जो विच्छिदायुदेवभये भगवओ नीयेण इयस्स सीरस्स जीवो भासि। सो सुदाहादेवो भगवं दहूणं पुण्णवेरं गरिय कोइय पमपयेंतो आसुराओ भिसिभिसेमाणो भगवओ पासे भागवण आगासट्ठिओ किलकिलव कुम्भाम्भो एव वयासी—“रे भिक्खु! कत्थ गच्छसि? चिट्ठ चिट्ठ” एवं करिय कर्णतकालपवणमिव भये करं संवदगामिं वाड विठगिय उरसमो करे। तं जहा—उए सव्वगवाउणा रुक्खा पडिया, पडवया कंथिया, सुन्निपइयेण झउओ अपयारो जाओ, जलुम्भीओ भगासं फुसिडमिव उच्छलंति पच्छा पडति य, गंगाए हल्लमि सा नावा वि उवरी भागासे उण्णवइ निवइइ य, येअ दोबायमाणीए तीए नावाए संमो समगो, वड्डगग्गि वड्डियामि, पस्साराहिया पढाणा फालिया, नावड्डिया जहा भयमीया सयसयजीअ संकेमाणा कल्लरावं क्ठिमारामिअ। नावाए भवइओ नाविओ मउविओ क्ठिक्काणवग्गहो संभावो।

तेणं काळेणं तेणं समण समज्जस भगवओ मरावीरस्स पुक्कमसमिणेहिं कंबल—संबलामिणेहिं दोहिं पैमावियं देवेहिं ओरिणा सुदाहाभिनगकुमारदेवकयं उवममा आपोगिय तत्थ आगमिय त निवारिय, सा नावा तीरे ठारिया। भओ से देवा सुदाह नागकुमारदेव निगमच्छिय इयिउद्धजया, कल्लराविकेअ भगवया ते निवारिया। तएणं से दोहि देवा नियकरी पाण्डिय भगव वंदंति नमसति, वड्डिया नमसिवा जामेव थिसि पाउग्गुथा तामेव थिसि वड्डिणया।

समसायर वीयरगे भगवउसग्गदारेगे सुदाहादेवे कोइमावं उपगारकारेणु कंबलसवधेसु देवेसु य रागमाय न भिचिचि करीअ, उभयत्थवि समभावं दुरिसीअ।

तएणं नावड्डिया सग्गे जणा नियनीउज्जवाथार सयससगमीवरकसग भगवं जागिय मविबहुमाणेणं थइयु ॥अ०८८॥

बन्नुए भगट्ठ इई। वे यह हैं—(१) देवों ने स्वर्ण की बर्षा की (२) पाँच बर्षों के पुष्पों की बर्षा की (३) बर्षा की झुट्टि की (४) दूरभियों बजाई और (५) आकाश में ‘अहोमान्, अहोदान्’ को घोषणा की ॥अ०८९॥

देवान् देवान् आने दारान् वक्कन् आ गच्छे मज्जन् आवाहिय पण्ण कक्कली सुअ देवान् ओपि आ पाअ दिअ न गच्छे। भवइ धरी नमस्सिमे ने । इ अकाल पुण्णकाणी उ म तेने वाँअ भासि। य क्कगिआ अअ भासि। (अ०८९)

छाया—ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरस्ततो ग्रामान्नि न्छति, निर्गत्य श्वेताश्विकाया नगर्या मध्यमध्येन विहरमाणो यत्रैव सुरभिपुर नगरं तत्रैव उपागच्छति । तत्र खलु पृथिव्याः पट्टाण्डिकांश्च सागरमि-
वोच्छलत्तरङ्गतरङ्गितां गङ्गानदीं तरीतुकामो भगवान् तत्तीरे आगच्छत् । ततः खलु स भगवान् नाविकस्य
अवग्रहेण तस्यां नावि स्थितः । चलन्ती या नौरगायजले प्राप्ता । तत्र मुदंद्नामा एको नागकुमारदेवो न्यय-
सत् । वक्षिपृष्ठवासुदेवभवे भगवतो जीवेन हतस्य सिंहस्य जीव आसीत् । स मुदंद्देवो भगवन्तं दृष्ट्वा पूर्वैरे-
स्मृत्वा क्रोधेन धमधमायमानः आशुरक्तो मिसमिसायमानो भगवतः पार्श्वे आगत्य आकाशस्थितः किलकिन्नरं

मूल का अर्थ—‘तणं’ इत्यादि । तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर उस उत्तरयाचाल गाँव से बाहर
निकलते हैं । वहाँ निकल कर श्वेताश्विका नगरी के बीचों बीच होकर जहाँ सुरभिपुर नामक नगर था, वहाँ
पधारेते हैं । वहाँ पृथिवी की खेत साड़ी के सहज तथा समुद्र के समान उछलती हुई तरंगों से तरंगित
गंगा नदी को पार करने की इच्छा से भगवान् उसके किनारे आये । तत्पश्चात् नाविक की आज्ञा लेकर
भगवान् नौका पर आरुढ़ हुए । चलती-चलती यह नौका अथाह जल में जा पहुँची । वहाँ मुदंद् नामक सिंह का
एक नाग कुमार देव निवास करता था, जो त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में भगवान् के द्वारा मारे गये सिंह का
जीव था । अर्थात् उस पूर्व भव में भगवान् त्रिपृष्ठ वासुदेव थे, और यह देव सिंह था । त्रिपृष्ठ वासुदेव ने
उस सिंह को मारा था । अतः मुदंद् देव भगवान् को देखकर, पूर्वभव के वैर का स्मरण कर के, क्रोध से
धमधमाता हुआ, क्रुद्ध होता हुआ, क्रोध से जलता हुआ, भगवान् के पास आकर, अग्र में स्थित होकर

भूदनेन अर्थ—‘तणं’ धृत्यादि, त्पारपक्षी लगवान उत्तर वायाण नामना आभभाथी यथा सभये नीकणी
श्वेताश्विका नगरीनी मध्यभाथी पसार थर्ध सुरभिपुर नामना नगरभा पधायो, आये पृथ्वीये धवलवत्त्र धारत्तु कथु”
छेय तेषां निर्भण छिद्येणा आतां पाणी नाणी अने विद्याण काय समुद्रनी नेम मोलन्तो उछलती जेवी गंगा
नदीना तटे प्रलु पधायो अने नदीने पेखे पार जवा छच्छा करी त्यां पोरखी नौकाना भादिकनी आना लछ लगवान
ते नौकाभा ओठा. पाणीने पंथ आपती आ नौका अगाध जण मध्ये आवी पहिंन्ची. आ मध्य भागमां ‘सुदंद्क’
नामने। ओक नागकुमार देव निवास करी रह्यो હતો. ત્રિપૃષ્ઠવાસુદેવના ભવમાં ભગવાને જે સિંહને માર્યો હતો તેજ
સિંહને। આ છવ હતો અને તે ‘સુદંદક’ નામના નાગકુમાર તરીકે અહીં જન્મ્યો હતો.

આ સુદંદક દેવે ભગવાનને જોયા કે તરત જ પૂર્વભવના વેરનું સ્મરણ થઈ આવ્યું. સ્મરણ માનથી તે
ક્રોધાગ્રીથી બળવા લાગ્યો અને તરત જ ભગવાન પાસે આવી હવામા અદ્ધર ઉભો રહી ‘કિલ-કિલ’ અવાજ કરતાં

मूमम्—तएवं से समणे मगव महावीरे तथो गामाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छिण्णा सेयंविधाए नयरीए मग्गं-मग्गण विहरमाणे ओणेव सुविधुरं जयरं तेणेव उवागच्छइ। तत्थ वं पुव्वीए पट्ठाडियं विव सागरमिव उज्ज्वलतरंगरंगियं गगगाई उणरिउकामे मगवं तथीरे आगमीय। तएणं से मगवं नावियस्स उग्गारेण तीए नावाए टिए। चस्समाणी सा नावा अगाहमस्मि पत्ता। तत्थ सुदह्मनामो एगो नागकुमारदेवो निच सीय। जो विच्छिदासुदेवमे मगवओ मीवेण इयस्स सीरस्स बीवो आसि। सो सुदावादेवो मगवं वड्डयं पुण्णवेरं गरिय कोरेण ममपवेत्तो आसुरणो मिसिभिसेमाणो मगवओ पासे आगंतूण आगासट्ठिओ क्लिक्खित्तरव कुण्णमावो एव सपासी—“रे मिववु! कत्थ गच्छसि? विट्ठ विट्ठ” एवं करिय कर्प्यतकालपव्यमिव मग्गं कर सद्धगामिह वाठ विउज्जिय उरसमं करे। तं बरा-वैण सव्हगशठणा रुच ना पडिया, पववया कीरिया, पुत्तिपडहेण मउठा अवयारो जाओ, जलुग्गीओ आगासं ऊसिठमिव उच्छस्सति पच्छा पठति य, गंगाए कलम्मि सा नावा वि उवरी आगासे उप्पवइ निक्खइ य, ऐग दोभायमाणीए तीए नावाए तंमो मग्गो, मउठमि सुडियावि, पस्साराहिया पढाणा फालिया, नाचट्टिया जगा मयमीया सयसयजीवणं संकेमाणा कल-कलारं कटिमारमिडु। नावाए अवहूओ नाविओ मउठिमाओ किक्कायवयुहो सनाओ।

तेण काळेवं तेणं समणस्स मगवओ मरावीरस्स पुक्कमवमिचेरि कंवल-संबलामिरोहि दोहि वैमाणियं देवहिं भोविणा सुदावाभिननागकुमारदेवकयं उवमो आभोगिय तत्थ आगमिय तं निवारिय, सा नावा तीरे ठाविया। तओ ते देवा सुदाह नागकुमारदेवं निक्कमिच्छिय इमिउज्जया, कल्ह्यारविक्किय मगवया ते निवारिया। तएणं ते दोहि देवा नियकां एगट्टिय मगव वदंति नमसति, वदिया नमसिणा जामेव दिंसि पाउव्यूया तामर दिमि पडिगया।

समसायरं श्रीयारगे मगवंउसम्माहारगे सुदावादेवे कोहमावं उवगारकारेणु कवलसवछेसु देवेसु य रागमाव न भिचिवि करीय, उमयरणवि सममावं दुरिसीय।

तएण नाचट्टिया सक्क जणा नियजीवजायार सयसजगजीवरक्खणं मगव जायिय मपिबहुमाणेय थइम ॥५०८॥

यस्यए मगट्ठुई। ये यइ हैं-(१) यत्तो ने स्वर्ण की वर्षा की (२) पाँच वर्षों के पुष्पों की वर्षा की (३) यत्ती की छटि की (४) इंद्रमियों काई और (५) आकाश में 'आहोशान, आहोशान' को घोषणा की ॥५०८॥

देवो नरेन्द्रो भवति सारथ्यं वरसु भवति भवति, यस्मिन् भावोऽप्य नृप इत्येवमिदं विधिः तदा चान्द्र विष्णु य नृपः प्रथमः श्री यशस्विनः २। १५ ॥ ५०८ ॥

महावीरस्य पूर्वभवमित्राभ्यां कम्बल-शम्बलाभिधाभ्यां द्वाभ्यां वैमानिकदेवाभ्याम् अत्रधिना सुदंष्ट्राभिधनाग-
कुमार देवकृत मुपसर्गमायोग्य तत्रागत्य तं निवार्य सा नौस्तोरे स्थापिता । ततस्तौ देवौ सुदंष्ट्रनागकुमारदेवं
निर्भर्त्स्य हन्तुमुद्यतौ ! करुणाद्रिचित्तं भगवता तौ निवारितौ । ततः खलु तौ द्वावपि देवौ निजरूपं प्रकटय्य
भगवन्तं वन्देते नमस्यतः, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतौ तामेव दिशं प्रतिगतौ ।

क्षमासागरो वीतरागो भगवान् उपसर्गं कारके सुदंष्ट्रदेवे क्रोधभावम्, उपकारकारकयोः कम्बल-शम्बलयो
र्देवयोश्च रागभावं न किञ्चिदपि अकरोत्, उभयवापि समभावमदशयत् ।

ततः खलु नौस्थिताः सर्वे जना निजजीवनदातारं सकलजगज्जीवरक्षकं भगवन्तं ज्ञात्वा भक्तिवहु-
मानेनाऽस्तुवन् ॥ सू०८८ ॥

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के पूर्वभव के मित्र कम्बल और शम्बल
नामक दो वैमानिक देवों ने अवधिज्ञान से सुदंष्ट्र नामक नागकुमार देव के द्वारा किया हुआ उपसर्ग
जाना । वे वहाँ आये और उसे रोक कर नौका किनारे पर रख दी । तत्पश्चात् उन दोनों देवों ने सुदंष्ट्र
नागकुमार देव को फटकारा और वे स्फुरत अपराध का दण्ड देने को उद्यत हुए । मगर करुणामयचित्तवाले
भगवान् ने उन्हें रोक दिया तब उन दोनों देवोंने अपना असली रूप प्रगट कर के भगवान् को वन्दना
की, नमस्कार किया । वन्दना और नमस्कार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये ।

क्षमा के सागर वीतराग भगवान् ने उपसर्ग करने वाले सुदंष्ट्र देव पर किञ्चित् भी द्वेष नहीं
किया, और उपकार करने वाले कवल शंवल देवों पर किञ्चित् भी राग नहीं किया । उन्होंने ने दोनों पर

ते क्षणे અને તે સમયે શ્રમણ ભગવાન મહાવીરના પૂર્વભવના કળલ અને શંબલ નામના બે વૈમાનિક દેવ-
મિત્રોએ અવધિજ્ઞાન દ્વારા ભગવાન ઉપર વરસતી આ હુન્નની હેઠી જાણી લીધી. ‘સુદંષ્ટ્ર’ નામનો નાગદેવ આ વિતંક
વરતાવી રહેલ છે તે પશુ જ્ઞાનના પ્રભાવે જાણ્યું’ આ બન્ને દેવમિત્રો ત્યાં આવ્યા અને નોકાને કિનારા પર સહીસહા-
મત લઈ આવ્યા અને નાગકુમાર દેવને વધારે ઉપસર્ગ કરતો રોકી પાડ્યો. ત્યારબાદ આ બન્ને દેવોએ નાગકુમાર
દેવને પડકાર્યો અને માર મારવા તૈયાર થયા, પરંતુ કંરુણાના સાગર ભગવાને આ બન્ને દેવોને તેમ કરતા રોક્યા.
દેવોએ પોતીનું મૂળ સ્વરૂપ પ્રગટ કર્યું અને વંદના-નમસ્કાર કરી બે દિશામાંથી આવ્યા હતા તે દિશામાં ચાલ્યા ગયા.

ક્ષમાના સાગર જોવા વીતરાગી પ્રભુએ વિતંક વિતાડનાર સુદંષ્ટ્ર દેવ ઉપર જરા પણ દ્રેષ કર્યો નહિ. તેમ
જ ઉપકાર કરવાવાળા કળલ અને શંબલ દેવો પર જરા પણ અનુરાગ લાવ કર્યો નહિ. ભગવાને બન્ને જણા ઉપર

हुँव एमवारीद-रे भित्तो ! कुछ गज्जसि ! तिष्ठ तिष्ठ ! एष कथयित्वा कृत्यान्तकालपवनमिव सर्वतन्त्रामिव वायु विकृत्य उपसर्गं करोति, तद्यथा-तेन सर्वतन्त्राद्युना दृष्टाः पतिताः, पूर्वगाः कम्पिताः, धूलिपटछेन अतु मोज्ज्यहारो जात' । जलोर्मय आकाश स्पन्दुमिव उच्छलन्ति यथाव पतन्ति च, गङ्गायाः जले सा नीरपि उपरि आकाशे उत्पतति निपतति च, तेन दोलायमानायाः तस्या नावः स्वमो मन , काष्ठपट्टानि भ्रष्टिवाति, पवन-रोपिका पताका स्फटिका नौस्थिता अनाः मयमोताः द-स-स-ग्रीवनं संकुमाना' कलकलरवं कर्तुमारभन्त । नाव आत्मरूपो नाविको ययोद्विगतः किर्त्तन्यमूढः संजातः । तस्मिन् काले तस्मिन् समय धमणस्य मगवतो

'क्षिप्त-क्षिप्त' दण्ड करता हुआ बोला- 'रे मिष्ठ, क्यों जाता है ? ठहर, ठहर !' इस प्रकार कह कर उसने प्रलयकालीन पवन के समान सर्वतन्त्र नावक वायु को विकुर्वणा करके उपसर्ग किया । उपसर्ग इस प्रकार हुआ-उस सर्वतन्त्र से इस गिर गये, पर्वत काँप उठे, धूल का ऐसा पटल उठा कि अतुल भंजनार छा गया । जल की रित्तों जैसे आकाश को स्पन्द करने के लिए उड़ उड़ती और बाढ़ में गिरती थीं । गंगा के पानी में चर नौका भी आकाश में उड़ने और नीचे गिरने लगी । दगमगाने के कारण उस नौका का स्तंभ टूट गया । काठ के पट्टिये टूट गये । हवा को रोकने वाली पताका (पल) फट गई । नौका पर आरुढ़ जन मयमीत हो गये, जीवन के विषय में दृष्टा करते हुए कल-कल खड़ करने लगे । नौका का नाविक चिन्तित हो उठा, मय के कारण जिस हो गया और कि कर्तव्यमूढ़ हो गया ।

बोलेवा बोन्धो- 'हे मिष्ठ ! क्या बन्धु छे ? छोड रहे !' आभ उड़ी प्रलय नीपञ्चवे तेवां सर्वतन्त्र नामना वायुने वेदिक यन्त्रि द्वारा पैदा किये अने भगवानने उपसर्गं आ-पथ तेवारे यथे । आभा उपसर्ग दु वरुं न नीधे अलुण छे -

आ प्रलयकारी भवनने दीपे वृक्षे उभयदिने पदार्थ बाज्वां पवती । कथा बाज्वां, भूगते, पट्टाण यदावी तेवुं सवन अथवार चादरी दीपि, मोन्धळो पूण उठगवा बाज्वां आ मोन्धळो बळुं आकाशने रथार्थ दक्षा होन तेम न्यावा बाज्वां, आ मोन्धळो ह्मि यदीने-नीधे पदकारी वेगाळे अन्ध-पळो यती हवी आ मोन्धळो कोने भारेवुं अग्र-पक्षीभा वहेती आ नोडा यव आकाशभां उठगवी अने दूरी पाछी-नीधे अण्डी पडती हवी । अमरचाने भारेवुं तोने । स्थान पटी अथे बाहदाभां पट्टिया यव वेरिनियेर यव अभां, हवाने आधारे हरक्षेता यव यव हाटी अथे । हवेसा हांश कामना न रकां, नोडाभां जेठिवां भावुयो वायवीय यव अभां उभयनदोरी पटी अन्धी सहायी काकावार यव अथे । नोडाभां नाविक यव बितायव यव अथे । सवन भारेवुं तोने पूण जितता आनी मय ते विमूढ अने निष्पराधन यव अथे ।

महावीरस्य पूर्वभगवन्निवाभ्यां कम्बल-शम्बलाभिधाभ्यां द्वाभ्यां वैमानिकदेवाभ्याम् अवधिना सुदंष्ट्राभिधानाग-
कुमार देवकृत सुपसर्गमायोग्य तत्रागत्य तं निवार्य सा नौस्तोरे स्थापिता । ततस्तौ देवौ सुदंष्ट्रनागकुमारदेवं
निर्भर्त्स्य हन्तुमुद्यतौ ! करुणाद्रिचित्तैन भगवता तौ निवारितौ ! ततः खलु तौ द्वावपि देवौ निजखवं प्रकटय्य
भगवन्तं वन्देते नमस्यतः, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतौ तामेव दिशं प्रतिगतौ ।

क्षमासागरौ वीतरागौ भगवान् उपसर्ग कारके सुदंष्ट्रदेवे क्रोधभावम्, उपकारकारकयोः कम्बल-शम्बलयो
देवयोश्च रागभावं न किञ्चिदपि अकरोत्, उभयत्रापि समभावमदशयत् ।

ततः खलु नौस्थिताः सर्वे जना निजजीवनदातारं सकलजगज्जीवरक्षकं भगवन्तं ज्ञात्वा भक्तिबहु-
मानेनाऽऽस्तुवन् ॥ सु०८८ ॥

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के पूर्वभव के मित्र कम्बल और शम्बल
नामक दो वैमानिक देवों ने अवधिज्ञान से सुदंष्ट्र नामक नागकुमार देव के द्वारा किया हुआ उपसर्ग
जाना । वे वहाँ आये और उसे रोक कर नौका किनारे पर रख दी । तत्पश्चात् उन दोनों देवों ने सुदंष्ट्र
नागकुमार देव को फटकारा और वे स्वकृत अपराध का दण्ड देने की उद्यत हुए । मगर करुणामयचित्तवाले
भगवान् ने उन्हें रोक दिया तब उन दोनों देवोंने अपना असली रूप प्रगट कर के भगवान् को वन्दना
की, नमस्कार किया । वन्दना और नमस्कार करके जिस दिश से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये ।

क्षमा के सागर वीतराग भगवान् ने उपसर्ग करने वाले सुदंष्ट्र देव पर किञ्चित् भी द्वेष नहीं
किया, और उपकार करने वाले कंबल शंबल देवों पर किञ्चित् भी राग नहीं किया । उन्होंने दोनों पर

ते क्षणे अने ते सभये श्रमण भगवान् महावीरना पूर्वभवना कण्ठ अने शंखल नामना जे वैमानिक देव-
भित्रीको अवधिज्ञान द्वारा भगवान् उपर वरसती आ इःअनी छेवी ज़ाणी छीधी. 'सुदंष्ट्र' नामनो नागहेव आ वितक
वरतावी रहै छे ते पणु ज्ञानना प्रभावे ज़ाशुं. आ अन्ने हेवभित्री त्या आन्वा अने नौकाने किनारा पर सडीसडा-
मत लई आन्वा अने नागकुमार हेवने वधारे उपसर्ग करतो. देखी पाडये. तयारबाह आ अन्ने हेवोको नागकुमार
हेवने पडकायौ अने भार भारवा तैयार थया; परंतु कइशुाना सागर भगवाने आ अन्ने हेवोने तेम करता देख्या.
हेवोको पोतीनुं. भण स्वइपं प्रगट कशुं अने वंदना-नमस्कार करी जे हथ्यामांथी आन्वा छता ते दिशाभां आल्या गया.
क्षमाना सागर कोवा वीतरागी प्रभुको वितक विताडनार सुदंष्ट्र देव उपर जरा पणु द्वेष कशौ नछि. तेम

ज उपकार करवावाणा कंअल अने शंखल हेवो पर जरा पणु अतुराग भाव कशौ नछि. भगवाने अन्ने ज़ाशु उपर

टीका—‘तप षं’ से समझे’ इत्यादि। ततः=नागसेनद्वारे पाषाणानन्तरं सल्ल स धमणो भगवान् महावीरं ततः=तस्मात् उपरवाचालाश्रयात् ग्रामात् निगच्छति=निःसरति, निर्गत्य=निःसृत्य श्वेताम्बिकाया नगर्या मत्पथये विरमामो=गच्छन् यत्रैव प्रवेशे सुरमिपुरं नगरं तत्रैव उपागच्छति। तत्र=सुरमिपुरनगरसमीपे सल्ल पृथिव्याः पट्टशट्टिकामिव=पट्टाभ्यन्तरायाभाय, सागरामिव=समुद्रमिव उच्छस्पर्शरश्मिनाम्=उच्छस्पर्शरश्मिव गङ्गानदीम् उपरितुङ्गामाः=पारगन्तुमिच्छुः, भगवान् तथीरे=गङ्गानदीति आगच्छ्य। ततः=नदीतीरागमनानन्तरं सल्ल स भगवान् नारिकेल्य अश्वश्रेण्य=आश्रया तस्यां नाभिच्छौकायां स्थितः=उपविष्टोऽभवत्। ततो नद्यां वसन्ती=तन्वी सा नीः भगापजले प्राप्ता=आगता। तत्र=आपजलमप्ये सुदृष्टनामा एको नागकुमारदेवो न्यवसत्।

ही समभाव प्रदर्शित किया। तत्पश्चात् नौका पर सवार सभी जनों ने भगवान् को अपना जीवनदाता और सख्त जगत् के जीवों का रक्षक जान कर भक्ति और बहुमान के साथ उन की स्तुति की ॥२०८॥

टीका का अर्थ—नागसेन के घर परणा करने के पश्चात् धमण भगवान् महावीर उस उपरवाचाल नामक ग्राम से निकले। निरुद्ध का श्वेताम्बिका नगरी के बीचोंबीच हो कर विचरते हुए जिस प्रदेश में सुरमिपुर नगर था वही पहुँचे। सुरमिपुर नगर के निष्ठ पृथ्वी के पटान्तर के समान तथा समुद्र के समान उल्लूकी शिखरों से छिछुरी हुई गंगा नदी को पार करने की इच्छा करने वाले प्रभु गंगा के किनारे पर पड़े। नदी-किनारे आने के अनन्तर भगवान् नाविक की आज्ञा लेकर उस नौका में गिराजे। वसन्ती=चन्ती नौका अगाध जल में आई। उस आगाध जल में सुदृष्ट नामक एक नागकुमार देव

नभगाप जल में डूबे। नौका खड़ीमहाभर आवर्तों तेनी अदर लेहका मुखादेशले प्रभुने लुभनदात्त भानी तेभ अ प्र की भात्रना रक्षक भानी तेभनी कछि अने अनुमान कम्। (२०८)

टीका का अर्थ—आधानक नागसेनना पुत्रना जगे तेना धेर प्रभुन पाप्सु यद्वा त्पारपथी प्रभु उत्तरवाच्या आभामां बाही नीकल्या, उत्तरवाच्या, आभषी सुरमिपुर नगर्यां यच्छे श्वेताम्बिका नगरी आवती क्वी, एतेनो नगरीनी भेषभां कछि ए पवार कते कते। सुरमिपुर नगरीनी नल्लभां कछिने बिहोला भाषी धरेद इध लेवी अगा नदी वहेती क्वी आ नदी जोगनीने सुरमिपुर नगरभां पछेवाय तेभ कतु लेहका आ भठिणी आने ठठि अवरनगर लेहका दास भरी कता कता अने धामसाये कठे आवेका आश्रितो तत्राभ अवतो अवधार नावदिको आश्रित अ बाही रहो कते। अत्रवान् आश्रि भित्तन आश्रि अत्ता प्रकटा कता तेनी तेने नाविकनी एन कर्त तेभां कसी अभा. अरी एना लेवी निरुद्ध नागकुमार देव जगे तेनी

ય: સુદંષ્ટદેવ: ત્રિપૃષ્ઠવાસુદેવભવે ભગવતો જીવેન હતસ્ય સિંહસ્ય જીવ આસીત્ । સ:અગાધજલવાસી સુદંષ્ટ-
 દેવો ભગવન્તે=શ્રીવીરસ્વામિન દૃષ્ટા પૂર્વૈરં=સ્મૃત્વા ક્રોધેન ધમધમાયમાન:="ધમધમ" । इति शब्दं कुर्वन् आशु-
 रक्त:="શીઘ્રારુણલોચન: મિસમિસાયમાન:="ક્રોધાગ્નિના જાગ્વલ્યમાનશ્ચ સન્ ભગવત:="શ્રીવીરપ્રભો: પાર્શ્વે આગત્ય
 આકાશો સ્થિત: કિલકિલરવ=કિલકિલેતિ શબ્દં કુર્વન્ એવમ્-અનુપદં વક્ષ્યમાણં વચનમ્ અવાદીત્-“રે મિત્તો!
 કુત્ર ગચ્છસિ? તિષ્ઠ તિષ્ઠ" । एव कथयित्वा कल्पान्तकालपवनमिव=प्रलयकालपवनवत् भयङ्करं संवर्तकामिथ्रं=सं-
 वर्तकत्नामकं वायुं विकृत्य=वैक्रियशक्त्या समुत्पाद्य उपसर्गकरोति । तद्यथा-तेन-विकृतेन संवर्तकवायुना वृक्षा:

નિવાસ કરતા થા, જો ત્રિપૃષ્ઠ વાસુદેવ કે ભવ મેં ભગવાન કે જીવ કે દ્વારા મારે ગયે સિંહ કા જીવ થા ।
 અગાધ જલ મે નિવાસ કરને વાલા સુદંષ્ટ દેવ ભગવાન વીર પ્રમુકો દેવકર ઔર પૂર્વૈર કા સ્મરણ કર કે
 ક્રોધ સે ધમધમાતા હુઆ, લાલ લાલ લોચન કરકે, દાંત પીસતા હુઆ ભગવાન કે પાસ આકર ઔર ‘કિલ-
 કિલ’ શબ્દ કરતા હુઆ ઇસ પ્રકાર વોલા—‘અરે મિલુક, જાતા કહાં હૈ? ઠહર, ઠહર!’ । इस प्रकार कह
 ार प्रलय-समय की वायु के समान भयंकर संवर्तकनामक वायु को विकृतिणा करके उसने उपसर्ग किया ।

વેરની ભૂમિકા એવી દુર્ઘટ હોય છે કે તેનું બીજ બે એક વખત પણ ભૂલેચૂકે વવાઈ ગયું હોય તો તે બીજ
 વડવાઈઓની માફક ટૂટી નીકળે છે અને તેનો છોડા પણ આવતો જ નથી. એક વેર વાળતાં બીજી વેર ઉભું જ થાય
 છે અને તેની પર પરા ભવોભવ વધતી જ બાય છે, માટે જ્ઞાનીઓ પોકારી પોકારીને કહે છે કે વેર ઉભું થવા જ દેવું
 નહિ, અને કદાચ ઉભું થયું હોય તો તેનું નિરાકરણ તુરત લાગ પરસ્પરમાં ક્ષમાપના થઇ જવી જોઇએ, નહિતર
 એની ભૂમિકા વધતા તેનો પાર આવશે નહિ

આ પ્રમાણે ભગવાનનો જીવ જ્યારે ત્રિપૃષ્ઠ વાસુદેવપણે અવતર્યો હતો ત્યારે ત્રિપૃષ્ઠ વાસુદેવે લોકોને રંબડ-
 નારા એક કેરૂં સિંહને ચીરી નાખ્યો હતો. તેનું વેર વધતાં તેનું કળ તે સિંહે સુઢંદ્ર દેવપણે અવતરી આ વખતે
 ભગવાન પાસેથી વસુલ કરવા માંડ્યું. વેરી વેરીને તુરત જ ઓળખી કાઢે છે તેવો જીવનો સ્વભાવ ઘડાઈ ગયો હોય છે.
 એકબીજાનો સમાગમ થતાં જ પૂર્વના વેરનાં બંધનો ઉછળા જ વે છે. વેર એ માયાવી ગાંઠ છે અને જીવ
 પેતાની વક્રતા અનુસાર તે ગાંઠને બાધે છે, પોષે છે અને વધારી-ઘટાડી પણ શકે છે. આ ગાંઠ બંધાતા જીવમાં
 માયા-કપટના દોષો એક પછી એક વધતાં જ બાય છે, જેના પરિણામે કષાય શુદ્ધ થઈ મહાન્ નિવિડકર્મ ઉપાજન
 કરતો તે આત્મા ભવોભવમાં પૂર્વનાં વેર લેતો બાય છે અને સાથે નવાં વેરના બંધનો બાંધતો બાય છે,
 માટે જ શાસ્ત્રકારો કહે છે કે—

पविता' पर्याः कम्पिता, प्रुभिराटलेन=गुणिसंपूरेन अनुसः=योरः अपकारो प्रातः। जर्मोर्मयः=अमृतारुद्रा
प्राकाशं स्पन्दुमिर=माकाप्रसर्षेनाप्यत्र उच्छसि=उपरिगच्छौ, पश्चात्=उच्छस्मानन्तरम् पतन्ति=नीचैरा
गच्छन्ति च। ततश्च=गङ्गाया अग्रे सा नौ=नौका अपि उपरि=ऊर्ध्व आकाशं उत्पतति च=पुनः निपतति=
अप आगच्छति। तेन=उत्पतननिपतनोपगच्छापारेण दोषायमनायाः=दोषावदामरन्त्याः सस्याः=गङ्गाजलमध्य-
स्थितायाः नावः=नौकाया स्वभ्यः=स्थूषा, भग्नः=भुटितः, काष्ठप्रदानि भुटितानि, तथा पत्रमराधिका=बाहु-
निरापन्नकारिका पताका=दण्डावस्थितैर्वज्रपन्ती स्फटिता=विद्योर्णां, नोद्विषता=नौकायाणुविष्टा जनाः=लोकाः =

यह इस प्रकार-वैकियवृत्ति से उत्पन्न क्रिये हुए वायु से तल गिर पड़े। पर्वत होकर मने। धूम्रि के पटन से गौर अंधकार छा गया। जल की लहरें जैसे आकाश को छूने के लिए जाती हो उस प्रकार ऊपर जाने लगी और नीचे गिरने लगी। इस कारण 'गंगा के जल में वह नौका भी डूबी-नीची होने लगी। डूबी-नीची होने के कारण हिंडोछे (धुन्ना) के समान हिलती हुई नौका का यत्न (स्वैम) भ्रम हो गया। मछली के पटिये टूट गये। वायु के वेग का निरोध करने वाली पक्का-ढंढे पर फहराती हुई वैजयन्ती

“आ जपने भवोभव भटि, भव देर विदेश,

અંબેડકરની આશાનથી, મોટી અતિથાજ મોખ

ते अवि भिष्यन्ति दुःखे + २ ॥

જાન્યવાર ૧૯૩૧, સુરત, ગુજરાત

વેર વિશિષ્ટ ટીની બબો, બાલકમવદ સુખાનંદ,

सुभषानि जातम यशे

આરે કમીં લવલ પીવે વેરનુ ઝેર,

ભવ જાડવીમાં તે જાગે, પામે નહિ શિવ હરે

“सुभाष” ग्रंथ निम्न

[illegible]

भयभीताः=भयोद्विगताः सस्वजीवन=निजनिज जीवितशङ्कमानाः सन्तः कलकलराव=कालाहलशब्दं कर्तुमार-
भन्त । नावः=नौकायाः, आत्मरूपः=आत्मस्वरूपः, रत्नक इत्यर्थः, नाविको भयोद्विग्नः=भयव्रस्तः किं कर्तव्यमूहः=
विचारशून्यः संजातः ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य पूर्वभवमित्राभ्यां कम्बलशम्बलाभिधाभ्यां=
कम्बल-शम्बलनामकाभ्यां द्वाभ्याम्, वैमानिकदेवाभ्याम् अधिना=अध्विज्ञानोयोगेन सुदंष्ट्राभिधनागकुमार-
देवकृतम् उपसर्गम् आमोघ-ज्ञात्वा तत्रागत्य तम्=उपसर्गम् निवार्य=दूरीकृत्य सा नौः तीरे=गङ्गायास्तटे स्थापिता ।
ततस्तौ=तम्बल-शम्बलौ देवौ सुदंष्ट्रनागकुमारदेवं निर्भर्त्स्य=दुर्वचनमुक्त्वा हन्तु=ताडयितुमुद्यतो जातौ, तद्दृष्ट्वा

(पाल) फट गई । नौका पर सवार लोग भय के कारण उद्विग्न हो उठे । उन्हें अपने-अपने जीवन के लिए
सन्देह हो गया-मोचने लगे-न जाने वचने या मरेगे ? वे कोशाल मचाने लगे । नौका के भग्न हो जाने के
कारण नाविक चिन्तित हो गया, भय से व्रस्त हो गया और उसे भान न रहा कि म्या क' औरक्या न कहें !

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के पूर्वभव के मित्र कम्बल और शम्बल
नाम के दो वैमानिक देवोंने अवधिज्ञान के उपयोग से सुदंष्ट्रनामक नागकुमारदेवद्वारा कृत उपसर्ग को जाना,
जानकर वे बौं आये और उस उपसर्ग को रोक दिया । उन्होंने वह नौका गंगा के किनारे लेजा कर
स्थापित कर दी । तत्पश्चात् कम्बल और शम्बल देव सुदंष्ट्र-नागकुमार देव को दुर्वचन कह कर मारने को

तणीअे न्ध अेसशे अेम आगाडी थवा लागी. तेभा अडेवा मुसाधरेना एव तणीअे अेभी गया. दोडो 'अथावो,
अथावो'ना पोकादेा करना लाग्या डेटलाक पोताना एह देवनु' रभंगेषु करुणो' एववानी आथा पवु छेडीने अेडा इता.
अ साथे आ देवनु देर भांध्यु इशे आ अघे। तरडेडाट देवने। अ छे र्जेम, अगवान पोते भवतु! इता छता
दोडेने काह कहु नडि, तेम अ धसादेा पंषु कथो नडि अगवानना आलमां इतुं ई आ वेरने। अहडे। छेड्ये। अ
छे, तेथी ते कभ' पूरू थता आयोआप शाति थध अशे. डेटलाक ते। अगवानने अपु तोडेन शात करवा विन'ति
पवु करता इता, अने अगवान तेभने शात रहेवा सूचना पवु आपना इता, आ कभ'नुं इण पूरू थता अगवानना
पूर्वभवोना मित्रो आवी पछेअ्या अने तेओअे आ देवने तेम' करते। अटकानी तोक्षणने शात पाड्युं. नौकाने कठे
दोरी गया सडिसलाभतपवु किनारे पछेअी अता दोडेना जोगियाभा एव आअ्ये। धडी पछेवां एवन पटवानी आवी

कस्यार्पिणेन भगवता सौ श्वौ तत्कार्यार्थं निवारितौ । ततः स्वच्छ सौ=कम्बल-शुष्कलौ द्वापयि देवौ निजकम्ब-
 लकीयदेवतस्य प्रकटय्य भगवन्-भीषीरन्ताग्निन न देवैरे नयस्यतश्च, यन्दिता नमस्त्वित्वा च यस्या एष विश्व
 प्रादुर्भूतौ तामव विश्वं प्रतिलगतौ । समासागरः पीवरराग=रागोद्वेगवर्जितो भगवान्=भीषीरप्रभुः उपसर्गाकारके
 सुदंष्ट्रदेवे क्रोपमानं, च=पुनः उपकारकारकयोः=उपसर्गनिवारकत्वेनोपकारिभ्योः कम्बल-शुष्कलयोर्देवयोः रागभावं
 किञ्चिदपि=अनुमात्रमपि न=नैव अकरोत्=कृतवान् । किन्तु उभयप्रभु=सुदंष्ट्रनागदेवे कम्बल-शुष्कलदेवयोश्च सम-
 मायम् भद्रेभ्यतु=शक्तिवसान् ।

तत' मन्दु नौस्विताः सर्वे भना निमगीनत्वातारं=स्वर्णीविलदायकं सकलजगज्जीवरसकल=समस्तसृजनवर्ति
 पाणिप्राणपरायणं सारन्=भीषीरप्रभुं इत्यत्रा भक्तिप्रभुभावेन अस्तुवन्=तदप्रभावसम्बन्धवाक्ये स्तुतवन्तः । (सू०८८)

भूमय—उप यं से समणे भगवं मरावीरे नावाभौ ओयरर ओयरिणा मकारणे सुष्ण्यागारे रसीय
 काउत्सगने ठिए । तव जे मगरओ पुनरवावरणकालसमयंसि माईमिच्छासिद्धी एगे संगमाभिरे देवे अतियं
 पाउंयूर । तप यं से देवे आमुएचे लहे कुबिए बढिकिए मिलिमिलेमाणे कउत्सगद्वियं पंडु एवं बयासी—

“६ मो मिरुच्छु ! मयत्पियपत्तया ! सिरी-हिरी-चि-किपि परिबळिया । घम्माकामया । पुण्याकामया ! सग्गा
 कामया ! मोत्तकामया !, घम्माकंविवा । ४, घम्मपियसिया । ४, नो बं तुमं मयं जायासि ! अहं तुमं घम्माओ
 तैयार हुए । या देवकर कल्या से आद्रे विचवाछे भगवान् ने दोनों देवों को मारते रोक दिया । तत्समात्
 कम्बल और शुष्कल दोनों ही देवीने अपने दूध-रूप को प्रकट कर के भगवान् बीर मूढ को रुद्धना की
 और नमस्कार किया । बन्दना-नमस्कार कर के वे जिस दिशा से प्रकट हुए वे उसी दिशा में चले गये ।

समा के सागर और रागद्वेप से रहित भगवान् बीरन उपसर्गकर्षा सुदंष्ट्र पर क्लिप्तित्मी क्रोष
 मार नहीं किया और उपकारकता कम्बल-शुष्कल देवों पर अनुयाय्य भी राग नहीं किया । उन्होंने ने
 सुदंष्ट्र, कम्बल और शुष्कल के प्रति समग्रान ही प्रदर्शित किया । तब नौका पर सवार सभी लोक भग
 वान् मरावीर को हो अपना जीवनाश्रया एवं जगत के समस्त जीवों का प्राणा धानकर भक्ति और बहुमान
 के साथ उनके पमान का गर्वन करने वाले वाक्यों से स्तुति करने लगे ॥सू०८९॥

समा के सागर और रागद्वेप से रहित भगवान् बीरन उपसर्गकर्षा सुदंष्ट्र पर क्लिप्तित्मी क्रोष
 मार नहीं किया और उपकारकता कम्बल-शुष्कल देवों पर अनुयाय्य भी राग नहीं किया । उन्होंने ने
 सुदंष्ट्र, कम्बल और शुष्कल के प्रति समग्रान ही प्रदर्शित किया । तब नौका पर सवार सभी लोक भग
 वान् मरावीर को हो अपना जीवनाश्रया एवं जगत के समस्त जीवों का प्राणा धानकर भक्ति और बहुमान
 के साथ उनके पमान का गर्वन करने वाले वाक्यों से स्तुति करने लगे ॥सू०८९॥

४९ ६९ ते यदी पछी स भाल जवां छोडाभां आनइ जगनइ ज्वापी रको जने प्रभुने भक्तिभावे प्राइंवा बाअवा
 आचार वेदना आभेनार तउर पव्व कउवान् आदो रउवां तेअ अ इअभांछी छोडावनार तउर पव्व भउरणी
 रउवा आउ तेअउ नईन जेअं देवजिने निअअ चउमां जने तेअनी स्तुति इरी निअअरउने पाआ इअो मुअ
 इरी आउ इअ जेअ, अउअनी आ आउने अउरअ आउनीनां आउता तेअनी स्तुति इअअ बाअवा । (सू०८९)

परिभंसेमि ” चि कहु पउरं रयपुंजं उपाडिय पहुसम सासोच्छासं निरुंधइ । तह वि पहुं अक्खुद्धं दट्ठणं, पच्छा से
 तिवखंतुंडाओ महापित्रोल्याओ विउविय ताहि दंसावेइ, निदसावेइ, उवदसावेइ तेण पहुसरीराओ पवलरहरि-
 धारा निस्सरेइ, तहवि पहु नो चलेइ । तओ पच्छा तिवखविसभरियकंटयाइ विच्छियसयसहस्साइं विउविय पहुं
 उवसगेइ । पच्छा तेण विगारालुडे तिवखदंते दंती विउविय । से णं सुडाए भयवं उट्ठाविय अहे पाडेइ,
 तओ लुरियतिवखदंतगेण विदारिय पाएहिं मेइइ । तओ से भयभरवेण पिसायरुवेण भीसेइ । तओ सीह
 विउविय पहुसरीरं फालेइ । तए णं भगवओ उट्ठरिं महाभारं लोहमयं, गोलय पविववेइ । एवं सप्परिच्छ-
 म्भयरभूयपेयाइएहिं नाणाविहेहिं उवसगेहिं उवसगिभोडवि भगव अविचलिए अकंपिए अभीए अंतसिए
 अत्तये अणुविवगे अक्खुभिए असंभते तं उज्जलं मह विउल घोरं तिन्वं चंड पगाहं दुरहियासं वेयणं सम-
 भावेण सम्म सहेइ खमेइ तितिवखेइ अहियासेइ नो णं मणसावि तस्स अमुहं चितेइ, तुसिणीए वम्मज्झाणो-
 वगए चेव विवरइ । एवं से संगमे देवे जणवविहारं विहरमाणं भगवं पच्छा गर्मिय छम्मासं जाव उवसगणीअ
 तहावि बहुस वज्जरि सहनारायसंघयत्तणेण न पाणहीणी जाया ।

एव ण विहरमाणे भगवं संवच्छरं साहिय मासं सवेलेए, तओ परं अवेलेए होत्था ।

तए णं से समणे भगव महावीरे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुशामं दूइज्जमाणे वीयं चाउम्मासं
 रायगिहस्स गयरस्स नालंदाभिहाणे पाडगे मासमासवखमणतवेणं ठिए । तत्थ णं पढममासवखवणपारणे विजय-
 सेट्ठिणा भगवं पडिलाभिए १ । एवं वितियपारणे नदसेट्ठिणा, तइयपारणे सुनंदसेट्ठिणा, चउत्थपारणे बहुल-
 माहणेण पडिलाभिए । सवत्थ पव द्विवाइं, पाउवभूयाइ २ । एवं तइयं चाउम्मासं चंपाए गयरीए दुदुमास-
 कवमणेण ठिए ३ । चउत्थ चाउम्मासं चउम्मासवखमणेण त्रिचंपाए ठिए ४ । पंचमं चाउम्मासं भदियाए
 गयरीए नाणाविहाभिगहजुत्तेणं चाउम्मासवखमणेणं ठिए ५ । छट्ठं पुण चाउम्मासं भदियाए गयरीए नाणाविहा-
 भिगहजुत्तेणं चाउम्मासियतवेणं ठिए ६ । सत्तमं चाउम्मासं आलंभियाए गयरीए चाउम्मासियतवेण ठिए ७ ।
 अट्ठम चाउम्मासं रायगिहे गयरे चाउम्मासियतवेण ठिए ८ ॥ सू० ८९ ॥

छाया-ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरो नावोऽवतरति, अत्रतीर्य महाऽरण्ये शून्यागारे रात्रिके कायोत्सर्गे

मूल का अर्थ—“तए णं” इत्यादि । तत्पश्चात् भ्रमण भगवान् महावीर नौका से नीचे उतरे और
 एक सहारण्य में जाकर सूने घूर में रातभर का कायोत्सर्ग करके स्थित हो गये । वहाँ मध्य रात्रि के समय

भूणनेा अर्थ—“तए णं” इत्यादि त्थारपछो भगवान् नावडाभाथी नीचे उतरी ओइ भक्षारस्थ तरइ आदी
 नोइण्या आ अरइयभा ओइ सुउ धर डेउ त्या आथी रात आयोत्सर्गभा उला रइहा त्या भयथरात्रिना समये भायीइ

गंगयति । पश्चात् तेन विक्रालशुण्डस्तीक्ष्णदन्तो दन्ती विकृतः, स खलु शुण्डया भगवन्तमुत्थाप्य अधः पातयति, ततः क्षुरिकातीक्ष्णदन्ताग्रेण विदार्य पादौर्मर्दयति । ततः स भयभैरवेण पिशाचरूपेण भीषयति । ततः सिंहं विकृत्य प्रशुरीरं स्फालयति । ततः खलु भगवत् उपरि महाभारं लौहमयं गोलकं प्रक्षिपति । एवं सर्पकुक्षस्करभूतप्रेतादिकृतैः नानाविधैरुपसर्गैरुपसर्गितोऽपि भगवान्विचलितोऽकम्पितोऽभीतोऽत्रासितोऽत्रस्तोऽनुद्विग्नोऽक्षुभितोऽसंभ्रान्तस्तामुज्ज्वला महतीं विपुलां घोरां तीव्रा चण्डां प्रगाढां दुरध्यासां वेदनां समभावेन सम्यक् सहते क्षमते तितिक्षते अध्यास्ते, नो खलु मनसाऽपि तस्याशुभं चिन्तयति तूष्णींको धर्मध्यानोपगत एव विहरति ।

वाले लाखों विच्छुओं की विकुर्वाणा करके प्रभु को उपसर्ग करवाया । तत्पश्चात् उसने भयानक सुंडवाले और तीखे दांतोंवाले हाथी की विकुर्वाणा की । उस हाथीने सुंड से भगवान् को ऊपर उठा कर नीचे गिराया और फिर छुरी की तरह तीक्ष्ण दांतों की नोकों से विदारण कर के पांशों से कुचला । उसके बाद उस देवने भयरुर पिशाच का रूप बना कर डराया । फिर भी सिंहकी विकुर्वाणा कर के प्रभु के शरीर को फाड़ा । तत्पश्चात् भगवान् के ऊपर बहुत भारी लोहे का गोला फेंका । इसी प्रकार सर्प, शूकर, भूत, प्रेत आदि द्वारा किये गये नानाविध उग्र उपसर्गों से भी भगवान् विचलित न हुए । वे अकम्पित, अभीत, अत्रासित, अत्रस्त, अनुद्विग्न, अक्षुभित और असंभ्रान्त रहे । उन्होंने उस उज्ज्वल, महती, विपुल, घोर, तीव्र, चण्ड, प्रगाढ़ एवं दुस्सह वेदना को समभाव से, सम्यक् प्रकार से सहन किया, क्षमण किया, तितिक्षा की, और अध्यास किया । मन से भी उस देवता अशुभ नहीं सोचा । मौनभाव से धर्मध्यान में लीन

थु छता भगवान् जराये न उग्या. त्यारणाह तेष्णे उग्र विषथी लदेवा अने लयंकर आकाशावाणा विंछीओनी परंपरा उली करी. ते दाना संगमभेदे भगवानने अपार वेदना आपी आथी पणु वधादे लयकर ओवा तीक्ष्ण सुंडवाणा अने फुथणवाणा हाथीने पेदा कर्यो. हाथीओ भगवानने सूढ वडे उछाणीने पछाडथा अने तीव्वा हात वडे भगवानने चियां तेम न पग नीचि गगही नाथ्या. आ पछी ते स गम देव लयानक पिशाचनुं ३५ धारणु करीने प्रभुने डराववा लाग्यो. त्यारणाह सिंछनी विधुवर्णा करी तेमनु शरीर तीक्ष्ण नछार वडे चीरी नाथ्युं. आ उपरांत तेमनी उपर भारे वजनवाणा ढोढाणा गोणा झेंड्या. उपरोक्त सधणा उपद्रवोभा सक्षण न थतां संगम देवे सर्प, भूडे, भूत, प्रेत वगैरेने उत्पन्न करी तेमनी भारक्षत भगवानने पारावार दुःख आभ्युं; छता प्रभु तो अक्षपित, लयरक्षित, त्रास विनाना निर्विघ्न, उद्वेगरक्षित क्षुब्ध थया विना अने जरा पणु अशाति अनुलभ्या विनाना स्थिर उभा रह्या. प्रभुओ आ लयकर घोर, तीव्र, अग्रंठ अने प्रगाढ वेदनाने समभावपूर्वक वेही अनन्त दाइणु दुःखने सम्यक् प्रकारे सहन क्युं. आ त्रासनी आनंदपूर्वक तितिक्षा करी अने तेना परिश्रामोने वेही दीधा. आटआटछुं थया छता अनन्त कइथाना

एवं स सद्गुरु देवा मनपदनिहार विहरन्तं भगवन्त पश्चात् गत्वा पाष्पासीं यावत् उपासर्गवत् तथापि प्रमो-
ह-अक्षुण्णनाराधसहनन्तेन न प्राणहानिर्भासा ।

एवं तनु विहरन् भगवान् संप्रसारं साधिकं मांसं सत्वेत्क ततः परमचेसको वयस्य ।

ततः ननु स भ्रमणो भगवान् भगवीरः पूर्वांनुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं श्रवन् द्वितीयं वातुमांसं
राजशृङ्गस्य नगरस्य नागच्छाग्रिमाने पाटके मासमासक्षणतपसा स्थित । ततः सल्ल प्रथममासक्षणपारणके
विनयभेष्टिना भगवान् प्रतिलग्नितः १ । एवं द्वितीयपारणके नन्दयेष्टिना, तृतीयपारणके सुनन्दयेष्टिना, चतुर्थे
पारणके बहुलद्राघणेन प्रतिलग्नित । सर्वत्र पञ्च विष्णुनि प्रादुर्भूतानि २ । एवं तृतीयं वातुमांसं चम्पाया

हो कर ही ने विचरते रहे । इस प्रकार उस समय देवने जनपद-विहार करते हुए भगवान् के पीछे जाकर
छह मास तक उपसर्ग किया । तथापि प्रभु का वक्षस्त्रण नाराचस्तनन होने से मांसहानी नहीं हुई । इस
प्रकार विचरते हुए भगवान् एक मास अधिक एक वर्ष पर्यन्त सत्वेत्क रहे । तत्पश्चात् अत्वेत्क हो गये (१) ।
तत्पश्चात् भ्रमण भगवान् भगवीर पूर्ववर्षी तीर्थकरों की परम्परा का अनुसरण करते हुए ग्रामानुग्राम विचरते
हुए, दूसरे चोमासे में राजशृङ्ग नगर के नामन्ता नामक गाँव में, मासलमण तपस्या के ज्ञाय स्थित हुए ।
वहीं परेष्टे मासलमण के पारणक के दिन विनय गेठने आहारदान दिया ।

इसी प्रकार दूसरे पारणक के दिन नन्द गेठने, तीसरे पारणक के दिन 'सुम्न' गेठने और
चौथे पारणक के दिन का कल्लाकसनिवेश में बहुभुव्राज्यने आहार दिया । सब भगव दौच दिव्यमकट हु एर्यर)

आनर प्रभुजने ननभी पञ्च न इवन् यद्विजित आशुल श्रुत्यु नाके अने भोगपक्षे धर्मभानभा न् दानि रक्ष्य
कृपयना इष्ट अयेने पञ्च दशो लब्ध तेवा अद्यौर दुष्प्रार्थो द्वारा स भर्षदेव अश्वार्थने उपर्येष्टो आर्था,
अने लब्धो भगवान् विहरना लाज्या त्या त्या स अर्थ द्वे तेभनी पाछण पाछण लब्ध छ भास सुधी लनेके
अप्यमित्यथा अने कश्चनार्था पञ्च न आवे तेवा प्रयाज् दारुण दुःखे आर्था, क्त्वा पञ्च प्रभुनी प्रलुब्धानी न
यत् तेनु दारुण पञ्चनपण नाराज्य सकेनन दत्त आ प्रशरै विहरता, भगवीर भगवान् दीक्षित बधा, न्यास तेर
भास सुधी सवेष्टक इष्टा, त्यागलाह अवेष्टकपक्षे विहार करवा द्याज्या, पूर्वतीर्थ-केशेनी पर पञ्च अनुसार आभानु-
ग्राम विहरवा लाज्या, गीजु कोमासु अति सुशीलितु शक्यकी नगराना प्रत्यागत नावडा नामीना पञ्चार्थो क्त्वा
नहीं भासपत्रपञ्च, तव आदरी आत्मभावै स्थिर बधा, अर्द्ध प्रभुने पक्षेष्टा भासपत्रपञ्च पारुष्य विनय गेठने
त्या पञ्च गीजु पारुष्य नद गेठने त्या त्रीजु पारुष्य सुनद गेठने पौर अने शिशु पारुष्य लक्षुण्यदायने त्या बसु

नगर्या द्विद्विमासक्षणणेन स्थितः ३। चतुर्थं चातुर्मासं चतुर्मासक्षणणेन पृष्ठचम्पाया स्थितः ४। पञ्चमं चातुर्मासं भद्रिकायां नगर्या चतुर्मासक्षणणेन स्थितः ५। पष्ठं पुनश्चातुर्मासं भद्रिकायां नगर्या नानात्रियाभिग्रहयुक्तेन चातुर्मासिकतपसा स्थितः ६। सप्तमं चातुर्मासमालम्बिकाया नगर्या चातुर्मासिकतपसा स्थितः ७। अष्टमं चातुर्मासं राजशुद्धे नगरे चातुर्मासिकतपसा स्थितः ८। ॥सू०८९॥

टीका—“तए णं से समणे” इत्यादि। ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरो नावः=नौकातः अवतरति, अवतीर्य महारण्ये=महाटव्यां शून्यागारे=जनरक्षितगृहे रात्रिके=सम्पूर्णरात्रावधिके काथोत्सर्गे स्थितः। तत्र खलु भगवतः—श्रीमहावीरस्वामिनोऽन्तिके=निकटे पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=मध्यरात्रे मायी=मायावी मिथ्या-

इसी प्रकार प्रष्टु तीसरे चातुर्मास में चम्पा नगरी में दो-दो मासखमण करके स्थित हुए (३)। चौथे चातुर्मास में चार मास के चौमासी तप के साथ पृष्ठचम्पा में स्थित हुए (४)। पाँचवें चौमासे में भद्रिका नगरी में चौमासी तपस्या के साथ स्थित हुए (५)। छठे चातुर्मास में भद्रिका नगरी में नाना प्रकार के अभिग्रहों से युक्त चौमासी तप के साथ स्थित हुए (६)। सातवें चौमासे में आर्लभिका नगरी में चौमासी तप के साथ स्थित हुए (७)। आठवें चौमासे में राजशुद्ध नगर में चौमासी तपस्या के साथ स्थित हुए (८) ॥सू०८९॥

टीका का अर्थ—तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर नौका से नीचे उतरे और तप कर महा-अटवी में जाकर एक शून्य मकान में सम्पूर्ण रात्रि तक के काथोत्सर्ग में स्थित हुए। वहाँ भगवान् महावीर स्वामी के समीप, पूर्वरात्रि-अपररात्रिकाल के समय अर्थात् मध्यरात्रि में एक मायावी और मिथ्या-

थयु जेने जेने घेर लगवाने भासभभखुना पारण्णे अति भावपूर्वक आहार भल्ले। तेने तेने घेर पाथ दिंथे। प्रगत थया २, नीण्णु आतुभास प्रलुखे अथानगरीभा कथुं अर्द्धा प्रलुखे अण्णे ‘भासभभखु’ तप आदथां ने धमं ध्यानभा पोताने। सभय वितावता ३, योथु योभासुं पृथक् पाननगरीभां न कथुं अने त्या थार भासनु योभासी तप कथुं ४, पाथसुं आतुभासं भद्रिका नगरीभां योभासी तपस्या साथे पूरं कथुं ५, आन नगरीभां छहुं योभासु विविध प्रकारना अभिग्रहो अने योभासी तप साथे परिपूणं कथुं ६, सातसु योभासु आर्लभिका नगरीभा पसार कथुं त्यां पण्णु तेज्जोखे योभासी तपनी आराधना करी ७, आठसुं आतुभासं राजशुद्धी नगरीभां उपर प्रभाण्णेनी तपस्या साथे समाप्त कथुं ८ (सू०८९)

टीकानो अर्थ—अपार वेदनाज्जोने सहन कर्था पछी पण्णु तेभनुं भन शांत अने निर्जन भूमिभां जवा आतुं छतु तेथी नौकाभाथी सहिसलाभत उतरी छे। थोड अरपुय तस्स प्रयाणु करतां पडतर धर नजरभां आण्णु। त्या रातवसे। गाणवा निश्चय करी ध्यानभजन थया, आ भधा हुं। जेनी तितिक्षा पाछण असीम सहनशक्ति प्रगत

इष्टिः एकाः=रुधिरं मन्त्रमाभिषेचः=सङ्ग्रहनामको देवः मादुर्युतं=मष्टोऽयमवत । उतः सल्लु सः=सङ्ग्रहो देवः
 भागुरक्तः=द्वितीयकोपाख्यामोचन इत्=रोषान्वितः क्षुधितः=क्षुधः वाग्धित्वियतः=रीक्षाकारयुक्तः मितमिसायमानः=
 क्रान्तेन जाग्रदव्यमानः सन् कायोत्सर्गस्थिरं प्रष्टुम् एवम् अतुपर्वं वक्ष्यमाणं वचनम्-अथावीदु-ईं ओ मिसो ।
 'ईं मोः' इति मासिषेपमाम-अणम्, अर्थात् परिप्रार्थक-परणेच्छुक । धी-प्री-प्रति-कीर्ति-परिवर्जित ! =स्वस्मी-सञ्जा
 चैर्य-रूपाति-रहित 'धर्मकामक ! =धर्मोच्छो ! पुण्यकामक ! =पुण्योच्छो ! स्वर्गकामक ! =स्वर्गोच्छो !, मोक्षकामक ! =
 मोक्षोच्छो !, धर्मकारुक्षित ! =धर्मकारुक्षित ! पुण्यकारुक्षित ! स्वर्गकारुक्षित ! मोक्षकारुक्षित धर्मपिपासित ! =
 धर्मपिपासित ! पुण्यपिपासित ! स्वर्गपिपासित ! मोक्षपिपासित ! त्वं मां=सङ्ग्रहनामकं देवं नो सल्लु जानासि ?
 अर्त्तं त्वां धर्मात् परिचरयामि=परिचर्य करोमि, इति कृत्वा=रस्युक्त्वा मञ्जुरे=मञ्जुं रजःपुष्पं द्रुत्विसमूहम्
 उत्पत्त्य=वैदिकप्रवृत्तया उद्गाय्य प्रयोः=भीमशशोरस्य शसोच्छ्वास निष्पादित=सम्प्रयति, तयाऽपि प्रष्टुम् अष्टुब्ध=
 सोमराशिं दृष्ट्वा पश्चात्=तदनन्तरं सः=सङ्ग्रहो देवः गीत्स्वतुष्टाः=गीत्स्वमुत्सुकाः मन्त्रपिपीलिकाः=पिपिला-

इष्टिं सगम नामका देव मष्ट हुआ । वा देव एकदम ही जान नेओवाळा हो गया, लुट हो गया, लुट
 हो गया और भयानक आकार से युक्त हो गया । क्रोध से लज्जे हुए उस देवने कायोत्सर्ग में स्थित
 मनु त य वचन करे—'ईं ओ ! इस प्रकार के अपमानवचक संरोपन के साथ वह वीळा-अरे पुरु
 की इच्छा करने चाहे ! अरे स्वस्मी, लज्जा, चैर्य और रूपाति से हीन । अरे धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्षकी
 कामना करने चाहे ! अरे धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्षकी कामना करने चाहे । अरे धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष
 के प्यासे ! तू मुझ सगम देवको नहीं जानता ? छे, मैं तुझे धर्म से अष्ट करता हूँ ।' इस प्रकार कह
 कर उसने बहुत पड़ा धूसि-समूह वैदिकय शक्ति से उल्काकार मनुके श्वासोच्छ्वास का निरोध कर दिया ।
 इतने पर भी मनु को सोम-रहित खेलकर उसने तीखे झुलबाकी भासों चीटियों की विकृष्टता करके

इत्यादिने तेभने उदर वरी आपते हावु हे इत्येने तेओ जेह आतनो इत्येना अथअत्ता धेते सदरीसी भित
 छे आत्ता आदरी छे तेने छेवन-वेहन हाँ पण अतु नशी, तेवा हः निक्षिमी कता, छतां पृथ पर तरदनी इतिने
 वीपे ने अयेने अथावा कता ते अयेने उभयभां आपतां, तेनाभी पृथा पृथु आने ते अयेने हावुयां इरी
 इति नहि इत्तां तरदर आदे निक्षिप पृथु जे तेभने अयेनावन वत तो कता जेह पृथी पर तरदनी इतिने वीपे
 वेहन छु आह, पण ते वेहनने वास्तविक वेहन नहि आनतां हावुनिह वेहन छे जेध आत्तम अतुभव इत्तां
 अतएव न-सङ्ग्रहमां आपण अथत्ता कता.

शरीरकापिपीलिकाः, विकृत्य=ङै, यश्चत्तयोत्पाद्य ताभिः प्रभुम् दंशयति, निदंशयति-नि=नितराम्-अतिशयेन दंश-
यति, उपदंशयति-उप=सामस्येन-सर्वाङ्गावच्छेदेन दंशयति, तेन प्रभुशरीरात्=श्रीशरीरामिदेहात्, प्रबलरुधिर-
धारा=अविच्छिन्नशोणितधारा निस्सरति, तथापि प्रभुर्नो चलति=कायोत्सर्गात्-स्खलितो न भवति, ततः पश्चात्
स सङ्गमो देवः तीक्ष्णाधिपशुतकण्टकानि-उग्रविषपूर्णकण्टकयुक्तानि, दृश्चिकशतसहस्राणि=दृश्चिकलक्षं, विकृत्य=
चैक्रियश्चत्तयोत्पाद्य तः प्रभुम् उपसर्गयति तथापि प्रभुर्निश्चल एव तिष्ठति । प्रभुमविचलितं दृष्ट्वा पश्चात् तेन=
सङ्गमदेवेन विकरालशुण्डः=भयङ्करशुण्डायुक्तः तीक्ष्णदन्तो दन्ती=हस्ती विकृतः=वैक्रियश्चत्तयोत्पादितः, सः-सङ्गम
देवविकृतो हस्ती खलु शुण्डया भगवन्तं-श्रीशरीरम् उत्थाप्य=उपरिनीत्वा अधः=नीचैरवनितले पातयति,
ततः=अधःपातनानन्तरं स हस्ती क्षुरिकातीक्ष्णदन्ताग्रेण=क्षुरिकाग्रवन्निशितेन दन्ताग्रभागेन प्रभुं विदार्य=विदीर्णं
कुच्चा पादैः=चरणैः मर्दयति तथापि प्रभुः कायोत्सर्गान्न चलति । ततः प्रभुमशुण्डं दृष्ट्वा सः-सङ्गमो देवः
भयभैरवेण=अतिभयानकेन पिशाचरूपेण प्रभुं भीषयति=भयमुत्पादयति । तथापि न चलति । ततः प्रभुमशुण्डं

प्रभु को उन से कटवाया, खूब कटवाया और पूरी तरह सभी अंगों में कटवाया । इस से प्रभु के
शरीर से रुधिर की तेजधार बहने लगी । फिर भी भगवान् कायोत्सर्ग से विचलित नहीं हुए । तब
संगम देवने भयानक सुंडवाले और तीखे दांतोंवाले हस्ती की विकुर्वणा की । संगम देव द्वारा चैक्रिय
शक्ति से उत्पन्न किये गये हाथीने भगवान् को ऊपर उठाकर नीचे धरती पर पटक़ा । नीचे पटक़कर
उसने छुरोंके समान तीक्ष्ण दांतोंके अग्रभाग से प्रभु के शरीर को विदारण करके पैरों से कुचला
फिर भी भगवान् कायोत्सर्ग से चलित न हुए । तब भगवान् को अडग देखकर संगम देवने अत्यन्त ही
भयानक पिशाच का रूप बना कर उन्हें भयभीत करना चाहा फिर भी भगवान् चलायमान न हुए ।

आ वृद्धिने परिश्रामे दुःभोगी देश पशु परवा कथा सिवाय, 'स्वानुभव' वधार्थे जता होता. आ स्वानुभव
करवाभा पूर्व डिपान्ति ने ने कर्मोने। उदय आवी रहो हुतो ते ते कर्मोनी रज सोगवाधने स्वयं भरी पडती
हती. पोतामां राग-द्वेष इपी विक्काथ नहि होवाने करहे भधावा योअ्य कर्मरज पशु कर्मइये अंधाती न हती,
येठडे भूतकाणुं कर्मइपी आवरपशु पशु तेनी नेणे इण उत्पन्न करी निर्माण थर्ह जर्ह भसी जतुं अने भावी
आवरपशु पशु-राग-द्वेषनी विक्काशना अभावे अकारक थछ रहेतुं. भन्ने भूत अने भविष्य इर थवाथी वर्तमान-
स्थाने जे भगवान् लोगवी रह्य़ा हुता. मृत्युहोकरने। मानवी आत्मस्थिरता प्रगट करवाभां आटलो भधो अथण होय
छ ते मिथ्याभिमानी होवाना भनभा वसी यकतुं नथी तेओ तेनी कसोटी करवाभां जरा पशु कथाथ राभता

दद्यात् सिद्धं विदुष्य-तेन प्रमुखादीरं स्फात्म्यति=विदारयति। यथापि प्रमुः कायोस्सर्गान्ति क्रिषिदपि चञ्चति।
 यतः सञ्च स म्गावत् उपरि महाभार प्रमुखापयुक्तं सौहम्य=सौमिन्यन्त्य गोचर=पिण्ड प्रसिपति=वेगेनापगतयति।
 स्यापि प्रमुखाङ्गित एव विच्छति। एवम्=अनेन प्रकारेण पूर्वपद-सर्प-कृष-युक्त-युत-येतादिकृत =मयमेव-
 विक्रित-सर्प-प्रमुखा-यत-युत-येतप्रयतिकृतः नानाविधे=अनुप्रकारैः, यन्त्रैः उपसर्गैः उपसर्गितोऽपि=जातो
 यद्वाऽऽदि, मगवान=धीवीरस्वांगो भविचक्षितः=कायोस्सगादस्लक्षितः, अक्षिप्रितः=अस्पाद्विषः अमीतः=मपरिहितः
 अत्रासितः=बासमयः, अत एव=अप्रस्ताः=आसवर्जितः, यद्वा-‘अवत्ये’ इत्यस्य ‘आत्मस्याः’ इष्टिच्छाया, तत्पक्षे
 ‘आत्मनिस्वित’=स्वस्य इत्यर्थः, अमुद्रिन्=उड कगरादिः, अमुद्रिन्=आमरिदितः, असम्प्रान्तः=सम्प्रमरहित -
 विस्मयवर्जितम् सन् तो=एतौकापसर्गप्रतितां उवन्काप=आगवत्प्रमाना मरवीम्-युदवीम् विपुकाप=अधुरां
 योरो=मयङ्कुरां तीव्राम्=उग्राम् चण्डो=छटारो मगावाम्=अतिदृढाम् दुरक्षासां=कठटेन सतनीयां वेदनां सम
 माचन=‘कोऽपि न मे मियो न च द्वेष्यः’ इति सर्वमाणिषु अपकार्युपकारिषु समबुद्धया सम्यक् सतरे-

तव प्रमु का सोमररिष देलकर सिद्धकी विदुष्यका की और उस सिद्ध स प्रमुके क्षरीर को विदारण कराया।
 इवने पर भी प्रमु कायोस्सर्ग से छेदमात्र भी नहीं ढिगे। सब उसन मगवान् ऊपर अत्यधिक भारवाला
 लौहका गोला वैनी क साथ कैका इस पर भी मगवान् अकम्प वन रहे।

इसी प्रकार नैसा कि पहले यूप्याणि यस्त क उपसर्ग-सर्जनमें कहा गया है, उसी प्रकार इस संगम
 देवने भी दौप, चोख, रीछ, युक्त, युत, येत आदि को वैकल्पिक से उत्पन्न करके मगवान् को उपसर्ग
 दिया, मगर मगवान् कायोस्सर्ग से चम्बित न हुए, कथित न हुए, निर्भय रहे, प्राप्त को प्राप्त न हुए,
 अत एव प्राप्त स वर्जित रहे या ‘अवत्ये’ अर्थात् आत्मस्य ही बने रहे, उद्वेगशील रहे, सोमरीन रहे,
 विमयशील रहे। इन उपसर्गों से उत्पन्न हुई कर्षित, मगान्, प्रमुखा, मयंक, उग्र, छटार, गाड़ी, एवं दुस्साह वेदना

नहीं आती इसीटीजोभाभी भार उठानाए अपने आती इसीटीजो यद्वारा खुद टीहं इसीभां अत्रान मकावीर जोह कर
 केतल नेत्रन लेवा पस्विके गीब हैयं टीहं करे कोअव्य कोव तेम अवापु नभी आटेडे सुधी भिआन्त्यो देवे।
 आरमभानिओने दुअ देवाभां अवाधारण्य शक्तिने। उपयेन अतां करो ते तो अत्रान मकावीरन उवन उपरभी आवी
 मअधु आत्यशक्ति प्रणत करधभां आटेडे सुधी संधारी केवी नेउजे कोम का उपरभी आपयुने शुभन करी नाम छ

મયાડખાવેન, ક્ષમતે-કોધાડખાવેન, તિતિષતે-દૈન્યાડકરણેન, અધ્યાસ્તે-નિશ્ચલતયા, નો સ્વલ્લ મનસાડપિ તસ્ય સદ્ગમદેવસ્ય અશુભમ્=અનિષ્ઠં ચિન્તયતિ=ત્રિવાચયતિ, પ્રત્યુત તૂષ્ણીકઃ=મૌનશીલઃ ધર્મધ્યાનોપગતઃ=ધ્યાનમગ્નઃ સન્નેવ વિહરતિ=તિષ્ઠતિ। એવમ્=ઈતથમ્ સઃ-ઉપસર્ગકારી સદ્ગમો દેવઃ જનપદવિહારં વિહરન્તં ભગવન્તં=શ્રીવીર-સ્વામિનમ્, પશ્ચાત્ પશ્ચાત્=પુનઃ પુનઃ ગત્વા વૃષમાસી=વૃષમાસાન્ યાવત્ ઉપાસર્ગયત્-ઉપસર્ગમકરોત્ પરન્તુ ભગવતો વજ્રકુપભનારાચસંહનનત્વેન પ્રાણહાનિર્નં જાતેતિ ।

એવ સ્વલ્લ વિહાન્ ભગવાન્-શ્રીવીરસ્વામી સંવત્સરં=વર્ષં તદુપરિ સાધિકમ્=કિશ્ચિદિનાધિકં માસં યાવત્ સર્વેલકઃ=દેવદૂળ્યવસ્ત્રધારી આસીત્, તતઃ પરન્તદનન્તરમ્ અર્વેલકઃ=વસ્ત્રરહિતો વશૂવ ।

તતઃ=અર્વેલીભવનાનન્તરં સ્વલ્લ સ ભગવાન્ મહાવીરઃ પૂર્વાનુપૂર્વી=પૂર્વજનિવર્ષિપાટીં ચરન્=આશ્રયન્

કો સમભાત્ર સે સહન ક્રિયા ઉન્હોને ન કિસી કો પ્રિય, ન કિસી કો દ્રેણ્ય-દ્રેષ કા પાત્ર-સમજ્ઞા । અપકારી ઓર ઉપકારી પર સમાન બુદ્ધિ રસ્કી । ઇસ વેદના કો ભગવાન્ ને સમ્યક્ પ્રકાર સે નિર્ભય ભાવ સે સહન ક્રિયા, ક્રોધાભાવ સે ક્ષમા ક્રિયા, દીનતા ન લાકર તિતિષ્ઠા કી, નિશ્ચલ રહ કર અધ્યાસ ક્રિયા । મન સે મી સંગમ દેવ કા અનિષ્ઠ નહીં સોચા, વલિક મૌન ધારણ કરકે ધર્મધ્યાન મેં મગ્ન હી રહે । ઇસ પ્રકાર જનપદ મેં વિચરતે હુર ભગવાન કે પીછે-પીછે લગ કર સંગમ દેશ ને હુર મનોનોં તત્ત ઉપસર્ગ ક્રિયા । પરંતુ ભગવાન વજ્રકુપભનારાચસંગ્રયણ વાલે હોને સે ઉનકી પ્રાણહાનિ નહીં હુર ।

ઇસ પ્રકાર જનપદ મેં વિચરતે હુર ભગવાન વીર સ્વામી એક માસ અધિક એક વર્ષ તક, અર્થાત્ તેરહ માસ તક દેવદૂળ્ય વસ્ત્ર કો ધારણ ક્રિયે રહે-સર્વેલક રહે, તત્પશ્ચાત્ અર્વેલ અર્થાત્ વસ્ત્રરહિત હો ગયે ।

અર્વેલક હોને કે પશ્ચાત્ ભગવાન્ મહાવીર ને પૂર્વવર્તીં જિનોં-તોર્થકરોં-કી પરમ્પરા કા પાલન કરતે

જાનનુ અંતર પરિણમન થતા પોતાનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ ઓળખાય છે, અને તે વાસ્તવિક સ્વરૂપની યથાર્થ ઓળખાણ થયે તેના પર કુવિ વધ્યે જીવ મંદકથાવી ઝને છે. મંદકથાવી બનતા આસ્થવના ભાવો બંધ થાય છે અને સવર કરણી તરફ તેનું લક્ષ્ય બળ્ય છે. સંવર કરણી આદરતાં આદરતાં પર પદાર્થો ઉપરનો મોહ અને તેની ઉપરનો ભાવ ઓછો થવા માટે છે. સમ્યક્જ્ઞાન અને સમ્યક્ શ્રદ્ધા તેમજ સમ્યક્ ચારિત્રનું અવલંબન લેતાં નિર્જેશ પશુ થવા માટે છે માટે સમજણપૂર્વક જ્ઞાન અને શ્રદ્ધાને અપનાવતા ઉદાસીન ભાવ પ્રગટે છે. મોક્ષનું મુખ્ય સાધન સસાર તરફ વસતો ઉદાસીન ભાવજ છે. જે ભાવના આધારે ત્યાર પછીની સર્વ ક્રિયાઓ થતી બેવામા આવે છે.

આના તીવ્ર હુ.એ હરમયાન શાસ્ત્રના કહેવા મુજબ ભગવાને દેવદૂળ્ય ધારણ કરી રાખ્યું હતું અને ત્યાર-બાદ તે વસ્ત્ર આકસ્મિકપણે અદૃશ્ય થતા, ભગવાન અર્ચેલક રહેવા લાગ્યા. દેવ-દૂળ્ય હતું ત્યાં મુધી, ભગવાન સર્ચેલક કહેવાતા એટલે વસ્ત્રસહિત કહેવાતા અને વસ્ત્ર હર થતા તેઓ અર્ચેલક કહેવાયા. અર્ચેલ અવસ્થા પ્રાપ્ત કર્યા બાદ

ग्रामानुश्रामम्=एकत्माद्ग्रामाद् ग्रामान्तरम् द्रव्य=विरह नगरस्य नालन्दाविधाने पाटके मासमासपञ्चमस्य=प्रत्येकमासप्रत्यक्षपक्षस्य स्थितोऽभवत् । तत्र-गम्येकमाससप्तपक्षपक्षकेषु मध्ये प्रथममाससप्तपक्षके प्रथमपक्षे भगवान् प्रविलम्बित १, एव=त्रिप्रयत्नेष्वित् द्वितीयपक्षके=द्वितीय माससप्तपक्षपक्षके न=द्विष्टिना २, तृतीयपक्षके मुनन्द=द्विष्टिना ३, चतुर्थपक्षके बहुसप्तपक्षेन भगवान् प्रविलम्बितः ४ । सर्वप्र=सर्वेषु पारणकेषु पञ्च पञ्च दिव्यानि=स्वर्णपद्मिनि देवनिष्पादितानि मादुर्येभानि=प्रकृती यतानि । एव=प्रथमे मद्यारेण तृतीयं चातुर्मासं चत्वार्यां नगर्यां द्वि-द्विमाससप्तपक्षेन स्थितः । चतुर्थे चातुर्मासं चातुर्माससप्तपक्षेन पृथग्भ्यां नगर्यां स्थितः ४ । पञ्चमे चातुर्मासं मदिह्यां नगर्यां चतुर्माससप्तपक्षेन स्थितः ५ ।

इह और एक गांव से दूसरे गांव बिचाले हुए, दूसरे चौमासे में रामगृहनगर के नालन्दा नामक पाटके में, मास-मास समय करके स्थित हुए । पहले मासत्रय के पारणे में विजय सेठ ने भगवान् को आहार-दान दिया(१) । दिनपसेठ के ही समान, दूसरे मासत्रय के पारणे में नन्द सेठ ने आहार दहराया(२) । तीसरे मासत्रय के पारणे में सुनन्द सेठ न (३), और चौथे मासत्रय के पारणे के दिन कौटिल्यसन्निवेश में बहुत ब्राह्मण ने भगवान् को दहराया (४), इन चारों पारणों के अन्तर पर स्वर्णपद्म आदि पाँच-पाँच दिव्य पदार्थ प्रकट हुए ।

इसी प्रकार तीसरा चातुर्मास चम्पा नगरी में हुआ । इस चतुर्मास में भगवान् ने दो दो मास का पारणा किया ३ । चौथे चौमास में पृथक्चम्पा नगरी में रहे । वहाँ चौमासी तय किया ४ । पाँचवाँ चौमासा मद्रिका नगरी में,

तेजोने राजगृही-य पापसी वनेश्वर भर्तृभान्दरी जैभाषा हरभान्द-स्थिता करी. जैभाषाभां भासजभञ्जने न भासजभञ्जने छेन्ते जैभाषी तप सुधीया तपेनी जैभाषाभां करी

जैसे भासकी भाषी बार बार भास सुधीया भास जभञ्जना तपने तपीने, तेजो पारधाने शिवसे एकाग्रता रखे जाकार भाते उपस्थित बता जा पापसीनी दिकाजो उपर जगन्नाथ युज्यन्ता भवान् उपपद्याणीजोने त्वां बली का वभते देनार देनार जने द्रव्य, जो जगन्नी शुद्धिना प्रभाव, जाकार देनारने त्वां पाँच दिन वस्तुजो प्रकट होती । सगन्ती अपा कप्रिका विदेश नगरीजो ते सभमे विष्णुभात होती जा नमस्कारिभां 'ज्याजिना' नगरीने पय सभमेय दाय छे जा नमस्कारिना यातुर्मास हरभान् भासजभञ्जोनी तपकीय छेचने, जभवान् विविध प्रशस्तता अकिमकी पय भारक करता बता जा अकिमकी कोटि जगन्ती सवेजोभां, जगन्ती वस्तुजो प्राप्ति पाय तो तपना जते पस्तु जस्तु जगन्ती निजोय पय इवै छे जने जेना निजोय परिपूर्ण बत्तां जगन्ती परिपक्व तेभने सदन करण पदता. जगन्ती बार बार जाकरेकां भासजभञ्ज तपे जगन्ती जभमदितपे जगन्ती (२५०८५)

षष्ठ चातुर्मास पुनः द्वितीयवारं भद्रिकायां नगर्यां नानाविधाभिग्रहयुक्तेन चातुर्मासिकतपसा स्थितः ६ । सप्तमं चातुर्मासम् आलम्बिकाया नगर्यां चातुर्मासिकतपसा स्थितः ७ । अष्टमं चातुर्मासम् राजगृहे नगरं चातुर्मासिक तपसा स्थितः ॥मृ०८९॥

मूलम्—तएवं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमिच्चा कट्ठिण-कम्मवच्चणट्ठ अणारियदेसं समणुपत्ते । तत्थ णं नयमं चाउम्मासं चाउम्मासतवेण ठिए । तत्थ णं भगवें इरियासमइसमिए इत्थीजणकए भोगपत्थणारूवे अणुक्कलपरीमहे, मिलिच्चउत्तणकए पडिक्कलपरीसहे य सहमाणे तितिकखेमाणे अहियासेमाणे तुसिणीए चेव वेरगमग्गे विहरीअ । केणवि वंदिओ णमंसिओ निंदिओ तिरिक्किओ वा न तुहे न रुहे समभावेण भाविपणा चेव चिद्धीअ । छक्कायपरिवाल्लो भगवं 'सन्वे पाणा सन्वे भूया सन्वे जीवा सन्वे सत्ता सयसयकम्मपप्पहावेण चाउत्तंसंसारकंतारे परिभमंति'—त्ति संसारवेचित्तं विभावमाणे विहरीअ । दव्वभावोवाहिपडिया अण्णाणिणो जीवा पावाडं कम्माइं वयंति—त्ति कट्ठ भगवं पावकम्म—कलावाओ परम्मुहो आसी । बाला य भगवं दहूणं लट्ठि—मुट्ठीहिं हणिय २ कंदिसु । अणारिया य भगवं दंडेहिं ताडिसु, केसग्गे करिसिय करिसिय दुक्खं उप्पाइसु, तद्वि भगवं नो दोसीअ । अणारत्थेहिं संभासिओवि भगवं तेहिं सद्धि परिचयं परिच्चज्ज मोणभावेण सुहज्जणनिमग्गे चेव विहरीअ । भगवं सहिउं असेक्के परीसगेसग्गे न गगोअ, नयगीएसु रागं न धरीअ, दंडजुद्धमुट्ठिजुद्धाइयं सोच्चा न उकंठीअ । कामकहासंलीणणं इत्थीज्जाणं मिहो क्हासंलावे सुणिय भगवं रागदोसरहिए मज्झन्थभावेण असरणे एव विहरीअ । घोराइयोरेसु संकडेसु किंचिचि मणोभावं न विगडिय संजमेण तवसा अण्णाणं भावेमाणे विहरीअ । भगवं परवत्थमवि न सेवित्था, गिहत्थपाए न भुंजित्था । असणपाणस्स मायन्ने रसेसु अगिद्धे अपडिन्ने आसी । अच्चिण्णि नो पमज्जीअ, नोडवि य गायं कंइइअ । विहरमाणे भगवं तिरियं पिट्ठो य नो पेहीय, सरिरप्पमाणं पंहं अग्गे विलोइय इरियासमिहिए जयमाणे पंथपेही विहरीअ । सिसिरंमि बाहू पसारित्तु परक्कमीअ । न उण वाहू कंधेसु अवलंबीअ । अण्णे मुण्णिणोडवि एवमेव रीयंतु त्ति कट्ठ माहणेण अपडिन्नेण भगवया एस विही बहुसो अणुकंतो ॥मृ०९०॥

क्रिया और वहाँ भी चौमासी तप किया । फिर भगवान् ने भद्रिका नगरी में नाना प्रकार के अभिग्रहों से युक्त चौमासी तपस्या के साथ छठा चौमासा किया । सातवाँ चतुर्मास आलम्बिका नगरी में चौमासी तप से व्यतीत किया । आठवाँ चतुर्मास राजगृह नगर में चौमासी तपश्चरण के साथ किया ॥मृ०८९॥

ग्रामानुष्ठानम्=एकस्मादग्रामाद् ग्रामान्तरम् द्रव्य=विहरन् द्वितीयं चाहुमासं रामयुद्धस्य नगरस्य नाहन्यभिधाने पाठके मासमाससप्तगतयसा=यत्येकमासप्रत्ययतपस्या स्थितोऽभवत् । तत्र-ग्रस्येकमाससप्तपारणकेषु मध्ये प्रथममाससप्तपारणके विप्रयभष्टिना मगधान् प्रतिलम्बित १, एवं=विप्रयभष्टिन् द्वितीयपारणके=द्वितीय-माससप्तपारणके नन्दभष्टिना २, तृतीयपारणके सुनन्दभष्टिना ३, चतुर्थपारणके बहुनभ्रातृमणेन मगधान् प्रतिलम्बित ४ । सप्तम=सर्वेषु पारणकेषु पञ्च पञ्च दिव्यानि=स्वर्णहृष्यादीनि देवनिष्पादितानि प्रादुर्भूतानि=पक्ष्मी भूतानि । एवम्=यनेन प्रक्षरेण तृतीयं चाहुमासं वधयायां नगर्यां द्वि-दिमाससप्तमणेन स्थित' । चतुर्थं चाहुमासं चतुर्माससप्तमणेन पृष्ठवधयायां नगर्यां स्थित ४ । पञ्चमं चाहुमासं मदिहयायां नगर्यां बहुमाससप्तमणेन स्थितः ५ ।

दुर और एक गाँव से दूसरे गाँव विचाले हुए, दूसरे बीमासे में रामयुद्धनगर के मासन्दा नामक पाछे में, मास-मास समय करके स्थित हुए । पहले मासमण के पारणे में विप्रय सेठ ने मगधान को आहार-दान दिया(१) । दिनपसेठ के ही समान, दूसरे मासमण के पारणे में नन्द सेठ ने आहार बहराया(२) । तीसरे मासमण के पारणे में सुनन्द सेठ ने (३), और चौथे मासमण के पारणे के दिन कोष्ठाकसमिवेश में बहुत ब्राह्मण न मगधान को चढ़ाया (४), इन चारों पारणों के अन्तर पर स्वर्णवर्षा आदि पाँच-पाँच दिव्य पदार्थ पड़ते हुए ।

इसी प्रकार तीसरा चाहुमास वम्या नगरी में हुआ । इस चतुर्मास में मगधान ने दो बी मास का पारणा किया ३ । चौथे बीमास में पृष्ठवम्या नगरी में रहे । वहाँ बीमासी सप्त किया ४ । पाँचवाँ बीमासा मद्रिका नगरी में,

तेजोने राजवृद्धि-य चापुती वनेरथ चतुर्मास करी, बीमासा हरथान. स्थित्य करी. बीमासायां मासभभव;

ते मासभभव अने छेन्ते बीमासी तप सुधीन्य तपे नी आशरथना करी

कोइ मासकी भाडी आर आर भास सुधीन्य भास भवजना तपने तपीने तेओ पारथाने शिवसे बुडा बुडा स्थले आकार भाटे उपस्थित कता आ पारथानी द्विमाओ उपर कजुलवा युज्जनय भवान पुष्यमणिओने त्यां अपी आ वपते देनार देनार अने द्रव्य, को जेओनी शुद्धिया प्रकावे, आकार देनारने त्यां पाँच दिव्य वस्तुओ भ्रष्ट करती करती. राजवृद्धि अथ आद्रिका विजेर नगरीओ ते सभने विख्यात करी. आ नभिमोभां 'व्याव' 'विहा' नभरीने पञ्च सम्भवेस दाम छे आ नभरिओना आतुभोस हरथान भासभभवओनी तपक्षयो उपरने, भजथान (विषय प्रशारना अभिप्रेत) पञ्च पारण करत कता आ आभिवर्द्धा जेटेते नमुष्ट अजोयोभां, नमुष्ट वस्तुओ प्रथम बाव तो तपन्य अते पदव्य हस्तु आवा निमयो कजु बुष्ट छे जने जेना निमयो परित्स्व' अर्थां कजु परित्स्व तेभने अकन हस्या पदवा पर्वपार आदरेकां भासभभव तपी कजु, नभरिहृष्याओ वपी करती (सन्दर्भ)

षष्ठ चातुर्मास पुनः द्वितीयवार भद्रिकाया नगर्यां नानाविधाभिग्रहयुक्तेन चातुर्मासिकतपसा स्थितः ६। सप्तमं चातुर्मासम् आलम्बिकाया नगर्यां चातुर्मासिकतपसा स्थितः ७। अष्टमं चातुर्मासम् राजगृहे नगरे चातुर्मासिक तपसा स्थितः ॥सू०८९॥

मूलम्—तएवं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमिचा कडिण-कम्मक्खणट्ठ अणारियेसं समणुत्ते। तत्थ णं नवमं चाउम्मासं चाउम्मासतवेण ठिए। तत्थ णं भगवं इरियासमिइसमिए इत्थीजणकए भोगपत्थणारूवे अणुक्कलपरीसहे, मिलिच्छजणकए पडिक्कलपरीसहे य सहमाणे तितित्थेमाणे अहियासेमाणे तुसिणीए चेव वेरग्गमग्गे विहरीअ। केणवि वंदिओ णमंसिओ निदिओ तिरकिओ वा न तुहे न रुहे समभावेण भावियप्पा चेव चिद्दीअ। छकायपरिवाल्लो भगवं 'सन्वे पाणा सन्वे भूया सन्वे जीवा सन्वे सत्ता सयसयकम्मपद्दावेण चाउंतसंसारकंतारे परिभमंति'—ति संसारवेचित्तं विभावेमाणे विहरीअ। दव्वभावोवाहिपडिया अण्णाणिणो जीवा पावाइं कम्माइं वधंति—ति कट्टु भगवं पावकम्म—कलावाओ परम्मुहो आसी। बाला य भगवं दहूणं लट्ठि—मुट्ठीहिं हणिय २ कंदिस्सु। अणारिया य भगवं दंडेहिं ताडिस्सु, केसग्गे करिसिय करिसिय दुक्खं उप्पाइंस्सु, तदवि भगवं नो दोसीअ। अणारत्थेहिं संभासिओवि भगवं तेहिं सदिं सदिं परिचयं परिचवज्ज मोणभावेण सुहज्झाणनिमग्गे चेव विहरीअ। भगवं सहिउं असके परीसज्जोअसग्गे न गणीअ, नचणीएस्सु रागं न धरीअ, दंडुदुस्सुद्विजुद्धायं सोच्चा न उक्कंठीअ। कामकहासंलीणाणं इत्थीजणाणं मिहो क्हासंलावे सुणिय भगवं रागदोसरहिए मज्झत्थभावेण असरणे एव विहरीअ। घोराइघोरेस्सु संकडेस्सु किंचिवि मणीभावं न विगडिय संजमेण तवसा अत्थाणं भावेमाणे विहरीअ। भगवं परत्थमवि न सेवित्था, गिहत्थपाए न भुंजित्था। असणपाणस्स मायन्ने रसेस्सु अग्निदे अपडिन्ने आसी। अच्छिपि नो पमज्जीअ, नोडवि य गायं कंइइअ। विहरमाणे भगवं तिरियं पिट्ठो य नो पेहीय, सरीरपमाणं पढं अग्गे विलोइय इरियासमिइए जयमाणे पंथपेही विहरीअ। सिसिरंमि बाहू पसारित्तु परक्कीअ। न उण बाहू कंधेस्सु अवलंबीअ। अण्णे सुणिणोडवि एवमेव रीयंतु त्ति कट्टु माहणेण अपडिन्नेण भगवया एस विही बहुसो अणुक्कतो ॥सू०९०॥

किया और वहाँ भी चौमासी तप किया। फिर भगवान् ने भद्रिका नगरी में नाना प्रकार के अभिग्रहों से युक्त चौमासी तपस्या के साथ छठा चौमासा किया। सातवाँ चतुर्मास आलम्बिका नगरी में चौमासी तप से व्यतीत किया। आठवाँ चतुर्मास राजगृह नगर में चौमासी तपश्चरण के साथ किया ॥सू०८९॥

छाया तब खलु स भ्रमणो भगवान् महावीरो राजगृहाद् नगरात् प्रस्थित्वा गच्छन्, प्रतिनिष्क्रम्य कठिनकर्मसाधनार्थं समनुभास । तत्र खलु नवम चातुर्मासं चातुर्मासतपसा स्थित । तत्र खलु भगवान् ईदृशमिति निर्मितः श्रीजनकानां भोगमार्थानुरूपान् अनुकूलपरिपक्वान्, म्लेच्छजनकानां प्रतिकूलपरिपक्वान् सत्त्वान् प्रतिविशति । तृणीक एव वैराग्यमार्गो ज्ञेयः । केनापि चिन्तितो नमस्वितो निर्दिष्टस्तिरक्तो वा न तस्या न अथ समभाजन भावितव्यम् । पदप्रत्ययपरिपक्वो भगवान् “सर्वे प्राणाः सर्वे भूताः सर्वे जीवाः सर्वे सरगाः स्वस्वकर्ममार्गैर्वा चातुरन्तस्सारकान्तारे परिभ्रमन्ति” इति समारम्भे चिन्त्ये

मूक का अर्थ—‘तएवं’ इत्यादि । तत्पश्चात् भगवन् महावीरस्वामी राजगृह नगर से निकले और निकल कर कठिन कर्मों का तप करने के लिए अनार्यदेशमें पधारे । वहाँ जोमासी तप के साथ जीमासे में स्थित हुए । वहाँ ईदृशमिति स युक्त भगवान् शिष्यों द्वारा किये गये भोगमार्थानुरूप अनुकूल परिपक्वों को, म्लेच्छ जनों द्वारा किये गये प्रतिकूल परिपक्वों को सहन करते हुए, विविक्षण करते हुए, अध्यस्त करते हुए, मौनयुक्त हो वैराग्य के मार्ग में निवृत्त रहे । किसी ने पदना को, नमस्कार किया तो हट न हुए, किसी ने निन्दा कि या तिरस्कार कीया तो रुष्ट न हुए । समभाव से सवितात्मा होकर ही रहे । पदछाय के रक्त भगवान् ‘समी प्राण, समी भूत, समी जीव और समी सरग, अपने-अपने कर्मों के ममाद से चार गति रूप स्सार कान्तार (अटकी) में परिभ्रमण कर रहे हैं’ इस प्रकार संसार की

तप में प्रवेशि अभय भगवान् भटवीर राजगृही नगरीभाषी नीरुणी अग्नि हस्तेन कृत्वा अक्षरं ज्वालां देवाभ्यां पथात् त्वां कीमसी तपनी नाराधयता हस्तां धाकां चतुर्भासिभि र्विर स्यात् अकिं प्रभु धर्माभिमति विगोशे अभिप्रित्ति नरे मुक्ता बहने विवश्या वात्या आ स्थले तेभने आनुभूत परीषको सकन इत्या परा अकीला तेभने प्रार्थना मस्ती कती तो पक्ष प्रभु विस्त भावार्थ रवेत्वा क्वा आ उपगत भवेत्कालतिन दोका तपश्च तेभने केरान इरावां पक्ष भावता क्वा आवा आनुभूत अने प्रतिभूत अने परीषकोने सकन इत्या क्वा तेभने ते परीषकोनी विविक्षा इत्या मीन भाव्य इत्या क्वा आनुभूत परीषकोने आभते इत्या तीव वैराग्यने तेको फणी रक्षा क्वा तेभने भर्ष न इत इत्या ते तेनासी ते पुरीष क्वा नकि इत्या भर्ष तेभने निहे तो तेनासी तेभने नापुगी वृत्तन् कती नकि भर्ष तेभने विस्कार इत तेभनी उपर तेको प्रेभ इत्या नकि इत्ये वास्तवां समभाव रापी समर्थ्याने खर्वन्तु वेदन इत्या ‘इत्ये प्राणी, भूत, एव, अत योतयिताना हस्तेन प्रभाव नरे स आरुपी भव इत अदवाभां प्रपक्ष इती रक्षा छे जे प्रकारनी सधारनी विविज्जानो विवश इत्या विवशी रक्षा क्वा इत्ये जने जाने

त्रिभावयन् व्यहरत् । “द्रव्यभाषोपाधिपतिता अज्ञानिनो जीवाः पापानि कर्माणि वर्धन्ति” इति कृत्वा भगवान् पापकृपात् पराङ्मुख आसीत् । बालाश्च भगवन्तं दृष्ट्वा यष्टिमुष्टिर्भित्त्वा हत्वाऽक्रन्दन् । अनार्याश्च भगवन्तं दण्डेर-ताडयन् । केशात्रे कृष्टा कृष्टा दुःखमुदपादयन्, तथाऽपि भगवान् नाऽद्वेत् । आगारस्थैः सम्भाषितोऽपि भगवान् तैः सार्द्धं परिचयं परित्यज्य मौनभावेन शुभध्याननिमग्न एव व्यहरत् । भगवान् सहितुमशक्यान् परीपहोपसर्गान् नाऽगणयत्, नृत्यगीतेषु रागं नाऽधरत्, दण्डयुद्धमुष्टियुद्धादिकं श्रुत्वा नोदकण्ठत । कामकथासंलीनानां स्त्रीजनानां मिथःकथासंलापान् श्रुत्वा भगवान् रागद्वेसरहितो मध्यस्थभावेन अशरण एव व्यहरत् । भगवान् परब्रह्ममपि न असेवत, निश्चिदपि मनोभाव नो विकृत्य सयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् व्यहरत् । भगवान् परब्रह्ममपि न असेवत,

त्रिचित्रता का विचार करते हुए विचरे । ‘द्रव्य और भाव उपाधि में पड़े हुए अज्ञानी जीव पापमय कर्मों का वन्ध करते हैं, ऐसा सोचकर भगवान् पाप के समूह से त्रिमुक्त थे ।

अनार्य देश के वालक भगवान् महावीरप्रभु को देखकर लट्टी और मुट्ठी से मार-मार कर हड्डा करते-रोते थे । अनार्य लोग भगवान् को हंडों से मारते थे । उनके वालों का अग्रभाग खींच-खींच कर कष्ट उत्पन्न करते थे । फिर भी भगवान् ने उनपर द्वेष नहीं किया ।

गृहस्थों के भाषण करने पर भी भगवान् उनके साथ परिचय का परित्याग करते हुए, मौन-भाव से शुभध्यान में मग्न ही रहते थे । जिस परीषद् को सहन करना अशक्य था, उनको भी भगवान् ने कुछ नहीं गिना, नृत्यों-गीतों में राग धारण नहीं किया, दंडयुद्ध या मुष्टि युद्ध आदि की बात सुनकर उत्कंठा प्रकट नहीं की । काम-कथा में लीन स्त्रीजनों की आपस की बातें सुन कर भगवान् राग-द्वेष से रहित, मध्यस्थ भाव से अशरण (आश्रयरहित) ही विहार करते रहे । घोर और अतिघोर संकट आने पर भी लेश भर भी

उपाधिमा पड़ेला अज्ञानी लये पापमय कर्मोना बंध कथां करे छे’ जेवुं विचारी भगवान् पाप समूहथी त्रिमुक्त रहीने वरतता छता, छताय अन्तार्थं देशमा नाना आलक्षं भगवानने जेछ दाही अने मुष्टिना प्रहारे। करता ‘भारे-भारे’ना पोकारे। करी तेमना उपर छट्वाओ करता अने तेमनी पछवाडे छेकाराओ पाडी दे।कण करी मारपीट करता ते देशना पुण्ठ उमरना भायुसे। तेमने दाकडीओ वडे भारता तेमज तेमना वाणने जेथीने कष्ट आपता ते। पथु भगवान् द्वेषरहित थछ विचरता।

आ अन्तार्थं बुभिमभा भगवानने गृहस्थीओ जोलावता छतां मौन सेवता अने तेमना परिचयभने। त्याग करता सडन करवा अशक्य, जेवा प्रभुने आनी पड़ेला संध्याबंध परीषदोने अछिं गायुवाभां पथु आन्धा नथी।

शुस्प्राणे न अमुहन्त। अमनानस्य मायासौ रसेषु अशुद्धः अयविश आसीत्। अहयपि नो ग्रामार्जयत्, नो प्रिय, य गात्रम् अरुणयत् विहरत् मगवान् तिर्यक् पृष्ठवत् न प्राप्त, शरीरप्रमाण पञ्चानम् अग्रे विमोक्ष्य ईयां समित्या यतमानः पयमसी व्यहरत्। अश्विरे बाहू प्रसार्य पराक्रमत। न पुनर्बाहू रक्ष्ययोरसाक्षम्भव। अन्ये मृतयोऽपि एवमेव रोयन्तु इति कृत्वा माहनेन अयविक्लेन मगवता एष चिभिः बहुशोऽनुक्रान्तः ॥सू०९०॥

मन का चिन्तन करते हुए, संयम और तप से आत्मा को वासित करते हुए विचरे। मगवान् ने परवल का सेवन नहीं किया और युद्ध के पात्र में मोजन नहीं किया। वे मोजन-यानी की भाषा के ज्ञाता थे, रमों में अनासक्त थे और प्रमत्ति थे। उन्होंने ने कमी और तफ की भी सफाई नहीं की, काया को सुखलाया नहीं। बिहार करते समय वे न हथ-उपर देखते थे, न पीछे की ओर देखते थे। सामने करीरममल मार्गको देखते हुए, ईर्ष्यामिर्षिपूर्वक यतना करते हुए चलते थे। अश्विर मनु में दोनों जुनाएँ फैला कर समय में पराक्रम प्रकट करते थे। युद्धमों को अपने कंधों पर नहीं रखते थे। अन्य मुनि भी इसी प्रकार विचरे, यह साध कर अमतिष्ठ माइन मगवान् वर्णमान न अमक पार इसी विधि का अनुसरण किया ॥सू०९०॥

नृपः नीतः रज-शामभो तो, अश्वि, इति पशु करी नयो. इत्युद्ध आदिबुद्धो साधनगानी उत्कृष्ट भगवाने देवी न इती श्री समूहो भगवानने दोहायमान करवा, जोहनीत यतां त्याहे शमश्रुतां होन मयेव श्री वजनं अहो अ इत्य वातोकायो आंभणीने पशु, भगवाने तेभां सत्र-देव अनुभवो नदि, परतु, मभश्च लावतु सेवन करी आश्रय रक्षित कर्त विवशतः

द्वार अने अतिशेर सठो जावी पढतां, भनने ज्ञापय विवृत करवा नदि परतु सत्र भनने तपनी भावनाजोषी भावित कर्त विवशतः

भगवाने, अ वना वलोतु सेवन कर्त नधी तेमल अहश्चत्ता पात्रभां सोभन पशु आशेषु नधी तेजो सोभन अने पक्षीनी भगवाने अनुवावाणा कृता, रसदोषणी नदि होवाची सत्र रसदायक पक्षीयोभां भनासकृष्ट रहेटा अने अप्रतिष्ठ पशु कृता शरीर शुष्कता आटे तेमजे कवापि पशु, कांभोने साइ करी नधी तेमल हाथाने पञ्चपाणी पशु नधी. विदार इरभान, आजीव्यवणी नन्व नदि भरतां आये इति करी शरीर प्रयाण रस्ताने जेवा कृता प्रयोग्यतां विवेर अभितितु यतता पूर्वक पावन कृता विवशतः कृता

अश्विर मनुभां भनने दोषो उवा करी सत्रभां पोततु पत्राश्रम शजवता अने शुभजोने शोध उपर सभता नदि अन्य मुनिभन पशु आ प्रभांजे विवरे जेवा विवश करी अप्रतिष्ठजेवा भगवान, अनेश्वार जावी निचिनु अनुभन कृता कृता. (सू०९०)

टोका—“तए णं से समणे ” इत्यादि । ततः=राजगृहनगरे अष्टमचातुर्मासकरणानन्तरं खलु स श्रमणो भगवान् महावीरो राजगृहानगरात् प्रतिनिष्क्रामति=प्रतिनिःसरति, प्रतिनिष्क्रम्य कठिनकर्मक्षयार्थम् अनार्य-देशं=म्लेच्छदेश समनुप्राप्तः=विहारं कुर्वन् गतः । तत्र खलु भगवान् नवमं चातुर्मासं चातुर्मासतपसा=चातुर्मासिक तपःपूर्वकम् स्थितोऽभवत् । तत्र खलु ईर्ष्यासमितिसमिवः, उपलक्षणत्वाद् भापासमित्यादिसमितः त्रिगुप्तिगुप्तश्च भगवान् स्वीजनकृतान् भोगप्रार्थनारूपान् अनुकूलपरीषद्वा, तथा-म्लेच्छजनकृतान् तर्जनताडनादिरूपान् प्रतिकूल-परीषद्वांश्च सहमानः=क्रोधाभावेन, तितिक्षमाणः=दैन्याकरणेन, अय्यासीनः=निश्चलतया, तूष्णीक एव=मौनमय-लम्बमान एव वैराग्यमार्गे=निरतिचारचारित्राधनमार्गे व्यहरत्=तत्परोऽभूत्, केनापि=केनचिदपि जनेन वन्दितो नमस्यितः=नमस्कृतः, निन्दितः=गर्हितः, विरस्कृतः=अनादृतो वा न तुष्टः=चिन्दितुर्नमस्कृतुद्योपरि न प्रसन्नः, न

टीका का अर्थ—राजगृह नगर में आठवाँ चातुर्मास विताने के बाद श्रमण भगवान् महावीर ने राजगृह नगर से विहार किया । कठोर कर्मों का क्षय करने के लिए विचरते हुए प्रभु अनार्यदेश में पधारे । वहाँ चौमासी तप के साथ नौवाँ चौमासा क्रिया । ईर्ष्यासमिति और उपलक्षण से भापासमिति आदि सभी समितियों से सम्पन्न तथा तीन गुप्तियों से गुप्त भगवान् स्वीजनों द्वारा की गई भोग-प्रार्थनारूप अनुकूल परीषद्वाँ को तथा अनार्य जनों द्वारा कृत तर्जना-ताड़ना आदि रूप प्रतिकूल परीषद्वाँ को क्रोध के प्रिना सहते हुए, दीनता के बिना तितिक्षण करते हुए, निश्चल भाव से अध्यस करते हुए मौन का अवलम्बन क्रिये हुए ही निरतिचार चारित्र के मार्ग में तत्पर रहे । किसी मनुष्य ने उन्हें वन्दन किया और नमस्कार किया तो वन्दना करने वाले और नमस्कार करने वाले पर वे यत्किंचित् भी तुष्ट-प्रसन्न नहीं हुए, किसीने निन्दा की-

टीकानो अर्थ—राजगृहि नगरीमा आठसु चातुर्मास वीताव्या आनं, श्रमणु भगवान् महावीर त्याथी विहार करी थादी नीक्षव्या. भगवान्, पेताना गाढ कस्योनी उद्दीरणा करवा भागता हुता भूमिमा विचरवाथी कसो अकथुर करी शकाशे. आ आशयने पूरो करवा पोते अनार्थ भूमिमां विचरवा लाग्था. अने अनार्थ भूमिमां योमासी तप साथे नवसु योमासु व्यतीत कथुं. भगवाननुं इय अक्षयर्थ अने तपना प्रभाव वडे देदीप्यमान लागतुं हुतुं. तेभनु शरीर पणु कण्ठ दोढा जेवुं भण्णत अने सुदढ होवाथी ते भूमिनी स्वक्षपान श्रियो, भगवान् उपर मोड पाभवा लागी. अने ते तेभने दरेक रीते अलायमान करवा प्रयत्नो करती. दरेक प्रकारना होव भाव विवास, शरीर सोदर्थ विगेरे भताववा उद्यत रहेती तेभना स्थणनी आसपास, सुगधित द्रव्यो छाटी कतुनी सम्भवट करती, जेथी भगवान् होसाधं जय । जेम तेजो धारती हुती.

सुरास्पन्ने न अनुकूलः। अलनपानस्य मायादो रसेषु अपृष्टः अप्रतिष्ठ आसीत्। अथपि नो मामार्जयत्, नो मयि, च गात्रम् अङ्गुष्ठं पिरत् मगवान् तिर्यक् पृष्ठश्च न प्रैसत्, क्षरीरमागं पपानम् अग्रे विलोक्य ईयां समित्या यममानः पयमेसी व्यहरत्। चिञ्चिरे वाह प्रसार्य पराक्रमत्। न पुनर्बाहू सम्बन्धयोरवाऽभवत्। मये मून्मयोऽपि एवमेव रोयन्तु इति कृत्वा मारमेन अप्रतिज्ञेन मगवता एव विधिः बहुशोऽनुक्रान्तः ॥६०९॥

मन को विकृत न करते हुए, संयम और तप से आत्मा को वासित करते हुए विचरे। मगवान् ने परवल का सेवन नहीं किया और सुरास्य के पात्र में भोजन नहीं किया। वे योगन-पानी की माया के हाताय, रसों में अनासक्त थे और अप्रतिष्ठ थे। उन्हीं ने कमी आत्म तक की सी सफाई नहीं की, काया को सुमलाया नहीं। विहार करते समय वे न इधर-उधर देलते थे, न पीछे की ओर देलते थे। सामने क्षरीरमात्र मार्गको देखते हुए, ईयां समितिपूर्वक यतना करते हुए चलते थे। चिञ्चिरे अङ्गु में दोनों अङ्गुली फैला कर समय में पराक्रम प्रकट करते थे। मुनामों को अपने कंधों पर नहीं रखते थे। अन्य मुनि भी इसी प्रकार विचरे, यह सोच कर अप्रतिष्ठ मान मगवान् वर्णमान ने अनेक बार इसी विधि का अनुसरण किया ॥६०९॥

नृत्यः गीतः रज-सभभां तो प्रभुज्जे, हृषि पञ्च करी नशो इत्युद अग्रिमुद आदिदुदो साधपानां उरुहं।
अजवाने सेवी न इती श्री अमूके अजवाने येलायभान हस्त्वा, कोट्ठीत वतां त्पारे क्षमभधामां बीन येरेद
श्री वज्रन्तं अहरेय अ इत्या वातोवाये सांभणीने पञ्च, अजवाने तेभां सभ-देव अजुसंघेः नकि, परतु, भूभरभ
भावतु सेवन करी आश्रय शक्ति कर्क स्थिरता।

बौर अने अतिथिर स भगे आवी परतां, भनने ज्ञापयवु विदुत हस्ता नकि परतु स भम अने तपनी
आवनाजोबी लावित कर्क विवहरता।

अजवाने, जन्मना वस्त्रोतु सेवन हर्षु नशी, तेभज गुहकस्या पात्रभां योवन पञ्च आशेषु नशी तेजो।
योवन अने सखीनी भर्षादने भावुवाणा कृता, रसदीहणी नकि कोनाभी सव रसदायक पदादोभां अनासक्त रहेता
अने अप्रतिष्ठ पञ्च कृता शरीर शुभ्रता भाटे तेमजे क्वापि पञ्च, आग्निने साध करी नशी तेभज हाथाने पञ्चपाणी
पञ्च नशी विकास इरभ्यान, आदीअवणी नजर नकि हस्तां साधे हृष्ट करी शरीर प्रभाणु रस्ताने जेता जवा
धर्माभिधित विजेरे अभितितु यतना पूव क पावन हस्ता कृता विवहरता कृता।

चिञ्चिरे अतुभां, जन्ने कोषे उन्वा करी सभभां घातानु पञ्चकभ हाणवता जन्ने अजजोने क्षंध उपर
सभता नकि अन्य अतिजन पञ्च आ प्रभाणु विचरे जेते विचार करी अप्रतिष्ठजिवा अजवान, अने ज्ञाप्य आवी
चिञ्चिद अजुगरवु हस्ता कृता। (६०६-७)

टोका—“तए णं से समणे” इत्यादि । ततः=राजगृहनगरे अष्टमचातुर्मासकरणानन्तरं खलु स श्रमणो भगवान् महावीरो राजगृहानगरात् प्रतिनिष्कामति=प्रतिनिःसरति, प्रतिनिष्क्रम्य कठिनकर्मक्षयार्थम् अनार्या-देश=म्लेच्छदेशं समनुप्राप्तः=विहारं कुर्वन् गतः । तत्र खलु भगवान् नवमं चातुर्मासं चातुर्मासतपसा=चातुर्मासिक तपःपूर्वकम् स्थितोऽभवत् । तत्र खलु ईर्ष्यासमितिसमितः, उपलक्षणत्वाद् भाषासमित्यादिसमितः त्रिगुप्तिगुप्तश्च भगवान् ह्रीजनकृतात् भोगप्रार्थनारूपान् अनुकूलपरीषदान्, तथा=म्लेच्छजनकृतान् तर्जनाडनादिरूपान् प्रतिकूल-परीषदांश्च सहमानः=क्रोधाभावेन, तितिक्षमाणः=दैन्याकरणेन, अध्यासीनः=निश्चलतया, तूष्णीक एव=मौनमवलम्बमान एव वैराग्यमार्गे=निरतिचारिचाराधानमार्गे व्यहरत्=तत्परोऽभूत्, केनापि=केनचिदपि जनेन वन्दितो नमस्मिन्त्यतः=नमस्कृतः, निन्दितः=गर्हितः, विरस्कृतः=अनाहतो वा न तुष्टः=वन्दितुर्नमस्कृत्तुश्चोपरि न प्रसन्नः, न

टीका का अर्थ—राजगृह नगर में आठवाँ चातुर्मास विताने के बाद श्रमण भगवान् महावीर ने राजगृह नगर से विहार किया। कठोर कर्मों का क्षय करने के लिए विचरते हुए प्रभु अनार्यदेश में पधारे। वहाँ चौमासी तप के साथ नौवाँ चौमासा किया। ईर्यासमिति और उपलक्षण से भाषासमिति आदि सभी समितियों से सम्पन्न तथा तीन गुप्तियों से गुप्त भगवान् स्त्रीजनों द्वारा की गई भोग-प्रार्थनारूप अनुकूल परीषद् को तथा अनार्य जनों द्वारा कृत तर्जना-ताड़ना आदि रूप प्रतिकूल परीषद् को क्रोध के विना सहते हुए, दीनता के विना तितिक्षण करते हुए, निश्चल भाव से अध्यास करते हुए मौन का अवलम्बन किये हुए ही निरतिचार चारित्र के मार्ग में तत्पर रहे। किसी मनुष्य ने उन्हें वन्दन किया और नमस्कार किया तो वन्दना करने वाले और नमस्कार करने वाले पर वे यत्किंचित् भी तुष्ट-प्रसन्न नहीं हुए, किसीने निन्दा की—

ટીકાનો અર્થ—રાજગૃહ નગરીમા આઠસુ આતુસ વીતાવ્યા યાદ, શ્રમણ ભગવાન મહાવીર ત્યાથી વિહાર કરી ચાલી નીકળ્યા. ભગવાન, પોતાના જાઠ કર્મોની ઉદીરણા કરવા માગતા હતા ભૂમિમા વિચરવાથી કર્મો ચક્રચુર કરી શકાશે. આ આશયને પૂરો કરવા પોતે અનાર્થ ભૂમિમાં વિચરવા લાગ્યા. અને અનાર્થ ભૂમિમાં ચૌમાસી તપ સાથે નવસુ ચોમાસુ વ્યતીત કર્યું. ભગવાનનું રૂપ બ્રહ્મચર્ય અને તપના પ્રભાવ વડે દેહીપ્યમાન લાગતું હતું. તેમનું શરીર પણ કઠણ લોઢા જેવું મજબૂત અને સુદૃઢ હોવાથી તે ભૂમિની સ્વરૂપવાન સ્ત્રિઓ, ભગવાન ઉપર મોહ પામવા લાગી. અને તે તેમને દરેક રીતે ચલાયમાન કરવા પ્રયત્નો કરતી. દરેક પ્રકારના હાવ ભાવ વિદાસ, શરીર સૌંદર્ય વિગેરે બતાવવા ઉદ્યત રહેતી. તેમના સ્થળની આસપાસ, સુગંધિત દ્રવ્યો છાટી ઋતુની સખવટ કરતી; એથી ભગવાન લોભાહ બળ્ય! જોમ તેઓ ધારતી હતી.

સ્થાનનિન્દિત્વસ્થિત્વસ્કર્ણુઓપરિ ન કુદ્ધ અપિ તુ સમમાવેન સર્વેણ કાનેણ સમત્પદુદ્ધા-‘ન મે દ્રેવ્યો ન વા કમિત્વ મિયા’ इत्येवं मावितात्मा सन् भविष्यत्=स्थितोऽभवत् । पट्टकायपरिणालकः=पट्टनीचनिकायपरसक्तो भगवान् श्रीबीरस्वामी “सर्वे प्राणाः=द्विषिष्यदुविन्द्रियसंश्रानाः, सर्वे यथाः=वनस्पतिलसणाः, सर्वे जीवा =पञ्चेन्द्रियसंश्रानाः, सर्वे सन्नाः=पिप्लव-तेजोवायुसंश्रानाः, स्वस्वकर्मप्रमाणेण चातुरन्तससारकान्तारे=चतुर्गतिके संसाररूपविपममार्गे परिप्रमत्तिन्वारकटिपिङ्ग-नरा-ऽमरतया पर्यटन्ति”-इति=एव संसारवैचित्र्य=ससारवैलक्षण्यं विभावयन्=विचारयन् समयमार्गे व्यहरत्=विहृतवान् ।

ગર્ભ કી, પ્રતાપર ક્રિયા, જો એસા કરને શહે પર જરા મી રટ યા અપસમ નહીં દુર । ઉન્હોં ને સમી પર સમાન માવ પામ્ય ક્રિયા । ‘મેરે લિણ ન કોઈ દ્રેપ કા પાત્ર હૈ, ન કોઈ રાગ કા પાત્ર હૈ’ इस प्रकार की भावना से आत्मा की भावित करते रहे । पट्टमीर-निकाय के रसक श्रीमरावीर प्रह ‘समी द्वीन्द्रिय, श्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय रूप प्राप्त, वनस्पतिकाय रूप युत, पंचेन्द्रियरूप जीव, पृथ्वीकाय-अणूकाय-वेनस्काय-वायुकाय रूप तप, अग्ने-मरने तर्भ के परिपाक के अनुसार चार गति कर ससार के दुर्गम मार्गे में परिश्रमण कर रहे हैं; अर्थात् हमी नारक, हमी विर्यक, हमी नार और हमी अमर (देव) रूप से ज-म-मरण कर रहे हैं’ इस प्रकार संसार की मयावह निचिपता का विचार करते हुए संशम-मार्गे में निपटते रहे ।

અપ્રવાને જાન સુખી પ્રતિફલ સયોગોનો સામનો કરી કર્મ કુલ કચો હવેા હવે કુદરતે તેમને સાનુકૂલ (મનોક. ભવ લપટી પડે-ભવને અમે તેવા) સયોગો જાન્યા. આ સયોગોમાં શરી તેમને કર્મકમ કરવાનો હવેા હેવી જાદશી કયામત ।

જાણ મનોક પદાર્થોમાં તેા સહેને લપટી જવાય । જાનુકૂલ સયોગોમાં ભવને જમણ તણમણ, વીજ શેજનનુ પડે । પ્રતિફલ સયોગોમાં જોક જ પ્રકારનુ જાને જોક ધારે વીજ લાજવવાનુ હોય છે ત્યારે જાનુકૂલતામાં ને જાનવા અને તે પલુ ઉઠવી દિવાન વીથો (શક્તિઓ) પૂજણ પ્રમાણમાં લાજવવા પડે છે જોકવાનુ જોક શક્તિકાયા પોતાના જ્ઞાનને સ્થિર રાખીને, અતરપસ્થિતી કરવાનો હોય છે, ત્યારે બીજી જાનુકૂલતા સયેલા નિમિત્તો સામે ટકર ભસવાની હોય છે પ્રતિફળતામાં જ્ઞાતમનીઈ જાદર ઝાપવી, પદલા શેજનનુ હોય છે, ત્યારે જાનુકૂલતામાં જ્ઞાતમવીજ વારવાર જાદર જતુ રહે છે તેને વારવાર ધમખાવી સ્થિર કરી, જાતામતિ કરવાનુ હોય છે આ છે જોક જાદર દહિન યોગ સામના ।

“द्रव्यभावोपाधिपतिताः=द्रव्यत उपाधिर्हिरण्यादिः, भावत उपाधिर्आत्मनो दुष्परिणतिः, तद्भुभयोपाधिपतिताः= तद्भुभयासक्ताः अज्ञानिनः=ज्ञानहीनाः जीवाः पापानि=पाणातिपातादीनि कर्माणि वञ्चन्ति=आत्मनि सम्बन्धानि कुर्वन्ति” इति कृत्वा=इति ज्ञात्वा भगवान्=श्रीवीरस्वामी पापकलापात्=पापसमूहात्, पराङ्मुखः=निवृत्त आसीत् । अनार्यदेशीयबालाश्च भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनं इष्ट्वा यष्टिमुष्टिभिः=दण्डमुष्टिभिः हत्वा हत्वा=पुनः पुनस्ताडयित्वा अक्रन्दन्=स्वापरार्थप्रच्छादनाय स्वयं रुदितवन्तः ।

अनार्याः=म्लेच्छाश्च भगवन्तं दण्डैः अताडयन्=ताडितवन्तः, केशाग्रे कृष्टा कृष्टा=पुनः पुनः कृष्टा प्रभोः दुःखम् उदपादयन्=उत्पादितवन्तः, तथापि भगवान् नो तान् आर्यान् अद्वेष्ट=तदुपरि द्वेषं न कृतवान् । तथा-अग्रास्यैः=गृहस्थजनैः संभाषितोऽपि=उक्तोऽपि भगवान् तैः सार्द्धं=सह परिचयं=स्वजातिकुलादिपरिचयं परित्यज्य=विधाय मौनभावेन शुभध्याननिमग्नः=धर्मध्यानतत्परः सन् व्यहरत्=विहारं कृतवान् । तथा-भगवान्=श्रीवीरप्रभुः

‘हिरण्य-सुवर्ण आदि द्रव्य-उपाधि, तथा आत्मा की दृष्णरिणितिरूप भाव-उपाधि में आसक्त अज्ञानी प्राणी प्राणा-तिपात आदि पापकर्मों का वन्ध करते हे’ ऐसा जान कर श्री वीर भगवान् पापों से विमुक्त अर्थात् निवृत्त थे । अनार्य देश के लड़के श्रीवीर प्रभु को देखकर लट्टियों और मुट्टियों से मार-मार कर चार-चार ताड़ना करने अपना अपराध छिपाने के लिए उलटे रोने लगते थे । अनार्य-म्लेच्छ लोग भगवान् को डंडों से मारते थे, चार-चार बालों के अग्रभाग को खींच-खींचकर सताते थे । फिर भी भगवान् ने उन अनार्यों के प्रति जरासा भी द्वेष नहीं किया । और गृहस्थों द्वारा संभाषण करने पर भी भगवान् उनके साथ जाति कुल आदि संबंधी परिचय नहीं करते थे । मौन धारण किये हुए धर्मध्यान में लीन होकर विहार करते थे ।

आवा अचक्षुण संयोगो अथेह भगवान् अथेह अवस्थाभां विचरता इता ते वयते भगवाने डेटोला संयमने। बार वहो हथे अने आंतर धट्टियो पर भूमी दीधो हथे ? ते डड्यनाभा पणु आवुं नथी, अर्थात् आ अनार्य भूमिनी स्त्रीयो जगतना सर्व देशोभां सर्व श्रेष्ठ रमणीयो तरीडे पंडती. तेमनी वरये आ प्रभु येर पर्वतनी माइक, अडोल अने निष्ठंय उला रह्या डेवुं महान आश्रय ! आ योग साधनाने जैनशास्त्रोभां पांथ सभिति अने वषु शुसिमा गषी लेवामां आवी छे. आ पांथ सभिति अने वषु शुसि युष्ठ साधु ‘योगी’ गषाय छे. योगना सर्व साधने। आ आठ प्रवचनमातामा समाह नय छे. आ माताने आधार लह भगवाने अनार्य भूमिनी स्त्रीयोनी लोगप्रार्थनायो उपर निजय येणव्यो अने तेमनी विजयपताका योगरहम इरकवा लागी दोडा पणु

सद्विभक्त्यनन्तःसहान् परीपक्षगान् परीपहाः=श्रीतोष्णादय, उपसर्गां=देवमनुष्यविर्यङ्कृता उपद्रवास्ताद-
नानामपत्तं=न किंचिदमन्यत। दृश्यगीतेषु च रागम्=आसक्तिं नाभरत्तं=न घृतवान्। दण्डयुद्धप्रियुदादिकं कचित्
प्रवर्तमानं भुत्वा तद् द्रष्टुं नोद्यच्छत=उत्स्फुटितो नाभयत्। कामकथासलीनानां=कामसम्वन्धिनानां कर्मां कर्तुं प्रवृत्तानां
लीनानां मित्राःकथासंवापान्=परस्परंवातांलापान् भुत्वा भगवान् रागोपरहितो मध्यस्थभावन अभरणः=आभय
रहित एव व्यहरत्। घोरारिघोरैः=अतिमयानकेषु संभूतेषु=कृतेषु किञ्चिदपि यथास्यात्तथा मनोमार्क=विषयवृत्ति
नो रित्त्य=किंचिदपि विचारयुक्त न कृत्वा संयमेन-सप्तशिविधेन तपसा=दादशविधेन च आत्मान माभयन्=
वास्तपन् व्यहरत्। भगवान् मयङ्कुरेऽपि वीरं परब्रह्म=अन्यदीयं ब्रह्ममपि न भवेत्तत्=वीरनिवारणार्थं नो घृतवान्।
तथा गुरुस्थपात्रे न अभ्यङ्कृतं=न सुकृत्वात्। तथा-अभयनयानस्य=आहारापानीयस्य मात्राः=परिमाणवेषा भगवान्

वीर भगवान् ने इससह परीपहों (भूल-प्लास आदि की बाधाओं) तथा उपसर्गों (देवों, मनुष्यों
तथा विर्यकों द्वारा कृत उपद्रवों) को कुछ न समझा, अर्थात्-समभाव से सहन किया। दृश्य-गीतों में
राग धारण नहीं किया। कहीं दण्डयुद्ध हो रहा हो या सुष्टियुद्ध (घुंसेबाजी) हो रहा हो तो उसका
इशान्त धुन कर कभी उत्कठा नहीं उत्पन्न की। कामसंघर्षी वातचीत करने में प्रवृत्त स्त्रीजनों के पारस्परिक
बाजोलाप को सुन कर भगवान् राग-द्वेष से रहित ही बने रहे और मध्यस्थ भाव से, आभय रहित होकर विचरे।

मयानक और अत्यन्त मयानक सफ़ट आने पर भी भगवान् विषयवृत्ति को तनिक भी विकारयुक्त
न करके सप्तश प्रकार के समय और बारह प्रकार के रूप की आराधना से आत्मा को माणित करते हुए
विचरते थे। भगवान् ने अत्यधिक वीर पङ्कमे पर भी, वीरनिवारण के लिए पराये ब्रह्म को कभी धारण
नहीं किया, तथा गुरुस्य के पात्र में भोजन नहीं किया। अभिप्राय यह है कि न भगवान् के पास ब्रह्म-
पात्र थे, न दूसरों से छेकर ही उनका सेवन करते थे। उन्होंने ने किसी भी स्थिति में ब्रह्म-पात्र का

आ आभरणे विद्वत् कथं अथा अपने देवों आया प्रकाशन् भानस जतावधान तेजोके छेदी शीघ्र अनुदूषण परिषेधो
उपशान्, भार-वाहन-तर्जन-पिडन-बोहन कुपरा हरदाववा दाहदीना प्रकाशे, सुष्टि,=दातो, पञ्चमी दृष्टया प्रदी नाशवा
विभेदेना इत्येतां तो क मीराना यथं पदार्थो कर्ता ज्येष्ठे जथा दृष्टोने समभावबो सहन करता करता अभयान् आ
अनाय प्रदेयार्थं निश्चित्यार पक्षे रही नहन नभस्कार-भान-अपमान-युक्त-अद्या-निहा प्रसवता-अभयधनता विभेदेभां
अभ परिप्राप्ति रही विवक्षता कता भोजनपक्ष को तेभेना मुख्य भोजन कता आ उपशान्, शान-देवना भावोभी तिरश्च
रही छेजे भावना लोचनी रहता करता

एव अनुभूतिभां ने भगवत्क हरी पको छे जन्म, जन्म, भगवत्क इत्येतां अनुभवति रह्यो छ ते भगवत् भजन

રસેપુ=મથુરાદિપુ અશુદ્ધઃ=ગૃહિભાવવર્જિતઃ અપતિન્નઃ=દહ્લોકપરલોકપતિત્વારહિતશ્ચ આસીત્ । તથા-ભગવાન્ અશ્વપિ= નેત્રમપિ ન પ્રામાર્જયત=ન જાલેન નો કદાચિદપિ પ્રક્ષાલિતવાન્ । તથા-કણ્ઠતૌ સમુદ્ગતાયામપિ ભગવાન્ ગાત્ર= શરીરમપિ નો અકણ્ઠ્યત=નો કણ્ઠુચિતવાન્ । તથા વિહરન=જનપદવિહારં કુર્વન્ ભગવાન્ તિર્યક્=પાર્શ્વતઃ, પુષ્ટઃ= પથાદ્ધાગે ચ ન પ્રેક્ષત=નાપક્રયત્ । શરીરપ્રમાણં=દેહપ્રમાણ પન્થાનમ્-અગ્રે=પુરતો વિલોક્ય=દૃષ્ટ્વા રૂપ્યાસિમિત્યા ચતમાનઃ=ચતનાં કુર્વન્ પૃથ્વેક્ષી=માર્ગ વિલોકમાનો વ્યહરત્ । શિશિરકૃતૌ, વાહ=શુજૌ પ્રસાર્ય=વિરતાર્ય પરાક્રમત- સંયમે આત્મવલ્લુપયોજિતવાન્, ન પુનઃ સ્કન્ધયોઃ=વાહુ અવાલમ્બત=સ્થાપિતવાન્ । ભગવાન્ યદેવવિધમાચારં

સેવન હી નહીં ક્રિયા । આહાર ઔર પાની કે પરિમાણ કો જાનને વાલે ભગવાન્ મધુર આદિ રસોં મેં ગૃહિ સે સર્વથા રહિત થે । દહ્લોક ઔર પરલોક સંબંધી પ્રતિજ્ઞા સે રહિત થે, અર્થાત્ ઉન્હેં ન ઇસ લોક સંવંધો કોઈ કામના થી, ન પરલોકસંબંધી હી । વે સર્વથા કર્મનિર્જા કી ભાવના સે ઉગ્ર તપ સંયમ કી આરાધના કરને મેં તત્પર થે । ઉન્હોંને નેત્રકો ભી કમી જલ સે સાફ નહીં ક્રિયા । શુજલી આને પર ભી કમી શરીર કો નહીં રુજાયા । જનપદ-વિહાર કરતે હુએ ભગવાન્ ને કમી તિરછા-ઇયર-ઉયર, યા પીછે કી તરફ નહીં દેલા । સામને કી તરફ શરીરપરિમિત-સાદેં તોન હાથ ભૂમિ-માર્ગ કો દેખતે હુએ વિહાર કરતે થે । શિશિર કાલ મેં અપનો દોનોં શુજાઈ । ફૈલાકર સંયમ મેં આત્મવલ્લ કા પ્રયોગ કરતે થે, કંઠોં પર શુજાઈ નહીં સ્થાપિત કરતે થે ।

તેની પાપમય પ્રવૃત્તિ છે, તેમજ જડ પદાર્થો તરફની અનર્ગલ રૂચિ છે અને લીધે નરક. નિગોદ, ઝોકેન્દ્રમથી માંડી પથોન્દ્રિય સુધીની જાતોમા પરિભ્રમણ કરી રહ્યો છે આ વિવિધ પરિભ્રમણ દ્વારા સંસારની વિચિત્રતા પણ જોવાની રહ્યો છે. આ સંસારની વિચિત્રતાનો નાશ કરવા આત્મિક અને બાહ્ય સાધનોની પ્રબલ સાધ્યશક્તિ છે, એમ ભગવાનને લાગવાથી તેમણે પૂર્ણ સચમનો માર્ગ અપનાવ્યો હતો.

સોનુ-રૂપુ-હીરા-માણેક-રત્ન-પરવાણા-મણિ વિગેરે બાહ્ય દ્રવ્યો ઉપાધિ રૂપ છે, અને અંતરમા તેની રૂચિ કરની તે આત્માની હૃદયપ્રિધાન વાળી હુષ્ટ પરિણિતિ છે આ જાનને પ્રકારની અતર અને બાહ્ય ઉપાધિમાં આસક્ત થયેલ બાલ્યઅજ્ઞાની જીવ પ્રાણાતિપાત આદિ નિબિડ-ગાઢ પાપકર્મોના બંધ કરે છે. તેવા પાપોથી ભગવાન વિમુખ હતા. અનાર્થ જાતિના મલેચ્છ લોકો ભગવાનને શારીરિક પીડા આપવામાં કેઈ કયાસ રાખતા નહિ; તેા પણ ભગવાન તેમની તરફ દ્રેષ ઢાખવવાને બદલે કંઈજાજળ વરસાવતા તે બાણતા હતા કે આ બિચારા બાલ્યઅજ્ઞાની જીવો છે. તે નકામા કર્મ બાધે છે. આ કર્મોના ઉદય તેમને આવશે, ત્યારે કેટલી વેદના તેઓ અનુભવશે ?

पात्नित्वान्, तत्र हेतुसाह 'अणो सुमिणोऽपि' इत्यादि । अन्य युनयोऽपि एषः=इत्यस् रीयन्तु=विरन्तु इति कृत्वा= इति हेतोः साधनेन=अतिसूक्ष्मेन अपविशेन=परलोकोपरलोकोपविहारिणेन भगवता एष=मृग्युणोपरयुगलसमापन सस्यो विधिः=आचारः सद्गुरुः=अनेकज्ञः अनुकान्तः=अनुसृतः=उत्तरेण पाशितः ॥सू०९०॥

भगवान् ने इस प्रकार का जो-उत्कृष्ट और अनुपम आचार पालन किया, उसका हेतु वतलाने है—अन्य सुनिन मी इस प्रकार विहार करें, इस हेतु से यहिसफ और अमिद्वि (इलोह-रत्नोक्तसंकी प्रविज्ञा से रहित) भगवान् ने मृग्युको एव उपरयुको ही आराधनास्व आचार का बार-बार उत्कर्ष के साथ पालन किया ॥सू०९०॥

अनेक अने अभनेस वातावरणार्थ भगवान् अधिपती रही सत्तर प्रभारना स बभ अने आर प्रभारना तप वरे आत्मने व्यापित करी, सुने सभावे कियेला, सर्व सभेभार्थ "भीन" स बभने सुभ पव्वे तेजो आभण इत्या, भगवान् बभ-पात्र अरिषी रहित हवा ज्वां भूदरबना वरुपात्रेण सेवन इत्यानु भनकी पव्व भिच्छता नकि, अने फलभारी विज्ञेने सरभा भानी, सभभावे विज्ञे वितावता हवा स आरना हेतु पव्व इशेधी निक्षेप होवाही आहो।क सुक्ष्म तरहेना सेव तेभने भरी अशे हवा।

उपरना भावेनु विवरण इत्याने। आशय जेहवां भूते। छे के, भगवान् जेवा भक्षायुले। पव्व बीतराज आव देवपदार्थ, हेतवा सभवाही विरहे छे। ने साधु वीतशत्रवां भ्रष्ट इत्या भगवा होव, तेजो, वित्तसज भाव ने पुष्टि आपनाश सर्व, नाक अने अतर्जित भिक्षाजोने अपवादवही पश्ये अने देवद ज्ञान दिया तरहेने। सुअव ते साधु-भावीजोने विरभस्य इत्यु न ने। भगवान् आशु लवन, अने आस करीने छपस्य अपरसभा साधु-भक्षेता ते जोर साधुजने अने भूदरशे भाटे, ननुनेवार आरश छे आ आरशने नवर साभि सभवाही जेहवां रोपातु मेव साधी सभ्ये तथा ते। जत्या सदेव नही। परतु साक्षार्थ भिक्षा भसवतो आवक गव्व जनी सभ्ये। साधुजने नेहवा अने नेहवा प्रभाषार्थ होव सज नन्ते। ने भगवान् ज्वां छे तेहवा ॥ (सू०९००)

भगवओ विहारद्वानाणि—

मूलम्—कयाइ भगवं आवेसणेसु वा सहासु वा पवासु वा, एगया कयाइ सुणणासु पणियसालासु पलियद्वानेसु पलालपुजेसु वा, एगया आंगुत्यागारे आरामागारे नगरे वा वसीअ। सुसाने सुणणागारे रुक्खमूले वा एगया वसीअ। एएसु ठाणेसु तहप्पगारेसु अण्णेसु ठाणेसु वा वसमाणे समणे भगवं महावीरे राइदियं जयमाणे अपमत्ते समाहिण् झईअ। तत्थ तस्सुवसग्गा नीया अणेगरूवा य हविंसु, तं जहा—संसपपगा य जे पाणा ते, अदुवा पक्खिणो भगवं उवसग्गिसु। पट्ठरूवमोहियाओ इत्थियाओ य भगवं उवसग्गिसु। सच्चिहत्थगा गामरक्खगा य किंपि अय्यमाणं भगवं चोरसंकाए सत्थाभियाएण उवसग्गिसु। भगवंते सव्वे उवसग्गे अहियासीअ। अह य इहलोइयाइ पारलोइयाइ अणेगरूवाइं पियाइं अप्पियाइं सदाइं, अणेगरूवाइं भीमाइरूवाइं, अणेगरूवाइं सुब्बिभदुब्बिभंगंधाइं, विरूवरूवाइं फासाइं सयासमिण् रं अरं अभिभूय अवाई समाणे सम्मं अहियासोअ।

सुणणागारे राओ काउसग्गे ठियं भगवं कामभोगे सेविउकामा परत्थीसिहिया एगवरा समागया पुच्छंति—“कोउसित्तुमं”—ति, तथा कयावि भगवं न किंपि वयइ तुसिणीए संचिद्धं, तथा अवायए भगवम्मि कुद्धा रुद्धा समाणा नाणाविहं उवसग्गं करेति, तपि भगवं सम्मं सहीअ। कयावि ‘को एत्थ’ ति पुच्छिण् भगवं वदीअ—‘अहमंसि भिक्खु’ ति सोच्चा सकसाएहिं तेहिं आहच्च—‘अपसरेहि एत्तो’—त्तिकहिय भगवं अयसुत्तमे धम्मं” ति कट्ठु तत्तो तुसिणीए चेव निस्सरीअ। जंसि हिमवाए सिंसिरे पवेयए मारुए पवायंते अप्पेगे अणगारा निवायं ठाण-मेसंति, अण्णे ‘संघाडीओ’ पविसिस्सामोत्ति वयंति, एगे य इधणाणि समादहमणा चिहंति, केई पिहिया अइ-दुक्खं हिमगसंफासं सहिउं सकखामो ति सोयंति, तंसि तारिसगंसि सिंसिरंसि दविण् भगवं अप्पडिन्ने समाणे वियडे ठाणे तं सीय सम्मं अहियासीअ। एस विही “अण्णे मुणिणो वि एवं रियंतु” ति कट्ठु अप्पडिन्नेण मइमया भगवया बहुसो अणुक्कंतो ॥२०९१॥

भगवया बहुसो अणुक्कंतो ॥२०९१॥

प्रमुविहारस्थानानि—

छाया—कदाचिद् भगवान् आवेशनेषु वा सभासु वा प्रपासु वा, एकदा कदाचित् शून्यासु पण्यशालासु पलितस्थानेषु पलालपुजेषु वा एकदा आगन्तुकागारे आरामागारे नगरे वा अवसत। इमशाने शून्यागारे वृक्षमूले

प्रमु के विहारस्थान

मूल का अर्थ—‘कयाइ भगवं’ इत्यादि। कभी भगवान् शिल्पकारों की शालाओं में उतरे, कभी

प्रभुनं विहारस्थान

भूणने। अर्थ—‘कयाइ भगवं’ इत्यादि। भगवाननां विहार स्थाने। शिल्पकारादीनीशालाओभां, सलाभां,

शून्यागारे रात्रौ कायोसर्गे स्थित भगवन्त कामभोगान् सेवितुकामाः परस्त्रीसहिताः एरुचराः समार्गताः पृच्छन्ति—“कोऽसित्वम्” इति, तदा कदाऽपि भगवान् न क्रिमपि वदति, तूष्णीकः संतिष्ठते, तदा अवाक्ये भगवति कुद्राः सन्तः नानाविधप्रपसर्गं कुर्वन्ति, तमपि भगवान् सम्यक् असहत् । कदाचित् “कोऽत्र” इति पृष्ठो भगवान् अवदत् “अहमस्मि भिक्षुः” इति श्रुत्वा सरूपयैस्तेराहत्य “अपसर इतः” इति कथितो भगवान् “अयमुत्तमो धर्मः” इति कृत्वा ततस्तूष्णीक एव निरसत् । यस्मिन् हिमवाते शिशिरे प्रवेपके मारुते प्रयाति अन्येकं

सदा समितियुक्त, तथा रति-अरति का अभिभव करके, मौन रह कर, सम्यक् प्रकार से सहन करते रहे। कभी-कभी सूने घर में, रात्रि के समय, कामभोग सेवन करने ही कामना वाले परस्त्री के साथ आये हुए जार पुरुष, कायोत्सर्ग में स्थित भगवान् से पूछते थे—‘तू कौन है?’ तो भगवान् कभी भी कुछ भी उत्तर नहीं देते थे—बुपचाप रहते थे। उस समय मौन रहने वाले भगवान् पर वे क्रुद्ध हो कर नाना प्रकार के कष्ट उन्हें देते थे। उस कष्ट को भी भगवान् ने सम्यक् प्रकार से सहन किया।

‘यहाँ कौन है?’ इस प्रकार पूछने पर कदाचित् भगवान् उत्तर देते—‘मैं भिक्षु हूँ।’ यह सुन कर वे कपाययुक्त हो जाते और मार पीट करते—‘हठ यहाँ से’। इस प्रकार कहे गए भगवान् ‘यही उत्तम धर्म है’ ऐसा सोच कर बिना बोले ही वहाँ से निकल जाते थे।

जिस शीतल वायु वाली शिशिर ऋतु में, कैंपी कैंपी उत्पन्न करने वाली हवा चलने पर, कोई-कोई

समधी प्रिय અને અપ્રિય શબ્દોમા (વિવિધ પ્રકારના મહા ભયકર રૂપોમાં ભાત ભાતની સુગંધ અને ડુંગંધોમા, અને તરેહતરેહના સ્પર્શોમા રતિ અને અરતી લાભ્યા સિવાય મૌન રહીને ભગવાન સહન કર્યે’ જતા હતા. કોઈ કોઈ સૂના ઘરમા રાત્રિના વખતે છૂપી રીતે કામભોગનું સેવન કરવાવાળા બર સ્ત્રી પુરુષો પણ આવતા. તેઓ, ભગવાનને ધ્યાનમગ્ન બોઈ ‘તું’ કહેણુ છે? શા માટે આવ્યો છે?’ એવા પ્રશ્નો પૂછતા ભગવાન નિરસર રહી, મૌનપથાને સેવતા આ મૌનપથુ બોઈ તેઓ ક્રોધાતુર થતા અને બુદ્ધાબુદ્ધી બતના ડુ ખો તેમને આપતા આ સર્વે ડુ ખોને ભગવાન સુપરિણામે સહન કરતા અને ક્રોધાય ભગવાન જવાબ આપતા કે ‘હુ ભિક્ષુક’ છું’ તો તેો તેમનું આવીજ બનતુ! ‘ભિક્ષુક’ શબ્દ સાભળી, તેઓ ક્રોધાય યુક્ત થતા ને મારપીટ કરવા મંડી પડતા. ઘણી વખત “ચાલ્યો બા!” “હટા બા!” (વિગેરે વાક્યોથી પણ ભગવાનને નવાજતા. આવા વચનો સાભળી ભગવાન અંતર્ગત વિચારતા કે ‘ચાલ્યા જવુ એજ શ્રેષ્ઠ છે’). આવુ વિચારી બોલ્યા વિના ત્યાંથી નીકળી જતા હતા. શીતળ પવનવાળી ઠંડી ઋતુમા અચાને ઠંડા પવનો સૂસવાટા કરતા ફુંકાતા હોય ત્યારે કોઈ સાધુ ઠંડીમાંથી બચવા માટે યોગ્ય

શૂન્યાસુ=જનરહિતાસુ પળયશાલાસુ=આપણટ્ટહેષુ પલિતસ્થાનેષુ=લોહકારશાલાસુ પલાલુષુએ=પલાલરાશિષુ વા અવસવ
 એકદા=એકસ્મિન્ સમયે આગન્તુકાગારે આગન્તુકટ્ટહે=ધર્મશાલાયામ્ આરામાગારે=ઉપવનટ્ટહે નગરે=પુરે વા અવસવ ।
 એકદા એકસ્મિન્ સમયે ઇમશાને શૂન્યાગારે=જનરહિતટ્ટહે, હસમૂલે વા અવસવ । એતેષુ=આવેશનાદિરૂપેષુ સ્થાનેષુ
 તથાપ્રકારેષુ અન્યેષુ સ્થાનેષુ વા વસન્ શ્રમણો ભગવાન્ મહાવીરો રાત્રિન્દિવમ્=અહોરાત્રમ્ ચતમાનઃ=ચતનોં
 કુર્વન્ અપ્રમત્તઃ=પ્રમાદરહિતઃ, અત એવ સમાહિતઃ=સમાધિયુક્તઃ સન્ અધ્યાયત્=ધર્મધ્યાનમકરોત્ । તત્ર તસ્ય=ત્રીવીર-
 સ્વામિનઃ, ઉપસર્ગા, નીતાઃ=દેવાદિભિરુપસ્થાપિતાઃ, તે ઉપસર્ગાશ્ચ અનેકરૂપાઃ=વહુવિધા અમવન્ । તદ્ધયા-યે
 સંસર્પકાઃ ચલનશીલા પ્રાણાઃ=દ્વીન્દ્રિયાદયસ્તે, અથવા-ગૃધ્રાદયઃ પક્ષિણઃ સ્થાણુવદ્ચલં ભગવન્તં-ત્રીવીરમ્ ઔપ-
 સર્ગયન્=ઉપસર્ગં કૃતવન્ત । પ્રશુરૂપમોહિતાઃ=ભગવદ્વપ્રમોહિતાઃ સ્ત્રિયશ્ચ ભગવન્તમ્ ઔપસર્ગયન્ । તથા-શક્તિહસ્તકાઃ=

કમ્પી ધર્મશાલાઓં મેં, કમ્પી ઉપવન મેં વને ઘરોં મેં, કમ્પી ઇમશાનોં મેં, કમ્પી ઘૂને ઘરોં મેં, કમ્પી ટુક્ષોં કે નીચે
 ઉત્તરતેયે । ઇન સવ સ્થાનોં મેં તથા ઇસી પ્રકાર કે અન્ય સ્થાનોં મેં રહેતે હુણ ભગવાન્ મહાવીર દિન-રાત
 ચતના કરતે હુણ, પ્રમાદહીન હોકર ઔર સમાધિ મેં લીન રહ કર ધર્મધ્યાન હી કરતે રહેતે યે । ઇન સ્થલોં મેં
 ઠહરતે સમય ભગવાન્ કો દેવોં આદિ દ્વારા ભૌતિ-ભૌતિ કે ઉપસર્ગ હુણ । જૈસે-સર્પોદિ તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ
 ચલને-ફિરને ચાલે પ્રાણી અથવા ગીધ આદિ પક્ષી સ્થાણુ કી તરહ અચલ ભગવાન્ કો ઉપસર્ગ કરતે યે ।
 કમ્પી-કમ્પી પ્રશુ કે રૂપ પર મોહિત હોકર સ્ત્રિયાં પ્રશુ કો ઉપસર્ગ કરતી થીં । તથા-શક્તિ નામક અસ્ર

કાર્યમા વિદ્વન્-રૂપ કે અતરાયનું કારણ થાય નહિ ! છતા આવા યોગાત્મિક આત્મિક કામમાં પણ તેને ઘણી વિટંબનાઓ
 ઉભી થતી અને તે વિટંબનાઓનો પણ કોઇ આદેશ હોતો નહિ. ભગવાન હુહારની કોડમાં, પિયાવા બેવી જગ્યાએ,
 ખડેર સ્થાન કે પડતર ઘર કે હુકાનમાં બંધા બંધા જતા ત્યાં ત્યાં, વસવાટ કરી રહેલ પશુપંખીઓ પણ
 ઉપદ્રવેા ઉભા કરતા, તેમ જ આવા સ્થળોએ હુહારની બંધિતો આવી જ હોય છે તેથી તેમની દ્વારા પણ ભગ-
 વાનને કષ્ટોના તીવ્ર અનુભવો થતા હતા. આ ખાટા-મીઠા સંસારમાં વિવિધ માનસ ધરાવતી બંધિતો પોતાને
 ઠીક લાગે તે રીતે સંસારનો દહાવો મેળવવા ઇચ્છે છે, છતાં તેઓની આકાંક્ષા પૂરી થતી જ નથી અને કુતરાના
 કાનમા કીડા પડતા જેમ કુતરાને કયાય ચેન પડતું નથી તેમ સંસાર લોહુપીને કયાય પણ સુખ અને શાંતિ નહિ
 મળતા. આવા નિર્જન સ્થાનમા હવાનેબાચકાં બારે છે. પરંતુ ભગવાન તેા પોતાના કાર્યમાં મસ્ત રહેતા હોવાથી
 આવા કષ્ટોને તદ્દન નિર્ભાવ્ય જેવા ગણતા, અને પોતાના સ્વભાવમાં તદ્દલીન રહેતા. આવી જગ્યાએ આમાચીડીઆં, -ધુવડ,
 ડાસ, -વીંછી, -ગીધ, આદિ પુષ્કલ પ્રમાણમાં રહેતાં હોવાને કારણે તેઓ, ભગવાનને જુદી જુદી રીતે હુઃખ આપતા હતાં.
 પ્રભુના શરીર સાથે મોહની આધિથી ચાળા કરનાર રૂપસુંદરીઓનો ઉપસર્ગ તેમને કેવો થતો હશે ! તે વખતે પ્રભુએ

अकिनामकासापिन्नपचारका, ग्रामरसका=ग्रामपालकाश्च भिन्नपि=किञ्चिदपि वचनम्-अवदन्तम् भगवन्तं=धीनीरव्या-
 मित, चौरद्वय्या=चौरसंनयन दक्षामिधातेन=दक्षप्रारण औपसर्गयन्=उपसर्गं कृतवन्त । भगवांस्तु शान्=उपर्युक्तान्
 सर्वानपि उपसर्गान् सत्यम् अथ्यसहस्र=साइवान् । अथ च भगवान् ऐश्वरीकान्=मनुष्य सम्पत्तिन , तथा-
 पारलौकिकान्=देवादिसम्पत्तिनश्च अनेकरूपान्=बहुप्रकारान् भिमान्=मनुकृजान् अभियान्=अतिक्रान् नृव्यान्,
 तथा-अनेकरूपभिन्नानाविधानि मीमादिरूपाणि भीमानि=अथद्वाराणि रूपानि=पिडावादीनामाकारा, आदिपदान्-
 देशाद्वानादीनां मनोहराणि रूपाणि च, तथा-अनेकरूपान्=चन्द्रविषान् सुरभिदुर्भिमन्वान्=मुगन्वान् दुर्गन्धीय, तथा-
 विरूपरूपान्=अमनोदान्, उपलक्षणम् मनोहान् सर्वान् सदा=सर्वदा समित्=समितिस्मयः सन् रविमरवि=
 रामप्रपौ भविष्यन्=स्पष्टया श्रवादीन्वीनी=मुलदु सममकानपन् सम्पद् भयास्त=निश्चलतया सौन्धान् ।

हाय में लिये ग्रामरसक-कोतवाल आदि कुछ मी न बोलने वाले भगवान को चोर की आर्तका करके
 झपाते चोर समझ कर दक्षों का प्रहार करते उपसर्ग करके ये, परन्तु भगवान इन सभी उपसर्गों को सम्यग्
 रीति से सहन करते थे । तथा-ज्मान् शूलोस्त्वन्वी मनुष्यादिकृत तथा परलोकसर्वों अथान् देवादिकृत
 अनेक प्रकार के अनुकूल एवं अतिकूल द्रव्यों को, विविध प्रकार के भयानक पिडाच आदि के रूपों को
 'आदि' शब्द से देवाना आदि के मनोहर रूपों को, शर-चर की मुंगेय और दुर्गन्ध को, तथा अमनोह
 र और उपलक्षण से मनोह रूपों को, सर्वत्र समिविषुक्त होकर, राम-रूप को स्थापन कर, मीनमात्र से-अरने
 सुल-मुल को प्रकाशित न करते हुए, निश्चलक से सहन करते थे । कमी-कमी ऐसा मी प्रसंग आता

पैठानी मं अर्द्धदिग् अर्द्धि वर धनिये उपर इमन अध्यायु रहे ? प्रभुने चौर चरीहे ठेपुने आम्भ रसकाले
 तेमना मु काल हवा रहे ? भुजधर-देवधर आने तिर-बधुत उपसर्गो भयु उपपदे तेवां काल, छतां अजयान
 ते अर्चने ठेकसाये अर्धी ऐसी देवां, भयु है ते उपसर्गोने उपसर्गो चरीहे भानवा अ नकि, नेने आ देक उपरनी
 सर्वासी भयवा ठी अर्ध कती, तेने देक ऐसे तोष मु अने न रहे तो पण मु । भाष्य हे तेमखे तो देकने जेक
 'वरात्मक' काव तरीहि अर्धये केला, ते देक उपरना बितो-दुर्गो तो ते पणतया अरना चस्त्रिभिः भावो अ
 देवा ते नपते अर देक, ते हृषीक परिकुषया सर्वथेया केला, जेभ आरम सुदिजे अजयाने नकी हनुं केत
 पकी ते रथाने अर्धये मी अर ते अर्धभां यथानीये । परत अजयानेने देक साये तो सन्धे (अनि) पूरी जेने केत
 आ पत अर्द्धदिग् कावने लक्ष्मी सर्वाणि उपरनां आनी छ नेनी हक भाव-रुद्रि छ तेने आ बालनी येद अर्द्ध
 नकि, आ वाक्यनिः कीने ते आ अर्धये अ छ अजयानेन अजयान, अ अर्द्धन अजयान (विशेषतः) च तथा-नी

तथा-कदाचित्-यून्यागारे=निर्जनगृहे रात्रौ कायोत्सर्गे स्थितं भगवन्तं-श्रीगीरस्वामिनं कामभोगान् सेवितुकामाः परस्त्रीसहिताः एकचराः=जारपुरुषाः समागताः पृच्छन्ति-‘कोऽसि त्वम्’? इति । तदा कदाचित् भगवान् श्रीवीरस्वामी न किञ्चिदपि वदति, किन्तु तूष्णीकः=मौनसहितः संतिष्ठते, तदा-तस्मिन् काले अत्रादके=अनुत्तरशीले भगवति=भगवन्तं प्रति, क्रुद्धाः=क्रुतक्रोधाः, स्रष्टा=क्रुतरोषाः सन्तः नानाविधम्=अनेकप्रकारम् उपसर्गम् कुर्वन्ति=यष्टिमुष्ट्यादिभिर्भगवन्तं ताडयन्ति, तमपि उपसर्गं भगवान्=श्रीवीरस्वामी सम्यक् असद्वृत्तं=सोढवान् । कदाचित्=कस्मिंश्चित्समये-‘कोऽत्र’ अत्र-अस्मिन् स्थाने कोऽस्ति? इति=एतत् पृष्टः सन् भगवान् श्रीवीरस्वामी अवदत्=उक्तवान्-अहं भिक्षुरस्मि, इति=एतद्वचः श्रुत्वा सकपयैः=क्रोधादिरूपायसहितैः तैः=जारपुरुषैः आहत्य=ताडयित्वा “इतः=अस्मात् स्थानात् अपसर=दूरं गच्छ” इति=एतत् कथितः=उक्तः सन् भगवान् ‘अयम्=ताडनादि सहनरूपः उत्तमः=उत्कृष्टो धर्मोऽस्ति’ इति कृत्वा=इति ज्ञात्वा ततः तस्मात् स्थानात् तूष्णीकः=किञ्चिद्वचदनन्वेन निरसरत्=निर्गतवान् । तथा-यस्मिन् हिमवाते=शीतलबायुयुक्ते शिशिरे=शिशिरकृतौ प्रवेपके=शीतसंगलितत्वात्

कि भगवान् सुनसान घर में रात्रि के समय कायोत्सर्ग में स्थित रहते थे। व्यभिचारी पुरुष परस्त्री के साथ कामभोग सेवन करने के लिए वहाँ आते और भगवान् से पूछते—“कौन है तू?” तब भगवान् कुछ उत्तर नहीं देते, मौन साधे रहते। तब कुछ भी उत्तर न देनेवाले भगवान् पर वे क्रोधित होते, रुष्ट होते और भगवान् को अनेक प्रकार से लट्टी मुट्ठी आदि से ताड़ना करते। उस उपसर्ग को भी भगवान् सम्यक् रूप से सह लेते थे। कभी किसी ने पूछा—“कौन है यहाँ?” इस प्रश्न के उत्तर में वीर प्रभु ने कहा—‘म भिक्षु हूँ।’ वह शब्द सुन कर वे जार पुरुष क्रोध आदि कषायों से युक्त हो जाते और ताड़ना करके कहते—‘दूर जा यहाँ से।’ इस प्रकार कहने पर भगवान् सोचते—‘ताड़ना आदि को सह लेना उत्कृष्ट धर्म है।’ और यह सोचकर वे चुपचाप, विना कुछ कहे, निकल जाते थे।

રીતે, આત્માની વાતો કરતા હતા. આચાર-વિચારોનું પાલન પણ પોતાની દૃષ્ટિએ જ કરતા, છતા શીતપરીબહને પણ સહન કરવામા લાચાર હતા શીતપરીબહને સહન નહિ કરનારા આત્માઓ, આદર આદિ વચ્ચે, તથા માનવ વસવાટ વિનાના સ્થળોની શોધમાં જ ફરતા હતા. કારણ કે તેઓને દેહ દૃષ્ટિ ગર્હ ન હતી

તેન ધર્મના સાધુઓ સિવાયના અન્યમાર્ગી સાધુઓ, અગ્નિ વિગેરે પ્રગટાવીને શીત સામે રક્ષણ મેળવતા કારણ કે તેઓ શરીરને, આત્મ-સાધન માનતા. એને “દેહ રણો ધર્મ.” માનતા એટલે દેહનું અસ્તિત્વ હશે તો ધર્મ કઈ શકશે એમ તેઓની ધારણા હતી. આવાઓનું મતબ્ધ, ભગવાનના આચારથી બુદ્ધ તરી આવે છે !, સે

अतिनामकास्त्रिशेषपारकाः, आमरसकाः=आमपासकाश्च भिम्पि=किञ्चिदपि क्वचनश्च-अवदन्तस्त्वं भगवन्तु=भीधीरस्या
मिन, वीरमुक्त्वा=वीरसंभूयन श्लाभिमायेन=श्लाम्भारोण औपसर्गयन्=उपसर्गं कृतवन्तः। मगावास्तु सान्=उपयुक्तान्
सर्वानपि उपसर्मान् सम्यक् कथयसरस=सोढवान्। अथ च भगवान् ऐहलौकिकान्=मनुष्य सम्पन्नान्, तथा-
पारमौलिकान्=देशादिसम्पन्नान् अनेकस्थान्=शृङ्गमकारान् भियान्=अनुकूलान् अभियान्=भविष्यत्कालान् श्रव्यान्,
सया=अनेकस्यापि=नानाविधानि भीमादिक्यापि भीमानि=मयङ्कुराणि क्पाणि=पिशाचादीनामाकाराः, आदिपदात्-
प्रेषाद्वानादीन् मनोरथापि क्पाणि च, तथा=अनेकस्थान्=शृङ्गविषान् सुरभिदुरभिमन्थान्=सुगन्धान् दुर्गन्धान्, तथा-
विकरस्थान्=अमनोहान्, उपसर्गणाश्च मनोहान् स्पृशान् सदा=सर्वदा समिधः=समिति सम्पन्न सन् रतिमरति=
रामद्वयौ अभिभूय=स्पृशेवा अवादी=मौनी=मुसिदुःसमयकाश्चयन् सम्यक् कथयस्त=निश्चयया सोढवान्।

हाथ में लिये ग्रामरसदृश-कोतशाक आदि कुछ भी न बोलने वाले मगवान को चोर की आर्थका करके अर्थात् चोर समझ कर इन्कों का प्रहार करते उपसर्ग करके थे, परन्तु मगवान इन सभी उपसर्गों को सम्यग्-रीति से सहन करते थे। तथा-मगवान शूलोक्तसंबंधी मनुष्यादिकृष्ट तथा परलोकसंबंधी अर्थात् वैशादिकृष्ट अनेक प्रकार के अशुद्ध एवं प्रतिकूल शब्दों को, विविध प्रकार के भयानक पिशाच आदि के स्पर्शों को 'आदि' शब्द से दवांगना आदि के मनोहर स्पर्शों को, तरार-तरार की मुगध और दुर्गंध का, तथा अमनोन्न और उपलक्ष्य से मनोमत्त स्पर्शों को, सर्वत्र समितियुक्त हाकर, राग-द्वेष को त्याग कर, मौनभाव से-अपने सुल-दुःख को प्रकाशित न करते हुए, निबलक्ष्य से सहन करते थे। कभी-कभी ऐसा भी प्रसंग आता

[illegible]

तथा—कदाचित्—शून्यागारे=निर्जनगृहे राज्ञो कायोत्सर्गे स्थितं भगवन्तं—श्रीवीरस्वामिन कामभोगान् सेवितुकामाः परस्त्रीसहिताः एकचराः=जोरपुरुषाः समागताः पृच्छन्ति—‘कोऽसि त्वम्’ ? इति । तदा कदाचित् भगवान् श्रीवीरस्वामी न किञ्चिदपि वदति, किन्तु तूष्णीकः=मौनसहितः संतिष्ठते, तदा—तस्मिन् काले अवादके=अनुत्तरशीले भगवति=भगवन्तं प्रति, कुब्जाः=कृतक्रोधाः, रुष्टा=कृतरोषाः सन्तः नानाविधम्=अनेकप्रकारम् उपसर्गं कुर्वन्ति=यष्टिमुष्ट्यादिभिर्भगवन्तं ताडयन्ति, तमपि उपसर्गं भगवान्=श्रीवीरस्वामी सम्यक् असहत्=सोढवान् । कदाचित्=कस्मिंश्चित्समये—‘कोऽत्र’ अत्र—अस्मिन् स्थाने कोऽस्ति ? इति=एतत् पृष्ठः सन् भगवान् श्रीवीरस्वामी अवदत्=उक्तवान्—अहं भिक्षुरस्मि, इति=एतद्वचः श्रुत्वा सकपायैः=क्रोधादिक्रपायसहितैः तैः=जारपुरैः आहत्य=ताडयित्वा “इतः=अस्मात् स्थानात् अपसर=दूरं गच्छ” इति=एतत् कथितः=उक्तः सन् भगवान् ‘अथम्=ताडनादि-सहनरूपः उत्तमः=उत्कृष्टो धर्मोऽस्ति’ इति कृत्वा=इति ज्ञात्वा ततः तस्मात् स्थानात् तूष्णीकः=किञ्चिद्वदन्नेव निरसरत्=निर्गतवान् । तथा—यस्मिन् हिमवाते=शीतलवायुयुक्ते शिशिरे=शिशिरकृतौ प्रवेपके=शीतसंगलितत्वात्

किं भगवान् सुनसान घर में रात्रि के समय कायोत्सर्ग में स्थित रहते थे । व्यभिचारी पुरुष परस्त्री के साथ कामभोग सेवन करने के लिए वहाँ आते और भगवान् से पूछते—“कौन है तू ?” तब भगवान् कुछ उत्तर नहीं देते, मौन साधे रहते । तब कुछ भी उत्तर न देनेवाले भगवान् पर वे क्रोधित होते, रुष्ट होते और भगवान् को अनेक प्रकार से लट्टी मुट्ठी आदि से ताड़ना करते । उस उपसर्ग को भी भगवान् सम्यक् रूप से सह लेते थे । कभी किसी ने पूछा—“कौन है यहाँ ?” इस प्रश्न के उत्तर में वीर प्रभु ने कहा—‘म भिक्षु हूँ ।’ वह शब्द सुन कर वे जार पुरुष क्रोध आदि कपायों से युक्त हो जाते और ताड़ना करके कहते—‘दूर जा यहाँ से ।’ इस प्रकार कहने पर भगवान् सोचते—‘ताड़ना आदि को सह लेना उत्कृष्ट धर्म है ।’ और यह सौचकर वे चुपचाप, बिना कुछ कहे, निकल जाते थे ।

रीते, आत्मानि वातो करता होता । आथार=विद्यारैनुं पादन पशु पेतानी दृष्टि ओ ज करता, छातां शीतपरीषडने पशु सहन करवांमां दाथार होता । शीतपरीषडने सहन नहि करना आत्माओ, आहर आदि वस्त्रो, तथा मानव वसावट विनाना स्थेणानी शोधमा ज करता होता । कारषु ऊं तेओने देह दृष्टि गर्ध न होती

कैन धर्मना साधुओ सिवायना अन्यभागीं साधुओ, अग्नि विजोरे भगटावीने शीत साओ रक्षषु रेणवता कारषु ऊं तेओ शरीरते, आत्म-साधन भानता. ओने “देह रणो धर्म.” भानता ओटवे देहनु अस्तित्व डशे तो धर्म धर् शकशे. ओम तेओनी धारणा होती. आवाओवां भंतव्य, भगवानना आचारथी भुहुं तरी आवे छै, से

જનનાં પ્રકરણારકે મારુતે=શાયી પ્રવાતિ=પ્રવસતિ સતિ અત્યેકે=કેવિત્ત જનનારા=સાધવઃ નિર્વાતિ=વાપુરારિત
 સ્વાનય્ યયયતિ=ગેયેયન્તિ, અન્યે જનાઃ “સપાટીઃ=શ્રીતનિવારકશ્વસિયોપાન્ પ્રવેશ્યામઃ=મચિટાઃ મચિવ્યામ ”
 રિતિ=ત્સયં શ્રીતમીત્યા વદન્તિ=અસ્થન્તિ, એકે અન્યે વ મિસશઃ રૂપનાનિ=કાશાનિ સમાદાન્તઃ=અમ્નો પ્રવલપન્તઃ
 સન્વસ્તિશ્ચન્તિ, કેડંપિ “ચિરિતાઃ=સ્વાપચ્છાઃ અતિદુઃલ્પ=મદાશ્ચમ્યુ રિમકસંસ્પર્શ સચિત્તં શ્વશ્યામઃ=સમયો
 મચિવ્યામઃ” રિતિ શ્રોચન્તિ=મનસિ વિચારયન્તિ, તસ્મિન્ તાદ્રશ્ને=તયાપૂર્તે શ્ચિચિરે શ્રીસકાલે દ્રવિકા=મોક્ષામિલાપી
 મગવાન્=ગીચોરસ્વામી અપતિષ્ઠઃ=શ્વલોકપરમોક્ષમતિશારિતઃ સન્ વિકટે=શ્રીતમયયુકે અનાદ્યતે સ્થાને તત્=દુઃસહ
 શ્રીતં સમ્યક્ અધ્યાસ્ટ=નિષ્પચ્છયા સોદશન્ । “અન્યે=મદિતરેડપિ મુનપ=માધવઃ પવમ્=મદુશ્ચિતમકારેણ રિતશ્ચ=
 ચિદાન્તુ” રિતિ કુત્વા=રિતિ વિચાર્ય અપતિષ્ઠેન્=અધિશારિરેન્ મતિમતા=મેષાગ્નિના મગવતા=મીધીરસ્વામિના પવ=
 પૂર્વોક્તો વિધિઃ=માધારઃ વદુશ્ચ=વનેકુશઃ મદુકાન્ત=મદુશ્વતઃ=પાલિશઃ । ૨૭૦૧૧ ।

શ્રીતલ શાપુ સે શુકલ ચિચિર શ્વરૂ મે, શ્રીતલવા કે કારણ મનુષ્યો કો કેપકેપી ઉત્પન્ન કરસે વાલી
 રવા વલ્લવી યી । ઉસ સમય કિવને હી શાપુ વેસે સ્વાત્ત સ્લોમતે કિરતે ચે જાશી શાપુ કા પ્રવેશ ન હો ।
 કોર્ફ-કોર્ફ જન શ્રીત કી મીરિ સે કરતે વે-’શ્મ ઠો શ્રીત કો રોકને વાછે વક્ષ મેં શુબક જાર્યેને ।’ કોર્ફ
 લોગ આગ મેં રૂપન જલા જા રાપતે વે । કોર્ફ સોવતે વે-વક્ષ શ્રોદને સે હી મદાકટકર સર્વીં સહન કી
 ના સક્તી હે । વેસે શ્રીતલકાલ મેં મી મોક્ષ કે અમિકાપી મગવાન શ્વલોક-પરલોકસંવંધી સમસ્ત કામાનાઓં સે
 દૂર રા જર સર્વીં કે મય વાછે સુછે સ્થાન મેં ઉસ દુસ્સાર શ્રીત કો અક્ષલ માવ સે સહન કરતે વે ।

ઉપશૈષ્ઠ ઉપશૈષ્ઠો દાશ શહેકે બધી શકામ છે એને આત્મભાન અનુદ શ્વરૂ છે તેને આત્માની સ્વતન્ત્ર શક્તિ,
 સ્વ-પર પ્રમાણકોનાં અણુ જનતવીશ અને જનતશુબનો અનુભવ કર્તા, દેક જાન-શ્વર્ગ બાલ છે, ને કેવલ આત્મા,
 નજર શક્તિએ નિર્ભર શર્ષ, આગલ વધે છે

દેક રશા અને વ્યાપકશ્યા વધેજુ અતર, આકાશ-પાતાલ બેટલ દોષ છે એની દેહદષ્ટિ છે, તે બંને
 તેદલી ક્રિયાઓ કરશે, શરીરને સુખની નાબી ખાળ બનાવી રહે, તો પશુ, આત્મશક્તિ ન મંદિ થાય. પરંતુ એને
 આત્મશક્તિ શ્વરૂ છે નિજ સ્વભાવની એને પ્રિયશ્વ શર્ષ છે, જેણે વ્યાપકમાં રહેલ જનત મુખ્યો અને જનત વીશ
 ઉપર વિધાય મૂક્યો છે તે શરી પશુ શુદ્ધ ક્રિયા કરતો થઈ, નિજ નિવાશ ધામમાં પહોંચી શકશે.
 જનવાન તો નિજભાન ચાલે છલં ને જનવતર્ક કર્તા. એ ઉદ્દેશ આત્મભાન ને શાશ્વિત સમ્યક્
 રહેવામાં આવે છે, તે શુદ્ધજન. તો જનમાં જનવાનને શિદ્ધ બાતમાં શર્ષ બંધે. આવા ઉદ્દેશ આત્માના યાગને,

मूलम्—तथो भगव पुणोऽवि चित्तेह—“बहुय कम्मं मम निज्जयेन्व अत्थि, अओ अणारियवहुल लाढदेस वच्चाभि, तत्थ हीलणनिदणाईहिं बहुय कम्मं निज्जिस्सइ” चि कट्टु लाढदेसं पविसीअ । तत्थ पविस-माणस्स भगवओ मग्गे चोरा मिलिया । ते य भगवं दद्रण ‘अवसउणं जायं जं सुंढिओ मिलिओ, एयं अवसउणं एयस्स चेव वहाए भवउ’—चि कट्टु भगवं लट्ठिसुट्ठिपहारेहिं बहुसो हणिंसु । अह दुच्चरलाढचारी भगवं तस्स देसस्स वज्जभूमिं मुब्भभूमिं च समणुपत्ते । तत्थ णं से विरुवरूपाइं तणसीयेतयफासाइं दंसमसगे य सया समिए सम्मं सहीअ । पंत सेज्ज पंताइ आसणाइं सेवीअ । तत्थ भगवओ वहवे उवसग्गा समागया, तं जहा—लूहे भत्ते संपत्ते, जाणवया लूसिंसु, कुकुरा हिंसिंसु निवाडिंसु । अप्पा चेव उज्जुया जणा लसएण डसमाणे सुणए य निवारैति । वहवे उ “समणं कुकुरा डंसतु”—चि कट्टु सुणए छुछुकारैति । तत्थ वज्जभूमीए वहवे फरुसभासिणो कोहसीला वसंति । तत्थ अण्णे समणा लट्ठिं नालियं च गहाय विहरिंसु, तहवि ते सुणएहिं पिढभागे संलुचिज्जिंसु । अओ लादेसु दुच्चरगाणि ठाणाणि संति—चि लोए पसिद्धं, तत्थवि अभिसमेच्च भगवं ‘साहूणं दंडो अरुप्पणिज्जो’—चि कट्टु दंडरहिए वोसट्टकाए गामकडगाणं सुणगाणं च उवसग्गे अहियासीअ । संगामसीसे णागो व्व से महावीरे तत्थ पारए आसी । एगया तत्थ गामंतियं उपसंक्रममाणं अपत्तगाम भगवं अणारिया पडिणिक्खमिन्ता एयाओ परं पलेहिति कहिय लूसिंसु । हयपुव्वोऽवि भगवं पुणो पुणो तत्थ विहरीअ । तत्थ केइ अणारिया भगवं दंडेणं केइ सुट्ठिणा केइ कुंताइफलेणं केइ लेखुणा केइ क्वालेण हंता हंता कंदिंसु । एगया ते लुंचियपुव्वणि मंसूणि उट्ठंभिय विरुवरूपाइं परीसहाइं दाज्जणं कायं लुंचिंसु, अहगा पंसुणा उवकिरिंसु उच्छालिय णिहणिंसु, अदुवा आसणाओ रलइंसु, तहवि णयासे भयवं वोसट्टकाए अपडिन्ने दुक्खं सहीअ । एवं तत्थ से सुंखुडे महावीरे फरुसाइं परीसहोवसगाइं पडिसेवमाणे संगामसीसे सुरो व्व अयले रीइत्था । एस विही मइमया माहणेण अपडिन्नेण भगवया ‘एवं सव्वेऽवि रीयंतु’—चि कट्टु बहुसो अणुक्कंतो ॥सू०९२॥

‘मेरे सिवाय अन्य मुनि भी इसी प्रकार विहार करें-संयम की साधना करें’ ऐसा विचार करके भगवान् वीर स्वामी ने बारम्बार इस आचार का पालन किया ॥ सू०९१ ॥

विषयमा राथी रडेल विषयनो कीडा, डेवी रीते समल्ल शकै ? इप सुंढरीओना अलडलट इप आगण, पाह्य धन्दिथेना। उइशेराटनु लगवाने कइ शक्ति द्वारा, तेनुं शमन कथुं इशे ? आवा योग जेहे साधे। होय, अगर आवा योगभां ने भानता होय तेज आवा योगनुं पारथु करी शकै (सू०९१)

જનાનાં પ્રકરણારકે મારકેન્વાયૌ પ્રવાતિન્પ્રવશતિ સહિ અવ્યેકેન્કેચિત્ત્વ ઇત્યાગારાન્સપાત્ર નિર્વાતેન્વાયુરશિવ
 મ્યાનમ્ વપવન્તિન્ગેવેચન્તિ, ઇત્યે જનાઃ “સંઘાટીન્ધીતિનિવારકસાવિશેષાન્ પ્રવેસ્વામાન્અવિદ્યાઃ મધિવ્યામાઃ”
 રિતિન્સ્યં શ્રીયમીત્યા વદન્તિન્જલ્યન્તિ, એકે અન્યે ચ મિસ્યન્ ઇત્યન્નાનિન્કાણાનિ સમાદ્યન્તઃઅન્મૌ પ્રજ્વલ્યન્તઃ
 સન્તત્સિદ્ધાન્તિ, કેડપિ “વિશિતાન્વસ્ત્રાધ્ધમાઃ અતિદુઃલ્લેન્મદ્યાશ્ચયુ રિમ્યક્સંસ્પર્શં સચિંદ્રં શસ્ત્ર્યામાન્સમર્વા
 મરિધ્યામાઃ” રિતિ શ્રોતચન્તિન્અનસિ વિચારયન્તિ, તસ્મિન્ તાદૃશ્લેન્તથાપૂર્વે સ્થિરિરે શ્રીતકાણે દ્રવિકાઃમોસામિભાષી
 મગધાન્-શ્રીવૌરસ્વામી અમરિદ્ધઃશ્લોકપરભોક્તમિદ્વારશિતા સન્ વિકટેન્ધીતમયયુકે અન્નાદૃતે સ્થાને તત્ત્વન્દુઃસર્ગ
 નીતે સમ્યક્ પ્રખ્યાત્સ્તન્નિશ્ચય્યા સોદધાન્! “અન્યેન્મદિતરેડપિ મુનપન્સાવઃ વસ્ન્મદ્યુષ્ટિતપકારેષ ર્શતામ્
 તિરન્તુ” રિતિ કૃત્તાન્રિતિ વિષાર્ય અમરિદ્ધેન્અવિદ્યારિતેન મરિમતાન્મેષાર્ચિના મગધતાન્ધ્રીવૌરસ્વામિના વપન્
 પૂર્વોક્તો વિપિન્અપારઃ વદુષ્ઠન્અનેકશ્ચઃ મદુક્ષાન્તન્અદુલ્લઃપાલિઃ ।મ્૦૬૧।

શ્રીતલ વાયુ સે યુક્ત સિચિર જુહુ મેં, શ્રીતલ્લા કેં કારણ મદુખ્યૌં કોં કૈપકૈપી ઉત્પન્ન કરાને વાલી
 રવા વસતી વી। ઉસ સમય ક્રિતિને હી સાધુ વેસે સ્થાન ત્લોજરે ફિરતે વે જૌં વાયુ કા પ્રવેશ ન હો।
 કોઈ-કોઈ જન શ્રીત કી મીતિ સે કહતે વે-‘હમ તો શ્રીત કો રોકને વાળે વશ મેં દુવક કાર્યેને।’ કહ્યે
 ભોગ આમા મેં રૂપન તજા કાર તાપતે વે। કોઈ સોચતે વે-વશ ક્રોડને સે હી મદ્યાકટ્કર સર્વીં સહન કી
 ના સક્તી હૈ। વેસે શ્રીતલકાલ મેં મી મોષ કે અમિભાષી મગધાન્ શ્લોક-પરભોક્સંધી સમસ્ત કામનાઓં સે
 દુર તા કાર સર્વીં કે મય વાળે સુણે સ્થાન મેં ઉસ દુસ્સહ શ્રીત કો અવલ માવ સે સહન કરતે વે।

ઉપરોક્ત ઉપસંગે દ્વારા સહેલે બધી સઘામ છે તેને આતમભાન બાંધત થયુ છે તેને આત્માની સ્વતન્ન શક્તિ,
 સ્વ-પર પ્રકાશકર્ત્રાં યુક્ત જ્ઞાનતવીય અને જ્ઞાનવમુખનેાં અનુભવ કર્તાં, દેહ જ્ઞાનશ્ચાર્દ જાણ છે, ને કેવલ આત્મા,
 નિજ શક્તિને નિર્ભર કર્તા, આત્મ વધે છે

દેહ કયા અને આત્મશય વધેનું જ્ઞાન, આકાશ-વાતાળ નેટક કોષ છે તેની દેહકષ્ટિ છે, તે અને
 તેરલી પ્રિયાઓ કરશે, શરીરને મુશ્કેલી નાથી ખાખ જનાથી રહે, તે પશુ, આત્મશયન નહિ જાણ. પરંતુ તેને
 આત્મશય થયુ છે નિજ સ્વભાવની તેને વિષય કઈ છે તેણે આત્મામાં રહેલ જ્ઞાનવ મુખેાં અને જ્ઞાનવ શીય
 ઉપર વિશ્વાસ મુખેાં છે તે શરીર પશુ મુક ક્રિયા કરતો કરે, નિજ વિશ્વાસ ધારમાં પહેલી સક્રિય
 જમવાન તેા, નિજકાન બાંધે કાં ને ન જાનવામાં કર્તાં જે ઉત્કૃષ્ટ આત્મજ્ઞાન ને શાશ્વિત અમરજ્ઞાન
 રહેવામાં આવે છે, તે જામવાન, તેજ જાવનાં જામવાનને શિવ કાંતમાં કાઈ નથી આવા ઉત્કૃષ્ટ જ્ઞાનની વાગેને,

संप्राप्तम् । जानपदा अलूषयन्, कुकुरा अर्हिसन् न्यपातयन् । अल्पा एव ऋजुका जना लूपकान् दशतः शुनकाश्च निवारयन्ति । बहवस्तु “श्रमणं कुकुरा दशन्तु” इति कृत्वा शुनकान् लुच्छुकारयन्ति । तत्र वज्रभूमौ बहवः परुष-भाषिणः क्रोधशीला वसन्ति । तत्र अन्ये श्रमणा यष्टिं नालिकां च गृहीत्वा व्यहरन्, तथापि ते शुनकैः पृष्ठभागे समलुच्यन्त, अतो लटेषु दुश्चरकाणि स्थानानि सन्तीति लोके प्रसिद्धम् । तत्रापि अभिसमेत्य भगवान् ‘साधूनां दण्डोऽकल्पनीयः’ इति कृत्वा दण्डरहितः व्युत्सष्टकायौ ग्रामकण्टकानां शुनकानां चोपसर्गान् अध्यास्त । सङ्ग्राम-शीर्षे नाग इव स महावीरस्तत्र पारक आसीत् । एकदा तत्र ग्रामान्तिकमुपसंक्रामन्तमप्राप्तग्राममनार्याः प्रतिनिष्क्रम्य

सेवन किया । वहाँ भगवान् पर बहुत उपसर्ग आये । जैसे-वहाँ लूखा भोजन मिला, वहाँ के लोगोंने मारपीट की, कुत्तोंने काटा और नीचे गिरा दिया । कोई बिरले सीधे लोग ही मारने वालों को और काटने वाले कुत्तों को रोकते थे । बहुतेरे तो यही सोचते थे कि इस श्रमण को कुत्ते काटें तो अच्छा, ऐसा सोच कर वे कुत्तों को लुञ्कारते थे । उस वज्रभूमि में बहुत-से लूखा बोलने वाले और क्रोधशील लोग रहते थे । दूसरे श्रमण वहाँ डंडा और लाठी लेकर बिचरते थे, फिर भी कुत्ते उन्हें पीछे से नोंच लेते थे अत एव लोह में यह बात फल गई थी कि लाट देश में ऐसे स्थान हैं, जहाँ चलना कठिन है । वहाँ जाकर भी भगवान् ने ‘साधुओं को डंडा रखना कल्पता नहीं’ ऐसा सोच कर बिना डंडा काया की ममता त्याग कर दुर्जनों और श्वानों के उपसर्गों को सहन किया । संग्राम के बीच भाग में हाथी की भाँति महावीर प्रभु उन उपसर्गों के पारगामी हुए ।

रहा होता । आ देशभ, प्रभुने अशुचिंतय्य हुं पो उत्पन्न थया । अहि आहार दुष्णो-सुच्छो अत प्रात भगतो । अडीना दोडो भारपीट धण्णु करता । न'गदी उधीया कुतराओने भगवान् उपर छोडी भूकता । आ कुतराओ, तेभने करडी नीच पट्टी देता । डोह' विरदा पुरुषो न कुतराओने छडी डाढता । भाडी तो कुतराओने सीसकारी, भगवाननी पछवाडे होडावता अने छटा भूकता । धण्णु अनार्यो तो ओम पण्णु डहेता के, आ नवतर भाणुस कथाथी आन्यो छे ? माटे तेने अहिंथी डाढा-रवाना करे । आ वण्णभूमिमा दोडो करडी भाषा जोवता छता; तेभन वात वातमां ओधे भरार्ह उडा उडाववाणा छता । अहिं न गदी कुतराओ तेभन पाणेदा कुतराओ, विपुल प्रभाणुमा हण्टोवायर थता छतां तेथी श्रमणो अहिं उडा-दाडडी साथे बिहार करता छता । तो पण्णु कुतराओ तेभने करडी पगमांथी भांसना दोया डाढी नाथता । आ कारण्णे दोडोमा ओवी वात प्रयवित थर्छ छती के, लाट देशमां विसर्पुं धाणुं कडण्णु छे ।

भगवान् आईं आवा विकराण प्रदेशमां आव्या छता दाडडी-डंडा बिजरे डार्ह पण्णु राणता नछि । तेओपुं मतव्य ओपुं छतु के ‘साधुओने दाडडी-डंडो अंध पण्णु राणपु कटपुं नथी उंओ आहि राण्ण्य वगर आ बिहार-

‘एतस्मात् परं प्रमाणम्’ इति कृतयित्वाञ्चरयन्। एतत्पूर्वोऽपि भगवान् पुनः दुनस्तत्र व्याहरन्। तत्र केचित्तानां भगवन्तं दृष्टेन कोऽस्मिष्टिना केचित् दुन्यादिफलेन केचित् सोऽनेन केचित् कृपाधेन इत्या इत्या अकन्दन्। एषा ते लुम्बितपूर्वाणि त्रयश्रुणि अष्टम्य शिष्यरूपान् परीपहान् इत्या कायमनुष्ठान्, अथवा पांमुना उपा डक्षित्नु उच्छत्य न्यग्रन्, अथवा भाग्य-प्रस्तस्यन्, तथाऽपि प्रणताशो भगवान् व्युत्पत्तायोऽप्यतिदो दु त्वम सत। एवं तत्र स संद्वो महावीरः एषान् परीपहोपसर्गान् प्रतिसेवमानः मरुत्प्राग्नीये शूर इव अवल एवे। एष विधि मतिमता माहनेन अप्रतिषेधेन भगवता ‘एव सर्वेऽपि ईशान्’ इति कृत्वा बहुनोऽनुकान्त ॥२०१२॥

एक समय मगवान गौब के समीप पहुँचे और गौब में पहुँच भी नहीं पाय कि अनाय लोक वहाँ निकास-निकास कर 'साग जालो यहाँ से दूर' ऐसा कह कर मारने लगे। जहाँ मगवान पर पड़े मगार किया गया था, वहीं मो के पुनः पुनः विहार करते थे। वहाँ कोई अनाय मगवान का हँसे, कोई मुड़ी स, कोई माछे मारि से, कोई मिट्टी के डेले स और कोई ठोकरियों से मार-मार कर स्वयं चिड़ते थे। कमी के पहले नीची हुई मूछों को पकड़कर, नाना प्रकार के परीण्ड देकर शरीर को नीचते थे, अथवा मगवान को घूम से मार देते थे, ऊपर उछाल कर पटक देते थे, अथवा आसन से पका देते थे, तथापि निर्जरायों मगवान कायकी मयता त्याग कर तथा अप्रतिष्ठ होकर दुगनों को सहन कर छेते थे। इस प्रकार मगवान भूमिभिं लभवान विवस्ता। हवा, गरुड के तेमछे देहनी भयतये त्याग हवो हवा। आधी तेजा। दुगने। अने आनोना हउये सहन करय तपर यथा हवा लेम स आभर्मा हाथी आभरे होय छ तेम लभवान छपयजे। इपी स आभर्मा आनन रही सहेहनेभां पायभाभी लनी नया हवा।

હાઈ કોર્ટ સમયે ભરવાન હાઈ કોર્ટ ચામની નજીક પહોંચ્યા. આમમાં તે પૂરેપૂરા પહોંચ્યા પછી ન હતા ત્યાં તે બનાઈ દોઢા સપાટાઈ બહાર નીકળી ' આલે બા-આલે બા ' વિગેરેના પોકારો પાઠવા લાગ્યા. જુમ બગાડની સાથે લાકડીઓના માર પછી આરના લાગ્યા, બન્ને જ્યાં તેમને ખાસથી ઘસા હતા ત્યાં ત્યાં ફરીથી તેઓએ વિકાર કરવો ચડ્યો. બાની કઠોર ભૂમિમાં ભરવાનને શંક, સુઝી, ભાલા, ફળ, ડેઈ, ડીકસ વિગેરેથી મારી-મૂટી તેમને. ફરીથી ' ભેલાવતા હાઈ હાઈ ' થત તે તેમની પશ્ચી મુઠિને પછી બાળા ઘસીને નીચે વાળી ચૂસ્તાં. ક્યારેક ક્યારેક તેમની ઉપર ફૂલ ફૂલ ભાડી તેમને ફૂળથી નવરાની મૂડવા વળી થત કાચથી તેમને બાળા ને બાળા ઉપડી નીચે પડત્યા. તેમને શંખોરોની ફરી કર ફેડવા બંને ઊભવાની બગાડો પછી ચિત્તવા દેવા નહિ. બા જમું હોવા છતાં ભરવાન બાઈના પોશાકની ચકી તપાસ ચકન કરી જતા હતા. તેઓએ તે ચમત્કર્ય પ્રમતાને ત્યાં

कजुकाः=कोमलप्रकृतिका जनाः लूयकान्=ताडमान् दशतः=दन्तैः प्रशुशरीरं विदारयतः शुनकान्=कुक्षुरांश्च निवारयन्ति=ताडनाद् लूयकान्, दशनात् कुक्षुराश्च प्रतिषेधयन्ति । वहवो जनान्स्तु “अमणं कुक्षुरा दशन्तु” इति कृत्या=इति विचार्य शुनकान्=कुक्षुरान् लुछुकारयन्ति=भगवदुपरिसमाक्रमणाय प्रेरयन्ति । तत्र=तस्या वज्रभूमौ वहवो जनाः=परुषभाषिणः=कठोरभाषणशीलाः, क्रोधशीला=क्रोपस्वभावाः वसन्ति । तत्र-लाटदेशीयवज्रभूमौ अन्ये श्रमणाः=शाक्यादयः श्वभयनिगरणाय यष्टि=दण्डं नालिकां=स्वशरीरप्रमाणाच्चतुर्भुलाधिक दण्डविशेषं च गृहीत्वा न्यहरन्=विहृतवन्तः, तथाऽपि ते श्रमणाः, शुनकैः=कुक्षुरैः पृष्ठभागे पश्चाद्भागे समलुच्यन्त=सन्दृष्टा अभवन्, अतः=अस्मात् कारणात् लाटेपु=लाटदेशीयप्रदेशेषु स्थानानि दुश्चराणि=दुर्गामीणि सन्ति, इति लोके प्रसिद्धम् । तत्रापि=तथाभूते लाटदेशेऽपि अभिसमेत्येय=गतत्वा भगवान् ‘साधूना दण्डः अकल्पनीयः’ इति कृत्वा=इति विचार्य दण्डरहितो व्युत्पृष्टकायः=त्यक्तदेहममत्वं, ग्रामरूढकानाद्=दुर्जनानां शुनकानां=कुक्षुराणां च उपसर्गान् अर्थास्त=निश्चलतया सोढवान् । सङ्ग्राम-शीर्ये=रणमूर्धनि नाग इव=हस्तिवत् सः=श्रमणो भगवान् महावीरः तत्र=उपसर्गविषये पारकः=पारकर्ता आसीत् ।

ऐसा सोचकर कुत्तों को लुछकारते ही थे-काटने के लिए उत्साहित ही करते थे । अधिकांश लोग उस वज्र-शुश्रूषमि में रहस और कठोर बोल ही बोलते थे, और स्वभाव के क्रोधी थे । लाट देशकी उस वज्रभूमि में बौद्ध आदि श्रमण कुत्तों के भय से बचने के लिए डंडा लेकर और यष्टि अर्थात् अपने शरीर के प्रमाण से चार अंगुल लम्बी लकड़ी लेकर चल्ते थे, फिर भी कुत्ते पीछे की तरफ से उन श्रमणों को नौच लिया करते थे । इस कारण यह बात प्रसिद्ध हो गई थी कि लाट देग में ऐसे स्थान हैं, जहाँ चलना बड़ा कठिन है । ऐसे लाट देश में भी जाकर भगवान् ने कभी डंडा नहीं लिया । उन्होंने विचार किया कि डंडा धारण करना साधुओं को कल्पता नहीं है । भगवान् तो देहकी ममता से रहित होकर दुष्टजनो और कुत्तों के

विचारने इतराओने सिसकारता होता=इरडाववाने भाटे उडेरता होता अने ते वज्रशुश्रूषमिनां मोटा लागना बोडो ते । कठोर वयने । न जोलता होता अने स्वभावये घण्णा न क्रोधी होता । लाट देशनी ते वज्रभूमिमां गौद्ध आदि श्रमणो इतराओना लथथी भयवाने भाटे उडो लधने तथा यष्टि जोटवे के पोताना शरीरना भाथथी चार आंगण लांथी लाडडी लधने चालता होता, तो पण इतरा पाछणनी गण्णुओथी श्रमणोने इरडता होता ते डारखे आ बात प्रसिद्ध थर्ध गार्ड होती के लाट देशमा ओवी नञ्जाओ छे के नञ्जा चालवुं पण्णु मुश्केल छे, ओवा लाट देशमां नधने पण्णु लगवाने डडी उडो पासे राओथे नछि । तेभण्णे विचार कर्यो के उडो धारण करवे साधुओने डकपते । (अपते) नथी । लगवाने तो डेडुनी भभता विनाना थधने दुष्ट बोडोके अने इतराओ वाडे कराता उपसर्गो सहन करता होता । नेम हाथी

अवतुःप्रवृत्त" इति कृत्यान्वयि मनसि विचार्य भगवन्-श्रीवीरस्वामिनो, यष्टियुष्टिपरायैः वृत्तुषाः॥अनेकल' भग्नन्-
 इत्यन्तः। अयःअनन्तरम्, दुष्प्रकृष्टचारी=दुर्गमकाटदेवअवितातो श्रीवीरस्वामी तस्य वेष्टया वज्रधूमि-वज्रधूमि
 नामकं प्रवेष्ट, धुञ्जधूमि=धुञ्जधूमिनामकं प्रवेष्टं च समनुयासः=यन्त्रक्रमेण विहरन् गतः। तत्र-काटदेवीवज्रधूमि-
 धुञ्जधूम्योः तस्य सः भगवान् श्रीरस्वामी विरूपरूपान्=अनेकप्रकारान् वृष-श्रीट-वेजः-स्पर्शान्, तप-वृषस्य=
 दर्भावे, व्रीतस्य=विमल, तत्रस=उत्पत्त्य च यं स्पर्शोस्तान्, व=वुन-वैष्णवभक्तान् समिव=अभिमित्युक्तः सन्
 सदा=सर्वदा सम्यक् यततःसोभवान्। तपा-वान्वाप=चरितारासुखभक्तिकां कथ्यां, मान्वाणि आसनानि च असेवत।
 तप-नाटदेवीव-वज्रधूमि-धुञ्जधूम्यो, गतस्तः=श्रीवीरस्वामिन वरव उपसर्गः समागताः=समुत्पन्नाः तपया-
 "तत्र भगवता स्तो=स्त्रीस भक्त्य=अक्षनादिकं संगमस्य=लब्धम्। जानपदा=नाटदेवीतप्या जना भक्त्युपन=

यष्टियुष्टिपरायिनाज्जाहपन्, तपा-कुपुताः अतिसन्,=अध्वर, न्यापयन्=निपातितवन्तव । अस्या =रुतिपय एव
 श्रीवीर वृत्तु को गार-गार यष्टि और कुष्टि से भारा। वर सब उपसर्ग भगवान् ने सम्यक् प्रकार सं सन किये।
 इसके बाद दुर्गम काट देव में विहार करने वाले भगवान् क्रमशः काट देवकी वज्रधूमिनामक प्रवेष्ट में तथा धुञ्जधूमि
 नामक प्रवेष्ट में प्यारे। उस वज्रधूमि और धुञ्जधूमि में भगवान् महावीर स्वामीन अनक प्रकार कै कौंटों
 आदि के तपा स्पर्श और गर्मी के एवं वैष्णवभक्त आदि के कष्टों को समित्युक्त होकर, सम्यक् प्रकार से निरन्तर
 सन किया। उहीने करीर को कष्ट पहुँचाने वाले स्वामी में निवास किया, और कष्ट कर आसनों का सेवन
 किया। उस काट देवकी वज्रधूमि एवं धुञ्जधूमि में भगवान् महावीर स्वामी को बहुत उपसर्ग भये।

नैस-वही भगवान् को रुग्ण मृत्ता आहार मिला। भग्न के लोगीन भगवान् का स्त्री-वृद्धी आदि से ताकन
 किया। महावीर को कुपेने क्षान् और नीच पत्नक दीया। वही के अधिक लोग तो, 'कुपे इस धमरा को काटे,'

उ जेभ निखा रीते कोरेको श्री भग्नने उपसर्गवरी लक्ष्मीको तथा अक्षरापुटने भार भयो। भगवान् तो ग्राम मनभाव
 नकर भयो त्वारन्तर दुर्गम काट देवमां निकार करवा भगवान् इत्यतः काट देवता वज्रधूमि नामका प्रवेष्टमां तथा
 धुञ्जधूमि नामका प्रवेष्टमां पधार। ते वज्रधूमि तथा धुञ्जधूमिमां भगवान् महावीर स्वामीको अनेक प्रकारमा अंदा
 आदिमा हो ज्येने अरभीमा शर-भक्त्य आदिना सरेने अनित्युक्त यजने सम्यक् प्रकारे निरन्तर सन करी तेमवे
 करीने १८ प्रवेष्टाकार स्थानमां निवास करी ज्ये अन्तरादी आकलनेने उपपन्न राख्यो। ते काट देवकी वज्रधूमि
 जने धुञ्जधूमिमां भगवान् महावीर स्वामीने वज्र उपसर्ग वरवा।

नेम है तो भगवान् ने वज्र-वज्र आकार उपकरी काटने जे हे जे भगवान् ने काटरी तथा सुदी नरे भावा
 १८ प्रवेष्टाकार स्थानमां ज्ये नीम पकरी नामका लोका ज्यो कोरी ते भग्न नरे ज्ये भगवान् ने करी करी

उच्छात्य=ऊर्ध्वनीतिवा न्यघ्नन्=अताडयन् अथवा=अथ च ते भगवन्तम् आसनाव् अस्वलथ्यन्=पातितवन्तः, तथापि=पूर्वोक्तोपसर्गोप कृतेष्वपि प्रणताशः निःस्पृहो भगवान् व्युत्पद्यमानः-त्यक्तशरीरमोहः अप्रतिज्ञः-उल्लोक-परलोका-प्रतिज्ञावर्जितश्च सन् दुःखं=वेदनाम् असह्यत=सोढवान् । एवम्=अनेन प्रकारेण स भगवान् संवृतः=संवरयुक्तः सन् पुरुषान्=कठोरान् परीपहोपसर्गान्=शीतादिपरीपहान् मानुषादि कृतानुपसर्गश्च प्रतिसेवमानः सङ्ग्रामशीर्षे शूर इव अचलः=स्थिरः सन् एतं=विहार कृतवान् । एषः=अयं त्रिधिः=कल्पो मतिमता=बुद्धिमता माहनेन=‘माहन’ इत्युपदेशकेन अप्रतिज्ञेन=प्रतिज्ञारहितेन भगवता-श्रीवीरस्वामिना “एवं=मद्वत् सर्वेऽपि साधवः ईरतां विहरन्तु” इति कृत्वा=इति विचार्य बहुशः=अनेकशः अनुक्रान्तः=अनुसृतः-पालित इति ॥मू०९२॥

मूलम्—तए गं भगव रोगेहिं अपुडेडवि ओमोयरियं सेवित्था । अहय सुणगदंसणाईहिं पुडेवि, कास सासाइएहिं रोगेहिं अउडे वि भाविपकाए णो से तेइच्छ साइजीअ । भगवं संसोहणं वमणं गायकभंगणं सिणाणं संवाहणं दंतपक्क वालणं च कम्मबंधण परिणाय नो सेवीअ । गामधम्मआओ विरए अवाइ माहणे रीइत्था । सिसिरम्मि

कर देने थे । अथवा धूलि से आच्छादित कर देने थे । अथवा ऊपर उछाल कर ताड़ना करते थे, अथवा आसन से नीचे गिरा देने थे । इतने सब उपसर्ग होने पर भी निःस्पृह-शरीर के प्रति निर्मम और इहलोक-परलोक संवर्धो प्रतिज्ञा-कामना से वर्जित प्रभु उस वेदना को सहन करते थे । इस प्रकार भगवान् ने संवर-युक्त होकर कठोर शीत उष्ण आदिकी परिपहों तथा मनुष्यादिकृत उपसर्गों को सहन करते हुए, संग्राम के अग्र-भाग में शूर पुरुष के समान, स्थिर भाव से विहार किया । इस विधिरूप का मतिमान् ‘माहन’ अर्थात् किसी को कष्ट मत दो, इस प्रकार का उपदेश देने वाले तथा अप्रतिज्ञ भगवान् महावीरने ‘मेरे ही समान सब श्रमण आचरण करें’ ऐसा विचार कर बार-बार पालन किया ॥मू०९२॥

त्रिविध प्रक्रान्ता कष्टो पडोयाइत्ता इत्ता. शरीरनुं निहारयु करता अथवा धूयथी आच्छादित करी देता इत्ता. अथवा उथय्थी उछणीने भारता इत्ता अथवा आसन परथी नीचे पाडी देता इत्ता आटला अथा उपसर्गो थया छतां पणु निस्पृह, शरीर प्रत्ये निर्मम अने छुडोडि-परलोडि संबंधी प्रतिज्ञा-कामनाथी रहित प्रभु ते वेदनाने सहन करता इत्ता आ प्रमाणे लगवाने संवरवाणा थधने, कठोर डडी-गरमी आदिना परीपडो तथा मनुष्यादि वडे करायेला उपसर्गोने सहन करता इत्ता सअमना अअलागमा रहेल वीर पुरुषनी नेम स्थिर लावे विहार कथो. “माहन” अटले डे डेअधने पणु न छेलो अयेला उपदेश आपनार तथा अप्रतिज्ञ भगवान् महावीर “भारी नेमअ अथा श्रवणु आचरण करे” अणुं विचारीने बार बार ते कल्प (विधि)नु पादन कथुं. (सू०९२)

पक्षरा=एकस्मिन् समये तत्र=वाटवेदुर्गधूमौ, ग्रामान्तिष्ठ=ग्रामसमीपम्, उपसंक्रामन्त्य=उपगच्छन्त्य
 भ्रमसंग्रामम्=भ्रमरिगतशय भ्रमरन्त्य, अनार्यो=मच्छेच्छा' प्रतिनिज्जम्प=वदग्रामाभिगृह्य "एतस्मात् स्थानात्
 परे=दूरे पन्थायस=नोष्ठ पराटस्थ गच्छ' इति=एतद्वचनं कथयित्वा प्रद्वययन्=गृष्टिगृष्टपादिभिर्हितन्तः। इतपूर्वोऽपि
 भ्रमरान् दृश्यलप्यार्थं पुन पुनः शार् शार् सप्र=साटवेदं व्यहारत्=भ्यवरत्। तत्र=साटवेदो केचिदनायां दण्डेन,
 क्वचिद् दण्डेन, कस्मिन् कुन्नादिफलेन=कुन्नादिद्विषाप्रयोगेन, केचित्=आटन=मुत्पापापादिसंग्रहेन, केचित्
 क्वायेन=तपरेण भ्रमरन्त्य इत्या इत्या आकन्दन्=कोलाहलमकुर्वन्। एकदा ते भ्रमरतो छुश्चितपूर्वभि=रु-
 नुश्चिगानि स्मथूणि=हूर्चलि अचटभ्य=भ्रमरकम्प्य विरूपरूपान्=भ्रमररूपान् दृग्भ्रान् परीपशान् दृष्ट्वा कार्य=
 नारीम् द्यदृष्टन्=निदरातिवन्, अथवा=अथ व पाशुना=पुल्या उपाकिरन्=पक्ष्यादितवन्तः, तथा ते भ्रमरन्त्यम्

लिय दूरे उपसर्गों का सहन करते थे। जैसे हाथी संग्राम के मोर्चे पर आगे ही बढ़ता जाता है, उसी प्रकार
 भ्रमरान् महावीर प्रभु भी आगे ही बढ़ते गये और उपसर्गों के पारगामी हुए।

एक बार मानदेव की दुर्गम भूमि में ग्राम के समीप पहुँचते हुए, किन्तु ग्राम तक न पहुँचे भ्रमवान् का
 दरकर म्हेच्छ माग गाँव से बहार निकल कर 'इस जगह से दूर माग जाओ-यहाँ से सौट जाओ' इस
 प्रकार दह दह कर भ्रमवान को यष्टि और मुष्टि आवि से धारने लगे। नहीं पड़े भ्रमवान् पर प्रहार हुए थे,
 उहाँ स्थानों में भ्रमवान् कर्मी का लय करने के लिये बार-बार विचरते थे। उस साटवेद में कोई अनार्य
 टंटे सं, कोई पूसे सं, कोई माछे आदि शूबों की नौक से, कोई मिट्टी के वेछे से और कोई पत्थर से
 और कोई ठीकरों से भ्रमवान को मारते और कोलारम करते थे। कमी-कमी से पड़े नौची हुई-मुँछों की
 जगह उपस्र छीनीर मुँछों को मीच-सीच कर भ्रमवान को नाना प्रकार के कष्ट देते थे। दूरीर का विदारण

बुढ़ना भित्तये आत्रण व पथतो अथ छि तेभ भ्रमवान पञ्च आत्रण पथता यथा अने उपसर्गोना पारत्रापी यथा
 कोर वभट वाट देयनी दुर्गम भूमिमा केरि कोर माभवा श्रीभाटे प्रभु पथेयमा. पछोकिता वेतल अत्र
 पानमे कोरने गेवमठ दोम आभवापी अकार नीहनीने ' अदीपी दूर कापी अन्ने अदीपी पाछा देय ' कोम
 इदीने वाइपी अने भुलि आदि नटे भारवा वायवा अर्था पछोकां भ्रमवान पर प्रकाशे यथा देय, कोर स्थानाभ
 भ्रमवान भिदिना लम इयथा अने बारवार विचरन्त देता ते वाट देयमां केरि अन्नाए देवापी तो केरि अदवापी
 केरि कावा आदि वाओपी अन्नेपी तो केरि आदीना देवापी केरि पञ्चकपी, तो केरि देवावापी अन्नेवाने भारवा
 अने भिडाकम इयता देय केरि केरि बार तेमो देयम इयता अर्था इदीपी अन्नेपी हो अन्ने तेमो अन्ने अन्ने नने

उच्छात्य=ऊर्ध्वनीत्वा न्यग्रन्=अताडयन् अथवा=अथ च ते भगवन्तम् आसनात् अखलयन्=पातितवन्तः, तथापि=पूर्वोक्तोपसर्गेषु कृतेष्वपि प्रणताशः निःस्पृहो भगवान् व्युत्पष्टक्रायः-त्यक्तशरीरमोहः अप्रतिज्ञः-इहलोक-परलोक-प्रतिज्ञावर्जितश्च सन् दुर्बल=वेदनाम् असहत्=सोढवान्। एवम्=अनेन प्रकारेण स भगवान् सततः=संवरयुक्तः सन् पुरुषान्=कठोरान् परीषोपसर्गान्=शीतादिपरीपहान् मानुषादि कृतानुपसर्गाश्च प्रतिसेवमानः सङ्ग्रामशीर्षे शूर इव अवलः=स्थिरः सन् एतै=विहार कृतवान्। एषः=अयं विधिः=कल्पो मतिमता=बुद्धिमता माहनेन=‘माहन’ इत्युपदेशकेन अप्रतिज्ञेन=प्रतिज्ञारहितेन भगवता-श्रीवीरस्वामिना “एवं=मद्वत् सर्वेऽपि साधवः ईरतां विहरन्तु” इति कृत्वा=इति विचार्य बहुशः=अनेकशः अनुक्रान्तः=अनुसृतः=पालित इति ॥मू०९२॥

मूलम्—तए णं भगव रोमेहिं अपुट्टेवि ओमोयरियं सेवित्था। अहय मुणगदंसणाईहिं पुट्टेवि, काम सासाइहिं रोमेहिं अट्टे वि भाविपराए णो से तेइच्छ साडज्जीअ। भगवं संसेहेणं वमणं गायवंगणं सिमाणं संवाहणं दंनपम वालणं च कम्मवंधण परिणाय नो सेवीअ। गामधम्मामो विरए अवाई माहणे रीट्ठथा। सिसिरम्मि

कर देने थे। अथवा धूलि से आच्छादित कर देने थे। अथवा ऊपर उछाल कर ताड़ना करते थे, अथवा आसन से नीचे गिरा देते थे। इतने सब उपसर्ग होने पर भी निःस्पृह-शरीर के प्रति निर्मम और इहलोक-परलोक संबंधी प्रतिज्ञा-कामना से वर्जित प्रभु उस वेदना को सहन करते थे। इस प्रकार भगवान् ने संवर-युक्त होकर कठोर शीत उष्ण आदिकी परीपहों तथा मनुष्यादिकृत उपसर्गों को सहन करते हुए, संग्राम के अग्र-भाग में शूर पुरुष के समान, स्थिर भाव से विहार किया। इस विधिकल्प का मतिमान् ‘माहन’ अर्थात् किसी को काट मत दो, इस प्रकार का उपदेश देने वाले तथा अप्रतिज्ञ भगवान् महावीरने ‘मेरे ही समान नव श्रमण आचरण करें’ ऐसा विचार कर बार-बार पालन किया ॥मू०९२॥

(विधि प्रदाना कष्टे पड्याडता इता शरीरन्नुं विहारणु करता अथवा धूणथी आच्छादित करी देता इता. अथवा उथकी उछणीने भारता इता अथवा आसन परथी नीचे पाडी देता इता आटला अथा उपसर्गो थवा छातां पथु निस्पृह, शरीर प्रत्ये निर्भम अने इहलोक-परलोक संबंधी प्रतिज्ञा-कामनाथी रहित प्रभु ते वेदनाने सहन करता इता आ प्रमाणे भगवाने सवरवाणा थधने, कठोर ठडी-गरमी आदिना परीषेडा तथा मनुष्यादि वडे करायेला उपभोगीने सहन करता करता स अभना अग्रभागमा रहेला वीर पुरुषनी जेम स्थिर भावे विहार कथो. “माहन” ज्येठले के डेगधने पथु न लथो ज्येठो उपदेश आपनार तथा अप्रतिज्ञ भतिमान् भगवान् भडावीरे “भारी जेमज अथा शवथु आचरणु करे” ज्येठुं विचारीने वारवार ते कल्प (विधि)नु पादन कथुं. (सू०९२)

भगव छायाए आसीने झाईअ। गिहरे य आयावीअ, भायावे य उठुइए अन्हीअ। अः य भगवं ओयण
 : पुं कुम्मासं घेयाणि विणिग लूहाणि सीयल्लणि पढिसेत्थिअ अट्टमासे जाव इत्या। सुओ य भगव अट्टमासं
 मास साहिण दुवे मासे छम्मासे य अट्टमा इयं परिहाय राजोवराय अपठिने विहरित्या, पाणणेगीणि गिगण
 मन्तुं हेजित्या। एगया कयाचिं छट्ठेअ कयाचिं अट्ठेअणं वसमेणं दुवालसमणं समाहिं पेयमाणे अपठिन्ने भगव
 सुजित्या। यथा य स महावीरेणो वेव पावगं सयमकासी, अन्नेहिं वा णो कारित्या, करंतिणि णाणुनाणित्या।
 नाम जगारं वा पटिस्स भगव पट्ठाए कढे वासमेसित्या, सुविमुदत्तगेसिय आययमोगयाए सेवित्या। भिक्षु
 यरियाए भग्गे वेव माससए रमेसिगं सवे चासेसणाए चिद्धवे पेहाए सयंतामो निरत्थीअ, अय य पुरम्भो
 ठियं समणं वा माणं वा गामपिठोळगं वा अविहिं वा सोचागं वा पेहाए गिचट्टमाणे अप्पत्तियं परिहरंते
 अरिसमाणे सया समिए मंदं मंदं परक्कमिय अवरय वासमेसित्या। सुयं वा अयुःय वा उल्लं वा सुक्क वा
 सीयपिठं पुराणकुम्मासं अट्टमा पक्कस पुलगं वा जं हिचि लद्धं तं भारित्या, लद्धे वा अक्खे वा पिठे दत्तिए
 समभावेअ रीइत्या। उठुइयाए आसणत्थे भगवं अट्ठुए अपठिन्ने उट्ठमासतिरियकोयसकं समायिय झणं
 झइत्या। छउमत्थेचि भगवं अट्ठमासं विगयेवीं सररुवाईं सुअमुच्छिए विपरक्कमाणे सपि पमाय णो कुडिइत्या।
 आयसाहीए भायतमोर्गं सयमेव अयिसमागम्म भमिणियुवे अवक्कं अम्माछे भगव समिए आसी। एत्तो
 चिदी भरमया माहेणए अपठिन्नेण भगवया “अण्णेणि सुणिणो एव रीपु” ति कट्टु बहुसो अणुक्कंत्तो ॥२०९॥

छाया—उठु इच्छ भगवान् रोगैःस्पृष्टोऽपि अवमोदरिकं सिपवे। अथ च शुनक्रवनादिभिः स्पृष्टोऽपि
 फालाशलादिदै रोगैःस्पृष्टोऽपि भावित्रज्जया नो स वैकित्त्यमसादयत। भगवान् संशोचन वपनं गात्राभ्यङ्गनं
 स्नानं सत्राहनं इत्यन्तान्न वा कर्मवचनं परिहाय नो असेपथ ग्राम्यप्रभोदं विरतोऽतादी मानं वेदं। शिशिरे च

मूत्रं का अर्थ—‘तप न’ इत्यादि। तस्यान् भगवान् न रोगां स अस्पृष्ट होकर भी ऊनाकर तप का
 संन किया। इसके अतिरिक्त भानद्वान् भादि से स्पृष्ट होकर ओ और भ्याम खासी आदि रोगों से स्पृष्ट
 न होकर मात्री रोगकी आच्छा से भी भगवान् ने चिकित्सा नहीं करवाई। मयादय का संशोधन, यमन,
 मामिह, स्नान, मर्दन, और वृंतवाचन को कर्मवचन का कारण मानकर सेवन नहीं किया। भैयुन से वित

भेदने अथ—‘तप न’ किंवादि अत्रान्नं शैलभयं न कृत्वा, छत्वा छिडाही तपन् तेभोने आराध नं भूय आ
 शिवाय तेभने भूतप्राप्ते। आसी कत्थ नो कतिअभां जेइ जे न भदी अथ आ आनवाही तेषअ आअ हास आदि जेइ पण
 ऐवे कत्थ नइ पण अतिअभां शैल न वाच ने अथ हासी पण हासी किं विजिअ तेभवे इति पण भरानी नइ

भगवान् छायायामासीनोऽध्यायत्, ग्रीष्मे च आतापयत्, आतापे च उत्कृष्टक आम्त । अथ च भगवान् ओदनं मन्थुकुश्माप चैतानि त्रीणि रूक्षाणि शीतलानि प्रतिसेव्य अष्टमासान् अयापयत् । ततश्च भगवान् अर्द्धमासं मासम्, साधिकौ द्वौ मासौ पण्मासांश्च अशनादिकं परिहाय रात्र्युषात्रमप्रतिज्ञो व्यहरत् पारणकेऽपि ग्नानानां वृभुजे । एतदा कदापि पठेन कदाप्यष्टमेन दशमेन द्वादशेन समाधिं प्रेयमाणोऽप्रतिज्ञो भगवान् वृभुजे । ज्ञात्वा च न महावीरो नो एव पापक स्वयमरूपीति, अन्येश्च या नो कारयामास कुन्तमपि नान्वज्जानात् । ग्रामं नगरं या प्रविश्य भगवान् परार्थाय कृतं शासमेपयामास मुनिभिरुद्रं तमेव गिन्ना आयतयोगतया विप्रेभ्यः, भिक्षानर्थायै भ्रमन

और मौनधारा होकर माहन विचरे । गिगिरि चतुर्ग में भगवान् ज्ञाया में बैठे हुए ध्यान करते थे और ग्रीष्म ऋतु में आतापना लेते थे । आतापना लेते समय उत्कृष्टक ज्ञापन से बैठते थे । भगवान् ने प्रोदन, मन्थु (घोर का चुरा) और कुल्माप (उडद) इन तीन ठंडी और वाली वस्तुओं का सेवन करके आठ मास वित्तोये । भगवान् ने अर्धमास, मास, अर्द्धमास और छह मास तक अन्न आदि का परित्याग करके, अप्रतिज्ञ होकर विहार किया । पारणा के समय भी वामी भोजन किया । रुभी नेत्रा, रुभी चोत्रा, रुभी पंचोत्रा करके समाधि को देखते हुए अप्रतिज्ञ भगवान् ने विहार किया । पापके परिणाम को ज्ञानकर महावीरने न स्वयं पाप किया, न दूसरों से करवाया और न करते का अनुमोदन किया । ग्राम या नगर में प्रवेग करके भगवान् ने दूसरों के अर्थ वनाये गये आहार की एणणा की, और निर्दोष आहार को एणणा करके ज्ञानपूर्वक

भण विसर्जन, नभन, भास्त्रिथ, स्तान, भर्दन, दंतधावन विगिरे ने कुर्मणधनना शरत्तु अक्षी, तेतुं सेवन तेजो करता नहि अने तेजो मैथुनशी सर्वथा विन्दत इता तेभज भोतवृत्ते धारयु करता इता । गिगिरि ऋतुमा, तडडाभा उल्ला रही आतापना लेता आतापनाता सभये छिड्डु आसन वाणीने जेसता इता । भगवाने योअ, गोरना चूरे, अने अडह आ वल्लु ठडी अने वानी वस्तुजो वुं मेवन इरी आठ मास वित्ताव्या इता भगवाने पथ-वडियु भास-अही भास-अने छ भास सुधीनी तपस्था इरी विहार इयो । पाण्णना गभये पञ्च तेभने वामी गोरन क-वुं पड्युं इतु डोह डोह वपत्ते अहुम योवा पाय उपवास विगिरे इरीने, द्रव्य-क्षेय फाल भाव ने जेह अप्रतिज्ञ (निश्चय रीते नहि) भगवान विहार करता इता पापना साहां परिषुभो जेह भगवाने स्वयं पाप क्युं नथी । तेभज डोहनी पात्रे इराव्युं नथो । तेभज इरतारने अनुमोदन पाय आप्युं नथी ग्राम अगर नगरमा ज्यो ज्यो भगवान पधार्या त्या त्यां तेभले प्रामुक् आहार अल्लु क्यो । प्रामुक् आहार जोडले, पोताना भाटे बनानेवो नहि पञ्च निर्दोष आहार व्यावा आहारनी गवेयव्या इरी, ज्ञानयोग द्वारा तेने जेह तेना उपयोग करता ।

मगवान् नायसादिकान् रसेषिणः सरवान् आसैषणायै मिश्रतः प्रेक्ष्य स्वयं तस्मात् न्यवर्तत। अथ च पुरतः प्रित धमर्णं वा ब्राह्मणं वा ग्रामपिपासकान् वा भतिथिं वा श्वाकं वा प्रेक्ष्य निर्वर्तमानः अमृत्ययं परिहरन् अतिमन् सदा सन्तितः सन्दं मन्दं पराक्रम्य अदत्र आसयेपयामास। यूपिकं वा अयूपिकं वा आर्द्रं वा शुष्कं वा शीतनिषिद्धं पुराणकुन्मापम् अथवा वक्त्रस्य पुलकं वा यत् किञ्चिदपि स्पर्धं तत् आहरत्। उरुकुट्टाद्यासनस्यो मगवान् अत्रैकद्वयोदयतिष्ठ, उर्ध्वमधस्तिरिगोहृदयं समाधाय ध्यानमरुणायत। छत्रस्योऽपि मगवान् अरुणायी

सन्तु योऽयं से तस्मात् सेवनं कुर्यात्। मिश्रावर्यां के सिध्द अमण करते हुए मगवान् काक आदि प्राणियों को काल-एवणा के सिध्द स्थित देखकर वहाँ से कौट जाते थे। सामने लक्षे हुए अमण को, ब्राह्मण को, मिनाती को भतिथि को प्रवश श्वाक को देखकर चापिस लौटते, मनिवास को उत्पन्न न करते, तथा दिसा से बचते हुए सरा सन्तिष्ठिक, बीमे बीमे बसकर दूसरी जगह आहार की गवेषणा करते थे। व्यंजन से संस्कृत या अस्तुत्कृत, गौला या खना उठा भोजन, पुराने उड़द अथवा छिलके या निस्सार अन्न-भोजन की मित गणा उसी को ग्रहण कर लिया। मिला या न मिला तो भी संयमी मगवान् मूलविकार आदि वेष्टाई नहीं करते थे और अमनिष्ठ थे। कर्जलोक, अणेलोक और विर्लोक के स्वरूप को जानकर ध्यान करते थे। छत्रस्य होकर भी मगवान् ने कृपायहीन, कनासक्त, छन्द एवं रूप आदि में मूर्च्छां न करते हुए

भिक्षादे' भ्रमण करती बभते जे होइ स्थले 'हामवास' अथाती होय अने ते स्थले प्राचीनो आ 'हामवास'ना योगाग्ने देवा क्षेत्रां श्वां होय तो त्यांची अमवान् आहार बीधा विना पाछ वली जता. आ उपरांत जे होइ स्थले अमवान् आहार आटे प्रवेष्ट करता अने त्यां जे तेजो भ्रमण, आहार, विषादी, अतिवि (वज्रेने ठेका जेता तो त्याची आहार बीधा विना रूपमा पाछ वणी जता. पाछ वणी बभते भव जेवी शीते खावी नीभगता हे होइने चव अतिवास करत न था. तेजो सदाय दिवाची लज्जा आटे समितिशुभ्त रही भीम भीम खावी अन्ध स्थले आहार तथ तेना होताम अथवा अस्तकीन असे ते शस्य लोभन भणी लय तेने अमवान् सभवासकी अक्षु ठरी देता. होइ बभत योगाग्ने भवे हे न भवे तो भव तेजो सभचदिश्यामी वाइ बक्षेयुष्ठ विवसता.

अन्ध आसनकी सिध्दा अमवान् इहापि भव सुजनी विभुति तेम अ अन्ध होइ शिष्टाजो इत्या नदि अने तेजो अप्रतिष्ठ इता. वान्दोह, अशिष्टोह अने तीव्रहोहोह स्वस्थ विषादी तेजो अमानभन रहेता. छत्रस्य अथ रथाभी भव अमवान् इहायकीने अने अनासक्त रही शयन रूप, य य रूप अतिभी भूमीमान करता नदि. पातावा

मिगतयुद्धिः शब्दरूपादिषु अमूर्च्छितो विपराक्रममाणः सकृदपि प्रमाद नाकरोत् । आत्मशाब्दया आयतयामि स्वरयामि । अभिसमागम्य अभिनिर्गतः यावत् कथम् अमायी भगवान् समितः आसीत् । एवं विधिर्मतिमता साहनेन अपनि-
ज्ञेन भगवता मराचरेण 'अन्वेऽपि मुनय एवमीस्ताम्, इति कृत्वा बहुजोऽनुक्रान्तः ॥४०९३॥

टीका "तए नं भगवं रोगेहि" इत्यादि । ततः सलु भगवान्=श्रीवीरस्वामी रोगैः=इतरादिभिः, अस्पृष्टोऽपि=रहितोऽपि अवमोदरिक्=न्यूनभोजितरूपं तपः सिपेवे=सेवितवान् । अथ च=नया च शुनरुदगनादिभिः=कुरु-
दन्ताघातादिभिः सृष्टोऽपि=समन्वितोऽपि कासश्वासादिकैः रोगैः अस्पृष्टोऽपि=रहितोऽपि=मरिगद्वया=आगामि-
रोगमन्देहेन तन्निवारणार्थमपि स भगवान्=चिकित्स्यं=चिकित्सायाम्=रोगप्रतिकारं नो अन्नादयन्=न अनुमोदितवान्,
-तथा=भगवान्=श्रीवीरस्वामी, संशोधनं=मलाशयादि-संशोधनं, वमनम्=रान्ति गात्राभ्यञ्जनं=जरीगन्धद्वं=जरीने

विक्षेप रूप से पराक्रम करते हुए एक चार मो प्रमाद नहीं किया । आत्मगोधनपूर्वक स्वतः आयनयोग-ज्ञानपूर्वक सम्यक् योग व्यापार का आश्रय लेकर यावज्जीव निरुत्तिमय, अमायी और समित रहे । 'अन्य मुनि भी इसी प्रकार आचरण करें यह सोचकर मतिमान्, माहन अप्रतिज्ञ भगवान् ने अनेकवार इस आचार का पालन किया ॥४०९३॥

टीका का अर्थ—तब भगवान् वीरप्रभुने ऊपर आदि रोगों से अछूते होने पर भी ऊनोडर (भूत से कम खाने रूप) तप का सेवन किया । कभी कृत्वा आदि ने काट राया तो भी तथा सांस और खांसी आदि रोगों से रहित होने पर भी आगे कहीं ये रोग न हो जायें इस लिये उनके निवारण के हेतु भगवान् ने चिकित्सा का कदापि अनुमोदन नहीं किया । भगवान् वीर मलाशय आदि की शुद्धि, वमन (उल्टी-कै),

कर्म क्षय करवा भाटे पोतानु विर्य=पराक्रम क्षौरयता, अने ठोड़ पक्षु गभये प्रभादनुं येन करता नकि, आत्म-
शोधनमा आण्ठो भमय गाणता. तेना ज्ञानपूर्वकं स्रग्धक योगेना व्यापारोना आश्रय देता. अने आ प्रभादो जपलव
सुधी निवृत्त रह्यो अमायी यद्यने वर्ताता, तेम न पांय संमिति अने नख गुप्तिना योगने धारणु करी सभय विनायता
तेवी न रीते अन्य रुनिआ अभाइ अनुकरषु क्रस्थे ज्येभ धारी तेजो अचं गाणतमा आदर्शरूप पोतानुं आरिय
धस्ता. आ नमुनाइप आरिय भावी पेढीने ज्येक आदर्श पुरे पाइये ज्येभ तेगनु सवोट भंतव्य भतुं. (सू०६३)

टीकाने। अर्थ—भगवान् वीरप्रभुज्ये, ताव आदि रोगेधी रहित होवा छता द्रष्ट कर्मो अपाययाना हेतुधी उनेादर
(भूय लागी होय तेना करतां ज्येधुं पावुं) तपनुं सेवन क्युं. क्यारेक भूतरा आदि करइवा छतां तथा श्वास अने
उधरस आदि रोगेधी रहित होवा छतां पक्षु भविष्यमां क्हाय ज्ये रोग न थाय ते भाटे तेना निवारणुना उदेश्यी
पक्षु भगवाने चिकित्सानु कही पक्षु अनुमोदन आर्युं नह्यो. लागवान वीरप्रभु मलाशय आदिनी शुद्धि, वमन (उल्टी),

तैलमर्दनं, स्नानं=मसिद्वयं, सन्धानं=शरीरअभापनोदनाय शरीरमर्दनं दन्तमासालनं=दन्तधावनं च कर्मबन्धनं परि
 श्राय=उदुत्ता वागिनो असेवन् सेवितवान्। श्राय्यधर्माद्वै=मैयुनाश्चितः=पराङ्मुखः अवादि=मौनशीलो माह्वः=
 मरिशापरायणो एव=व्यहरत्। शिशिरे स्नतो भगवान् छायायाश्च=वृक्षादीनां छायायाम्, आसीनाः=उपविशन्
 भयापयत=पर्यप्तान् कृतवान्, तथा=श्रीयो कृतौ आतापयत्=अपवर्णयत्=अपवर्णयत् असेवत्, आतपे च उल्लुङ्गः=
 कृतोत्तुङ्गस्तनः सन् आस्त=उपविशत्। अयं च भगवान् ओदन-भक्तं, मधु=श्वरादिचूर्मं कुर्याप्यं=मापं वेतानि
 श्रीभि अभानि कुर्यापि=नीरसाग्निं शीतलानि=अनुष्णानि प्रतिसेव्य=दुग्धं अष्टमासान् अयापयत्=अत्यधिकान्त्वान्।
 ततश्च भगवान्=श्रीवीरस्वामी अर्द्धमासं=पक्ष, मास, साषट्कौ=छिन्निरिनाषिकौ द्वौ मासौ, पञ्च मासाश्च अठ्ठाधिकम्=
 अष्टन-गान-तादियं=स्तादियं परिहाण्य=व्यज्वा अपविष्ट=इच्छोकरालोकमयिष्कारितः सन् शम्भुपरायण्यनिरन्तर
 व्याहृत=संयममार्गे विहारं कृतवान्। पारणकेउपि=पारबाणायामपि भगवान् स्नानाभ्यन्युपितान् पुष्टले=सुकृतवान्।
 एकदा क्ताऽपि=समर्पापि=विषयस्यतां मेसमाणाः अमतिष्ठो भगवान् पठेन=पठमकं कृत्वा कदापि अष्टमेन=

शरीर की मालीश, स्नान, शारीरिक यकाष्ट को मिटाने के लिए मर्दन और दाँवनि करने को कर्मबन्धन का

काल जानकर कभी सेवन नहीं करते थे। मैयुन के त्यागी, मौनी, अहिंसापरायण होकर विचरते थे। शीत

ऋतु में भगवान् इस आदि की छाया में बैठ कर कर्मभ्यान में लीन रहते थे, और ग्रीष्मऋतु में मर्वट सूर्य की

भाजापना करते थे। आतापना छते समय उरुहू आसन से बैठते थे।

भगवान् ने ओदन (भक्त), मधु=वीर आदि का घृता और उद्ध, इन तीन द्रव्यों और वाली अलों का ही

सनन करके आठ महीने पिताये। भगवान् ने अर्धमास (एक पक्ष), एक मास, कुछ दिन अधिक दो मास

और छ मास तक अष्टन पान तादियं और स्तादियं आहारों का परित्याग किया और अमतिष्ठ होकर निरन्तर

शरीरनु भाविश, स्नान, शारीरिक शक इर अश्वाने गये अष्टन अने हातयु करवा (वज्रेश क्रियायोगेने अर्धमास

अतः अमभने ही तेनु सेवन क्त्वा नहीं शिङ्गने। सपसात्याज हरी भोन धारण करी अने अहिंसापरायण रहने

निवर्तना दत्ता। इी ऋतुभां अत्रवान वृक्ष आदिनी छायाभां शिशिरे धर्मभ्यानभां लीन रहत्वा दत्ता अने ग्रीष्म ऋतुभां

प्रवृत्त अर्द्धनी आतापना देता दत्ता आतापना देवी पश्चते उद्ध आसने शिशता दत्ता। अत्रवाने कोहन (घात),

मधु (मिश्र) आदिना शूरे अने आठ अने सय छाना अने वासी अमोदु अ सेवन करीने आठ आश पक्षाश्च अर्ध

अनपने अष्टमास (अष्ट पञ्चमदिनु) उच्छ आश अे अष्टय उद्ध उच्छाश्च दिवसि अने छ आश सुधी अष्टन पान

अर्धमास अने अष्टमि अा शिशिरे स्नान करी अने अमतिष्ठ (निश्चित रहते नहीं) अति निरन्तर अष्टन पान

अष्टमभक्तं कृत्वा, कदापि दशमेन=दशमभक्तं कृत्वा, कदापि द्वादशेन=द्वादशभक्तं कृत्वा बुभुजे=भुक्तवान्। ग्रात्वा=पापकर्मपरिणामं दुष्टं ज्ञात्वा च सः=भगवान् महावीरस्वामी पापकर्म=पापकर्म-प्राणातिपातादिकं नो एव=नैव स्वयम् अकार्षीत्=कृतवान्। तथा-अथैकैतैश्च नो कारयामास=न कारितवान्, कुर्यान्तं=प्राणातिपातादिकं पापं कर्म कुर्यान्तं नान्यजानात्=नानुमोदितवान्। ग्रामं नगरं वा प्रसिद्धं भगवान्-श्रीगीरस्वामी परार्थाय=अन्यजननिमित्ताय कृतं=निष्पादितं ग्रासम्=आहारम् एषयामास=गवेपितवान्। मृत्विशुद्धम्=आध्यात्मोद्दिष्टोपव्रजितम् एषणीयं तं=ग्रामम् एतद्वित्वा=गवेपयित्वा भगवान् आयतयोगोपतया=सम्यग्दूषनोवाक्कायव्यापारपूर्वकं-समभावेन मिषवे=सेवितवान्। तथा भिक्षाचर्यायै=भिक्षार्थं भ्रमन् भगवान् रसैर्पिणो=रसेनेन्द्रियविषयलोक्युपान वायसादीन्=कारुण्यश्रुतीन् सत्त्वान्=

विहार करते रहे। पारणा में वासी अब का सेवन किया। कभी कभी भगवान् चित्त की स्वस्थता का विचार करके अमतिष्ठ भाव से वेला करके आहार करते थे, कभी तोला करके, कभी चोला करके और कभी कभी पचोला करके, पाप के दुष्ट फल को जानकर महावीर स्वामीने प्राणातिपात आदि पापकर्मों का स्वयं सेवन नहीं किया, दूसरों से सेवन नहीं कराया और पापों का सेवन करने वालों का अनुमोदन नहीं किया।

ग्राम अथवा नगर में प्रवेश करके महावीर भगवान् ने दूसरे जनों के लिए वनाये हुए आहार की गवेपणा की। आध्यात्मिक आदि दोषों से रहित तथा कल्पनीय आहार की गवेपणा करके भगवान् ने उसका सम्यक् मन वचन काय के व्यापार के साथ अर्थात् समभावा से सेवन किया। भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए भगवान् रस के अभिलाषी अर्थात् जिज्ञा के विषय-रस के लोलुप, काक आदि प्राणिमयों को आहार की

पारङ्गमा वाली अवगु सेवन कियुं। ओष्ठ ओष्ठ वार भगवान् धित्तनी स्वस्थतांना विचार करीने अप्रतिश आवथी छड करीने, तो क्यारेडक अहुम करीने, तो क्यारेडक चौला (या- उपवास) करीने अने क्यारेडक पंचोला (पाय उपवास) करीने आहार लेता हुता।

पापन दुष्ट इणने भलीने भडावीर स्वामीओ प्राल तिपात आदि पापकर्मोनुं न तो चोते सेवन क्युं डे न भीज पासे सेवन कराव्यु तेम अ पापेनु सेवन करनारने कुटी अनुमोदन पषु न आप्युं।

गाम अथवा नगरमा प्रवेश करीने भडावीर भगवाने भीज लेओ भाटे जनावेल आहारनी गवेपषु। करी आधाकर्म (हेवण साधुना निमित्ते भनचकु ते) आदि दोषो विनान। तथा इद्वे (स्वीकरी शक्य) तेवा आहारनी गवेपषु। करीने भगवाने तेहुं सम्यक् मन, वचन, कथाना व्यापार साथे ओटवे डे सभभावथी सेवन क्युं। 'निसां' भगवान् ब्यारे विचरता त्यारे जे ओष्ठ रगन अ निदाषी ओटवे डे छुठता विषय-रसमा डालव्यु, कगडा (वगेरे

मायिनाः प्रोत्पन्नानि=आभारान्पेणार्थे तिष्ठतः। मेद्वय=दृष्टा” स्वयं सस्मात्=माणिनामाहारा वेपणस्थानात् न्यवर्तत=
 परावर्तत। अथ च पुरतः=स्वयमनात्पूर्वतः स्थितं भ्रमणं=आरम्भपादिकं वा व्यापणं वा ग्रामपिण्डान्तरां=भीरया-
 नीयमयागनिर्वाहकं वृष्यग्रामाग्रयण मिश्रकविलोयं वा अतिथि=साधुं वा अयाग्र=नाण्डाय वा मेव्य=दृष्टा तेषां
 पूर्वतः स्थित भ्रमणादीनामन्तरायां मा युक्तिरिति शुद्धया ततो निर्वृत्तानां, तथा-जनैः पुरोक्तभ्रमणादिविरपम्
 भ्रमणपथम्=अविश्वास परिहरन्=परित्यजन्, अरिसन=भाणातिपातादीन् वर्जयंश्च सदा=सर्वदा समितः=इष्ट्यांसमि
 त्यादियुक्तः सन् मन्दं मन्दं=अनैः सुने पराक्रम्य=पराहृत्य-निवृत्तो भूत्वा अन्यत्र=अन्यस्थाने प्राप्तम्=आहारम्
 एषयामास=गोपयितवान्। एवं भिक्षाचर्यायां तेन वृषिकं=व्यग्रनादियुक्तं वा अमुषिकम्=व्यग्रनादिरहितं वा, आर्द्र=
 मसिद्धम् शुष्क=नीरसं भर्जितवणकादिकं वा शीतपिण्डम्=पर्युतितमाहारं पुराणकुर्यात्=शीर्णमापम् अथवा-यद्वा-

लोकेन में स्थित वेलकर, स्वयं ही उस स्थान से निवृत्त हो जावे ये। इसके अतिरिक्त अपने पहुँचने से पहले से
 लूके शून्य आदि भ्रमण को, अथवा कोल मील कर जीवन-निर्वाह करने वाले मित्रमने को,
 अथवा किसी विश्वप ग्राम का आश्रय देने वाले मिश्रक का साधु को, या वाण्डाय को दत्तकर उन भ्रमण
 आदि को मोदन-न्यास में विघ्न न हो जाय, ऐसा विचार करके उस स्थान से फिर जाने थे। तथा लोगों में
 उक्त भ्रमण व्यापण आदि के अविश्वास का वरिधार करने हुए मणालिपात आदि पालों से यचने हुए मंदी
 रियों आदि मनेभिर्या से सम्पन्न हाकर, पारं वीर फिरकर दूसरे स्थान पर आहार की गवेषणा करते थे।
 दूसरे स्थान पर भी चारे व्यजन आदि स संस्कार किया हुआ आहार मिले या संस्कार न किया हुआ मिले,
 नीला मिछे या सुने चने आदि कला मूत्रा मिले, चासी मिले या पुराने उड़द मिच, चने आदि के छिन्नके

प्राचीनोने आहारनी गोपयभां ठोकेवा जेता ता तेज्जा पोते ते अथाज्येभी पाछ ही जत्ता अत्ता तपुपसेत पोते
 त्वां पछोन्मा पछेबां त्वां ठोकेवा शाअ अदि भ्रमणने, ब्राह्मणने अथवा बीज भाजीने छुलननिपव अरुनार जिपारी
 जेने अथवा डोई आठ आभेने आभर देनार मिश्रुने, आधुने हे बांदावने जेधने ते भ्रमण आदिने कोअनप्राप्तिभां
 विनभय न थाय तेवा वरुधभी विचार करीने तेज्जा ते स्थानेभी पाछ ही जत्ता अत्ता तथा वीडाभां पुरोअ समण,
 प्रासव आदिना अविश्वासने। त्याज करवा प्राणुतिपात अदि पागे भी जत्ता खीरे अभां आदि समितिआदी भुज
 मर्धन भीर पीर इरीने वीज अथाज्ये आहारनी गवेषणा करवा अत्ता। वीज अथाज्ये पण आदि शाअ-काठ अक्षितना
 आहार भजे हे बाजे शाअ-माए विनाने। अकार भजे, अणिम आकार भजे हे शोरेवा भजे। आदिना उजे-सुदेना
 आहार भजे चासी भजे हे पुराण अथ भजे अभां आदिनां हे वा भजे हे जिपार अथ भजे अभां अथ

वक्त्रसं=चणकादितुषं पुलकं=निःसारमन्त्रं वा यत् किञ्चित्=यत् किमपि कल्पनीयं लब्धं=प्राप्तं तत् स आहर्त्त=भुक्तवान् । तथा-भिक्षाचर्यायां पिण्डे=प्राप्ते लब्धे=प्राप्ते अलब्धे=आप्राप्ते वा द्रविकः=संयमी स भगवान् सम-भावेन=लाभालाभे च तुल्यभावेन ऐर्त=विहारं कृतवान् । तथा-उत्कुटुकाद्यामनस्थः=उत्कुटुकाद्यामनेन स्थाता भगवान्-श्रीवीरस्वामी अकौकुच्यः=मुलविकारादिरहितः अपतिज्ञः=उभयलोकप्रतिज्ञावर्जितश्च सन् ऊर्ध्वम् अधस्तिर्य-ग्भ्यो हस्वरूपं=लोकत्रयस्वरूपं समाधाय=विचात्रधानेन ज्ञात्वा ध्यानम्=धर्मध्यानम् अध्यायत=कृतवान् । छद्मस्योऽपि=अनुत्पन्ने केवलज्ञानोऽपि भगवान्=श्रीवीरस्वामी, अरुपायी=क्रोधादिकपायरहितः विगतयुद्धिः=युद्धिभाववर्जितः शब्द-रूपादिषु-शब्दरूपगन्धरसस्पर्शेषु अमूर्च्छितः=अनासक्तः विपराक्रममाणः=विशेषेणात्मसामर्थ्यं वितन्वन् सकृदपि=एकवारमपि, प्रमादं नाकरोत=न कृतवान् । तथा-भगवान् आत्मशोध्या=आत्मशोधनेन-आत्मशोधनपूर्वकम् आयत-योगम्-सम्यक् मनोवाकायव्यापार स्वयमेव=स्वत एव, अभिसमागम्य-आश्रित्य यावत्कथ=यावज्जीवम् अभिनिर्वृतः=

मिले या निःसार अन्त मिले, जो कुछ भी कल्पनीय मिल जाय उसी का आहार करते थे । भिक्षाचर्या में आहार मिला तो और न मिला तो संयमशील भगवान् मध्यस्थभाव में ही विचरते थे ।

उक्त आदि आसनों से स्थित भगवान् वीरप्रभु सुब आदि किसी अंग पर विकार नहीं होने देते थे । इहलोक और परलोक की प्रतिज्ञा से रहित होकर तीनों लोकों के स्वरूप का मनयोगपूर्वक चिन्तन करके धर्म-ध्यान में संलग्न रहते थे । यद्यपि उस समय भगवान् केवलज्ञानी नहीं-छद्मस्थ थे, फिर भी क्रोध आदि कपायों से रहित थे, समत्व से रहित थे और शब्द रूप गंध रस और स्पर्श रूप पाँचों इन्द्रियों के विषयों में अनासक्त थे । विशेष रूप से अपनी आत्मा का सामर्थ्य प्रकट करते हुए एक बार भी भगवान् ने प्रमाद नहीं किया । आत्मा की शुद्धिपूर्वक, सम्यक् मन वचन काय के व्यापार को स्वयं ही आश्रित करके भगवान् जीवन-पर्यन्त

कल्पे अबु भगे कोनो न आहार करता होता (बिस्वाचार्याभा (गोथरी) आहार भगे के न भगे तो पक्ष संभमशील भगवान् मध्यस्थता वधी न विचरता होता

उक्त आदि आसनों की रहेता वीरप्रभु सुभ आदि केई पक्ष अंग पर विकार था होता नहि. छद्मोक्त अने परदे की अनिश्चयी रहित यद्यने वषे लोकना दृश्यनु मनोयोगपूर्वक चिन्तन करीने धर्मध्यानमां दीन रहेता होता. जो के ते समये भगवान् देवण ज्ञानी न होता पक्ष छद्मस्थ होता, तो पक्ष क्रोध आदि कपायो रहित होता, समत्व विना होता; तेमन शब्द, रस, गंध, रस अने स्पर्श इय कोम पांचे इन्द्रियोना विषयमा अनासक्त होता. विशेष इयथी पे ताना आत्मातुं सामर्थ्य प्रगट करता लगवाने कोक वार पक्ष प्रमाद सेव्यो नहि. आत्मानि शुद्धिपूर्वक, सम्यक् मन, वचन अने ज्ञायाना व्यापारने पोते न आश्रित करीने भगवान् आलुवन निवृत्तिभाववाणा भाया विनाना

निवृत्तिभावनसम्पन्नाः, अमायी=मायावर्जिताः समिता=न्यायसमिप्यादिपञ्चसमिधियुक्तम् भासीत् । एषः=पूर्वोक्तो विधिः=
 कृत्यः मतिमतान्यभाविता माहवेन=अहिंसापरायणेन अमतिज्ञेन=उभयलोकप्रतिष्ठारहितेन भगवता “अन्येऽपि=
 मतिवैरोऽपि ह्यनया=साधनः एव=महत् ईशताथ=विहरन्तु” इति कृत्वा=इति विचार्य बहुश्रुः=सर्वथा अनुकान्तः=
 अनुसृतः=यास्मिन् इति । सू-१३॥

युक्तम्—तएवं समणे भगवं महावीरे साहसेनामो पद्विम्बितसम्यग् पद्विम्बितमिषा जेजेत् सावस्थी गायत्री
 तेजेत् उवाचच्छा, उवाचच्छिषा सत्य विविधेषां सरोक्रमेणं अप्याप्त मावेभाणे इत्थम् वाउम्मासं ठिष्ट । तस्य गं
 अमुतवेषं परात्तय विस्सुगद्विं पद्विन्ने छालं छिपाइ । तस्यपि दिग्बे माणुस्से तेरिस्से नागादिदे उवसणे
 सम्मं सइ । एवं विदेव विराजे विहरमाणे भगवं एगास्से चाउम्मासं वेसाणीए जयरीए ठिष्ट, तम्भो पच्छा सुमुआर
 जयवं समणुत्ते, तम्भो वं विहरमाणे कोसंबीए जयरीए समोसरिष्ट । तस्य गं सपणीओ राया । मिगावई मरिस्सी ।
 तीए चिनया पडिहारिया । चाइजामयी पम्मपासगो । एणमाभा अमभो तस्स नद्धा मज्जा, सा साविद्या जामी ।
 अय् मिगान्वाए रायमरिस्सीए सरी होस्या । तस्य गं भगव पोसमुद्धाए पठिवयाए दृक्खलेचक्कावभावं समस्सिय
 तेत्तक्खु समाठलं इम एयाक्खं अग्निगाइ अग्निमादीम । तं जहा=दम्भओ सुण्णहोणे १, वप्फियामासा २ होज्जा ।
 खेतम्भो दाइया कारागारे ठिया ३, तस्यपि देवलीए ४, उवदिदा ५, सा पुण एग पायं चहिं एगं पाय अंतो
 छिवा ठिया ६ मवे । कावभो तइयाए पोरिमीए अक्खविस्सायेहिं निन्नेलेहिं ७, मावभो दाइया कयकीया
 दासिचं पवा रायकका ८, निगाइइइइइइयाया ९, हंदिजमस्यया १०, वद्धकच्छा ११, अमुतवत्तुवा १२, अस्सुणि
 मुपमासा १३ होज्जा । एयारिसेण अग्निग्गदेव नइ आइारो मिस्सिस्सइ वो पारणे करिस्सामि, अन्नहा उम्मासी
 तत्र करिस्सामिपि बहु भगवं भिर वद्धाए अइइ । भगवभो सो अग्निगहो न कत्थइ परिण्णो इवइ । सू-१४॥

निवृत्तिभावन से सम्पन्न, भाया से रदित और पाँच समिधियों से युक्त रहे । यह विधि येपावी, अहिंसापरायण
 और इन्द्रोक्त-परमोक्त सर्वधी प्रतिष्ठा से रचित भगवान् ने ‘अन्य ह्युनि मो इसी प्रकार इस आचारका पाठन
 करें’ इस प्रकार विचार कर इस आचार का पूरी तरह पालन किया । सू-१३॥

अन पाँच समिधियों की श्रुति है। आ अमावे शिवावी, अद्विशापथयम् अने उड्डोडा-परदेडा व अमी प्रतिमाओ
 रित कथनाने नीज अग्निजो पव आ दीते आ आत्माइउ पाठन करे” जेअ विचारोने आ आत्माइउ करे
 ईते पाठन करे (स ६३)

ज्या —ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरो लाटदेशात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य यैव श्रावस्ती नगरी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तत्र विचित्रेण तपःकर्मणा आत्मानं भावयन् दशमं चातुर्मासं स्थितः। तत्र खलु अष्टमतपसा एकरात्रिकीं भिक्षुप्रतिमां प्रतिपन्नो ध्यानं ध्यायति। तत्रापि दिव्यान् मानुषान् तैश्चान् नाना-विधान् उपसर्गान् सम्यग् सहते। एवं विधेन विहारेण विहरन् भगवान् एकादशं चातुर्मासं वैशाल्यां नगर्यां स्थितः। ततः पश्चात् शिशुमारं नगरं समनुप्राप्तः। ततः खलु विहरन् कौशाभ्यां नगर्यां समवसतः। तत्र खलु शतानीको राजा। मृगावती महिषी। तस्या विजया प्रतिहारिका। वादि नामको धर्मपालकः। गुप्तनामा अमात्यः; तस्य नन्दा भार्य। सा श्राविकाऽऽसीत्। असौ मृगावत्या राजमहिष्याः सखी बभूव। तत्र खलु भगवान् पौष-

मूल का अर्थ—‘त ए ण’ इत्यादि। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर लाट देश से विहार करके जहाँ श्रावस्ती नगरी थी वहाँ पधारे। पधार कर विचित्र प्रकार के तपः कर्म से आत्मा को भावित करते हुए दसवौं चौमासा वहाँ किया। वहाँ अष्टममत्त (तेले) के साथ एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा को अंगीकार करके भगवान् ने ध्यान किया। वहाँ भी देवों संबंधी, मनुष्यों संबंधी तथा तिर्यचों संबंधी नाना प्रकार के उप-सर्गों को भलीभाँति सहन किया। इसी प्रकार के विहार से विहरे हुए भगवान् ने ग्यारहवें चतुर्मास वैशाली नगर में किया। तदनन्तर शिशुमार नगर में पधारे। शिशुमार नगर से विहार करके कौशाम्बी नगरी में पधारे। वहाँ शतानीक राजा था। मृगावती महारानी थी। विजया नामकी महारानी की द्वारापालिका थी। राजा का वादी नामक धर्माध्यक्ष था, और गुप्त नामक अमात्य था। अमान्य की पत्नी का नाम नन्दा था। वह श्राविका थी। वह राजरानी मृगावती की सखी थी।

भूणने। अर्थ—‘त ए णं’ इत्यादि श्रमण भगवान् महावीर, लाटदेशभाषी विहार करी, श्रावस्ती नगरीमा पधारा। सयम-तप विगेदेशी आत्माने भावित करी दशसु चातुर्मास त्या कथुं। अहिं अहुमनुं तप आहरी, ओक गत्रीनी लिखपडिमा अगीकार करी, ध्यानभम्न था। अहिं पथु, देव-मनुष्य-तिर्य्योना उपसर्गो बन्नी बांतिथी तेमणे सहं कथां आ प्रकादे विचरता. अ-यारसु यौमासु वैशाणी नगरीमा तेमणे कथुं. त्यारणाह शिशुमार नामना नगरमा तयो। पधारां अने शिशुमार नगरथी बिहार करी, कौशाम्बी नगरीमा, तेमनुं आगमन थयुं. आ कौशाम्बी नगरीमा शतानीक नामे राज्ण रान्ध करतारु हुता तेने मृगावती नामनी राणी हुती. आ राणीने (मन्थ) नामनी अगदक्षिा हुती. राजने ‘व दी’ नामने। धर्माध्यक्ष हुतो. अने ‘शुभ्र’ नामने। अमात्य हुतो. अमात्यनी पत्नीनुं नाम ‘नन्दा’ हुतु आ नन्दा श्राविका हुती, अने महाराणी मृगावतीनी भूनेपणी हुती.

निवृत्तिशान्तिः, अमायी-आयात्रमितिः समितः=र्यासमित्यादिप्रसमितियुक्तम् आसीत् । एषः=पूर्वोक्तो विधिः=
 कृत्यः मतिमता=येषां विना माह्वेन=अद्वितीयपरायणेन अयतिशेन=उभयलोकप्रतिष्ठापितेन भगवता “अन्येऽपि=
 मद्विरोधेऽपि मुनयः=साधवः एवेत्यश्वत् इति=विद्वत्” इति कृत्या=रिति विचार्य बहुशः=सर्वथा अनुक्रान्तः=
 अनुवृत्तः=यास्मि इति ॥ सू ९३॥

मूलम्—त ए नं समणे भगवं महावीरे लघवेसाजो पठिभिक्षमाह पठिजित्समिषा जेनेव सावत्थी णयरी
 तेनेच उयमाच्छा, उवागच्छिषा सत्थ विचिसेनं तसोक्कम्भेनं अण्ण भावेमाणे दसम चाउम्मासं ठिए । तस्य नं
 भट्टमतवेणं एगताय सिकसुण्डिम पठिवन्ने क्खलं छियाइ । तस्यवि दिब्बे माणुस्से तेरिन्हे नणाविहे उवसणे
 सम्मं सइ । एवं विदेव विहारेण विहरमाणे भगवं एगारसं चाउम्मासं वेसासीए बयरीए ठिए, तसो पच्छा सुमुभारं
 णयरं समजुपणे, तसो नं विहरमाणे कोसंबीए बयरीए समोसरिए । तस्य नं सयाणीजो राया । मिगावई मरिसो ।
 तीए चित्ता पठिबारिया । आइमायजो पम्पणम्मो । गुत्तामा अमभो उस्स नंदा मज्जा, सा साविाया आसी ।
 अम् मिगावईए रायमरिसीए सरी होत्था । तस्य नं भगवं पोससुदाए पठिवयाए व्वखेयकालमावं समस्सिय
 तेरसत्थु समाउसं इम एयाक्वं अभिमाई अभिमायीम । तं जहा=वन्वजो सुणकोणे १, बप्फियमासा २ होज्जा ।
 खेत्तजो दाइया कापारारे ठिया ३, तस्यवि वेदसीए ४, उवस्सिा ५, सा पुण एणं पायं वारि एणं पायं अंको
 छिवा ठिया ६ भवे । कान्धो तइयाए पोरिसीए अन्नपिण्डपारेहिं निव्वेसेहिं ७, भावजो दाइया इयकोया
 दासिच पत्ता रायक्का ८, निगददइयपाया ९, मुंदियमत्थया १०, बद्धक्का ११, भट्टमतवसुधा १२, अस्समि
 मुणमाणा १३ होज्जा । एयारितेण अभिगणेण जइ आहारो मिस्सिस्स सो पाएणं करिस्सामि, अन्नहा छम्मासी
 तं करिस्सामिपि इदु भगवं भिरच्छाए मइइ । भगवधो सो अभिमाहो न कत्थाइ परिपुण्णो इवइ ॥ सू०९४॥

निवृत्तियात्र से सम्पन्न, माया से रहित और पाँच समितियों से युक्त रहे । यह विधि मेघावी, अद्वितीयपरायण
 और इहलोक-परलोक सर्वश्री प्रतिष्ठा से रहित भगवान् ने ‘अन्य मुनि को इसी प्रकार इस आचारका पालन
 करें’ इस प्रकार विचार कर इस आचार का पूरी तरह पालन किया ॥ सू०९३॥

न.न. पी.ब. अधितिथ्याधी मुज्ज ३६॥ आ प्रभाते शिषावी, अद्वितीयपरायण अने चित्ते=परलोक से लगे प्रतिसाधी
 दित कथनने ‘पी.ब. मुनिको’ पञ्च आ दीते आ आचारइ ‘प.क.न. ३६’ कोय विव्वाहीने आ आचारइ ३६॥
 पीते प.क.न. ३६” (सं. ६३)

टीका—‘तए णं समणे भगवं’ इत्यादि । ततः लाटदेशविहरणानन्तरं खलु श्रमणो भगवान् महावीरो लाटदेशात् प्रतिनिष्क्राम्यति=प्रतिनिःसरति, प्रतिनिष्क्रम्य=प्रतिनिस्त्य यत्रैव श्रावस्ती नगरी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तत्र=श्रावस्यां नगर्यां, विधिज्ञेन=अनेकप्रकारेण तपःकर्मणा=तपश्चरणेन आत्मानं=स्वं भावयन्=वासयन् दक्षमं चातुर्मासं स्थितः । तत्र-अष्टमत्तपसा=अष्टम+त्तेन एकरात्रिकीम्=एकस्यां रात्रौ भवाम् भिक्षुप्रतिमां=मुनेर-भिग्रहविशेषम् प्रतिपन्नो ध्यानं ध्यायति=करोति । तत्रापि भगवान् श्रोमहावीरस्वामी दिव्यान्-देवकृतान्-मानुषान्-मनुष्यकृतान् तैरश्वान्=तिर्यक्कृतान् नानाविधान्=बहुप्रकारान् उपसर्गान् सम्यक् सहते=क्रोधाभावेन । एवंविधेन=पूर्वोक्तप्रकारेण विहारेण विहरन्=ग्रामानुग्रामं विचरन् भगवान्-श्रीवीरस्वामी एकादशं चाटु-मांसम् वैशाल्यां नगर्यां स्थितः । ततः पश्चात्=चतुर्मासमाप्यनन्तरं भगवान्-शिशुमारं नगरं समनुभासः=

अभिग्रह करके भगवान् भिक्षा के लिये भ्रमण करते थे, मगर वह अभिग्रह कहीं पूरा नहीं होता था ॥सू०५॥ टीका का अर्थ—लाट देश में विचरण करने अनन्तर श्रमण भगवान् महावीरने लाट देश से विहार किया । विहार करके जहाँ श्रावस्ती नामकी नगरी थी, वहाँ पधारे । और अनेक प्रकार के तपश्चरण से अपनी आत्मा को भावित करते हुए भगवान् ने दसवाँ चौमासा वहीं किया । वहाँ पर भगवान् ने अष्टम-भक्त (तेले) की तपस्या के साथ एक रात में पूर्ण होने वाली भिक्षुप्रतिमा-मूर्ति के त्रिशिष्ट अभिग्रह को अंगीकार करके ध्यान किया । वहाँ भी भगवान् श्रीमहावीरने देवकृत, मनुष्यकृत और तिर्यचकृत तरह-तरह के उपसर्गों को बिना क्रोध के सहन किये । इसी प्रकार के विहार को अंगीकार करके एक गाँव से दूसरे गाँव विचरते हुए भगवान् वीर मयुने ग्यारवाँ चौमासा वैशाली नगरी में किया । चौमासे की समाप्ति के पश्चात्

नक्षितर, ते तपनी वृद्धि करो, छमास सुधी जेन्थी जवुं, जेवुं लगवाने भनथी नछी क्युं” इतु. आये अभिग्रह धारयु करी, भक्षार्थे करता इता. पर तु तेनी भूतिने योग नछी बनता, तेमनुं आहार अर्थे तु परिभ्रमयु आलु रक्युं. (सू०६४) टीकाने अर्थ—लाटदेशमां विचरयु कयां पछी श्रमयु लगवान भक्षवीरे लाटदेशमाथी विहार कयो. विहार करीने न्या श्रावस्ती नगरी इती त्या पधायो. त्या अनेक प्रकारनी तपश्चर्या करीने चोताना आत्माने भावित करता लगवाने त्या ज इससुं चोमासुं क्युं. त्यां लगवाने अष्टभज्ज (अष्टम)नी तपस्यानी साथे ओक रातमां पूर्युं भनारी भिक्षुप्रतिमा-मूर्तिना विशिष्ट अभिग्रहने अंगीकार करोने ध्यान धर्युं. त्यां पयु लगवान श्री भक्षवीरे देवकृत, मनुष्य-कृत अने तिर्यचकृत जतजतना उपसर्गो क्रोध कयां विना सहन कयो.

आ प्रभाषे विहारने अंगीकार करीने ओक गाभथी ओने आभ विचरता लगवान वीरप्रबुज्ये वैशाली नगरीमां

शुद्धायां मतिपदि द्रव्यसंभक्तमभ्यासमाश्रित्य प्रयोदशवस्तुसमाकुलस्य इत्येतदप्यम् अभिग्रहसम्यक्बुद्धत् । तदप्या-
 "द्रव्यतः श्रुत्यक्रान्ते १, वाच्यता माया २, मयेयुः । क्षेत्रतो दायिका कारागारे स्थिता ३, तत्रापि देहस्या ४,
 सुप्रतिष्ठा ५, सा पुनरेक पार्व र्वाह" एकं पादमन्तः कृत्वा स्थिता ६ मयेव । काष्ठतः तृतीयस्यां पौरुष्यासु अन्य
 भिन्नान्तरेषु निवृत्तेषु ७, यावत्तः दायिका क्रयक्रोधा दासीत्वं भ्राता राजकन्या ८ निगदबद्धस्तपादा ९ सुष्ठित
 मस्तथा १०, बद्धकृच्छा ११ अटमगतपोयुक्ता १२ अभूणि युवन्ती १३ मयेव । एतारस्तेन अभिग्रहेण यदि आहारो
 भिरिष्यति, तदा पारणकं करिष्यामि, अन्यथा पण्यासीतयः करिष्यामि " इति कृत्वा भगवान् भिन्नार्थाय
 प्रवृत्ति । यावत्तः सोऽभिग्रहो न कुत्रापि परिपूर्णो भवति ॥ अ० ९४ ॥

भगवान् ने पौष शुद्ध प्रतिपद् के दिन द्रव्य क्षेत्र काष्ठ यावत्ता काष्ठ काष्ठ काष्ठ लेकर तेरह बोलोवाला यह
 अभिग्रह प्राण क्रिया-द्रव्य से (१) रूप के काने में, (२) उभाछे हुए उद्धर हों; क्षेत्र से-(३) देनेवाली
 कारागार में हो, (४) कारागार में भी देखनी पर हो, (५) लो भी बैठी हो, (६) वर भी एक पैर बाहर और
 (७) दायिका तरीकी हुए हो, दासी बन गई हो अगर रामकुमारी हो, (८) उसे हाथों-पैरों में बेड़ी हो,
 (१०) सिर मुँका हो, (११) काष्ठवर्णी हो, (१२) तेछे के रूप से पुष्क हो और (१३) बौद्ध बरा रही हो ।
 इस प्रकार के अभिग्रह से यदि आहार मिलेगा तो प्राणा कल्याण, अन्यथा छह मास का उप कल्याण । ऐसा

प्रभुने पौष शुद्ध क्षेत्रमना द्विष्टे, द्रव्य-क्षेत्र-शब्द आने बावने विचार करी, तेर ठेकवाये। अतिशय
 धरु भूयो, आ अतिशयनी खरतो नीचे गुजवनी बवी —

ने ठेक अति नीकेना आचार सहित आहुम पठे तो हु आश तपनु पावसु करीश, नक्षितर आ तपने
 अर्द्धना सुधी जेयी, अ भासिक तपनी आराधना करीश (१) द्रव्यवी रूपधना प्रत्युभा (२) ग्राहिका अर्द्ध डोय,
 (३) अ पयावाकी अति आराधना पुराई डोय (४) आराधना में डेवी पर डोय, (५) ते पणु डेवी डोय,
 (६) तेना जोक पत्र उल्लसनी बकार अने जोक पत्र उल्लसनी बकार डोय (७) अन्य विधिविज्ञे गथा पछीना
 नीने प्रहर काकतो डोय (८) व्यापनार अति देवाती सेवाकेडी डोय, दासी तपरी तेनु लवन डोय अने भूषमा
 ते रामकुमारी डोय, (६) तेना काय पत्रमां डेवीनु लवन डोय, (१०) तेनु आहु सुभावेक डोय (११) तेना
 अन्ध व्यापिका डोय (१२) ते अपुम तपवी सुष्ठ डोय (१३) ते आजाओकी आमुने प्रवाक वडिवावनी डोय ।
 उपरांत खरतो गुजव आकार पठे तो अप तपनु पावसु करी, ते आकारने खरीमने सोयने

सा पुनः एकं पाद=चरणं वहिः=देहलीतो वहिः प्रदेसो एकम्=अपरं पादम् अन्तः=अभ्यन्तरप्रदेसो कृत्वा स्थिता ६ भवेत् । कालतोऽभिग्रहः=वृत्तीयस्या पौरुष्यां=वृत्तीयप्रहरे अन्यभिक्षाचरेषु निवृत्तेषु=परावृत्त्यगतेषु सत्सु ७, भावतोऽभिग्रहः=दायिका=भिक्षायादात्री क्रयक्रीता=वृत्त्यगृहीता तथा=दासीत्वं प्राप्ता=दासीभूता राजकन्या भवेत् ८। सा पुनः निगडबद्धस्तपादा=निगाडितकरचरणा ९ तथा=गुण्डितमस्तका=केशापनयतो गुण्डितशिरा १०, बद्धकच्छा ११ अष्टमतपोयुक्ता=अष्टमभक्तरूपतपस्यान्विता १२. अश्रूणि मुञ्चन्ती १३ भवेदिति । एतादृशेन=एवंविधेन अमिग्रहेण यदि आहारो मिलिष्यति तदा पारणकं करिष्यामि, अन्यथा=त्रयोदशवस्तुषु कस्यापि वस्तुनोऽभावेऽभिग्रहापूर्णे षण्मासीतपः=षण्मासिकं तपः=अनशनरूपं करिष्यामि' इति कृत्वा=एतन्मनसिकृत्य भगवान् भिक्षार्थीय=भिक्षार्थम् कौशाख्याः प्रतिगृहम् अटति=भ्रमति, किन्तु भ्रमतो भगवतः सः=त्रयोदशवस्तुयुक्तोऽभिग्रहः कुत्रापि=कत्रचिदपि गृहे परिपूर्णो न भवति ॥सू० ९४॥

(९) वह भी एक पैर देहली से बाहर निकाले हो और दूसरा पैर देहली के भीतर करके बैठी हो, माल से अभिग्रह बतलाते हैं-(७) तीसरे पहर अन्य भिक्षाजीवियों के लोट कर चले जाने पर, मात्र से अभिग्रह बतलाते हैं-(८) भिक्षा देने वाली खरीदी हुई हो, दासी बनी हो मगर राजाकी कन्या हो, (९) उसके हाथों-पैरों में बोटियाँ पड़ी हों, (१०) मस्तक मुंडा हुआ हो, (११) कांछ बाँधी हुई हो, (१२) तेले की तपस्या से युक्त हो और (१३) आम्बू बहा रही हो । इस प्रकार के अभिग्रह से अगर आहार मिलेगा तो मैं पारणा कलंगा, इन तरह बोलों में से किसी भी एक की कमी होगी और अभिग्रह पूरा न होगा तो छह मासी तपस्या कलंगा । इस प्रकार मन ही मन में निश्चय करके भगवान् भिक्षाके लिए कौशाम्बी के घर-घर में परिभ्रमण करते थे, परन्तु किसी भी घर में यह तरह बोल का अभिग्रह पूर्ण नहीं होता था ॥सू० ९५॥

भूडेल होय अने भीन्ने डंगरानी अहर राथीने मेही होय, काणथी अलिअडु अतावे छे-(७) श्रील पडोरे लिखुडाना पाछा धर्यो भाद. कावथी अलिअडु अतावे छे-(८) बिक्षा देनारी न्यक्ति पारीहायेल होय, राजनी डन्या होवा छतां दासी अनी होय (९) तेना डाथयगमा मेडिये नाणेदी होय, (१०) माथु भूडेडु' होय (११) कछोटो भाघेदो होय (१२) अहुमनी तपस्या सडित होय (१३) आंभमाथी आसु वडता होय; आ प्रमाखेना अलिअडुथी ने आहार भणथे तो हु पारथु डरीथ आ तेर मेलेमाथी व्येकनी पणु भाभी डशे अने अलिअडु पूरे नही थाय तो छमासी तपस्या प्ररीय आ प्रमाखे मनोभन निश्चय डरीने भगवान बिक्षाने माटे डौशाग्भीना धरे धरे परिक्षमणु डरता डता, पणु डौड धरमां आ तेर मेलेना अलिअडु पणु' थतो न डते। (सू० ९४)

विहारलोकमेव गतवान् । ततः स्रष्टु विहरन् भगवान् श्रीवीरस्वामी कौशाम्बी नगर्यां समवसतु । तत्र खलु
 उवासीको नाम राजा आसीत् । तस्य युगावती नाम महिषी-राज्ञी, तस्याः=युगावत्याः विजया नाम प्रति
 हरिकाः=द्वारपाली, तस्य दत्तानीकराजस्य चादि नामकौ धर्मपालकः=धर्मार्थसः युगनामा च अमात्यः=मन्त्री
 आसीत् । तस्य=युगनाम्नो मन्त्रिणो नन्दा नाम भार्या, सा नन्दा आविका=धर्मणोपासिका आसीत् । असौ=
 नन्दा युगावत्याः राजमहिरया सखी=वयस्या बभूव । तत्र=कौशाम्ब्यां नगर्यां खलु भगवान्=श्रीवीरस्वामी यौग
 युदायां=यौगमासस्य शुक्लपक्षीयायां प्रतिपदिविधौ द्रव्यक्षेपकालमात्रं समाधित्य प्रयोदशवस्तु समाकुम्भ=त्रयोदशवस्तु
 युक्त्वा इममर्द्धप=वस्यमल्लक्षणम् यथिग्रहम् अरुणशुक्लद=स्वीकृतवान् । तपया=तत्र प्रथमं द्रव्यतोडमिग्रहः प्रद
 द्यते=पूर्वकोणे १ स्थिता बायिका=सिन्धु माया=‘बाकुमा’ इति मसिदाः २ मवेयु, सेचतोडमिग्रह=दायिका=
 भिक्षादात्री द्वारगारे स्थिता ३ मवेत्-तपडपि=द्वारगारेऽपि देवस्यां ४=प्रहारे उपविष्य=भामीना ५ मवेत्,
 वीरसु बलते=चलते विधुमार नगरं पयारे । तदनन्तरं भगवान् कौशाम्बी नगरी में पयारे । कौशाम्बी नगरं मे
 तवानीक नामक राजा या । युगावती नामक उनकी रानी थी । युगावती की द्वारपालिका का नाम विजया था ।
 उवासीक राजा का विजय नामक धर्मार्थस था और एत नामक मंत्री था । एत नामक मंत्री की पत्नी का
 नाम नन्दा था । नन्दा आविका थी और रानी युगावती की सखी थी ।

वीर भगवान् ने यौग मास क शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि में द्रव्य क्षेत्र, दान, भावकी अयेसा,
 तेरह घातों से युक्त दस प्रकार का अभिग्रह धारण किया । पहले द्रव्य की अयेसा से अभिग्रह बतलाने हैं—
 (१) मूष (छानछे) के कोने में, (२) टवाळ हुए ठंडक अर्थव घाकले हैं; क्षेत्र सं अभिग्रह बतलाने हैं—
 (३) भिक्षा देने वाली द्वारगार में स्थित हो, (४) द्वारगार में देवली=दरवाजे पर हो (५) सो मी बैठी हो,

अन्धियारयु बोभासु ठडू बोभासु पूर्ण हवी पछी वीरभुजे विहार करता करता विधुमार नगरभां पयारे त्वार
 भाड कत्रवान कौशाम्बी नगरी भां पयारे गेयाम्बी नगरीभां उवासीक नामना राज कटा तेभने भुगावती नामनी
 सखी हवी भुगावतीनी द्वारपालिका नाम विजया हवी उवासीक राजने वाली नामने धर्मार्थस हवी अने गुह नाम
 मंत्री हवी युग नामना मन्त्रीनी पनीयु नाम नन्दा हवी नन्दा आविका हवी अने सखी भुगावतीनी सेनपक्षी हवी
 वीरभजवाने यौग मासना शुक्ल पक्षनी पहरेनी तिथिने, द्रव्य, क्षेत्र, दान कने भावनी अयेसाके तेर बायते।
 बाकी आ प्रकारने अन्धियारु धारण हवी । पहिला द्रव्यकी अयेसाके अन्धियारु जतावे छे—(१) मूषना भुजाभां
 (२) गारुका अडक जेठके हैं नाउण्य कोन, क्षेत्रकी अन्धियारु जतावे छे—(३) भिक्षा देनेवाली अन्धियारु द्वारगारभां देव
 कोन (४) द्वारगारभां पणु बरवाना ठन्दाभां कोन (५) ते पणु अन्धियारु कोन (६) पछी जेठ पयार अन्धियारु

वीर भगवान् ने यौग मास क शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि में द्रव्य क्षेत्र, दान, भावकी अयेसा,
 तेरह घातों से युक्त दस प्रकार का अभिग्रह धारण किया । पहले द्रव्य की अयेसा से अभिग्रह बतलाने हैं—
 (१) मूष (छानछे) के कोने में, (२) टवाळ हुए ठंडक अर्थव घाकले हैं; क्षेत्र सं अभिग्रह बतलाने हैं—
 (३) भिक्षा देने वाली द्वारगार में स्थित हो, (४) द्वारगार में देवली=दरवाजे पर हो (५) सो मी बैठी हो,
 अन्धियारयु बोभासु ठडू बोभासु पूर्ण हवी पछी वीरभुजे विहार करता करता विधुमार नगरभां पयारे त्वार
 भाड कत्रवान कौशाम्बी नगरी भां पयारे गेयाम्बी नगरीभां उवासीक नामना राज कटा तेभने भुगावती नामनी
 सखी हवी भुगावतीनी द्वारपालिका नाम विजया हवी उवासीक राजने वाली नामने धर्मार्थस हवी अने गुह नाम
 मंत्री हवी युग नामना मन्त्रीनी पनीयु नाम नन्दा हवी नन्दा आविका हवी अने सखी भुगावतीनी सेनपक्षी हवी
 वीरभजवाने यौग मासना शुक्ल पक्षनी पहरेनी तिथिने, द्रव्य, क्षेत्र, दान कने भावनी अयेसाके तेर बायते।
 बाकी आ प्रकारने अन्धियारु धारण हवी । पहिला द्रव्यकी अयेसाके अन्धियारु जतावे छे—(१) मूषना भुजाभां
 (२) गारुका अडक जेठके हैं नाउण्य कोन, क्षेत्रकी अन्धियारु जतावे छे—(३) भिक्षा देनेवाली अन्धियारु द्वारगारभां देव
 कोन (४) द्वारगारभां पणु बरवाना ठन्दाभां कोन (५) ते पणु अन्धियारु कोन (६) पछी जेठ पयार अन्धियारु

सा पुनः एकं पाद=चरणं बहिः=देहलीतो बहिः प्रदेशे एकम्=अपरं पादम् अन्तः=अभ्यन्तरप्रदेशे कृत्वा स्थिता ६ भवेत् । कालतोऽभिग्रहः=तृतीयस्यां पौरुष्यां=तृतीयग्रहरे अन्यभिक्षाचरेषु निवृत्तेषु=परावृत्त्यगतेषु सत्सु ७, भावतोऽभिग्रहः=दायिका=भिक्षायादात्री क्रयक्रीता=मूल्यग्रहीता तथा=दासीत्वं प्राप्ता=दासीभूता राजकन्या भवेत् ८। सा पुनः निगडबद्धहस्तपादा=निगाहितकरचरणा ९ तथा=मुण्डितमस्तका=केशापनयतो मुण्डितशिरा १०, बद्धरुच्छा ११ अष्टमतपोयुक्ता=अष्टमभक्तरूपतपस्यान्विता १२. अश्रूणि मुञ्चन्ती १३ भवेदिति । एतादृशेन=एवंविधेन अभिग्रहेण यदि आहारो मिलिष्यति तदा पारणकं करिष्यामि, अन्यथा=त्रयोदशवस्तुषु कस्यापि वस्तुनोऽभावेऽभिग्रहापूरणे षण्मासीत्तपः=षाण्मासिकं तपः=अनशनरूपं करिष्यामि' इति कृत्वा=एतन्मनसिकृत्य भगवान् भिक्षार्थाय=भिक्षार्थम् नौशाख्याः प्रतिशुद्धम् अटति=भ्रमति, किन्तु भ्रमतो भगवतः सः=त्रयोदशवस्तुक्तोऽभिग्रहः कुत्रापि=कथंचिदपि गृहे परिपूर्णो न भवति ॥सू०९४॥

(९) वह भी एक पैर देहली से बाहर निकाले हो और दूसरा पैर देहली के भीतर करके बैठी हो, काल से अभिग्रह बतलाते हैं-(७) तीसरे पहर अन्य भिक्षाजीवियों के लोट कर चले जाने पर, भाग से अभिग्रह बतलाते हैं-(८) भिक्षा देने वाली खरीदी हुई हो, दासी बनी हो मगर राजाकी कन्या हो, (९) उसके हाथों-पैरों में वेड़ियाँ पड़ी हों, (१०) मस्तक मुँडा हुआ हो, (११) काँछ बाँधी हुई हो, (१२) तेले की तपस्या से युक्त हो और (१३) आँसू बहा रही हो । इस प्रकार के अभिग्रह से अगर आहार मिलेगा तो मैं पारणा कलंगा, इन तेरह बोलों में से किसी भी एक की कमी होगी और अभिग्रह पूरा न होगा तो छह मासी तपस्या कलंगा । इस प्रकार मन ही मन में निश्चय करके भगवान् भिक्षाके लिए कौशाब्बी के घर-घर में परिभ्रमण करते थे, परन्तु किसी भी घर में यह तेरह बोल का अभिग्रह पूर्ण नहीं होता था ॥सू०९५॥

भूँदेल होय अने બીન્ને જાંઘરાની અહર રાખીને યેહી હોય, કાળથી અલિગ્રહ યતાવે છ-(૭) ત્રીજા પહોરે લિશુકાના પાછા કર્યા બાદ. ભાવથી અભિગ્રહ યતાવે છ-(૮) ભિક્ષા દેનારી ન્યકિત ખરીદાયેલ હોય, રાત્રીની કન્યા હોવા છતાં દાસી બની હોય (૯) તેના હાથપગમા બેડિયા નાખેલી હોય, (૧૦) માથું મૂડેલું હોય (૧૧) કંછોટો બાંધેલો હોય (૧૨) આકુમની તપસ્યા સડિત હોય (૧૩) આંખમાથી આસુ વહેતા હોય, આ પ્રમાણેના અલિગ્રહથી ને આહાર મળશે તેા હું પારણ કરીશ આ તેર બોલમાથી એકની પણ ખામી હશે અને અલિગ્રહ પૂરા નહીં થાય તેા છમાસી તપસ્યા કરીય આ પ્રમાણે મનોમન નિશ્ચય કરીને ભગવાન ભિક્ષાને માટે કોશામ્બીના ઘરે ઘરે પરિભ્રમણ કરતા હતા, પણ કોઇ ઘરમા આ તેર બોલના અલિગ્રહ પૂર્ણ થતો ન હતો (સૂ૦૯૪)

सूत्रम्—एवं परित्यज्य भगवं अहमार्णं पातिस्य सोमा अग्नं यज्जं विततयेति, तस्य केर एवं वयंति-
'एत यं विपश्च परित्यज्य अहः, य उच भित्तवं गिरहः, एतय केणवि कारेण ह्ययज्य'। केर वयंति-‘उम्भ-
वणेण ममा’। अदरे वयंति-अयं हस्त वि रण्यो रुचयरो किं निविहं कजमुपिसिय अहः। अण्णे वयंति-
चोरोड्यं, चोरिययुपिसिय अहः। एगे वयंति-‘एसो चरिमो वित्ययरो अभिगारेण अहः’। तमो पच्छा सव्वे
ज्जा जामिमु नं एत नं तेह्वकनारे सव्वनगनीचियगरे समणे भगवं महावीरे दुष्करुकरेण अभिगारेणं अहः।
मदमग्गा अदरे नं य परित्स महापुरीसस अभिगार पुरितं न सक्कामो। एव अहमायस्स भगरओ यंचविद
सोभा उम्भस्सा दीरह्वता। तए यं बीए दिवसे लीहनिगहवंषलोढणपडिनिहिसिम्भ अणारुक्कीणमवंपयण
गेहवं कळं ओइयाद्वक्कीए भगवं पण्यवसेट्ठिणो गिरे वंदणवाछाए अंठीए समणुपणे। त वहुंम सा चंदणा इह्वुडा
विचमाणंदिपा हरिसवविसप्पमाणंदिपा चित्ते—

“अदरे पच मए पणं, हित्ति पुणं ममसिचि।

नं इमो अतिरी पचो, कप्पवत्तो मयणो” ॥ ९ ॥

पि चित्तिय भगवं परयेर-जोवियं इमे यच यदंसस, तदवि जार कप्पणिज्जं तो मनोवरि किंव काल-
गिह्वट। तए यं से भगवं तस्य चारस ययाणि पडिपुष्पाणि पासर, अस्सुत्वं चैरसम एय न पासर, तमो
भगवं पडिबियदहः। पडिपियदमणं भगव दह्मं वक्का परिचिचेर—

“आगमो भगवं एत्थ, पच्छा एतो नियहिमो।

हिरुकम्मं मए चिन्ना, जस्सिमं एतिसं फलं” ॥ ९ ॥

अहं केरिसी भवप्पा अयुष्सा अकयत्त्वा अहययुष्सा अकयत्त्वत्तप्पा अकयत्तिवा कुत्तदेमं मए जम्म
जीवीयफळे, जीए इमा एयाक्का दुइपरंपा छद्दा एणा अभिस्समन्नामया। मम अह्ममत्तपारणमे समागमो एयारिसो
गरियसिनाहो महाद्वनी महावीरो भगवं अपठिसामिणो वेव पडिजियसो। गिराममो कप्पस्स वो हयाओ अय
तसिओ। इत्थगयं बत्तरय्मं न्हंणि कट्ठ सा चंदणावाछाए रोइममारोअ। तए यं भगवं चैरसमं वयं पडिपुणं
चिप्पाय पडिबियडिय केणवत्तमाए इत्थामो वफिफ मत्ते करपसे पडिग्गारिय पाण्य क्काली।
तेणं कालेवं तेणं समएणं तस्य यं यक्कावसेट्ठिस्स गिरंति सेवेदि पंचदिय्याए पगदीकयाई। त जहा-
मयारापुडा १, दस्सदरनं क्कसुमे विभाए २, वेयुजखेव कए ३, आइयाओ दुइदीओ ४, अंतरा चियणं अगासंसि
यहा दामं यदो वण्णसिपुडे य ५। येना अयनय सयं पठंममग्गा चंदणवाछाए मदिमं कुरियु। तीए सिगहवं

ધ્રણદ્વાર્ણમિ હૃત્થપાયા વલય ળેઊરસમલંકિયા જાયા, કેસપાસો સુંદરો સમુબ્ધ્રઓ । તોષ સર્વં સરીરં નાણાન્નિહ-
વત્યાલંકારવિશ્રૂસિય સંજાયં । સર્વત્થ હરિસપ્પારિસો જાઓ । દેવદુંદુહિન્દ્રુર્ણિ સુણિય લોગા તત્થ આગંતૂણ ચંદણ-
વાલં થુંડસુ, ધણાન્નહસેટિસ્સ ધણવાયં દલમણા તબ્બજ્જં મૂલં નિંદિસુ । તં સોઙ્ગ ચંદણવાલા લોગે નિવારેમાણી
વદીઅ-મો લોગા ! એવં મા વય્થુ મમ ઉ એસેવ મૂલા માયા અણંતોવગારિણી અત્થિ, જપ્પભાવેણ અજ્જમપ્પ એરિસે
સુઅવસરે લહેદ્દે પત્તે અભિસમન્નાગપ્પ ત્થિ ॥મ્મ૦૯૫॥

છાયા—એવં પ્રતિદિનં ભગવન્તમટન્તં દૃષ્ટ્વા લોકા અન્યોડયં વિકર્તયન્તિ તત્ર કેચિદેવં વદન્તિ—‘એપ્પ સ્વહ
મિથુઃ પ્રતિદિનમટતિ, ન પુનર્મિશાં ગૃહ્ણતિ, અત્ર કેનાપિ કારણેન મત્રિતવ્યમ્’ । કેચિદ્વદન્તિ—“ઉન્મત્તત્ત્વેન
‘મ્રમતિ’” । અપરે વદન્તિ—અયં કસ્યાપિ રાજ્ઞો ગુપ્તવરઃ કિમપિ વિશિષ્ટં કાર્યમુદ્દિશ્ય અટતિ । અન્યે વદન્તિ—ચૌરોડયં
ચૌર્યમુદ્દિશ્ય અટતિ । એકે વદન્તિ—‘એપ્પ ચરમસ્તીર્યકરોડમિગ્રહેણાટતિ’ તતઃ પશ્ચાત્ સર્વે જના અજાનન્—યદ્ એષ સ્વહ
કૈલોક્યનાથઃ સર્વજગજ્જીવહિતકરઃ શ્રમણો ભગવાન્ મહાવીરો દુષ્કરદુષ્કરેણામિગ્રહેણાટતિ, મન્દભાગ્યા વયં યવ્

મૂલ કા અર્થ—‘એવં’ ઇત્યાદિ । ઇસ પ્રકાર પ્રતિદિન પરિશ્રમણ કરતે હુપ્પ ભગવાન્ કો દેવકર લોગ
પરસ્પર તર્કણા કરતે યે । ઉનમ્મેં સે કોઃ કહતે—યહ મિથુ પ્રતિદિન પરિશ્રમણ કરતા હૈ, કિન્તુ મિશા નહીં
લેતા । ઇમમ્મેં કોઈ કારણ હોના વાઢીપ્પ । કોઈ કહતે—પાગલપન કે કારણ ધૂમતા હૈ । દૂસરે કહતે—યહ કિસી
રાજા મા જાગ્રુસ હૈ । કિસી વિશેષ કાર્ય કો લેકર ધૂમ રહા હૈ । કોઈ કહતે—યહ ચોર હૈ, ઓર ચોરી કરને કે
ઉદ્દેશ સે ધૂમ રહા હૈ । કોઈ કહતે—યહ અન્તિમ તીર્થકર હૈ, અમિગ્રહ કે કારણ ધૂમતે હૈ । તત્પશ્ચાત્ સમી
જનોં કો જ્ઞાત હો ગયા કિં યહ ત્રીન લોક કે નાથ, જગત્ કે સમસ્ત જીવોં કે હિતકારી, શ્રમણ ભગવાન્

મૂળનો અર્થ—‘એવં’ ઇત્યાદિ. આ પ્રમાણે પ્રતિદિન શ્રમણ કરતા ભગવાનને બેઠાં, લોકો તર્કવિતર્ક કરવા
લાગ્યા લોકોનો કેટલોક ભાગ બોલતો હતો કે, આ બિશુ હ મેશા કર્યો કરે છે પરંતુ કલ્યાલેતા નથી, માટે કોઈ
પથ કારણ હેલુ બેઠાં કોઈ કોઈ તો બોલતા હતા કે પાગલ થઈ જવાને કારણે ધૂમ્મા કરે છે. કોઈ કોઈ એમ
પથ બોલતા હતા કે રાબના બસુસ છે, બેથી કોઈ વિશિષ્ટ કાર્યને માટે અહિં તહિં કર્યો કરે છે. કોઈ કોઈ તો
એમ પથ બોલતા કે આ સાધુ ચોર છે, અને ચોરી માટે ચારે તરફ બેથા કરે છે. કોઈ કોઈનું બોલવું એમ પથ થતું
કે આ હંદલા તીર્થકર છે અને પોતાને અભિચક પાર પાડવા આવી રીતે ગમનાગમન કર્યો કરે છે લાખા વખત પછી
દરેકના બાથવામા આવ્યું કે આ બિશુ ત્રિલોકીનાથ છે જગતના સર્વ જીવોનો હિતકારી શ્રમણ ભગવાન મહાવીર છે.
અને પોતાના અભિચકની પૂર્તિ માટે કરે છે પથ અભિચક પૂરો થતો લાગતો નથી.

नष्ट ईदृशस्य महापुरुषस्याधिग्रहं पूर्णितुं न शक्नुमः'। एतदटो भगवतः पञ्चद्विषसोनाः पणमासा व्यतिक्रान्ताः। ततः नष्ट द्वितीये दिवसे सोमनिपादवन्धनप्रोटनप्रतिनिधित्वे अनादिकालीनमवबन्धनप्रोटन कर्तुं छोड़कारस्या नीयो भगवान् धनावरभेष्टिनो सुदृष्टे चन्दनवालाया अन्तिके समनुभास, त दृष्टा सा चन्दना इष्टद्वया विचा नन्दिता इष्यभविमर्षद्वया चिन्तयति—

“अहो पानं मया प्राप्तं, किञ्चित् पुण्यं ममास्त्यपि।

यदप्यस्मि अविधिः प्रसातः, फल्यद्वसो ममाङ्गणे” ॥ ९ ॥ इति।

चिन्तयित्वा भगवन्ते प्रार्थयति—“नोचितमिदं मर्कं भवन्तस्य, तथापि यदि फल्यनीय तदा ममोपरि कृपां कृत्वा दृष्टातु”। ततः लच्छ स भगवत्स्वभद्रावधपदानि प्रविष्टानि पश्यति अश्रुरूप प्रयोद्वं पदं न

महावीर है, और अतीव दुष्कर अभिग्रह के कारण झमझ कर रहे हैं। हम लोग मन्दभाग्य हैं कि ऐसे महा पुरुष के अभिग्रह को पूरा नहीं कर सकते। इस प्रकार भगवान् को घूमते-घूमते पाँच दिन कम छ माह हो गये। तब दूसरे दिन सोहरे की वेदियों को तोड़ने के स्थानापन्न अनादि कालीन संसार-बंधनों को तोड़ने के लिए सोहकार के समान भगवान् धनान्न संत के घर में चन्दनवाला के समीप पहुँचे। भगवान् को दलकर चन्दना दृष्ट-दृष्ट हुई। उसके विषय में जानन् हुआ। हर्ष से उसका हृदय विक्रमिष्ठ हो गया। यह सोचते हैं—

“किञ्चित् पुण्य क्लेप है मेरा, मुझे मिले यह पात्र भगवान्।
अविधि रूप में फल्यद्वस ही, उग आया भोगन-उद्यान” ॥

इस प्रकार विचार कर उसने भगवान् से प्रार्थना की—‘यह मात्र भगवान् के योग्य नहीं है, तथापि यदि कल्याणीय हो, तो हे भगवान्। सुष्ठ पर कृपा करकं प्रार्थना कीनीय।’ तब भगवान् ने वही बारह बोलों का

आ प्रभारे अवसरवर करवां छ भठिन्यामां पाँच दिवस जोध जोरवो अमर पसार धरि गये। आ व्यतीत वधतना मीने व दिवसे देह छेक जोक धेर आहोदर अर्थे अर्थ पक्षेय्या, तो तां दोहानी वेदित्वाधी अधावेद रिशतिमां अहन्यावा नामनी देह जोक दुभारिकाने तेमवे धनावक रोदना अकानभां जेह अकपान अवे साक्षात् दोधनी देह तोदवाने अवे अन्नादि अदिक सखास्ती जेद्रीने तोदवावाणा छेकार आन्ना न होन। तेम अहन्यावा अमवाने जेह ६५मी पुष्टित धरि तेना बिचामां आनद व्यापी अवे। तेनु दुष्टक निकसित सयु अने ते विद्यापवा धामी हे “कृणु मे पाप कर्ता पाठ वाणीने जेकु छे हे रोम पुण्डना प्रतारे आच भवानपात्र आरी पासे आनी यधमा। अने आ अन्तिम रूपमां कणपुष्ठ व आरा आंजक्य हे दिवदानमां कभी नहिजु आ प्रभारे विचार्यी तेद्वे जे प्रभुने प्रायना करी हे हे अन्न वान। आ लोचन अक्षरु करवा रोम्य नकी, कर्ता कृपया रोम्य होव तो हे अमवान, आच भवेरपानी करी भये। अनी आरी प्रार्थना छे

पश्यति, ततो भगवान् पतिनिवर्तते । पतिनिवर्तमानं भगवन्तं दृष्ट्वा चन्दना परिचिन्तयति—

“आगतो भगवानत्र, पश्चादेव निवृत्तः ।

किं दुष्कर्म मया चीर्णं, यस्येदमीदृशं फलम्” ॥ ९ ॥

अह कीदृशी अधन्या अपुण्या अकृतार्थो अकृतपुण्या अकृतलक्षणा अकृतत्रिभवा, कुलञ्चं खलु मया जन्मजीवीतफलम्, यया इयमेतद्रूपा दुःखपरम्परा लब्धा=प्राप्ता अभिसम्भवागता । ममाष्टमतपः पापणके समागत एतादृशो-वृद्धिताभिग्रहो महासुनिर्महावीरो भगवान् अप्रतिलम्बित एव प्रतिनिवृत्तः गृहाऽऽगतः, कल्पवृक्षो हस्ता-दपसृतः । हस्तगत वज्ररत्न नष्टमिति कृत्वा सा चन्दनचाला रौद्रितुमारभत । ततः खलु भगवान् त्रयोदशं पद

पूर्ण होना देखा, किन्तु ओम् रूप तेरह तेरहवाँ चोल नहीं देखते । इस कारण भगवान् चापिस लोटने लगे । भगवान् को लौटते देख चन्दना सोचती है—

हाथ हाथ प्रांगण में मेरे, रखकर वरद चरण भगवान् ।
लौट रहे है लोकनाथ यह, मैं कैसी पापों की खान ॥

मैं कैसी अधन्य हूँ, पुण्यहीन हूँ । अकृताथ हूँ । मैंने पुण्य नहीं किया, मैं सुलक्ष्णों से हीन हूँ, मैंने विभ्रव नहीं पाया । मुझे जन्म का और जीवन का भला फल नहीं मिला, जिसने इस प्रकार की दुःखपरम्परा का लाभ किया, प्राप्ती की और सामना किया । मेरे तेले के पाणन के अत्रसर पर आये हुए ऐसे अभिग्रहधारी महापुनि महावीर भगवान् आहार लिए बिना ही लौट गये, जैसे घर में आया हुआ कल्पवृक्ष ही हाथ से चला गया । हाथ, हाथ आया हीरा गुम हो गया । इस प्रकार विचार कर चन्दनचाला रोने लगी । उस समय भगवान् ने तेरहवाँ चोल

अर्धो भगवाने अभिशङ्कनी आर शरतो पूर्णं यती न्नेह, पशु तेरभी शरत नेवाभां आवी नडि, तेथी भगवान् पाछा वणवा लाव्यः भगवानेने पाछा इस्ता न्नेह च्छन्दनाला शोक करवा लागी के ‘आगेलो आवेल साक्षात् देवाधि-देव पाछा इरी रह्या छे, हुं’ केवी अभागाणी छु के हाथमा आवेलुं रत्न जोछ भेडी ! हुं’ भरेपर पापणी छु’, अकृतार्थ’ छु, पुण्यहीन छु, विभवहीन छु, भने मारा जन्म अने ज्वननु शुल क्षण न भण्युं’ भने असागाणीने ज्वनमा हुं’ पर पशव्योने ज दास भण्ये। भारी को कमनस्तीथी छे के मारा अहुभना पारखे आवेला आवा अभि-अही सुनि भगवान् महावीर आहार विना पाछा वणी गया। धरमा आवेलु कल्पवृक्ष हाथमाथी आव्युं गयुं’ अरे ! मे’ ते। हाथमाथी आवेलुं रत्न गुमाव्युं । आवा प्रकरने। शोकविदाप करी च्छन्दनाला रुडा लागी, अने तेनी आपमा अजअणीया आव्यां, च्छन्दनालांनी आंभमा ज्या आसुनु पिडि वेणायु के भगवान पाछा पधार्थ। करखु के

प्रतिपूर्व पित्राय प्रतिनिहित्य चन्दनबालाया इत्यादौ वापितमाषान् करणमे परिशुष्य पारणमक्रायीत ।

तस्मिन् काष्ठे तस्मिन् समये तस्य ललु घनावरधेष्ठिनो गुरो देवैः पञ्चदिव्यानि पञ्चटीकृतानि । तपया-
रुधुपारा दृष्टा १, दशार्देव्यानि द्रुममानि निपातितानि २, वेसोत्सेपः कृतः ३, आहवाः दुन्दुमयः ४, चन्द्रराजपि
व ललु बाकानो 'ओदानम् ओदानम्' इति पुषितं व । येवा नयजय शब्दं प्रयुञ्जानाः चन्दनबालाया मदि
मानमकुर्वन् । तस्या निगडचन्दनस्थाने इत्यादाँ वलयनपुरसमलस्कृतं नावम् केशपात्रः सुन्दरः समुद्रतः ।
तस्या सर्वं श्रीरं नानाविपयसालङ्कारविभूषितं सजातम् । सर्वं रत्नप्रकरणोभात । वेवदुन्दुभिध्वनिं श्रुत्वा लोका
स्त्रिमाज्जाल्य चन्दनबालाप्रदुस्त्रन्, घनावरधेष्ठिने चन्दनबाँ दवतस्तस्त्रायो मूलामनिन्दन् । तच्छ्रुत्वा चन्दनबाला
लोकान् निभारयन्ती अवदत्- 'सो लोकाः । एवं मा वदन्तु, मम तु एवैव मूला माता अनन्तोपकारिणी भस्ति,
यसमावेज अथ मया ईश्वः अवसरो उरुषः प्राप्नोऽभिसम्पन्नागत इति ॥ सु० ९५ ॥

एवं हुमा नानकट, लौकिक चन्दनबाला के हाथ से उड्ड के बाकछे करणत्र में प्रण कर के पारणक किया ।
उत्त काल और उस समय, उस घनावर सेठ के घर में देवोंने पाँच दिव्य प्रकट किये । यह इस
प्रकार-(१) सौनैयो की बर्षा हुई (२) पाँच रंग के फूलों की बर्षा हुई (३) बसों की बर्षा हुई (४) द्रुमभि-
योंकी ध्वनि हुई (५) 'आकाश में ओदान ओदान' का घोष हुआ । नय-नयकार करके देवोंने चन्दन
बाबा का मदिमा का प्रकाश किया । वेदियों की बगल उसके हाथ-पैर लठों और नूपुरों से झलकूट हो गये ।
सुन्दर केशपात्र उत्पन्न हो गया । उसका समस्त श्रीरं नाना प्रकार के बसों और अलंकारों से विभूषित
हो गया । सर्वत्र रत्नका उमार आ गया । वेवदुन्दुभियों की ध्वनि सुनकर, लोग वहाँ आये और चन्दनबाला की
स्तुति करने लगे । घनावर सेठ की चन्दनबाँ दवो हुए उसकी घनी मूला की किन्दा करने लगे । यह सुनकर

आश्रमा आशु'ने तेभना अनिषकनी तरभी शरव हती. तेरहेर गिह परिशुषु' बता अजवाने य इतभाबाना काशे
असन्ना व्याख्या करणत्रमा स्वीकरो अने जे रीते प्रभुके दीर्घ' तपश्चर्चाम् पाशुषु ठमुं

आ वजते धनापक रोने लो पाँच दिव्यो प्रकट भवा. पाँच दिव्यो प्रकट बता देवोंने द्रुमभी ध्वनि आये
'अवचनधारनी शेषवु करी अने च इत्याबानो अदिभा जाये। तेभा दायनी जेदिकोना रेषाने सुवर्णभूष ठवेलो अने
कपटोना अलं प्रशो. तेभा भाबाना अनेने नावे सुहर देवतावा एतिशयैर यवो. तेनु व्याधु शरीर विविध
प्रधाना यवो अने अलं शरीर विभूषित भवु सर्वत्र चर्च'गारे भवा व्याख्या. देवदुन्दुभीने। अनाच साँसली रोडे लो
उभसवा अने च इतभाबानो प्रकट करवा भ इवा. ते वजते रोडे धनापक रोने धन-वजते अने भुवा. देवदुभीनी लो

टीका—“ एवं पडिदिनं भगवं अडमाण” इत्यादि । एवं=अनेन प्रकारेण प्रतिदिनं=दिने दिने भगवन्तं=श्रीमहावीरस्वामिन् अटन्तं=अमन्तं दृष्ट्वा लोकाः=जनाः अन्योऽयं=परस्परं प्रितर्यन्ति, तत्र=कोकेषु केचित्=कतिपये लोकाः एव वदन्ति—“ एषः=अयं खलु भिक्षुः प्रतिदिनम् अटति=अमति, पुनः=किन्तु भिक्षां न गृह्णाति, अत्र प्रतिदिनमटतोऽप्यस्य भिक्षाग्रहणाऽभावे केनापि=अस्मदाद्यज्ञातेन कारणेन=हेतुना भवितव्यम् । केचित् वदन्ति—‘एष भिक्षुः उन्मत्तत्वेन=जातोन्मादतया भ्रमति’ । आरे वदन्ति=अयं कस्यापि राज्ञो गुप्तचरो वर्तते, सोऽयं स्वस्य राज्ञः किमपि विशिष्टं कार्यमुद्दिश्य=केनापि विशिष्टकार्यप्रयोजनेन अटति । अन्ये वदन्ति=चौरोऽयं वर्तते, चौर्य-मुद्दिश्य अटति । एके वदन्ति=एषः भिक्षुः चरमः=अन्तिमः=चतुर्विधः, तीर्थरुतः=जिनः अभिग्रहेण अटति । ततः पश्चात्=तदन्तरं सर्वे जनाः भगवन्तं श्रीवीरम् अज्ञानन=परिचितवन्तः—“यत् एषः भिक्षुः खलु त्रैलोक्यनाथः=

चन्दनबालने उन्हें रोक दिया, और कहा-लोगों ! ऐसा न कहो । मूला माता ही मेरी महान् उपकारिणी है, जिसके प्रभाव से आज मुझे यह सुअवसर लब्ध हुआ, प्राप्त हुआ और मेरे सामने आया ॥३०९५॥

टीका का अर्थ—इस प्रकार भगवान् श्रीमहावीर को प्रतिदिन भिक्षा के लिए पर्यटन करने देवकर लोग आपस में तर्क-वितर्क करते थे । उन लोगों में से कितनेक लोग इस प्रकार कहनें—यह भिक्षु प्रतिदिन भिक्षा के लिए घूमता है, मगर भिक्षा ले ग नहीं है, इस में कोई न कोई कारण होना चाहिए, जो हमें मालूम नहीं पड़ता । कोई कहते—यह भिक्षु उन्मत्त होने के कारण चकर काटा करता है । दूसरे कहते—यह किसी राजा का गुप्तचर है । यह अपने राजा के किसी विशेष कार्य को लेकर घूमता है । किसीने कहा—यह चोर है और चोरी के उद्देश्य से घूमता है । कोई कोई कहते थे—यह भिक्षु चौबीसवें तीर्थरुत हैं, और अपनी प्रतिव्रान्ती

करवा लाग्या लोकोने आ प्रमाखे भोलाना सालणी यदनमालाओ तेभने अटकाव्या अने कछु डे ‘आ भूला भाता न भारे। भडान उपकार करवावाणी छे। जेना प्रभाववडे आवे भने आवे। अनुपम अमसर प्राप्त थये। (सू०६५)

टीकाનો अर्थ—सामान्य पौराक ओ भिक्षुकु लोअन छे आवुं लोअन ने। अगे त्याथी प्राप्त थअ छे, छता आ लिखु बेर घेर आथडे छे, ने लोअन तेनी आअण धरवा छता ते डेतो नथी भाटे आ लिखुने। जुढे न धुजिढे। छोवे। ओछे ओस लोके। अर्दोअ हर वातो करता हुन। आ वातो सामान्यपखे आणा गाभमा यथोवा लागी, ने आ यथोभाथी अनेक प्रकारना तर्कवितर्क उला थवा लाग्या वात वाथुवेगे प्रसरता लोके आ लिखुकनी टीका करना लाग्या अने नतनतना अपगोण। केँकुवा लाग्य. आ कदपनाने। डोई पखु अत हुतो नछि. कदाय आ लिखुक डोई दुश्भनने। नसुसी भनुअ छोवे। ओछे। तेभ न कदाय जोरी करना निभिते आरेकेर तथास पखु करी रह्यो होय !

प्रियोरुस्वामी, सर्वजगतीचरितकराः=साकल्यसुखरस्यमायिकन्याणकारी भ्रमणो भगवान् महावीरः, दुष्टकरदुष्टदरेण= अतिक्रान्तिनेन अभिग्रहेण प्रदति इति। शतसे एवं शोचन्ति-अहो ! कथं=तबें मन्दभाग्या=भाग्यहीनाः स्मः यन्=परमादौ= सल्लु ईदृश्य=त्रैपावनायत्नादि निश्चितस्य महापुरुषस्य अभिग्रह पूरयितु=सम्पन्नं कर्षु न यन्नुयन्=न समर्पा भवामः। एषम्=इत्यम् अट्ट=अभिग्रहापूरुषाभिस्सार्थं श्रमतः भगवन्तः=भीवीरस्त्वामिन पञ्च दिवसोन्माः=पञ्चभिर्दिनैर्युनाः पष्पासाः व्यतिक्रान्ता =अपवीता अभवन्। तत्=पञ्चाङ्गन्यूनपाण्मासीर्यपतिक्रमणा- नन्तरं सल्लु द्वितीये दिनसे मोहनिगदवन्पनभोगनयतिनिधित्वे=ओहभ्रूलानियत्रणलण्डनस्थाने, भनादिकालिन भवन्पनभोगने=भनादिकालोद्भवभवन्पनभजन कर्तुं मोहकारस्थानीयाः=साहसारदुष्टयो भगवान् महावीरो यनाबह भेक्षिता युदे चन्दनशालाया=उषाभ्याः राजपुरुषाः अतिके=समीपे समनुभासः=समागत , तै=पुष्टभासं भीवीर स्वामिनं दृष्ट्वा सा चन्दना=चन्दनशाला, हृष्टकुण्ड=हृष्टा=रिषिता, तुष्टा=सन्तोष प्राप्ता विचानन्दिता=आनन्दितमानसा

पूर्व के लिये श्रमण करते हैं। कुछ दिनों बाद सभी जन वीर भगवान् से परिचित हो गये। जान गये कि यह निखु तीन लोह के न्यामी और संसार के पापी-मात्र के कृपणकर्ता भ्रमण भगवान् महावीर हैं, और दृष्टकर-दुष्टकर (अत्यन्त ही कठार) अभिग्रह के कारण श्रमण करते हैं। जब लोगों को पता लगा तो वे इस प्रकार शोक करने लगे-आह ! हम सब अमाने हैं, जो ऐसभिलोकीनाय महापुरुष का अभिग्रह पूर्ण करने में समय नहीं है। इस प्रकार अभिग्रह पूर्ण के निमित्त भिक्षा के लिए श्रमण करने वाले भगवान् महावीर को पाँच दिन कम उम्र प्राप्त पूर्ण हो गया। इतना समय वीर जाने के बाद, दूसर दिन, मोहकी साकल्यके कथनों को तोड़ देने के स्थानापन्न भनादि काठ से चले आ रहे भव-वन्धनों को काढ़ने के लिए छुटार के समान भगवान् महावीर पनाचर भेष्टी के घर चन्दनशाला के निकट पहुँचे। भगवान् को आये देखकर चन्दनशाला रहित हुई, और सत्राण को प्राप्त हुई उसका विश्व मानन्दित हुआ। हर्षकी अधिकता से हृदय उछलन लगा।

भावी इतिवत् निबन्धो उपरत सञ्जानो विचारप्रयास पञ्च पङ्क्तो यथा हाग्यो आ विचारप्रयास भां ज्ञानवानने तीर्थं तदीक्षे चत्वाभी तेजो हेतुं पोताना अभिग्रहने पार पादया प्रवान् कदी रखा अग्रे तेभ तेभने हाअवा भाअनु तीर्थं हेतुं पोताना अशोने तोदया भागे निविध प्रधारणा लगीरक्ष प्रयासो ज्ञानाद्ध करता कता, जेनु भटव्य पक्ष चिन्तानो आगेर कदी रखा कता, नाना प्रधारणा अपजोशानी पक्षे अ सत्य छे ते शोधनु पञ्च सुरहेव यष्ट पञ्चु कट आआ भाअनी क्यो आ निरय उपर कुन्नि कर्त कती बोहे। पक्ष अयो करता याही अया कता, हाअव हे ज्ञान

हर्षवशविसर्पद्वया=हर्षाधिपयेनोच्छलद्धृदया सती चिन्तयति=मनसि विचारयति-‘अहो पत्तं’ इत्यादि-‘अहो’-इति विस्मये’ मया पात्रं=सुपात्रं प्राप्तं=लब्धम् । ममापि किञ्चित् पुण्यम् अस्ति, यत्=यस्मात् हेतोः अयं कल्पवृक्षः=कल्पवृक्षतुल्यः अतिथिः=भिक्षार्थी मुनिः ममाङ्गणे प्राप्तः=समागतः । ” इति चिन्तयित्वा भगवन्तं प्रार्थयति-हे प्रभो ! यद्यपि भदन्तस्य=कल्याणकारकस्य इदम्=एतद् भक्तम्=आहारः नोचितं न योग्यं, तुच्छत्वात्, भवा-दशस्यातिथेयं तु विशिष्ट भक्तं समर्पणाय, तथापि-यदि एतत् तुच्छमपि अन्नं संतोषाप्तपायिनो भवतः एषणीयेषिणः कल्पनीयम्=एषणीयं भवेत्, तदा=तर्हि ममोपरि कृपा=दयां कृत्वा एतदन्नं शुद्धो=स्वीकरोतु भवान् । ततः खलु स भगवान्=श्रीवीरस्वामी तत्र द्वादश=अभिगृहीतेषु त्रयोदशेषु पदेषु द्वादशसंख्यानि पदानि प्रतिपूर्णानि=अविकलानि पश्यति, किन्तु तत्रैकमेव अश्रुरूप-नेत्रोदविन्दुलक्षणं त्रयोदशं पदं न पश्यति, ततः=तस्मात् कारणात् भगवान्=श्रीवीरस्वामो प्रतिनिवर्तते=परावृत्तो भवति, प्रतिनिर्तमान भगवन्तं-श्रीवीरं दृष्ट्वा चन्दना=चन्दनवाला परिचिन्तयति=मनसि संविचारयति-‘भगवान् श्रीवीरस्वामी अत्र आगतः, पश्चात् भक्तमगृहीत्वैव एषः=श्रीवीरस्वामी

वह मन ही मन सोचती है-ब्रह्मा, आज मुझे पुत्रात्र की प्राप्ति हुई, इस से प्रतीत होता है कि मेरा कुछ पुण्य शेष है, जिससे कल्पवृक्ष के समान यह भिक्षार्थी श्रमण मेरे आंगन में आये है, इस प्रकार विचार कर चन्दन-वाला भगवान् से प्रार्थना करती है-‘प्रभो ! यद्यपि तुच्छ होने के कारण यह आहार आपके योग्य नहीं है; आप जैसे अतिथि को तो विशिष्ट आहार अर्पित करना उचित है; तथापि यह तुच्छ अन्न भी सन्तोषाप्त भीने वाले तथा एषणीय आहारकी एषणा करने वाले आप को कल्पनीय हो तो मुझ पर दया करके इसे स्वीकार कर लीजिए ।’

तब भगवान् ग्रहण किये हुए तेरह बोलों में से बारह बोलोंकी पूर्ति हुई देखते हैं, सिर्फ बहते आँसू जो तेरहवाँ बोल था उसे नहीं देखते । अतएव भगवान् श्रीवीरस्वामी वहाँ से लौटने लगते हैं । भगवान् को लौटने देख कर चन्दनवाला मनमें विचार करती है-भगवान् श्रीवीरप्रभु यहाँ प्यारे और आहार ग्रहण किये

लग छ मासने। वज्रत व्यतीत यथां ते वात न्दुनी अने पुराणी अनी गार्ड हरी अने आदना छतिहासमा नयनवा प्रकण्ठे। दिनप्रतिदिन उपस्थित थला लोकेने। रस आ पायतमा धटवा लाग्यो। भगवान् पणु ध्विष्ठ आहारने। डभण्णं नेण नथी केम विचारी शात रडी आहार भाटे अजी मथाभणु नडि करता शातयित्ते आत्मन्थनमा शित्त परोवा लाग्या सन्ननेने मन आ वात हुदयमा पूयवा लागी के आटआटो। वज्रत पसार थर्ह गये। छता अने भगवान् ने ध्विष्ठ आहार आपी शक्या नडि । ते अमाइ भदेणइ कमभाज्य छे। भगवान् ने तो आ पायतनु दु भ डुंज नडि डारणु के तेमने तो आवा आना नीये वधारे डर्मक्षय थतो। डोवाथी, तेमज आत्म-स्वभावनु प्राणस्थ पधवाथी

निराशः=राशय गतः। मया किं दुष्कर्म=दुष्कृतं=पापं चीर्णं=कृतम् यस्य=दुष्कर्मणः इदम् अयम् फलं प्राप्तम्=उदपायविनाशमागतम्। तथा-अहं कीदृशी अपत्या=अपशस्या अपुण्या=पुण्यरीना अकृतार्या=अकृतकृत्या, अकृत पुण्या=अननुष्ठितपुण्यकर्म अकृतलक्षणा=लक्षणारीना=अक्षस्तम्भलक्षणविता अकृतविभवः=असम्पादितवैभवा अस्मि, मया लच्छ जन्ममीचीतकृत्य=अन्यो जीनीतस्य च फल कुलम्भं=कुलितरूपेण प्राप्तम्, यथा-अधन्यत्वादिविधि एषा मया इयेतद्रूपः=दृष्टी दुःस्वप्नरूपरा लब्धा=उपार्जिता, प्राप्ता=उपार्जिता सती स्वायसीकृता, स्वायची यूताऽपीयं दुःस्वप्नरा अभिसम्पन्नागता आभिः=आमिषस्येन सन्=साहस्येन प्राप्तेः अनुपपन्नात् आगता=मोग्यताश्रयता। तथा-यम अष्टमपः पारणे समगतः, एतादृशः=इदृशः दुष्कर-दुष्करः दुर्गताभिप्रो महाद्विनि महावीरो भगवान् अमतिनिमित्तः=यत्कम् अमतिप्रारित एव प्रतिनिवृत्तः परावृत्त्य गतः। तन्मन्ये-युहागतः=युहाभागा कृतवृत्तः इत्तात् अपस्तुतः=दूरीयतः। तथा-इत्यागतः=इत्तास्थित वज्ररत्नं=सर्वतन्त्रेभ्यः श्रेष्ठ वज्राख्ये रत्नं नष्टम्=अपगतम्। इति कृत्या=इत्थं परिचित्य सा चन्दनबागा रोक्षितम्=अधूनि विमोचयितुम् आरमतः=आरब्धवती। ततः=चन्दनवालाया रोदनानतरं लच्छ भगवान् द्योवीरस्वामी सैव चन्दनासुरेऽपिष्टमेकं अयोधसं

विना ही लौ गये। न जाने मैंने क्या पाप-कर्म किया है, जिसका ऐसा अष्टम फल उदय में आया है। मैं कैसी अधन्य हूँ, पुण्यहीन हूँ। मैंने पुण्य-उपाजन नहीं किया। मैं मुलसणी नहीं हूँ। मैंने कोई वैभव नहीं पाया। मुझे जन्म का और जीवन का ऐसा दुष्फल मिला है। जिससे कि मुझे ऐसी दुःख-परम्परा की उपमप्ति हुई, प्राप्ति हुई और दुःस्वप्नपरम्परा ही मेरे सन्तान आई। अष्टमसमस्त कं पारणे के भवसर पर ऐसे अत्यन्त दुष्कर अभिप्राह को पारण करने वाले महाद्विनि महावीर यह भाहार भिये बिना ही चापित लौट गये, जो मैं समझती हूँ कि घर में आया कस्तूरुक्ष ही हाथ से चला गया। मानों हाथ में आया हुआ सर्वोत्तम हीरा गुम हो गया। इस प्रकार विचार करके चन्दनबाग खन करने लगी-उसके नेत्रों से

अश्रुं आनसनी डेवी परवती डेवी, छर्पां शरीर साधेता पूर्वं स योजन केहं किं पार डेवीयु हाइय छर्पां आदारनी पृथ्वा प्रभु पक्ष डती छत्ता ते धिक्कने सान्धेन दास विवेकशी शांत पावता आने विआरता है, हाग बन्धारे परि पवन धरो त्वादे न आकारनी नेजवाहं आधोवाप यर्ध करे। आ प्रभावे हाग ल्पतीत वार्ता छ भद्रिनामा पांय विनस ज्योअ रहेतां भनावक शेने त्वा आकार अहं अत्रवानयु आचमन कयु त्वादे तेभ्ये प्रविशत वस्तुभ्यो सभम पत्ते खेवन भवेवी मोह. परत कोह दुष्कन वस्तुने अवाव ल्पतां ते पाछा पनवा लावा. आ वस्तु को है लुहनेना तीन उल्लाभ. आने ते उहवासनी नान्धेनवाती पछा. है अशुष्यत आ आने न वे। आचनना पक्ष छर्पां है सभमना

पदं=यस्तु प्रतिपूर्णं विज्ञाय प्रतिनिवृत्य=परागत्य चन्दनवालायाः हस्तात् वाष्पितमाषान्=स्विन्नमाषान् 'वाकुला'
इति भाषा प्रसिद्धान् कारपात्रे=हस्तभाजने प्रतिगृह्य=आदाय पारणम् अकार्पीत=कृतवान् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये=श्रोमहावीरस्वामीनो भिक्षाग्रहणकालावसरे तस्य=चन्दनवालाक्रेतु-र्धनावह
श्रेष्ठिनः गृहे दैवः पञ्चदिव्यानि=अनुपदं वक्ष्यमाणानि वसुधारादिकानि वस्तूनि प्रकटीकृतानि-तद्यथा-दैवः वसु-
धारा=स्वर्णदृष्टिः दृष्टा=कृताः १, दशार्द्धवर्णानि=पञ्चवर्णानि कुसुमानि-पुष्पाणि निपातितानि=दृष्टानि २, चेलोत्क्षेपः=
वज्ररूपणं, कृतः ३, दुन्दुभयः=भैरवः आहताः=ताडिताः-वादिताः ४, अन्तरापि च खलु आकाशे 'अहोदानम्-
अहोदानम्' इति एतद्वचनं घुषितम्=उच्चैरुच्चारितम् ५ । ततश्च देवाः जयजय शब्दं प्रयुज्जानाः=वदन्तः चन्दनवालाया
महिमानम्=प्रभावम् अकुर्वन्=ख्यापितवन्तः । तस्या=चन्दनवालायाः निगडवन्धनस्थाने हस्तपाद हस्तद्वयं पादद्वयं च
वलपन्नूपुरसमलङ्कृतं=वलयाभ्यां नूपुराभ्यां च समलङ्कृतं जातम्, मुण्डितशिरसश्च तस्याः केशपाशः=केश-
नमूहः सुन्दरः=शोभनः सधुद्भूतः=सजातः । तथा-तस्या=चन्दनवालायाः सर्वशरीरं नानाविधयत्नालङ्कारविभूषितं=
बहुप्रकाररत्नलङ्कारगुणगुणोभिर्न सजातम् । सर्वत्र=वर्चोभ्यन् स्थाने ह्यप्रकर्षः=आनन्दान्तिशयो जातः लोकाः जनाः

आसू वहने लगे । चन्दनवाद्या के रुदन करन पर भगवान् शेष रहे हुए एक बोल की पूर्ति हुई जानकर
पुनः वापिस लौटे । लोटकर चन्दनवाला के हाथ से उवले हुए उडद-वाकले-करपात्र में ग्रहण किये ।

उस काल और उस समय में अर्थात् भगवान् महावीर के भिक्षा ग्रहण करने के अवसर पर चन्दन-
वाला को खरीदने वाले धनावह सेठ के घर देवीने पाँच दिव्य वस्तुएँ प्रकट कीं । वे इस प्रकार हैं—
(१) देवीने स्वर्णमुद्राओं की दृष्टि की (२) पाँच वर्ण के अचित फूलोंकी वर्षा की (३) वखोंकी वर्षा की
(४) दुन्दुभियां बजाई (५) आकाश के मध्य में 'अहो दानं, अहो दानं' का उच्चस्वर से घोष किया ।

तत्पश्चात् देवीने 'जय-जय' शब्द का प्रयोग करके चन्दनवाला की महिमा प्रसिद्ध की । चन्दन-
वाला की बेटियों की जगह दोनों हाथ कंकणों से और दोनों पैर नूपुरों से अलंकृत हो गये । उसके मुंडित
मस्तक पर सुन्दर केश-पाश उत्पन्न हो गया । सारा शरीर भक्ति=भक्ति के वखों और आभूषणों से सुशोभित

पोताना धृष्टदेवने भाटे हुधयने। उल्लास छिण्णते होय तेनाभा आ जे वाना ते। बरर होवा घटे । उपरोक्षत बाव भग-
वाने न्यारे पाछा वणती वयते ज्ये। डे तरत न चेताने। अभिग्रह पूरा थयेवे। ज्ये। अने लक्षते। डुणो-सुडे। आहार
वडोरी लक्षते। हुधयना अने तेना ससारना तीव्र बंधने। तोडी नाच्यो तेमन लक्षत बंधनथाणाने भरथुना असह्य

देवदुन्दुभिरचिन्ति=देवदुन्दुभिः कथं भूत्वा तत्र=चन्दनाधिष्ठितस्थाने आगत्य=चन्दनवालाय् अस्तु वन=तत्प्रभावपूर्णं
 पात्रैः स्तुतवन्तः। तथा=धनावधेष्टिने धन्यवाद ददतः तद्भाष्यो=धनावाहपत्नीं मूलाय् अनिन्दन्=विश्वसन् ।
 सत्=मूलानिन्दने भूत्वा चन्दनवाला लोकान्=मूलं निन्दतो जनान् निवारयन्तो अक्षत=उक्तवती-; मो लोकाः।=
 हे जनाः! एवम=अनेन प्रकारेण या वदन्तु मम तु पूषण=इयमेव मूला माता अनन्तोपकारिणी=अत्यन्तोपका
 रिणी च अस्ति, यत्प्रभावेण अद्य=अस्मिन्दिने मया ईदृश=शीघ्रमयोरभिराग्रपूरणरूप स्वस्तर=अश्वत्थमसङ्गः,
 मरुप=अधिगत, मातृ=स्वायचीयुतः, तत्प्रभाय=अभिसमन्वागतः=अभि=आभिमुख्येन, सं=सांगत्येन अतु=मासे
 प्रभात आगत=मुपावदान्त साफल्यमुपगत इति ॥सू०१५॥

मूलम्=उप स्र 'एसा वदन्वाला समस्त मगवयो महावीरस्य पदमा सिस्सिणी नविस्स'=पि आगतंसि
 देवेहि बुद्धि। का एसा वदन्वाला नीए इत्थेण मगवयो पारणत भाय=।" ति तीए चरितं संखेवो ईसिज्ज=

एवमा कोसरी नयरी नातो सयाभयो भायं राया रया वयरीभायं वविवाशनाभिं निवं अक्कमिय दुष्णी
 ईए वपाणयिं छुंणीअ। वविवाशयो राया पलाइयो। तयो सयाणीयरयस्स कोवि मढो वविवाशरायस्स पारिणी
 पामं मदिनीं वट्टमई पुत्तिं च रंमि ठाविय कोसंविं नयइ, मग्गे सो मणइ=इमं मदिंसि मज्जं करिस्सामिचि।
 तयो धारिणी वेनी तं वयणं सोळा निसम्म सीलमंगमएण सपणीई अक्करिसिय मया। त वट्टम मीयो सो

हो गया। सब जगह सब हरे ही हरे जा गया। देवदुन्दुभी का पोप सुना, तो सब लोग वहीं आ पहुँचे, जहाँ
 चन्दनवाला थी और उसके प्रभावकी प्रशंसा करने लगे। सबने धनावाह सेठ को वन्यवाद देते हुए उनकी पत्नी
 मूला की निन्दा की, उसे पिक्कार दिया। मूला की निन्दा सुनकर चन्दनवाला निन्दा करने वाले लोगों को
 रोक्षती हुई कहने लगी- 'हे माईयो इस प्रकार मत बोलो। मूला माता ही मेरा अनन्त उपकार करने वाली है,
 जिसके प्रभाव से आज मैंने-मगवान का अभिप्राय पूर्ण करने का यह शुभ अवसर लाभ किया है पाया है
 और समुत्पन्न किया है। अर्थात् यह मूला माता का ही उत्कार है कि मैं मगवान का अभिप्राय पूर्ण करके
 मुपावदान का फल पा सकी ॥सू १५॥

जेलभांभी भुज इरी. अत्राथ दुर्जन अतर्भा धरेडी देनाइ तेनी छेवती भूला भातानी निदा करनार दोडिने अत्रावी
 अइवणला छिाकी है, मारी भाताके भने आ प्रभावे न छुं' छेवत तो। छुं थी रीते साक्षात् अववानां इय न
 हरी सप्रत। अने भाव भउरे देडी देवा लाक छुं' भा-अ अववानां करणामा थी रीते यवत। आ अवि सयोग
 भितनी आपनार मारी भूला भाताने नेट्ठे उपकार भट तेट्ठे केडे छे। आभ छळिने भूला येडायीने अइव
 इट्टे जाम्मी पटी. (सू०१५)

भडो इमावि एयारिसं अकज्जं मा करिज्ज त्तिक्कहु तं वसुमई किंचिवि न भणिय कोसवीए चउप्पहे विक्कीअ ।
 विक्कायमार्णि तं एगा गणिया खुळं दाउं किणीअ । सा वसुमई तं गणियं भणीअ हे अंव ! कासि त ? केण
 अट्टेण अहं तए कीणीया ? सा भणइ—अहं गणिया, मम कज्जं परपुरिसपरिरंजणं । तीए एरिसं हियय वियारणं
 अण ' वज्जपायंवि वयणं सोच्चा सा कंदिउमारभीउ । तीए अट्टणायं सोच्चा तत्थट्ठिओ धणाव्हो सेट्ठी चिंतीअ—
 'इमा कस्सवि रायवरस्स ईसरस्स वा कन्ना दीसइ, मा इमा आवया भायणं होउ' त्ति चिंतीय सो तइच्छियं दव्वं
 सोच्चा तं कन्न वेयूण नियभरणे णईअ । सेट्ठी तव्वज्जा मूला य तं गियसुचिंचित्र पालिउ पोसिउं उवक्कमीअ ।

एगया गिम्हकाले अणभिक्षाभावे सा वसुमई सेट्ठिणा वारिज्जमाणावि गिहमगयस्स तस्स पायक्कखा-
 लणं करीअ । पाए पक्कालंतीए तीए केसपासो छुटिओ । "इमाए केसपासो उल्लभूमीए मा पडउ" त्ति कट्ठु तं
 सेट्ठी नियपाणिळ्ढीए धरिज्ज वंधीअ । तथा गक्कवट्ठिया सेट्ठिणा भज्जा मूला वसुमईए केसपासं वंथमाणं सेट्ठिं
 दट्ठुण चिंतीअ ।—'इमं कन्नं पालिय पोसिय मए अणट्ठं कयं, जइ इमं कन्नं सेट्ठी उव्वहेज्जा तो हं अवयट्ठा चेव
 भविस्सामि, उप्पज्जमाणा चेव वाही उव्वसामेयवित्र' त्ति कट्ठु एगया अन्नगाम गयं सेट्ठिं सुणिय सा नाविएण
 तीए सिरं डुंडाविय सिल्लाए करे निगडेण पाए नियंतिय एगम्मि भूमिगिहे तं ठाविय त भूमिगह तालएण
 नियंतिय सयं तस्सि चेव गामे पिउगेह गया । सा य वसुमई तत्थ छुट्ठाए पोडिज्जमाणा चित्तेइ—

“ कत्थ रायकुळं मेऽत्थि, दुइसा केरिसी इमा ।
 कि मे पुरा कयं कम्मं, विवागो जस्स ईरिसो ॥ १ ॥ ”

एवं चित्तेमाणा 'सा कारागारसुत्तिपज्जतं त्वं करिस्सामि' त्ति कट्ठु मणांमि परमेष्ठिमंतं जउमारभीअ ।
 एवं तीए तिबि दिणा वइक्कता । चउत्थे दिणे सेट्ठी गामंतराओ आगओ वसुमई अदट्ठण परियणे पुच्छीअ ।
 मूला निवारिया ते तं न किंपि कहीअ । तओ कुडो सेट्ठी भणीअ—जाणमाणावि तुम्हे वसुमई न कहेह, अओ
 मज्झीगिहाओ निगच्छह—त्ति सोऊण एगाए बुट्ठाए दासीए 'ममं जीविएण सा जीवउ' त्ति कट्ठु सेट्ठिणे तं
 सव्वं कहियं । तं सोऊण सेट्ठी सिग्गं तत्थ गतूणं तालणं भंजिय दारं उग्घाडिय वसुमई आसासीअ । तएणं से
 सेट्ठी गिहे न भायणं न य भत्तं कत्थवि पासइ, पसुनिमित्तं निप्फाइए वप्फिय मासे चेव तत्थ पासइ, ते अण्ण
 भायणाभावे सुप्पे गहिय तेण भत्तं वसुमईए समधिया । सयं च निगडाइ वंथणच्छेयणट्ठं लोहयारमाकारिउं
 तग्गिहे गमिअ । सा वसुमई य स वप्फियमासं सुणं दत्थेण गहिय चिंतीअ—'इयोपुव्वं मए किंपि दाणं दाऊण
 मेव पारणणं कयं, अज्जउ न किंपि दाऊणं कहं पारेमि ? केरिसो मे दुहविवागो उदिओ, जे णं अहं एरिसं

दस सैरगा। जह कस्तसि अतिरिस्त एयं मर्च दशा अहं पारणगं करेमि, तो सेयं-चि चितीय गिरदेरलीप
एगं पायं नाहि एगं पाय व अंता क्रिवा सुगिमगं पासमणी चिद्वर। सा सेन वसुमई चदणस्सेव सीयलसरा
वचणेण चदनवालसि नामेण पसिदि पचा ॥५०९६॥

छाया—उतः लघु 'एषा चन्दनवाला भ्रमणस्य भगवतो महावीरस्य, प्रथमा श्रित्या भविष्यति' इति आकाशो
दैर्घ्यपितम्। कैला चन्दनवाला ?, यस्या इस्तेन भगवत पारणकं जातमिति-तस्याभिरि ससेपतो दृश्यते—
एकदा कौशल्यानीनारीनायः अतानीको राजा चम्पानगरी नामक दृष्टिवाहनानिषं नृपमक्रम्य दुर्नीत्या
चम्पानगरीमल्लुप्यत। दृष्टिवाहनो राजा पलायितः। ततः अतानीकराजस्य कोडवि भटो दृष्टिवाहनराजस्य पारिणी
नान्नी मरिची वसुधवीं पुत्रो च रथ स्यापयित्वा कौशल्यानीं नपति, मार्गे स सम्पति—'इमां मरिचीं मार्यो
हरिष्यामि' इति। ततो पारिणी देवी लघुचर्चनं श्रुत्वा निद्राम्य श्रीमभ्रमणेन स्वजिह्वामपकुल्य मृता।' तो इदृश

मूल का अर्थ—'तपण' इत्यादि। तदनन्तर आकाश में देवीने घोषणा की—'यह चन्दनवाला भ्रमण
मगवान् महावीर की प्रथम श्रित्या होगी।' जिसके श्राप स भगवान का पारणा हुआ, वह चन्दनवाला कौन गी ?
और उसका चरितसंमप में विलकया जाता है।

एकवार कौशल्यानी नगरी के अधिपति राजा अतानीक ने चम्पानगरी के नायक राजा दृष्टिवाहन पर
आक्रमण करक दुर्नीति से चम्पानगरी का लूटा। दृष्टिवाहन राजा मारा गया। तब अतानीक राजा का एक
पौत्रा राजा दृष्टिवाहन की घरीणी नामक रानी को और वसुधवी नामक पुत्री को रथ में बिठाकर कौशल्यानी
के चला। मार्ग में उसने कहा—'इस रानी को मैं अपनी पत्नी बनाऊंगा। घरीणी देवीने उसके यह वचन सुनकर
और समझकर श्रीकर्मण होने के भय से अपनी नीम वृक्षार लीच ली और प्राण त्याग दिये। घरीणी देवी को

भूतेनो अर्ध—'तपण' श्रुत्वा हिंसा द्योयका आक्रमणभा आवी है 'आ चन्दनवाला
भ्रमण भ्रमणन भक्तवीरनी प्रथम श्रित्या भरो' जेना काहे भगवाने आकार भदलु भरो ते चन्दनवाला देव
कती ? तेना अरुण देवक नीके वसुधवाभा आये छ—

इहं लोचनमेव कौशल्यानी नगरीना अधिपति राजा अतानीक के चम्पानगरीना नायक राजा दृष्टिवाहन उपर आक्रमण
करु' तेने कौशल्यानी च चम्पानगरीने लूटी लीधी दृष्टिवाहन राजा राजन छोटी नासी अये। त्यागला अतानीक राजने।
जिहं दोहो दृष्टिवाहन राजनी राजी धातवी आने तेनी पुत्री वसुधवीने रथभा लेबादी कौशल्यानी नगरी तरह उपरी
भयल आन भा तेके भक्ति कीकीने करु है कि तने नारी राजी चन्दनवाला आ कांमणी शीलन जना भवनी

भीतः स भटः 'इयमपि एतादृशमकार्यं मा कुर्यात्' इति कृत्वा तां वसुमतीं किञ्चिदपि न भणित्वा कौशाम्ब्या-
श्रुतुष्ये व्यक्रीणात् । विक्रीयमाणां तामेका गणिका मूल्यं दत्त्वाऽक्रीणात् । सा वसुमती तां गणीकामभणत्-
हे अम्ब ! काऽसित्वम् ? केनार्थेनाहं त्वया क्रीता ? सा भणति- 'अहं गणिका-मम कार्यं परपुरुषपरिरञ्जनम् ।
तस्या ईदृशं हृदयविदारकमनार्यं वज्रपातमिव वचनं श्रुत्वा सा क्रन्दितुमारभत । तस्या आर्तनादं श्रुत्वा तत्रस्थितो
धनान्नहः श्रेष्ठी अचिन्तयत्- 'इयं कस्यापि राजवरस्य ईश्वरस्य वा कन्या दृश्यते, मा इयमापद्भान्न भवतु' इति
चिन्तयित्वा स तद्विष्ट द्रव्यं दत्त्वा तां कन्यां गृहीत्वा निजभवेऽनयत् । श्रेष्ठी तद्वार्या मूला च तां निजपुत्री-

मृतक देवकर वह भट जराभी डरा नहीं, यह राजकुमारी भी ऐसा ही अकार्य न कर बैठे, यह सोच कर
उसने वसुमती से कुछ भी न कहा और कौशाम्बी के चौक में छेजाकर बेच दिया । विक्रती हुई वसुमती को
एक वेश्याने मूल्य देकर खरीदा । वसुमतीने उस वेश्या से कहा- 'माता, तुम कौन हो ? किस प्रयोजन से
मुझे खरीदा है ?' वेश्या बोली- 'मैं गणिका हूँ, परपुरुषों का मनोरंजन करना मेरा कार्य है ।' गणिका के
इस प्रकार के हृदयविदारक, अनार्य और वज्रपात के समान व्यथाजनक वचन सुनकर वह रोने लगी । उसका
आर्तनाद सुनकर वहाँ खड़े धनान्नह सेठने विचार किया- यह किसी उत्तम राजा की या धनिक की कन्या
दीखती है । यह आपत्ति का पात्र न बने तो अच्छा, ऐसा सोचकर गणिका को इच्छित धन देकर वसुमती को

राणी छल करदी भरी गह. धारिणी राणीनी आवी दथा नैह यो-द्धाञ्जे विचार कथो हे इदथ वसुमती पणु आ
प्रमाणे करी भैसे तो ? आथी तेणु वसुमतीने काह पणु कहुं नहि ने सीधी कोशारणी नगरीमा लह भट तेने थोके
वन्धे उली राणी अने तेनु दिवाभ करी चैसा उपजन्था आ वसुमतीनु' वेयाणु ओके वेश्याने त्यां थयु. कारणु हे
तेणीञ्जे वधादे मूढ्यनी आङ्खणी भूँही इती आ दश्य नैह वसुमतीञ्जे वेश्याने प्रश्न कथो हे 'हे माता ! तमे कोणु
छा अने कथा प्रयोजनशी तमे भारी भरही करे छि ?' वेश्याञ्जे आ साबणी प्रत्युत्तर आभ्यो हे 'हुं' गणिका छुं
अने परपुरुषोना मनोरजन माटे तारी भरही करे छु ' गणिकानु आवु अनर्थकारी हुदयविदारक अने वज्रपात
समान व्यथाजनक वचन साबणी वसुमती हुदयकाट इहन करवा लागी तेनु' इदपात साबणी त्यां उला रहेला
धनावले शेड मनमा विचार करवा लाग्या हे आ कन्या कोह उत्तम राजनी अथवा कोह शेडनी होवी नैहञ्जे. नेथी
आ आपत्तिनु पात्र न थाय तो साइं जोटले आ वेश्याने त्यां न वेयाय ते घन्धवा योग्य छ ओम विचारिने ते शेड

दत्तं संत्वा। जह कस्तस्मि अतिविस्स एय भत्तं दत्ता आहं पारणमं करेमि, तो सेय-एहि चिंतीय गिहदेहलीए एयं पायं नाहि एतं पायं च भत्तो छिन्ना सुभिममं पासमणी चिट्ठ। सा येन वसुमई चकणस्सेव सीयलससा वचणेण चइनवासचि नामेण पत्तिदि पणा ॥सु०९६॥

छाया—तब: रसछु 'एपा चन्दनवाला भ्रमणस्य भगवतो महावीरस्य प्रथमा श्रित्या भविष्यति' इति आकाशे द्रवैर्गुपितम्। कैपा चन्दनवाला?, यस्या इस्तेन भगवत पारणक नातमिच्छि-तस्याधरिं ससेपतो दृश्यते—
एकदा कौशाम्बीनगरीनाथः श्रवानीको राजा चम्पानगरी नामक द्रविवाहनमित्रं दृष्टमवक्रम्य दुर्नीत्या चम्पानगरीमल्लुप्यत। द्रविवाहनो राजा पलायितः। तत श्रवानीकराजस्य कोऽपि मठो द्रविवाहनराजस्य चारिलीं नाम्नीं महिषीं वसुपतीं पुत्रीं च रमे स्थापयित्वा कौशाम्बीं नयति, मार्गे स सण्ठि—'इमां महिषीं मार्गे करिष्यामि' इति। ततो चारिणी देवी तद्वचन श्रुत्वा निश्चम्य क्षीममङ्गभयेन स्वनिहामपकुल्य युता'। तौ हृदा

मूलं का मर्य—'तप म' इत्यादि। तदनन्तर आकाश में देवीने घोषणा की—'यह चन्दनवाला भ्रमण भगवान् महावीर की प्रथम श्रित्या होगी।' जिसके हाथ स भगवान का पारणा हुआ, वह चन्दनवाला कौन गी? और उसका चरितसंक्षेप में विलम्बया जाता है।

एकवार कौशाम्बी नगरी के अधिपति राजा श्रवानीक ने चम्पानगरी के नायक राजा द्रविवाहन पर आक्रमण करक दुर्नीति से चम्पानगरी को लुटा। द्रविवाहन राजा माग गया। तब श्रवानीक राजा का एक योद्धा राजा द्रविवाहन की चारिणी नामक रानी को और वसुमती नामक पुत्री को रथ में बिठाकर कौशाम्बी के बसा। मार्ग में उसने कहा—'इस रानी को मैं अपनी पत्नी बनाऊंगा। चारिणी देवीने उसके यह वचन सुनकर और समझकर शीघ्रमेग होने के मय से अपनी जीम बहार लीच ली और माग त्याग दिये। चारिणी देवी को

भूनेने अर्ध—'तप म' श्रवणी' श्रवणी आ वजते आकाशम आश्रयं शिञ्ज शेषपु साधनाभा आवी है 'आ च इनवाणा अमयु जत्रवान अकावीरनी प्रथम श्रित्या यहे। नेना कोहे भगवाने आकार अल्लु भये ते य इनवाणा होवु कती' तेना अक्षेप देवाव नीक्षे वसुपवामां आवे छि—

होई कोह समथे होशाम्बी नगरीना अधिपति राजा श्रवानीक के चम्पानगरीना नायक राजा द्रविवाहन उपर आक्रमण करने के लगी व चम्पानगरीने लुटी ली थी द्रविवाहन राजा शीघ्र भेटी नाची अये। त्परापद श्रवानीक सभने। नेना योद्धा द्रविवाहन श्रवानी राजी धारवी अने तेनी पुत्री वसुमतीने रक्षमां लेखादी होशाम्बी नगरी तपह उपरी अये। आर्धभां तेवे धारिणी सवोने कहु है छ तने भारी यकी जन्मवीय। आ श्रवणी शीघ्र जन्म भवकी

अन्यग्रामं गतं श्रेष्ठिं ज्ञात्वा मा नापितेन तस्याः शिरो मुण्डयित्वा शृङ्खलया करौ निगडेन पादौ नियन्त्रय एकस्मिन् भूमिगृहे तां स्थापयित्वा तद् भूमिगृहं तालकेन नियन्त्रय स्वयं तस्मिन्नेव ग्रामे पितृगृहं गता । सा च वसुमती तत्र भूमिगृहे क्षुधया पीड्यमाना चिन्तयति—

“कुत्र राजकुलं मेऽस्ति, दुर्दशा कीदृशी इयम् ।
किं मे पुरा कृतं कर्म, विषाको यस्य इदृशः ॥ १ ॥”

एवं चिन्तयन्ती सा कारागारमुक्तिपर्यन्त तपः करिष्यामि’ इति कृत्वा मनसि परमेष्ठिमन्त्रं जपितुमारभत । एत तस्यास्तीणि दिनानि व्यतिक्रान्तानि । चतुर्थे दिने श्रेष्ठी ग्रामान्तरादागतौ वसुमतीमदृष्ट्वा परिजनानपृच्छत् । मूकानित्रारितास्ते तं न किंचिदकथयन् । ततः क्रुद्धः श्रेष्ठी अभगत्-जानाना अपि यूय वसुमतीं न

दूसरे गांव गया जानकर उसने नाई से वसुमती का मस्तक मुड़वा दिया । हथकड़ियों से हाथ और चेड़ियों से पैर बाँधकर उसे एक भूगृह में डाक भूगृह को नाळे से बँध कर दिया । मूला स्वयं उसी ग्राम में अपने पिता के घर चली गई । वसुमती उस भूगृह (भोंवरे) में भूख और प्यास से पीड़ित होती हुई सोचती है—

कहाँ वह राजकुल मेरा, कहाँ यह दुर्दशा मेरी !
न जाने पूर्व के किस कर्म-का परिपाक है ऐसा !!!

इस प्रकार विचार करती हुई उसने ‘मैं कारागार से मुक्त होने तक तप करूंगी’ ऐसा निश्चय कर के मन में परमेष्ठी मंत्र का जाप करना आरंभ कर दिया । यों उसके तीन दिन बीत गये । चौथे दिन सेठ पर आये । वसुमती को न देखकर परिजनों से पूछा । मूला ने उन्हें मना कर दिया था, अतः उन्होंने कुछ

कोई कुछ वખते शेडेने બહારગામ જવાનુ થયુ તે સમયનો લાલ લઈ તેણીએ એક હબમને બોલાવ્યો અને વસુમતીના મસ્તકનુ સુંડન કરાવા નાખ્યુ તેના હાથપગમા બેડોએ નાખી તેને લોથરામા હડસેલા મૂકી અને લોથ-રાને તાણ વાસો પોતે મેડા પર ચડી ગઈ. મેડી પર આવી કપડાલતાથી સબજ થઈ પોતાના પિયેર પહોચી ગઈ. આ લોથરામા વસુમતી ભૂખ અને તૃષ્ણાથી પીડિત થઈ વિચારવા લાગી કે—

“કયા તે રાજકુલ માટે, કયા આ હુદંશા મારો,
કયા એ પૂર્વકર્મોએ, કરી છિ આ દશા મારો.”

એટલે કે ‘કયા મારૂ રાજકુળ અને કયાં આ લોથરાનું કેદખાનું? કયા અશુભ કર્મોનો આ વિપાક હશે’ આમ વિચારે ચડતા તેણીએ ‘કેદમાંથી મુક્ત થાઉ ત્યા સુધી તપની આરાધના કરીશ’ એવો નિશ્ચય કર્યો અને આ આરાધના સાથે તેણે નમસ્કાર મંત્રના બંધ શરૂ કર્યો. આમ કરતા તેણીએ ત્રણ દિવસ પસાર કર્યો. ચોથે દિવસે શેઠ ઘેર આવ્યા.

मित्र पालयितुं पोषन्तिपुत्राक्रमेणाम् । एकदा श्रीलम्काके शययस्याभावे सा वसुमती भेष्टिना नार्यमाणाऽपि
 शरमागतस्य तस्य पश्यतालनमकरोत् । पादौ प्रभाव्यन्यस्यास्तस्याः केशपात्रम् छुटित “अस्या केशपात्रः
 आद्रयुनौ मा पठतु” इति कृत्वा तं भेष्टी निषपायिण्या धृत्वाऽपग्राह । तदा—गतास्तस्यता भेष्टिनी मार्या मूला
 वसुमत्या केशपात्र सन्नन्ते भेष्टिने दृष्टादन्वितयत्—‘इमां कन्यां पालयित्वा पोषयित्वा मयाऽनर्थं कृतम्, यदि इमां
 कन्यां भेष्टि उद्वहेत् तदाऽहम् अपनस्या मयिव्यामि—उत्पद्यमान एव व्यापि उपशमयितव्यः’ इति कृत्वा एकदा

अपने घर छे प्राया । सेठ और सेठ की पत्नी मूला, अपनी पुत्री के समान उसका पालन-पोषण करने लगे ।
 एक बार ग्रीष्म के समय में अन्य सेवक के अभाव में वसुमती, सेठ के द्वारा मना करने पर भी बाहर से
 घर आये हुए घनावर के पैर धोने लगी । पैर धोते समय उसका केशपात्र छुट गया । जब ‘इसका केशपात्र
 गीनीयुमि में न पड़ जाय’ ऐसा सोचकर सेठने उसे अपने हाथरूप याष्टि में छेकर बाँध दिया । तब गवास्त में
 स्थित सेठ की पत्नी मूलाने सेठ का वसुमती का केशपात्र बाँधते देखकर विचार किया—‘इस कन्या का
 पालन-पोषण करके मैंने अनर्थ किया । कदाचित् सेठने इस कन्या के साथ विवाह कर लिया तो मैं अपवस्थ
 हो जाऊँगी । बोगारो को उत्पन्न होवे समय ही शान्त कर देना चाहिए ।’ इस प्रकार सोचकर एक बार सेठ को

अविज्ञाने समझारी, वधाइ धन आपी नेनी पासेबी वसुमतीने जेणवी छीबी शेळ अने तेनी पत्नी भूछा तेने
 पोतानी पुत्री अभान छिनवा छाअा.

हेरि जेष्ठ कनाणानी श्रुतार्थ धनावळ शेळ अजस्थना कामने छीधि जकार अवा कृत्य अरभी अने प्रसङ्ग तापने
 छीधि आङ्गणाव तेजो वरमा दण्डय दवा ते वजते हेरि पञ्च नोकर हे शेळावीनो छाजरी जेवामां आवी नहि पोते अर-
 भीबी बवा आङ्गण-आङ्गण दवा कृत्य आ जोष्ठ वसुमती जकार आपनी अने शेठ ना पाडवा छतां पोताना सितादुस्य
 धनावळ शेळना पत्र धावा छाजी पत्र धाती पजते वसुमतीने आछिरो छुटे बरि जयसो तेनी छगे नीबि पदी
 जराज यशे ने अदोणारी जेवा विचारो आछिरोने पोताना काममां छरि शेठ जांघी इधिया आर समये भूछा
 शेळाव जारमां जेठी कती तेवि ज्ञा ज्ञा ज्ञा नन्देनकर निरिण्डु आकां तेन मन यजरोले यरमु अने विचारवा
 छाजी हे आ कामात पावन-पोषण करमाभा से अनीर ज्ञा करी छे कदाञ्च शेळ आ छाकरी माये वज्जअ भीवी
 जेभाई जरी तो भारो शेळां स्थिति यरि जरी राज अने इरमाने जेमतार कामवा जेष्ठजे ! आवो विचार
 मनमां आको वसुमतीव कामा हादी नयजवा ते तरार बरि

अन्यग्रामं गतं श्रेष्ठिनं ज्ञात्वा सा नापितेन तस्याः शिरो मुण्डयित्वा शूद्रालया करो निगडेन पादौ नियन्त्र एकस्मिन् भूमिगृहे तां स्थापयित्वा तद् भूमिगृहं तालकेन नियन्त्र स्वयं तस्मिन्नेव ग्रामे पितृगृहं गता । सा च वसुमती तत्र भूमिगृहे क्षुधया पीड्यमाना चिन्तयति—

“कुत्र राजकुलं मेऽस्ति, दुर्दशा कीदृशी इयम् ।
किं मे पुरा कृतं कर्म, विपाको यस्य इदृशः ॥ १ ॥”

एवं चिन्तयन्ती सा कारागारमुक्तिर्पयन्त तपः करिष्यामि’ इति कृत्वा मनसि परमेष्ठिम्नं जपितुमारभत । एव तस्याखीणि दिनानि व्यतिक्रान्तानि । चतुर्ये दिने श्रेष्ठी ग्रामान्तरादागतो वसुमतीमदृष्ट्वा परिजनानपृच्छत् । मूल्यानिशारितास्ते तं न किञ्चिदकथयन् । ततः क्रुद्धः श्रेष्ठी अभणत्—जानाना अपि ग्रयं वसुमती न

दूसरे गौत्र गया जानकर उसने नाई स वसुमती का मस्तक मुड़वा दिया । हथकड़ियों से हाथ और घेड़ियों से पैर बाँधकर उसे एक भूगृह में डाक भूगृह को नाके ने रोक कर दिया । मूला मय्यं उम्मी ग्राम में अपने पिता के घर चली गई । वसुमती उस भूगृह (भोंवरे) में भूख और व्यास से पीड़ित होती हुई सोचती है—

कहाँ वह राजकुल मेरा, कहाँ यह दुर्दशा मेरी !
न जाने पूर्व के किस कर्म-का परिणाम है ऐसा ! ! !

इस प्रकार विचार करती हुई उसने ‘मैं कारागार से मुक्त होने तक तप रुहंगी’ ऐसा निश्चय करके मन में परमेष्ठी मंत्र का जाप करना आरंभ कर दिया । गों उसके तीन दिन बीत गये । चौथे दिन सेठ घर आये । वसुमती को न देखकर परिजनों से पूछा । मूला ने उन्हें मना कर दिया था, अतः उन्होंने कुछ

डोर्ल एक वज्रते शेठने अड़ारगाम नयानु धयु ते समथेना लाख लछ तेष्ठीअे ओक सुन्नभने ओलाव्यो अने वसुमत'ना मस्तकनु अंडन दशावा नाण्यु तेना छाथपगभा गेडाओ नाभी तेने कोथगभा सुडोला भूरी अने तोय-राने ताण वासो पोते भेडा पर यडी गछ. चेडी पर यावी कपडावताधी सन्न थछ पोताना पिथेर पछोव्ही गछ. आ कोथगभा वसुमती भूय अने तृषाथी पीडित थछ न्यारवा लागी छ—

“क्या ते राजकुल भाई, क्या आ दुर्दशा भारी;
क्या ओ पूर्व'कर्म'अे, करी छे आ दशा भारी”

ओटले छे ‘क्या भाई’ राजकुण अने क्या आ कोथ'रानु' डेहणानु' ? क्या अशुल कर्मोना आ विपाक सुथे' आभ न्यारवा अडता तेष्ठीअे ‘डेहमाथी सुकत थाड त्या सुधी तपनी आराधना करीय’ अेयो निश्चय कर्यो अने आ आराधना साथे तेष्ठी नमस्कार गंत्रना जाप थार कर्यो. आभ करता तेष्ठीअे तषु दिवस पसार कर्यो. योथे दिवसे शेठ घेर आन्था.

कथयत ? अतो मधुसूहाद् निर्गच्छत' इति भूत्वा एकया हृदया दास्या 'ममजीवीतेन सा जीवतु' इति कृत्वा भेष्टिनः तद् सच कथितम् । सत् शुत्या भेष्टिं स्वीय तप गत्वा ताम्भक्तं मन्त्रेणा ब्राह्मण्डाष्टप चमुमतीमावासायत । ततः तद्ध स ओषी सुवे न गाननं न च भक्त कुत्रापि पश्यति, पशुनिमिष निप्यादिदान् बाण्डितमापानेन तत्र पश्यति । वेज्यमाननामावे शूर्पे युरीत्या तेन मकार्य शुमुमस्ये समर्पिता, स्वयं च निगढादिषु पनञ्ज्वेनार्थे मोक्षरामाक्षरिण्युं तदुपदेष्टुगच्छत । सा शुमुमती च स बाण्डितमाप शूर्पे इस्तेन युरीत्या भविन्त्यत- 'इत' पूर्वे नया किमपि दानं दत्त्वा पारणक्तं कृतम्, अथतु न किमपि दास्या कथं पारयाभि ? कीदृशो मे दुर्निपाक्त उदितो

नहीं बतलाया। तब क्रुद्ध होकर सेठने कहा—‘तुम जानते हुए भी चसुमती के विषय में नहीं बतलाते हो तो मेरे घर से चार निरुद्ध जाओ। यह सुनकर एक पुरी दासीने ‘मेरे जीवन से भी बड़ नीचे’ ऐसा सोचकर अर्थात् मेरे पास जाएँ तो जाएँ, मगर चसुमती के प्राण बच जाएँ, यह विचार कर सेठ को सब बतला दिया। सुनकर सेठने शीघ्र ही वहाँ जाकर, वाला तोड़कर, द्वार खोलकर, चसुमती को आवासन दिया। तत्पश्चात् सेठ को घर में न कोई मालन दिखाई दिया, न मोजन ही। उसे पशुओं के लिए उखाड़े हुए उहड़ ही वहाँ नगर आए। दूसरा मामन न होने से उन्हें रूप में लेकर उसने मोजन के लिए चसुमती को दिये। यथावद सेठ स्वयं बेहो आदि बन्धनों को छेदने के लिए छुट्टार का पुलाने उसके घर बला। चसुमती उपलब्ध हुए उहड़ों वाले रूप को हाथ में लेकर मौचने लगी—‘इस पाछे मैं कुछ दान देकर ही पाया किया है। आज कुछ भी

વસુમતીને નહિ દેખવાથી નોકરવચને પૂછ્યુ નોકરવચને શોધણીએ અનાઇ કરેલ હોવાથી તેણે કાંઈ જવાબ આપી શક્યા નહિ નોકરા વરદથી જવાબ નહિ મળતાં શો કોમે બાશા બને વરના બદાર આજ્યા જવાનો સવને દુકમ ક્યો આ નોકરવચની અદર એક વૃદ્ધ ઘાટી હતી તેણે છાવના બેળમો પચ્ચ વસુમતીને બચાવી દેવા દર નિશ્ચય ક્યો. અમન મજબૂત કરી તે ઘાટીએ શોને સર્વ હકીકતથી બારેક કયાં. આ કાલળી શેઠ કોબશ પાસે પહોંચ્યા, વાળુ તેણી વસુમતીને બદાર મલી. 'જે ત્રણ દિવસથી જૂની વસ્તી છે' એમ જાણી કાચમાં અતને માટે શોધ કરી, પણ કયાજ કોઈ પણ પ્રકારનુ જાનન તેમને કાચ આનુ નહિ. વપાસ કરતા કરતાં એસને બાણુમાં આપવાના અદરને કુલે ઠાળવા બેલા લગ્ન છાને તેમણે સમજૂ કાચમાં લીધુ, અને તેમાં અદરના બાકળા લઈ વસુમતી પાસે ખાવી તેની સામે થવા. 'હું હમણા આનુ છુ એમ વસુમતીને કહી તેણે જીરી તોડવા માટે કુદારને યોતાવવા તથા વસુમતી આ અદરના બાકળાના સુપકાને કાચમાં લઈ વિખારવા કાઢી દે આજ સુધી તે કોઈ પણ પ્રમાણ વચની ખૂંત પડેલાં જાનવાન આનુ છે અને અનંતુ ઘન આપ્યા પછી જ મેં પાચુ કમું છે તો આ

येन अहमीदृशीं दशां सम्प्राप्ता । यदि कस्या अपि अतिथये एतद् भक्तं दत्त्वा अहं पारणकं करोमि, तदा श्रेयः इति चिन्तयित्वा गृहदेहल्या एकं पादं बहिः, एकं पादं च अन्तः कृत्वा मुनिमार्गं पश्यन्ती तिष्ठति । सैव वसुमती चन्दनस्यैव शीतलस्वभावत्वेन 'चन्दनवाले' ति नाम्ना प्रसिद्धिं गता ॥सू०९६॥

टीका—'त ए णं' इत्यादि । ततः खलु "एषा चन्दवाला श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य प्रथमा=सर्वत आद्या शिष्या भविष्यति" इति—एतद् वचनम् आकाशो देवैः घुपितम्=उच्चैश्चारितम् । एषा चन्दनवाला का ?=अस्याः कः परिचयः ? यस्याः=चन्दनवालायाः हस्तेन भगवतः=श्री महावीरस्वामिनः पारणकं जातम् इति=एतज्जिज्ञासूनां कृते तस्याः=चन्दवालायाः चरित्र संक्षेपतो दृश्यते, तथाहि—एकदा=एकस्मिन् समये कौशाम्बी

दान दिये विना कैसे पारणा करूं ! कैसा मेरे पापकर्म का उदय आया है कि, मैं ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हुई । अगर किसी अतिथि अर्थात् महात्मा को यह भोजन देकर मैं पारणा करूं तो अच्छा । इस प्रकार विचार करके वह एक पैर घर की देहली के बाहर और एक पैर भीतर करके मुनि की राह देखती हुई बैठी । वही वसुमती चन्दन के समान शीतल स्वभाव वाली होने से 'चन्दनवाला' के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥सू०९६॥

टीका का अर्थ—भगवान् का पारणा हो जाने के पश्चात् 'यही चन्दनवाला श्रमण भगवान् महावीर की सब से पहली शिष्या होगी' इस प्रकार की घोषणा देवोंने आकाश में की । कौन थी यह चन्दनवाला ? जिसके हाथ से भगवान् का पारणा हुआ, उसका परिचय क्या है, इस बात के जिज्ञासुओं के लिए चन्दनवाला का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

अहंभूतयुनं पारखुं' कोछने दान दीधा विना देवी रीते कइ ? आ कोछ निविड अशुल कभोने। उदय छे डे मने आवी दुईथा प्राप्त थछु ! अन्धारे कोछ अतिथि अर्थात् भइआ आवी पडे ने तेने दान हठ' तो देवु साइ ? अने आवुं दान लेनार कोछ तथा इपने आत्माथीं सुनि होय तो देवुं सुहर ! आवा प्रकारनी चितवना करती अने लाव भगट करती ते कोछ पग ठंभरानी भइार अने कोछ पग ठंभरानी अंदर करी सुनिनी राई लेवा लागी. वसुमतीने स्वभाव चंदन लेवो शीतल अने चंद्रमा लेवो ठो लेवाना कारखे तेनु नाम 'चंदनवाला' पाउवांमां आयुं छुतु अने आ नामथी ते प्रसिद्धिने पामी हती. (सू०९६)

टीकानो अर्थ—भगवाने पारखुं कथा पछी देवोको आकाशमां कोवी घोषणा करी डे "आज चंदनवाला श्रमण भगवान् महावीरनी सौथी पड़ेही शिष्या थशे." लेनां हाथे भगवाने पारखुं कथुं" को चंदनवाला कोछु हती ? जिनासुओने आ बातने। परिस्थ करायवा भाटे चंदनवालांनुं संक्षिप्त वृत्तांत आपवांमां आवे छे—

फणपण ? भलो मद्गुणात् निर्गच्छत' इति भुक्ता एकदा वदया दास्या 'ममजीवीतेन सा जीवतु' इति कृत्वा
 अष्टिन' तत् सत् इयितम् । तद् भुक्ता अष्टि द्वाघ तत्र गत्वा तालक मन्दस्त्वा शरपुष्पाटप वसुमतीमाचासयत् ।
 ततः तस्य स अष्टी घरे न माजन न च मक्त कुत्रापि पश्यति, पशुनिमित्त निष्पादितान् वाण्यवसापानेव
 हन पश्यति । वेज्यमानानामावे श्ये यहीत्वा तेन मत्कार्ये वसुमत्यै समर्पिता, स्य च निगङ्गादिबन्धनच्छेदनार्थे
 मोहकात्माशरपितु तद्गुरोरेज्यच्छत् । सा वसुमती च स नाण्यवसाप श्ये इस्तेन यहीत्वा अभिन्यत- 'इत' पूर्व
 मया किमपि शनं दूरैव पाणकं कृतम्, अश्वतु न किमपि वत्सा क्रय पारयामि ? कीदृशो मे दुर्विपाक उदितो

नहीं बतलाया । तब कुन्द होकर सेठने कहा- 'तुम जानते हुए भी वसुमती के विषय में नहीं बतलाते हो तो
 मेरे घर से बाहर निकल जाओ । यह सुनकर एक बूढ़ी दासीने 'मेरे जीवन से भी यह जीये' ऐसा सोचकर
 अर्थात् मेरे प्राण जाएँ तो आपके, मगर वसुमती के प्राण बच जाएँ, यह विचार कर सेठ को सब बतला
 दिया । सुनकर सेठन त्रीघ ही बौं जाकर, ताका तोहकर, शर तोलकर, वसुमती को आचासन दिया ।
 तत्सत्वात् सेठ को घर में न कोई माजन दिव्यार्थ दिया, न मोजन ही । उसे पशुओं के लिए उवाले हुए उबद ही बौं
 नजर आए । दूसरा माजन न होने स उन्हें श्व में लेकर उसने मोजन के लिए वसुमती को दिय । पनावर सेठ
 स्वयं बटो आदि वन्यों को छेदने क लिए छुमार को मृगान उसके घर चला । वसुमती उवाले हुए उबदों वाले
 श्व को शय में लेकर माचन कयी- 'इसस पहले मैंने कुछ दान दकर ही पाण्या किया है । आज कुछ भी

वसुमतीने नहि देववाधी नोकरवच ने पूछतु नोकरवचने शेक्ष्वाब्जे भगवत् करेब दोबाधी तेज्ये हाथ बयाव आपी यक्ष्य
 नहि नोकरा वारक्षी बयाव नहि भगवा शेक्ष क्षेपि भक्ष्य कने बरती वक्षार यास्या बयावे सदेने हुम भये ।
 आप ने करवचने अदर जेब वृक्ष धरती धती तेव्हे लवना जेपजे पशु वसुमतीने जन्मावी देवा ह्द निक्षय भयो
 भन मकण हरी त धरतीजे शेदेने सर्व हरीहत्तवी वाक्षे भयो आपावणी शेक्ष खोवरा पसे पक्षेज्या, दाष्ट
 तोही वसुमतीने नकर हरी जे तस्य विपक्षवी भूणी वरती छे जेब कक्षी वरया कसने भाटे शेक्ष हरी, पशु
 मया केळ पशु प्रहार कान तेभने क्षा कान्यु नहि । तथास हस्तां हस्तां जे सने आकुमा आपवाना अहने
 मुवे उज्या जेब अण साधने तेमजे सक्ष दावमा वीधु कने तेमां कदना आहणा कर्ष वसुमती पसे ज्ञावी
 तनी आमे भयो । 'कु क्षमतां आपु छ जेब वसुमतीने हरी तेज्ये जेरी तोल्या भाटे छुकारने शेक्षावया जबा

वसुमती आपा कदना आहणावया मुपकाने क्षावर्ष कर्ष विचारवा कानी हे आपा सुपी तो क्षार्ष पशु
 प्रारणा वरनी पूर्व पक्षेक्ष भगवान आपु छ कने कान्यु दान आप्या वरी व मे पाश्वरु ह्द' छे तो आप

चिन्तयित्वा तां वसुमतीं मार्गे स्बहृदिस्थितं किञ्चिदपि न मणित्वा=नोत्त्वा कौशाम्ब्याः चतुष्पथे व्यक्री-
णात्=विक्रीतवान् । विक्रीयमाणां तां-वसुमतीं एका-गणिका=वेश्या मूल्यं=भटनियतं शुल्कं दत्त्वा अक्रीणात्=
क्रीतवती । तदनु सा वसुमती-तां गणिकां अभणत्=पृष्ठवती-‘हे अम्ब ! नहे मातः ! त्वं काऽसि ? केन अर्थेन=
प्रयोजनेन अहं त्वया क्रीता ? इति-वसुमती प्रश्नानन्तरं सा गणिका भणति=उत्तरयति-अहं गणिका अस्मि,
मम=गणिकायाः कार्यं=प्रयोजनं, परपुरुषपरिरञ्जनम्-अन्यपुरुषाणां विलासहासादिभिः प्रसादनम् इति । ईदृशम्=
एवम्विधं तस्या वेश्याया हृदयविदारकं=मनःखेदजनकम् अनार्यम्=आर्यजनानुचितं वज्रपातमिव=वज्रपतनवद्दुःसहं
वचनं श्रुत्वा सा वसुमती क्रन्दितुं=रोदितुम् आरभत-आरब्धवती । रुदत्यास्तस्या=वसुमत्याः आर्तनादं श्रुत्वा
तत्र=चतुष्पथे स्थितो धनावहः=धनावहनानामा कश्चित् श्रेष्ठो अचिन्तयत्=चिन्तितवान्-इयम्=क्रन्दन्ती बालिका

कार्यं कर बैठे=प्राण त्याग दे ! यह सोच उसने अपने मन की कोई भी बात वसुमती से न कह कर कौशाम्बी के
चौराहे पर ले जाकर उसे बेच दिया । विकती हुई वसुमती को योद्धा के द्वारा निश्चित किया हुआ शुल्क
दे कर एक वेश्याने खरीद लिया । तत्पश्चात् वसुमतीने उस गणिका से पूछा-माताजी, तुम कौन हो ? और
किस प्रयोजन से तुमने मुझे खरीदी है ? वसुमती के इस प्रश्न के पश्चात् इस गणिका ने कहा-‘मैं वेश्या हूँ ।
वेश्या का काम है-पर-पुरुषों को प्रसन्न करना, विलास हास आदि करके उनका मनोरंजन करना ।’ हृदय को
विदारण कर देने वाले, मनमें खेद उत्पन्न करने वाले, आर्यजनों के लिए अनुचित तथा वज्रपात की तरह
असह्य वचन सुनकर वसुमती आक्रन्दन-रुदन करने लगी । रोती हुई वसुमती की दुःखभरी वाणी सुनकर
उसी चौराहे पर खड़े हुए धनावह नामक एक सेठ ने विचार किया-‘आकृति से प्रतीत होता है कि रोनेवाली

अनिरन्धनीय दार्य’ कदी भेसे-प्राशुत्याग करे. आभ विद्यारीने तेण्णे पैताना मननी डोह’ पणु वात वसुमतीने न
डहेतां कौशाम्बीना चोडभा लघं बधने तेने वेथी दीधी ओड वेश्याये योद्धाये नल्ली करेदी क्रीमत आपीने वसुगतीने न
भरी ? दीधी त्यागभाह वसुमतीये ते वेश्याने पूछु’, “माताण्, तमे डोष छे ? अने शा उदेश्यी तमे भने
भारीही छे ?” वसुमतीना आ प्रश्न भाह ते गणुडिअये डळु’, “हु वेश्या छुं. पर-पुरुषेने प्रसन करवा, विदास
आदि द्वारा तेभनु भनोरजन करवुं ते वेश्यानु’ डाम छे

हृदयतु विदारणु करनार-भनमां जेह उत्पन्न करनार, आर्यजनोने माटे अनुग्रहित तथा वज्रपात जेवां
सह्य वयन सालणीने वसुमती आकंड करवा लागी रस्ती वसुमतीनी दुःखभरी वाणी सालणीने ओज चोडमां
करो’ धनावह नामना ओड शेठ विचार कथे, “मुभाकृति परथी लागे छे के आ रस्ती भाणा अंते। डोह मोदा

चिन्तयित्वा तां वसुमतीं मार्गे स्वहृदिस्थितं किञ्चिदपि न मणित्वा=नोत्था कौशाम्भ्याः चतुष्पथे व्यक्री-
णात्=विक्रीतवान्। विक्रीयमाणां ता-वसुमतीं एका-गणिका=वैश्या मूल्यं=भटनियतं शुलकं दत्त्वा अक्रीणात्=
क्रीतवती। तदनु सा वसुमती-तां गणिकां अभणत्=पृष्ठवती-‘हे अम्ब ! हे मातः ! त्वं काऽसि ? केन अर्थेन=
प्रयोजनेन अहं त्वया क्रीता ? इति-वसुमती प्रश्नानन्तरं सा गणिका भणति=उत्तरयति-अहं गणिका अस्मि,
मम=गणिकायाः कार्यं=प्रयोजनं, परपुरुषपरिरञ्जनम्-अन्यपुरुषाणां विलासनासादिभिः प्रसादनम् इति। ईदृशम्=
एवम्विवं तस्या वैश्याया हृदयविदारकं=मनःखेदजनकम् अनार्यम्=आर्यजनानुचितं वज्रपातमिव=वज्रपतनयद्दुःसहं
वचनं श्रुत्वा सा वसुमती क्रन्दितुं=रोदितुम् आरभत-आरब्धवती। रुदत्यास्तस्या=वसुमत्याः आर्तनादं श्रुत्वा
तत्र=चतुष्पथे स्थितो धनावहः=धनावहनामा रुधिर श्रेणी अचिन्तयत्=चिन्तितवान्-इयम्=क्रन्दन्ती वालिका

कार्यं कर बैठे-प्राण त्याग दे ! यह सोच उसने अपने मन की कोई भी बात वसुमती से न कह कर कौशाम्बी के
चौराहे पर ले जाकर उसे बेच दिया। विक्रीती हुई वसुमती को योद्धा के द्वारा निश्चित क्रिया हुआ शुलक
दे कर एक वैश्याने खरीद लिया। तत्पश्चात् वसुमतीने उस गणिका से पूछा-माताजी, तुम कौन हो ? और
किस प्रयोजन से तुमने मुझे खरीदी है ? वसुमती के इस प्रश्न के पश्चात् इस गणिका ने कहा-‘मैं वैश्या हूँ।
वैश्या का काम है-पर-पुरुषों को प्रसन्न करना, विलास हास आदि करके उनका मनोरंजन करना।’ हृदय को
विदारण कर देने वाले, मनमें खेद उत्पन्न करने वाले, आर्यजनों के लिए अनुचित तथा वज्रपात को तरह
असह्य वचन सुनकर वसुमती आक्रन्दन-रुदन करने लगी। रोती हुई वसुमती की दुःखभरी वाणी सुनकर
उसी चौहारे पर खड़े हुए धनावह नामक एक सेठ ने विचार किया-‘आकृति से प्रतीत होता है कि रोनेवाली

अनिन्धनीय कार्य करी ऐसे-प्राणत्याग करे. आभ विचारिने तेछे पेताना मननी डोह पथु वात वसुमतीने न
कहेतां कौशाम्बीना योऽम्भा लध्जधने तेने वेथी दीधी. ओऽ वैश्याञ्चे योद्धाञ्चे नळी करेदी कीभत आपीने वसुगतीने न
भारी कीधी. त्यारणाह वसुभतीञ्चे ते वैश्याने पृथु, “माताछ, तमे केथु छो ? अने शा उदेशथी तमे मने
भरीही छे ?” वसुभतीना आ प्रश्न भाह ते गार्थीञ्चे क्छुं, “हु वैश्या छुं. पर-पुरुषोने प्रसन्न करवा, विदार
आदि द्वारा तेमनु मनोरंजन करवुं ते वैश्यानुं काम छे.

हृदयनुं विदारणु करनार-मनभां जेह उत्पन्न करनार, आर्थजनोने भाटे अनुविन तथा पञ्जयात जेवां
सह्य वचन सांलणीने वसुभती आकह करवा लागी रसती वसुभतीनी दुःखभरी वाणी सांलणीने ओज योऽम्भा
करी. धनावह नामना ओऽ शेटे विचार करी, “सुभाकृति परथी लागे छे हे आ रसती गाणा अंतो। डोह भोटा

नाभापि राजवरस्य=महाराजस्य ईश्वरस्य=पनिहस्य या कन्या=पुत्री इत्यते=आकारेण ज्ञायते, इयं वालिका
 भास्मान्नाजने=दुःखप्राप्तम् भा भक्तु' इति=इत्य चिन्तयित्वा=विचार्य सः वनावरः भ्रष्टी दक्षिण=वेद्यामिरुपितं
 द्रव्यं=मृत्युं दत्त्वा तां=वसुमतीं कन्यां=रामपुत्रीं युरीत्या=यादौय निभगवने=स्वगृहे भनयत्=नीतवान् । स्वपुत्रा
 उज्जयनानन्तरं भेष्टी वनावरः मूला-नाम सङ्गर्या=वनावरस्त्री च तां वसुमतीं निमपुत्रीभिव=स्वकन्यावत् पालयितुं
 रक्षितुं योगयितुं च उपाक्रमेताम्=आरभ्यते स्म ।

एकदा ग्रीष्मकाले=ग्रीष्मऋतु समये अन्यधृत्यामावे=अपरकिङ्करादुपस्थिता सा वसुमती, श्रेष्ठिना=वनावरेन
 चापंगमापि ग्रामान्तरात् दूरस्थ=स्वभवनम् आगतस्य=श्रेष्ठिन -वनावरस्य पादपक्षालनं अकरोत्=पितृपुत्रया कृत
 वती । पादौ=वनावरस्य चरणौ प्रक्षालयन्त्याः उस्याः=वसुमत्याः, केचपाश'-केचकलापः कुटिता=वन्धान्-
 हुक्तो जातः । उदा अस्याः केचपाश आर्द्रसुमौ=पङ्क्तिवृद्धि मा पशु । इति कुन्वा=इति विचार्य तं=केचपाशं स
 लवकी पर या तो चरे राजा की या किसी वनवान की बटी होनी चाहिए । वह बेचारी लवकी दुस्तिनी न
 हो तो अच्छा ।' ऐसा सोचकर वनावर सेठने वेद्या का मुँहमांगा मोल बुझाकर राजकुमारी वसुमती को छे
 दिया । वह उसे अपने घर ले गये । घर से जाने के पश्चात् वनावर सेठ और उनकी पत्नी मूलाने वसुमती का
 अपनी ही बटी के समान पालन-पोषण करना आरंभ किया ।

एक बार ग्रीष्म ऋतु का समय था, सेठ वनावर दूसरे गाँव से लौट कर अपने घर भाये थे । जब वे
 घर आए उस समय काँई नीरुर ठपस्थित नहीं था । अत एव वसुमती ही वनावर को अपना पिता समझ
 कर पैर पीने लगी । वनावरने भना दिया, पर वह नहीं मानी जब वसुमती वनावर के चरण प्रक्षालन
 कर रही थी, उस समय उसका केचकलाप (जुझा) सुल गया । सेठ वनावरने सोचा=मैंसेके बाल क्रीचक

शालापी जववा केह पैशादास्त्री रीकरी केवो केधजे आ निवादी भाणा इ भी न बाभ तो आउ " जेवु विवाहीनि
 वेम्भाने शे! भाग्वा दाम जुझीने तेवो वसुमतीने वर बोधी ते तेने पैवाने वेर वर अये। वेर वर अया पछी
 वनावर केह अने तेनी पत्नी भूछाजे वसुमतीनु पैवानो अ पुत्रीनी जेभ पावनपेणवण करवा मंडवु

कोइवार ग्रीष्म ऋतुने सभय के वनावर केह वीले आभ अर्थने पैवाने वेर पाअ इयो अन्धारे तेजो
 वेर आम्भा त्पारे केह तोइर काल्ज न केतो तेनी वसुमती अ पत्नीवकेने पैवाना पित्ता अब्बिने तेभना पज पिवा
 वानी. वनावरके ना पछी, पण ते भानी नहीं. अन्धारे वसुमती वनावरका का पैती कती त्पारे तेने प वयवाव

धनावहः श्रेष्ठी, निजपणियष्टया=विकाराभावेन यष्टि तुल्याभ्यां स्वहस्ताभ्यां धृतत्वा=गृहीत्वा अवध्नात्=वद्धवान्। तदा गवाक्ष स्थिता=वातायनोपविष्टा श्रेष्ठिनो=धनावहस्य भार्या=मूला वसुमत्याः केशपाशं=केशकलापं वन्यन्ते श्रेष्ठिनं=धनावहं दृष्ट्वा अचिन्तयत्=मनसि प्रचारितवती-‘इमाम्=एतां कन्यां=वालिकां पालयित्वा पोषयित्वा च मया अनर्थम्=सस्यैवानिष्टं, कृतम्=सम्पादितम् ‘कुतः? इत्याह=‘जइ’ इत्यादि वा यदि इमां=वसुमतीं कन्यां श्रेष्ठी=मम पतिर्धनावहः उद्धरेत्=परिणयेत्, तदा=तर्हि तस्यां परिणीतायां सत्याम् अहम् अपद्रव्या=अधिकारच्युता एव भविष्यामि, तदत्र मया प्रयतनीय, येन वसुमतीं मत्पतिः परिणेतुं न शक्नुयात्, यतः=उत्पद्यमानाः=जायमान एव व्याधिः=रोगः उपशमयितव्यः=चिकित्सनीयः, इति कृत्वा=चिन्तयित्वा सा=मूला एकदा=एकस्मिन् समये अन्य-ग्रामं=ग्रामान्तरं गत श्रेष्ठिन ज्ञात्वा नापितेन तस्याः वसुमत्याः शिरो मुण्डयित्वा शृङ्गलया करौ=हस्तौ निगूढेन

वाली जमीन पर न गिर जाएँ, यह सोचकर उन्होंने निर्विकारभाव से-यष्टि (लकड़ी) के समान अपने हाथों में लेकर उसके केशपाशको बाँध दिया। उस समय धनावह शेर की पत्नी मूला खिड़की में बैठी थी। उसने वसुमती का केशकलाप बाँधते हुए धनावह को देखकर मन में विचार किया-‘इस लड़की का पालन-पोषण करके मैंने अपना ही अनिष्ट कर डाला है। क्यों कि इस छोरूरी के साथ मेरे पतिने विवाह कर लिया तो इसके साथ विवाह करलेने पर मैं अपद्रव्य हो जाऊँगा-अर्थात् मैं अधिकार से वंचित हो जाऊँगी। अतः एव मुझे कोई ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मेरे पति इस से विवाह न कर सकें। जब बीमारी उत्पन्न हो रही हो तभी उसका इलाज कर लेना ही अच्छा है। मूलाने ऐसा विचार कर लिया। कुछ ही समय के बाद उसे अचानक मिल गया। एक बार धनावह शेर दूसरे गाँव चले गये। उन्हें वाहर गया जान कर

(अ. छोड़ो) छुटी गयी शेर धनावह ने मनमा “तेना वाणनी लटो अहववाणी जभोन पर रजेने पडे.” अ. म. विचारिने तेमबु निर्विकार भावे-यष्टि (लाकड़ी)ना जेवा पोताना डायोभां लधने ते डेशकलाप बाधी दीधो.

आ बाणु तेज वधते धनावह शेरनी पत्नी मूला भारीमा छोडी हुती तेबु वसुमतीना डेशकलाप गांधता धनावहने जेया. तेबु विचारुं के “आ छिकरीनुं पावन-पोषण करवामा में माइ पोतानुं ज अनिष्ट करुं छे. कारणु के आ कन्या यौवनना उंभारे पछोवायी छे. जे आ छिकरी साथे मारा पति लग्न करशे ते। तेनी साथे लग्न थता ज हुं अधिकार रहित भनी जधश. तेथी माइ जेवा उपाय करवा जेधज्ये के जेथी मारा पति तेनी साथे बियाह करी शके नहि रोग जने दुश्मन उत्पन्न थता ज तेना धलाज करवा जेधज्ये. मूलाज्ये आ प्रभाबु निर्णय कर्यो. थोडा समय पछी तेने तक पणु भणी जेके वार धनावह शेरने गीले गाम जवानुं थयुं. तेमने भडार गयेला

पादोन्मूलनी च निपन्थ्य=निगडितौ कृत्वा एकस्मिन् भूमिपुत्रे तां=वसुमतीं स्थापयित्वा तद्व=भूमिपुत्रं तालकेन निपन्थ्य=नियन्त्रितं कृत्वा स्वयं तस्मिन्नेव ग्रामे=क्रीडागन्त्री नगर्यामेव पितृपुरे गता । सा=निगडितवस्वपाशा वसुमती च तत्र=नियन्त्रिते भूमिपुत्रं शुचया शीघ्रमाणा वित्तयति=मनसि विचारयति, चित्ता स्वरूपमाह—‘कस्य रायकृन्’ इत्यादिना—‘ये मम राजकुल=द्वयपंशः कुत्र=कस्य ? तथा इयम्=उपस्थिता मम दुर्दशा=नारितावस्था कीरयती ? अमयोनिस्ति किंचिदपि साम्यम् । अहा ! ये=मम पुरा=पूर्वभवे कृतम्=उपाजितं कर्म=अशुमकर्म किं=कथम्भूतमस्ति ? यस्य=अशुमकर्मणः ईदृश=एवमित्यर्थः विपाक=दुर्दशाक्षणं फलम् उदयमागत ।” एवं वित्तयन्ती सा ‘कारागामुक्तिर्यन्तं तप=मनउत्तलक्षणं करिष्यामि’ इति कृत्वा=इति विचार्य मनसि ‘नमो अरिहताय’ ;

मृगाने नार्हं से वसुमती का सिर ब्रह्मका दिया । शायों में एकछड़ी और पैरों में चक्री बाल ही । तब वसुमती को एक मौये में बँध कर दी । मौयेर को ताला जड़ दिया । यह सब करके वह मूला, क्रीडागन्त्री में ही अपने माय के (पिता के घर) चम दी । शायों=पैरों से अकछी वसुमती मौयेर में पड़ी हुई मन ही मन विचार करने लगी । वह क्या विचार करने लगी सो कहते हैं—

कहाँ तो मरा वह राजवृद्ध=जिसमें मरा जन्म हुआ और कहाँ यह इस समयकी मेरी दुर्दशा ? दोनों में तनिक भी समानता नहीं । आह ! पूर्व भद्र में मरे द्वारा उपाजित अशुम कर्म न जाने कैसा है ? जिसका फल ऐसा मांगना पड़ रहा है । इस दुर्दशा के रूपमें जो उदय में आया है । इस प्रकार विचार करतो हुई वसुमतीने यह निश्चय कर लिया कि ‘अब तक मैं इस कारागार से छुटकारा न पाऊँगी जब तक अमनउत्त तपस्या करूँगी ।’ इस प्रकार विचार कर यह वसुमति ‘नमो अरिहताय’ इत्यादि का पंचपरमेष्ठी मंत्र का जाप करने लगी ।

अधीने भूखाने के बरतने के बाद भी तेनी भासे वसुमतीनु भाषु सु बानी नाचु आने दाक्षिणा दायिदही अने पञ्चम्यां छेदी नाथी । फली वसुमतीने जो बोलवतां पूरा दीधी, बोलवने वणु वाञ्छी हीधु आ भाषु करीने ते हीदाभ्याम् अ योक्तने पिबर लकी अर्ध दाक्षि अने पञ्चम्यां न धायेदी वसुमती ते बोलवतां हे=अनरथाभां अनोभन विचार करम बात्री । ते हो विचार करम बात्री ते अतावे छे—

‘हो भादो के शब्दय, नेमां भादो अनम थये अने हवा भारी आ उग्रमदी ईदृशा ! अनेमां करी पञ्च उग्रमता नथी । अहा ! पुरावम आ से उपाजित हेहे अशुम कर्म शु अमर देना छे हे केत आषु हेण नोअपु परे छे । आ ईदृशान हेरे ते उदयमा अस्या छे । आ प्रभासे विचार करदी वसुमतीने जेयो निष्क म ईरो हे “अनां भुपी आ अनामरथीकी भाषा छुटमारे न थाय त्वां भाषी छे अनउत्त तपस्या करीउ” आ प्रभासे

इत्यादि रूपं पञ्चपदस्वरूपं परमेष्ठिमन्त्रं जपितुम् आरभत=आरब्धवती। एवं भूमिगृहे निगडितहस्तपादायाः परमेष्ठिमन्त्रं जपन्त्याः तस्याः=वसुमत्याः त्रीणि दिनानि व्यतिक्रान्तानि=व्यतीतानि, ततः चतुर्थे दिवसे श्रेष्ठी=धनावहः ग्रामान्तरात् आगतो वसुमतीम् अदृष्ट्वा परिजानन्=स्वजनान् भृत्यादीन् तद्विषये अपृच्छत्=पृष्टवान्। परन्तु श्रेष्ठिना वसुमती जिज्ञासाया कृतायामपि पूर्वत एव मूलनिवारिताः ते सर्वे परिजनाः तं धनावहं वसुमती विषये किमपि न अकथयन्=न कथितवन्तः। ततः क्रुद्धः=जातकोपः श्रेष्ठी=धनावहः अभणत्=जानाना अपि यूयं मया बहुशो जिज्ञासिनां वसुमतीं न कथयत, अतो यूयं मदृष्ट्वाद् निर्गच्छत=निस्सरत, इति=इत्थं श्रेष्ठिनो वचनं श्रुत्वा एकया वृद्धया दास्या “मम जीवीतेन=जीवनेन सा वसुमती जीवतु=प्राणान्धरतु” इति कृत्वा=एतद् विचिन्त्य श्रेष्ठिने=धनावहाय सर्वं वृत्तम् कथितम्=तत् सर्वं श्रुत्वा श्रेष्ठी=धनावहः शीघ्रं तत्र=भूमिगृहद्वारसमीपे गत्वा तालकं भङ्गत्वा=चोटयित्वा द्वारम् उद्घाट्य वसुमतीं आश्वासयत्=धैर्यकारकवचनैः समतीषयत्। ततः=वसुमत्या-

इस प्रकार तीन दिन बीत गये। चौथे दिन धनावह सेठ दूसरे गाँव से लौटे। उन्हें वसुमती दिखलाई नहीं दी तो भृत्य आदि परिजनों से उसके विषय में पूछताछ की। इस प्रकार सेठ के द्वारा जानने की जिज्ञासा करने पर भी, मूला द्वारा मना किये हुए नोकरचाकर वसुमती के विषय में कुछ भी न बोले। तब धनावह सेठ को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—तुम लोक जानते=बुझते भी और मेरे द्वारा पूछने पर भी, वसुमती के विषय में कुछ भी नहीं कहते हो तो मेरे घर से बाहर निकल जाओ। इस प्रकार सेठ के वचन सुनकर एक वृद्ध दासीने सोचा—मेरे जीवन से भी वसुमती जीवित रहे; अर्थात् मेरे प्राण जाते हों तो भले जाएँ, मेरे प्राणों के बदले वसुमती के प्राण बच जाने चाहिए। यह सोचकर उसने समग्र वृत्तान्त धनावह से कह दिया। इस वृत्तान्त को सुनकर धनावह शीघ्र ही भौंयरे के द्वारके समीप गये। भौंयरे का ताला तोड़ा। द्वार खोला, वसुमती को धीरेज बंधाने वाले वचन कह कर सन्तीष दिया।

विचार करीने ते “नमो अरिहंताणं” धृत्याहि इयं पथ परमेष्ठी भत्रेनो भय करवा लागी आ शीते तथु दिवस पसर था। चौथे दिवसे धनावह शेठ बीजे ग्रामथी पाछा इयां तेभण्णे शेठ्ठाणी के वसुमती केहिनि न जेता नोकर आदि परिजनोने तेना विषे पूछपरछ करी आ प्रभाण्णे शेठे पूछवा छता पण्ण मूला शेठ्ठाणी तरक्षथी भना करथेल होवाथी नोकर-याकर वसुमतीने विषे कथिपण्ण जेव्या नही त्यारे धनावह शेठे जुरसे थया तेभण्णे केहु, “तमे दोके जणुवा छता अने मारा पूछवा छता पण्ण वसुमती विषे कंछ पण्ण केहेता नथी माटे मारा धरभाथी भडार नोकरणी याव्या जेव्यो.” शेठना जेवा वचने। सांभजीने जेकर वृद्ध दासीके विचार कर्यो, “भाये! प्राणुं जय ते। भवे जय पण्ण वसुमतीने। एव जयावेवा ज जेधज्ये.” आम विचारी तेण्णे आभुं वृत्तांत धनावह शेठने केही कीधु. आ वृत्तांत सांभणीने धनावह तरत ज लोथराना द्वारनी पासि गया लोथरानु ताणुं तोडी नाज्जु. द्वार जोव्यं अने वसुमतीने आश्वासनना वचने। केहिने सांवन आभुं.

आभासानन्तरं सख स खेरी सुरो=रमनने मूसया पिरुहुरगमनावसरे गुप्तस्थाने ससितत्वात् किमपि मानने=
 पात्र मक्तम्=मोदनादिकं च कृपापि न पश्यति, केवलं पशुनिमित्तम्=पशुय निव्याशितान्=कृतान् बाध्यितमापान्=
 स्विस्ममापान् 'वाकुला' इति माया प्रसिद्धान् तत्र पश्यति, ते=बाध्यितमायाः अन्यभागनामाये शूर्ये एव
 गृहीत्वा=आश्रय तेन=धनाननेन मकार्य=मोमनाय यमुमत्यै समर्पिता=दयाः स्वयं च बनायानो निगठादिवन्धन
 रचेदनायं मोरकारम् आकारयितुम्=आह्वयुं सदृशे आरुन्=मातवान् । सा=निगडितरत्नपादा यमुमती च
 सबाध्यितमापं=बाध्यितमापसहितं शूर्य इत्येन गृहीत्वा=विनयद-मनसि विचारितवती=दृढः पूर्य मया किमपि
 दानम्=अन्नपानसाधनार्थम् सायुम्यो इत्येव पारम्भकं कृतम्, अष्टह=अस्मिन् दिन तु किमपि=किञ्चिदपि
 अन्ननादिकं हुनने न दत्त्वा कर्ष=केन प्रकारेण पारयामि=पारण करोमि ? मे=मम कीदृश =कृपन्मृतो दुर्विपाक=
 गरहितर्मफलम्, उदित=उदयावसिक्रियायाम् उपस्थित येन दुर्विपाकेन आ=ईश्वरीयम्=एतादृशीं दासीत्वादिक्रियां

मूला जब अपने पिता के घर गई थी तो बरतन-भञ्जि सब गुप्त जगह में रत्न गई थी । अतएव
 सेठ को नन्दी में न कोई बरतन मिला और न मोमन ही कहीं दिलाई दिया । केवल जानवरों के लिय उबले
 हुए उड़द, जिन्हें मोरमाया में 'वाकुला' करते हैं, वही मिले । दूसरा बरतन न होने के कारण सूप में ही
 उन्हें छेकर बनाकर सेठने वह यमुमती को दिया । सेठ स्वयं बड़े बरगद को काटने के हेतु छुहार को मुलाने के
 लिये छुहार के घर चले गये । वने हुए शायो-यैतों वाली यमुमती उबले हुए उड़द वाले सूप को हाथ में छेकर
 सोचन म्मा=रस से परछे मैंने सायुम्यों को अन्नपान सादिय और स्वादिम का तन जर ही पारणा स्त्रिया है,
 आज बिना दान दिय पारजा कैसे कई ? कैसा गरिठ कम मेरे उग्रय में आया है, जिसक दुर्विपाक के कारण

मूला नन्दी पोटाना चिताने घेर अर्ध कती ल्पारे पासणु-कुसणु अणु अणु अन्धान्धे भूमीने अथ कती, तेदी
 शेठने उवाणमां डेअ वासणु पणु न अण्डु तेम अ कोकन पणु नन्दे न पण्डु देअ देशेने आरे व्याहेवा अण्ड
 नेने तोअमायाभा "वाकुला" हरे छि तेम अण्ठा. वीरु वासणु न अण्डवादी सूपमा अ व्याण्ठा एधने धनावक शेठ
 यमुमतीने आन्धा अने शेठ अनेते अ सिदी पजेरे तोअवाने आरे छुहारने सोलाववा आरे छुहारने घेर अण्ठा अण्डवायेव
 काये-पत्रवाणी यमुमतीके व्याहेवा अण्डवाणु सूपकु काधमां एधने विष्णु "आ पकेलां से सायुम्याने अन्नन,
 पान, पादिम अने स्वादिमनु दान एधने अ पारजा कर्वा छि आने दान आन्धा बिना पाण्डु देनी रीते हरे ? देवा
 कर्पावित्त हर्षने आरे कवन बरिा छि के नेना उविवाकने अण्ठे छि वासीण्णु पजेरे नजेरे कोअनी आ एवा पाणी

दशम अवस्था सम्प्राप्ता=लब्धवती । यदि=चेत् कस्मै अपि अतिथये=मुनये एतद् भक्तं=शर्पस्थं वापितमाप-
रूपमशनं दत्त्वा पारणकं करोमि, ततः श्रेयः=कल्याण भवेत् । इति चिन्तयित्वा गृहदेहल्याः वहिः=वह्निर्भागे एकं
पादं=चरणं कृत्वा एकम्=अपरं पादं=चरणं च अन्तः=अन्तर्भागे कृत्वा मुनिमार्ग=मुनेरागमनं पश्यन्ती=प्रतीक्षमाणा
तिष्ठति । सैव वसुमती चन्दनस्यैव श्रीखण्डचन्दनवत् शीतलस्वभावत्वेन=शीतलप्रकृतितया 'चन्दनवाले' ति नाम्ना
प्रसिद्धिं कुर्याति प्राप्ता=लब्धवतीति ॥मृ०९६॥

अंतिमो उवसगो

मूलम्—तएणं से ससणे भगवं महावीरे कोसंवीओ णयरोओ पडिणिकखमइ, पडिणिकखमिच्चा जणवय-
विहारं विहरइ । तओ पच्छा भगवं वारसमं चाउम्मासं चंपाए णयरीए चउम्मासतवेणं ठिए, तओ निक्खमिय
छम्माणियाभिहस्स गामस्स वहिया उज्जाणम्मि काउसगगे ठिए । तत्थ ण एगो गोवालो आगंतुण भगवं दहूणं
एव वयासी-भो भिक्खु ! मम इमे वट्ठे रक्खउ त्ति कहिय गामम्मि गओ । गामाओ आगमिय वट्ठे न
पासइ, भगवं पुच्छेइ-एत्थमे वट्ठो ? । ज्ञाणनिमग्गे भगवं न किंचि वयइ । तओ से पुब्बभवं वंराणुवंधिकम्मुणा
कुट्ठो आसुरत्तो मिसिमिसेमाणो भगवओ कण्णेसु सरगडनामस्स कडिणरुक्खस्स कीले निम्माय कुट्ठारप्पहारोण
अंतो निक्खणिय तेसिं उवरिभागे छेदीअ, जे णं ते न कोइ नाउं सक्किज्जा न वि य निस्सारिउं । पटुस्स
इमो अट्ठारसमभववट्ठकम्मुणो उदओ समुवट्ठिओ । दुरासओ सो गोवालो तओ निक्खमिय अन्नत्थ गओ । पट्ट य
तओ निक्खमिय मज्झिमपावाए णयरीए भिक्खट्ठाए अट्ठमाणे सिद्धत्थ सेट्ठि गिहमणुपट्ठि । तत्थ णं खरगा-
भिहो विज्जो अच्छइ, सो य पट्टं दट्टं जाणीअ-जं एयस्स कण्णेसु केणवि सट्ठाइं निखायाइं, तेणं एस पट्ट

मै दासीपन आदि की इस दशा को प्राप्त हुई हैं, अगर मैं किसी मुनि को यह भोजन-रूप मे स्थित उड़द
अशन-देकर पारणा करूँ तो मेरा कल्याण हो जाय । इस प्रकार विचार करके वह घर की देहली से एक पैर
बाहर और दूसरा पैर अन्दर करके मुनि के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी । वही राजकुमारी वसुमती श्रीखंड
चन्दन के समान शान्त प्रकृति वाली होने के कारण 'चन्दनवाला' इस नाम से विख्यात हुई ॥मृ०९६॥

छ । जे हु केह सुनिने आ लोअन-सूपडामा रडेव भाईला आउइ इप अथान-वहेरारीने पारलु' दइं तो भाइ कल्याण
थई अथ. आ प्रभाणु विचार करीने ते ओइ पग धरना उभरानी अहार अने फीले पग अंइर रापीने सुनना
आगमननी राइ जेवा लागी ओ न राजकुमारी वसुमती श्रीअंउ यन्दन जेवी शात स्वलाववाणी होवाथी ते
“अइ नथाणा”ना नाभथी प्रख्यात थई. (स०८६)

आभ्यसनानन्तरं तल्लु स भेदी घुरे=स्वप्नवने मूल्या पितृहृदयजनवसरे प्राप्त्याने संरक्षितत्वात् किमपि माजनं=
 पाप मन्त्रम्=भोइनादिकं च कुत्रापि न पश्यति, केवलं पशुनिमित्तम्=अथ निष्पद्यितान्=कृतान् वाप्यितमापात्न=
 स्त्रियमापात्न 'वाकुञ्ज' इति माया मस्तिदान् तत्र पश्यति, ते=वाप्यितमाया अन्यमाजनामाये शूर्य एव
 सुरीति-आशय तेन=पनावदेन मकार्ये=भोजनाय वसुमत्स्यै समर्पिता=दद्याः स्वयं च घनावहो निगडादिबन्धन
 वदेदनायं सोहकारम् आकारविग्रहम्=आहारात् तद्वद्वरे आगच्छन्=गतवान् । सा=निगदितवत्स्वपावा वसुमती च
 तत्वाप्यितमायं=वाप्यितमायसहित शूर्य इत्येनं घुरीत्वाऽचिन्त्यत्=मनसि विचारितवती-इतः पूर्वं मया किमपि
 दानम्=प्रदानपानलापन्यायस्य सायुज्यो इत्येव पारणकं कृतम्, अद्यतु=अस्मिन् दिने तु किमपि=किञ्चिदपि
 अजनादिकं मुनये न दत्त्वा कर्म=केन मकारेण पारयासि=पारण करोमि ? ये=मम कीदृश =कस्यभूतो दुर्निपाकाः=
 गर्हितस्मिन्पञ्चम्, उदितः=उदयावच्छिकायाय उपस्थितः येन दुर्निपाकेन अर्च=ईदृशीम्=एतादृशीं वासीत्वादिस्यो

मूला जब अपने पिता के घर गई थी तो बरतन-भाँड़े सब गुप्त जगह में रक्ष गई थी । अतएव
 सेठ को बन्दी में न कोई बरतन मिला और न भोजन ही कहीं मिल ई दिया । केवल जानवरों के लिये उबले
 हुए उड़द, जिनमें मोरुमाया में 'बाकुम्स' कहते हैं, बरी मिले । दूसरा बरतन न होने के कारण सूप में ही
 उई छकर घनावह सठने वह वसुमती को दिये । सेठ स्वयं बेड़ो बगीच को काटने के हेतु छहार को बुलाने के
 लिय लुहार के घर चले गए । वगे हुए हाथों-पैरों वामी वसुमती उबले हुए उड़द वाले सूप को हाथ में लेकर
 मोचन स्मो-इस स पकड़े मैंने सायुज्यो को भक्षणपान त्वाक्षिम और स्वाक्षिम का दान दकर ही पारणा क्रिया है,
 आज बिना दान दिये पारणा कैसे करूँ ? कैसा गर्हित कर्म मेरे उदय में आया है, निसक दुर्निपाक के कारण

भूधा न्यादे पीताना पिबाने घेर अर्ध इती त्पारे वासवु-इत्येष अशु शुभ न्याजे भूमीने अश इती, तेभी
 शेने उतावगभां डोए वासवु पशु न वल्लु तेभ न वोल्लन पशु नल्ले न पल्लु देश कोशेने आटे आदेवा अल्ल
 लेने वेडम्मायामा 'आङ्गा' इडे छि तेभ अल्ल्या वीट्ट वासवु न अडवाभी सृचक्षार्भा व आङ्गा एधने धनपल्ल शेडे
 वसुमतीने अल्ल्या अने शेड अते व जेदी वगेरे तोडवाने भाटे कुक्षारने आवाववा आगे छुटारने घेर अल्ल वल्लवायेव
 भास-पनवाली वसुमतीने आदेवा अल्लवाण सपुड लक्ष्म्या एधने विभासु "आ पडेवा मे सपुज्जोने आशान
 पान, आक्षिम अने स्वाक्षिमद दान एधने / पारणा इयो छि आले धन आल्ल्या बिना वासवु इमी मति करे ? इवा
 उपनिषत् व भन्या आरे उल्ले भयो छि डे जेना दुर्निपाकने आलेवे दु वाकीपणु वगेरे नल्ले नोअनी आ इया पायनी

बलीवहों न पश्यति, भगवन्तं पृच्छति—कुत्र मे बलीमहौं?। ध्याननिमग्नो भगवान् न किञ्चिद् वदति। ततः स पूर्वभववैराग्यवन्धिकर्मणा क्रुद्धः आशुरक्तः मिसमिसायमानो भगवतः कर्णयोः शरकटनामनः कठिनदृक्षस्य कीले निर्माय कुठारप्रहारेण अन्तर्निखन्य तयोरुपरिभागावच्छिन्नत्, येन ते न कोऽपि ज्ञातुं शक्नुयात् नापि च निस्सारयितुम्। प्रभोरयम् अष्टादशभववद्धर्मजणउदयः समुपस्थितः। दुराशयः स गोपालः ततो निष्क्रम्यान्यत्र गतः प्रभुश्च ततो निष्क्रम्य मध्यमपापायां नगरीं मिक्षार्थाय अटन् सिद्धार्थश्रेष्ठिहमनुप्रविष्टः। तत्र खलु खरफाभियो वैद्य आस्ते स च प्रभुं दृष्ट्वा अजानीत यत्—एतस्य कर्णयोः केनापि शल्ये निखाते, तेन एष प्रभुः

वैल दिवाई न दिये। भगवान् से पूछा—‘कहाँ है मेरे वैल?’ ध्यानमग्न भगवान् कुछ न बोले। तब उसने पूर्वभव के वैराग्यवधी कर्म के कारण क्रुद्ध होकर, नाला होकर और मिसमिसाते हुए शरकट नामक कठिन दृक्ष की दो कीलें बनाकर, भगवान् के कानों में कुठार के प्रहार से अन्दर ठोकर दी, और उनके बाहर के भागों को काट डाला, जिस से किसी को गालूम न हो और कोई निकाल भी न सके। प्रभु के यह अठारहवें भव में जाँचे हुए कर्म का उदय उपस्थित हुआ। वह दुराशय गुवाल वहाँ से निकल कर अन्यत्र चला गया।

भगवान् वहाँ से निकल कर मध्यम पापानगरी में भिक्षा के लिए अटन काते हुए सिद्धार्थ सेठ के गृह में प्रविष्ट हुए। वहाँ खरक नामक एक वैद्य था। उसने प्रभु को देखकर जान लिया कि इनके कानों में

ते गोवाणे भणहने जेयां नहीँ तेथी तेणे भगवानने पूछ्यु के ‘हे साधु! मारा भणह कथां?’ ध्यानमग्न प्रभुએ કાધપિથ જવાખ વાળ્યો નહીં આથી પૂર્વભવતા વૈરાગ્યવધી કર્મના યોગે, તે ગોવાળ ક્રોધાધમાન થયો. કાધથી લાલ પીળો થતો, શરકટ નામના કઠણ દૃક્ષની ડાળીમાથી, એ ખીલા બનાવ્યાં. આ ખીલાને ભગવાનના કાનમા કુહાડાના ધા વડે ઢોંચી મજબૂત કરી દીધા, ને તે ખીલાના બહાર દેખાતા ભાગોને કાપી નાખ્યાં. આમ કરવાનું કારણ એ હતું કે, આવા કાર્યની કોઈને બળ શાય નહીં. તેમજ આવા બંધએસ્તા ખીલાને કોઈ કાઠી પણ શકે નહિ આપુ નિકાચિત કર્મ, બ્રહ્માએ પોતાના અઢારમા ભવમાં બાંધ્યું હતું. ને તેના ઉદય તેમને આ અંતિમ ભવમા જણાયો ને તેનું પરિપક્વ ફળ પણ લોગવવું પડ્યું.

આ દુરાશયી ગોવાળ ત્યાંથી નિકળી જઈ, કોઈ અબણ્યા સ્થળે ચાલ્યો ગયો. ભગવાન અહીંથી નીકળી, મધ્યમ પાવા નગરીમાં ભિક્ષાર્થે અટન કરતાં કરતાં, સિદ્ધાર્થ શેઠને ત્યાં જઈ ગયા. આ શેઠને ત્યાં ‘ખરક’ નામનો એક વૈદ્ય હતો. તેણે પ્રભુને ભેતાંજ કાનમાં ઠોકેલાં ખીલાને ઝોળખી લીધા. ને વિચાર કરતાં તેને ખ્યાલમા આવ્યું

अउभ वेणं अणुमच इति । तए णं सो विज्जो सेहिं कहीय । पइ य गरियभिवखे उज्झाणं समणुपच । सो सद्धो विज्जो य उज्झाणे गमिय काउससगाहियस्स पडुस्स कण्णेरितो मईए खुचीए ताइ सद्धां निस्सारेति । मइ वि हीसगुदरणे पडुस्स दुस्सा वेयणा सभाया, तइवि मगबं वरिमसरीरएणेण अनतबलएणेण य त उज्झं तिणं पारं कापसकदुरहियांसं वेयण समं सरीय । तए णं से सेही विज्जो य भोसोवयारेण तं नीखं कउ सयं गिहं गमीय । वेण कुबिडेन गावालो गरिय नरयं गयो । सेट्ठो विज्जो य वेण सुइ कम्मुणा बारसमे कल्पे उववसा इ गयंवरं ॥ सु० ९७ ॥

उपा—उठः खलु स थमणो मगवान् मरावीर" कौशाम्ब्या नगर्याः यवि निष्काम्यति, प्रति निष्कम्य जनपदविहारं विररति । ततः पश्चात् मगवान् द्वादशं चातुर्मासं चम्पायां नगर्यां चतुर्मासं उपसा स्थितः ततो निष्कम्य पम्पानिकाभिषत्य ग्रामस्य बाबोपाने कापोत्सर्गे स्थितः तत्र खलु एको गोपाल भागस्य मगवन्तं दृष्ट्वा एतमवादीद—“सो भित्तो ! मम इमौ बलीवर्तौ रसतु ” इति कथयित्वा ग्रामे गतः । ग्रामात् भागत्य

अन्तिम उपसर्ग

मूल का अर्थ—‘तए णं से’ इत्यादि । तत्पश्चात् थमण भगवान् मरावीरने कौशाम्बी नगरी से विहार किया और विहार करते हुए वे जनपद में विवरने लगे । तत्पश्चात् मगवान् चौमासी तप के साथ चम्पा नगरी में बारहवें चतुर्मास के लिए विराजे । तदनन्तर वही से विहार कर पम्पानिक नामक ग्राम के पास उद्यान में कापोत्सर्ग में स्थित हुए । वही एक गुवाल आकर और मगवान् को देखकर इस प्रकार बोला— ‘दे मिष्टु ! मेरे इन दोनों दैर्माही रत्नवालो काना ।’ ऐसा कहकर गौत्र में चला गया । गौत्र से लौटने पर ठसे

अन्तिम उपसर्ग

पुढेना अर्थ—‘तएण से’ अर्थात् आ पछी अभणु जएवान भइवीर कोशाम्बी नगरीभांसी विहार करी, देशान् लुट लुट जएनभां निवसवा लाग्य, जारयु जातुभांस करवा तेजोभी य चाननगरीभां पधार्न ने त्वा कोभाओ तपनी जाराएन करी आ जातुभांस पूरु कहुं आ जोभाओ पधार कबो पछी तेजो वरमासिध नाभना आभनी बइर उद्यानभां अयेत्सर्ग करी स्थित यभां त्वा हाउ जेठ धावण जानी जएवतने देअतं धावण लाग्ये । दे के मिष्टु ! त आ भास जने जकरेन यभां कउ जाम करी ते जामभां स्थाना अथि जामभां पाज कएतं

बलीवहों न पश्यति, भगवन्तं पृच्छति—कुत्र मे वलीमहौं?। ध्याननिमग्नो भगवान् न किञ्चिद् वदति। ततः स पूर्वभववैराग्यबन्धिकर्मणा क्रुद्धः आशुरक्तः मिसमिसायमानो भगवतः कर्णयोः शरकटनाम्नः कठिनदृशस्य क्रीले निर्माय कुठारप्रहारेण अन्तर्निख्य तयोरुपरिभागावच्छिन्नत्, येन ते न कोऽपि ज्ञातुं शक्नुयात् नापि च निस्सारयितुम्। प्रभोरयम् अष्टादशभबद्धकर्मणउदयः समुपस्थितः। दुराशयः स गोपालः ततो निष्क्रम्यान्यत्र गतः प्रमुश्च ततो निष्क्रम्य मध्यमपापायां नगरी भिक्षार्थीय अटन् सिद्धार्थश्रेष्ठिग्रहमनुप्रविष्टः। तत्र खलु खरकाभियो वैद्य आगते स च प्रमुं दृष्टा अजानीत यत्—एतस्य कर्णयोः केनापि शल्ये निखाते, तेन एष प्रमुः

वैद्य दिखार्ह न दिये। भगवान् से पूछा—‘कहाँ है मेरे वैद्य?’ ध्यानमग्न भगवान् कुछ न बोले। तब उसने पूर्वभव के वैराग्यवंधी कर्म के कारण क्रुद्ध होकर, नलाल होकर और मिसमिसाते हुए शरकट नामक कठिन दृश की दो क्रीले बनाकर, भगवान् के कानों में कुठार के प्रहार से अन्दर ठोंक दी, और उनके बाहर के भागों को काट डाला, जिस से किसी को मालूम न हो और कोई निकाल भी न सके। प्रमु के यह अठारहवें भव में जाँचे हुए कर्म का उदय उपस्थित हुआ। वह दुराशय गुवाल वहाँ से निकल कर अन्यत्र चला गया।

भगवान् वहाँ से निकल कर मध्यम पापानगरी में भिक्षा के लिए अटन करते हुए सिद्धार्थ सेठ के गृह में प्रविष्ट हुए। वहाँ खरक नामक एक वैद्य था। उसने प्रमु को देखकर जान लिया कि इनके कानों में

ते गोवाणे भणहने जेयां नहीं तेथी तेखे भगवानने पृष्ठ्यु के ‘हे साधु! मारा भणह कयां?’ ध्यानमग्न प्रमुके अंधिपणु जवाभ वाल्यो नहीं आथी पूर्वभवता वैराग्यबन्धी कर्मना योगे, ते गोवाण बोधायमान थयो। बोधयी दाद पीणो थतो, शरकट नामना कठणु वृक्षनी डाणीमाथी, जे भीदा पनाव्यां आ भीदाने लगवानना डानमां कुडाडाना वा पडे दोन्ही भण्णूत करी दीधा, ने ते भीदाना भुहार देणाता लागोने कापी नाथ्या आभ करवानुं कारणु जे इतु के, आवा प्रार्थनीं डोहनें जणु थाय नहीं। तेभज आवा अंधेरेस्ता भीदाने डोहलं डोहली पणु थडे नडि आवु निडासित कर्म, अस्साज्यो पोताना अदारमा लवमा आंध्यु इतुं ने तेनो उदय तेमने आ अंतिम लवमा ज्यथो। ने तेनुं परिपक्व इण पणु बोधववुं पड्यु।

आ दुराशयी गोवाण त्यांथी निकली जध, डोहलं अजगुथा स्थणे चाल्यो गयो। लगवान अर्द्धीथी नीकणी, मध्यम पावा नगरीमां भिक्षार्थे अटन करतां करतां, सिद्धार्थ शोठने त्यां जध यड्या आ शोठने त्यां ‘अरुठ’ नामने। अक वेध इतो तेखे प्रमुने जेतान् डानमां डोहलां भीदाने ज्ञाणभी बोधां ने नित्यार करतां तेने ज्यालमा आव्यु

अनुनां वेदनामनुमत्तरीति । ततः रक्ष स वैद्यः भेष्टिनिमकयपत् । प्रपुष शरीरमिष उपायमनुमातः । स भेष्टो वैद्यम उपाये गत्वा कायोस्सर्मास्थितस्य प्रभोगं कर्णाभ्यां महत्या युक्त्या ते क्षत्ये निःसारयतः । यद्यपि कीमक्रो-
दरणे प्रभोः दुःसहा वेदना संजाता, तथाऽपि मगवान् वरमशरीरत्वेन अनन्तबलस्त्वेन च शाम्यन्मनां वीर्यां घोरां
कावरजनदुरध्यामां वदनां मम्यक् असहत । तत रक्ष स भेष्टी वैद्यम औषधोपकारेण र्त्तं नीकर्जं कृत्वा स्वसुरमगच्छताम् ।
तेन कृच्छत्यन गोपालो यस्वा सप्तमं नरकं गतः भेष्टी वैद्यम तेन शुभकर्मजा द्वाद्देशे क्षत्ये उत्पत्तौ इति र्गयान्तरं । श्व० ९७॥

टीका—'तए न स समणे' इत्यादि । ततः तल्लु स भगवान् भगवान् कौशल्याः नगयोः प्रविशिकाभ्यामिद्वयिनि 'सति प्रविशिकाभ्यामिद्वयिनिभ्यस्तु ग्रन्थविचारं=देशविचारं विहरति । ततः पश्चात्=

झिनीने कीलें ठोक दी हैं, इस कारण मनु को अलु वेदनाका अनुभव हो रहा है। तब उस वैद्यने सठ से कहा। मगवान् मिसा प्रण करके उथान में आ गये। सेठने और वैद्यने उथान में जाकर कापोत्सर्ग में स्थित मनुके कानों से बड़ी युक्ति के साथ उन कीलों को निकाल दिया। यद्यपि कीलों के निकालने में मनु को दुस्सह बढ़ना हुई, तथापि चरमसरीरी और अन्ततबन्धी होने के कारण मगवानने उस जाखव्यमान, तीव्र, पोर और कायर जनों द्वारा असह वेदना का सम्यक् प्रकार से सह लिया। तत्पश्चात् वह सेठ और वैद्य औपचारिकतः मगवान् से मगवान् की निरोग करके अपने घर गये। उस कुटुम्ब से गुमान मर कर नरक में गया। तथा सेठ और वैद्य उस मनुम कर्मके कारण से बारहवें दवलीक में उत्पन्न हुए ॥४०९॥

ढोका का अर्थ—तत्पश्चात् षड् भ्रमण भगवान् महावीर कौशाम्बी नगरी से निहार क्रिय और निहार कर

દે કોઈ દુશામાએ બધી બેંડે, દુશા દેવા નિમિત્તે આગુ કુછ કાઈ મરુ છે તેમજ પ્રભુને કાપી અતુલ વેદના પથ, તેણે અણી લીધી આ દરજ ખરખી વલે તે વાત શેકને કરી, ભગવાન શિક્ષા ચંદણ કરી, ઉવાનમાં પધાર્યો ને ત્યાં તેજો પાવાનદુર્લભ કાઈકમ મુજબ કાવોત્સર્ગમાં ઉભાં રહ્યાં. તેટલામાં ચોઠ અને વેળ ત્યાં આવી પહોંચ્યા ને પ્રભુના કનખાથી મુક્તિપૂર્ક જીલાઃ જેથી લીધાં આ ખીટા જેઆવી વળતે પ્રભુને અસહ વેદના કર્પ તો પણ પ્રભુએ, આની બદલવમાનવીન અને ચોર વેદનાઓને સન્નધ પ્રકારે સહી લીધા કાઢવા અને ચોર્ય બોધ ઉપચારો કરીને ભગવાનના કાનિયને વેદનારહિત જનાવી ચોઠ અને વેળ ધર તરફ વળ્યા. સાશનરથા કાર્યોના ઘાત-પ્રત્યાઘાત યોગજ છે તદનુકાર ચોવાનાં કુસ્તીયુગ ફળ લોગવળ આ યોગજને નશકર્તિમાં જગુ પદમુ બ્યારે વેળ તેમજ ચોઠ મુજબકારીના ફળ ફરે બ્યારમાં દેવલોકમાં દેવપત્તે ઉત્તરનન કર્યાં. (સુ૦૬૭)

12. The following are the names of the persons who have been appointed as members of the Committee on the part of the Government:

તદગત્તરં ભગવાન્=શ્રીવીરસ્વામી દ્વાદશ ચાતુર્માસં ચમ્પાર્યાં નગર્યાં ચતુર્માસતપસા=માસચતુષ્ટયાંવધિકેન તપસા સ્થિતઃ, ચતુર્માસાનન્તરં તતઃ=ચમ્પાનગરી તોનિઠકમ્પ ષળ્માનિકામિધસ્ય=ળ્માનિકામકસ્ય ગ્રામસ્ય વાહ્યોદાને કાયોત્સર્ગો સ્થિતઃ। તત્ર खलु एकः=तश्चित् गोपालः आगत्य भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनं दृष्ट्वा एवं=वक्षमाणं वचनम् अत्रादीव=उक्तवान् तथाहि “भो भिक्षो ! मम इमौ=पुरतः पश्चात् ग्रामात् तत्र आगत्य स वञ्जीवदौ न पश्यति, ततो भगवन्तं=श्रीवीर- कथायित्वा ग्रामे गतः। पश्चात्=ततः पश्चात् ग्रामात् तत्र आगत्य स वञ्जीवदौ न पश्यति, ततो भगवन्तं=श्रीवीर- स्वामिनं पृच्छति=यद् भो भिक्षो ! मे वञ्जीवदौ कुत्र गतौ ? इति जिज्ञासायां कृतायामपि ध्याननिमग्नः=ध्यानासक्तो भगवान् श्रीवीरस्વામી ન કિશ્ચિદ્ વદતિ=ન કિમ્પુત્તરયતિ। તતઃ સ પૂર્વભવૈરાનુવન્ધિકર્મણા કુદ્ઃ=જાત- કોપઃ આચુરક્તઃ=શીઘ્રક્રોધારુણઃ મિસમિસાયમાનઃ=ક્રોધેન જાલ્બલ્યમાનો ભગવતઃ=શ્રીવીરસ્ય કર્ણયોઃ શરફટનામસ્ય

जनपद-देश में विचरने लगे। तत्पश्चात् भगवान् वीरमशु वारहवै चौमासे में चम्पानगरी में विराजे और चार मासकी तपस्या की। चौमासा समाप्त हो जाने पर चम्पानगरी से विहार कर षण्मानिक नामक गाँव के बाहरी वगीचे में कायोत्सर्ग में स्थित हुए। वहाँ एक गुजालने आकर भगवान् वीरमशुको देखा और इस प्रकार कहा—‘हे भिक्षु ! सामने खड़े मेरे इन दोनों वैज्यों की रखवाली करना। यह वचन कह कर वह गाँव में चला गया। जब वह गुजाल गाँव जाकर चापिस लौटा तो उसे वहाँ बलूनजरू नहीं आये। तब उसने भगवान् से पूछा—‘भिक्षु, मेरे बैल कहाँ चले गये?’ इस प्रकार जिज्ञासा करने पर भी ध्यान में लीन भगवान् ने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब वह गुजाल पूर्व भव में वैधे हुए वैरानुबंधी कर्म के उदय से क्षुपित हो उठा, एकदम ही क्रोध से लाल हो गया और क्रोध से जल उठा। उसने भगवान् के दोनों कानों में शरकट

આચાર છે. તે સહાયાર સુજમ ભગવાન પશુ અન્ય સ્થાનોમાં વિચરવા લાગ્યો. કોશાન્ત્રી-અંપાપુરી વિગેરે નગરી-ઓમાં રહ્યા બાદ ભગવાન તે પ્રદેશમાં આવેલા ‘વૃષ્માનિક’ નામના ગામની બહાર કાયોત્સર્ગ કરી સ્થિર રહ્યા. અર્ધાં તેમને છિલ્લો ઉપચર્ગ આપ્યો, અને તે ત્રિપૃષ્ઠ વાસુદેવના ભવે શય્યા પાલકના કાનમાં રેડેલા શીશાનું પરિ-પકવ ફળ હતું. નિકાચિત કર્મ બાધતી વખતે જે બાવો દ્વારા બંધાયું હોય તે ભાવોના રસ રૂપે જ આ કર્મ પરિણમે છે. તેના રસમાં કોઈ ફેરફાર પડતો નથી, છતાં જો આત્મા વીર્ય ક્ષેત્રવે તેના અનુભાગમાં ફેર પડે છે. આ ફેર બેટલો ફેરસની તીવ્રતા મહત્તામાં ફેરવાઈ બળ્ય છે. પણ રસ તર્કન ઉઠી જતો નથી. નિકાચિત કર્મવાળાની ગતિ ફરતી નથી, પણ જાતિ ફરી શકે છે. નરકના સ્થાનો સાત જાતનાં બતાવેલા છે. તે સ્થાનોની કક્ષા આત્મચર્ચ પડે નીચે આવી શકે છે, પરંતુ ગમે તેવા પ્રયાસો દ્વારા પશુ નરકગતિથી સુક્ત થવાનું નથી.

प्रभुकी वदनामनुचरतीति । ततः तल्ल स वैद्यः भोग्निमकपयत । प्रभुस्य सुवीर्यभित्तः उद्यानमनुमासः । स भोग्नी वैद्यस्य उद्याने गत्वा द्वायात्सर्गस्त्वितस्य प्रसंगः कर्णाभ्यां यदस्या युवस्या ते ज्ञेय्ये निःसारयतः । यद्यपि कीलकोद्धारणे प्रमाः दुःसाध वेदना सजाता, तथाऽपि भगवान् चरमस्यरीरत्वेन अनन्तबलस्त्वेन व तादृजबलं दीक्षां घोरां कातरजनदूररूप्यां वदनां सम्यक् असहत । ततः तल्ल स भोग्नी वैद्यस्य औपशोषकारेण व नीरुजं कृत्वा स्वसुखमगच्छताम् । तेन कुङ्कुमन गोपाजो दूरवा समर्म नरकं गत भोग्नी वैद्यस्य तेन शुभकर्मणा द्वादश कल्पे उत्पन्नो इति प्रयान्तरे ॥ सू० ९७ ॥

नीका — 'तए न से समणे' इत्यादि । ततः तल्ल स भगणा भगवान् महावीर कौशाम्य्याः नगर्थाः प्रनिष्काम्यति=प्रतिनिःसारति प्रतिनिष्काम्य=प्रतिनिष्ठस्य जनपदविहारं=देशविहारं विहरति । ततः पश्चात्=

किंसीने नीचे ठोंक वी हैं; इस कारण प्रभु को बहुत वेदनाका अनुभव हो रहा है । तब उस वैद्यने सेठ से दृष्टा । भगवान् मित्रा प्रण करके उद्यान में आ गये । सेठने और वैद्यने उद्यान में जाकर कायोत्सर्ग में स्थित प्रभुक कानों से बड़ी युक्ति के साथ उन कीलों को निकाल दिया । यद्यपि कीलों के निकालने में प्रभु को दुस्तस वदना हुई, तथापि चरमस्यरीरी और अनन्तबली होने के कारण भगवानने उस जानबल्यमान, तीव्र, पार और कायर जनों द्वारा असह वेदना को सम्यक् प्रकार से सह लिया । तत्पश्चात् वह सेठ और वैद्य औपशोषचार से भगवान् को निराग करके अपने घर गये । उस कुङ्कुम से गुलाब सर कर नरक में गया । तथा सेठ और वैद्य उस भुम कर्मके कारण से बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए ॥ सू० ९७ ॥

ढोका का अर्थ—तत्पश्चात् वा भगण भगवान् महावीर कौशाम्यी नगरी से विहार किये और विहार कर

के केरुं दुःसाभाज्जे लोकी कोधने, इत्थ देवा निमित्ते आगु दुष्ट हाथें हथुं छे तेभअ प्रभुने धत्ती अतुल वेदना पव, तेवु अवी बीवी आ इस घरभां वही ते वात छोडने करी, जानवान शिक्षा प्रकष करी, ठवानभां पधार्यो ने ला तेज्जा पीवान् । ऐनिक हाँकें कम मुख हाँवेत्सर्गभा ठमां रवां टेटठाभां रोड अने वेध त्या आनी पछोम्मां ने प्रभुना भनपांकी बुद्धिपूर्वक पीठा जे यी बीधां आ पीठा जेयाती वजते प्रभुने असह वेदना बर्ध तो । पण प्रभुज्जे, आनी अनवबभान्तीज अने घोर वेदनाकोने सजम्ह प्रहार सही बीबी । पीठा हाडवा अने योग्य औबध ठप्पाये करीने अनववचना होनेने वेदवधकित जयानी रोड अने वेध घर तरह वल्था । साशनसहा क्षत्रीना घात-प्रवसावात होम व छे तदनुसार पीवान् दुष्पुत्तीज हज खोजववा आ जेवाजने नरकजतिभां अगु पडतु न्यारे वेध तेम व रोड दुःसाभापीना हज येये ज्यारभां देवलोकभां देवपत्ते उत्पन्न बर्वा (सू० ९७)

रीशाने आर्ये—अनुभूत पत्र घना आड ते स्थल छोडीने देवना अन्य स्थलीज्जे निकार अन्याने सायुज्याने

निवन्नेन एषः=अय प्रभुः श्रीवीरस्वामी अहुलां=निरुपमा दुःसहा वेदना=व्यथाम् अनुभवति इति । ततः खलु सः=खरकनामावैद्यः श्रेष्ठिनं=सिद्धार्थम् अकथयत्=श्रीवीरव्यथावृत्तात् निवेदितवान् । प्रभुश्च गृहीतमिक्षःसन् उद्यानम्=उपवनम् समनुभासः=आगतः । इतश्च सःसिद्धार्थनामकः श्रेष्ठी खरकनामा=वैद्यश्च उद्याने=उपवने गत्वा कायोत्सर्गस्थितस्य प्रभोः=श्रीवीरस्वामिनः कर्णोभ्या=कर्णद्वयात् महत्या=अति कौशलवत्या युवत्या ते=ऋणनिवाते शल्ये=कीलके निस्सारयतः=वह्निष्कुरुतः । यद्यपि कीलकोद्धरणे=ऋणविवरणे प्रभोः=श्रीवीरस्वामिनः दुःसहा=कण्ठेन सहनीया वेदना=पीडा संजाता, तथाऽपि भगवान्=श्रीवीरस्वामी चरमशरीरत्वेन=अनन्तवलत्वेन च ताम् उज्ज्वलाम् उत्कृष्टाम् तीव्राम्=उग्राम् घोरा=भयङ्कराम् कातरजनदुरध्यासाम्=कातरजनैः=अधीरपुरुषैः वेदनां सम्यक् असह्यत सोढवान् । ततःकीलकनिःसारणानन्तरं खलु सिद्धार्थनामा श्रेष्ठी वैद्यः=खरकश्च औपधोपचारेण=

कारण भगवान् अनुपम और दुस्सह वेदनाका अनुभव कर रहे है। खरक वैद्यने यह बात सिद्धार्थ मेठ से कही। भगवान् भिक्षा ग्रहण करके उद्यान में चले गये।

इधर सिद्धार्थ नामक सेठ और खरक वैद्य-दोनों उद्यान में पहुँचे। भगवान् कायोत्सर्ग में स्थित थे। उन्होंने ने अत्यन्त कुशलतापूर्ण युक्ति से भगवान् के दोनों कानों में से ठोकी हुई वह कीलें निकालीं। यद्यपि दोनों कानों में से कीलें बाहर निकालने में भगवान् को अतीव दुस्सह व्यथा हुई फिर भी चरमशरीरी अर्थात् तद्भवमोक्षगामी होने तथा अनन्त बल से संपन्न होने के कारण भगवान् ने उस उत्कृष्ट, उग्र भयानक और अधीर पुरुषों द्वारा असह्य वेदना को भलीभाँति सहन कर लिया। सिद्धार्थ सेठ और खरक वैद्य औपधो-

द्वेभनारने ते क्षान्ता शृणुगार इष दागे ! डोहने पणु आ वेदनातु स्वइष नमन्नथु नडि. इक्षत आ जे व पुइय-शाणी पुरुषेने लगवाननी वेदनानी पीडा सम्बळ. आथी युक्ति-प्रयुक्ति वडे क्षान्तमार्थी पीडाओने जडार डोढी नाप्या डाढती वपते लगवानना सुणमार्थी नीकणेढी यीस ज्येढी वेदनापूर्वकनी तीव्र हुती डे आसासना प्राक्षीज्यो धुल्ल उह्या ढोडोक्षित ज्ये प्रमाखे हुती डे लगवाने पाडेढी बीसथी पासेना पर्वतमां यिनार पडी गध ज्येवी प्रजद वेदना प्रभु ते समथे लोगवी रखा हुता. संथमी सुनिजोनी शुश्रूषा तीर्थं कर गोत्र पणु गधानी आपे छे, प्रपर संथमी सुनि डोय, साधनामां ज्योतप्रोत थयेड डोय, तेभनी सेवा करवावांणी व्यक्ति, त्याग लावनी धग्धुक अने पोपड डोय ते जडर पुइयाजुअंधी पुइय गधाय ते निश्चित वात छे आ जन्ने पुइयात्माज्यो यथा समथे भरणु पाभी, अच्युत नामना जारमां देवलोडमा देवपणु उत्पन्न थया.

कठिनवृक्षस्य कोष्ठे=कीलरूपं निर्माणं=कुटा कुठारप्रकारेण=कुठारपृष्ठापातेन अन्तः=कृष्णाम्ब्यन्तरे नित्यन्य=परस्परं
 तथा=निनितातया कीलरूपोऽपरिभागी=कृष्णविवरतो वरिधितभागी अचिन्तन्त=कुठारेण छेदितवान् । येन हेतुना
 ने=हर्मनिमाते कोसके न कोऽपि=द्विद्विषि दृष्ट्वा शातं शब्दयुगात् नापि च निस्सारयितुं=प्रयत्नेतुं शब्दयुगात् । प्रमोः=
 धीवीरस्यामितं ययम्=एषः यष्टादशमवधकक्रमः=अष्टादश मये=त्रिषुषासु देवमन्मनि स्वय्यापालकस्य कर्मणो
 शतकनितदीगुरुद्वयनिक्षपणेन भद्रस्य=उपाजितस्य कर्मण उदयः=उदयोर्बलिकार्या प्रवेशः समुपस्थितः=जातः ।
 दूरादयः= दूरतया स गोपालः' ततः तस्मात् स्थानात् निष्कस्य=निर्गतस्य अन्वयः गतः । मधुमन्=धीवीरस्वामी
 द तत्र=पय्यानिध्यापयस्य बायोधानात् निष्कस्य=निःसृत्य मध्यमपाषाणाय=मध्यमपाषाणानामिकायां नगरीयां
 वितापीय=वितापयम् अन्व=अयम् क्रमेण सिद्धार्थभेष्टिष्टयम् अनुभवितुम् । तत्र=सिद्धार्थभेष्टिष्टये स्तुतु प्रयोजन
 वशादागतं नरकादिषः=नरकानामावेवाः=विच्छिस्तस्य आस्ते=तिष्ठति । स च मधु दृष्ट्वा अमानित=ज्ञातवान् यत्
 एतस्य=धीवीरस्य कर्मणो=हर्मदेये केनापि दुर्जनेन स्वल्पे=कीळे नित्साते=कर्मविवराम्ब्यन्तरे प्रवेशिते, तेन=कील
 नामक कठिन वृक्षकी दो कीलें बनाकर तथा कुत्तादे के पिछले प्राग से ठोक ठोक कर गाढ कीं । कानों के
 भीतर ठाकी दूर कीलों के बाहर निकले हुए सिरे उसने कुत्तादे से काट डाले, जिस से देखनेवाला देख
 न सके कि कानों में कीळे ठोकी दूर है और वह कीळे निकल भी न सके । मगवान ने अठारहवें भव में
 जो कर्म कैंवे थे, उनका यह फल था । उस भव में वह क्षिप्र वायुदेव थे । उन्होंने स्वय्यापालक के कानों में
 उलून्ता हुआ नीलका रस डक्काया था । वही कर्म अब उदय में आया ।

दृष्ट्वाय च गुहात् उस स्थान से निकल कर दूसरी गुहा वला गया । मगवान् वीरमयूने पम्पानिक
 ग्राम से निष्क्रम कर मध्यमपाषाण नामक नगरी में गिरा के क्षिप्र अग्रण करते हुए अनुक्रम से सिद्धार्थ नामक
 मठ के पर में प्रवेग किया । सिद्धार्थ सेठ के घर तब तक नामक वैद्य किसी प्रयोजन से आया था । उसने
 मधु को देखकर जान लिया कि इनके कानों के अन्दर किसी दुर्जनने कीलें ठोक दी हैं । कीलें ठोकने के

निन्दित हर्मो नर उद उद नदी तेवी ते निभूष हरी यशस्व छि पय निशब्धित हर्मोने वरदुगुणबी हरी
 यशस्व नदी प्रवृत्ति, स्थिति, अनुवाच करने प्रदेश जे याद देख छि निन्दित हर्मोभां आ याद प्रभारे। वरदुगुण
 र्धन शके छि न्यादे निशब्धितभां प्रदेशदेन वरद देख छि अजयने भूयें वाषिवा निशब्धित हर्म आ भवे ते भूय
 रसभां उदय न्यान्नु करने तेन हय वृचे तेभना क्षानभां जीवा देवता।
 हर्म वरानर सौजवाधं दृष्ट करने तेना अत आकर्षा सिद्धार्थ शेर करने वैद्यनु निशान भव आ करने
 धर्मोभांस्थित भन अजयानन्द दृष्ट जेव पय न निशब्धित भवा। जीवा पय जेवी दीते नाभवभां आभा उदय दे

एवं विहेणं विहारेणं विहरमाणस्स भगवान् ओ अणुत्तरेण णाणेण अणुत्तरेण दंसणेण अणुत्तरेण तवेण अणुत्तरेण संजमेण अणुत्तरेण उट्ठाणेण अणुत्तरेण कम्मेण अणुत्तरेण वलेण अणुत्तरेण वीरिणं, अणुत्तरेण पुरिसकारेण अणुत्तरेण परक्कमेण अणुत्तराए खंतीए अणुत्तराए मुत्तोए अणुत्तराए लेसाए अणुत्तरेण अज्जवेण अणुत्तरेण मद्वेण अणुत्तरेण लाघवेण अणुत्तरेण सच्चेण अणुत्तरेण क्षाणेण अणुत्तरेण अज्झवसाणेण अप्पाणं भावेमाणस्स वारसवासो तेरस्स पक्खा वीइक्कंता । तेरस्समस्स वासस्स परियाए वट्टमाणणं जे से गिम्हाणं दोक्के मासे चउत्थे पक्खे वइसाह सुद्धे, तस्स णं वइसाह सुद्धस्स नवमी पक्खेणं जंभियाभिहस्स गामस्स वहिया उज्जालियाए णईए उत्तरकूले सामगामिहस्स गाहावइस्स विचम्मि सालुक्खस्स मूले रत्ति काउस्सगे ठिए । तत्थणं छउमत्थावत्थाए अंतिमराइयंमि भगवं इमे दस महासुमिणे पासिचाणं पडिबुद्धे । तं जहा—

एणं च णं महं धोरदित्तरुवयरं तालपिसायं पराजियं सुविणे पासिचाणं पडिबुद्धे १ । एवं एणं च णं महासुक्किल पक्खणं पुंसकोइलं २, एणं च णं महं चित्तविचित्त पक्खणं पुंसकोइलं ३, एणं च णं महं दामयुगं सववरयणाभयं ४, एण च णं महं सेयं गोवण ५, एणं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं ६, एणं च णं महं सागरं उम्मिवीइसहस्स कलियं भुयाहिं तिण्णं ७, एणं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं ८ एणं च णं महं हरिवेरुलियवन्नायेणं नियगे; अंतेणं माणुसुचर पक्खं सव्वओ समंता आंव्हियपरिवेहियं ९ एणं च णं महं मंदरे पक्वए मंदरचूलियाए उव्वरिं सीहासणवरगयं अप्पाणं सुविणे पासिचाणं पडिबुद्धे १० ॥ सू० ९८ ॥

छाया—वतःखलु स श्रमणो भगवान् महावीरः ईर्यासमितो यावद् गुप्तब्रह्मचारी अमोऽकिञ्चनोऽक्रोधोऽमानोऽमायोऽलोभः शान्तः प्रशान्तः उपशान्तः परनिर्वृतः अनास्रवः अग्रन्थः छिन्नग्रन्थः छिन्नस्रोता निरुपलेपः आत्मस्थितः आत्महितः आत्मज्योतिष्कः आत्मपराक्रमः समाधिमाप्तः कांस्यपात्रमिव मुक्ततोयः, शङ्ख इव मूल का अर्थ—‘तएणं से’ इत्यादि । तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ईर्यासमिति से सम्पन्न, यावत् गुप्त ब्रह्मचारी, निर्मम, अकिंचन, क्रोधहीन, मानहीन, मायाहीन, शान्त, प्रशान्त, उपशान्त, परनिर्वृत, आस्रव-रहित, छिन्नग्रन्थ छिन्नस्रोत, निरुपलेप, आत्मस्थित, आत्महित, आत्मज्योतिष्क, आत्मपराक्रम, समाधिमाप्त,

भूणेनो अर्थ—‘तएणं से’ इत्यादि—इथां सभिनि स पन्न, बाधा सभिति आदि धव्वा गुणोऽथी संपन्न अने गुप्त ब्रह्मचारी, निर्मम, अकिंचनी, अक्रोधी, अभानी, अभायावी, निर्दोषी, शांत, प्रशांत, उपशांत परनिर्वृत, निराश्वी, आश्र-थी, छिन्नग्रन्थी, छिन्नस्रोती, निर्दोषी, आत्मस्थित, आत्महितेन्द्रु, आत्मप्रकाशक, आत्मवीर्यवान्, सभाभिप्राप्त

औपपत्त्येवोप तं—भीवीरस्वामिन नीरुग्म=निर्गुण कृत्वा स्वर्ननिर्गुण शूर्य आच्छाद्य=यातवन्ती। तेन कुक्ष्येन गोपात्रः काकवसरे मृत्वा सतत नरकं गतः। अष्टी=सिद्धार्थः वैद्यः लक्ष्मणः श्री द्रो काकावसरे कालं कृत्वा तेन शुभकर्मणा=पुण्यकर्मणा द्वादशे कलत्रे=अष्ट्युतास्ये देवलोके उपपत्त्यौ=देवदेवोत्पत्तौ ॥ १७०९॥

मूलम्—एतत् से समणे मगं महावीरे इरियासयिण, भाव गुच भंमयारी, अममे, अक्किषणे, अक्रोदे, अमाणे, अमाए, अलोदे संते, पससे, उवससे, परिणिच्छुए, अगाससे, अमंये, छिण्णगंभे, छिण्यासोए, निरुवळेवे, मायिरे, मायाइए, आयमोइए, आयपरकमे, समादिपणे, कंसपायनमुक्खोए, संल इव निरंजणे, जीवो इव अप्पडिपर्या, अबल्लंगविज जायसुव, आइरितकज्जगमिज पागडभावे, कुम्भोव्व रुत्तिदिइ, दुबलपवव निरुवळेवे, गगगमिज मितालंजणे, अबिल्लोव्व निरावड, वंदोव्व सोमळेसे, दुरो इव विवळेए, सागरो इव गंभीरे, विहगो इव सव्वमो विप्पुळे, मरुतो इव अप्पडंये, सारयसल्लिज सुद्धरियण, लम्भिविसाणंज एगमाए, मारंडपक्खीव अपमवे, इंदुरो इव सौंदीरे, वसमो इव जायएभावे, सीढो इव दुद्धरिसे, वसुंजरेव सव्वफसससे, सुहुयडुयासजो इव देयसा जलंवे वासावासवज्ज अट्टसु गिज्व हेमंतिपडु मासेसु गामे २ एगारायं गयरे २ पंघारायं वासीक्खंजकूपे समळेहुंजणे समसुइदुरे इव जोगयल्लोभ अण्डिबड अटिसे संसाएगारागामो कम्मयिगयाजहाए अम्मुट्टिय विहरा, नत्थिजं वत्स मागमो कत्थइ पडिक्खे ।

पचार से मगवान् महावीर को नीरोग करके अपने २ पर चले गये। इस पापकर्म के कारण वह युवाव मृत्यु के अवसर पर मर कर साठवें नरक में गया। सेठ सिद्धार्थ और लक्ष्मण वैद्य दोनों यथासमय क्षीरत्यक्त कर उस पुण्य कर्म के उदय से बारहों वर्षयुग नामक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुए ॥ १७०९॥

वेरने स्वभाव इशणीयानी बाण लेवे। बाण लेभ इशणीयानी बाण जहाइ नीकगतां वधवा न भोंडे छि अने तेनी आशिताइ आवने नभी, अने तेभां सप्यवेन एवज तु तेभां छेछ बाण नीकणी यस्तु नभी ते प्रभावे वेरनी ११ पण ११ मती न रहे छे अने ते वेराजुन भी इशो जेह पछी जेह न धाता अने खोजाता बाध छे भाटे वेरने। जहा वेराजुनानी उभय न राजनी, ११ तु तेनी कथापना इराव, ते निभूज अने निभूज बड व्यथ छे जीव जनी तथा पछी लेभ तेनाभांको अट्टेरा इट्टा नवी तेन प्रभावे वेरनु उपसथ वतां ते अभी व्यथ छे भाटे ले अथवां वेरा इरपन बड छे। वेरने उपसथ भावन बाध विवेक अने समजवुपरं इरी नाजु जेहजे अन्ध जेवेभां ज्वावी बाधो छेनी नभी, तेन न एवने। पण खेरोपसथभाव भानभाव नेटो खेते। नभी। (१५ ६७)

एवंविधेन विहारेण विहरतो भगवतः अनुत्तरेण ज्ञानेन अनुत्तरेण दर्शनेन अनुत्तरेण तपसा अनुत्तरेण संयमेन अनुत्तरेण उत्थानेन अनुत्तरेण कर्मणा अनुत्तरेण वलेन अनुत्तरेण वीर्येण अनुत्तरेण पुरुषकारेण अनुत्तरेण पराक्रमेण अनुत्तरया क्षान्त्या अनुत्तरया सुत्तया अनुत्तरया लेख्यया अनुत्तरेण आर्जवेन अनुत्तरेण मार्दवेन अनुत्तरेण लावणेन अनुत्तरेण सत्येन अनुत्तरेण ध्यानेन अनुत्तरेण अध्यवसानेन आत्मानं भावयतो द्वादशवर्षाः त्रयोदशपक्षा व्यतिक्रान्ताः। त्रयोदशस्य वर्षस्य पर्याये वर्तमानानां यः स ग्रीष्माणां द्वितीयो मासः चतुर्थः पक्षः

इस प्रकार के विहार से विचरते हुए भगवान् को अनुत्तर (सर्वोत्तम) ज्ञान, अनुत्तर दर्शन, अनुत्तर तप, अनुत्तर संयम, अनुत्तर उत्थान, अनुत्तर क्रिया, अनुत्तर बल, अनुत्तर वीर्य, अनुत्तर पुरुषकार, अनुत्तर पराक्रम, अनुत्तर क्षमा, अनुत्तर निर्लोभता, अनुत्तर लेख्या, अनुत्तर आर्जव, अनुत्तर मार्दव, अनुत्तर लावण्य, अनुत्तर सत्य, अनुत्तर ध्यान तथा अनुत्तर अध्यवसाय से आत्मा को भावित करते करते बारह वर्ष और तेरह पक्ष व्यतीत हो गये। भगवान् की दीक्षा के तेरहवें वर्ष के पर्याय में वर्तमान ग्रीष्म ऋतु का जो दूसरा मास

अडी निस्नेही आदि शब्दोंसे अर्थ करवाया जावे छे—

भगवान्, कासाना पात्र समान स्नेहवर्जित होवाथी, तेजो निस्नेही कहेवाया श्रुत समान भण रहित होवाथी तेजो निरञ्जन कहेवाया शुक्ल समान स्नेहवर्जित होवाथी, तेजो निस्नेही कहेवाया श्रुत समान भण रहित होवाथी तेजो देहीअमान कहेवाया। वर्षषु समान तत्वे ने प्रगल्भीत करवावाणा होवाथी, तेजो तत्त्व प्रकथक कहेवाया श्रुत समान धन्दिद्योने गोपवावाणा होवाथी तेजो शुभेन्द्रिय कहेवाया। कर्मपत्रनी भाक्षक लेप रहित होवाथी निर्विष कहेवाया आश्रय भाक्षक आधार-विना होवाथी, तेजो निराश्रयणी कहेवाया। पवननी समान धरनगरना होवाथी निराश्रय कहेवाया। चद्रमा समान सौम्य होवाथी तेजो सौम्यदेशी गणुया, सूर्यना तेज नेवुं तेमनुं तेज होवाथी तेजो तेजस्वी होवाया सागर समान होवाथी गंभीर गणुया, पक्षी समान गमे त्यां गच्छ शकवावाणा अक्षय-मनाया, शरदृक्तनुता नग होवा स्वच्छ हृदयवाणा गणुता, जोडना शी गडानी समान अद्वितीय-ज्येष्ठ जन्म लेनार कहेवाया, लारंउपक्षी समान जगुत होवाना करखे तेजो अप्रभक्त गणुया, गज होवा होवाथी 'वीर' कहेवाया, वृषभ समान होवाथी वीरवान्-परा भी-कहेवाया, सिद्ध समान नेरदार होवाथी अन्ये गणुयां; पृथ्वी समान सर्वना लार भ्रमवावाणा होवाथी तेजो सर्व-सह-सहनावी मनाया। धी होमेला अग्नि होवा तेजस्वी होवाथी जगवद्व्यमान गणुया, वर्षाक्षण सिवायना श्रीणि अपने होमतना आह मडीनाज्योमा, गाभमा, ज्येष्ठ रात्रि अपने नगरमां पांथ रात्रि

निराश्रयः, नीर इवामशिरगतविः, जाल्यस्त्रुणमिव जातस्त्रयः, आदर्शफलकमिव प्रकटमात्रः, कुर्मन् इव गुप्तेन्द्रियः, पुच्छस्रमिव निरुपलेशः, गगनमिव निरासम्भवाः, अनिष्ट इव निरालम्बः, चन्द्र इव सौम्यलेश्यः, वर इव शीतनेजाः, सागर इव गंभीरः, विराग इव सर्वतो विममुक्तः, मन्दर इव अयस्कम्पः, आरवसलिलमिव शुद्धहृदयः, नवगुणित्वागमिव एकमात्रः, भारण्डपत्नीच अपमर्शः, कुञ्जर इव शोण्डीरः, हृषम इव आसत्यामा, सिंह इव दुर्दमः, वसु-वरेव सर्वसंश्रयः, सुदृढदुर्गावन इव तेजसा उज्ज्वल वर्णाशालवर्णपट्यासु प्रेम्ण हेमन्तिकेषु मासेषु ग्रामे २ एकदशे नगरे २ पञ्चरात्र शालीचन्दनहरः समकोटकाखनः समसुलदुर्गः इव लोकपरलोकान्तविषयः अमरविहः संसार पार गामी कर्मनिर्गोतनाशाय शत्रुस्थितो विहरवि, नास्ति तल्लु तस्य भगवतः कुत्रचित् प्रतिक्रियाः ।

कासे के पात्र के समान स्नेह-चर्चित, उव के समान निर्जन, ग्रीव के समान अन्वगृह्य गति वाले, दुष्कर्म स्वर्ग के समान दीर्घमान, दर्पण के समान शत्रुओं को प्रकाशित करने वाले, कच्छप के समान गुप्तेन्द्रिय, कमल-पत्र के समान उरुलभ-विहीन, आकाश के समान, निरवश्वजन, पवन के समान आलस्यविहीन, चन्द्रमा के समान सौम्य छेश्या वाले, सूर्य के समान दीर्घमान सेत्र से युक्त, सागर की तरह गभीर, पत्नी के समान सर्वतः विममुक्त, सुमर की तरह अस्म्य, श्वेत ऋतु के अन्ध के समान स्वच्छ-हृदय, गैरे के सींग के समान अद्वितीयजन्य छेनेवाले, भारण्ड पत्नी के समान अवमर्श, गज के समान चीर, हृषम के समान वीर्यवान्, सिंह के समान अनेप, दुष्टी के समान समस्त स्पर्शों को सहने वाले, अच्छी तरह होमी हुई अग्नि के समान तेज से जाग्रदव्यमान, वराकाम के सिंहास ग्रीष्म और हेमन्त के आठ महीनों में प्राप्त में एक रात्रि और नगर में पाँच रात्रि तक रहनेवाले, शाली-चन्दन के समान, मिट्टी और स्वर्ण की समरूपि से देखनेवाले, सुव-दुर्लभ में समान, इक्षोक्त-रत्नकोट में अनासक्त, अमरविह, संसार पारगामी और कर्मों को नष्ट करने के लिए पराक्रमशील होकर निचरते थे । भगवान् का कर्तों भी प्रतिक्रिया नहीं था ।

निःस्नेही, निरञ्जन, अन्धकारप्रति, दोषोपमान, तरुप्रभमान, सुतेन्द्रिय, निर्विघ्न, निरापेक्ष, निरादर, सोम्यलेश्य, तेजस्वी, नवीर, सत्येय, विप्रशुभ, अक्षय, स्वच्छहृदय, अद्वितीयकर्म, आप्रपन्न, वीर, विवेचान्, अनेप, सर्वसह आनन्दप्रधान, वशीकृत सिंहास श्रोत्र अने केवतना आठ महीनार्थ आभर्मा लोक शक्ति अने नगरमां पाँच रात्रि सुधी रहनेवाला शाली चन्दन प्रधान, माटी अने सोनाने समान छिने नेवार सुष्ण्डःप्रभां समान सकलौक पराक्रोशी आभक्ति रहित अमरविह, अक्षय पाँचरात्री, चन्द्रमशील जेवा उपरेशकत श्रुतौवाणा अभय भगवान् अभ्यधीर निराश्रय आन्ध्र प्रभुने कभीन पण्य प्रतिजन्म कृतो नहि.

महद् दामादिकं सर्वरत्नमयम् ४, एक च खलु महान्तं श्वेतं गोवर्गम् ५, एकं च खलु महत् पद्मसरः सर्वतः समन्तात् कुसुमितम् ६, एक च खलु महान्त सागरम् ऊर्मित्रीचिसहस्रकलितं भुजाभ्या तीर्णम् ७, एकं च खलु महान्तं दिनकरं तेजसा ज्वलन्तम् ८, एकं च खलु महान्तं दृग्वैडूर्यवर्णाभेन निजकेन अन्वेण मानुषोत्तरं पर्वतं सर्वतः समन्ताद् आवेष्टितपरिवेष्टितम् ९, एक च खलु महान्तं मन्दरे पर्वते मन्दरचूलीकाया उपरि सिंहासनं वरगतमात्मानं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः । मृ० ९८॥

टीका—‘तएण से समणे’ इत्यादि । नतः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरः ईश्वर्यासमिनः=इश्वर्या-समिति-समन्वितः-यतनया गमनेन प्राणिगणं रक्षन्-‘यावत्’-पदेन भाषासमितः, एषणासमितः, आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपासमितः, उच्चार प्रसवणश्लेष्मशिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनिकासमितः, मनोगुप्तः, वचोगुप्तः कायगुप्तः,

चित्र-विचित्र पखेवाले पुरुष-कोकिल को देखा । (४) एक महान् सर्व रत्नमय मात्मा-युगल देखा । (५) एक विशाल श्वेत गोवर्ग देखा । (६) सब तरफ से पुष्पित एक पद्म-युक्त विगाळ सरोवर देखा । (७) एक हजारों तरंगों से युक्त, महान् समुद्र को अपनी भुजाओं से पार किया देखा । (८) एक महान् तेज से जाजल्यमान सूर्य को देखा । (९) पिगलवर्ण की हरि मणि और नीलवर्ण की नीलम मणि की आभा के समान कान्तिवाली अपनी आत से महान् मानुषोत्तर पर्वत को सब ओर से वेष्टित और परिवेष्टित देखा । (१०) मेरु पर्वत पर मन्दर-चूलिका के उपर अपने आप को एक श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा देखा । इस देखकर भगवान् जागृत हुए ॥ मृ० ९८॥

टीका का अर्थ—उस समय भगवान् महावीर ईश्वर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभाण्ड-मात्रनिक्षेपाणा समिति, उच्चारप्रसवणश्लेष्मशिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनिकासमिति से युक्त थे, तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति

नेथु (२) ओक अत्यंत सद्देह पाथवाण। पुरुष जतित्ता ओकिलने जेथे। (३) ओक विशाण चित्र-वि-नन्त पांथोवाणा नर-ओकिलने तेमहे जेथे। (४) ओक सुवर्णभय अने रत्नभय भाणानी नेडी जेई। (५) ओक विशाण भद्देह पशुवाणुं गाथेनुं धणुं हेणुं। (५) यारे तरई युण्येथी भदेहुं ओक विशाल पद्म सरोवर हेणुं। (७) इनाये सोल नाला भडान् समुद्रने पोते लुणज्जोथी तरी गया। इथ तेवु स्वप्न तेमहे जेथुं। (८) भडान् तेजस्वो सर्वदे जेथे। (९) पीणा रगना अने वीला रगना नीलम भल्लिज्जोनी अतिनी सभान् अतिवाणा आतरइथी भडान् ‘मानुषोत्तर’ पर्वत ने यारे थान्थी विंठणाओल जेथे। (१०) मेइ पर्वत उपरना ‘भद्धारथुलीका’ नामना शिथर उपर ओक उत्तम सिंहासननी उपर पोते जेठेला जेथे। या प्रभाहे हेअतांनी साथेअ भगवान् जगुन थया ॥ सू० ९८॥

टीकाનો अर्थ—ते समये भगवान् महावीर ईश्वर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभाण्ड मात्र निक्षेपाणा समिति, उच्चार प्रसवण श्लेष्मशिङ्घाणजल्ल परिष्ठापनिका समितिथी युक्त हुता तथा मनोगुप्ति, अने वचनगुप्ति।

वैठालवृद्धः, तस्य सखु वैशालशुद्धस्य नरगीपक्षे सखु जृम्भिकाभिषस्य ग्रामस्य बाणे ऋजुणाळिकाया नया उत्तराच्छेदे सामगाभिषस्य गाथापते क्षेत्रे शालवृक्षस्य मूले रात्रिं कायोत्सर्गे स्थित । ततः सखु छत्रस्यावस्थाया श्रुतिमर वे भगवान् इमान् वज्रमहास्त्रान् दद्या प्रणिपुढः । तद्यथा—

एकच तल्लु महाते योरं दीक्षकावरं तालपिशाचं परान्जित स्मरे दद्या तल्लु प्रतिपुदः १। एवमेकं च तल्लु मायुक्ष्णसक्तं पुंरुद्राक्षिणम् २, एकच तल्लु महान्तं विम्रिचित्र पयकं पुरस्कीकितम् ३। एकं च तल्लु और धोया पत्त-नैशाल थुळ पत्त या, उस नैशाल थुळ पत्त की नीचिके दिन भगवान् जूमिक नामक ग्राम के बार, स्रुपसिकिका न्नी के उषर छिनारे, सामग नामक गायापति के खेत में, तालवृक्ष के नीचे, रात्रि में, कायोत्सर्ग में स्थित हुए। छत्रस्य अवस्था की उस अन्तिम रात्रि में भगवान् यह दस महास्वम देवतकर प्रतिपुद हुए। ये स्वम ये हैं—

(१) एक महान् और दीप्त रूप धारी तालगिन्नाच को स्वयं मे पराजित देखकर प्रतिबुद्ध हुए। (२) इसी प्रकार एक अत्यन्त सफेद पंजोवाछे पुरुष जातीय कोष्ठिका को देखकर प्रतिबुद्ध हुए। (३) —

સુધી રહેલવાળા અખડરી ને ઉપક્રમી માનવાણી સુધારિત સ્વદેશ સમાન, માટી અને સોનાને સમાન દ્રવિયી બેનાર, સુખદુઃખ મા સમાન, ઉલ્લેખ પડેલાની વ્યાસક્રિ નરિત અખતિસ-દેશરૂણ ભાવની પ્રતિજ્ઞા વગરના, સ્વાસ્થ્ય પારમાત્મા અને આપર્યોત્તે નાશ કરવા માટે પશ્ચાત્તઃક્રમીક રહેવાના

ઉપરના પ્રલેખી વિશિષ્ટિત એવા કામણ ભગવન મહાવીર કેવા કેવા અધ્યવચારથી આત્માને ભાવિત કરતા હતા તેા હકે છે કે, અનુત્તર-(અવોત્તમ) સાનં, અનુત્તર દર્શન, અનુત્તર તપ, અનુત્તર સુખ, અનુત્તર ઉત્થાન, અનુત્તર ક્રિયા, અનુત્તર ભગ, અનુત્તર વીર્ય, અનુત્તર પુરુષાર્થ અનુત્તર પદ્મામ અનુત્તર ક્ષમા, અનુત્તર નિર્દોષતા, અનુત્તર દેવતા, અનુત્તર અર્જુન, અનુત્તર લાલસ, અનુત્તર સત્ય, અનુત્તર ધ્યાન અને અનુત્તર અધ્યવચારો વડે પોતાના આત્માને ભાવિત કરતા હતા. આવી રીતે આત્માને ભાવિત કરતાં કર્તાતેમને બાર વર્ષે જાને તેર પપ્રવાદીમાં રજાર ઘડી અર્ધા દીકા પદ્મના તેરમા વર્ષે ગ્રીષ્મ ઋતુને માસ અને વૈશાખ અશ્વિનિયુ ઝંટેલે વૈશાખ સુદ નવમીના દિવસ યાદગતા હતા. ઔલિક નામના આત્મની બહાર, અણુ પાત્રિમ નદીના ઉત્તર કિનારે, સામગ નામના આશાપતિના સેન મધ્યે, સાદ વૃક્ષની નીચે, સુત્રીના સગરે ક્રોધોત્સર્ગમાં તેઓ સ્થિત થયા. બા છત્રાલ્ય જાલરધાની ઉછી રાત્રી હતી. આ રાત્રીના સમયે, જાગવને દયા મહાસ્વપ્ને તેઓ અને એવાની સાથે તેઓ પ્રતિયુદ્ધ થવા તે સ્વપ્નના આ પ્રમાણે હતા—

સ્વપ્નનેનુ જન—(૧) એક મહાન અધિપતિ રીપરપધારી વાઙ્મિયાજાને સ્વપ્નમાં પોતે હસતોયે છે એમ ભગવાને

धर्मध्यानानुबन्धिनी माध्यस्थ्यपरिणतिः २, तृतीया च सा सकलमनोवृत्तिनिरोधेन योगनिरोधान्नस्याभाविनी आत्मरमणरूपा । उक्तं च योगशास्त्रे—

“विमुक्तकल्पनाजालं समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।
आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता ॥१॥ इति ।

तथा मनोगुप्त्या युक्तः । वचोगुप्तः—वचनगुप्तियुक्तः । तत्र वचनगुप्तिश्चतुर्विधा,
उक्तं च—“सच्चा तदेव मोसान्य, सच्चा मोसा तदेव य ।
चउत्थी असच मोसा उ, वचगुप्ती चउन्विहा ॥१॥” (उक्त. २४ अ.)

छाया—“सत्या तथैव गुपा च, सत्यागुपा तथैव च ।
चतुर्थ्यस्त्यागुपा तु, वचोगुप्तिश्चतुर्विधा ॥१॥ इति ।

अनुकूल, परलोक को साधनेवाली, धर्मध्यान के अनुकूल मध्यस्थभाव रूप परिणति, (३) समस्त मानसिक वृत्तियों के निरोध से, योगनिरोध की अवस्था में उत्पन्न होनेवाली आत्मरमणरूप प्रवृत्ति । योगशास्त्र में कहा है—

“विमुक्तकल्पनाजालं, समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।
आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता ” ॥ १ ॥ इति ।

कल्पनाओं के जाल से सर्वथा मुक्त, समत्व में सुप्रतिष्ठित और आत्मारूपी उद्यान में रमण करनेवाला मन ही मनोगुप्ति है; ऐसा गुप्ति के ज्ञाताओने कहा है ॥ १ ॥

भगवान् वचनगुप्ति से भी युक्त थे । वचनगुप्तिचार प्रकार की है । कहा भी है—

अनुकूल मध्यस्थभावश्च परिणति (३) सधर्मी भानसिद्धमनोज्ञाना निरोधधी योग निरोध अवस्थाभा उत्पन्न धनारी आत्मरमणरूप प्रवृत्ति. योगशास्त्र ॥१॥ छ—

विमुक्तकल्पनाजालं, समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।
आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता ॥ १ ॥ इति ।

उदयनान्नामी भाषणी सर्वथा सुकृत, समत्वभा सुप्रतिष्ठित आने आत्माभां रमण करनेवाले मन ७, मनोगुप्ति छ, ओषुं मनोगुप्तिना भवुक्षेत्रो छेले छे. ॥१॥

भगवान् वचनगुप्तिचाणा पण्डित. वचन गुप्ति आर प्रधारनी छे, उह्य पण्ड छे—

गुप्तः, गुप्तेन्द्रिय " इत्येतां सत्ता", तत्र 'भाषासमिति' = भाषासमितिपुष्का - भाषासमितिष - निरवयवचनमद्वयि, तथा युक्तः, एषणासमितिः - एषणायासु = अश्वनाशिवगेषणायासु उद्वसादि द्वित्वापरिसरोपवर्धनेन समित' = समितिपुष्का; आदानमाण्डमावनिक्षेपवासमितः - आदाने = माण्डमात्रयोर्ग्रहेणे माण्डमात्रयोः - माण्डस्थ = पापस्य मात्रस्य = वस्त्रादिकृत्स्योपकृतस्य च, यद्वा - माण्डमात्रयोः - माण्डस्थ = वस्त्रादुपकरणस्य अयमप्रत्यय = पापस्य वेत्युभयोः निक्षेपणायासु - भवस्यापनयां समितः = प्रतिष्ठेत्वनदिपूर्वकप्रवृत्त्युक्तः, उच्चारणसम्पन्नम् = अस्मिन्निष्ठाणमष्टपरिष्ठापनिका समित' - तत्र - उच्चार - पुरीय, अष्टेष्वा = रुफः, विद्वान् = नासिकाफलं, जङ्घा = अश्वेदसम्, एतेषां परिष्ठापनिकायां = परिरयाने समित' = स्थापित्वादि दोषपरिहारपूर्वकप्रवृत्त्युक्तः, मनोगुप्त - मनोगुप्तिस्त्रिविधा - तत्र प्रथमा सा - आश्रयैर्द्रव्यानामुच्चिक्त्वन्नात्मविशेषयोगरूपान्, द्वितीयामनोगुप्तिष - शाब्दानुसारिणी परलोकासाधिनी

और कायगुप्ति से सम्पन्न वे, गुप्त वे और गुप्तेन्द्रिय वे। प्राणिजों की रसा करते हुए यतनापूर्वक चलना ईर्ष्यासमिति है। निर्दोष वपनों का प्रयोग करना भाषासमिति है। एषणा में अर्थात् - आहार आदि को गवेषणा में उद्वगम आदि ४२ (वपनीस) दोषों का वर्जन करना एषणासमिति है। माद-पाप तथा मात्र-वत्त आदि उपकरणों के ग्रहण करने और रत्न में अथवा माण्ड और वत्त आदि उपकरणों के तथा असन्न अर्थात् पात्र के आदान-निक्षेप में यतना करना अर्थात् प्रतिष्ठेत्वनदि पूर्वक प्रवृत्ति करना आदानमाण्डमात्रनिक्षेपवासमिति है। उच्चार-मल, मलस्य मूत्र, अष्टेष्वा-रुफ, शिष्याण-रुद, जङ्घा-पसीने का मैल, इन सब के परिष्ठापन-परठने में यतना करने को उच्चारणसम्पन्नम् अस्मिन्निष्ठाणमष्टपरिष्ठापनिकासमिति करते हैं। मगवान् मनोगुप्ति से युक्त वे। मनोगुप्ति तीन प्रकार की है—(१) आश्रयण और रीतिप्रधान संबंधी कल्पनाओं का अभाव होना। (२) शास्त्र के

ज्ञाने शेषगुप्तिषी स यत्त इत्या, गुप्त इत्या ज्ञाने गुप्तेन्द्रिय इत्या प्राणीजोनी रसा इत्या यतना पूर्वक चलतु ते प्राणीजमिति छि, निर्दोष वपनेना प्रयोग इत्येतां ते आवासमिति छे, जेवेषुभां जेटदे के आहार काष्ठिनी जेवेषुभां उद्वगम आदि ४२ दोषोनेमा न्वात्र इत्येतां ते जेवेषुभां समिति छे काद-यात्र तथा मात्र-वत्त आदि उपकरणोने प्रवृत्त इत्येतां तथा राजवभां जेवेषुभां काद के वत्त आदि उपकरण तथा आसन जेटदे के यात्रना आदान-निक्षेपमा यतना इत्येतां जेटदे के प्रतिष्ठेत्वन ज्ञाने प्रमाद-इति प्रवृत्ति इत्येतां ते आदान-काद मात्र निक्षेपमा समिति छे उच्चार मल प्रभवम् मूत्र, अष्टेष्वा-रुद, शिष्याण-रुद, जङ्घा-पसीनेना मैल, छि अधाना परिष्ठापन परठवभां यतना इत्येतां तेने उच्चार प्रभवम् अष्टेष्वापति माण्डस्थ परिष्ठापनिका समिति जेटदे छे. अजयवान् अनेकुत्तिमाणा इत्या. अनेकुत्ति मल प्रभवानी छे—(१) आश्रयण अथवा रीतिप्रधान संबंधी कल्पनाओं का अभाव होना। (२) शास्त्र के

कायगुप्तिश्च—द्विधा चेष्टानिवृत्तिरुक्ता १, यथाऽऽत्मचेष्टानियमरूपा च २। तत्र परीपहोपसर्गादि सम्भवेऽपि यत् कायोत्सर्गकरणादिना कायस्य निश्चलत्वाकरणम्, सर्वयोगनिरोधावस्थायीं वा सर्वथा यत् कायचेष्टानिरोधनं सा प्रथमा १। गुरुमापृच्छथ शरीरसंस्तरकभूम्यादि प्रतिलेखना—प्रमार्जनादिसमयोक्त—क्रियाकलापपुरस्सरं शयनासनादि विधेयम्, ततः शयनासननिक्षेपाऽऽदानादिषु स्वेच्छया चेष्टापरिहारेण नियता=शास्त्रनियमानुसारिणी या कायचेष्टा सा द्वितीयेति, उक्तं च—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुपो मुनेः।

स्थिरीभावःशरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते।१।

भगवान् कायगुप्ति से युक्त ये। कायगुप्ति दो प्रकार की है—(१) कायिक चेष्टाओं को त्याग देना और (२) चेष्टाओं का आगम के अनुसार नियमन करना। इन में परिपह उपसर्ग आदि उत्पन्न होने पर कायोत्सर्गक्रिया आदि के द्वारा शरीर को अवल कर लेना अथवा योग मात्र का निरोध हो जानेकी अवस्था में पूर्ण रूप से कायिक चेष्टा का रुक जाना प्रथम कायगुप्ति है। गुरु से आज्ञा लेकर शरीर, संथारा, भूमि आदि की प्रतिलेखना तथा प्रमार्जना आदि शास्त्रोक्त क्रियाएँ करके ही शयन आसन आदि करना चाहिए। अतः शयन, आसन, निक्षेप और आदान आदि क्रियाओं में स्वेच्छापूर्वक चेष्टाओं का परित्याग करके शास्त्रानुसार काय की चेष्टा होना दूसरी कायगुप्ति है। कहा भी है—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुपो मुनेः।

स्थिरीभावः शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥ १ ॥

भगवान् कायगुप्तिरूपा पण्डित कायगुप्ति से प्रकारही छे—(१) कायिक चेष्टाओंको त्याग करवे। अने (२) चेष्टाओंको आगम प्रमाणे नियमन तेभा—परिपह उपसर्ग आदि उत्पन्न थता आगे।त्सर्ग—क्रिया आदि बडे शरीरने अथवा डरी लेवुं अथवा योग मात्रने। निरोध थल जवानी अवस्थाभा पूर्णरूपे कायिक चेष्टावुं अटकी जवुं ते पछेदी कायगुप्ति छे गुरुनी आज्ञा लधने शरीर, संथारो, भूमि आदिनी प्रतिवेधना तथा प्रमार्जना आदि शास्त्रोक्त क्रियाया करीने ज शयन आसन आदि करवुं ओछे। तेथी शयन, आसन, निक्षेप, अने आदानआदि क्रियाओंमां स्वेच्छापूर्वक चेष्टाओंको परित्याग करीने शास्त्रानुसार कायनी चेष्टा छोवी ते भीछ कायगुप्ति छे। कहुं पण्डित छे—

“उपसर्ग प्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुपो मुनेः।

स्थिरीभावः शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥

શ્રમ્યર્થઃ—વયોગુપ્તિઃ=વચનગુપ્તિઃ=વૃષ્ટિ-સત્યા, મુષા, સત્યામુષા, અસત્યામુષાપણેતે। અય માવઃ=નીત્ર-પતિ-
 'અય નીત્ર' इति कृपन सत्यवचनम् १, जीव प्रति-‘अयमजीवः’ इति कृदने मृषावचनम् २, ‘अयास्मिन् नगरे
 ‘अतं वामहा जाताः’ इति पूर्वमनिर्णीय कृदने सत्यामृषावचनम् ३, ‘ग्राम’-समागत’ इति कृदने न सत्यं नापि
 मृषेति, असत्यामृषावचनम् ४, इति चतुर्विध वचनयणानिष्टिर्विचोपगतिरिति। एवं चतुर्विधवचनोपगति युक्तः। तत्र
 यद्वा-सुमुक्तानो वचसाय् उदीरणम् अकुडलानां च निवचन वचोगुप्तिः, तथा युक्त इति। कायगुप्तिमुक्तः। तत्र

“सखा तदेव मोसा य, सखा मोसा तदेव य।

चउत्पी असख मोसा उ, वयगुणी वउत्पिवा” ॥ १” इति।

(१) सत्यवचनगुપ્તિ (२) મૃષાવચનગુપ્તિ (૩) સત્યામૃષાવચનગુપ્તિ ઓર (૪) ચૌથા અસત્યામૃષાવચનગુપ્તિ, ઇસ પ્રકાર વચનગુપ્તિ ચાર પ્રકાર કી હૈ ॥ ૧ ॥

इन्का अमित्राय यह है-वचन वार प्रकारका है, जैसे—जीव को ‘यह जीव है’ ऐसा कहना सत्यवचन
 है। जीव को यह प्रतीति है’ ऐसा कहना मृषावचन है। ‘आन इस नगर में सौ बालकजन्मे’ इस प्रकार
 पढ़छे निर्भय द्विप विना ही कहना सत्यामृषावचन है। ‘गांव आ गया’ इस प्रकार का कहना न सत्य है,
 न मृषा (असत्य) है, इस मिये यह असत्यामृषावचन-व्यवहारमाणा है। इन चारों प्रकार कं वचन योग के
 त्याग की वचनगुपति है। कइते अथवा-प्रसस्त वचनों का प्रयोग करना और अवस्तवचनों का त्याग
 करना वचनगुपति है। मगशान् इस वचनगुपति से युक्त ये।

“सखा तदेव मोसा य, सखा मोसा तदेव य।

चउत्पी असख मोसा उ, वयगुणी वउत्पिवा” ॥ १॥ इति।

१) સત્યા વચન ગુપ્તિ (૨) મૃષા વચન ગુપ્તિ (૩) સત્યામૃષા વચન ગુપ્તિ અને (૪) અસત્યામૃષાવચન ગુપ્તિ,
 આ પ્રમાણે વચનગુપ્તિ ચાર પ્રકારની છે (૧) તેણે બાબાશ આ છે વચન વાર પ્રકારનો છે, જેમકે-હવને ‘આ
 છપ છે.’ જેમ કહેવું તે સત્ય વચન છે હવને ‘આ છપ છે.” જેમ કહેવું તે મૃષાવચન છે ‘આને આ નગરમાં
 મો બાળકો ૧૦ મ્હો’ આ પ્રમાણે પહેલા નિષ્ક્રમ કમો વિના કહેવું તે સત્યામૃષા વચન છે ‘ગ્રામ આવી ગયું’
 આ પ્રમાણે કહેવું તે સત્ય વચનથી અને મૃષા (અવસ્તવ) વચન નથી. તેથી તે અસત્યામૃષા વચન છે કો વ્યારે
 પ્રમાણની વચન ચોગના ત્યાગને વચન ગુપ્તિ કહેછે કે એમ કહે છે અથવા પ્રસસ્ત વચનોનો પ્રયોગ કરવો અને
 અપ્રસસ્ત વચનોનો યાગ કરવો તે વચન છોડે છે કાગવચન આ વચનગુપ્તિવાળા કૃત

कायगुप्तिश्च—द्विधा चेष्टानिवृत्ति रूपा १, यथाऽऽगमंचेष्टानियमरूपा च २। तत्र परीपहोपसर्गादि सम्भवेऽपि यत् कायोत्सर्गकरणादिना कायस्य निश्चलत्वाकरणम्, सर्वयोगनिरोधावस्थयां वा सर्वथा यत् कायचेष्टानिरोधनं सा प्रथमा १। गुरुमापृच्छ्य शरीरसंस्तरकभूम्यादि प्रतिलेखना—प्रमार्जनादिसमयोक्त—क्रियाकलापपुरस्सरं शयनासनादि विधेयम्, ततः शयनासननिक्षेपाऽऽदानादिषु स्वेच्छया चेष्टापरिहारेण नियता=शास्त्रनियमानुसारिणी या कायचेष्टा सा द्वितीयेति, उक्तंच—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुषो मुनेः।

स्थिरीभावःशरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते।१।

भगवान् कायगुप्ति से युक्त थे। कायगुप्ति दो प्रकार की है—(१) कायिक चेष्टाओं को त्याग देना और (२) चेष्टाओं का आगम के अनुसार नियमन करना। इन में परिपह उपसर्ग आदि उत्पन्न होने पर कायोत्सर्गक्रिया आदि के द्वारा शरीर को अचल कर लेना अथवा योग मात्र का निरोध हो जानेकी अवस्था में पूर्ण रूप से कायिक चेष्टा का रुक जाना प्रथम कायगुप्ति है। गुरु से आज्ञा लेकर शरीर, संथारा, भूमि आदि की प्रतिलेखना तथा प्रमार्जना आदि शास्त्रोक्त क्रियाएँ करके ही शयन आसन आदि करना चाहिए। अतः शयन, आसन, निक्षेप और आदान आदि क्रियाओं में स्वेच्छापूर्वक चेष्टाओं का परित्याग करके शास्त्रानुसार काय की चेष्टा होना दूसरी कायगुप्ति है। कहा भी है—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुषो मुनेः।

स्थिरीभावः शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥ १ ॥

भगवान् कायगुप्तिवशात् पण्डित कायशुप्ति में प्रभरनी छे—(१) अधिक चेष्टाओंको त्याग करवे। अने (२) चेष्टाओंको आगम प्रमाणे नियमन तेमां—परिपह उपसर्ग आदि उत्पन्न थता कोत्सर्ग—क्रिया आदि बडे शरीरने व्ययण करी देवुं अथवा योग मात्रने। निरोध थल जवानी अवस्थाभा पूरुईये कायिक चेष्टावुं अटकी जवुं ते पछेदी कायशुप्ति छे। गुरुनी आज्ञा लधने शरीर, संथारो, भूमि आदिनी प्रतिवेधना तथा प्रमार्जना आदि शास्त्रोक्त क्रियाया करीने ज शयन आसन आदि करवुं नोईओ तेथी शयन, आसन, निक्षेप, अने आदानआदि क्रियाओंमां स्वेच्छापूर्वक चेष्टाओंको। परित्याग करीने शास्त्रानुसार कायनी चेष्टा होवनी ते गीष्ठ कायशुप्ति छे। कछुं पणु छे—

“उपसर्ग प्रसंगेऽपि, कायोत्सर्गजुषो मुनेः।

स्थिरीभावः शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥

श्रवणाऽऽसन निक्षेपाः-ऽऽनसंक्रमणेषु च ।

स्यानेषु वेष्टा नियमः, कायगुप्तिस्तु सा परा ॥२॥ इति ।

मग्नतो गतोरभावाद् द्वितीया कायगुप्तिर्गमनापृच्छैव बोध्याः । एवं द्विविधकायगुप्तिपुक्तः । अथ एष-गुप्तः= मनोबन्ध-कायगुप्तिपुक्तः । तथा-गुप्तेन्द्रियः=स्व स्व विषयतो निधारीतेन्द्रियः=अन्तर्हितेन्द्रिय इत्यर्थः । इति यावत्स्यद ग्राहरीत वितरणम् । तथा-गुप्तब्रह्मचारी-गुप्ताः=रहितः-ब्रह्मचारः=यावज्जीवनं मैयुनविरमयसंशयः-ब्रह्मणाः= ब्रह्मचर्यस्य चतुर्गुणतस्य चारः=अनुष्ठानं सेवनम् अस्यास्तीति गुप्तब्रह्मचारी-यावज्जीवमैयुननिवृत्ति इति भावः ।

श्रवणासर्गनिक्षेपाऽऽन संक्रमणेषु च

स्यानेषु वेष्टानियमः, कायगुप्तिस्तु सा परा ॥ २ ॥

उपसर्गं का प्रसंग होने पर भी कायोत्सर्ग को सेवन करने वाले मुनि के शरीर का स्थिर होना प्रथम काय गुप्ति कहनाही है ॥ १ ॥

श्रवण, भासन, निक्षेप (किसी वस्तु को रत्नना), आवाहन (ब्रह्म करना) तथा संक्रमण (इष्ट-उत्तर करना) आदि स्थानों में वेष्टा का नियम होना दूसरी कायगुप्ति है ॥ २ ॥

मग्नतान् के गुरु का ब्रह्मात्र या, अथ एव उनकी कायगुप्ति गुरु को बिना पूछे ही जान लेनी पानीए । इस प्रकार वे दोनों प्रकार की कायगुप्ति से युक्त थे । इन तीनों गुप्तियों से युक्त होने के कारण वे गुप्त थे । तथा गुप्तेन्द्रिय ये-विषयों में मग्न होनेवासी इन्द्रियों का निरोध कर चूक थे ।

मग्नतान् गुप्त ब्रह्मचारी थे । अर्थात् यावज्जीवन मैयुनस्यपागस्य वीर ब्रह्मचर्य महाव्रत का अनुष्ठान करनेवाले थे ।

श्रवणासननिक्षेपाऽऽन संक्रमणेषु च

स्यानेषु वेष्टानियमः कायगुप्तिस्तु सा परा ॥ २ ॥

उपसर्गना प्रसंगे एव उपोत्सर्ग सेवन करना अनुनिधारीतु निश्च देवु ते पदेही आपश्रुति कहेचान छ ॥१॥ श्रवण, भासन, निक्षेप (किसी वस्तु को रत्नना), आवाहन (ब्रह्म करना) तथा संक्रमण (आम तेम इष्टु) आदि स्थानों में वेष्टा का नियम होना दूसरी कायगुप्ति है । अथ एव उनकी कायगुप्ति गुरु को बिना पूछे ही जान लेनी पानीए । इस प्रकार वे दोनों प्रकार की कायगुप्ति से युक्त थे । इन तीनों गुप्तियों से युक्त होने के कारण वे गुप्त थे । तथा गुप्तेन्द्रिय ये-विषयों में मग्न होनेवासी इन्द्रियों का निरोध कर चूक थे ।

यस्थितः, तथा-ब्राह्मणप्रभिवः=होयस्थितः, शुद्धवः=शुद्धवत् निरञ्जनः=निर्मलः, तथा
 जीवस्=जीववत् अमविहृतगतिः=अच्छिद्यगतिः, जात्यकर्ममिव=उचममुवर्णवत् जातरुणः=मुख्यसम्पन्नः, आदर्श-
 कर्ममिव=दर्पण फलकवत् प्रकटमानः=प्रकाशितनोवाप्रोपादि सकल्पदार्पणः, कर्मवः=कृच्छपवत् गुणोन्मियः=
 वशीकृतोन्मियः, पुष्करपत्रमिव=कमलपत्रवत्, निरुपलेपः=स्वजनापशिज्ज्वरविहाः, गगनमिव=आकाशवत्, निराल-
 म्बनः=कुप्रामगनराधाभ्यन्तवर्जितः। भविल इव=वायुवत् निरालम्बः=निर्गुहः, चन्द्र इव=चन्द्रवत् सौम्यलेश्यः=अनु-
 पतापहेतुवनः परिकामपारकः, सूरु इव=सूर्यवत् दीप्ततेजाः=द्रव्यत शरीरीष्या भावतो ज्ञानेन वेदीप्यमानः,
 सागर इव=समुद्रवत् गम्भीरः=वैषम्योक्तदि क्षारणसंयोगेऽपि निर्विकारविचरः, विहग इव=पक्षिवत् सर्वतो विप्र
 मुक्तः=निबन्धनः, मन्दर इव=मन्दरपर्वतवत् अमकम्पा=परीणोपसर्गपर्वनैरचलितः, शारदन्तमिव=शरदन्तुलवत्

दासि के पात्र के समान स्नेह (राग) से रहित थे। ईश्वर के समान निर्मल थे। जीव के समान अछिद्य-
 अबाध गतिवाले थे। उसम स्वर्ण के समान सुन्दर रूप थे। दर्पण-फलक के समान जीव-मनीव समस्त
 पदार्थों को प्रकाशित करनेवाले थे। कछुवे के समान इन्द्रियों को बंध करनेवाले थे। कमल के पत्र के
 समान राजन आदि को आसक्ति से रहित थे। आकाश के समान कृष्ण, ग्राम, नगर आदि का आलवन नहीं
 छैते थे। पवन के समान घर रहित थे। चन्द्रमा के समान सौम्य छेदपावाले अर्थात् क्षापादिजन्यसत्तापसे
 रहित मानसिक परिणाम के धारक थे। सूर्य के समान दीप्ततेज थे। अर्थात् द्रव्य से शारीरिक दीप्ति से और
 भाव से ज्ञान से यदीप्यमान थे। सागर के समान गम्भीर थे। इर्ष-शोक आदि के कारणों का उपयोग होने
 पर मो रिकार-विहीन विचरावे थे। परीके समान मध प्रकार के वन्यों में मुक्त थे। मेघ क्षेत्र के समान
 परीपर और उपर्यो स्त्री पवन से क्लामयमान नहीं होने थे। शरद्वृक्ष के मध के समान निर्मल विल थे।

स्नेह (रम) विनाशक तथा शयना नेवां निर्मल तथा लुपना नेवां अक्षुद्रित अत्राध प्रतिपाद। तथा उत्तम
 सुवर्ण नेवा सुहृ इ पवण तथा इर्षवनी नेम लुप अलुप आदि समस्त पदार्थोने प्रभाशित करार तथा क्षयमान
 नेम पीतानी अन्त्रोने ज्ञापावनार-वशा करार तथा क्षयणानी पाननी नेम स्वचन आदिनी आशक्ति विनाशक तथा
 आशयानी नेम कृष्ण, ग्राम, नगर आदिनु अवलक्षण होता नही पवननी नेम शुक विनाशक तथा कन्दमाननी नेम
 सौम्य देशपावण जेटहे हे गोपादिजन्य सदापरी रहित मानसिक परिणामना धारक तथा सुहृनी नेम दीप्तेष्व
 वण्य तथा जेटहे हे अन्वशी शारीरिक दीप्तिवी जने भावणी ज्ञान वडे हेदीक्षमान तथा आचरना नेवा जवरी
 तथा इर्ष-शोक आदिना करारोने सञ्चार कला छवो पक्ष निर्विकार विचरणा तथा वशीनी नेम क्षी भवतानां
 जपनेनाभी मुक्त तथा मध पर्वतनी नेम परीमल जने उपसर्ग इषी पवनशी व्यकाममान तथा नही शरदवृक्षानी

शुद्धहृदयः=निर्मलचित्तः, खड्गिविषाणमिव एकजातः=एकः=प्रधानःजातः=उत्पन्नः। तथा-भारण्डपक्षीव=भारण्ड-
नामकपक्षिवत् अप्रमत्तः=प्रमादरहितः, कुञ्जर इव=हस्तिवत् शौण्डीरः=शूरः-पराक्रमी, तथा-वृषभ इव=बली-
वर्धवत्, जातस्थामा=उत्पन्नवीर्यः, सिंह इव=सिंहवत्, दुर्धर्षः=अपराजेयः, वसुन्धरेव=पृथिवीवत् सर्वस्पर्शसहः,=
शीतोष्णादि सकल स्पर्शसहनशीलः, तथा-सुहुतहुताशन इव=निक्षिप्तदृतादि वह्निरिव तेजसा=प्रकाशेन ज्वलन्=
दीप्यमानः, तथा-वर्षावासवर्ज=वर्षावास विहाय=वर्षाकालिकमासचतुष्टयं परित्यज्य तदतिरिक्तेषु अप्राप्नु त्रैष्व-
हेमन्त-ऋतु सम्बन्धिषु मासेषु ग्रामे २=एकरात्रत=नगरे २=पञ्चरात्रम्, तथा-वासीचन्दनकल्पः-वासीव वासीताम्-
अपकारिणमित्यर्थः, चन्दनमिव उपकारकत्वेन कल्पयति=मन्यते-इति वासीचन्दनकल्पः। उक्तञ्च—

“यो मासपकरोत्येव तत्त्वेनोपकरोत्यसौ।

शिरामोक्षाद्युपायेन कुर्वाण इव नीरुजम्॥”

गेंडा क सींग के समान ये रागादि कौ की सहायता से रहित होने के कारण, एक स्वरूप थे। भारंड नामक पक्षी के समान प्रमादरहित थे। हाथी के समान पराक्रमी थे। वृषभ के समान वीर्यशाली थे। सिंह के समान अजेय थे। पृथ्वी के समान सर्वसह-शीत-उष्ण आदि सकल स्पर्शों को सहन करनेवाले थे। जिस में घीकी आहुति दी गई हो ऐसी अग्नि के समान तेजोमय थे। वर्षावास-वर्षाऋतु के चार मासों के सिवाय ग्रीष्म और हेमन्त ऋतुओं के आठ महिनों में, ग्राम में एक रात और नगर में पाँच रात से अधिक नहीं ठहरते थे। भगवान् वासो चन्दन कल्प थे अर्थात् वसूले के समान अर्थात् अपकारी पुरुष को भी चन्दन के समान उपकारक मानते थे। जैसे कहा है—

“यो मासपकरोत्येव, तत्त्वेनोपकरोत्यसौ।

शिरामोक्षाद्युपायेन, कुर्वाण इव नीरुजम्” ॥ इति ॥

जण नेवा निर्भेज व्यत्तवाणा हता जे डाना शि गडानी नेम ओइ ज आदित्तीय उत्पन्न थयेद हता. बारंड नामना पक्षीना नेवा प्रमाद रहित हता. हाथी नेवा पराक्रमी हता वृषभनी नेम वीर्यवान हता. सिंह नेवा अजेय हता. पृथ्वीनी नेम सर्वसह-शीत, उष्ण आदि सकल स्पर्शोनि सहन करनार हता. नेवा धीनी आहुति अपाछिडाय जेवा अग्नि नेवा तेजस्वी हता वर्षावास-वर्षाऋतुना चार महिनाओ सिवाय ग्रीष्म अने हेमन्त ऋतुओना आठ महिनाओमा गाममा ओइ रात अने नगरमा पाय रातथी वधादे रहेता नही. लगवान वासी चन्दन कल्प हता, ओइदे डे वासतानी नेम अपकारी पुरुषे पणु प्रभुने चन्दननी नेम उपकारक मानता हता नेमडे डहुं छि—

अथवा-नास्यामपकारिण्यं चन्दनस्य कस्य इष-छेद इव उपकारित्वेन यो मर्यते स वासीचन्दनकस्यः । उक्तञ्च—
 “अपकारपरदेऽपि परे, कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।

मुरमी करोति वासी, मलयजमपि तसमाजमपि ॥” इत्येवम्भूताः,
 तथा-समलोष्टकाश्चनः=युस्यापाणाद्विलम्ब-युवर्णयोः साम्यदर्शी, समसुखदुःखाः=सुखदुःखे तस्ये जानानः,

अैसे चिरामोस-चदी हुई नस के उठारने आदि उपायों से रोगी को निरोगी करनेवाला उपकारक होता है, उसी प्रकार जो मेरा अपकार करता है, वह वास्तव में उपकार करता है । अथवा=वासी अर्थात् अपकारी बसुला के प्रति जो चन्दन के छेद (लम्ब) के समान उपकारी के रूप में बर्णन करता है, अर्थात् अपकारी का भी उपकार करता है, वह वासी चन्दनकस्य कहलाता है । कदा भी है—

“अपकारपरदेऽपि परे, कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।

मुरमी करोति वासी, मलयजमपि तसमाजमपि” ॥१॥ इति ॥

मगत् पुरुष, अपकार करनेवाले का भी उपकार ही करते हैं । जैसे मलयज चन्दन छीना जाता हुआ भी पकड़े को मुगंधित ही करता है ॥ मगवान उसे ‘वासीचन्दनकस्य’ थे । तथा-मगवान् मिट्टी एवं पाषाण के टुकड़े को तथा सोने को समान दृष्टि से देखते थे । सुख-दुःख को समान समझते थे । हर लोक में यज्ञ—

“या मामपकरात्प, सर्वेनोपकरोत्यसौ ।

चिरामोसापुपायेन, कुर्वाण इव नीकजम् ।

नेम शिशोभिक्ष—जेटवे के अति अथेवा नथने ठीतास्या आदि उपयोधा श्रुतीने नीशानी करनार उपभारक बाध छि, ओर प्रभावे के भाश पर अपकार कर छि, ते वास्तवभा तो उपभार कर छि । अथवा वासी जेटवे के अपभारी बसुला प्रभे के चन्दनना दुकधानी नेम उपभारी इवे वनीव कर छि, जेटवे के अपभारी उपर पञ्च उपभार कर छि, ते वासी चन्दन कस्य कहैवाक छि अर्द्ध पञ्च छि—

“अपकारपरदेऽपि परे, कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।

मुरमीकरोति वासी, मलयजमपि तसमाजमपि ॥१॥” इति

“ नेम मलयज-चन्दन कस्य छल पञ्च वीमखाने सुखदित कर छि तेम अमान पुरुष अपभार करनार उपर पञ्च उपभार कर छि ” अमान अथवा “वासीचन्दनकस्य” कता, तथा समान भाटी अने परबन्ना दुकधाने तथा सोनेने समप्रतिबि जेटव कता, सुख-दुःखने अमान अथवा कता, आ शिशोभिक्ष आदिनी तथा परबन्नादि

इहलोकपरलोकाप्रतिबद्धः=इहलोकसम्बन्धिषु यशःकीर्त्यादिषु परलोकसम्बन्धिषु स्वर्गीयसुखादिज्वासक्तिरहितः
अप्रतिज्ञः=इहलोकपरलोकप्रतिज्ञारहितः, ससारपारगामी=संसारमहासमुद्रपारकर्त्ता, तथा-कर्मनिर्घातनार्थाय=कर्मणां
समूलनाशं कर्तुम् अभ्युत्थितः=उद्यतश्च सन् विहरति। इत्थं तस्य विहरतः भगवतः खलु कुत्र चित्=कस्मिंश्चि-
तस्थाने प्रतिबन्धः=अवरोधो नास्ति।

एवंविधेन=एतादृशेन विहारेण=जनपदविचरणेन विहरतः=विचरतो भगवतः श्रीवीरस्वामिनः अनुत्तरेण=
लोकोत्तरेण सर्वाविशयिना ज्ञानेन, तथा अनुत्तरेण दर्शनेन=जीवादिपदार्थानां श्रद्धानेन तथा अनुत्तरेण तपसा=
द्वादश विधानशानादिरूपेण, अनुत्तरेण समयेन=सप्तदशविधेन, अनुत्तरेण उत्थानेन=उद्यमेन अनुत्तरेण कर्मणा=
क्रियया, अनुत्तरेण वलेन=शारीरशतयुपचयेन, अनुत्तरेण वीर्येण=आत्मजनितसामर्थ्यविशेषेण, अनुत्तरेण पुरुष-
कारेण=पौरुषेण, अनुत्तरेण पराक्रमेण=मामर्थ्येन, अनुत्तरया क्षान्त्या=सामर्थ्ये सत्यपि परापकारसहनरूपया
क्षमया, अनुत्तरया मुक्त्या=निर्लोभतया, अनुत्तरया लेख्यया=शुक्लक्षण्या, अनुत्तरेण आर्जवेन=सरलत्वेन अनु-

कीर्ति आदि की तथा पारलौकिक-स्वर्ग आदि के सुखों की आसक्ति से रहित थे। इहलोकपरलोक संबंधी
प्रतिज्ञा से रहित थे। संसार रूपी महासमुद्र के पारगामी थे। कर्मोंका समूल उन्मूलन करने के लिए उद्यत
होकर विचरते थे। इस प्रकार विचरते हुए भगवान् को किसी भी स्थान पर प्रतिबन्ध नहीं था।

अनुत्तर अर्थात् लोकोत्तर-सर्वोत्कृष्ट ज्ञान, अनुत्तर दर्शन (जीव आदिपदार्थों का श्रद्धान), अनुत्तर वारह
प्रकार के अनशन आदि तप, सत्तरह प्रकार के अनुत्तर उत्थान-उद्यम, अनुत्तर कर्म-क्रिया, अनुत्तरवल-
शारीरिक शक्ति का उपचय, अनुत्तर वीर्य-आत्मजनित सामर्थ्य, अनुत्तर पुरुषकार-पुरुषार्थ, अनुत्तर पराक्रम
शक्ति, अनुत्तर क्षमा (सामर्थ्य होने पर भी पर के किये अपकार को सहन कर लेना), अनुत्तर मुक्ति-निर्लो-
भता, अनुत्तर शुक्लेश्या, जीव के शुभपरिणाम, अनन्तर मृदुता, अनुत्तर लाघव। द्रव्य से अल्प उपाधि और

स्वर्ग आदि सुखोनी आन-कृति आ रहित होता आ लोक परलोक संबंधी प्रतिज्ञा रहित होता। ससारइषी भड्डा-
सागरना पारगामी होता कर्मोने भूणभाषी न छेहवोने तत्पर यधने दिशरता होता आ प्रभाषे विथरता लगवानने
कोई पणु स्थाने प्रतिबन्ध न होतो अनुत्तर ओटले के दोडोत्तर-सर्वोत्कृष्ट ज्ञान, अनुत्तर दर्शन (एव आदि पदार्थोनुं
श्रद्धान) अनुत्तर गार प्रकारना अनशन आदि तप, सत्तर प्रकारना अनुत्तर संयम, अनुत्तर उत्थान-उद्यम. अनुत्तर
कर्म-क्रिया, अनुत्तर गण, -शारीरिक शक्तिने। उपयथ, अनुत्तर वीर्य-आत्मजनित सामर्थ्य, अनुत्तर पुरुषकार-पुरुषार्थ
अनुत्तर पराक्रम-शक्ति अनुत्तर क्षमा। (सामर्थ्य होवा छता पणु भीजओ कडेन अपकार सहन करवा) अनुत्तर रुडिआ,

तेषु दशसु महास्वप्नेषु एकं च खलु महान्तं=विशालं घोरदीप्तरूपधरं भयङ्कररूपधारिणं तालपिशाचं= तालवृक्षवदीर्घतरपिशाचं पराजितम्=स्वस्य पराक्रमेण अभिभूतं, स्वप्ने दृष्टा प्रतिबुद्धः=जागरितः। इति प्रथमः स्वप्नः। एवम्=अनेन प्रकारेण एकं च खलु महाशुक्लपक्षम्=अतिशुक्लपक्षयुक्तं पुंस्कोकिलं=पुरुषजातीयं कोकिलं दृष्टा प्रतिबुद्ध इति पूर्वेषु सम्बन्धः। इति द्वितीयः।

तथा=एकं च खलु महान्तं=विशालं चित्रविचित्रपक्षकं चित्रेण=चित्रकर्मणा विचित्रौ=विचित्रवर्णवन्तौ पक्षौ यस्य तं तथा भूतं बहुविधवर्णयुक्तपक्षवन्तं पुंस्कोकिलं दृष्टा प्रतिबुद्धः। इति तृतीयः। एकं च खलु महद्= विशालं सर्वरत्नमयं दामद्विकं=मालाद्वयं दृष्टा प्रतिबुद्धः इति चतुर्थः। एकं च खलु महान्तं श्वेतं=शुक्लवर्णं गोवर्गं= गोसमूहं दृष्टा प्रतिबुद्धः इति पञ्चमः। एकं च खलु महत्=दीर्घं पद्मसरः=रुमलालङ्कृतजलाशयं सर्वतः=समन्तात् कुसुमितं=कमलैर्व्याप्तम् दृष्टा प्रतिबुद्धः इति षष्ठः। एकं च खलु महान्तं सागरम् ऊर्मित्रोचिसहस्रकलितम्= ऊर्मिर्णां=महातरङ्गाणां वीचिनां=साधारणतरङ्गाणां च सहस्रैः कलितं=युक्तं भुजाभ्यां=बाहुभ्यां तीर्णं=पारित दृष्टा

१. प्रथम स्वप्न—उन दस स्वप्नों में से पहले स्वप्न में एक विशाल तथा भयानक-भयंकर रूपवाले ताल-पिशाच (ताड के सदृश खूब लम्बे पिशाच) को अपने पराक्रम से पराजित हुआ देखा। २. द्वितीय स्वप्न—दूसी प्रकार एक अत्यन्त सफेद पंखों से युक्त पुरुषजाति के कोकिल को देखकर जागे। ३. तीसरा स्वप्न—एक विशाल चित्रविचित्र-चित्रों से विचित्र होने के कारण अनेक वर्ण के पखोंवाले, अर्थात् नाना प्रकार के वर्णों से युक्त पंखवाले पुरुष-कोकिल को देखकर जागे। ४. चौथा स्वप्न—एक बड़े सर्वरत्नमय मालाओं के युगल को देखकर जागे। ५. पाँचवाँ स्वप्न—सफेद रंग की गायों के एक समूह को देखकर जागे। ६. छठा स्वप्न—एक विशाल पद्मसरोवर को देखा, जो सब तरफ से कमलों से छाया हुआ था। ७. सातवाँ स्वप्न—हजारों लहरों से युक्त एक महासागर को अपनी भुजाओं से पार कर दिया देखा। ८. आठवाँ स्वप्न—तेज से

१ प्रथम स्वप्न—ते दस स्वप्नाओंमेंसे प्रथम स्वप्नमें लगवाने कोक विशाण तथा लयानक रूपवाणा तालपिशाचने-ताडना केवा भूष दाणा पिशाचने पोताना पराक्रमी पराजित थतो ज्ये २. भीष्णुं स्वप्न-ज्येष्ठ प्रभावे कोक अत्यंत सफेद पाणोवाणा नरन्यतिना डेयदाने ज्येष्ठो. ३. त्रीष्णुं स्वप्न-कोक विशाण शिथिलवर्ण-विचित्रो शिथिल होवाने डारवे अनेक रंगनी पाणोवाणा, कोटवे डे विवध प्रकारना वरुणवाणी पांजोवाणा नर-डेयदाने ज्येष्ठो. ४. योशु स्वप्न-कोक मोटा सर्वरत्नमय भाणजोनी ज्येष्ठो. ५. पायसुं स्वप्न-सफेद रंगनी गायोना कोक समूहने ज्येष्ठो. ६. छठु स्वप्न-कोक विशाण पद्मसरोवरने ज्येष्ठो. ७. आठे भाणुज्येष्ठ भोजोशी छवायेलु. ८. नवतसु स्वप्न-छठरे। मोणज्योवाणा कोक महासागरने पोतानी लुणज्योशी पार करता पोताने ज्येष्ठो. ८. आठसु-

प्रतिबुद्ध इति सप्तम । एक च गन्तु तोमसा ऋतन्त्य व्रीप्यमानं ग्रहान्तं=विश्राज्य दिनकरं=मर्युं इष्ट्वा प्रतिबुद्धः
इत्यष्टमः । एकं च गन्तु ग्रहान्तं-हरिवैदूर्यरणांयेन-हरिः=पिङ्गमवर्णो मणिरः, वैदूर्य=नीलमवर्णो मणिः, तद्वत्पद्मम्
निरनोर्योतिच भ्रामा=कान्तिर्यस्य तद् हरिवैदूर्यरणांयं तेन तथायुतेन निजकेन=स्वक्रीयेन अभ्रेण=आतडी
इति मापाममिद्वेन, मानुषोपरं पर्यंतं सर्वतः समन्वान् आवेष्टिपरिचैष्टित्थं=आवेष्टितं=सामान्यतोवेष्टितं परि
चैष्टितम्=मर्कवावेष्टित इष्ट्वा प्रतिबुद्ध इति नवम । तथा एकं च गन्तु ग्रहान्तं मन्दरे=मन्दरचूलिकायाः उपरि=
मकरगुप्तिभोपरि विहासतवरगत=भेद्युहासितानास्थितम् आत्मानं=स्य स्वप्ने इष्ट्वा प्रतिबुद्ध इति दशमः ॥३७०९८॥

मृत्युं पृप्सि ण इत महाभुविष्णोः के महाबलं फलविचित्रिचिसेस मन्वसि सो कश्चिज्ज-
जल्यं समणेन भगवता महावीरेण सुविणे महायारविणल्लवरे ताम्पिसाए परानिए दिट्ठे तेणं भगव

मोदणिज्जं कम्म सुमाभो उग्गाहस्सर १ । जं णं सुविट्ठलपपलगे पुसकाएले दिट्ठे, भगवं सुक्क क्षामोवगए
विहरिस्सम् २ । जं णं निजविचित्र परवग पुसकाएले दिट्ठे, तेणं भगवं ससमयपरसमइय दुवाल्सगं गणिपिट्ठग
भागविससइ पवविस्सइ परविस्सइ इतिस्सइ निजविस्सइ उववसिस्सइ ३ । जं णं सव्व रयणांमयं दामदुगं दिट्ठे
तय भगव भगारभयं अक्कागयस्समिदि कुचिं वम्मं भापविस्सइ ४ । जं णं सेयगोवग्गो विट्ठो, तेणं चाउच्चय्या
इभं सप ठाविस्सइ ५ । जं णं पउमसरं दिट्ठं तेणं भक्खववणभतरनाइसिय वमाप्पियपि चउच्चिरे देवे
भारतिस्सइ ६ । जं णं मरासागरा युयादि तिण्णो दिट्ठो, तेणं अक्कादीय अक्खदग्गं चाउतं संसारसागरं
तरिस्सइ ७ । जं णं तयया अक्खया ण्णिणरा दिट्ठो, तेणं अणुत्तरं कस्सिणं पडिपुण्णं अक्खाइयं निरावरण
कुरववरानाणं सपुप्पजिस्सइ ८ । जं णं हरिगहन्वियवनामेण नियणेणं भजेण माणुमुचरे पव्वए सव्वभो

नागगन्धमान चिगाज्य मर्यं को वत्था । ० नौर्का स्वप्न--ठरि (विगलपूर्ण की)) मणि और वैदूर्य (नीलेवर्ण की)
मणि के वर्ण के समान कान्तिरागी अपनी आंत-मोतड़ी से मानुषोपर पर्वत को चारों तरफ से सामान्य
रूप से आवेष्टित भार बिण मर्य से परिवेष्टित देखा । १० वृत्तां स्वप्न--याहान् मेव पर्यंत की चोटी पर
अथ मित्रासन पर स्थित, अपने भाग का देखा । यह वृत्त स्वप्न देवमकर मगानान् प्रापुत हुए ॥३७०९८॥

३७०९-तेजस्वी अक्षयभयान विद्याग सधने जेसा. ६ नयमु स्वप्न-ठरि (विगल वज्रु नी) मणी जने वैदूर्य (नील-
वर्णनी) भवनीय वज्रु लेकी क्षान्तिस्वर्णा पित्तान् आतडिदंभी भाउयिउत्तर पर्यंतने आरे तराही सामान्यद्वारे वी टगाविक
अने निजमर्य परिवेष्टित जेले १० इअमु स्वप्न-जोडा, भकान येस पर्यंतनी शिखर पर के इतिहासने पित्ताने
जीवनाया नीय के दम अतलो जेतने अमयान जेज्जा ॥ ३७०९८ ॥

समंता आस्वेदियपरिवेदिय दिद्वे, तेणं भगवओ क्खित्तवल्ल सद्धसिलोगा सडेव मणुयासुरे लोए गिज्जस्स्यति ९। जं णं मदरे पव्वए' मंदरचूळियाए उवरिं सीहासणवरगओ अप्पा दिद्वे, तेण भगव मदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवल्लपन्नत्त धम्म आद्यविससड पन्नविससड पल्लविससड दंसिस्सड उवदंसिस्सड ॥सु०९९॥

छाया—एतेषा खलु दशमहास्वप्नाना को महालयः फलश्रुतिविशेषो भवतीति म कथ्यते—

यत् खलु श्रमणेन भगवता महावीरेण स्वप्ने महान् वोरदीप्तरूपधस्तालपिशाचः पराजितो दृष्टस्तेन भगवान् मोहनीय कर्ममूलाद् उद्घातयिष्यति १। यत् खलु शुरुपक्षकः पुंसोक्किलो दृष्टस्तेन भगवान् शुरुध्यानो-पगतो विहरिष्यति २। यत् खलु चित्रचित्रपक्षकः पुंसोक्किलो दृष्टस्तेन भगवान् स्वप्नमयपरसमयिकं द्वादशांगं गणिपिटकम् आख्यापयिष्यति पञ्चापयिष्यति दर्शयिष्यति निदर्शयिष्यति उपदर्शयिष्यति ३। यत् खलु सर्वरत्नमय दामष्टिकं दृष्ट तेन भगवान् अगारधर्ममनगारधर्ममिति द्वित्रियं धर्मम् आख्यापयिष्यति ६। ४।

मूल का अर्थ—‘एगसि ण’ इत्यादि। उन दस महास्वप्नो का क्या महान फल है, सो कहते हैं—

(१) श्रमण भगवान् महावीर ने स्वप्नमें जो भयकर और दीप्तरूप धारण करनेवाले ताल पिशाच को देखा और पराजित किया, उसके फल स्वरूप भगवान् मोहनीय कर्म को समूल नष्ट करेंगे। (२) सफेद पंखोंवाला पुरुष—कोक्किल देखा, उस से भगवान् शुरु ध्यान से युक्त होकर विचरेंगे। (३) भगवान् ने चित्र-भिचित्र पंखोंवाला पुरुष—कोक्किल देखा। सो उसके फलस्वरूप भगवान् स्वप्नमय एवं परसमय का निरूपण करनेवाले द्वादशांग गणिपिटक का कथन करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे, प्ररूपण करेंगे, दर्शित करेंगे, निदर्शित करेंगे और उपदर्शित करेंगे। (४) सर्वरत्नमय माला का युगल देखा, उसके फलस्वरूप भगवान् अगारधर्म और अनगार

मूलनो अर्थ—‘एगसिणं’ इत्यादि आ शब्द महास्वप्नोना शु शु भक्षानक्षण छि ते छडेवाभां आवे छि.

(१) श्रमणु भगवान् महावीरि पडेला स्वप्नभा, वे दिव्य अने अधोगच्छप धारणु करेल पिशाच जेथो, अने तेन पोते सआभभा लुनव्यो, तेना आर्थ जो के, भगवान् ‘मोडु’ रान्तनो सभूजो उच्छेद करी, मोडनीय कर्मने नष्ट करथे (२) गीले स्वप्ने सद्ध पाणोवाणा नर डेडिलने जेवाथी भगवान् शुद्ध ध्यानयुक्त थथे. (३) गीले स्वप्ने चित्र-विचित्र पाणोवाणा नर-डेडिलने देणवाथी भगवान्, स्वप्नमय-परसमयना निरूपणु करवावाणा थथे, अने द्वादशांगीना कथन करवावाणा जनथे. आ द्वादशांगीनुं ज्ञान प्ररूपथे, तेनु दर्शन करवथे. निदर्शन करवथे तेभज उपदर्शन पणु करवथे. (४) जेथे स्वप्ने सर्वरत्नमय भाणानी जेडीने देणवाथी भगवान् आगार अने आलुगार

यत्तलु भेतगोगाँ हट्टस्तेन चतुर्वर्णाकीर्णं सर्वं स्थापयिष्यति ५। यत्तलु पणसरो इष्ट तेन भवनपति
 ध्यन्तरगीतिपिङ्ग वैमानिकेति चतुर्विधान् देवान् आख्यापयिष्यति ६। ६। यत्तलु महासागरो युनाभ्यां तीणो
 हट्टः, तेनानादिभ्यन्तरद्वयं शतुरन्तर्सागरागारं वरिष्यति ७। यत् तलु तेजसा ज्वलन् दिनकरो हट्टः, तेन
 भनन्तमनुतरं कृत्स्नं प्रतिपूर्णान्याहृत निरावरणं केवलवरदानदर्शनं समुपस्थस्यते ८। यत्तलु हरिवैदूर्यवर्णभेन
 निजकेनात्रेण मनुजोत्तरः पर्वतः सर्वतः समन्ताद् आवेष्टितपरिवेष्टिता हट्टः, तेन भगवतः कीर्तिकर्णद्वन्द्व
 म्मोकाः सद्वनमनुसायुरे मोके गास्यन्ते ९। यत्तलु मन्दरे पर्वते मन्दरपुष्पिकाया उपरि सिंहासनवरागतः

धर्म इस प्रकार दो तरह के धर्मों को कथन करेंगे। (५) भूवैत रंग की गायों का समूह देखा, उससे भगवान्
 चतुर्वर्ण्य से युक्त संप-भरण, भयभी, आरक और धार्मिकारूप चार तीर्थ-की स्थापना करेंगे। (६) पर्वों से
 युक्त सरोवर दखने से भगवान् भवनपति, ध्यन्तर, शरीतिपिक और वैमानिक-इन चार प्रकार के देवों को
 प्ररूपण करेंगे। (७) महासागर को युनाओं से पार किया देखा, इससे भगवान् अनान्ति चारगति
 रूप संसार समुद्र को पार करेंगे। (८) तेज से जगदव्ययमान सूर्य को देखने से भगवान् को भनन्त, अनुचर,
 प्रतिपूष, भ्रमविगाती और आनरब रहित भेट केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होंगे। (९) हरि मणि और
 वैदूर्य मणि की आभा के समान अपनी आंत से मनुजोत्तर पर्वत को आवेष्टित और परिवेष्टित देखा, उसके
 पत्र स्वरूप भगवान् की कान्ति, रत्न, शब्द और श्लोक देवों मनुज्यों-एवं असुरों सहित लोक में गाने नार्से।
 (१०) मरु पर्वत पर मेरु की चोटी के ऊपर श्रेष्ठ सिंहासन पर अपने आपको बैठा देखा, उसके फलस्वरूप

अन्ने धर्मोदु कथन करे। (५) पाकमे स्वप्ने श्वेतर अनी आयेना धवुने देववाधी भगवान् व्यास्पृष्टवा। धर्मो
 रक्षापना करे जेठदे ते आधु-आधी आरक अने भाविश रुपी वीर्यनी स्थापना करे। (६) ऊरु स्वप्ने इभोवाधु
 अश्वेतर देववाधी, भगवान् भवनपति, अश्वेतर लोकेतिविह अने वैमानिक देवोने उपदेश आपरे। (७) आतमे
 स्वप्ने भकीसागरने, स्वमुभजेा वदे पार कप्ता जेवाधी अनादि-अनन्त-अनुभतिदृष सभाए सयुद्धने तेजे। पार
 पाभे। (८) आधमे स्वप्ने तेजेभय सूरने जेवाधी भगवान्, जनप, अनुचर, प्रतिपूष, अप्रतिघाती, अने निरावरण
 मेध देवजमान अने देवणदर्शनने प्राप्त करे। (९) नवमा स्वप्ने हरि नामना भव्ति अने विहम जेठदे
 वैदूर्यमणिनी प्रतिवाणं धावना आतशरधी आरेबाहु विदामेक मनुजोत्तर पर्वतने देववाधी भगवान्नी कान्ति,
 वरुं गुण अने श्रेष्ठ देवा भक्त्ये। अने मनुजोभां अवाधे। (१०) दशमे स्वप्ने मेरु पर्वतना सिंहासे नि

आत्मा दृष्टः, तेन भगवान् सदेव-मनुजासुरायाः परिपदो मध्यगतः केवलप्रज्ञं धर्ममाख्यापयिष्यति प्ररूपयिष्यति दर्शयिष्यति निदर्शयिष्यति उपदर्शयिष्यति । १० ॥ सू० ९९ ॥

टीका—‘एएसि णं दसमहासुविणणं’ इत्यादि । एतेषा पूर्वोक्तानां भगवद्दृष्टानां खलु दश महास्वप्नानां कः= कथंभूतः महालयः=अतिमहान् फलवृत्तिविशेषः=फलोपस्थितिविशेषो भवति इति जिज्ञासायां स कथ्यते तथाहि— यत् खलु श्रमणेन भगवता महावीरेण स्वप्ने घोरदीप्तरूपधरः तालपिशाचः पराजितो दृष्टः, तेन भगवान् मोहनीयं कर्म मूलात् उद्घातयिष्यति=उन्मूलयिष्यति १ । इति प्रथमं महास्वप्नफलम् १ । यत् खलु शुकपक्षकः= श्वेतपक्षवान् पुँस्कोकिलो भगवता दृष्टः, तेन भगवान् शुकध्यानोपगतः=शुकध्यानान्वस्थितः सन् विहरिष्यति २ । इति द्वितीयम् ॥ यत् खलु चित्रचित्रपक्षकः पुँस्कोकिलो भगवता स्वप्ने दृष्टः, तेन भगवान् स्वसमयपरसमयिकम्

भगवान् देवों, मनुष्यों और असुरों सहित समयसरणपरिपद् के मध्य में विराजमान होकर केवलियों द्वारा प्ररूपित धर्म का उपदेश करेंगे, धर्मकी प्रज्ञापना, प्ररूपणा, दर्शना, निदर्शना और उपदर्शना करेंगे ॥ सू० ९९ ॥

टीका का अर्थ—भगवान् द्वारा देखे गये इन पूर्वोक्त दश महास्वप्नों का क्या अतिमहान् फल होगा? इस प्रकार की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) होने पर उसफल को कहते हैं । यथा—

(१) श्रमण भगवान् महावीर ने स्वप्न में जो भयंकर और प्रचण्डरूप वाले ताड़ जैसे पिशाच को पराजित किया देखा, उससे भगवान् मोहनीय कर्म को मूल से उखाड़ेंगे । यह पहले महास्वप्न का फल है । (२) भगवानने जा श्वेत पंखीवाला पुरुष-कोकिल देखा, उससे भगवान् शुकध्यान में लीन होकर चित्ररेगे । यह दूसरे महास्वप्न का फल है । (३) भगवानने जो चित्र-चित्र पंखीवाला पुरुषकोकिल स्वप्न में देखा,

उपर आइव थयेव पोताने जेवाथी लगवान, देव-मनुष्य અને તિર્થચોર્ના રચિદમા બેસી-કેવલા પ્રદ્ધિત ધર્મને । ઉપદેશ કરશે, ને ધર્મની પ્રજાપના-દર્શન-નિદર્શન અને ઉપદર્શનદ્વિ. પાથ રીતિ નંતિ સમ્ભવશે. (સૂ૦ ૯૯)

ટીકાનો અર્થ—ભગવાને જોયેલાં તે પૂર્વોક્ત દસ મહાસ્વપ્નોનુ શુ અતિમહાન ફળ મળશે? આ પ્રકારની જિજ્ઞાસા થતા તે ફળને આ પ્રમાણે વર્ણવે છે—(૧) શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે સ્વપ્નમા જો લયાનંદ અને પ્રત્યહ રૂપવાળા તાડ જેવા પિશચને હરાવ્યાં એના ભાવ એ છે કે તેથી ભગવાન મોહનીય કર્મને મળમાર્થી ઉઘાડી નાખશે આ પહેલા મહાસ્વપ્નનું ફળ છે. (૨) ભગવાને જો શ્વેત પંખીવાળા નર-કોયલને જોયો. તેના ભાવ એ છે કે ભગવાન

स्वसिद्धान्त-परसिद्धान्तसमन्वित द्वादशार्थ-द्वादशानि अङ्गानि यस्मिन् स तथा तं गणिपिटकं-गणिनाम्-आचार्याणां पिटक इव-रत्नाचारमख्येन य स तं आख्यापयिष्यति-सामान्यतया कथयिष्यति, तथा-प्रज्ञापयिष्यति-वचन पथपेक्ष नासादिभेदेन वा कथयिष्यति, तथा-प्रकथयिष्यति-स्वरूपतः कथयिष्यति, तथा-दर्शयिष्यति-उप मानोपमेयभावादिति कथयिष्यति, तथा-निदर्शयिष्यति-प्रातृकृत्या अभ्यङ्गकृत्यापापेक्षया वा निश्चयेन पुन पुनर्दर्शयिष्यति, तथा-उपदर्शयिष्यति-उत्पन्न-निगमनाभ्यां सकलमयाभिप्रायतो वा निश्चङ्कं श्रित्यपुद्धौ व्यक्त्या पयिष्यति इति तृतीयम् ३। यत् सङ्क सवैतलमयं दामदिकं दृष्टं, तेन सगवान्-भीचीरत्नामी आगारधर्म-युद्धधर्मम् अन्तगारधर्म-दुर्निर्धर्ममिति द्विविध-द्विप्रकारं धर्मम् आख्यापयिष्यति-सामान्यतया विगेषतया च कथयिष्यति, तथा-प्रज्ञापयिष्यति, प्रकथयिष्यति, दर्शयिष्यति, निदर्शयिष्यति, उपदर्शयिष्यति, इति चतुर्थम् ४। यत् सङ्क श्वेत

उससे सगवान् स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त से युक्त बारह आँवले गणिपिटक (आचार्यों के लिए रत्नों की पेटों के समान आचारंग आदि) का सामान्य विशेषरूप से कथन करेंगे, एयापवाची सुन्दरों से अपना नामादि मेरों से प्रज्ञापन करेंगे, स्वरूप से प्रकरण करेंगे, उपमान-उपमेय मात्र आदि दिलाकर कथन करेंगे, पर की अतृकृत्या से या मध्यमीचों के कृत्याण की अपेक्षा से निष्पत्त्युक्त पुन पुनः विसर्गादौ, तथा उपनय और निग मन के साथ अब्बा समी नयों के दृष्टिकोण से, श्रित्यों की बुद्धि में निश्चङ्क रूप से प्रसादौ यह तीसरे स्तर का फल है। (४) सगवान् ने समस्त रत्नोंवाले मालागुल को देखा, उससे सगवान् घुरस्वधर्म और दुर्निधर्म दो प्रकार के धर्म का सामान्य और विशेषरूप से कथन करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे, प्रकरण करेंगे, दर्शित करेंगे, निदर्शित करेंगे और उपदर्शित करेंगे यह चौथे महास्तर के फल है। (५) सगवान् ने जो श्वेत गोवर्ग (गावों का

शुद्धकमान्धर्मां बलिन भूमि विद्यश्ये, आ नीला भद्रावधन्त इत्येति (३) कथवाने ने श्वित-विश्विन पाचोवाजा नर- श्वितवने ज्येष्ठा, कथवान् स्वसिद्धांत अने परसिद्धांतवर्षी भुक्त पार आ ओवाणा अखिपिटक (आचार्यानि आदे रत्नोनी पेटी समान आचारंग आदि) उप सामान्य विशेषरूपशी कथन करेये, प्रकथयिष्यती कथोधी अब्बा नामादि बोधोधी प्रज्ञापन करेये, स्वरूपशी प्रकरण करेये, उपमान उपमेय आन आदि जलस्थीने कथन करेये, नीलानी जलुक्त पावो हे जल लोचना कथयिष्यती अपेक्षासे निष्पत्त्युक्त इती इतीने जलस्थी, तथा उपनय अने निश्चयनानी आदि कथयिष्यती नयोन दृष्टिकोषशी, श्रित्योनी बुद्धिमां निश्चय करेये कथयिष्यती आ नील स्थन्तु इत्येति (४) कथवाने समस्त रत्नोंवाणी माणनी ज्येष्ठा दोष तेना कथ्य ज्येष्ठे हे कथवान् युद्धधर्म अने दुर्निधर्म अने विप्रधर्म अने प्रधर्मनाम भगवु सामान्य अने विशेषरूपशी कथन करेये, प्रज्ञापन करेये प्रकरण करेये, निदर्शित करेये, आ श्रित्या भद्रावधन्त इत्येति

गोવર્ગો દટ્ટ; તેન ચતુર્વર્ણ્યSSક્રીર્ણ=ચત્વરોવ્રણાશ્રાતુર્વર્ણ્ય=શ્રમણ-શ્રમણી-શ્રાવક-શ્રાવિકાલ્પ, તેન આકાગ-
 યુક્ત સંઘ સ્થાપયિષ્યતિ, इति पञ्चमम् ५। यत् खलु पञ्चसरो दृष्टं तेन भगवान् भगवतिव्यन्तर्ज्योतिषिक वैमानिकेति
 चतुर्विधान् देवान् आख्यापयिष्यति-प्रज्ञापयिष्यति, दर्शयिष्यति, निदर्शयिष्यति उपदर्शयिष्यति-इति षष्ठम् ६।
 यत् खलु महासागरो भुजाभ्यां तीर्णो दृष्टः, तेन अनादिकम् आदिवर्जितम् अनवदशम्=अन्तरहितं. चातुरन्तसंसार
 सागरं=चतुरंगतिकससाररूपसमुद्रं तरिष्यति, इति सप्तमम् ७। यत् खलु तेजसा जलन् दिनकरः=सूर्यो दृष्टः, तेन
 भगवतः श्रीवीरप्रभोः अनुत्तरम्=प्रधान. कृत्स्न-सकलम्-अखण्डम्-सर्वपदार्थावगाहनात् केवलवज्जानदर्शनमपि
 कृत्स्नं व्यपदिश्यते, एवं प्रतिपूर्णम्=सकलाशसम्पन्नम्, अव्याहतम्=व्याघ्रातवर्जितम्, निराशरणम्=आशरणरहितं च
 केवलवज्जानदर्शन-केवलवज्जानं-केवलवददर्शनं च समुत्तस्यते-इत्यष्टमं ८। यत् सलु हरिरेडूर्यवर्णाभेन निज-

ઝુંડ) દેલા, ઉસસે સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક ઓર શ્રાવિકારૂપ ચાર પ્રકાર કે સંત્ર કી સ્થાપના કરેગે. यह
 पाँचवें महास्वप्न का फल है। (६) पक्षों से युक्त जो सरोवर देखा, उससे भगवान् भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक
 और वैमानिक, इन चार प्रकार के देवों को सामान्य-विशेषरूप से उपदेश करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे, प्रलपण
 करेंगे, दर्शित, निर्दिशित तथा उपदर्शित करेंगे, यह छठे महास्वप्न का फल है। (७) भगवान् ने महासमुद्र को
 भुजाओं से तिरा देखा, उससे आदि तथा अन्त से रहित, चार गतिवाले संसार रूप समुद्र को पार करेंगे
 यह सातवें महास्वप्न का फल है। (८) भगवानने तेज से देदीप्यमान मूर्य देखा. उससे भगवान् को प्रधान,
 सम्पूर्ण एवं समस्त पदार्थों को जानने के कारण अकिल (कृत्स्न) प्रतिपूर्ण (सकल अंशोंसे युक्त) सब
 प्रकार को रूपावटों से रहित तथा आवरण रहित केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति होगी यह आठवें

(૫) ભગવાને બે શ્વેત ગોવર્ગ (ગાયોનું ધણુ) દેખ્યું તેના ભાવ એ છે કે સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકાલ્પ
 ચાર પ્રકારના સઘની સ્થાપના કરશે આ પાચમા મહાસ્વપ્નનુ ફળ છે (૬) પક્ષોવાળુ બે સરોવર જોયું, તેના ભાવ
 એ છે કે ભગવાન ભવનપતિ, વ્યંતર, જ્યોતિષિક, અને વૈમાનિક એ ચાર પ્રકારના દેવોને સામાન્ય વિશેષ રૂપથી ઉપદેશ
 આપશે, પ્રજ્ઞાપન કરશે, દર્શિત, નિર્દર્શિત તથા ઉપદર્શિત કરશે. આ છઠ્ઠા મહાસ્વપ્નનુ ફળ છે. (૭) ભગવાને મહા-
 સાગરને પોતાની ભૂભાગ્યો વડે પાર કર્યો, તેના ભાવ એ છે કે આહિં તથા અન્તવિનાના ચાર ગતિવાળા સંસાર-
 રૂપી સાગરને પોતે પાર કરશે. આ સાતમા મહાસ્વપ્નનુ ફળ છે. (૮) ભગવાને તેજથી દેહિપ્રમાન સૂર્ય જોયો,
 તેના ભાવ એ છે કે ભગવાનને પ્રધાન, સંપૂર્ણ અને સકળ પદાર્થોને ભાણવાને કારણે અવિકલ (કૃત્સ્ન), પ્રતિપૂર્ણ (મકલ
 અશોવાળુ) બધી જાતની સજાવટો નિનાનુ તથા આવરણુ વિનાનુ કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત થશે. આ આઠમા મહાસ્વપ્નનું

केनान्नेन मादुपोत्तर' पर्वतः सर्वतः समन्तात् आवेष्टितपरिवेष्टितो हृष्टः, तेन भगवतः—धीवीरस्त्वामिनी कीर्तिं वर्षेच्छन्म्लोका-उग्र-कीर्तिः—“अदो भयं पुष्पभागी” त्यादि सर्वव्यापि साधुवाद, वर्षे=एकदिन्यापिसाधुवाद; शब्दः=भयविस्त्यापिसाधुवाद; म्लोका-उग्रैव गुणवर्णनं चैते स देवमनुजाऽधुरे=देवमनुज्यासुरसहितलोके=भुवने मनुव्याधिभिः गात्स्यते=शति नभस्य ९। यह लख मन्दरे पर्वते मन्दरपूरिकाया उपरि सिंहासनवर गत आस्ता हृष्टः, तेन भगवान् भीरीरम्य स देवमनुजासुरायाः देवमनुज्यासुरसहितायाः परिपदः=समायाः मध्य गतः=मये विराजितः सन् केचमिष्यन्वे=सर्वप्रकृषितं धर्मम् आख्यापयिष्यति, प्रज्ञापयिष्यति, प्रकृषयिष्यति, दर्शयिष्यति निदर्शयिष्यति, उपदर्शयिष्यति' एषां पदानां व्याख्याऽस्मिन्नेव सूत्रे कृतेति सिंहावलोकनव्यायेन=साऽपलोकाधीनेति वक्ष्यम महात्मप्रफुल्लम् १०। अ० ९९॥

महात्मन का फल है। (९) भगवान् ने जो हरियणि और वैदूर्यमणि की कान्ति के समान अपनी आँत से मादुपोत्तर पर्वत को सब तरफ से आवेष्टित और परिवेष्टित देला, उससे समस्त लोक में—देवों मनुष्यों एवं असुरों सहित सम्पूर्ण लोक में भगवान् की कीर्ति का गान होगा। वर्षे, शब्द और म्लोक का भी गान होगा। ‘अथा यद् पुष्पशाली है’ इत्यादि सभी विद्याओं में व्याप्त होनेवाले साधुवाद—प्रशंसावचनों को कीर्ति कहते हैं। एक दिशा में व्याप्त होनेवाला साधुवाद ‘वर्षे’ कहा जाता है। प्राची विद्या में फैलने वाला साधुवाद शब्द शब्द कहा जाता है। और जिस स्थान पर व्यक्ति हो, वही उसके गुणों का ब्रह्म होना श्लोक कहा जाता है। यह नीचे महात्म्य का फल है। मेक पर्वत पर, मेक पर्वत की वृद्धिका के ऊपर उषम सिंहासन पर अपने आपको बैठा देला उससे भगवान् वीरम्य देवों मनुष्यों एवं असुरों सहित समा के मध्य में विराजित होकर सर्वत्र प्रकृषित धर्म का कथन, प्रज्ञापन, प्रकृषण करेंगे; धर्म को शक्ति, निदर्शित और उप

देव छे (६) भगवाने ने बीला रज्जुय जने वैदूर्य भवोनी कान्ति लेबा पोताना भांतरश्रुथी भातुयितार परतने जधी वधश्री आवेष्टित जने पन्विष्ठित ज्यो, तेना भाव ज्ये छे हे अष्टम लोकभा देवा भनुज्यो जने भन्नुशु संहित स पूर्य दोकभां जत्राननी कीर्ति जत्रयो वरुं शण्ड जने श्रोकाना पणु गीत जयग्रे अ०। मा उपवशानी छे” इत्यादि अकनी दिवाज्याया प्रशरनाय साधुवाद—प्रशंसावचनोने कीर्ति, कहें छे लोक दिग्भां प्रशरनाय साधुवादने “वर्षे” कहें छे जधी दिशाभा होलावधर साधुवादने शण्ड कहें छे जने जे स्थाने व्यक्ति होय त्याज तेना जुखेना वभाजु भाव तेने श्रोक” कहें छे मा नवभा अकारवन्नु छे (१०) शिब पर्वत पर मेक पर्वतना शिखर उपर उचम सिंहासन पर पोताने ज्मीनालेबा लेबा, तेना भाव ज्ये छे हे जत्रयान अकानीर रज्जुभी देवा भनुज्यो जने भन्नुशु संहितनी अथभा विष्टजने सर्वत्र प्रकृषित धर्मन ज्ञान प्रज्ञापन, प्रकृषण करेंगे, धर्मने शक्ति जने उपवशित

मूलम्--तए णं तस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स तवसंजममाराहेमाणस्स वारसेहि वारसेहि वासेहि तेरसेहि पखेहि वीइकंतेहि तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहमुद्धे, तस्स णं वइसाहमुद्धस्स दममीपक्खेणं सुववणं दिवसेणं विजणं, मुहुत्तेणं हत्थुतराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पार्दणगामिणेए छायाए वियत्ताए पोरिसीए तत्थ गोदोहियाए उकुड्डयाए निसिज्जाए आयावणं आयावेमाणस्स चट्टेणं भत्तेणं अपाणएणं उट्टाणु अहोसिरस्स झाणकोटोवगयस्स सुक्कज्झाणं तरियाए वट्टमाणस्स निव्वाणे छट्टेणं पट्टिण्णे अवगाहए निगावरणे अणंते अणत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे ।

त ए ण स भगवं अरहा जिणे जाए केवली सव्वाणू सव्वदरिसीसदेवमणुयासुरस्स लोयस्स आगइं गइं
ठिइं चव्वणं उववायं भुत्तं पीयं कइं पडिसेविंयं आवीकम्मं रहोक्कम्मं लव्वियं कइियं माणसियंति सव्वे पज्जाए
जाणइं पासइं । सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे विहरइं ।

तए णं ममणस्स भगवओ महावीरस्स केवलवरणाणदंसणुत्तिसमए सव्वेहि भवणवइ-वाणमंतर जोइसिय-
विमाणवासीहिं देवेहि य देवीहि य उवयंतेहि य उप्पयंतेहि य एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देवसण्णिवाए देव-
कहक्केहे उप्पिजलगभूए यावि होत्था ॥सु०१००॥

छाया--ततः खलु तस्य श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तपः संयममाराधयतः द्वादशसु वर्षेषु त्रयोदशसु वर्षेषु च व्यतिक्रान्तेषु त्रयोदशस्य वर्षस्य पर्याये वर्तमानस्य यः सः ग्रीष्मणां द्वितीयो मासः चतुर्थः पक्षः वैशाखशुद्धः, तस्य खलु वैशाखशुद्धस्य दशमीपक्षे सुव्रते दिवसे विजये गृह्णते हस्तोत्तरासु नक्षत्रे योगसुपगते

दक्षित करेंगे। इन पदों की व्याख्या इसी सूत्र में पहले की जा चुकी है। अतः सिद्धावलोकन-न्याय से वही व्याख्या देखलेनी चाहिए। यह दमर्व महास्वम का फल है ॥मू०९९॥

मूल का अर्थ—‘तण्ण’ इत्यादि। उस समय भ्रमण भगवान् महावीर को तप संयम की आराधना करते हुए चारह वर्ष और तेरह पक्ष व्यतीत हो चुके थे। तेरहवाँ वर्ष चल् रहा था। ग्रीष्म ऋतु का दूसरा महीना था, चौथा पक्ष—वैशाख शुद्ध पक्ष था। उस वैशाख शुद्ध पक्ष की दसमी तिथि थी। सुव्रत दिवस,

કરશે એ પદોની વ્યાખ્યા આજ સૂત્રમાં પહેલા કરાયેલ છે. તેથી નિષાવલોકન-ન્યાયથી છારાસુચોચો ચોળ વ્યાખ્યા નોંધ લેવી જોઈએ. આ દસમા મહાત્વર્ગનું ફળ છે. ॥સૂ૦૮૬॥

તેર પથવાડયા વ્યતીત થયા હતા, ને તેરમું વર્ષ ચાલતું હતું. ગ્રીષ્મઋતુનો બાન્ને મહિનો, એથું પળનાડિયું મહેનો અર્થ-‘તણું’ ઇત્યાદિ શ્રમણ લગવાન મહાવીરને તપ સંયમની આરાધના કરતાં, બાર વર્ષ અને

भारतीनामिन्यां छायायां व्यक्त्यां गौरव्याय् तत्र गोदोशिक्या तदुक्त्या निषधया आतापनाम् आतापयतः पठेन मत्तेनाज्जानकेन कर्षणान्वचः क्षिरसो ध्यानकोष्ठोपगतस्य शुक्लध्यानान्तरिकायां वर्तमानस्य निर्वाणं कृत्स्न प्रतिपूर्वमव्याडत निराश्रयमनसमनुसरं केवलमरहानन्दकेन समुत्पन्नम् ।

ततः सख स भगवान् आर्धन् विनो जातः केवली सर्वदः सर्वदर्शी सदेयमनुजासुरस्य लोकस्य आगतिं गतिं स्थितिं रूपकमनुपपातं युक्त पीठं कृतं प्रतिसेनितम् आधिक्यं रत्नं कर्म लपितं कथितं मानसिकमिति सर्वान् पर्यायान् जानाति पश्यति । सर्वभोके सर्वधीवान् सर्वमावान् जानानः पश्यन् विहरति ।

विजय सुहृदं, उचरा फाल्गुनी नक्षत्र का योग था । छाया पूर्वं विद्या की और इस रही थी । व्यक्त नामक पौकरी थी अर्थात् दिन का ठीसरा घहर था ऐसे समय में भगवान् गोदोश नामक उक्त आसन से स्थित होकर आतापना छे रहे थे । चौविहार पण्यक्त (पेले) की तपस्या थी । प्रभु ने दोनों घुटने ऊपर कर लम्बे थे और मस्तक नीचे की ओर झुका रहता था । ध्यानरूपी कोष्ठ में प्राप्त थे । शुक्लध्यान की आन्तरिका में परमान थे । उस समय भगवान् की मुक्ति के हेतुयत्, अविकल, प्रतिपूर्ण, अक्याबाध, मनावरण, मनन्त तथा अनुसर केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ । तब वह समाधान् यर्धन् और जिन हो गये । केवली, सर्वद और सर्वदर्शी हो गए । देवी मनुष्यों और आसुरों सहित लोक की भागति, गति, स्थिति, व्यवन तथा उपपात की और लाये, पीये, क्रिये, सेवन किये की, प्रकट कर्म की, पारस्परिक सापण की, कथन की, मनोगत माव की, इस प्रकार सब पर्यायों को जानते और देखने लगे । समस्त लोक में, सग नीचों के

केन्द्रे वैशाख शुद्ध चर्दवी હતી તે દિવસે શુદ્ધ પદ્મને ઇશ્વરો દિવસ આવી રહ્યો હતો. સાથે સાથે દિવસ પશુ ચાંદિ, વિશ્વચક્રાદુર્ત અને ઉત્પદશસ્ત્રભુની નક્ષત્રને યોગ હતા દિવસનો ત્રીજો પ્રહર આવતો હતો. આ સમયે ભગવાન, એમોલ નામનું ઉકડુ આશન જમાવી રહ્યા હતા તે આસને સ્થિત થઈ, 'આતાપના' હેવા હતા. અતુર્ધિધ આકાસ્મા ત્યાજ સાથે તેમણે છમ્પી તપસ્યા આદરી હતી. પ્રભુએ જાને પૂટલે ઉપર પોતાના કાશ રાખ્યા હતાં અને પ્રભુ નીચે કુંજા ત્રુ હતું 'આનના દેશમાં અનુલ હતો તે બખતે તેઓ શુદ્ધધ્યાનમાં આદેશ થયેલા હતા આ સમયે પ્રભુને યુક્તિના હેતુમત્, અવિદ્યજ, પ્રતિષ્ઠ' અભ્યાસ, અન્યાવશ્ય, જાનત, અને અનુસર એવુ દેવદયાન-દેવલકશ્યન ઉત્પન્ન થયું દેવજ જ્ઞાન-દેવજ ઇશન ઉત્પન્ન થતા ભગવાન આકર્ષે છન-દેવલી રહેવામાં. તેઓ સર્વેશ અને સર્વેશી થયા તેઓ દેવ-પ્રભુજ-તિર્થજ સહિત દેશનાં છયેલી, આગ્રતિ, બતિ, રિશિતિ અવનન, ઉપપત, વિલેષ

ततः सखु श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य केवलवरज्ञानदर्शनोत्पत्तिसमये सर्वैः भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिषिक-विमानवासिभिः देवैश्च देवीभिश्च उपयद्भिश्च उत्पतद्भिश्च एको महान् दिव्यो देवोद्द्योतो देवसन्निपातः देवफलफलः उपिञ्जलकभूतथापि वयूव ॥सू०१००॥

टीका—‘त ए णं तस्स’ इत्यादि । ततः=महास्वभदशकदर्शनानन्तरं खलु श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तपः संयमं=तपोद्वादशविधं संयमं सप्तदशविधं समाराधयतः=सम्यक् प्रकारेण कुर्वतो द्वादशसु वर्षेषु त्रयोदशसु पक्षेषु च अर्थात्-सार्धपण्णमासाधिकेषु द्वादशवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु=व्यतीतेषु सत्सु, त्रयोदशस्य वर्षस्य पर्याये=संयमपर्याये वर्तमानस्य, यः सः ग्रीष्मर्णान्=ग्रीष्मऋतुसम्बन्धी द्वितीयो मासः चतुर्थः पक्षो वैशाखशुद्धः, तस्य खलु वैशाखशुद्धस्य दशमीपक्षे=दशम्या तिर्यौ सुव्रते=सुव्रतनामके दिवसे, विजये सुहर्ते, हस्तोत्तरासु नक्षत्रे-

सभी भावों को जानते हुए तथा देखते हुए विचरने लगे । तब श्रमण भगवान् महावीर के केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति के समय में, सब भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक तथा विमानवासी देवों और देवियों के आने-जाने से एक महान् दिव्य देव प्रकाश हुआ, देवोंका संगम हुआ, कल-कल नाद हुआ और देवों की बहुत बड़ी भीड़ हुई ॥सू०१००॥

टोका का अर्थ—दस महास्वभ देवने के पश्चात्, तप संयम की आराधना करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को दीक्षा अंगीकार किये, बारह वर्ष और तेरह पक्ष अर्थात् साढ़े बारह वर्ष और पन्द्रह दिन बीत जाने पर संयम-पर्याय का तेरहवाँ वर्ष चलता था, उस समय ग्रीष्मऋतु संबंधी दूसरा मास और चौथा पक्ष=वैशाख शुद्ध पक्ष था । उस वैशाख शुद्ध पक्ष की दशमी तिथि में, सुव्रत नामक दिवस में, विजय सुहर्ते में,

अर्थात्जाने जलषुवा अने हेभवा लाग्या. हरेक छुवनो भान-पान आनिनी क्रियाओ पशु, तेभना ज्ञान द्वारा जलुती जन्ती इती. प्रगट्कर्म रहस्यकर्म, परस्परना लाषणो, कथन अने भनोगत भावो विगेरेने तेओ जलुवा तेभज हेभता थका नियरवा लाग्या. त्यादे श्रमणु लगवान भडावीरने केवणज्ञान-केवणदर्शन उत्पन्न थता भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक तथा विमानवासी देव-देवीओ आववा लाग्या आ अवसरवरने परिणामे, ओक भडान दिव्य देव प्रकाश पडवा लाग्यो हेवोनो संध ‘कदा-कदा’ अवाज करतो लगवानना दर्शन करवा लीड करी रह्यो इतो. (सू०१००)

विशेषार्थ—भगवानने उय तप-संयमनी आराधनाना अते, साअभार वर्ष अने पहर दिवसनो वभत पूरै थयो इतो आ सयमनी छेडो अवस्थाभा, तेभने जे हथ भडास्वभनोना अनुभव थयो इतो, ते तेभना निरावस्थीय ज्ञानना उवाडनी पूर्वभूमिकाउ दिग्दर्शन इतु. आ स्वभनो सुभद अनुभवना आगाडीइये इता. आ स्वभनोभाद पशु

इत्थोपमसितीचरानसत्रे-उचरफण्णुनीनसत्रे योगे-बन्धन योगश्च उपगते=आते प्राचीनगामिन्या=पूर्वदिग्गजायां
 आपायां व्यक्तायां=व्यक्तामिषानायां वीरव्या=विषयस्य वहीये ग्रहरे इत्यर्थः, उग्र=आत्मसमूलासम्प्रभवेने अपान-
 केत=निर्गमेन पठेन मकेन, गोमोहिकया निषधया=गोमोहनामकोटकुडामनेन आठापनाय् आता-
 पयठः=आठापनां कुर्वतः ऊर्ध्वमान्त्रः शिरसः=उर्ध्वाकुतभातुद्रुषाः कृतमस्तकस्य, ध्यानकोष्ठोपगतस्य=ध्याने=
 परमैयानं भुक्तस्थानं च, तवेव=कोष्ठः=कुपुमस्तदुपगतः=सम्यग्मास्तस्य=ध्यानेन नियुतीतोन्द्रियः करणवृत्तिकस्य
 भुक्तस्थानान्तर्विक्रियाय=भुक्तस्थान एवसंवित्तकं सविचारय् १, एकस्ववित्तकय् अविचारय् २, द्वास्माकियम् अमवि
 पाति ३, समुच्छिन्नक्रियय् अनिर्वातं ४, इति षड्विध, तत्र-आद्य व्यात्ता-द्वितीये एकस्ववित्तकविचारकमे ध्याने
 वर्तमानस्य=स्वित्तस्य निर्वाणं=निर्वाणकारणरथात् कुत्स्न=सकलम्-अलक्ष्यम्, सर्वपदायवगाइनत् केवलरज्ञान
 दर्शनमपि कुत्स्नं व्यपदिश्यते। प्रतिपूर्णेयं=सकलोद्यमव्यसम् अन्याहत्=व्यापातवर्जितम् निरावरणम्=आवरणरहितम्,
 अनन्तरम्=अनन्तवस्तुविषयम्=अनन्तरं=सर्वत उत्कृष्ट केवलरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्।

चन्द्रमा के साथ उचरफण्णुनी नक्षत्र का योग होने पर, छाया जब पूर्वदिशाकी ओर जाने लगी थी, व्यक्ता
 नाम की वीरणी में अर्थात् दिन के तीसरे ग्रह में, सामन्त के युक्त के समीपवर्ती प्रदेश में, चौविहार यष्टमक्त के
 तप से, गोमोह नामक उत्कृष्टक आसन से आठापना छेले हुए, दोनों घुटने ऊपर और सिर नीचा किये
 हुए मगवान् परमैयान और धुल्लुपान लगी कोष्ठ में प्रविष्ट, ये। ध्यान के द्वारा उन्होंने इन्द्रियों के और
 अन्तःकारक के व्यापार को रोक दिया था। भुक्त स्थान चार प्रकार का है-(१) पृथक्स्ववित्तकं सविचार
 (२) एकस्व वित्तकं अविचार (३) द्वास्माकिय अमनिपाति (४) समुच्छिन्नक्रिय अनिर्वातं मगवान् धुल्लुपान के
 पृथक्स्व वित्तकं सविचार नामक प्रथमपाये को छायाए एक वित्तकं अविचार नामक दूसरे पाये में लीन थे।

अथधान ध्यानभां अर्द्ध दया कट्टा आ ध्यान ओष्ठ भूमिभानु कट्ट आ ओष्ठ भूमिभानु शुद्ध ध्यान अर्द्ध छे आ
 शुद्ध ध्यान आर अर्द्ध छे (१) पृथक्स्व वित्तकं अविचार (२) ओष्ठ ध्यान वित्तकं अविचार (३) द्वास्माकिय अमनिपाति
 (४) समुच्छिन्न क्रिया अनिर्वातं शुद्ध ध्यान पठेले पाये पृथक्स्व ओष्ठ अविचारने छे ओभां तत्राथ आतिभ
 कावोने पठेले पृथक् भरी तेना पर स पृथक् विचार करवां करवां तत्राथ कावोने ओष्ठपृथक् जगदी, आरथ पस्वितिभां
 विचार अर्द्ध छे वीर्य शुद्ध ध्यान ना पाया इये ओष्ठपृथक् अविचार नी ओष्ठी पर एव अर्द्ध छे आ ओष्ठीभां
 जगत्तदा अर्द्ध पठाओनी आयुधविज अवर अवरकावो आने तेनी पस्वितिओने लुदी लुदी करी, ते अर्द्ध उपर
 अर्द्ध आन विचार अर्द्ध छे आने तेमदा पठेले अर्द्ध-अर्द्ध-अर्द्ध आदिने आरथ पस्विति आने आ म अविचारि निम

ततः खलु स भगवान् अहं=अशोकादिप्रातिहार्ययोग्यः जिनो=रागद्वेषजेता जातः, पुनः कादृशा जात इत्याह-केचली=केवलज्ञानसम्पन्नः, सर्वज्ञः=सर्वपदार्थज्ञः, सर्वदर्शी=सर्वपदार्थदर्शकः, तथा-सदेवमनुजासुरस्य लोकस्य आपाति-भवान्तरात् गति-भवान्तरे स्थिति च्यवनं=देवलोकोत्तिर्यग्नरेषु अवररणम् उपपातं=मनुष्यतिर्यगायुः-समाप्यनन्तरं देव्योक्तं नरके वा उत्पत्तिम्, भुक्तं=खादितमोदनादिकं पीतं=पानविषयीकृतं जलदुग्धादिकम्, कृतं=चौर्यादिकं प्रतिसेवितं दोषादिकम् आविष्कर्म=प्रकटकृतं रहः कर्म=प्रच्छन्नकृतं, लपितं=परस्परभाषितं कथितं=कंचिज्जन प्रति एकाकिनोक्तम्, मानसिकम्-मनोगतं दुःखमुख्यादिकम् इति-एतत्प्रकारान् सर्वान् पर्यायान् जानाति=

कंचिज्जन प्रति एकाकिनोक्तय, मानासकर्म-मनांगत दुःखलुलापकम् ।
 उसी समय भगवान् को निर्वाण-मोक्ष का कारण, कृत्स्न-सकल पदार्थों को जानने के कारण सम्पूर्ण या अखण्ड, प्रतिपूर्णा-समस्त अंशों से युक्त, अद्याहत-व्याघातो से रहित, आवरणहीन, अनन्त-अनन्त वस्तुओं को जानने-
 दुःखलुलापकम् ।

वाला तथा अनुत्तरसर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

वाला तथा अनुत्तरसर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । तब भगवान् अर्हन् अर्थात् अशोकवृक्ष आदि आठ प्रातिहार्यों के योग्य तथा जिन-राग-द्वेष के विजेता हो गये । और केवली=केवलज्ञानसम्पन्न, सर्वज्ञ-पदार्थों के ज्ञाता, तथा सर्वदर्शी=सभी पदार्थों को देखनेवाले हो गये । तथा देवों, मनुष्यों और असुरों सहित लोक की आगति=भवान्तर से आना, गति-भवान्तर में जाना, च्यवन देवलोक से तिर्यंच और मनुष्य भवों में अवतरित होना, उपात-मनुष्य या तिर्यंच के भव की समाप्ति के पश्चात् देवलोक या नरक में उत्पन्न होना, शुक्त-खाया हुआ औदन आदि, पीत-पिया हुआ जल, दूध आदि, कुत-क्रिया हुआ काम-चोरी आदि, प्रतिसेवित-सेवन किया हुआ दोष आदि, प्रकटकर्म, गुप्तकर्म, लपित-पारस्परिक भाषण, कथित-किसी के प्रति अकेले प्रति अकेले द्वारा किया हुआ कथन, मानसिक-मन के सुखदुःख

કેરી, કેવળ આત્મ અવલબને જીવ ચિત્ર થાય છે આ ક્રિયાઓ પહેલા અને બીજા શુકલધ્યાનના પાયા ઉપર થાય છે આ બીજા પાયાના અત સમયે, અને ત્રીજા પાયાના પહેલા સમયે, નિર્વાણના કારણભૂત, સમસ્ત અંશોથી શુક્ત, અવ્યાહત અને આધાતો રહિત, નિરાવરણવાળું અનંત વસ્તુઓના સૂક્ષ્મ પર્યાયો અને તેની રૂપાંતર અવસ્થાઓને જાણવાવાળું, અનુત્તર કેવળ જ્ઞાન-કેવલદર્શન, ભગવ નને પ્રાપ્ત થયું. આ પ્રાપ્ત થતાં અશોકવૃક્ષ આદિ આઠ મહા પ્રતિહાર્યો યોગ્ય ભગવાન થયા. રાગ-દ્વેષનો ક્ષય કરવાવાળા ‘બિન’ થયા કેવલજ્ઞાન સંપન્ન, સર્વ પદાર્થોના જ્ઞાતા અને દ્રષ્ટા થયા. સર્વજગતવાસી જ તુ જીવોની સકલ અવસ્થાઓ અને તેના રૂપાંતરોને ભગવાન જાણવા-દેખવાવાળા થયા. તેમજ જડ પદાર્થોના સૂક્ષ્મ ભાવોને પણ જાણવા-દેખવાવાળા થયા. પોતાનો જ્ઞાનગુણ અને નિર્બનદી સ્વભાવ, જે અન તા-કાલથી અપ્રગટ હતો. તે પ્રગટ થયો. આને લીધે અનંત સુખ જે ઠકાઈ રહેલું હતું તે ઘડાઈ આવ્યું; પોતાની દષ્ટિ

प्रत्यक्षीकरोति, परंपरति=केवलज्ञानालोकने करायलकप्रवृत्त भवेत्ते । एवंयूतः स भगवान् सर्वजीवानां सर्वभावान्= सर्वपर्यायान जानान्=विदन् परंपर-प्रेक्षमाणो विहरति ।

तत्=तदनन्तरं खलु-भ्रमणस्य भगवतो महावीरस्य केवलप्रदानदर्शनोत्पत्तिसमये-केवलप्रदानस्य- केवलप्रदानस्य य प्रकटनकाले सर्वो=समस्तैः भवनपति-अन्तर-अर्थानिगिक-विमानवासिभ्यस्तुविषः देवैश्च देवीभिश्च उपपन्निः-मनुसमीपमागच्छन्निश्च, उत्पन्निः=उत्पन्नगणमण्डले गच्छन्निश्च एको महान्=विशालः विष्णुः=ओमनः देवोद्योतः=देवप्रकाशः देवसंनिपातः=देवसङ्गमः देवकलकलः=देवनादः उत्पिङ्गलकभूत-संवाप भाति बभूव ।म्०१० ॥

मूलम्—उप णं से समणे भगवं महावीरे उण्णणाण्णदसणयरे अण्णं च लोणं च अभिसमिबल जोयण वित्तावीए सयसयमासापरिक्खामिबीए वाणीए पुब्ब देवाणं पच्छा मणुत्साणं यम्ममादस्सह । तस्य भगवतो सा पम्मदेस्सत्ता तित्थयर कणपरिणालभाए जाया, न केणवि तस्य विरिं पढिवन्ना । नो ण एए कस्सवि तित्थयरस्स मणुत्सवं भञ्जा एयं चतुत्थ मरुत्तेरय जाय ।

आदि मात्र, इत्यादि सभी पर्यायों को साक्षात्-केवलज्ञान के प्रकाश में स्वात्मवत्प्रवृत्त जानने लगे । इस प्रकार के भगवान् समस्त जीवों से सब पर्यायों को जानते-देखते हुए विचरने लगे ।

भगण भगवान् महावीर के केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति के समय भवनपति, व्यस्त, व्योति पिक और विमानवासी-द्वन्द्व चार प्रकार के सभी देवों और देवियोंका भगवान् के समीप जाने और आकर ऊपर आकाशमंडल में जाने के कारण एक विशाल शोषणप्रकाश फैल गया । देवों का सगम हो गया । देवों का कल-रसनाद हो उठा और देवों की बहुत बड़ी मीठ हो गई ।म्०१००॥

अनन्तराजामी पर पञ्चदशे पद्विम्भी शरी कती ते एव पदर वणी त्वां स्थिर कर्त्तुं शुद्धाशुद्ध पञ्चभवेत्ता पि ६ अष्टातो आरम्भा, समस्त पञ्चभित्ति शुद्ध निशवत्त नी अने निवृत्तुय सुष्ठु जन्वावी पीताम्भा सभाष्ट अर्धे, अथछने सभाष्ट एवु” अने जन्वत्तु एव ने दीक्षा पञ्चभ वजते जन्वत्तुने प्रकट कये कतो, ते जाते जन्वत्तुय पञ्चदश कटु” अथ पञ्चभित्ति अने जाते निवत्तुने इमां जन्वावी ते सव् देवण सान स्वदेये पद्विम्भवा वाप्या अने आ पञ्चभित्ति स्थिर अने जोध्वय कतो जन्वत्तु अथ दशे जन्वी देवण कोकण अथ जन्वत्तुने जन्वाव तेना निवत्तुय कफाव छि (अथ-२) अने

तए नं से समणे भगव महावीरे तओ पडिणिवखमइ, पडिणिवखमिचा जणवयविहारं विहरइ । तेणं कालेण तेणं समएणं पावापुरीणामं णयरी होत्था-रिद्धत्थिमियसमिद्धा । तत्थ णं पावाए पुरीए सीहसेणो णाम राया होत्था, महयाडिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे । तस्सणं सीहसेणस्म रण्णो सीलसेणा णामं देवी, हत्थिवालो णामं पुत्तो जुत्तराया होत्था । तीए णं पावाए पुरीए बडिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सव्वोउय पुष्फ फलसमिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे महासेणं नामं उज्जाणे होत्था । तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महासेणे उज्जाणे समोसडे ॥सू०१०१॥

छाया--ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीर उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः आत्मानं लोकं च अभीसमीक्ष्य योजनविस्तारिण्या स्व स्व भावा परिणामिन्या वाण्या पूर्वं देवेभ्यः पश्चात् मनुष्येभ्यो धर्ममाह्वयति । तत्र भगवतः सा धर्मदेशना तीर्थकरकल्पपरिपालनाय जाता, न केनापि तत्र विरतिः प्रतिपन्ना । नो खलु एवं कस्यापि तीर्थकरस्य भूतपूर्वस्य, अतः एतच्चतुर्थमाश्रयं जातम् ।

मूल का अर्थ—‘तए ण’ इत्यादि । तत्पश्चात् उन उत्पन्न ज्ञान-दर्शन को धारण करनेवाले श्रमण भगवान् महावीरने आत्मा को और लोक को परिपूर्ण तथा यथार्थ रूप से जानकर, एक योजन तक फैलनेवाली और (श्रोताओं की) अपनी-अपनी भाषा में परिणत हो जानेवाली वाणी से, पहले देवों को और फिर मनुष्यों को धर्म का उपदेश दिया । वहाँ भगवान की वह धर्मदेशना तीर्थकरों के कल्प का पालन करने के लिए ही हुई । वहाँ किसीने विरति अंगीकार नहीं की । ऐसा किसी भी तीर्थकर के विषय में नहीं हुआ था । अत एव यह चौथा आश्रय हुआ ।

भणने। अर्थ—‘तएणं’ इत्यादि ‘उत्पन्न नाणु इंसवधरे अरुहुजि डेवदा’ श्रमणु भगवान महावीर स्व अने परना यथार्थ’ जणुकार भन्था, आ ज्ञाननी साथे, तेभने अदौकिड हिव्यवाणीनी पाणु प्राप्ति थई आ वाणीतु श्रवणु, ओक योजन सुधी थई थकतु इतुं तेभज आ वाणीनो प्रभाव जेवो इतो डे सर्व प्राणीओ आ वाणी द्वारा व्यक्त थता भावोने पोतपोतानी भाषाओभा समल शकता आ वाणीद्वारा भगवाने पडेदां देवोने त्थारभाह मनुष्योने उपदेश आये। आ धर्म देशना अगाठना तीर्थकरोनी ‘परपर’तुं पादान करवा पूरतीज निवडी आ धर्म देशनाभां डेअ पडा एवे विरति वीधी नथी, आवो भनाव भगवान महावीरनी भाषतभां तेभज अनंत तीर्थकरोना व्यवहारभां पडेदाहेडोज भन्थो तेथी ते जोशु आश्रय थयुं ।

ततः सलु स भयको भयवान् महावीरस्ततः प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य जनपदविहारं विहरति, तस्मिन् काले तस्मिन् समय पावापुरी नाम नगरी आसीत् अद्विस्मितसमुद्राः । तत्र सलु पावापुरीं पुष्पां सिंहासेनो नाम राजाऽऽसीत् महाविभवमहाबलमन्युरपरेन्द्रसारः । तस्य सलु सिंहासेनस्य राज्ञः झीलसेना नाम देवी, इतिपासो नाम पुष्पो युवराज आसीत् । तस्याः भल्ल पाषाणाः पुष्पाः बहिः उधरयोरस्त्ये दिग्भागे सर्वपुङ्ख पुष्पफलसदृशं तस्यै नन्दनवनशकांशं महासेनं नामोपाधनासीत् । तस्मिन् काले तस्मिन् समये भयको भयवान् महावीरो महासेने उपाधे समपसुताः ॥२०१॥

टीका—‘वृष णं से समणे भगवं’ इत्यादि । ततः सलु स भयको भयवान् महावीरः उत्सवप्रदानदर्शनं

तत्पश्चात् भयण भगवान् महावीर वृष से विहार करके जनपद में विचरने लगे । उस काल और उस समय में पावापुरी नगरी थी । वर ऋद्धञ्जैसे-जैसे भवनों से युक्त, स्वस्मित-स्पर्शचक्र के मय से रहित और समृद्ध धन-पान्थ की समृद्धि से युक्त थी । उस पावापुरी नगरी में सिंहासेन नामक राजा था । वह महाविमान्, महाबल्य, मेरु और मोहन्त्र पर्वत के समान श्रेष्ठ था । उस सिंहासेन राजा की झीलसेना नाम की रानी थी । इतिपाल नामक पुत्र युवराज था । उस पावापुरी के बाहर उधर-पूर्व दिशा में, तब ऋद्धञ्जो के पुष्पो तथा फलों से समृद्ध, रमणीय, नन्दनवन के समान प्रकाशवाला महासेन नामक उपाधन था । उस काल और उस समय ये भयण भगवान् महावीर महासेन उपाधन में पचारे ॥२०१॥

टीका का अर्थ—उस समय उत्पन्न हुए क्षान्दर्शन के धारक भयण भगवान् महावीरने आत्मा के-अपने

तत्पश्चात् भयण भगवान् महावीर ऋद्धञ्जै दिक्षार करवा करवा, पावापुरी नामकी नगरी में पचारे आ नगरी निकल-जेटे तो भां ठीका भवनों रहेको बता रिमित-जेटे रहे स्व-पर भुजा भयको विभुष्ट होती, समृद्ध-जेटे धन आने भा-वकी समृद्ध दयेली तब आ नगरी में सिंहासेन नामकी राजा राज्य करेता होता । आ राजा महाविमान् प्रकार, महाबल्य और आने भवेन्द्र पर्वत समान श्रेष्ठ होता आ शब्दने शीघ्र नामकी राजा होती तब आ इतिपाल नामकी पुत्र होता आ पुत्रे युवराज पद प्राप्त करैष्ठ होता आ पावानजरीनी प्रकार, वनर पूर्व दिशा में जेटे छिद्रानजरीभां स-मृद्धिना पुष्पा आने इतिपाल जेष्ठ समृद्ध आने रमणीय उत्पन्न होता आ उपाधनानी योका नन्दनवन करी होती आ उपाधन नाम ‘महासेन’ शब्दवाभां आशु होता आदिवाक करने आ उभये भगवान् महावीर आ उपाधन भां पचारे । (सं० २०१)

विशेषार्थ—‘महाका’ जिनजेटेकी जेका राजा उपाधन भां पचारे भयण भगवान् महावीर, पंच आदिवाक

धरः-उत्पन्नस्य=जातस्य=केवलज्ञानस्य दर्शनस्य च धर=धारकः आत्मानं=स्वं, लोकं=पञ्चास्तिकाय-
लक्षणं च अभिसमीक्ष्य=यथावद् विज्ञाय योजनविस्तारिण्या=योजनप्रमाणप्रदेशव्यापिन्या स्व स्व भाषापरिणामिन्या=
देवमनुष्यतिर्थभाषातया परिणतीभवन्त्या वाण्या=वाचा पूर्व=सर्वतः प्रथमं देवैः=देवानुद्दिश्य प्रथात=अनन्तरम्
मनुष्यैः=मनुष्यानुद्दिश्य धर्मम् आख्याति=उपदिशति । तत्र=सदेवाहुरमनुजाया परिपदि भगवतो या धर्मदेशना
जाता सा=धर्मदेशना केवलं तीर्थकरकल्पपरिपालनाय जाता, तत्र-धर्मदेशनायां केनापि जीवेन विरतिः=विरक्तिः,
सावधव्यापारनिवृत्तिलक्षणा न प्रतिपद्यान्न स्वीकृता । एवम्=तीर्थकरस्य धर्मदेशनायां सत्यां कस्यापि विरत्य-
स्वीकरणं खलु श्रीमहावीरातिरिक्तस्य कस्यापि तीर्थकरस्य-जिनस्य परिपदि नो भूतपूर्वम्-पूर्वं न भूतम् । अतः=

और पचास्तिकाय रूप लोक के स्वरूप को यथावत् जान करके, एक योजन प्रमाणप्रदेश तक व्याप्त हो जानेवाली,
तथा देवो मनुष्यों और तिर्यचों की अपनी भागा में परिणत हो जानेवाली वाणी से पहले देवों को
लक्ष्य करके और फिर मनुष्यों को लक्ष्य करके धर्म का उपदेश दिया ।

सुरों, अक्षुरों और मनुष्यों की उस परिपद में भगवान् की जो धर्मदेशना हुई, वह धर्मदेशना केवल
तीर्थकरों के कल्प-सर्पाङ्ग का पालन करने के लिए ही हुई । उस धर्मदेशना के होने पर किसी भी जीवने
विरति-सावधव्यापार के परित्याग रूप विरति-अंगीकार नहीं की । तीर्थकर की धर्मदेशना हो और कोई भी
जीव विरती अंगिकार न करे, यह घटना श्री महावीर के सिवाय किसी भी तीर्थकर की परिपद में कभी
घटीत नहीं हुई थी । अर्थात् तीर्थकरों की देशना अमोघ होती है । उसे श्रवण कर कोई न कोई भव्य जीव
अवश्य ही संयम अंगीकार करता है । परन्तु महावीर स्वामी की यह देशना इस रूप में खाली गई । यह

बोझने देभवावादा थया. लेनी वाणुा ओक योजन सुभी सलगाथ ओवा वाणुी-प्रलावळ अन्या. आ वाणुीतुं व्यापकपणुं
आरे दिश्याओमा प्रसरित હતુ. ભાષાના સર્વ પુદ્ગલો ભુદી રીતે રૂપાતર થઈ શકે, એવા અલૌકિક શબ્દો
રૂપે પરમાણુઓ આ વાણીમા ગોઠવાયા હતા અને ભાષાના પુદ્ગલોનો ઉત્પાદ-વ્યય અપાટાબધ થઈ રહેતાં, ધ્રુવપદ્ધામાં
સ્થિર થયે જતાં હતાં તેને લીધે આખી વાણી અખંડરૂપે નીકળતી અને તેના વહનનો પ્રવાહ સહગંદરીતે ખડિત થયા
વિના, એક યોજન સુધી ચારે બાજુ વહેતો આવો તો તે વળતોને પ્રબલ વાણી પ્રવાહ વિચાર રૂપે ગોઠવાઈ, ભગવાનના
અખમાંથી નીકળ્યા કરતો ! આવી વાણી દ્વારા, ભગવાન દેવોને અનુલક્ષી તેમને યોધ આપતા તેમજ ત્યાર પછી મનુષ્ય
તરફ લક્ષ કરી, તેમને અનુલક્ષી ધર્મનો ઉપદેશ આપતા હતા. આ પહેલેવહુલી જે ધર્મ દેશના આપવામાં આવી
હતી, તેનું લક્ષ્યાંક કેવલ અતીત તીર્થંકરોની પરંપરાના પાલન પૂરતું જ હતું. અગાઉના તીર્થંકરોની વાણી, કેવલજ્ઞાન
થયા પછી છટતી હતી ત્યારે, ઘણા સુલભ યોધી જીવો સંસારથી વિરક્ત થતા હતા.

સેયં સમ્પતિ પાવાપુરીતિકથ્યતે, સા કીદશી ? इत्याह—ऋद्धस्तिमितसमृद्धा—तत्र—ऋद्धा=नभःस्पर्शिवहुलप्रासाद-
युक्ता बहुलजनसंकुला च, स्तिमिता=स्वपरचक्रभरहिता, समृद्धा=धनधान्यादिपरिपूर्णा, अत्र—त्रिपदकर्मधारयः।
तत्र—तस्यां खलु पापयां पुगीं सिंहसेनो नाम राजा आसीत्, स कीदृशः ? इत्याह—‘महाहिमवन्महामलयमन्दर-
महेन्द्रसारः—महाहिमवन्महामलयमन्दरमहेन्द्राणां पर्वतानां सार इव सारो यस्य स तथा—लोकमर्यादाकारित्वेन
महाहिमवत्सदृशः, प्रसृतयशःश्रीर्तित्वेन महामलयतुल्यः, दृढप्रतिज्ञत्वेन कर्तव्यदिग्दर्शकत्वेन च मेरुमहेन्द्रसदृश

પાપ સે રક્ષા કરનેવાલી હોને સે પાપા કહલાતી છે। आजकल वह ‘पावापुरी’ है। वह नगरी कैसी थी,
सो कहते हैं—वह ऋद्धा—आकाश को स्पर्श करनेवाले बहुत से प्रासादों से युक्त थी और जनों की बहुलता से
व्याप्त थी, तथा स्तिमिता स्व-परचक्र के भय से रहित थी। और समृद्धा—धन—धान्य आदि से भरी—पूरी थी।

उस पावापुरी नगरी में सिंहसेन नामक राजा था। महाहिमवान्, महामलय, मेरु और महेन्द्र पर्वतों के
सार के समान सारवाला था। लोकमर्यादा की स्थापना करनेवाला होने के कारण महाहिमवान् पर्वत के
समान था। उसको यश—कीर्ति सर्वत्र फैली हुई थी, अतः महामलय पर्वत के समान था। दृढ़ प्रतिज्ञ होने
तथा कर्त्तव्य रूपी दिशाओं का दर्शक होने के कारण मेरु और महेन्द्र के समान था। सिंहसेन राजा की

તીર્થંકરોની વાણી અને દેશનો નો વિચાર પ્રવાહ, એટલો બધો અમેધ હોય છે કે, તેમ જીવણ થતાં બંધ
હોવો અદૃશ્ય સયમ અને ચિરંતીપણોને અગિયાર કરે છે. જેમ અપાઠ માસનો વરસાદ એકધારે વરસી, પૃથ્વીની અંદર
પોતાનો જલ પ્રવાહ દાખલ કરી દે છે, તેમ ભગવાન તીર્થંકરની વાણી પણ, તાતી તેજવતી હોઈ અશુભ વિચારો ને
કષણ વારમા પલટાવી નાખે છે. ને સસારના ભાવોને ફગાવવામા બંધ્ય હોયને સહાયક બને છે.

દશ આશ્ચર્યંક ઘટનાઓમા આ ચોથી આશ્ચર્યંક ઘટના છે, જેને જૈનશાસ્ત્રોમાં ‘અચ્છેરા’ કહેવામાં આવે
છે. આ દશ અચ્છેરાઓ નીચે પ્રમાણે છે— (૧) પહેલુ અચ્છેરું એકે ભગવાન મહાવીર ને ઉપસર્ગો થયા. આવા ઉપ-
સર્ગો કેઈ પણ તીર્થંકરોને થયા હોય તેમ જણાતું નથી. તેથી તે આશ્ચર્યંક ગણાય છે, અને એ તીર્થ કર્મબંધનનું
પરિણામ છે. (૨) બીજુ અચ્છેરું એકે ભગવાનનું ગર્ભકાળ દરમ્યાન હરણ થયું આવુ આગમન તીર્થંકરોને હોજ નહિ
હતા પણ તે ધ્યુ તેથી આશ્ચર્ય ગણાયું (૩) ત્રીજુ સ્ત્રીનું તીર્થંકર પહોંચે યવુ. (૪) ચોથું અભાવિત પરિવર્ત—બોધના
ફલ રહિત બનેલી પહેલી પરિવર્ત. (૫) પાચમું શ્રી કૃષ્ણ મહારાજનું ‘અપર કંકા’ નામની રાજધાની જે ધાતકી
ખડમા આવેલી છે ત્યાં જવું, દ્રૈપદીનુ ત્યાં હરણ થયું હતું. વાસુદેવ પોતાની બ્રમિની સીમા ક્રેઇ પણ કાઢે વટાવી
શકતા નથી. છતા દ્રૈપદીને ત્યાંથી લાવવા માટે અને પાડવોનું કામ કરવા માટે શ્રી કૃષ્ણરાજને ત્યાં જવુ પડયું

इत्यर्थः। तस्य लघु सिंहसेनस्य राज्ञः श्रीमसेना नाम देवीमरिची भासीव, तथा-वस्तिपालो नाम वस्तुपुत्रः युनरामः आसीव। तस्याः लघु पापायाः पुत्राः चरि-उत्तरपौरस्त्ये=उत्तरपौरान्तराळे दिग्मार्गे=दिशान्कोणे सर्वदेवपुण्यफलसंपादने=वस्तुवादि पदभ्रष्ट सम्बन्धिपुण्यफलसम्पन्नां, रम्ये=सुन्दरं नन्दनवनप्रकाशं=नन्दनवनस्तुल्यं, महासेनं नाम=महासेननामकम् उपायम् आसीव।

तस्मिन् ढाढे तस्मिन् समये=सिंहसेनरामशासनकालावसरे भ्रमणो भगवान् महावीरः, महासेनोपायाने संपन्नवृत्तः=विहारकयेव समागतः। ॥सू० १०१॥

मृगम्—वेणं काछेणं तेण समएणं तीए पाबाए पुरीए एगत्स सोभिलाभिइत्स वंमणत्स जल्लबाढे नन्नकम्ममि समागया रिठ मज्झु सामा यक्कणाव वठणं येयाव इहात्तरपंचमाण निवट्टुछम्भं संगोवंगाण सरर सारि सारया वारया वारया, सडगनी सहितेठ विसारया संस्वाणे सिक्खलाणे सिक्खलाकत्ते वागरणे छदे निक्खे जोरसावणणे अन्नेसु य वडुसं वंमणायसु परिव्यायसु नपसु सुपरिबिहििया सव्वविशुद्धिदिनिउणा जसकम्मनिउणा इइसुपरिबिधो एगास मारवा सयसयसित्स परिवारेण परिउढा जन्नकम्मनिउणा तस्य जणं कुबसि। तथा

श्रीमसेना नामको रानी की। वस्तिपाल नामक उसका पुत्र युवराज था। उस पापापुरी के उत्तर-पूर्व दिशा के अन्तराल में, ईशान कोण में, वसन्त आदिछाँहों ऋतुओं संबंधी फूलों और फलों से सम्पन्न, रमणीक एवं नन्दनवन के समान महासेन नामक उद्यान था। उस काल, उस समय में, अर्थात् सिंहसेन राजा के शासन-काल के अवसर पर भ्रमण भगवान् महावीर क्रमशः विहार करते हुए महासेन उद्यान में पधारे ॥सू० १०१॥

कट्ट (१) छट्टे-बट्टे अने सुकं देवेवा, येदावा अखल इवइये डोई पण वअते तीर्त्तरेणा सभवसरखेणं आवत्ता अ नबी छटा कउवान भट्ठावीरेना सभवसरणभां तेभउ आवत्तु मज्झु (७) खात्तु इरिवइ भुइनी ऊरुत्ति, सुअदि आना जेइ भुअने जडि छावी तेभांभी बरि, ते जेइ अउरेया भूत थात जनी। (८) आत्तु मज्जेन् ने भाएवा, यमरेन्त्र भट्ठा अउता भजान्ते, ते पण जेइ आसरेई मरइ नीना छि अरभेन्त्र नीलेनी भरतीनि। भवणी छे अने मज्जेन्त्र पदेवां देवदोहना भवणी छि छावां अमरेन्त्र तेनी खावे सुअ इएवा वरएव बय्य। (९) नवयु जेही खावे जेइअ सभवभां जेइये आत्तु छेवेवा, चिउत्तरेने पाम्मा, ते पण आसरेई मरइ जव्वाव. (१०) इयत्तु आ थासुनभां अणयति जौनी पूण जउतभां बाव तेना उणु जान जव्वा। ते जेइ अउरेई छि अउपान त्वांभी नीइणी। समुअ जेवी भावपुसी नगरीभां पधबा। अदिने राव जिउतेन ते वअते भट्ठाजव्वाव अने सर्व मअरणा आसरेपावी सअअ जेवेवा अउते। ते नअरीभां जेइ भट्ठासेन नामउ उद्यान कट्ट ते पण जण उवातेणं उअअ जेवीउ जणउ कट्ट (सू० १०१)

अण्णे वि तत्थ वहवे उव्वजाया-गण-हारीय-क्रोसिय-पेल-संडिह-पारासज्ज-भरद्वाज-वस्सिय-सावणिय-
मेत्तेज्जां-गिरस-कासव-कच्चायण-दक्खायण-सारव्वयायण-सोनगायण-नाडायण-जातायणा-स्सायण-दव्भायणा-
चारायण-काविय-वोहियो-वमन्नवा-तेज्जपभिइओ मिलिया होजा ॥स्र०१०२॥

छाया - तस्मिन् काले तस्मिन् समये तस्यां पापायां पुर्याम् एकस्य सोमिलाभिस्य ब्राह्मणस्य यज्ञपाटे
यज्ञकर्मणि समागताः ऋग्यजुः सामार्थवर्णां चतुर्णां वेदानाम् इतिहासपञ्चमानां निघण्टु पष्ठानां साद्वोपाङ्गानां
सरहस्यानां स्मारका वारका पडङ्गविदः पष्ठितन्त्रविशारदा संख्याने शिक्षणे शिक्षाकल्पे व्याकरणे
छन्दसि निरुक्ते ज्योतिषामयने अन्येषु च बहुषु ब्राह्मण्येषु पारिव्राजकेषु नयेषु सुपरिनिष्ठिताः सर्वविधयुद्धि-
निपुणा यज्ञकर्मनिपुणा इन्द्रभूतिप्रभृतय एकादश ब्राह्मणाः स्व स्व परिवारेण परिचिता यज्ञं कुर्वन्ति । तथा
अन्येऽपि तत्र बहव उपाध्यायः-गार्ग्य-हारीत-कौशिक-पैल-शाण्डिल्य-भारद्वाज-वात्स्य-सावर्ण्य-मैत्रेया-

मूळ का अर्थ — 'तेणं कालेण' इत्यादि । उस काल और समय में, पावापुरी में, किसी सोमिल नामक
ब्राह्मण के यज्ञ के पाडे-महोत्से में, यज्ञ-कर्म में आये हुए अंगोपांग सहित तथा रहस्य सहित ऋग्वेद,
यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद; इन चारों वेदों के, पाँचवें इतिहास के और छठे निघण्टु के स्मारक (दूसरों को
याद करानेवाले), वारक (अशुद्ध पाठ को रोकनेवाले) और धारक (अर्थ के ज्ञाता), छहों अंगों के ज्ञाता,
पष्ठितन्त्र (सांख्यशास्त्र) में विशारद, गणित में शिक्षण में, शिक्षा में कल्प में, व्याकरण में, छन्द में, निरुक्त में,
ज्योतिष में तथा अन्य बहुत-से ब्राह्मणों के शान्नी में तथा परिव्राजकों के आचारशास्त्र में कुशल, सब प्रकारकी
बुद्धियों से सम्पन्न यज्ञकर्म में निपुण इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण. अपने-अपने शिष्य परिवार सहित यज्ञ
कर रहे थे । इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से उपाध्याय वहाँ इकट्ठे हुए थे । यथा गार्ग्य, हारित, कौशिक,

भूणनो अर्थ " तेण कालेण " इत्यादि-ते क्षणे अने ते सभये पावापुरीमा देछ सोभिन्न नामना ब्राह्मणुना यस्मिन्ना
वाडामां, यज्ञ-कर्ममा आवेज्ज अंगोपांग सहित तथा रहस्य सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अने अथर्ववेद ओ आरे
वेदानां, पाथमा धित्तिहासना अने छुवा निघण्टुना स्मारक (भीज्जने याद करायनार) वारक (अशुद्ध पाडने रोकनारा),
अने धारक (अर्थने बालुनारा), छव्जे अंगोना बालुकार, षण्टि तंत्र (सांख्य शास्त्र)मा विशारद, गणितमां, शिक्षणमां,
शिक्षामा, कल्पमा, व्याकरणमा, छन्दमा, निरुक्तमां, ज्योतिषमां तथा ब्राह्मणानां भीज्ज धणु शास्त्रांमा तथा परिव्राज्जाना
आचार शास्त्रमा निपुण, गथा प्रकारनी बुद्धिज्योथी स पत्त, यज्ञ कर्ममां निपुण इन्द्रभूति आदि अजियार ब्राह्मण योत-
पोतानां शिष्य परिवार साथे यज्ञ करता हत्ता. तेभना सिवाय भीज्ज पणु धणु ओ उपाध्याये त्या ज्येअय थया हत्ता जेभहे—

त्रिस-काश्यप-कात्यायन-याज्ञवल्क्य-शारङ्गधरायन-शौनकायन-नाटायन-वातायन-वायन-दार्मायण-घारायण-
 काव्य-नीयोऽन्यन्यना-वेयमपृथग्यो भिक्षिता अभवन् ॥सू० १०२॥
 टीका—‘तेवं काळेण सेण समण्वं’ इत्यादि । तास्मिन् काळे तस्मिन् समये तस्यां पापायाऽपापा
 नाम्नां पुण्याय एहस्य सेमिसामिषस्य=सेमिसन्नायकस्य ब्राह्मणस्य यज्ञपाट-यज्ञस्याने यज्ञकर्मणि-यज्ञक्रिया
 याय समागताः ऋषयस्तुस्सामाचर्यन्तां चतुर्णां वेदानाम् इतिहास पञ्चमानाम् निषण्ड पद्यानां-निषण्डुः=वैदिककोषः=
 स पठ्ठो वेपो तेषां च ब्राह्मणां साक्षोपाङ्गनाम्-अक्षोपाङ्गसहितानाम्-छन्दः कव्यरयौतिष-व्याकरण-निरुक्त-
 विज्ञात्माङ्गपट्टकसहितानां तथा-छन्दःपद्यव्यूहशीघ्रतश्चाक्षसहितानां चेत्यर्थः, सरस्यानां=हरयसरितानाम्-सारांश
 सहितानामित्यर्थः, स्मारकाः=रेषां जनानां स्मारयितारः, वारकाः=अष्टद्विपाठनियेषकाः, वारकाः=एतत्प्रतिपाद्या
 पैष, ब्राह्मिन्स्य, पाराङ्ग्यं, सारङ्ग्यं, सारङ्ग्यं, मेत्रेय, काश्यप, कात्यायन, दार्मायण, घारायण,
 काण्य, बौध्द, औपमन्यव, अत्रेय आदि ॥सू० १०२॥
 टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में, उस पाषापुरी में एक सौमिक नामक ब्राह्मण के यज्ञ
 स्वयं में, यज्ञ-क्रिया के लिए आये हुए इन्द्रयुति आदि ग्यारह ब्राह्मण अपने-अपने ध्वज्य-परिवार युक्त होकर
 यज्ञ कर रहे थे । वे ब्राह्मण ऋक्, यजु, साम और अथर्व इन चारों वेदों में, पाँचमें इतिहास में और छठे
 निषण्ड (वैदिक कोष) में कुशल थे । वे छन्द कव्य रयौतिष व्याकरण निरुक्त तथा विज्ञा, इन छहों अंगों
 सहित तथा रस्य-सारांश सहित वेदों के स्मारक थे, अर्थात् अन्यलोकों को याद कराने वाले थे, वारक ये
 अर्थात् अष्टद्विपाठन करने वालोंको राखते थे, और वारक ये, अर्थात् इनके अतिथेय अर्थ को धारण करने=
 भाग्य, बारीत, वेदिक पैष, श्राद्धिक, पाशयन्, सारङ्ग्यं, सारङ्ग्यं, सारङ्ग्यं, मेत्रेय आदि, काश्यप, कात्यायन, दार्मायण,
 घारायण, काण्य, बौध्द, औपमन्यव, अत्रेय आदि ॥सू० १०२॥
 टीका का अर्थ—ते भग्वे अपने ते समय में, पाषापुरी में सौमिक नामक ब्राह्मण के यज्ञ-परिवार युक्त होकर
 आये आये अथर्व के आदि वेदों में, पाँचमें इतिहास में और छठे निषण्ड (वैदिक कोष) में कुशल थे । वे छन्द कव्य
 रयौतिष व्याकरण निरुक्त तथा विज्ञा, इन छहों अंगों सहित तथा रस्य-सारांश सहित वेदों के स्मारक थे, अर्थात्
 अन्यलोकों को याद कराने वाले थे, वारक ये, अर्थात् इनके अतिथेय अर्थ को धारण करने=

र्थानां धारण कर्तारः, पडङ्गविदः=उन्मः-प्रयुतिपडङ्गज्ञाः, पण्डितन्त्रविशारदाः=सांख्यशास्त्रानिपुणाः, संख्याने गणित-
 शास्त्रे शिक्षणे=अध्यापने शिक्षाकल्पे=शिक्षायां कल्पेवेत्यर्थः, व्याकरणे=शब्दशास्त्रे छन्दसि=छन्दः शास्त्रे निरुक्ते=
 निरुक्ताख्ये वेदाङ्गभूते शास्त्रे ज्योतिषामयने-ज्योतिषशास्त्रे अन्येषु च-शिक्षादिभिन्नेषु च बहुषु=अनेकेषु ब्राह्मण्येषु
 ब्राह्मणसम्बन्धिषु शास्त्रेषु, परिव्राजकेषु-परिव्राजकसम्बन्धिषु नयेषु-आचारशास्त्रेषु परिनिष्ठिताः=अतिनिपुणाः,
 तथा-सर्वविधबुद्धिनिपुणाः=तात्कालिकपदार्थावगाह्यात्मकबुद्धि भविष्यत्पदार्थावगाह्यात्मकमति-नवनवपदार्थोद्भाव-
 नकरात्मक प्रज्ञारूपबुद्धित्रयेण प्राप्तकौशलाः, यज्ञकर्मनिपुणाः=यज्ञक्रियाकुशलाः इन्द्रभूतिप्रभृतयः=इन्द्रभूत्यादयः,
 एकादश=एकादशसंख्यकाः ब्राह्मणाः सन् स्व परिवारेण=निज निज शिष्यरूपवृन्देन, परिवृताः परिवेष्टिताः, तत्र-
 पाणपुरोस्थयज्ञस्थाने यज्ञ कुर्वन्ति । तथा अन्येऽपि तत्र=यज्ञकर्मणि वहव उपाध्यायाः-गार्ग्य-हारित-कौशिक-पैल-
 शाण्डिल्य-पाराशर्य-भारद्वाज-वात्स्य-सावर्ण्य-मैत्रेया-द्विरस-काश्यप-कात्यायन-दाक्षायण-शारद्वतायन-शौनका-

समझने वाले थे । छन्द आदि छहों अंगों के ज्ञाता थे । सांख्यशास्त्र में निष्णात थे । गणित में, शिक्षण (अध्यापन)
 में, शिक्षा में, कल्प में, व्याकरण शास्त्र में, छन्द शास्त्र में, निरुक्त-निरुक्त नामक=वेद के अंगरूप शास्त्र में,
 ज्योतिषशास्त्र में, तथा इनके अतिरिक्त दूसरे बहुत से ब्राह्मणों के शास्त्रों में और परिव्राजकों संबंधी
 आचारशास्त्र में अति निपुण थे । सब प्रकारकी बुद्धियों में निपुण थे । तात्कालिक वातको जानने वाली बुद्धि
 भविष्यत् की बात को समझलेने वाली मति, और नयी-नयी बात को खोज निकाल लेनेवाली सूक्ष्मरूप
 प्रज्ञा=इस तीन प्रकार की बुद्धि में उन्हें कुशलता प्राप्त थी । वे यज्ञके अनुष्ठान में कुशल थे । इन्द्रभूति आदि ग्यारह
 ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्यान्य उपाध्याय भी उस यज्ञ में सम्मिलित हुए थे । उनमें से कुछ यह हैं-गार्ग्य,

हुता, अष्टवे हे तेभना अक्रिधेय अर्थने धारण करनार-समञ्जनार हुता. छंद आदि छत्रे अंगोना न्युकार हुता. सांख्य
 शास्त्रमा निष्णान हुता. गणितमा, शिक्षण (अध्यापन)मा शिक्षाभां, कल्पभां व्याकरणशास्त्रमा, छंद शास्त्रभां, निरुक्त
 (निरुक्त नामना वेदना अंग रूप शास्त्रे)मा, ज्योतिष शास्त्रभां अने तेना सिवाय ग्रहणोना भीमं धर्षां ज्ये शास्त्रोभां
 अने परिव्राजको संबंधी आचार शास्त्रभां निपुण हुता तथा प्रकारनी बुद्धिओभां निपुण हुता. तात्कालिक वातने
 न्युचानी बुद्धि, भविष्यनी वातने समञ्जवानी भति, अने नवी नवी वातने शोधी कान्तारी सूअ रूप प्रज्ञा ज्ये त्रषु
 प्रकारनी बुद्धिभां तेमणु निपुणता भेजवी हुती. ते यज्ञना अनुष्ठानभां कुशल हुता. इन्द्रभूति आदि अगित्यार ग्रहणो
 सिवाय भीम धर्षा उपाध्यायो पञ्च यज्ञभां ज्येकहा तथा हुता. तेओभांथी केशकाकनां नाम नीचे प्रमाणु छे-गार्ग्य,

यन्-नाढ्यायन्-जातायन्-भापन्-शर्मायन् चारायन्-काप्य-वैद्यो-यमन्यवा-श्रेयमश्रुतयः-गार्ग्यो शरित कौशिकः
 पैन्ः श्राद्धिन्यः पाराशर्यः मारदाजो वात्स्य शाश्वतः आत्रिस्तः काश्यपः कात्यायनो-वासायनः
 श्राद्धतायनः शौनकायनो नाढ्यायनः आश्वायनो वार्मायनः चारायन् काप्यो कौप्यः श्रौपमन्यव
 श्रोत्रेयः प्रभृतो-भ्रातृ येषां ते तवायूता मिलिताः=एकविंश भवन् ॥सू० १०२॥

मृगम्—येष काष्ठेषं तेषं समर्पणं पात्रा पुरीष समणस्त मगधयो महावीरस्त देवेरि समोत्तरणं
 विरदय, त वहा-वाडकुमारा देवा जोयन्-परिमिय भूमिर्महत्वाभो संबट्कवाउणा कयवरमवधीय त निसोहेति ।
 मेरकुमारा देवा अविचं जल वरिसति । अण्णे देवा पमारतिनं रथति, उत्त वधमे सुवण्णकंगुरसोरिय रुम्-
 सानं १, बीय रयणकंगुरसोरिय सुवण्णसाल २, सूर्य वज्रमणिकंगुरसोरियं रयणसालं ३, उत्त वडसुद्धी इवा
 समागच्छति । असोगवत्त-उफुट्टि-विजम्भुणि-चामरफलिह सीरातण-भामंडलहुदुरि आयवत्तणी अम्भमहा-
 पाटिशरियाणी सयसजगनीयमोशराणि पाठम्भमिदु । कर्हि वि रयणएत्त-रयणपुप्फ-रयणफळासंक्रिया रक्ता,
 कर्हि वि वेवलियसंहासामायसी । कर्हि वि नीळमणिण्णमायूमी, कर्हि वि फल्लिमा, कर्हि वि जोई रयणमया, कर्हि
 वि पठमरागमया, कर्हि वि कंववसंहासा कर्हि वि वाळ्हरियसमा, कर्हि वि तल्माकासनिहा, कर्हि वि
 विग्गुयकोडिसमम्पहायूमी मचीअ । तस्स य वडरिस पण्णवीसणवीसजोयणपरिमिए त्सिचे ईश्रीइमारिदुग्गिमवल
 वेरागिवादि उचारीमा उत्तमिदु । सोय सुहणइगोममिदु । पाउसाया छ उठ्णो पाउम्भमिदु । कंदूरिय
 विग्गुयकोडिमणिणेहिंतो वि अर्भतार्णपकाटिगुणिया गिण्णवा पमाचीअ । तत्थ समोत्तरणयूमीए सगाओवि
 अवत्तुखिया युसमाभासी ॥सू० १०३॥

छाया—वस्मिन् छाळे वस्मिन् समये पात्रायां पुर्या श्रमजस्य मगधतो महावीरस्य वै समवसरणं निरचित,
 तथया-चापकुमारा देवा योजनपरिमितभूमिर्महत्वात् सयसंक्वाउना कववरमपनीय तव विदोषयन्ति । येयकुमारा
 शरित, कौशिक, पैन्, श्राद्धिन्य, पाराशर्य मारदाज, वात्स्य, शाश्वत, श्रोत्रेय, आंगिरस, काश्यप, कात्यायन,
 वासायन्, श्राद्धतायन, शौनकायन, नाढ्यायन, आश्वायन, वार्मायन, चारायन्, काप्य, कौप्य, श्रौप
 मन्यव, श्रोत्रेय आदि ॥सू० १०२॥

बारीत, श्रेष्ठि, पैन् श दिसन्, पाशवत्त, मारदाज वात्स्य आनवत्त, श्रेष्ठि, आनियस श्राश्वत, श्राद्धायन, श्राद्धाय
 श्राद्धायन शौनकायन, नाढ्यायन, नाढ्यायन, आश्वायन शारायन्, जोयन्, जोयन्, काप्यमन्यव आ. २५ वजिह (५०१०२)

देवा अचित्तं जलं वर्षन्ति । अन्ये देवाः प्राकारात्रिकं रचयन्ति, तत्र-प्रथमं सुवर्णकङ्कुरशोभितं रूप्यसालं १, द्वितीयं रत्नकङ्कुरशोभितं सुवर्णसालं २, तृतीयं वज्रमणिङ्कुरशोभितं रत्नसालम् ३ । तत्र चतुष्पष्टिरिन्द्राः समा-
गच्छन्ति । अशोकवृक्ष १-पुष्पवृष्टि २-दिव्यध्वनि ३-चामर ४-स्फटिकसिंहासन ५-भामण्डल ६-दुन्दुभ्या ७-
तपत्राणि ८ अष्टमहाप्रातिहार्याणि सकलजगज्जीवमनोहराणि प्रादुरभवन् । कुत्रचिद् रत्नपत्र-रत्नपुष्प-रत्नफला-
लङ्कृतावृक्षाः, कुत्रचिद् वैदूर्यसंकाशाभूमिः, कुत्रचिन्नीलमणिप्रभाभूमिः, कुत्रचित् स्फटिकाभा, कुत्रचिद् ज्योती-

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि=उस काल और उस समय में पावापुरी में, देवोंने श्रमण भगवान् महावीर के समवसरणकी रचनाकी । वह इस प्रकार=थायु कुमार देवोंने एक योजन परिमित भूमंडल से, संवत्क वायु के द्वारा कूडा-कचरा हटाकर उसकी सफाईकी । मेघकुमार देवोंने अचित्तजल कीवर्षाकी । दूसरे देवोंने तीन प्रकार (चहार दीवारियाँ) बनाये । उनमें पहला स्वर्ण के कंगूरों से शोभित चाँदीका प्रकार गढ़ बनाया । दूसरा रत्नोंके कंगूरों से शोभित स्वर्णका प्रकार बनाया । तीसरां हीरोंके कंगूरों से सुशोभित रत्नों का प्रकार बनाया । वहाँ चौंसठ इन्द्र आये । (१) अशोकवृक्ष (२) अचित् पुष्पवृष्टि (३) दिव्यध्वनि (४) चामर (५) स्फटिकका सिंहासन (६) भामण्डल (७) दुन्दुभी और (८) आतपत्र=छत्र, यह जगत् के समस्त जीवों के मनको हरनेवाले आठ महाप्रातिहार्य प्रकट हुए ।

कहीं-कहीं रत्नोंके बत्तो पाले, कहीं रत्नोंके फूलोंवाले तो कहीं-कहीं रत्नोंके फलोंवाले वृक्ष थे । कहीं-कहीं वैदूर्य के समान भूमिथी तो कहीं नीलमणिकी प्रमावाली थी । कहीं स्फटिक के समान उज्ज्वल

भूजने। अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि. ते क्षण अने ते सभये, पावापुरी नगरीमा, देवेअे श्रमणु भगवान् महावीरमा समवसरणुनी रचना करी डेवा प्रकारनी रचना करी ते डहे छि डे-वायुकुमार देवेअे अेक अेक योजन सुधी आरे तरइनी भूमिने, संवत्तं वायुद्वारा, साइ करी ते जमीन छपरना क्यारोने वाणीयाणी अेक तरइ हूर डेकी दीध। मेघकुमार देवेअे, अचित्त जणनी वर्षा करी अन्य देवेअे त्रणु प्रकारना चार आर हरवाज सडित गढे अनान्या. पहिला प्रकारना गढे आंहीना डेत। आ गढना हरवाजने सेनाना कांगरां करवामा आव्यां डतां. गीज प्रकारने गढ सुवर्णुनो अना-ववाभां आव्यो डते. तेना कांगरां रनेथी शणुगारवामा आव्यां डतां. त्रीज प्रकारने गढ रत्नेनो अनाववाभां आव्यो डते। तेना कांगरा डिग भाण्डुकां डतां. आ सभवसरणुभां, योसठ इन्द्रो डाजर रहा डता आ इन्द्रोअे, सभस्त एवेना मनने डरी डे तेवा, आठ महाप्रतिहार्य प्रगट क्यो. जेना नाम आ प्रभाण्डे छि. (१) अशोकवृक्ष (२) अचित्त पुष्पवृष्टि (३) दिव्यध्वनि (४) चामर (५) स्फटिक रत्ननुं सिंहासन (६) भामंडण (७) दुंदुभी (८) आतपत्र (छत्र).

रत्नमयी, कुत्रचित् पद्मरागमयी, कुत्रचित् काञ्चनसंकाशा, कुत्रचित् शम्भुस्यसमा, कुत्रचित् तक्ष्णास्त्रसंनिभा, कुत्रचिद्विद्युत्कोटिसममया भूमिरभवत् । तस्य च चतुर्दिशि पञ्चविंशति योजनपरिमिते क्षेत्रे इति मीतिमात्रिदुर्भित्तैरापिष्प्यायुषापयपटाशाम्यन् । लोकाः सुलभागिनोऽभवन् । प्राढादिकाः पट्टं कृतव प्रादुरभवन् । पञ्चसूर्यसिद्धकोटिमणिगणेश्वर्योऽपि अनन्तानन्तकोटियुगिता जिनप्रया प्राभासत । तत्र समवसरणभूमौ स्वर्गादपि अनन्तयुगिता धूपमाऽऽसीत् ॥ प्र० १०३ ॥

टीका—'तेन' कावेर्णं तेन समर्थं' इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये पाषाण्यो युग्य श्रमजस्य भगवतो महावीरस्य समवसरणं देवैरिचितं=विशेषेण निर्मितम्, तपसा-रि-भयमहो वायुकुमार देवाः योजनपरिमितभूमिं तो करीं ग्पाति रत्नमयी । करीं पद्मराग के कर्ण की तो करीं स्वर्ण के समान । करीं बाल-सूर्यके सहस्र तो करीं त्वगा सूर्य के कर्ण के समान थी । करीं करीं का भूमितल कोटि-कोटि विद्युत् की दीप्तीके सहस्र स्योतिर्मय था । समवसरण से पक्षीस २ योजन की दूरी तक, चारों दिशाओंमें इति, मीति, महामारी, दुर्मित, वैर, आपि, ज्योति और उपाधि उपशान्त हो गई थी । सभी लोग सुखी हो गये थे । वर्षा आदि छरों झरुएँ प्रकट हो गई थी । जिन भगवान् की प्रभा करोड़ों चन्द्रमा, मर्य विपुत्र और मणिगर्भों से भी अनन्तानन्त करोड़ोंगुणी प्रकाशित हो रही थी । समवसरण भूमि की सोमा स्वर्ण से भी अनन्तगुणी थी (ख० १०३)

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में, पावापुरी में भ्रमण भगवान् महावीर के समवसरणका देवोंने निर्माण किया । यह इस प्रकार=सब से पहले वायुकुमार देवोंने एक योजन भर्पात चार कोस के

हो । देवों स्वर्गोच्छे रत्नोना पांढरावणा, तो देवों देवावे रत्नोना हूवावणा, तो देवों देवावे रत्नोना देववाणा वृक्ष दौपराधर्भ आन्ध्र कटा देवों भूमि वेदुरेल नैवी कटो, देवों भूमि नीलभभुविना तेन नैवी कटो देवों भूमि शक्तिरत्न सभान उन्धन नवावी, तेमन देवों भूमिने। प्रकाश रत्नमय वाधते। कतो। देवों भूमितग पक्षरात्र भविन पर्व नैवु दीप्त देवों भूमि नर प्रणा न्ना सूरतेन सयु वाधतु तो देवों स्थग भयभाकृतना सूर्य सभ प्रकाशतु कट देवों धरातक देवाये विपतय नभकाश नैवु नानवलयान देवातु कट सभपक्षरावणी आरे नाभु पञ्चीय-पञ्चीय योजन सुभो, कति, नीति, महामारी, भरको, देवोरा प्येन, दुधका लकाध सुद, ज्योति, आधि, वैर, जपदा विनेर उपशान्त कर्ष नया कटा न्ना प्रदेधते। सनं सभक भुजभन ननी प्रये। शरद-वधत आदि छजे सूर्योने। प्रभाप नवाका कावे। नजवानने। प्रपाप, देवोरा न इमा, देवोरा सूर्य जने विपुत् तेमन भविजोमी पञ्च भविजोमी प्रकाशमान नवाते। कतो सभपक्षरावणी भूमि स्थगर्भो पक्ष नान नजनी देवा। स० १०३

मण्डलात्=क्रोशचतुष्टयगतिमितभूमण्डलात् सर्वतक्रवायुना=संवर्तनामकपवनद्वारा कचवरम् अपनीय=निःसार्य तद्= योजनपरिमितभूमण्डलं विशोधयन्ति=सम्मार्जयन्ति । तत्समार्जनानन्तरं मेघकुमारा देवास्तत्राचितं=प्रासुकं जलं नर्वन्ति=पुञ्चन्ति, अन्ये देवाः प्राकारत्रिकम्=त्रीन् प्रकारान् रचयन्ति-कुर्वन्ति, तत्र=त्रिषु प्राकारेषु मध्ये प्रथमम्-आदौ सुवर्णं कङ्कुरशोभितं=स्वर्णनिर्मितकपिशिर्षकालङ्कृतं रूप्यसालं=रजतप्राकारं रचयन्ति ? । द्वितीयं रत्नकङ्कुरशोभितं=रत्नमयकपिशिर्षकालङ्कृतं सुवर्णसालं=स्वर्णमयं प्राकारं रचयन्ति २, तृतीयं मणिकङ्कुरशोभितं=वज्रमणिः शोभितं=रत्नमयकपिशिर्षकालङ्कृतं सुवर्णसालं=स्वर्णमयं प्राकारं रचयन्ति ३ । तत्र=समवसरणे चतुष्पाष्टिः=चतुष्पाष्टिसंख्यकाः मयकपिशिर्षकविभूषितं रत्नसालं=रत्नमयं-प्राकारं रचयन्ति ३ । तत्र=स्तेन गन्मिन् भूमिमण्डल एकदम

मयकण्ठिर्षकविश्रुपितं रत्नसाल-रत्नमय-भाकारं रचना १५५५

चेरे में से, सर्वर्चक नामक वायु के द्वारा सारे बूड़े कचरेको हटा दिया। एक योजन परिमित भूमिमंडल एकदम धूल से ढाँके हुए था। जब भूमि स्वच्छ हो गई तो मेघकुमार देवोंने अचित्त जलकी वर्षा की, जिससे धूल साफ सुथरा हो गया। तदनन्तर अन्यान्य देवोंने तीन प्राकारों (गड) की रचना की। तीन प्राकारों में पहला चाँदी का था और उस पर सोने के कंगूरे शोभायमान हो रहे थे। दूसरा प्राकार सोनेका था और उस पर रत्नों के कंगूरे शोभायमान हो रहे थे। तीसरा रत्नोंका था और उस पर वज्रमणि के कंगूरे शोभायमान हो रहे थे।

अनपम शोभा प्रकट कर रहे थे।

વિશેષ થ'—સમવસરણુ ને જીન પારિભાષિક શબ્દમાં, 'સમો સરણુ' કહે છે. તેને આનેા અર્થ જોવો નીકળે છે કે, દરેક પ્રાણી ભૂત-જીવ-સર્વને 'સમાન શ-ણુ', મલી રહે છે. જોકજ ભૂમિ ઉપર તમામ પ્રાણીઓં સમસ્ત પ્રકારના અને લિન્ન લિન્ન પ્રકારના વેરભાવોનું વિસ્મરણ કરી, સમાન ભૂમિકા ઉપર સર્વ જોકજ થાય છે જોડલે વસી રહે છે તેવા ભાવો પણુ આમાથી નીકળે છે આકૃપસત ધર્મોપદેશ માટે સવોલ્લુટ શોભા સ્થાન ! જોવો ભાવ પથ પ્રગટ થાય છે. આ સભાસ્થાનનું નિમોગ મનુષ્યની શક્તિ બહાર છે. તેનું નિર્મોણ અદ્ભુત શક્તિવાળા દેવો વડે કરવામાં આવે છે. સાદ્રસૂત્રીમાં જોક રજ પણુ દષ્ટિગોચર થતી ન હતી તેના ઉપર દૈવી શક્તિ વડે સુગંધિત દ્રવ્યો મિશ્રિ અચિત્ત બલનેા છટકાવ કરવામાં આવ્યો હતો. આ છટકાવના લીધે, પૃથ્વીમાંથી ઉબ્ધુ-શીતમિશ્રિત હવાની લહેરીઓ છૂટતી તેથી તે. સર્વને પુથનુમા અને હિલને આનંદદાયક બની રહેતી. આ કાર્ય બાદ અન્ય દેવોએ ત્રણ પ્રકારના ગઢની રચના કરી. 'સસોમરણુ'ને કૃત્રિમ નગર બનાવવાની યોજના હોય છે. ફરક જોડલોજ હોય છે કે, આ કૃતિમ નેગરમાં ફક્ત 'ધર્મદેશના' જ અર્થ શકે થીજી કોઇ યારીરિક કે માનસિક પ્રવૃત્તિનું આ ધામ ન હતું.

આ સમવસરણુનો પ્રવેશદ્વારવાળો ગઢ ચાંદીનો બનાવ્યો હતો. તે ગઢની શોભામાં વૃદ્ધિ કરવા, કાંગરાં મૂકવામાં આવ્યા હતા. આ કાંગરાં સોનાનાં હતાં. બચ્નકુંભે આગળ ગતાં સોનાનો ગઢ બનાવવામાં આવ્યો હતો. જેનો દરવાજો

इन्द्राः=युक्ताय इन्द्राः समयाच्छन्ति-आयन्ति । तया-समयसरणे अशोकृत १-पुण्यद्वि २-विष्यञ्चिनि ३-
 चामर ४-स्फटिक सिंहासन ५-भागच्छन्त =-दुन्दुभ्या ७ उटपत्राणि-चम-अशोकृत १, पुण्यद्वि २, विष्य-
 चनि ३, चामर ४, स्फटिकसिंहासन=स्फटिकमण्डपस्य सिंहासनम् ५, भागच्छन्त=युतिमण्डलम् ६, दुन्दुभ्या=मेरी ७,
 भातपत्रे-उभय ८ चैवानि, अष्टमशमाविश्याणि-अष्टसंख्यानि यशान्ति-अस्तीकानि प्रातिहार्याणि सङ्कल
 प्राज्जीविमनारादि-सकलानां जगज्जीवानां चित्तहरणकारकानि यस्तानि मादुरमयन्=मकटी यधुदुः । पुनरपि
 समयसरणद्वार्यां वर्णयति-कुञ्जचित्=समयसरणस्य कस्मिंश्चित्तमयदेशे रत्नपत्र-रत्नपुष्प-रत्नफलसङ्कलानां=रत्नमयपत्र-
 पुष्पसमैर्भिषुविषा =द्वाराः मादुरमयन्, कुञ्जचित् युमिः=युयिषीयैर्दूर्यसंकाशाः=दूर्यमभिमयत्वन हरितकर्णा, कुञ्ज

उत्त समयसरण में वक्र आदि चौसठ इन्द्र उणस्थित थे । उत्त समयसरण में (१) अशोकृत (२) अचिप
 पुण्यद्वि (३) विष्य-चनि (४) चामर (५) स्फटिकका सिंहासन (५) भागच्छन्त (७) दुन्दुमी [मेरी] और
 (८) छत्र, यह संसार के समस्त जीवों के विष को हरण करने वाले छत्र मदान् अस्तीकिक-विष्य प्राति-
 हार्य प्रकट हुए । समयसरणकी ओमा का और मी वर्णन करते हैं-समयसरण के किसी भाग में रत्नमय
 पर्णोन्मोहे हुए थे, किसी भाग में रत्नमय पुष्पों बाछे हुए थे और कहीं-कहीं पर रत्नमय फलों से विधुपित
 हुए सुवामित हो रहे थे । समयसरण की युमि कहीं वेदुर्यमभिमय होने से अतुपम इरीसिमको चरण किये

एक सुवर्णभूषण होने अरुणा हांसज रत्नोद्गी सज्जभादवाभा आल्यां कर्ता. कष्ट ५५ आञ्जल यचनां जिह त्रीज अरुणी
 रत्ननां इवभा आनी कटी आ अरुनु निभोष प्रवेशद्वार साधे रत्नोनु जनावेहु कष्ट अने तेना उपर विविध
 प्रकाशना भविष्योनां हांसरां इवभा आल्यां कर्ता. आ तल्ल जह तेना प्रवेशद्वारा साधे पञ्चाश इनां सङ्कीर्ण, धात्रं
 देशनाना सभास एव तद्वत् जहं यहाग कष्ट आ स्योसासपुनी रत्नना देवभूत के ज्येष्ठ जगत्पद्मा साधे, त्यों आठ
 प्रकाशनी अस्तीकिक यस्तुना विद्यावरणी कटी (१) अरुणाणा यारीशी पार अवेहु किये अरुणाद्वय, (२) अरुण
 इरीनी वृष्टि (३) इन्वन्धनि, (४) आभर (५) सुदिक सिंहासभ (६) तेभना अथ उपर प्रसरी रहेव आभर ४५,
 (७) देवदुर्ली (८) जह उपर छत्र ज्येष्ठ जगत्,

आ समयसरणकी योकागु इरी वर्णन इवभा आवे छे-समयसरणभां देहेर रत्नभूषण पत्रे पुण्या अने इरीवाका
 वृष्टिनु आरोपण करेहु कष्ट तेनु पशतव अने सपथ भविष्य रत्नोना तेन्को विविध प्रकारो आपटी कटी जेटदे
 अमयवन्धुना होइ भाजभां रत्नभूषण आलंगना तो होइ भाजभां रत्नभूषण तो होइ भाजभां रत्नभूषण होइ-
 वांनां वृष्टि कर्ता. त्यानी सुभिजे भाज होइ देहाके देह भय ज्येष्ठानी अतुपम सुस्तिरज धारण इते। होइ हांस

चिद् नीलमणिप्रभा=नीलमणिमयत्वेन नौलवर्णां, कुत्रचित् भूमिः स्फटिकाभा=स्फटिकमणिमयत्वेन धवलकान्ति-
मती, कुत्रचित् भूमिः ज्योतीरत्नमयी, कुत्रचित् भूमिः पद्मरागमयी=पद्मरागमणिमयत्वेन रक्तवर्णां, कुत्रचित्
भूमिः काञ्चनसङ्काशा=स्वर्णमयत्वेन ईपद्रक्तपीतवर्णां, कुत्रचित् भूमिः वाल्मूर्यसमा=सद्य उदित सूर्यवत् अतिरक्त-
वर्णां, कुत्रचित् भूमिः तरुणारुणसङ्काशा=माध्याह्निरसूर्यसमप्रभा, कुत्रचित् भूमिर्निष्ठुत्=कोटिसमप्रभा=कोटिसंख्य
विद्युत्सदृशप्रभा अभवत्=जाता। तस्य=समवभरणस्य च चतुर्दिशि=चतसृषु दिक्षु पञ्चविंशति योजनपरिमिते=
शतकोशशतकोश परिमिते क्षेत्रे इति=गीतिमारी दुर्भिक्षचैराऽऽधिग्याऽधुपाश्रयः इत्यर्थः=अतिप्रयत्नादष्टिमुपिक
शलभशुभाटयासन्नराजस्थाः पट्टविधाः, भीतिः=भयं, मारि=निर्पूचिका, दुर्मिसं, वरं, आधिः=मानमीव्यथा,
व्याधिः=शारीररूपीडा, उपाधिः=उपसर्गः=देवमनुष्यतियोगाद्युपद्रवैश्चेते उपाशाम्यन=उपशान्ताः, लोकाः=सर्वे

थी, कहीं नीलमणिमय होने के कारण निलिमा से युक्त थी कहीं स्फटिकमय होने से धवल थी तो कहीं ज्योति-
रत्नमयी होने से भास्वर हो रही थी। कहीं पद्मरागमणिमयी होने से अबूठी लालिमा से व्याप्त भी तो कहीं
स्वर्णमयी=हल्की पीत वर्णकी थी। भूमि का कोई भाग वाल्मूर्य के समान एरुद्रम रक्तवर्ण था तो कोई भूमिभाग
माध्याह्नकाब्दीन सूर्य के सदृश प्रभा से युक्त था। कहीं-कहीं की भूमि करोड़ों विजलियोंकी प्रभा जैसी प्रभा से
आलोकित थी। समवसरण से चहुँ और सौ-सौ की दूरी तक के क्षेत्र में इति नहीं थी, अतिप्रयत्न, १
अनादृष्टि, २ चूहोका उपद्रव ३ टिट्टियोंका उपद्रव ४ तोतोका उपद्रव ५ और समीप में दूसरे राजाका उपद्रव
ये छह तरह की इतिथियाँ हैं। इनका भय का अभाव था, अथवा इतियों का भय नहीं था। महामारी
(निम्बूचिका), दुष्काल, वैर, आधि (मानसिक पीडा), व्याधि (शारीरिक व्याध्या)। उपाधि (देव मनुष्य तथा

ठेकावे नीलमणिमय होवाने कीधि नीलिमायुक्त हुतो, के.ए.ठेकावे स्फटिकमय होवाथी सदेह हुतो, के.ए.ठेकावे ज्योति
रत्नमय होवाथी भास्वर हुतो। के.ए.ठेकावे पद्मराग मणिमय होवाथी अनोणी लालिमाथी व्याप्त हुतो। के.ए.ठेकावे
सुवर्णमय होवाथी सुद्धा पीणावर्णवाणो हुतो। के.ए.ठेकावे गाणसूर्यनी समान अत्यत दालवर्णवाणो हुतो। के.ए.ठेकावे
माध्याह्नकाब्दीन सूर्यनी समान प्रभाववाणो हुतो। के.ए.लाग करे। वीजणीओनी प्रभाववाणो भासतो हुतो।

समवसरणुनी इरती थारे आनुओ, सो सो गा.ओ सुधी, के.ए.पणु स्थणे के.ए.जतना उपद्रवो नन्दे पडता
नडी. 'धति' कोटवे ओक जतने। उपद्रव आ.ध.निना.छ प्रकार छे (१) अनिष्ट (२) अनादृष्टि (३) उदरडाओ। (४)
नीड (५) पोपटनी.उपद्रव, (६) दुश्मन राजनुं यडी आवुवुं. आ.उपरांत आधि (मनसिक पीडा) धि (शारीरिक

जनाः सुखमार्गिनाः सुलिनः भाला, प्राहृढादिकाः=प्राहृद्-पर्षा-शरीरेभ्यस्तन्तुग्रीवा यदुःखदुःखका क्रतुवः प्रादुरभवन्=प्रादुर्भूताः। अथ समवसरणे स्वर्णसिंहासनानीनस्य श्रीमहावीरस्यामिन प्रभो वर्णयति-वन्द्यस्य विद्युत्कोटिमिगणेभ्योऽपि-कोटिसंख्येभ्यश्चेभ्यः सुखेभ्यः तावतीभ्यो विद्युत्प्रभो मयिस्मरुहेभ्यमपि-अनन्त्या-नन्तकोटिगुणिता जिनप्रभा=श्रीमहावीरमिनस्य प्रभा प्राभासत=प्राभासिता, तत्र-समवसरणयूगो स्वर्गकोटोऽपि=स्वर्गकोटोऽपि अनन्तगुणिता=अनन्तगुणैरधिकं सुप्रभा=परमशोभा आसीत् ॥सू०१०३॥

मूलम्—तसि तारिसंगसि समोसरणसि समीसीणस्स भगवओ इंसण्हं धम्मवेसभा सवण्हं च मक्खवाह पागमतर ओवेसिय विमाज्जवासिओ चेवा य देवीओ य निय निय परिचार परिखुढा सञ्चद्विए सख्खुईए पक्काए छायाए अभीए दिव्वेणं तेएणं दिवाणए छेसाए दसदिसो उज्जोवेमाणा पम्मासेमाणा समावजति । ते दहदुअं जसराढट्टिया जन्तमाअणो सखे माहणा परोपरं एवमावसंखि एव भासंति एवं पण्णवेति एव पक्खिविदि-ओ भो सोया ! पासंहु जन्तपमाअं, ओ वं इमे देवा य देवीणा य जन्तइंसण्हं इविससरण्हं च निय निय विमाणेहि निय निय इह्दीदिएहि सवसं समावजंति । तस्यद्विया ओया अक्खेस्य मणुमनिय एवं वांसु-ज इमे माहणा पण्णा कयस्सिआ कयपुण्णा कयसत्तमा य जेहिं जसत्ताहे देवा य देवीओ य सवसं समावजति ॥सू०१०४॥

विवर्च कृत्न उपसर्गो) सब कान्त हो गय ये। इस प्रकार की शान्ति होने से सभी लोग सुखो हो गये थे। प्रादु-चाँ, बरदु, शिशिर रेमन्त वसन्त और ग्रीष्म-यह छह ऋतुएँ एकट हो गई थी।

समवसरण मेँ स्वर्ग के सिंहासन पर शिराजमान श्रीमहावीर स्वामी की प्रभा का वर्णन करते हैं-काटि चन्द्रो, सूर्यो, किमप्यौ और मणियों के समूहों से भी अन्तानन्तगुणो प्रभा जिन भगवान् महावीर की उव् मासित हो रही थी। वह समवसरण स्वर्गकोट से भी अन्तगुणित परमशोभा से सुसामित हो रहा था ॥सू०१०३॥

पीछा, छपधि (आस्मिन् पीछा) शीघ्र दृष्टिजोषर शर्ता न होता। शरद, शिशिर, हेमन्त, वसन्त, ग्रीष्म करने वाली आ। छमे ऋतुजोने। प्रभाव जोडन यह पोटधे तानी विशिष्टता, त्वां जतावी रहो होता। जोटेके त्वां आपता देव-अनुभव करने तिर-बने डोड पण्ण जोड ऋतुगे उज्जणट युज्जवी रहो न होता। तेने दधि, तेभने त्वांती दुवा सर्वथा अनु-दण्ण अनुवाधी तेजे। जोडाव जित्ते जजवाननी पापाने सांजणी शर्ता होता। समवसरणया सिंहासन उपर निरुज्जव अत्रपान अहावीरेना देह के नि सुख, यद् विपुल करने भविजोना समुज्जोशी पण्ण पण्णरे अन्तिवधि। देभातो होता। देहमां आ समवसरणुनी शोभा स्वर्भन्ती शोभाने पण्ण टाअर मारे तेवी अनपम करने अक्खन् होती। (सू० १०३)

छाया—तस्मिन् तादृशो समवसरणे समासीनस्य भगवतो दर्शनार्थं धर्मदेशना श्रवणार्थं च भवनपति
 व्यन्तर ज्योतिषिक विमानवासिनो देवाश्च देव्यश्च निज निज परिवारपरिवृताः सर्वद्वयौ सर्वधुत्या, प्रभया
 छायाया अर्चिषा दिव्येन तेजसा दिव्यया लेश्य या दशदिशो उद्योतयन्तः प्रभासयन्तः समावयान्ति, तान् दृष्ट्वा यज्ञ-
 पाटस्थिता यज्ञयाजिनः सर्वे ब्राह्मणाः परस्परमेवमाख्यान्ति, एवं भाषन्ते एवं प्रज्ञापयन्ति, एवं प्ररूपयन्ति
 भो भो लोकाः! पश्यन्तु यज्ञप्रभाव, येन इमे देवाश्च देव्यश्च यज्ञदर्शनार्थं हविष्यग्रहणार्थं च निज निज विमानै
 निज निज सर्वैरुद्धयादिकैः साक्षात् समागच्छन्ति । तत्र स्थिता लोका आश्चर्यकमनुभूय एवमवादिषुः यद् इमे

मूलका अर्थ—‘तंसि तारिमंगंसि’ इत्यादि । उस दिव्य समवसरण में विराजमान भगवान् के दर्शन के
 लिये तथा धर्मदेशना श्रवण करने के लिए भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक और विमानवासी देव और देवियाँ
 झुंड के झुंड अपने-अपने परिवार के साथ समस्त ऋद्धि से सर्व द्युति से सबप्रकार के विमानों की दीप्तियाँ से
 दिव्य शोभाओं से शरीर पर धारण किये हुवे सर्व प्रकार के आभूषणों के तेज की ज्वालाओं से शरीर
 समर्ववि दिव्य प्रभाओं से दिव्यशरीर की कांतियों से दशों दिशाओं को उद्योतित करते हुवे विशेषरूपसे प्रकाश
 युक्त होकर आते हैं । उन्हें देख कर यज्ञ स्थल में स्थित यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले सभी ब्राह्मण आपस में
 इस प्रकार कहने लगे, इस प्रकार भाषण करने लगे, इस प्रकार प्रज्ञापन करने लगे और इस प्रकार प्ररूपणा
 करने लगे—हे महाब्रह्मो ! देखो यज्ञ के प्रभाव को ! यह देव और देवियाँ यज्ञ को देखने के लिए और
 हविय को ग्रहण करने के लिए अपने-अपने विमानों और अपनी-अपनी ऋद्धि के साथ साक्षात् आ रहे हैं !

भूषणे। अर्थ—‘तंसितारिमंगंसि’ इत्यादि आ दिव्य समवसरणुभां भीरजता लगवानना दर्शन भाटे तथा तेभने।
 धर्मोपदेश सांलग्गवा सारं भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक अपने विमानवासी देवो अने देवीको। पोत—पोताना परिवार
 साथे त्या आवी रहा हुता। तेको पोतानी साथे पोतानी रिद्धि-समृद्धिशी सर्व प्रकाशना द्युतिशी, तमाम प्रकाशना
 विमानोनी दीप्तीयोशी, दिव्य शोभाकोशी, शरीर पर धारण करेव तमाम प्रकाशना आभूषणो-धरेणोकोना तेजनी
 नवादाकोशी, शरीरनी दिव्य प्रभाकोशी, दिव्य शरीरनी कातीकोशी उद्योतित करता थका अने विशेषरूपशी प्रकाशयुक्त
 थका आवी रहा हुता। आवी रीते, देवी अदकाशेशी अदकृत, अने आभूषणोशी विभक्ति अेवा देव-देवीकोने आवतां
 नेछ, यज्ञ करवाणा सारं ग्राहणो, अदरेअदर आ प्रभाणो कडेवा ला-या, आ प्रकांरे निवेद करवा लाया।
 आ प्रभाणो साक्षी पुरवा लाया। आ प्रकांरे सलाषणो करवा लायां छे, ‘अछा यज्ञार्थी’को ! यज्ञने प्रभाव तो
 रको ! सर्व देव-देवीको। आ यज्ञने नेवा भाटे तेने प्रसाह अने हविष लेवा भाटे सर्व परिवार अने ऋद्धि

जना सुखभागिनः सुखिन जाताः, माहृढाद्रिकाः=माहृह-यर्षा-शरदेभ्यन्तवसन्तर्ग्रीष्माः पटु=पटुसंलक्षका क्रुद्धः प्रादुरभन्त=प्रादुर्युक्ता । अथ समयसरणे स्वर्णसिंहासनासीनस्य श्रीमहावीरस्त्वामिनः प्रभा वर्षयति-चन्द्रसूर्ये विद्युत्कोटिमणिगणेभ्योऽपि-कोटिसंस्थेभ्यश्चन्द्रेभ्य ग्रूर्येभ्यः तापसीभ्यो विद्युद्भ्यो मणिसमूहेभ्यश्चापि-अनन्ता-नन्दकोटियुजिता जिनप्रभा=श्रीमहावीरभिनस्य प्रभा प्रभासत=प्रामासिवा, सत्र-समयसरणभूमौ स्वर्गोत्तोलपि=स्वर्गोत्तोलपि अन्तर्गुणितान्=अनन्तगुणैरधिकं सुप्रभा=परमशोभा आसीत् ॥घृ०१०३॥

युष्म-तंसि वारिसगसि समोसरयसि समासीणस्स भगवन्तो दंसज्ज वम्मदेसणा सबन्ध व भवज्जवइ वासमतर् गोसिय विमाणवासिगो ववा य देवीभो य निय निय परिवार वसिड्ढा सम्भट्टिए सम्भट्टिए पम्माए छायाए अभीए दिव्वेणं चेएणं दिक्खए छेमाए दसदिसो उज्जोबेयणा पम्मासेयणा समावजति । ते दहट्ठमं जम्माहट्टिया जन्ननाणो सव्वे माहणा परोपरं एवमाइवसंति एवं माससि एवं णव्वेति एवं पक्खवेति एवं पक्खवेति-भो भो सोपा ! पाल्लु जल्लणमाव्वं, जे नं इमे ववा य देवीभा य जल्लदंसण्डं इविससगणह व निय निय विमाणेहि निय निय इहरीदिएहि सक्कं समावजति । तत्पट्टिया कोपा अक्खेरय मणुअविय एवं वइसु-ज इमे माहणा पम्मा कयकिपा कयपुण्या कयल्लतमा य जेतं जक्खवाहे ववा य देवीभो य सक्कं समावजति ॥घृ०१०४॥

विर्यं वृत्त उपसर्गो) सब ज्ञान्त हो गये थे । इस प्रकार की ज्ञान्ति होने से सभी लोग सुखी हो गये थे । माहृह-चार्ण, शरद्, शिशिर रेमन्त वसन्त और ग्रीष्म-यह छह ऋतुएँ प्रकट हो गई थी ।

ममसखल में स्वर्ण के सिंहासन पर शिखरमान श्रीमहावीर स्वामी की प्रभा का वर्णन करते हैं-कोटि वन्तों, घूर्णों, विजलियों और मणियों के तथुहों से भी अनन्तानन्तगुणों प्रभा मिन प्रभावात् महावीर की उर्व मासित हो रही थी । वह समयसखल स्वर्गोत्तोल से भी अनन्तगुणित परमशोभा से सुशोभित हो रहा था ॥घृ०१०३॥

पीपल' छपापि (आश्लिश पीपल) इत्यय दृष्टिजेभ्यः वृत्तान् कृत्वा शरद् शिशिर, रेमन्त, वसन्त, श्रीभ अने वर्षो अः एवम् अशुभेभ्यः प्रभाव जेकन्न वइ पोतये तानि विप्रिपल्ला त्वा जतावी इहो कृते जेट्ठे त्वां आक्ख देव अणुअ अने तिरं अने देइय पणु जेक अणुअ उक्कणट्ठ युक्कवी इहो न कृते तेने वणि, तेभने त्वां नी इव सपय अणु देव अणुवासी तेजे। जेहाथ बिस्से जल्लणवन्नी वण्णेने सांकाणी सक्कं कृतां सभसखण्णा सिद्धासन्त एव जिराहेव भजवान् भवावीरन्ते देह केटि सव्व अइ दिव्वु अने भविज्जोना सभूदेवो पणु वधारे भन्तिवजो। देहातो कृते। देवर्मा अथ सभसखलस्वर्गोत्तोल शोभा स्वर्गोत्तोल शोभा अने तेषां अणुअ अने (घृ० १०३)

छाया—तस्मिन् तादृशो समवसरणे समासीनस्य भगवतो दर्शनार्थं धर्मदेशना श्रवणार्थं च भवनपति
व्यन्तर ज्योतिषिक विमानवासिनो देवाश्च देव्यश्च निज निज परिवारपरिवृताः सर्वद्वयां सर्वधुत्या, प्रभया
छायया अर्चिपा दिव्येन तेजसा दिव्यया लेश्य या दशदिशो उद्योतयन्तः प्रभासयन्तः समावयान्ति, तान् दृष्ट्वा यज्ञ-
पाटस्थिता यज्ञयाजिनः सर्वे ब्राह्मणाः परस्परमेवमाख्यान्ति, एवं भाषन्ते एवं प्रज्ञापयन्ति, एवं प्ररूपयन्ति
भो भो लोकाः ! पश्यन्तु यज्ञप्रभावा, येन इमे देवाश्च देव्यश्च यज्ञदर्शनार्थं हविष्यग्रहणार्थं च निज निज विमाने
निज निज सर्वकुट्टयादिकैः साक्षात् समागच्छन्ति । तत्र स्थिता लोका आश्चर्यकमनुभूय एवमत्रादिपुः यद् इमे

मूलका अर्थ—‘तंसि तारिमांसि’ इत्यादि । उस दिव्य समवसरण में विराजमान भगवान् के दर्शन के
लिये तथा धर्मदेशना श्रवण करने के लिए भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक और विमानवासी देव और देवियाँ
झुंड के झुंड अपने-अपने परिवार के साथ समस्त ऋद्धि से सर्व धुति से सब प्रकार के विमानों की दीप्तियाँ से
दिव्य शोभाओं से शरीर पर धारण किये हुवे सर्व प्रकार के आभूषणों के तेज की ज्वालाओं से शरीर
सम्बन्धि दिव्य प्रभाओं से दिव्यशरीर की कांतीयों से दशों दिशाओं को उद्योतित करते हुवे विशेषरूपसे प्रकाश
युक्त होकर आते हैं । उन्हें देख कर यज्ञ स्थल में स्थित यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले सभी ब्राह्मण आपस में
इस प्रकार कहने लगे, इस प्रकार भाषण करने लगे, इस प्रकार प्रज्ञापन करने लगे और इस प्रकार प्ररूपणा
करने लगे—हे महाबुभुक्षो ! देखो यज्ञ के प्रभाव को ! यह देव और देवियाँ यज्ञ को देखने के लिए और
हविष्य को ग्रहण करने के लिए अपने-अपने विमानों और अपनी-अपनी ऋद्धि के साथ साक्षात् आ रहे हैं !

भूगर्भे अर्थ—‘तंसितारिसर्गंसि’ इत्यादि आ दिव्य समवसरणभा गीराजता लगवानना दर्शन साटे तथा तेभने।
धर्मोपदेश सांभाजवा सारु भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक अने विमानवासी देवा अने देवीओ। पोत-पोताना परिवार
साथे त्या आवी रह्या छुता तेओ। पोतानी साथे पोतानी रिद्धि-समृद्धिथी सर्व प्रजारना धुतिथी, तभाम प्रजारना
विमाने। नी हीन्तीयेथी, दिव्य शोभाओथी, शरीर पर धारण कुरेद तभाम प्रजारना आभूषणो-धरेणुओ। तेजनी
ज्वालाओथी, शरीरनी दिव्य प्रकाओथी, दिव्य शरीरनी कांतीओथी उद्योतित करता थका अने विशेषरूपथी प्रकाशयुक्त
थका आवी रह्या छुता। आवी रीते, देवी अलकाओथी अलंकृत, अने आभूषणोथी विभूषित ओवा देव-देवीओने आवतां
जेध, यस करवावाणा सर्वग्राहणो, अर्हदेअर्हद आ प्रभाणो छुहेवा दा-था; आ प्रकारे निवेद करवा दाओ।
आ प्रभाणो साक्षी पुरवा दाओ। आ प्रकारे सलाणो करवा दाओ। के, “अहे। यज्ञार्थीओ ! यज्ञने। प्रभाव तो
जुओ। ! सर्व देव-देवीओ। आ यज्ञने ओवा साटे तेने। प्रसाह अने उविष देवा साटे सर्व परिवार अने ऋद्धि

પ્રાપ્તગા પત્ન્યા કૃતકૃત્યાઃ કૃતપુણ્યાઃ કૃતપક્ષગાથ, ચેર્ષાં યજ્ઞપાટે દેવાથ દેવ્યથ સાસાત્ સમાવયન્તિ ॥મ્૦૧૦૪॥

ટીકા—‘તસિ તારિસગલિ રત્નાદિ । તસ્મિન્ તારાદે’=અભૌકિકે સમસમરણે સમાસીનસ્ય=ઉપવિષ્ટસ્ય મ્માત ધીમશ્ચીરસ્વામિનઃ, દર્શનાર્થે=દર્શનાય ધર્મદર્શનામર્ણાર્થ ચ=ધર્મોપદેશમર્ણાય ચ મરનપતિ=અન્ટર-ર્યોતિપિક-વિમાનશાસિનો દેવાઃ દેવપથ નિઝ નિઝ પરિચારપરિહતાઃ સર્વશ્રદ્ધ્યા=દેવોષિષ્યા વિમાનપરિવારાશ્ચ સર્વશ્રદ્ધ્યા સર્વપુણ્યા=સર્વશ્રદ્ધાન્યા દિવ્યપ્રમથા=વિમાનશીપ્યા દિવ્યછાયાયા=દિવ્યપદ્મામયા શર્ષિવા=વિન્યશ્ચીરસ્થ રનાદિકેનાગ્રયયા વિગ્દેન વેગસા=શ્ચીરસભ્યશિ રોષિણ-પ્રમાણેષ ચા દિવ્યયા હેશયા=દિવ્યશ્ચીરશાસ્ત્યા વજ્જ રિશા ડયાતપન્તાઃ=સર્વદિગ્ધી પ્રગ્રાશ્ચરણેન ડયોતયન્ત પ્રમાસયન્તઃ=પ્રકાશયન્ત સમાવયન્તિ-સમાયાન્તિ, પ્રજ્ઞસમીપે આગચ્છન્વીત્સર્યઃ શાન્ સમાગચ્છન્ત સર્પારિચારાન્-વેચાન્ શ્દ્યા યજ્ઞપાટસ્વિતાઃ-યજ્ઞસ્યાને સ્વિતા યજ્ઞયામિનઃ=

વર્ષા જો લોગ ડયસ્વિત થ, ચ યા પ્રામય દેવ કર જોલે-પદ્મામયા વન્ત્ય હે, પુણ્યચાર હે જોર સુભક્ષણ હે જિનકે યદ્દેશ્યત મેં સાસાત્ દેર્ષો જોર દેર્ષિયોં કા આગમન શ રશા હે ॥મ્૦૧૦૪॥

ટીકા કા અપ-‘તસ પૂર્વોક અભૌકિક રત્ના સે પુત્ક સમસરણ મેં વિરામમાન ધીમશ્ચીર સ્વામી કે દર્શનાર્થ જોર ધર્મોપદેશ કો સુનેને કે અર્થ મરનપતિ, અન્ટર, અ્યોતિષ્ઠ તથા વૈમાનિક દેવ જોર દેર્ષિયોં અનને-અપને પરિચાર સરિત તથા આને-મરને વૈમચ કે સાય આ રહે દે । ઉર્ને સપરિચાર આતે વેલ યજ્ઞ

શાથે આરી રશા છે !’ ને ને લોક અમુદન ત્માં ઉપસ્થિત થયેલ હતા તે આ સાક્ષી અ અર્થપુગ્મ થઈ બોલવા લાગ્યા હે આ પ્રકારે, ધનવાદને પાર છે । આ યજ્ઞાર્થોંજો પુરુષધાત્રી અને મુક્ષલોવાળા છે । કે નેના મનમાં આશાત દેવ-દેર્ષીના આવી રશા છે । (મ્૦-૧૦૪)

વિશેષ—અપવશસ્ત્રી રત્ના પુદ્દ દેવોંજે બનાવી હતી અને તે રત્ના શરવામાં દેવોંજે અત્તવ જાહેમત ઘારી હતી, શરણ હે હન્દ્રી તથા અન્ન અમકિતી દેવો તીર્થકરના યજ્ઞાર્થે અમ સ્વરૂપને આપવાળા હતા તેજા નેજોને બસ્તિભાવ તેમના પર અધ્યારણે વસી રશો હતો અને હીષિ આત્મસ્વરૂપની વાણી અંબજના તેજો ત્વશ્ચી આવી રશા હતા પરંતુ સમય અને અજોને કાલ ઉઘાવી લોકોને શબ્દ શરવાળા પશુ આ કુનિયામાં પણ પડયા છે આ યજ્ઞાર્થોંજોની મનોક અના ભૌતિક પદાર્થોના સંયોજ યેળવવા પુરતો અ હતા તેમાં દેર્ષા નવીનતા તેા હતી અ નહિ । પરંતુ ક-વની લોકો આશ નિક મુજોને અ ઉછે છે શરણે આ મુખ્યામાલ્યથી પદ્મ એવુ કેવુ અતીન્દ્રિય મુખ અવશભામાં વસી રહેલ છે તે તે તે જિલ શાંજોને બાન પશુ હોત નથી તેમજ તે બાન શરણવા નાગા નિમ્મજ દોષ છે । આથી મજાર્થોંજો વેતની અહ્યા જનારના ઉપસ્થિત થયેલા હો જોને, આશ્ચિન્દ્રિય મ

[illegible]

हस्त रेखादिरूपलक्षणवन्तः ॥ सु० १०४ ॥

यथास्यात्तथा समावयन्ति=समायान्ति ॥सू०१०४॥

ते जन्मजादो माहणा निक्कप्पा
आगासंसि देवेहि धुइ-तं जहा-

आगासंसि देवेहि धुटं-तं जहा—
के वाडे में उपस्थित यज्ञकर्म करनेवाले सभी ब्राह्मण परस्पर इस प्रकार सामान्यरूप से कहने लगे, भाव प्रकट
कारके कहने लगे, विशेषरूप से कहने लगे, और हेतु तथा दृष्टान्त दे-देकर कहने लगे—‘महानुभावो !
यज्ञ के प्रभाव को तो देखो । यह देव और देवियाँ यज्ञ के दर्शन के लिए और हविष्य (अग्नि में होमे हुए
खीर घृत आदि पदार्थों) को स्वीकार करने के लिए अपने-अपने विमानों से और अपने-अपने वैभवं के
साथ प्रत्यक्ष आ रहे हैं ।’ यज्ञ के वाडे में उपस्थित यज्ञदर्शक लोग यह अचरज देखकर विस्मित रह गये
और कहने लगे—यह याज्ञिय ब्राह्मण धन्य है—प्रशंसनीय हैं, कृतकृत्य हैं, कृतपुण्य हैं और मुलक्षणों से सम्पन्न हैं ।

કરી રહ્યા હતા કે, દેવેનું જૂથ આપણા યજ્ઞના હવનહોમ નેવા માટે તેમજ ખીર ઘૃત આદિ પદાર્થોનો પ્રસાદ લેવા સાદ પાત પોત પોતાના વિમાનો અને વૈભવ સાથે આવી રહ્યું છે. આ વળતે ત્યા હાજર રહેલી જનસેદનીઓ દેવેનું આગમન નેઇ આશ્ચર્ય અને વિસ્મય યામીને કહેવા લાગ્યા કે આ યાજ્ઞિક ગ્રાહણોને ધન્ય છે, તેઓ પ્રથમ સનીય છે કૃતકૃત્ય છે. કૃત પુણ્ય છે અને સલક્ષ્ણોથી સપન્ન છે. કે જેથી તેમનાં યજ્ઞસ્થળે દેવદેવીઓ પ્રત્યક્ષ હાજર થાય છે. (સૃ-૧૦૫)

“नो मो फमाय मयङ्गय मएए एण, आमाय निब्बुह पुँरिपइ सस्यवाहं।

ओ षं अययययिओ सिरिन्दमाणो, लोमोवयारकरणे मवओ भिणिदो ॥१॥

परं तोआ लभमिषं कससिय पुब्बं ताव गोयमगोत्ता ईदुय् ई नार्म माणो रुहो कुदो आसुरत्तो मिसिमिते माणो एवं ययासी-अम्ममि चित्तमाणे अओ को इमो पासडो समायिययिण्डो, जो अपाणं सन्वणुं सव्व श्रित्तिं कूहेइ, न सज्जो सो ? दीसइ, इमो को वि घुत्तो कलढमाळिओ इदमाळिओ । अणेण सव्वणुत्तस आठवर्ं इतिसिय इदनात्तप्ययोगेण देवायि वचिया, ज इमे देवा जअवाड संमोवंग वेयणुं मव परिहाय तस्य मच्छंति । एएसि इदि विपज्जामो आओ, जे ण इमे वित्त्यमव चय गोण्यजममिन्नसमाणा वायसाविव, मव चय यल्लममिन्नसमाणा मंदूगाविव, वंदण चय दुगंभमभिलसमाणा मस्सियाविव, सयारं चय बन्धुमभिलसमाणा तडाविव, सुज्जणसं चय अंधयारमभिलसमाणा उच्चुगाविव जअवाहं चय वुत्तुसाम्भंति । सबं जारितो देवो तारिस्सवेव तस्स सेवणा । नो ण इमे देवा, देवामासा एव । ममरा सयार मंजरीए गुंजेलि, वायसा निवत्तम्मि । अत्थु, तइ वि अं तस्स सव्वणुत्ताव्व वूरिस्सामि । इणिओ सीहेण, तिमिरं मयत्तरेण, सक्को वणिणा, विधीयिया सयुणो, नागो मक्खेण, पन्नओ पज्जेव, मेसो ईजरेण सदि कुम्भिट किं सखे । । एवं चेव एमो इदजाव्विओ ममतिए लब्धंयि चिद्धिउं नो सखे । अहुणेइ अं तयविद गमिय त धुण पा मियेमि । सुज्जंतिए वज्जोअस्सा वरागस्स का गल्लणा । अं नो कस्समिं साज्जं पठिमिस्सामि किं अंधयारप्यमासे मुज्जो अन्न पठिरवइ ? भओ सित्त्यमेव गच्छामि । एवं पठिचिंतिय पोत्तयइत्थो कम्मंडलु वदन्नात्तप्यम्भीहिं पीयसेहिं जणोववीयियुसिय ऊंरोह-हे सरस्सई क्खामए । हे वाविसयलच्छीकेयव । हे वाइयुइकवाडयत्ततालग । हे वाइरात्तयिआरणपवाण । वाइ स्सियमिधुल्लगीगरावरी ! वासीसा क्खय ! वाइजियविसाय ! वाइदिदूयाल ! वाइसिरुत्तालकाल ! वाइकयमीकांडलठणकियाण ! वाइठमत्थोमनिरसणपव्वमपेड ! वाइ गोहूयपेत्तपयात्तयचका ! वाइयामपठमुंगार ! वाइअधुगदिनमणी ! वाइअधुम्मल्लवाराण ! वाइअधवेववर् ! वाइमात्तणनरेत्त ! वाइकस्संसारि ! वाइश्रियगिगारि ! वाइअरनरेत्तल ! वाइअधुमल्लमणी ! वाइरिययसल्लुवर ! वाइसल्लपज्जसंतदीयण ! वाइअधुवूढामणि ! पंडिय भिरोमणी ! विभियाणेगवाइय ! सत्तसरस्सईसुणसाय ! सूरीक्यावरगव्वुयेत्त ! इवाहनंत्तं गार्थेहिं पवसय सीसेहिं पण्डुओ जयमयसेरेहिं सविज्जमाणो पण्डुसमीये समणुपणो । तस्य गत्तण सो समोत्तरण समिद्धिं पण्डुयेय च निक्कोरयं किमपेयि वगिययिचो संताओ ॥अ० १०५॥

छाया—एव परस्परं कथयत्सु सत्सु अत्रान्तरे ते देवा यज्ञपाटकं त्यक्त्वाऽग्रे प्रस्थिताः । तद् दृष्ट्वा ते यज्ञयाजिनो ब्राह्मणा निष्कम्पा निस्तेजसः अवमथितवदननयनकमला दीनविवर्णवदनाः संजाताः । अत्रान्तरे अन्तरा आकाशे देवैर्घृष्ट, तद्यथा—

“भो भो प्रमादमवधूय भजध्वमेन,

मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ।

यः खलु जगत्त्रयहितः श्री नर्द्धमानो,—

लोकोपकारकरौक्त्रतो जिनेन्द्रः ॥१॥”

एवं श्रुत्वा क्षणमात्रमुच्छ्वस्य पूर्वं तावद् गौतमगोत्रइन्द्रभूतिर्नाम ब्राह्मणो रुष्टः क्रुद्धः आश्रुक्तो मिय-
मूल का अर्थ—‘एवं परोपरं’ इत्यादि । वे परस्पर इस प्रकार कह ही रहे थे । कि इस बीच देव यज्ञ-
स्थान को छोड़ कर आगे घबरे गये । यह देखकर याज्ञिक ब्राह्मण स्तब्ध रह गये, निस्तेज रह गये, उनके
नेत्र और मुख रूपी कमल मुरझा गये, चेहरे पर दैन्य और फीकापन आ गया । इसी समय आकाश में
देवोंने घोषणा की—

“तज प्रमाद आकर भजलो इनको हे भाई ।

हैं मुक्ति-पुरी के सार्थवाह ये अति सुखदाई ।

श्रीवर्धमान जिन अखिल लोक के हैं हितकारी,

सकल जीव उपकार-सदा शुभव्रत के धारी ” ॥१॥

यह सुनकर क्षणमात्र ठंडी सांस लेकर सब से पहले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण रुष्ट हुए,

भूणेतो अर्थ—‘एवं परोपरं’ इत्यादि आ यज्ञार्थीको परस्पर को प्रभाषे जोलता हुता के अटेलाभा हवे।
यसस्थान जोणगीने आगण आल्या गया आभ थवाथी तेओ स्तब्ध बानी गया, निस्तेज थई गया. तेओना मुअ
करम ई गया, अने चहरेा उपर हीनता अने दिशाय बख्खावा लागी. आ वभते अ तरिक्षभा द्वेधी घोषणा अने गेभी
अवाने थवा लाया, तेम ब हिन्य पोकारो सलणावा भांडया के—‘हे लाहयो ! तमे प्रमाद तल आ व्यक्रितने
लग्वा भाडो, तेजुं लग्न मुज्जिपुरीना सधवारा समान छे. आ लग्न अत्यंत सुखदाई अने कइयाबुझारी छे आ
वर्धमान ‘जिन’ अघिब्र लोकभां हितकारी अने सकल लोवोना उपधारी छे, तेमज तेओ शुल व्रतधारी पणु छे. ”

योताना यज्ञनी प्रशंशाने भइले भइवीरनी प्रसथा सांलणी तेओनी गज्जगज कुइती छातीनां पाटीयां जेसवा

“नो मो फमाय मवइय मपर पर्णं, आगध निव्युइ वुरिपइ सत्यवाहं ।
नो न जयवययिओ सिरिक्दमाणो, लोमोवयारकरणे गवयो भियिहो ॥१॥

एवं सोऽत्रा सणमिष उस्तसिय पुब्बं ताव गोयमगोयो इंदुर्यं नामं माइयो खो इंदो भासुक्को भिसिमिसे
माणो एवं वयासी-अग्गमि विज्जमाणे अओ को इमो पासवो समासियथिंढो, जो अण्णं सक्कण्णं सक्क
हरिसि क्कोइ, न लक्खइ सो ! दीसइ, इमो को वि घुओ क्कवज्जालिओ इइमासिओ । अणेण सम्भण्णुवत्स
आइवं इरिसिय इइमासप्ययोगेण देवावि वयिणा, न इमे देवा जअवाड सगोसग वेयण्णु मंच परिहाय तत्थ
गच्छंति । एएसि बुद्धि विपज्जाओ जाओ, जे न इमे तित्यज्ज वइय गोणपअक्कमभिलसमाणा वायसाविब,
अं वइय पक्कमभिलसमाणा मेइरगाविब, वंदण चइय दुग्गंषमभिलसमाणा मविसयाविब, सरयारं
चइय वन्दुरामभिलसमाणा उइविब, सुज्जपगासं चइय अवयारमभिलसमाणा उक्काविब जअवाडं
चइय घुत्तमुग्गच्छंति । सव जारिसो देवो तारिसावेव तस्स सेवणा ! नो न इमे देवा, देवामासा
एव । ममरा सइयार मंजरीए गुंजंति, वायसा निवत्तस्मि । अत्थु, एर वि अइं तस्स सव्वण्णुसगब्बं
चूरिस्तामि । इरियो सीइय, तिभिदं भक्कलेण, सक्कओ वयिणा, पिपीळिया समुणेण, नागो गरुडेण, पक्कओ
वज्जेण, मेसो इंदुरेण सदिं जुमिठ किं सक्कइ ! । एइं चेव एसो इइमालिओ ममंतिए सणपि चिद्धिउं नो
सक्कइ । अइणेइ अइं नयतिइ गमिय त पुर पए जिणेमि । सुज्जंतिए लक्खोअस्स वरागत्स का गयणा ।
मां नो त्त्तपि सारजं पडिक्कित्तामि किं अंभयाप्यमासे सुज्जो अन्न पडिक्कइ ? अओ सिम्यमेव गच्छामि ।
एइं परिचिंनिय पोत्थपइरयो क्कनड्डु दइमासज्जणीहिं पीयरहेहिं जण्णोववीयविपुसिय कंषरोइ-हे सरत्सई
कंठमण ! हे वाइमियक्कळीकेण ! हे वाइइइक्कवाइयतणताम ! हे वाइवाणविभारणपंवाण ! नाइ
स्मरियमिपुजुलुगीगतत्थी ! वाइसीइा इवय ! वाइमियविसारय ! वाइविदपूताळ ! वाइसिरकराळकाल !
वाइस्समीकोडलंदणक्किाळ ! वाइतमत्थोमनिरसणपवंडमण्ड ! वाइ गोइमपेसणपसाणचका ! वाइयामयड्डुगार !
वाइउक्कगदिनमणी ! वाइक्कुम्भूअण्णाराण ! वाइवइक्कदेवई ! वाइमासणनरेस ! वाइकंसईसारि ! वाइइणिमिगारि !
वाइअरअरंइत्तन ! वाइजुइमइमणी ! वाइरिययसइवइ ! वाइससइयज्जालदीसग ! वाइक्कचूडामपि ! पंडिय
भिरोमणी ! चित्तिणणेणाइवाइय ! सइसत्सईपुण्णसाय ! इरीकयावराळ्ळुमेस ! इवाइमसं गार्यतेहिं पंचसय
मीमहिं पतिवुडो जयअयसेरेहिं सरिअमाओ पक्कसमीचे समणुपणो । तत्थ गत्तण सेा समोसण सभिमिदिं पइुतेय
व विनोइयं किमंअमि वयिणपिचो सेमाओ ॥इ०१०५॥

छाया—एव परस्परं कथयन्तु सत्सु अत्रान्तरे ते देवा यज्ञपाटकं त्यक्त्वाऽग्रे प्रस्थिताः । तद् दृष्ट्वा ते यज्ञयाजिनो ब्राह्मणा निष्कम्पा निस्तेजसः अत्रमथितवदननयनकमला दीनविवर्णवदनाः संजाताः । अत्रान्तरे अन्तरा आकाशे देवैर्वृष्ट, तदथा—

“भो भो प्रमादमवधूय भजध्वमेन,

मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्यवाहम् ।

यः खलु जगत्त्रयहितः श्री नर्द्धमानो,—

लोकोपकारकरणैकव्रतो जिनेन्द्रः ॥१॥”

एवं श्रुत्वा क्षणमात्रमुच्छ्वस्य पूर्वं तावद् गौतमगोत्रइन्द्रभूतिर्नाम ब्राह्मणो रष्टः क्रुद्धः आशुरक्तो मिस-
मूल का अर्थ—‘एवं परोपरं’ इत्यादि । वे परस्पर इस प्रकार कह ही रहे थे । कि इस बीच देव यज्ञ-
स्थान को छोड़ कर आगे चले गये । यह देखकर याज्ञिक ब्राह्मण स्तब्ध रह गये, निस्तेज रह गये, उनके
नेत्र और मुख रूपी कमल सुरक्षा गये, चेहरे पर दैन्य और फीकापन आ गया । इसी समय आकाश में
देवीने घोषणा की—

“तज प्रमाद आकर भजलो इनको हे भाई ।

हैं मुक्ति-पुरी के सार्यवाह ये अति सुखदाई ।

श्रीवर्धमान जिन अखिल लोक के हैं हितकारी,

सकल जीव उपकार-सदा शुभव्रत के धारी ” ॥१॥

यह सुनकर क्षणमात्र ठंडी सास लेकर सब से पहले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण रष्ट हुए,

भूजोना अर्थ—‘एवं परोपरं’ इत्यादि आ यशार्थीओ परस्पर ओ प्रभावे जोलता हुता के ओटलाभां हवे।
यशस्थान जोण गीने आगण व्याख्या गया आभ थवाथी तेओ स्तब्ध भनी गया, निस्तेज थई गया. तेओना मुअ
करम छ गया, अने यहरेर उपर हीनता अने क्षिप्रश जथुआ लागी. आ वभते अ तरिक्षमा हैवी घोषणा अने गेणी
अवाले थवा दाव्या, तेम न हिन्य पोआरे सलगावा भांडया के—‘हे लाइओ ! तसे प्रमाद तल आ व्यङ्गितने
लगवा भाडे, तेनुं बजन मुक्तिपुरीना सथवारा समान छि. आ बजन अत्यंत सुअर्हाई अने उड्यालुआरी छि आ
वर्धमान ‘जिन’ अणित्र लोकभां हितकारी अने सकल जेवोना उपकारी छि, तेमन तेओ शुल व्रतधारी पथु छि.”

येताना यसनी प्रसंशाने भइले भडावीरनी प्रसंश सांभली तेओनी गजगज कुलती छातीनां पाटीयां जेसवा

મિસાગમ્માન પરમપ્રાદીન્ મયિ વિદ્યમાનેઽન્યઃ કાઙ્યં વાપ્ણ સમાભિવશિષ્ઠઃ, ય આત્માનેં સર્વં સર્વેર્થિનેં
 કૃપયતિ, ન સન્નતે સ ? હશ્યતેઽયંકાઙિ ધૂર્ણઃ કષ્ટજાલિકાપેન્દ્રગામિકાઃ । ઇમેન સર્વેશ્વરસ્યાહમ્વરં
 દર્શયિત્વા ઇન્દ્રગામયયોગેણ દેવા અપિ યજિતા, યત્ ઇમે દેવા યજ્ઞાટં સાદ્રોપાગ્નયેદહ માં ષ પરિશાય
 તથ ગચ્છન્તિ । પુત્રેષાં બુદ્ધિઃ ત્રિપર્યાસો પ્રાતઃ, યેન ઇમે તીર્થંજલ સ્થવત્વા ગોવ્યવજસમમિસ્રયન્તો
 વાપસા ઇવ, જલ ત્યજ્ઞથા સ્થલમમિલયન્તો મશ્કુકાઇવ, વન્દન્ ત્યક્ત્વા દુર્ગધમમિલપત્યો મસિકા
 ઇવ સપ્તકારં સ્થવત્વા વર્ષરમમિલયન્ત ઝટ્ટા ઇવ, સૂર્યપક્ષાંશ્ચ સ્થવત્વાઽન્યકારમમિલપન્ત ટલુકા ઇવ,
 યજ્ઞપાતં ત્યક્ત્વા ધૂર્ણપુષ્પગચ્છન્તિ । સત્યમ્, યાદશ્ચો દેવાસ્તાદશા એવ તસ્ય સેવકાઃ । નો સન્નિમે દેવા,
 દેવામાસા એવ । ઇમરાઃ સપ્તકારમશ્રયો ગુહન્તિ વાપસા નિમ્વતરૌ । અસ્તુ, તથાઽપ્યહ તસ્ય સર્વેશ્વરત્વગર્વં

કુદ્વ દુર, જાલ હો ઝટે ઓર મિસમિસાતે દુર દસ પકાર ગોછે—‘મેરે મીઝૂલ રહતે, દુસરા કૌન હૈ યાર
 વાલ્કડ ઓર તિલકાવાદી, નો મપને આપ કો સર્વજ્ઞ ઓર સર્વેશ્વી કરતા હૈ ? પ્રતીત હોતા હૈ, યાર
 કોઈ પૂર્વેકપટનામ્ રત્નેવાલા ઇન્દ્રગામિયા હૈ । ઇસને સર્વજ્ઞતા કા આઢમ્બર વિલાકર, ઇન્દ્રગાલ કા
 મયોગ કરકે, દેવોં કો મી ઝગ ક્રિયા હૈ । ફસી સે યે વેષ યજ્ઞપાદે કો ઓર સંગોપાંગ વેદોં કે વેષા
 મુશ્કો ઝોઠ કર વર્ષા ના રહે હૈ । ફનકા સિર ફિર મયા હૈ, ફસી સે યે તોર્યે કે જલકો ત્યાગ કર
 ગોવ્પદ કે જલકો અમિલપા કરનેવાલ કૌઓં કી તરહ, જાલ કો ત્યાગ કર ઘલ કી કામના કરનેવાલે
 મેશ્કોં કી તરહ, વંદન કો ત્યાગ કર મન્ન કી ફચ્છા કરનેવાલી મલિસ્યોં કી તરહ, આમ કો ત્યાગ કર
 શૂલ કો અમિલપા કરમેવાલે કટોં કી તરહ, ઓર સૂર્ય કે આસોફ કો ત્યાગ કર અંધકાર કી
 અમિલપા કરનેવાલે ડલ્કુઓં કી તરહ, યજ્ઞ કી ધૂમિકો ત્યાગ કર પૂર્વે કે વાસ જા રહા હૈ !

બાબો ! ‘આસ’ હૈ ધાના બાલ્યો । તેઓમાંની પ્રથમ ગોતમ યોગી ઇન્દ્રજિત નામનો પ્રથમ્ જોશામ્માન કર્મ લાલપીકો । બની
 ગયો અને તે કોપવેશથી ધમપછડા કરતો યોશાના બાલ્યો હૈ—‘મારો કયાનિમા એવો તે બીજો દેવ છે હે જે
 સર્વ અને સર્વેશ્વી માની રહ્યો છે ? એમ કાલે છે કે અરુર કોઈ પાપથી અને વિત કાલાલી તેમજ પૂન અને કપટ
 બની ઇન્દ્રગામ રચી રહ્યો યોગ । તે તો સવસને આસ નર કરી ઇન્દ્રગામનો પ્રયોગ કરી સર્વ દેવ-દેવીઓને પશુ
 માની રહ્યો છે । બધી દેવો વચ્ચના વામને તેમજ અગ્નિચાંચ વેદોને બલ્કુવાવાળા અને શ્વેત્વ ન્દ્રને આગળ વાલ્યા
 બાબ છે દેવેનાં માથા હૈ । ગયા છે કે તોર્યેશ્વરને છે કી ખામના પાવીની કમજા કરી રહ્યા છે । આ દેવો શુ

मितायमान एवमवादीदृष्टं मयि विद्यमानेऽन्यः क्रोड्यं पापण्डः समाश्रितवितण्डः, य आत्मानं सर्वज्ञं सर्वदर्शिनं कृषयति, न लज्जते सः१ हृदयतेऽयं क्रोडपि पूर्वः कृपटमालिकपेन्द्रनासिकः। अनेन सर्वज्ञत्वस्याहम्बरं दर्शयित्वा इन्द्रमात्मयोगेण देवा अपि मञ्जिताः, यत् इमे देवा यज्ञपाठं साहोयज्ञवेदम् मां च परिहाय सत्र गच्छन्ति। एतेषां बुद्धिं विषयोऽसौ भावः, यन इमे तीर्थजस्य स्यक्त्या गोप्यजस्यमिलयन्तो वायसा इव, जस त्यक्त्वा स्वसममिलयन्तो मण्डूकाश्च, बन्दनं त्यक्त्वा दूर्गममिलयन्तो मक्षिका इव सहकारं त्यक्त्वा चरुं (सममिलयन्त उच्छा इव, सूर्यप्रकाशं त्यक्त्वाऽन्यकारमिलयन्त उच्छा इव, यमगन्तं त्यक्त्वा धूर्तमुपगच्छन्ति। सत्यायुः, याज्ञो देवास्तादृश एव तस्य सेवकाः। नो लस्यिमे देवाः, देवामासा एव। अमरा सहकारमञ्जरी गुह्यन्ति वायसा निम्बवरी। अस्तु, तथाऽन्यद् वस्य सर्वज्ञत्वगर्वं

कुद इए, लाल हो उठे और मिसमिसाते हुए इस प्रकार बोले—'मेरे मौजूद रहते, इसरा कौन है यह पानच और चितम्बाशही, जो अपने आप को सर्वज्ञ और सर्वश्री करता है? प्रतीत होता है, यह कोई पूर्वकण्टजाल खनेवाला इन्द्रजालिया है। उसने सर्वज्ञता का आहम्बर दिखाकर, इन्द्रजाल का प्रयोग करके, शैवों को भी उग लिया है। इसी से ये देख यज्ञपाठे को और सांगोपांग वेदों के वेचा यज्ञको जोड़ कर चर्चा जा रहे हैं। इनका सिर फिर मया है, इसी से ये तोरों के जलछो त्याग कर गोप्यद के जन्मकी अभिलाषा करनेवाले कौमों की तरह, जल को त्याग कर यज्ञ की कामना करनेवाछे मेंदछों की तरह, बँदन को त्याग कर मय की इच्छा करनेवाली यक्सियों की तरह, आम को त्याग कर शूल की अभिलाषा करनेवाछे ऊंटों की तरह, और मय के आलोक को त्याग कर भेषकार की अभिलाषा करनेवाछे उल्लूकों की तरह, यज्ञ की धूमि को त्याग कर पूर्व के पास जा रहा है।

લાગ્યા ! શ્વાસ રૂખના લાગ્યો ! તેજોમાંથી પ્રથમ ગોતમ એની ઉદ્ભૂતિ નામનો પ્રાણવ્ય ક્રોધાશ્રમાન થઈ લાલપીયો બની
 ને. અને તે ક્રોધાવેશથી ધમપળડા કરતો યોલવા લાગ્યો કે—“મારી હયાતિમાં એવો તે બીલો કેમ છે કે ને ચોતાને
 સર્વજ્ઞ અને સર્વદર્શી આની રહ્યો છે ? એમ લાગે છે કે જદર કદમ પાખડી અને વિત કાવાઈ તોમમ પૂર્વ અને કપટ-
 બની હનનજ રતી રહ્યો હોય ! તે તો સર્વજ્ઞને આડ મર કરી કન્ટ્રબળને પ્રયોગ કરી સર્વ દેવ-દેવીઓને પણ
 હની રહ્યો છે ! બધો દેવો મલના વાદ્યને તેમ જ યોગોર્નામ વેશેને બલકાવાળા અને પણ ત્વચ્છને ખાતગ બાલકા
 બધ છે દેવોનાં માણ ફરી ખર્ષા છે કે તોય જગને છેડી ખાદ્યાના પાત્રીના નાચન કરી રહ્યા છે ! આ દેવો મર

वादिशूथमलमणे ! वादिहृदयशलयवर ! वादिशलभमज्जलदीपक ! वादिचक्रचूडामणे ! पण्डितशिरोमणे ! विजितानेक-
वादिवाद ! लब्धसरस्वती सुप्रसाद ! दूरीकृतापरगर्वोन्मेष ! इत्यादियशोगायद्भिः पञ्चशतशिल्पैः परिष्ठितो जय-
वादिवाद ! लब्धसरस्वती सुप्रसाद ! दूरीकृतापरगर्वोन्मेष ! इत्यादियशोगायद्भिः पञ्चशतशिल्पैः परिष्ठितो जय-
वादिवाद ! लब्धसरस्वती सुप्रसाद ! दूरीकृतापरगर्वोन्मेष ! इत्यादियशोगायद्भिः पञ्चशतशिल्पैः परिष्ठितो जय-

जय शब्दैः शब्दायमानः प्रशुसमीपे समनुप्राप्तः । तत्र गत्वा स समप्रसरणसमृद्धिं प्रशुतेजश्च विलोक्य क्रिमेतदिति
चकितचित्संजातः ॥सू० १०५॥

टीका—‘एवं परोपर’ इत्यादि । एवम्—अनुपदमुक्तं वचनं, परस्परम्—अन्योऽन्यं, कथयत्यु=वदत्युसत्यु
अत्रान्तरे=एतस्मिन्मध्ये ते=सपरिवारा विमानमारूढाः समवतरन्तो देवाः, यज्ञपाठकं=यज्ञस्थानं त्यज्या=अतिक्रम्य

अग्रे प्रस्थिताः प्रयाताः । तद् दृष्ट्वा ते यज्ञयाजिनो=याज्ञिकाः, ब्राह्मणाः, निष्कम्पाः=सन्ध्याः, निम्तेजसः=तेजो रहिताः,

लिए देवेन्द्र ! हे वादी-शाशक नरेण ! हे वादी-रुंस-कृष्ण ! हे वादी रूपी हरिणों के सिंह । हे वादी रूपी

ज्वर के लिए ज्वराकुश । हे वादि-समूह को पराजित करनेवाले श्रेष्ठ मह ! हे वादियों के हृदय में चुमने-

वाले तीखे शल्य ! हे वादी रूपी पतंगों के लिए जलते दीपक ! वादिचक्रचूडामणि ! हे पण्डित शिरो-

मणि । हे अनेक वादियों के वाद को विजय करनेवाले ! हे सरस्वती त्वा मुमताद पानेवाले ! हे अन्य

विद्वानों के गर्व की वृद्धि को दूर कर देनेवाले ’’ इस प्रकार के यज्ञोपनिषद् के साथ इन्द्रभूति ब्राह्मण प्रशु के

पास पहुँचे । वहाँ पहुँच कर समप्रसरण की समृद्धि और प्रशु त्वा तेज देवकर वद 'यह क्या !' इस प्रकार

चकित-चित्त हो गये ॥सू० १०५॥

टीका का अर्थ—जब वे पूर्वोक्त वचन आपस में कह रहे थे, उसी बीच सगरिवार और विमानों पर

आरूढ वे आते हुए देव यज्ञभूमि को लाग कर आगे चले गये । यह देखकर वे यज्ञभूमि का भ्रम मत्त-
देवेन्द्र ! हे वादि शाशक नरेश ! हे वादि-कंस-कृष्ण ! हे वादि-हरिणों के सिंह । हे वादि रूपी तारुता नाथ भाडे

नवरांशुश औषध समान ! हे वादि अभूतने पराजित करवावाण भद्र ! हे वादिना गरीश्वरा वायवाणा नादीश्वरा शल्य ! हे

वादि रूपी पतंगों के लक्ष्म करवावाणा दीपक ! हे वादि यज्ञ-यज्ञभूमि ! हे पण्डित सिद्धेभक्ति ! हे वादि विरय

विभेता ! हे सरस्वती देवीना कृपाशील ! विद्वानोंना गर्वने तोड़ना सुख्य भवान ! ’’ आता यज्ञोपनिषद् कराने

इन्द्रभूति पोताना शिष्य मुमुक्षुवायनी आये प्रशु पाने पक्षोन्मेषे त्वां पक्षोन्मेषा अ अभवत्प्रशु अने तेजसय

वशेन नष्ट तेजो तथा चकित चित्त गनी गया. (सू० १०५)

विशेषार्थ—न्याये ब्राह्मणोंके लेशु कं देवे तो यज्ञभूमिने यज्ञाग्निने यज्ञाग्नी तेरी पत्र आग्रह गयी गया छे, त्वादे तेजो

निराश यह गया. तेभनी सुगती कान्ति आधी दवा शगी नेझोने पोतानी भक्ति अ अने कीर्ति आग्रह पना प्रशुया.

समस्तलुप्तमौसनपाणिभिः पीताम्बरैः यज्ञोपवीतानिधूपितसव्यकन्धरै - रे सरस्वतीकण्ठाभरण ! हे वादिविजय
 लम्पीकेतन ! हे वादियुलङ्काटयन्त्रणतालक ! हे वादिवारणविदारण पञ्चानन ! वायैष्यसिन्धुसुलुकीकरागस्तै !
 वादिसिंहाष्टापद ! वादिविजयविशारद ! नादिवन्द्यभूषण ! वादिसिरिकरालकाल ! वादिकदलीकाष्टलभट्टनकुपाण !
 वादिविमस्तोमनिरसनमचण्डमार्षण्ड ! वादिविगोषमेषेणपपाणचक्र ! वायमघटमुहर ! वायुशुक्रदिनमणे ! वादिवृक्षो
 मूलनवारण ! वादिवैश्यदेवपते ! वादिवासननेत्र ! वादिर्यसकसार ! वादिकरिणसुगारे ! वादिवरज्वराङ्कुश !

इस प्रकार कह कर और पुस्तक हाथ में लेकर गौतमी क्षिप्यों के साथ मनु के निरुट जाने को
 रवाना हुए । उनके क्षिप्य कमण्डलु और धर्म का आसन हाथ में लिए हुए थे । पीताम्बर पहने थे । उनका
 बाँधा कँचा यज्ञोपवीत से सुसौमिल हो रहा था, वे अपने गुरु-रन्ध्रप्रति का इस प्रकार यज्ञोगान कर रहे थे
 और नयमयकार करते जा रहे थे ।- हे सरस्वती कर्ग कठामरणवाछे ! हे वादी-विजय की लक्ष्मी के लज्ज !
 हे वादीर्या के मुच स्त्री द्वार को बर कर देनेवाछे वाछे ! हे वादी स्त्री रस्ती का विदारण करनेवाछे ।
 पंचानन ! हे वादियों क ऐष्वर्य स्त्री सागर को बुझू में पी जानेवाछे अगन्धि ! हे वादि-सिंहों के लिए
 अष्टापद ! हे वादिविजय विशारद ! हे वादियों के सिर के पिकराल काल ! हे वादी स्त्री
 क्षत्रियों को कानेवाछे के लिए कुलग्न-तलवार ! हे वादि-तम के समूह को नष्ट करनेवाछे मचण्ड मार्षण्ड !
 हे वादियों की गैरुओं को पिलने के रिण पाणय चक्र ! हे वादिया स्त्री कचे पड़ों के लिए मुदुगर !
 हे वादी स्त्री उच्छ्रुत क क्रिय मय ! हे वादि-वृक्षों का उल्लाह फूटनेवाछे गजराज ! हे वादी स्त्री दैत्यों के

का प्रभुसिंहासनासन, दावर्मा पुस्तक रुध, पाँवने शिष्या अनुवाचने छात्रे प्रभु पासे भया ते रवाना
 यथा तेना भुदिसिंहे तेभुं भमराण अने इभंनु आसन दावर्मा पक्षमु उतु पीताम्बर धारण भुं उतु तेना
 दावर्मा भक्षो यज्ञोपवीत वडे शोकी रह्यो उते। योवाना शुरु 'धुन्ध्रभूति' ना यज्ञोगान अने नयमयकार छावावते। तेना
 शिष्य समुदाय पछ तेनी साङ्गे ब्याली बको उते। यज्ञोगान देवा नभारनां दत्ता, ते ठडे छि- " हे सरस्वती स्त्री
 ठडीने धारण करवावाणा ! हे वादी-विजय की लक्ष्मीना भवद्वय ! हे वादिजोना मुअ स्त्री दाशने ज भ करवावाणा !
 हे वादी स्त्री क्षापीट विदारण करवावाणा पञ्चानन देवरी सिद्ध समान ! हे वादिजोना अश्वर्य स्त्री सागरने शोणीने
 पी रज्जवाणा अगस्त्य मुनि ! हे वादि स्त्री सिद्धा अष्टापद ! हे वादि विजय निशाद ! हे वादिवृन्द भूषण !
 हे वादिजोना शल समान ! हे वादि स्त्री लक्ष्मी वृक्षने भाषणवाणी तलवार समान ! हे वादि स्त्री अश्वारने ना
 करवावाणा लक्ष्मी ! हे वादिस्त्री वठने पीलनवाणी यज्ञी समान ! हे वादि स्त्री लक्ष्मा वजने होदन्तार होदन्तार समान !
 हे वादि स्त्री वृक्षने उच्छ्रुत स्त्री देवाना अश्वारण समान ! हे वादि स्त्री दैत्यों

રહ્યું=અન્તર્હિતક્રોધઃ, તતઃ કુદ્ધઃ=સ્ફુરિતાધરતયા વ્યક્તક્રોધઃ, આશુરક્તઃ=શીઘ્રક્રોધારુણનયનઃ, મિસમિસાયમાનઃ=
 ક્રોધેભ જાગ્રવલ્યમાનઃ, તતઃ કુદ્ધઃ=સ્ફુરિતાધરતયા વ્યક્તક્રોધઃ, આશુરક્તઃ=શીઘ્રક્રોધારુણનયનઃ, મિસમિસાયમાનઃ=
 ક્રોધેભ જાગ્રવલ્યમાનઃ, તતઃ કુદ્ધઃ=સ્ફુરિતાધરતયા વ્યક્તક્રોધઃ, આશુરક્તઃ=શીઘ્રક્રોધારુણનયનઃ, મિસમિસાયમાનઃ=

રહ્યું=અન્તર્હિતક્રોધઃ, તતઃ કુદ્ધઃ=સ્ફુરિતાધરતયા વ્યક્તક્રોધઃ, આશુરક્તઃ=શીઘ્રક્રોધારુણનયનઃ, મિસમિસાયમાનઃ=

રહ્યું=અન્તર્હિતક્રોધઃ, તતઃ કુદ્ધઃ=સ્ફુરિતાધરતયા વ્યક્તક્રોધઃ, આશુરક્તઃ=શીઘ્રક્રોધારુણનયનઃ, મિસમિસાયમાનઃ=

અમરિયત્તદનનવનકમસાઃ=અમરદિતિમુલનનકમસા, દીનવિવર્ણવદનાઃ=દ્યૈન્યયુક્તિનિષ્પમમુલાઃ સંનાવાઃ । અન્નાન્તરે-
પ્રામણક્રોઢ સમયે મન્તરપ્રકારે=નાગનમઝ્યે દેવૈઃ યુષિતમ્=ઉચ્ચેસ્વારિતમ્-ક્રિમિત્યાર-વયયેસ્પાદિ-તવારિ—

મો મોઃ-મઘ્યાઃ । યુષમ્ પ્રમાદમ્ અવધૂયન્=દ્રીકસ્ય નિર્હિતિપુરીન્=મોષાપુરીં પ્રતિ સાર્યવામ્ પનમ્=
ધીર્વર્દમાનમમ્ આગત્ય મનઃપમ્=સેષપમ્ । યઃ ધીર્વર્ધમાનસ્વામી જગત્પરિહિતઃ-શિલોકકલ્પ્યાણકારી, લોકોપ
કારકરોગેન્દ્રજ-જનાનાક્રુદ્ધાખમાર્ગોપદેશસ્વોપકારકરણે પ્રપાનનિયમધરઃ, મિનેન્દ્રઃ-રાગદ્વેષનિયનાં સામાન્ય
કેવલિનો સ્વામી વાસ્તિ ।

પવમ્-રત્નરતરેકુપિતં શ્વને મુત્વા=મલ્લગોષીકસ્ય સભમામમ્ ઉચ્ચવસ્ય-ઉર્ધ્વપાસ ઘુઠીલા, પૂર્વે-સર્વેશઃ
પ્રથમ તાત્વ મન્યેવવદ્ત્વ સત્ત્વ મૌલમગોષઃ=મૌલમગોષોત્પન્નઃ, હન્દ્રધૃતિઃ=વદાસ્યઃ નામ=મસિદ્ધો પ્રામણઃ

સપ ॥ મપ, પેનોઢીન ઠો ગયે । અનેકે મુલ મૌર નેષ કુમલા ગયે । અનેકે વેરે વર દીનવા પ્રસ્કને
લગી । મુલ પીકા પદ ગયા । બપ પ્રામણ હસ પ્રકાર સ્વે-સ્ત્રિપ ઠો રહે યે, ઉત્તો સમય આકાશ કે
મપ્ય મેં દેકોને ડય સ્વર સે યોષના કી । વર યોષના કયા યી, સો કરશે હૈ—

‘ મો મપ્ય નીતી ! હમ પ્રમાદ ત્વા પરિત્યાગ કરકે, મોસ રૂપી નગરી કે સિપ સાર્યવાર કે સમાન
મીરપમાન મગવાન કો આઠર મજો, ફનકી સેવા કરો । યા ધીર્વર્ધમાનસ્વામી મિલાફ કે કલ્પ્યાણકારી હૈ,
મનુષ્યોં ફ ઉદાર કે માર્ગ કા ઉપદેશ વેન કપ ઉપકાર કરનાઠી ફનકા પ્રપાન ઘટ-નિયમ હૈ । યા જિનો=
રાગન્દ્રેષ કો નીતનેશકે સામાન્ય કૈશમિયોં ક સ્વામી હૈ । ’

આ ઉપાન દેવોની યોષક્ષા તેમના સાંભળવામાં આવતી આવી યોષક્ષા અને હસવમ્, તેઓ કહેવા સ બળાયા હૈ—
‘ હે ભગ્ન છલે । તમે તમારી નિદ્રા ઉઠાશે । આવો અનુલ અવસર ફરી ફરી નહિ આવે । આ અપૂર્વ અવસરનો
ઉભ હાઈ હસ્તાન્ન સાધિ । મિલ ફરી નગરીમાં ભવ નો આ સર્વેન્દ્રજ સમવાયે તમને મળી ગયે હૈ । આત્માને જન ત
મુખ આસ્વાનજી ખામ તમારે આંજલે આવીને ઉભ રહી હૈ । ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીને મળે, તેની ઉપાસના ફરે.
આ ભગવાને જન ત આ પાલો વેળી, ઉત્તર આરમ્ભપ્રેરિતને પ્રમદાવી હૈ તેમ જ સારના ત્રિવિધ તાત્ત
યમન મર્કુ હૈ તમારે આ સસારની આગ વર્તી અવાઝોમાંથી ઉગતુ હોય તો, તેમનો ઉપદેશ સાંભલો । તેમના
હસનેનો વિચાર ફરે । આ ભગવાનને દુઝે, તમે હોડતુ દિત વશુ હૈ સારના અપર પાર દુઃખોમાંથી છુટવાને
તેઓ વરદેશ આપી રહ્યા હૈ મારશુ હૈ તેઓને આ કામનક્યા, સ્વપ પ્રાપ્ત ફરી હૈ તેઓએ શર-દેશ વિષર આદિને
નાજો ભામ ફરો હૈ તેઓ સામાન્ય આશુરુઓમાં પણ ફેરવતા થાશે હૈ

तत्रत्य साश्वतोपादेयद्वय=भद्रोपासुरितानां वेदानां शतारं मासु=द्वयश्रुतिं च परिहाय=स्पष्टतया तत्र-पापपिण्डिपात्रे
 गच्छन्ति, तद् एतेषां=वेदानां बुद्धिविपर्यासः=मातिवैपरीत्यं आवा=अभूत्, येन=बुद्धिविपर्यासेन इमे=एते देवाः
 तीर्यमर्क-गङ्गादितीर्थसम्बन्धिष्वनर्कं स्पष्टत्वा=उपेक्ष्य गोण्यद्वयार्क=सुद्रस्तावत्सम्बन्धिमस्मू अभिलपन्तः=इच्छन्त वापसा
 इव=ज्ञाता इव यद्रूपदर्क=स्पष्टता धूर्तमुपयान्तीति परेषामन्वयः एवमग्रेउपि, तथा-इमे देवाः कसं त्यक्त्वा=विहाय
 स्वर्ग=नलर्यन्तस्थानम् अभियपन्तः=कामयमानाः, मन्त्रुक्ताः इव तथा-इमे देवाः चन्दन=मीलम्बादि त्यसश्च दुर्गन्ध
 मयित्वन्त्य =इच्छन्त्यः मस्तिकाः, इव, तथा-इमे देवाः सङ्कारम् आगमस्त त्यक्त्वा=वर्धूरं=कूटकिष्ठसविलेपम्
 अभियपन्त दध्नाः इव, तथा-इमे देवाः सूर्यमहालं त्यक्त्वा अन्यकारमभिलपन्त उच्छ्वाः इव प्रतिमान्ति, येऽमी
 देवा यद्रूपदर्क=पद्मस्थानं त्यक्त्वा धूर्त=मायाविनम् उपगच्छन्ति=उपयान्ति । सत्य यावद्वा=यत्तुस्यः देवो मवति

है । इसी कारण तो वे देव यद्र की (पावन) भूमि को और भगोपांगो सहित चेत्यों के ज्ञाता मुक्तको त्याग
 कर उस पातन्वी के पास जा रहे हैं । निश्चय ही इन देवों की मति भी स्थिरित हो गई है । ये देव गंगा आदि
 तीर्थों के जल को त्याग कर वृच्छ लहे के पानी की कामना करनेवाले काको के समान यद्रभूमि को छोड़ उस
 पत के पास जा रहे हैं । और य देव जलही उपेक्षा करके स्वर्ग की इच्छा करनेवाले मेंढका के समान, भीलंब आदि
 चन्दन की मारनेवा लकड़े दुर्गन्ध को पसन्द करनेवाली मक्खी के समान, तथा ब्राह्म वृक्ष को छोड़कर वयूल की
 अभिलाषा करनेवाले ऊँचों के समान तथा दिवाकर के आलोक की मारलेइना करनेवाले उछुओं के समान माखम
 होते हैं ; जो इस यद्रस्थान को छोड़कर इस मायावी के पास जा रहे हैं । सच है जैसा देव वैसे ही उसके पूजारी
 भोग उपराप्त, मुक्ति-रश्मि-पुण्य-उद-शान्ध-आलक्षर-उपनिषद्-अक्षत-संख्या करने वैदिक अ ज्ञाना आदेशम्
 आश विवेचने विछज्जवावाणु छे, छत, आ देवा आठ पक्षु उल्लखन करी आभग धपी रखा छे बसइभी भविन
 भूमिने अरवगच्छी तेज आ वातोद्विया पुरुष तरइ जइ रखा छे ।

आ देवा भद्रोपादेयद्वय करी रखा छे । तेजो तीर्थ-भजने छेरी, आश्वमेधविधीयाना अ धावा पाछीना पीनाश
 भद्रोपादेय भजान छे बसभूमिने भूमी ते पूनी पसे जइ रखा छे आने जवनी छेपेक्षा करीने रक्खने भुमछन्दाए
 देवानी समान छे शीअर आदिवहनने तल दुर्जनने पसइ करनार भाभीमिनी समान छे आभयवृक्षने भूमि
 यद्र आने होदपी करपु आवजनी आनिवावा इस्वावाण छेटीनी समान, सुर्वा प्रशस्तनी अर्चयेइना इस्वावाण
 पूसरोनी समान बजार छे हे तेजो आवा देव आलक्षरअनर पक्षुस्थानने। त्याज करी करीना छे आभय
 आदिल यथायथा भावापीनी पसे जइ रखा छे आी वाप छे हे देवा देव छे तेवा पक्षी देव छे आ

तस्य देवस्य सेवकाः अपि तादृशाः नदुररूपाः एव भवन्ति । इमे खलु देवा नो सन्ति, किन्तु दूषामासाः—
देवद्वन्द्वे केचित् सन्ति । अमराः सहकारमञ्जर्याम्—आम्रमञ्जर्या गुञ्जति—मधुरमव्यक्तं शब्दं कुर्वन्ति, वायसाः—
काकाः निम्बतरौ=निम्बवृक्षेऽनुरागं कुर्वन्ति, अस्तु=एतद्भवतु तथापि=देवानां धूर्तपात्रं गमनेऽपि, अहम् तस्य
धूर्तस्य सर्वज्ञत्वगर्वं=सर्वविचित्रनिताह्वारं, चूरिष्यामि=मर्दयिष्यामि । हरिणः=वृगः सिंहेन किं योद्धुं शक्नोति ?
इत्युत्तरेणान्वयः, एवमग्रेऽपि, तिमिरम्=अन्धकारः, भास्करेण=सूर्येण सह, शलभः पतङ्गो वह्निना=अग्निना सह,
पिपीलिका समुद्रेण सह, नागः=सर्पः, गरुडेन=यक्षिराजेन सह, पर्वतो वज्रेण सह, मेघः=मेघः कुञ्जरेण=हस्तिना
सार्धं=सह योद्धुं=एवं कर्तुं किं शक्नोति ? अपि तु न शक्नोति, एवमेव=पूर्वरीत्यैव एवः=अयम् ऐन्द्रजालिकः=
मायावी, मम-अन्तिके=सन्निधौ क्षणमपि स्थातुं नो शक्नोति । अधुनैव=अस्मिन्नेवकाले अहम्-तदन्तिके=धूर्त-
पार्श्वे गत्वा तं=छलितदेवादिं, धूर्तं=मायाविनं, पराजयामि=परास्तं करोमि । सूर्यान्तिके सूर्यसमक्षे खद्योतस्य
पार्श्वे गत्वा तं=छलितदेवादिं, धूर्तं=मायाविनं, पराजयामि=परास्तं करोमि । सूर्यान्तिके सूर्यसमक्षे खद्योतस्य

वराकृत्यमन्दस्य का गणना ? न गगनेतिभावः । अहम्=अस्थायी । विदुषस्तादात्मनो । तत्त्व-
 होतें हैं । निस्सन्देह ये देव नहीं, देवाभास हैं—देव जैसे प्रतीत होनेवाले कोई और ही हैं । भ्रमर आत्र की
 मंजरी पर गुनगुनाते हैं, परन्तु काक नीमके पेड़की ही पसंद करते हैं । खैर, देवों को उस छलियों के पास
 जाने दो, पर मैं उस छलिया के सर्वज्ञत्व के घमंड को खंड कर दूंगा । हिरण की क्या शक्ति जो वह
 सिंह के साथ युद्ध करे ? इसी प्रकार अंधकार, सूर्य के साथ, पतंग-अग्नि के साथ, चिउंटी सागर के साथ,
 साप गरुड़ के साथ, पर्वत वज्र के साथ और मेढा हाथी के साथ क्या युद्ध कर सकता है ? नहीं, कदापि
 नहीं । इसी प्रकार वह धूर्त इन्द्रजालिया मेरे समक्ष क्षणभर भी नहीं टिक सकता । मैं अभी उस धूर्त के
 पास जाकर देवादिकों को भी छलनेवाले मायावी को परास्त करता हूँ । सूर्य के सामने वेचारा जुगनु-आग्या
 देवा नहीं पशु देवालोक छे, ओटले देव जेवा जखुता आ कोई भीनज छे । लभराओ आभांनी सांजरी पर
 शुभरव क्रै छे पशु डागडाओ दीगडाना आउने ज परह छे । जेर ! देवाने ते धूर्तनी पासे जवा हो. पशु
 हु तेनी पासे जर्ह तेनी सर्वज्ञताना बुझा डिडी हर्धय ! शु हरबियुं सिंइनी साथे युद्ध करी शक्छे छे ?
 ओवी ज रीते अधार सूर्यनी साथे पांगिया अग्निनी साथे डीडी समुद्रनी साथे, सर्प गड़इनी साथे, पर्वत
 वज्जनी साथे अपने मेढा हाथीनी साथे शु युद्ध करी शक्छे छे ? कहापि नहिं. आवी ज रीते ते धूर्त घ-द्र-
 जणिजे भारी सामे ओक क्षणभर पशु टकी शकुवाने नथी. हुं डभणां ज तेनी पासे जर्ह देवाने पशु डगवावाणी
 तेनी धूर्तताने खुएवी करी नापीथ ! सूर्यनी सामे जियादे आगीये शु वस्तु छे ? ओटले काई नहिं. भारे भीननी

तत्रस्य साहोपाद्वैश्वस्य=अहोपाद्रस्तुतिनां वेदानां आतारं मायू=इन्द्रधृतिं च परिहाय=स्वप्नवा तत्र-यापविष्णोर्मात्रे
गच्छन्ति, इत् पुरतोपां=वेदानां बुद्धिनिष्पासां.=मतिवरीत्य आताः=आभूत, येन=बुद्धिनिष्पासांसेन इमे=एते देवा
सीर्यजलं=गात्रादितीर्थसम्पन्नं जलं त्यक्तवा=उपोष्य गोप्यवज्रलं=दुष्टलातसम्पन्निगमसम् अभिलपन्तः=इच्छन्तः चापसा
इव=काका इव यज्ञपाटकं=त्यागतं घृतमुपयान्तीति परेणान्त्यः एकमग्नेऽपि, तथा-इमे देवाः जन स्यन्वा=विहाय
स्यर्स=जलवर्हितस्यानम् अद्रिछपन्तः=तामयमानाः, मण्डुका इव तथा-इमे देवाः चन्दनं=धीलक्ष्णादि स्पर्शका दुर्गन्ध-
मभिलपन्त्याः=इच्छन्त्य मसिका, इव, तथा-इम देवाः सरकारम् आम्रहतस्य स्यन्वा=चूर्णं=कण्टकिवृत्सिवीरोपम्
अभिमथन्तः रक्षाः इव, तथा-इमे देवाः सूर्यमकाशं त्यक्त्वा अन्यकारमभिमथन्त उग्रकाः इव प्रतिमान्ति, यजनी
देवा यज्ञपाटं=यज्ञस्थान त्यक्त्वा घृतं=मायाविनम् उपगच्छन्ति=उपयान्ति । सत्य गार्हपत्यं=यत्तुल्य देवो भवति

हैं। इसी कारण तो वे देव यज्ञ की (पावन) भूमि की और अंगोपांगो सखि वेदों के ज्ञाता मुक्तो त्याग कर उस पालवकी के पास जा रहे हैं। निम्न ही इन वेदों की मति भी विपरीत हो गई है। ये देव गंगा आदि तीर्थों के जल को त्याग कर तुच्छ लट्टे के पानी की कामना करनेवाले काको के समान यज्ञभूमि को छोड़ उस पर्वत के पास जा रहे हैं। और य देव जब ही उपेक्षा करके स्वयं की इच्छा करनेवाले मंदको के समान, श्रीलह आदि चन्दन की अर्पणना करके दुग्ध को पसः करनेवाली मयन्दी के समान, तथा आन्न हस्त को छोड़कर बपुल की भूमिलापा करनेवाले ऊँच के समान तथा दिवाकर के आलोक की आच्छेदना करनेवाले उल्लुओं के समान मालूम होते हैं; जो इस यज्ञस्थान को छोड़कर इस मायात्री क पास जा रहे हैं। सच है जैसा देव वैसे ही उसके पूजारी

આ દેવો ખરેખર જન્મ કરી રહ્યા છે ! તેઓ તીર્થંજનોને ઊંચી, જ્ઞાણાભિચારીના અથવા પાણીના પીનારા કામગ્રાહી મમાન છે સમજીમને મૂકી તે પૂની પાસે જઈ રહ્યા છે, જાને જળની ઉપેક્ષા કરીને રજાને મુજબનાર દેહધારી સમાન છે કીજડ અપરિવ્રજને વલ્લ કુઈને પચક કરનાર માળીઓની સમાન છે આસવધને મૂકી વડ્ડ જાને કાટાથી બાંધેલ ભાવજની જાલિયા કલ્યાણ તા ઊંટની સમાન, સૂઈના પ્રકાશની અવેશના કલ્યાણના પૂલેયની સમાન જ્યાર છે કે જેઓ આવા મૂલ આકાશવનમ વસરજાનેલા ત્યાજ કરી બરીના છૂલ ભાગમાં જાડેલ થવાયાના માંવાળીની પાસે જઈ રહ્યા છે ખી થાન છે કે જેવા દેવ છે તેવા પૂજરી દેવ છે આ

निरोधकेत्यर्थः। हे वादिचारणाविदारणपञ्चानन !-वादिचारणाः=परवादिरूपा मत्तमतद्गजाः, तेषां विदारणे=कुम्भदलने पञ्चानन=सिंह परवादिविधामदूरीकारक ! इत्यर्थः। हे वाधैश्वर्यसिन्धुचुलुकीकराऽऽगस्ते !-वादिनां यत् ऐश्वर्य=विद्वज्जनाग्रगण्यत्वं तदेव सिन्धुः=समुद्रः, तस्य चुलुकीकरणे अगस्ते=अगस्तिरूप !-अनायासकृतदुर्धर्षपरवादिराजायेत्यर्थः। हे वादिर्महापटापद !-वादिन एव सिंहास्तेषां कृते अष्टापद=शरभ !-वादिविक्रमविनाशकेत्यर्थः ! हे वादिविजयविशारद !-वादिविजयकरणे परमदक्ष ! हे वादिदृष्टन्धूपाल !-परवादिस्युद्धमनार्थधृतप्रचण्डतर्कदण्डेत्यर्थः। हे वादिविरः करालकाल ! वादिनां शिरस्सु करालकाल=प्रचण्डकालतुल्य ! हे वादिकदलीकाण्डखण्डनकृपाण ! वादिरूपाणा कदलीकाण्डानां गण्डने कृपाण-खड्गरूप !-अनायासेन सकलवादिमानविच्छेदनसमर्थेत्यर्थः। तथा-हे वादितमस्तोमनिरसन प्रचण्डमार्तण्ड !-वादिन एव तमस्तोमाः=अन्यकारस्वरूपाः, तन्निरसने=दूरीकरणे प्रचण्डमार्तण्ड=प्रखरसूर्य !-स्वप्रभावदूरीकृतसकलवादिसमुद्देत्यर्थः। हे वादि गोधूमपेपण-

वादियों की बोलती बंद कर देने वाले ! हे प्रतिवादी रूपी मदोन्मत्त हाथियों के कुंभस्थलों को विदारण करने वाले सिंह ! हे प्रतिवादियों के ऐश्वर्य-विद्वानों में अग्रगण्यता रूपी सागर को एक ही चुल्लू में सोख जाने वाले अगस्ति अर्थात् दुर्दान्तवादियों को अनायास ही-बुद्धियों में जीत लेने वाले ! हे वादियों रूपी सिंहों के पराक्रम को नष्ट कर देने वाले अष्टापद ! वादियों को परास्त कर देने में दक्ष ! हे वादी रूपी छुटेरों का दमन करने के लिए प्रचण्ड तर्क रूपी दंड धारण करने वाले ! हे वादियों के सिर के विराल काल ! हे वादी रूपी कदलियों के खण्डखण्ड कर देने के लिए कृपाण, अर्थात् अनायास ही वादियों का मानमर्दन करने वाले ! हे वादी रूपी सघन अश्वार का निवारण करने के लिये प्रखर सूर्य ! हे प्रतिवादी रूपी मेहूओं को

चे ताना गुरुनी प्रतिष्ठा, अन्येथ शुष्ण, दलीदोलुं साभर्थयथुं, वाहि तरक्षने। प्रभाष, नीडरता, शैली, आवडत, विषयने शुद्ध करवानी शक्ति, विषयना रुद्धस्थनी आरधार उतरी जनावाणी तीव्रशुद्धि, अनेक दृष्टिगुंडो। वडे पोताना विषयने अने धारणाने मज्जभूत क्खानु पराक्रम विगेरेना शुष्णानो करतां, आ टोणु पसार यथा लावुयु. सिद्ध अने छाथीनी उपमा, अधकार अने सूर्य, घडो अने लाकडी वृक्ष अने गजराज, देव अने दानव, कुंभ अने कृष्ण, सिद्ध अने मृगला, कदली अने कृपाय, धुवड अने सूर्य, सिंघ अने अष्टापद, जवर अने जवरकुश विगेरेनी उपमा अने उपमेयने। आधार लछ पोताना गुरु आ धन्द्वाणिथाने जडर परास्त करये जोवा दंभी अने षण्णोपर उद्दगारे साथे आ शिष्यमंडल बालतुं लुतुं.

नायेसित्ये, तदुत्तरप्राग्मे एक एषाहं पर्याप्तोऽस्मि इति भावः । अन्यकारणभावेऽन्यथादूरीकरणे किं सूर्यः
 सूर्य-चन्द्रनक्षत्रादियं प्रतीसते ? अपि तु न प्रतीसते । अथा-आहं क्षीप्रमेव गच्छामि एवम-इत्यम् उच्यते ॥
 कश्चित्सा पुस्तकस्तः प्रत्यर्थति-आक्षेपे प्रमाणमदर्शनाय दूरीतपुस्तकासन् कमण्डलुदर्शनासन्पाणिभिः-कमण्डलुः
 दर्शनासन्-कृशसन् च पानी येषां ते यथायुतास्तैः-दूरीतकमण्डलुश्चासन्तैः पीताम्बुरैः-परिपूतपीतचक्षुः यद्वोपवीत
 विपूतसक्यकुर्यैः-यद्वोपवीतेन विपूतिता-अलङ्कृता क्रमरा-श्रीवा येषां तैः-यद्वोपवीतचारिभिः- हे सरस्वती-
 कृष्णामरा ! सरस्वती एव कृष्णामरणैः-कृष्णविपूरणं यस्य स तथा तस्मिन्नुद्यो, तथा-हे वादिविजयलक्ष्मीकेतन-
 पादिनाम् उपरि यो विजयस्तस्य या लक्ष्मी, तस्या-केतन-यताकास्तस्य-परपादिपरामवकरणेऽग्रगण्येत्यर्थाः ।
 तथा-हे वादिसुलक्ष्मा-वादिमुलमेव कृपाटं तस्य यन्मणे शालरु-तामस्तस्मिन् ॥ परवादिवाचमसर

क्या बीज है ! कुछ यो तो नहीं । मुझे किसी दूसरे विज्ञान की सराफा की आवश्यकता नहीं । मैं अकेला ही
 उस पूर्ण के एक छुट्टाने के लिए समर्थ हूँ । अन्यकार का निराकरण करने के लिए सूर्य क्या चन्द्रमा आदि
 की सहायता चाहता है ? नहीं । अतएव मैं अभी, इसी समय जाता हूँ ।

इस प्रकार काकर होनेवाले आक्षेपों में प्रमाण विवरणों के लिए इन्द्रयुतिने अपने हाथ में पुस्तकें लीं ।
 कमण्डलु तथा कुशसन हाथ में लिए हुए, पीत वस्त्र धारण किए हुए, यद्वोपवीत से ओमित बाये ऊँचेवाले और
 यद्वोगल करनेवाले अपने पैचसी शिखरों के साथ वह इन्द्रयुति मगवान के समीप चले । उस समय उनके
 शिष्य उनको नय-अपकार कर रहे थे । शिष्य इस प्रकार यद्वोगल कर रहे थे- हे सरस्वती स्त्री मायूषण कृष्ट में
 धारण करनेवाले ! हे वसिष्ठादियों पर मास की जानेवाली विजय स्त्री लक्ष्मी की पठाका के समान ! अर्थात्
 वसिष्ठादियों का परामव करने में अग्रगण्य । हे वादियों के मुल स्त्री कृपाट को बंद करनेवाले ठाछे । अर्थात्

अक्षयवा देवानी बदर नहीं तु तेने पक्षस्त कल्पने जोकेछे न शक्तिमान छ छ-इत्यदि आ प्रभावे विचार
 भासने बड़ी त्वां कल्पने निर्वृत्त कथं । ऐताना क्षयार्थं विद्वत्ताने शोको तेनु जोके पुनस्तत्र क्षीयु ते उपशत अन्य
 साधने नाना हे इमं अण आदि तेन न बद्धार्थ, आन्यही वज्रैरे वार्त्त निर्वाणर भाण्य करी, यद्वोपवीतकी शोभाशुभा
 धर्त चोकेछे । शिष्योन्मत्तमुद्यम आये छ-इत्यदि, जोदम भागवान के कथे निरुद्ध आ छ त्वां नया एवाना यथा यावती
 वज्रते अजानने पक्ष सेछे नाने तेना नय-नयकारयणा ऐकाद्य पदोने शिष्यवृत्त छेकथु इत्याभां ऐताना श्रुताना
 श्रीमान आतां आतां आतां ऐताना श्रुताना ॥ १ ॥

शलभास्तेषां भस्मीकरणे प्रज्वलीपक्र=प्रज्वलप्रदीपस्वरूप ।=भस्मीकृतसकलवादि यशःशरीरेत्यर्थः । तथा--हे वादिचक्र-
चूडामणे । वादिचक्र=वादिसमूहस्तस्य चूडामणे । सकलशास्त्रार्थकलकुशलाग्रगण्येत्यर्थः । तथा--हे पण्डितशिरोमणे ।=
विद्वज्जनशिरोमणिस्वरूप । तथा हे विजितानेकवादिवाद । विजितोऽनेकवादिनां=सकलवादिनां वादः=शास्त्रार्थविचारो
येन स तथा तत्संबुद्धौ=सर्वदा शास्त्रार्थविजयिन्मित्यर्थः । तथा--हे लब्धसरस्वतीसुप्रसाद ।=लब्धः=प्राप्तः सरस्वत्याः=
विधाधिदेवतायाः सुप्रसादः=सुप्रसन्नता येन स तथा तत्संबुद्धौ, हे सरस्वतीकृपापात्रेत्यर्थः । तथा हे दूरीकृतापरगर्वो-
न्मेष ।=दूरीकृतः=विनाशितः अपरेपाप=ग्रन्थेषां पण्डिताना गर्वोन्मेषः पाण्डित्याहङ्कारवृद्धिर्येन स तथा-तत्संबुद्धौ,
दलितसकलपण्डित-पाण्डित्यदर्पेत्यर्थः । इत्यादि यस्य गायद्भिः=कीर्तयद्भिः पञ्चशतशिल्पैः परिष्ठितो 'जय जय' शब्दैः
शब्दाययमानः प्रभुसमीपे=श्रीवीरप्रभु-पार्श्वे समनुप्राप्तः=गतः । तत्र=प्रभुपार्श्वे गत्वा स इन्द्रभूतिः समवसरणसमृद्धिं
प्रभुतेजश्चविलास्य=दृष्ट्वा 'किमेतम् ?' इति वदन् चकिनचित्तः=विस्मितमानसः संजातः ॥प्र०१०५॥

गणधरवाद

मूलम्--तेणं कालेणं तेणं समणं समणे भगव महावीरे तं इंदभूइं-भो गोयमगोत्ता इंदभूइंति संवोहिय
वादियों के यश रूपी शरीर का विनाश करनेवाले ! हे वादि चक्र चूडामणि-सकलशास्त्रों में अर्थों और कलाओं में
कुशल जनों में अग्रगण्य ! हे विद्वज्जन-शिरोमणि ! हे सकल वादियों के वाद को जीतनेवाले ! हे विद्या की
अधिष्ठात्री देवता के कृपाभाजन ! हे अन्य विद्वानों के गर्व की वृद्धि को, विनष्ट करनेवाले ! अर्थात् सब
पण्डितों की पण्डितार्ह के गर्व को खर्व करनेवाले ! इस प्रकार पाँचसौ शिष्यों द्वारा किये जाते यशोगान और
जय-त्रयकार के साथ इन्द्रभूति भगवान् के पास पहुँचे । वहाँ पहुँच कर समवसरण की लोकोत्तर विभूति को
और प्रभु के तेज को देखकर चकित रह गये । सोचने लगे-यह क्या ? ॥प्र०१०५॥

नवी वांनः करता आ शिण्ये सभवसरणु नल्ल आवी पळेया त्या तेआ सभवरणुना अद्वितीय रचना, अनुपम
शेला अन्ने अपूर्वकृतिते नेह उघाई गया । दिग्भूद थई गया । आपो दाटी रही ! चेा वडासी रहा । दातमा आगणी
धादी गया । आगण यादाता दोडोत्तर पुरुष-लगवानेने कुथनवणेा हेह अने तेनु दावित्य नेह तेआ शानशुध
ओई गेहा ! तेमनु तेज, प्रसाव अने सुण उपर तरती तनभनाटवाणी सौभता नेह तेभनेा गर्व गणवा भाड्यो !
कोशनी पाराशीशीनु अ तर धटवा लाग्यु ! आ थधु नेह, भाली, अनुभवी तेआ विचारवा दाग्या अने 'हाथडा'नेा
निसायेा तेआना सुभभाथी नईगवा भाड्यो ! (सू०१०५)

पापणघक !-वादिस्था ये गोघमाः सत्येपणे=धूर्त्तकरणे पापणचक !-अष्ट-धूर्त्तकिटपरवादिमामेस्थयः । तया-
 हे नापामपमृष्ट ।-वादिन एव आमपटाः=अपव्यथास्तधूर्त्तने शुद्धतुल्य । वादिचित्रवाडमिमानचूर्णिकारकैस्थयः,
 तया-हे वायुनूद्धदिनमणे !-वादिन एव तच्छास्तेषां कृते दिनमणे=धूर्यरूप ! परवाधितर्कदृष्टिबिनाशकैस्थयः ।
 तया-हे वादिद्वयो मूलनधारण !-वादिन एव दुष्मास्तेषामुन्मूलने वारण=अज्ञरूप । वादिमानोन्मूलन समर्थैस्थयः ।
 तया-हे वादिद्वयदेवपते=वादिरूपयो वैश्यानां परामनकरणे देवपते !-देवेन्द्र । तया-हे वादिश्चासननेरु !-वादिनां
 यासन=स्वाधीनी काले नरेरु=राजरूप । तया हे वादिकसंस्कारे=वादिन एव कंसस्वरमने कंसारे !-कुण्डलरूप !
 तया-हे वादिहरिणमृगारे !-वादिन एव हरिणास्तेषा कृते मृगारे=सिंहस्वरूप !-स्वसिंहानावचिचासित
 सङ्ख्यगुरूपवादिस्मरैस्थय । तया-हे वादिश्वरवराह !-वादिन एव श्वरास्त्वदुपशमने श्वराह=श्वराह
 नामकौपयस्व ! तया-हे वादियूयमण्डमणे=वादिसमूहविद्रावणे भण्डमण्ड । हे वादिहृदयस्वर !-स्वमगाहपाणि-
 स्वरभावेन वादिहृदयाज्जगतरीढाकाले तीक्ष्णतल्पस्वरूपेस्थय । तया-हे वादियुक्ममज्जलीपक !-वादिन एव

पित ढामने के सिव घडी के समान ! हे प्रतिवादी रूपी कबे घटों के लिये सुदृग के समान वादीयो की
 विद्वत्ता का चूर-चूर कर देनेवाले ! हे वादी कौ उच्छ्रों के लिए सूर्य अर्थात् प्रतिवादीयों की तर्क-दृष्टि को
 नष्ट कर देनेवाले ! हे वादी कौ हवों ने उ गह गिरानेवाले गहराम, अर्थात् वादीयों का मानमदन करने
 वाल ! हे वादी रूपी दामवों का पाराम करनेवाले देवेन्द्र ! हे प्रतिवादीओं को अपन अपिन करनेवाले
 नरेन्द्र ! हे वादी रूपी कंस के लिए कुण्ड समान ! हे अपने सिंहनाद से समस्त वादी रूप सृगों को मयमीत
 कर देनेवाले सिंह ! हे वादी कौ रार का निवारण करने के लिए श्वराकुश नामक औपच ! हे वादीयों के
 ममूर का पराजित कर देनेवाले मगन्न मण्ड ! हे अपने मकाह पाहिस्य के प्रभाव से प्रतिवादीयों के अन्तःकरण
 में सदैव सङ्कननेवाले कौने ! हे प्रतिवादी रूपी पतंगों को मत्स्य करनेवाले जलते दीपक, अर्थात् प्रति

भाषा उपभोगी उपरान्त प्रतिवादीयोने वृक्षवनाभां चोत्तानां अल्लेखनी तीव्र शक्ति रहेकी छे तेवु आभय
 प्रभर उक्ता यास्या नय कथा. नेम पतत्र अग्निभां शरीर यथुर्थां, अग्निनी पङ्क्तिभां प्रथम बह् अथ छे तेम
 आ 'परमार्थ' पत्र अमारा शुली आरण पसक्य पाभरी ! शस्य हे तेजो, सकल आओ अने तेना अर्धभां पार
 तत छे तमाम वनाजोनां जलप्रसर छे पङ्क्तिभां सिद्धिप्रति छे, अग्निभां डेवीय प्रभाकान छे बिद्योतेना अनर्थ
 145 दन शरदवासा छे तेमम वनान निवेदेभां सर्वभेद छे आ यथावे जडाज्जो कालां जपल्लोना हे कानता, अथ

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरस्तमिन्द्रभूति 'ओ गौतमगोत्र ! इन्द्रभूते ?' इति संबोध्य हितया सुखया मधुरया वाण्याऽभाषत । भगवतो वचनं श्रुत्वा स पुनरतीव चकितचित्तो जातः—
 अहो ! अनेन मम नाम कथं ज्ञातम् ? एवं विचार्य मनसि तेन समाहितम्—किमत्राश्चर्यकं यज्जगत्प्रसिद्धस्य त्रिजगद्गुरो मम नाम को न जानाति ? मम मनसि यः संशयो वर्तते तं यहि कथयति छिनत्ति च तदा आश्चर्यं गण्यते । एवं विचारयन्तं तं भगवानकथयत्—गौतम ! तव मनसि एतादृश संशयो वर्तते यत्—जीवो-

गणधरवाद

मूल का अर्थ—'तेणं कालेणं' इत्यादि । उस काल और समय में श्रमण भगवान् महावीरने उन इन्द्रभूति से 'हे गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति !' इस प्रकार संबोधन करके हितरूप, सुखरूप और मधुरवाणी से भाषण किया । भगवान् का कथन सुनकर इन्द्रभूति और अधिक चकितचित्त हुए । सोचने लगे—'आश्चर्य है कि इन्होंने मेरा नाम कैसे जान लिया ?' फिर मन ही मन समाधान कर लिया—इस में विस्मय की बात ही कौन-सी है ? मैं जगत् में प्रसिद्ध हूँ और तीनों जगत् का गुरु हूँ । मेरा नाम कौन नहीं जानता ? हाँ, मेरे मन में जो संशय विद्यमान है, उसे बतला दें और उसका निवारण कर दें तो मैं आश्चर्य मानूँ ।

इस प्रकार विचार करते हुए इन्द्रभूति से भगवान् ने कहा—गौतम ! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि

गणधरवाद

भूण्णेो अर्थ—'तेण कालेणं' इत्यादि । ते काल अने ते समये श्रमण भगवान् महावीर, गौतम गोत्रो धन्द्रभूतिने संबोधीने, हितकर, सुअकर अने शांतिकारक, भीही भधुरी बाणीने उच्चारी. भगवाननी शांति प्रियवाणीनुं श्रवण करवाथी, तेनु यित्त यकित थयु तेमज पोताजुं नाम, तेमना बाणुवामा आवतां तेने आश्चर्य पण थयुं. 'हुं' जगत प्रसिद्ध छं, त्रणुं जगतनेो गुरु छुं. तो साइ नाम केणु नथी बाणुत्तुं ? आवा तेना सुद्ध बाणुपणाने वीधे विरमय पाभवा नेवुं छेज नहि । परंतु जे आ व्यक्ति, मारा मनमा रडेल श कानुं दर्शन करावे अने तेनुं निवारणु करे, तो कइक आश्चर्य पाभवा नेवुं अइ ।

धद्रभूति आवी रीते विचार करतो હતો ત્યાજ ભગવાનનો પ્રશ્ન આવી પડ્યો કે "હુ ગૌતમ ! તારા મનમાં 'જીવ'ના અસ્તિત્વ સંબંધી શંકા છે એ વાત ધરાણર છે ? અને તારા મનમાં 'જીવ'ના વિદ્યમાન પણા વિષે શંકા

रियाए घुडाए महुआए बाणीए मासीध । भगवभो बणं सोबा सो पुणो भाई बगिय चित्तो जामो । 'अहो ! भणेण मम नाम' इइं जायं ? एवं विचारिय मणंसि तेण समाहिय कियेत्य अउठेरग-मं जगपसिद्धस्स विज गयुहस्स परस नाम को न जाम्माइ ! भच्छ मणंसि जो संसजो बहइ-अं अइ कइइ छिइइ य, ताहे अउठेरं गणिज्जाइ । एवं विचारेमाणं त भगव कवीध-गोयमा ! तुअ मणंसि एपासि सो संसजो बहइ-अं जीयो अत्थि बो वा ? । जआ येएसु-“विशानपनएवेत्थो यूतेत्थः सयुथाप पुनस्तान्येवाहु विनइयति-न येत्पसइअस्ति” इति कहिय मत्थि । अस्स विसए कइयि-दुम येयपपाण अत्थ सम्म न जणासि-भीओ अत्थि, जो विसचेयण विष्णाण सन्नाएअब्बेदि जामिज्जाइ । अइ जीवो न सिया ताहे पुणपाबणं कृत्ता को भवे ! तुअ जन्मदाणाइकज्जकरस्स निमित्त को होज्जा ! तवस्तयेविबुधं-“सत्तै अयमात्माज्ञानमय ” अजो सिद्ध जीओ अत्थिचि । इबाइ पडुबयबं सोषा तस्स मिच्छं नळे लवणमिद, सुज्जोदये विमिरमिच चित्तामणिम्मि दारिदरिमिव गलियं । तेण सम्मच पच । दएण सं भगव फेइ नमंसइ, वदिआ नमसिआ एवं वयासी-मदंठ ! रुक्कस्स उबचं माविं वामणज्जो चिं अइं माइदो तुमं परिक्खितं समायज्जो, तामी ! जो वए मम परिवोहो दलो तेणं संसारजो विरज्जोन्नि अजो न पव्वाविय दु-बन्धपरं । उज्जो भत्तायराजो तारेइ ।

तएणं ममणे भगव मावीरे 'इमो मे पडमो गगरो भविस्स' चिं कहु त पवसइसिस्स सइयं नियइ तेण पव्वावेअं ।

तेणं काळणं तेभं समएण गा'यगाचे इ'धूयं भ्मगांरे समगस्स भगइओ महावीरस्स जेहुं भवेवासी नाए इ'थियासमिए मासासमिए एसमासमिए अ'याणमंडमवनिक्खे'वणासमिए उ'बारपासवणसे'ज्जसिआण प'छिआभियासमिए मगतमिए वयसमिए कायसमिए मण्णुळे वयगुळे कायगुळे गुह गु'चिदिए गुहचंभयारी चाइणेअज्जू तवस्सी लंठिलमे जिइयि सोरी आभियाणे अपुसुण अव'रिहे ससामणए इणमेव निर्माण पावण पुरओ कहु विइइ ।

तेभं इ'धूयणंमं अगारे गोयमगोने सगुस्सेरे समचउरसंठाज सठिए बज्जसिअ नारायणसंयणे कज्जपुमगनियसपन्नागेरे उगगतवे दिगदवे सणतवे महात्वे उठाछे घोरे योरगुणे घो'रतवस्सी योरचंभवेर वामी उ'प'दुमगीरे संविचधित्तलठेउछेस्से चउरमणुब्बी चउणायोवगए स'व'व'स'स'थि'पाई समजस्स भगवओ महावीरस्स अ'दुरसामेने उ'उ'आण अ'दोसिरे क्षाणकोटो'रणए संमयेणं तवसा अप्पाणं यावेमाळे विइइ ॥ २०१०६ ॥

तेन सम्यक्त्वं प्राप्तम् । ततः खलु स भगवन्तं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यत्वा एवमवादीत—भदन्त ! वृक्षस्योच्चत्वं मातु वामनजन इवाहं मतिमन्दस्त्वां परीक्षितुं समागतः । स्वामिन् ! यस्त्वया महं प्रतिबोधो दत्तः, तेन कृतकृत्यः संसाराद्विरक्तोऽस्मि, अतो मां प्रब्राज्य दुःखपरम्पराकुलाद् भवसागरात् तारय ।

ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरः ‘अय मे प्रथमो गणधरो भविष्यति’ इति कृत्वा तं पञ्चशतशिष्य-सहितं निजहस्तेन प्राब्राजयत् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये गौतमगोत्र इन्द्रभूतिरनगरो श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी अनगरो जातः । ईर्यासमितः भाषासमितः एषणासमितः आदानभाण्डामात्रनिक्षेणासमितः उच्चारप्रसन्नवणश्लेष्म शिष्टाणजलपरिष्ठापनिकासमितः वाक्समितः कायसमितः, मनोगुप्तः वाणुप्तः कायगुप्तः गुप्तः गुप्तेन्द्रियः गुप्त-

लिया । तत्पश्चाद् इन्द्रभूति ने भगवान् को वन्दना कि, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार कर के इस प्रकार कहा-भदन्त ! मैं मंदमति आपको परीक्षा करने आया था, मानो जैसे वामन, वृक्षकी ऊंचाई नापने चला हो ! स्वामिन् ! आपने मुझे जो बोध वीज दिया है, उससे मैं कृतार्थ हुआ और संसार से विरक्त हुआ हूँ । अतः मुझे दीक्षित करके अमल दुःखोकी परम्परा से व्याकुल इस संसार-सागर से तार दीजिए, तब श्रमण भगवान् महावीरने ‘यह मेरा प्रथम गणधर होगा’ इस प्रकार कहकर पाँच सौ शिष्यों सहित इन्द्रभूति को अपने हाथ से दीक्षा दी उस काल और उस समय गौतमगोत्रीय इन्द्रभूतिवनगर श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी अनगार हुए । ईर्यासमिति, भाषासमिति एषणासमिति, आदानभान्डमात्रनिक्षेणासमिति, उच्चारप्रसन्नवण श्लेष्मशिष्टाणजलपरिष्ठापन समिति, मनःसमिति वचनसमिति, कायसमिति, मनवचन कायकी गुप्ति से गुप्त

गरीभाहर् हर थाय छे तेम सत्य ज्ञाननी सभज्जु थता तेनुं भित्थालिमान अलोप थर्ह गछुं. तेणु थोडी वात-चीतभा सवर्स्व अल्लु करी दीधु त्थारणाह एन्द्रभूतिअे लगवानने वटना-नमस्कार कर्या, अने ओलवा लाग्थे। ऊ “हे लहन्त ! हुं मइ छुदिवाणे। आपनी परीक्षा करवा आव्थे। इतो जल्ले वामन आउनी उन्थाधने भापवा आल्ले। डोय ! हे स्वामिन् ! आपे ने भने ओध आव्थे। तेना वडे हुं इतार्थ थये। छु ने संसारथी विरति पाग्थे। छुं, भाटे भने दीक्षित करी ड थनी पर पराङ्ग थवे। आ स सारभाथी भने सुत्ता करो.” ‘आ भारे। प्रथम गल्लुधर थशे’ अेम कही पायसे। शिष्यना परिवार सहित एन्द्रभूति आहाणुने लगवाने दीक्षा आपी ते सभदे गौतमगोत्री एन्द्रभूति अल्लुगार श्रमण लगवान महावीरना न्येष्ठ शिष्य भन्थ। धर्धोसमिति, लाषा समिति, ओषणुसमिति, आदान भांडयान निक्षेपण। समिति, उन्थाप्रस्त्रवणश्लेष्मशिष्टाणजलपरिष्ठापनसमिति शुक्ल भन्थ। मनशुमि, वचनशुमि अने

उस्ति न का ? यतो वेदेष्टु-“विद्वानपनदैरैष्ट्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्ताभ्येवानुक्तिमभ्यति न भेत्सप्तसप्ताडस्ति” इति ह्यतिव्यमस्ति । अत्र नियमे कथयामि-त्वं वेदपदानामर्थे सम्यग् न जानासि । जीवोऽस्ति, यच्चित्तैवतन्म- विद्वान्-संज्ञादिसप्तैष्ट्यायते । यदि जीवो न स्यात् तदा पुष्पपापयोः कर्चा को भवेत् ? तत्र यद् दानादिकार्य- ह्यस्य निमित्तं को भवेत् ? स्रग् शालेष्ट्युक्तम्-“सर्वे अयमात्मा ज्ञानमयः” अतः सिद्धम्-जीवोऽस्तीति । इत्यादि प्रबलद्वयं हस्ता तस्य पिप्यात्वं जले स्रज्जमिष यूयोर्ये विमिरमिव, चिन्तामणौ दाग्विषमिव गस्तिम् ।

नीच है या नहीं है? कबों कि वेदों में ऐसा कहा है कि "विज्ञानपनयैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्ताम्येवानु विनश्यति, न मेव्य संश्राप्तिस्ति" इति। अर्थात् विज्ञानपन ही इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं में लीन हो जाता है। परमोक संश्रा नहीं है।" इस विषय में मैं ऐसा कहता हूँ कि तुम वेद के पदों का सही अर्थ नहीं जानते। नीच का अस्तित्व है; जो विषय, चैतन्य, विज्ञान तथा सारा स्रष्टाओं से जाना जाता है। यदि नीच न हो तो पुण्य-पाप का कर्त्ता कौन है? तुम्हारे यज्ञ दान आदि कार्य करने का निमित्त कौन है? तुम्हारे आलस में भी कहा है—'सर्वे भयमात्मया ज्ञानमयः' इति। अर्थात् 'बद आत्मा निष्पन्न ही ज्ञानमय है।' अतः सिद्ध हुआ कि नीच है। इत्यादि प्रश्न के बचन सुनकर इन्द्रधनुषि का मिथ्यात्व, बल में तमक की भ्रष्टि, दूर्योधन में अंधकार की तरह तथा चिन्तामणि रत्न की उपलम्बि हो ने पर दृष्टिता की तरह गल गया। उन्हींने सम्यक्त्व प्राप्त कर

‘જુ રહે તેણે’ વેદવાક્યને’ પણ યોગ્ય છે ? આ વેદવાક્યને જોઈને કહે છે “વિદ્યાનપનપનૈતેભ્યો યુતેભ્યઃ સમુત્થાય પુનસ્તાન્યેવાનુવિનયસિ, ન મેલસંક્રાન્તિ” ઇતિ વિદ્યાનપનન આ શ્લોકી ઉત્પન્ન થાય છે, જાને તે વિદ્યાનપન પાશ્વ પ્રાચીનિમાં આ લીન થઈ જાય છે, જાને તેથી, આ વિદ્યાનપનમાં પરલોક સચા નથી, આ પ્રાચીન વેદ વાક્ય, છે તે વગર ને ? , આ પ્રમાણેના વેદવાક્યનું પુનરાવર્તનનું કારણ, ભગવાન ઓતમને કહે છે કે, “ હે ઓતમ ! તું આ વેદવાક્યને બાઈ બાઈને સમજાવું છું કે ભગવત્ સ્વસ્તિત્વ છે કાસ્તુ કે જા ‘વિદ્યાનપન’ પશુ ચિત્ત, ચૈતન્ય, વિદ્યાન તથા સચા વસ્તુઓ દ્વારા બની રાખાય છે ” જો ભગવત્ કહેવાલી ન હોય તો પુનરાવર્તનને કયા કોને ગણવો ? તમામ થઈ, જાન વિગેરે કાર્ય કરવાવાળા નિમિત્તસ્થ કોણ છે ? તમામ વેદ વાક્યમાં કહ્યું છે કે ‘આ આત્મા નિઃકલમ્બી સ્વામય છે અર્થાત્ આ આત્મા પુરુષ સ્વામિય ક જ છે આથી ચિત્ત થાય છે કે રસક પ્રાણમાં ભવ નામનું વલ્લ યોગ્ય છે

પ્રતિ ભગુજીના પુનિભાગથી મદદ કરવા માટે જાણીતા સ્વ. પુનિભાગના પુત્રોના નામો આપવામાં આવે છે. આમાંથી કોઈ પણ એક નામ પસંદ કરીને તેના આધારે ભગુજીના પુનિભાગના પુત્રોના નામો આપવામાં આવે છે. આમાંથી કોઈ પણ એક નામ પસંદ કરીને તેના આધારે ભગુજીના પુનિભાગના પુત્રોના નામો આપવામાં આવે છે.

तेन सम्यक्त्वं प्राप्तम् । ततः खलु स भगवन्तं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत-भदन्त ! वृक्षस्योच्चत्वं मातु वामनजन इवाहं मतिमन्दस्त्वां परीक्षितुं समागतः । स्वामिन् ! यस्त्वया महं प्रतिबोधो दत्तः, तेन कुतकृत्यः संसाराद्विरक्तोऽस्मि, अतो मां प्रत्राज्य दुःखपरम्पराकुलाद् भवसागरात् तारय ।

ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरः 'अय मे प्रथमो गणधरो भविष्यति' इतिकृत्वा तं पञ्चशतशिष्य-सहित निजहस्तेन प्रात्राजयत् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये गौतमगोत्र इन्द्रभूतिरनगारो श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी अनगारो जातः । ईर्यासमितः भाषासमितः एषणासमितः आदानभाण्डामात्रनिक्षेपणासमितः उच्चारप्रस्रवणश्लेष्म शिङ्घाणजल्लपरिष्ठाफनिकासमितः वाक्समितः कायसमितः, मनोगुप्तः वागुप्तः कायगुप्तः गुप्तः गुप्तेन्द्रियः गुप्त-

लिया । तत्पश्चात् इन्द्रभूति ने भगवाव् को वन्दना कि, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार कर के इस प्रकार कहा-भदन्त ! मैं मंदमति आपको परीक्षा करने आया था, मानो जैसे वामन, वृक्षकी ऊचाई नापने चला हो ! स्वामिन् ! आपने मुझे जो बोध बीज दिया है, उससे मैं कृतार्थ हुआ और संसार से विरक्त हुआ हूँ । अतः मुझे दीक्षित करके अमल दुःखोकी परम्परा से व्याकुल इस संसार-सागर से तार दीजिए, तब श्रमण भगवान् महावीरने 'यह मेरा प्रथम गणधर होगा' इस प्रकार कहकर पाँच सौ शिष्यों सहित इन्द्रभूति को अपने हाथ से दीक्षा दी उस काल और उस समय गौतमगोत्रीय इन्द्रभूतिअनगार श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी अनगार हुए । ईर्यासमिति, भाषासमिति एषणासमिति, आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति, उच्चारप्रस्रवणश्लेष्मशिङ्घाणजल्लपरिष्ठापन समिति, मनःसमिति वचनसमिति, कायसमिति, मनवचन कायकी गुप्ति से गुप्त

गरीभाई हर थाय छ तेम सत्य ज्ञाननी सभज्जु थता तेनुं भिआलिमान अढोप थई गथुं. तेबु थेडी वात-चीतमा सर्वस्व अइसु करी दीधु त्थारणाइ इन्द्रभूतिअे लगवानेने वदना-नमस्कार कथो, अने छोदवा लाज्ये. डे "डे लदन्त ! डुं भइ थुद्धिवाणे! आपनी परीक्षा करवा आन्ये. इतो जेबु वामन आउनी उंचाईने मापवां आदथे डोय ! डे स्वाभिन् ! आये जे मने जोध आप्ये तेना वडे डुं कृतार्थ थये छु ने संसारथी विरति पाभ्ये. छुं, माटे मने दीक्षित करी डुं अपनी परपरइय जेवा आ ससारमाथी मने मुक्त करे." 'आ मांशे प्रथम गणधर थये' जेम कही पायसे। शिष्यना परिवार सहित इन्द्रभूति आद्वज्जुने लगवाने दीक्षा आपी. ते सभये गौतमगोत्री इन्द्रभूति अखुगार श्रमण लगवान महावीरना ज्येष्ठ शिष्य मन्या. धर्धोसमिति, लाषा समिति, ओषण्णासमिति, आदान लाउपात्र निक्षेपणा समिति, उच्चारप्रस्रवणश्लेष्मशिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनसमिति युक्त अन्या मनशुसि, वचनशुसि अने

ग्रामचारी त्यागी पने सज्जुः सपत्नी सान्निधयः जितेन्द्रिया शोषिः अनिदानः अत्यौत्सुक्यः (अवरिद्धः) अन्तरितः सुभामप्पराटः इदमेव नैर्घ्रन् प्रपचर्न पुरतः कृत्वा विहरति । स सख इन्द्रधृतिर्मानगारो गौतमगोषः समोरसेषः समवदुरस्रस्यानर्तस्यिष्ठः ब्रह्मश्रुपभनाराससहननः कनकपुलकनिकपयशगौरः उग्रतपाः विमुक्तपाः तप्तपाः महातपाः उदारः पौरः पोरगुणः घोरतपस्यो पोरगप्रचयवासी उत्सिक्तशरीरः संक्षिप्तपिप्लवेकोऽेयः चतुर्दन्तुर्लौ चतुर्दानीपगतः सनोत्तरसनिपाती भ्रमकस्य भगवतो महावीरस्यादूरसामन्ते ऊर्ध्वजानुरधःक्षिराः स्थानकपेडोपगतः सयमेन तपसा आत्मानं याचयमानो विहरति ॥ सु० १०६ ॥

गुणोद्भूतः शुद्धमहाभारती त्वाणी, वनकीलकायंही वनस्पति के समान पाप से लज्जित होनेवाले, उपस्थी, समा करने में समर्थ, जिनेन्द्रिय, विजिज्ञापक, निदान रहित, उत्पत्तिका रहित, अस्वरित (स्थिर), समीचीन संयम में कीन हुए । इसी निर्गन्ध प्रबलन को आगे ढाके विचरने लगे । वह गौतमगोष्ठीय इन्द्रधृति नामक अनगार सात हाथ ऊँचे, समबद्धाक्ष सस्यानवाले तथा वक्रकण्ठम नाराचर्मनन से सम्पन्न थे । सुवर्णके डुकुडकी कसीदीपर पिंसी हुई रेखा के समान तथा कमलकी केसरके समान गौर र्ण थे । उग्रतपस्वी, दीप्त तपस्वी, तलतपस्वी, महातपस्वी, उदार, पौर, योग्यणी, घोरतपस्वी वीरब्रह्मचारी, देशको यमता से रहित, विश्वास-तनोकेयनाही संतप्त करके रहनेवाले, बोध पूर्वों के ज्ञाता चार ज्ञानों से युक्त और समस्त असरों के ज्ञाता थे । भ्रमण भगवान् महावीर से न अधिक दूर और न अधिक समीप में ऊपर घुटने और नीचा सिर किये गये ध्यान करी कोष्ठ में मात होकर संयम और तपसे आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे । ॥सू०१०६॥

[illegible]

टीका—“तेणं कालेण तेणं समएणं” इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये=सपरिवारस्येन्द्रभूतेः प्रश्रुपाथे समागमनकालावसरे श्रमणो भगवान् महावीरः, तं=सगर्वपुण्यगतम्, इन्द्रभूतिं “भो गौतमगोत्रोत्पन्न ! हे गौतम-गोत्रोत्पन्न ! इन्द्रभूते !” इति एतत्पदेन सम्बोध्य=अभिबुलीकृत्य हितया=कल्याणकारिण्या सुखया=धुखजनिकया, मधुरया=मिष्टया वाण्या अभापत, सः इन्द्रभूतिः भगवतः=श्रीमहावीरस्वामिनः, वचनं=गोत्रनामोच्चारणं श्रुत्वा, पुनः=भूयः, अतीव=अत्यन्तं चकितचित्तः=विस्मितमनाः जातः, ‘अहो-आश्चर्यम् अनेन-महावीरेण मम=अपरिचितस्य नाम, कथं=केन प्रकारेण ज्ञातम्?’ एवम्=इत्थं मनसि विचार्य=निवित्त्य तेन=इन्द्रभूतिना समाहितम्=स्वमनसि स्वयमेव समाधानं कृतम्-अत्र=मम नामगोत्रज्ञाने किमाश्चर्यम्? को त्रिस्मयः? यत्=यस्माद्धेतोः जगत्प्रसिद्धस्य त्रिजगद्गुरोः=लोकत्रयगुरोः मम नाम कः=वालो युवा वा सग्विरो वा न जानाति?, अपि तु आचालं प्रसिद्धं मन्नामगोत्र सर्वोऽपि जनो जानाति । यदि मम मनसि यः संशयो वर्तते स कथयति, च=पुनः छिनत्ति=दूरीकरोति

टीका का अर्थ—उस काल में और उस समय में, अर्थात् जब इन्द्रभूति अपने शिष्यपरिवार के साथ, गर्व सहित, भगवान् महावीर के समीप पहुँचे तब, भगवान् ‘हे गौतम गोत्र में उत्पन्न इन्द्रभूति । इस पद से संबोधित कर के कल्याणकारिणी सुखकारिणी और मधुर वाणी से बोले । भगवान् के द्वारा किया गया अपने नाम और गोत्र का उच्चारण सुनकर इन्द्रभूति के मन में अत्यन्त आश्चर्य हुआ । वह साचने लगे कि महावीरने मुझ अपरिचित का नाम-गोत्र कैसे जाना? ऐसा सोचकर फिर इन्द्रभूतिने अपने मन में समाधान कर लिया कि मेरा नाम-गोत्र जानलेने में आश्चर्य क्या है? मैं जगत् में विख्यात हूँ, और तीनों लोकों का गुरु हूँ । कौन बालक, युवक और वृद्ध है जो मेरा नाम न जानता हो? हाँ, आश्चर्य तो तब गिनुगा जब यह मेरे मन में जो संशय है, उसको कह दें और उसका निवारण भी कर दें ।

टीकानो अर्थ—ते क्षणे અને તે સમયે એટલે કે જ્યારે ઇન્દ્રભૂતિ પોતાના (શિષ્ય) રિવારની સાથે ગર્વ સહિત ભગવાન મહાવીરની પાસે પહોંચ્યા ત્યારે ભગવાને “હું ગૌતમગોત્રી ઇન્દ્રભૂતિ” એ પદથી સંબોધીને કલ્યાણકારી, સુખકારી અને મધુર વાણીથી બોલ્યા ભગવાન દ્વારા કરાયેલ પોતાના નામ અને ગોત્રનું ઉચ્ચારણ સામગીતે ઇન્દ્ર-ભૂતિના મનમાં ઘણું આશ્ચર્ય થયું તે વિચારવા લાગ્યા કે ભગવાને અપરિચિત એવા મારું નામ-ગોત્ર કેવી રીતે જાણ્યું? એવું વિચારીને ફરી ઇન્દ્રભૂતિએ પોતાના મનનું સમાધાન કર્યું કે નામ-ગોત્ર બાણવામા નવાઇ શો છે? હું જગતમાં વિખ્યાત છું અને ત્રણે લોકોના ગુરુ છું. એવો કયો પ્રાણક, યુવક અને વૃદ્ધ છે કે જે મારું નામ નહીં જાણે. હોય? હા, નવાઇ તો ત્યારે માનીશ જ્યારે તે મારા મનમાં જે સંશય છે તેને કહી દે અને તેનું નિવારણ પણ કરી નાખે

च, तदा भाषये गच्छते । एषम्-इत्ये विचारयन्त तम्-इन्द्रयूतिं भगवान् उक्तवान्-गीतम् । इन्द्रयूते !
 तव मनसि एतादृश-चक्षुषाभ्यङ्गरुः संशयो वर्तते, यत्-जीवोऽस्ति न वा ? यतो वेदेयु-“विज्ञानयनएवेतेभ्यो
 भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञास्ति” इति-इत्ये कथितम्-उक्तम् अस्ति । अत्र-अस्मिन् विषये
 कथयामि त्वम् वेदपदानां-वेदोक्तपदानाम् अर्थे सम्पर्क-यथार्थतया न जानासि, तव ज्ञातोऽर्थः-“विज्ञानमेवयना
 नन्दादिरूपत्वात् विज्ञानयनः स एव एतेभ्यः प्रत्यक्षतः परिच्छिद्यमानस्वरूपेभ्य पृथिव्यादिरूपणेभ्यो भूतेभ्यः
 समुत्था-उत्पद्य पुनस्तान्येवानुविनश्यति-तत्रैवाव्यक्तस्त्वतया संलीनो यथोति भावः । न प्रत्य संज्ञास्ति-युत्वा
 पुनर्न म मेतरेभ्युच्यते तत्संज्ञा-परलोकांस्तेषां नास्तीति भावः । एतेन जीवो नास्ति, इति त्वं मन्यसे । यथार्थ-
 स्त्वयम्-विज्ञानयनएवेतिज्ञानोपयोगदर्शनोपयोगरूपं विज्ञानं ततोऽन्यत्वाद् काल्पा विज्ञानयनः, प्रतिपदेत्

गौतम इन्द्रयूति यह सोच ही रहे थे कि भगवान्ने उनसे कहा है गौतम-इन्द्रयूति । तुम्हारे मन में यह
 संदेह है कि जीव (आत्मा) का अस्तित्व है या नहीं है ? क्यों कि वेदों में ‘विज्ञानयन एवेतेभ्यो भूतेभ्यः
 समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञास्ति’ ‘विज्ञानयन आत्मा’ भूतों से उत्पन्न होकर उनहीं में लीन हो जाता
 है, परमोक्तसंज्ञा नहीं है’ ऐसा कहा है । मैं इस विषय में कहता हूँ तुम वेद-यथोक्ता वास्तविक अर्थ नहीं जानते ।
 उक्त वेदवाच्य का तुम्हारा जाना हुआ अर्थ यह है-‘यने भानन्द’ यदि त्वत्त्व होने के कारण विज्ञान ही
 विज्ञानयन कहलाता है । वह विज्ञानयन ही प्रत्यक्ष से प्रतीत होनेवाले पृथ्वी आदि भूतों से उत्पन्न होकर, भूतों
 में ही अल्पकाल से लीन हो जाता है । यद्यु के बाद फिर बन्म लेना प्रेत्य कहलाता है । ऐसी प्रेत्यसंज्ञा
 अर्थात् परमात्मसंज्ञा नहीं है ।’ इससे तुम मानते हो कि जीव नहीं है । इस वाक्य का वास्तविक अर्थ यह है

गौतम इन्द्रयूति आभ विचारता व कहा त्वादे भगवाने तेभाने कहु-“हे गौतम ! इन्द्रयूति तभाभा भनभा
 आ सदेह छे हे एव (आत्मा) अस्तित्व छे हे नभी ? हाथु हे वेदोभा ज्येउ कहेव छे हे-“विज्ञानयन एवे
 तेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञास्ति ? इति विज्ञानयन आत्मा भूतोभा उत्पन्न भवति
 भवता नभी, प्रतीक वेदवाक्येन तथे समर्थेव ज्ञान आ छे-“यन आनद आति स्वप्न होवाने हाथे विज्ञान व
 विज्ञानयन कहेवा छे ते विज्ञानयन व प्रत्यक्षो प्रतीत बनार पुनो आदि वेदोभा उत्पन्न भवति वेदोभा व
 आनद एवे लीन कर्ष ज्ञान छे यद्यु लीन ही व भ वेदो प्रेत्य कहेवा छे ज्येवी प्रेत्यवा ज्येउ हे परमोक्त-
 नभनद्वय सदा नभी, वेदी तथे माने छे हे एव नभी, जे वाक्येन वास्तविक ज्ञान आ छे-जानेवशेन ज्ञाने

मनन्तविज्ञानपर्यायसंघातात्मकत्वाद्वा आत्मा विज्ञानघन एव, सोऽयमात्मा एवेभ्यो भूतेभ्यः पृथिव्युदकादिभ्यः समुत्थाय घटविज्ञानपरिणतो हि आत्मा घटाद् भवति तद्विज्ञानक्षयोपशमस्य तत्राऽऽक्षेपात्, अन्यथा निरालम्ब-
नतया तस्यालीकृताप्रसक्तिः स्यादिति तेभ्यः पृथिव्युदकादिभ्यो भूतेभ्यः कथंचिदुत्पद्य, पुनः उत्पत्त्यनन्तरम्
तान्येव भूतानि=पृथिव्यादीनि श्रुतिनिश्चयति तेषु विचक्षितेषु भूतेषु आत्माऽपि तद्विज्ञानघनात्मना उपरमते, अन्य-
विज्ञानात्मना उत्पद्यते, यद्वा-व्यवहितेषु तेषु सामान्यचैतन्यरूपतयाऽवतिष्ठते, इति न प्रेत्य संज्ञाऽस्तित्=प्राकृतिक
घटादि विज्ञानसंज्ञाऽवतिष्ठते इति ।” एतेन जीवोऽस्वीति मतं सिध्यति । यः=जीवः चित्तचैतन्यविज्ञानसंज्ञा-
दिलक्षणैः-चित्तम्=अन्तःकरणविशेषः, चैतन्यं=चैतनत्वं-संज्ञानकर्तृत्वम्, विज्ञानं=विशिष्ट, ज्ञानं, संज्ञा=वेष्टा इत्या-

ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगरूप विज्ञान विज्ञानघन कहलाता है । विज्ञान से अभिन्न होनेके कारण आत्मा विज्ञानघन है । अथवा आत्मा का एक-एक प्रदेश अनन्त विज्ञान-पर्यायोका समूहरूप है, इसकारण आत्मा विज्ञान घन ही है । यह आत्मा अर्थात् विज्ञानघन भूतों से उत्पन्न होता है, क्योंकि घट के कारण आत्मा घटविज्ञानरूप परिणति से युक्त होता है क्योंकि-घटविज्ञान के क्षयोपशमका अर्थात् घटविज्ञान के आवरण के क्षयोपशम का वहाँ आप्तेम होता है; अन्यथा निर्गम्य होने के कारण उसमें मिथ्यापन का प्रसंग हो जायगा । अत एव पृथ्वी आदि भूतों से कथंचित् उत्पन्न होकर, बाद में आत्मा भी, उन भूतों के नष्ट हो जाने पर, उस भूत विज्ञानघनरूप पर्याय से नष्ट हो जाता है । अथवा भूतों के अलग हो जाने पर सामान्य चैतन्य के रूप में स्थिर रहता है, अतः उसकी प्रेत्यसंज्ञा नहीं है, अर्थात् प्राकृतिक घटादि विज्ञानकी संज्ञा उसमें नहीं रहती है । इससे जीव है यही मत सिद्ध होता है । अन्तःकरण को चित्त कहते हैं चैतनके भावको चैतन्य कहते हैं,

वर्धनोपयोग इय विज्ञान विज्ञानघन कहेवाय छे विज्ञानथी अबिन्न होवाथी आत्मा विज्ञानघन छे अथवा आत्मानो ओइ ओइ ओइ प्रदेश अनन्त विज्ञान-पर्यायोना समूहइय छे, ते कारणे आत्मा विज्ञानघन छे आत्मा ओटले छे विज्ञानघन भूताथी उत्पन्न थाय छे, कारणे के घटनें कारणे आत्मा घटविज्ञान इय परिणितवाणो होय छे कारणे के घटविज्ञानना क्षयोपशमने ओटले के घटविज्ञानना आवरणना क्षयोपशमने तया आक्षेप होय छे, नहीं तो निविषय होवाने कारणे तेमा मिथ्यापणानो प्रमग अर्थे जशे तेथी पृथ्वी आदि भूतोथी कथांके उत्पन्न थाधने पछी आत्मा पछे ते भूतोना नाश अता ते भूत-विज्ञानघन इय पर्यायथी नाश पावे छे अथवा भूतो अलग अतां सामान्य चैत-
न्यना इये स्थिर रहे छे, तेथे तेनी प्रेत्य संज्ञा नहीं ओटले प्राकृतिक घटादि विज्ञानकी संज्ञा तेमां रहेती नहीं, तेथी ओइ ओइ मत सिद्ध थाय छे अतःकरणे अित्त कहे छे चैतनना भावने चैतन्य कहे छे ओटले के संज्ञानेना

दिनी यानि सश्रृणानि=स्वरूपाणि तैर्वायते=लक्ष्यते, अतश्चिषादिलक्षणलक्ष्यमाणत्वाज्जीवोऽस्तीति सिद्ध्यति । पुनरपि नीरसापनोपायमाह-‘ज्वर’ इत्यादि । यदि जीवो न स्यादन्तर्भवत् तदा=वर्ति=जीवाऽस्तस्यै पुण्य-पापयोः कर्ता कः=नीरातिरिक्तो भवेत् ? अपि तु न कोऽपि भवेत्, नहि पुण्यपापानुसङ्ग्यापारो जीवं विना सम्भवति तस्मात् पुण्यपापधर्त्ताज्जीवोऽस्तीति सिध्यति । पुनर्जीवोऽस्तीति मतं पुण्याति ‘दुष्क’ इत्यादि-वशामित्यस्य यद्भ्रानादिकार्यकृत्तत्वं निमित्तं जीवं विना को भवेत् ? अपि तु जीव एव तत्कृणनिमित्तं भवितुं शक्तिः, व्यापारस्य बीजापीनत्वात् तस्माज्जीवोऽस्तीतिसिध्यति । इत्थं जीवास्तित्व साधयित्वा सम्प्रति वेदप्रमाणेन तत्साधयितुमाह-‘वच सत्ये चि’ इत्यादि-उच शब्देऽपि उक्तमस्ति-“सर्वे भ्रममात्रमा ज्ञानमयः” सा=चिषादि

अर्थात् संज्ञान का जो कर्ता हो वह वैतथ्य है । त्रिषिष्ट ज्ञान विज्ञान करवाता है । वेष्टा सब करवाती है । इन विच, चैतन्य, विज्ञान और सब आदि स्रष्टाओं से जीव का ज्ञान होता है, इससे जीवकी सिद्धि होती है ।

मीरक्री सिद्धिका दूसरा उपाय बतलाते हैं-भ्रमर्जीव न हो तो पुण्य और पाप का कर्ता जीव के भवितुम् दूसरा दौन होता ? अर्थात् कोई भी नहीं हो सकता । जीव के विना पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाला व्यापार संभव नहीं है । इसलिये पुण्य-शपका कर्ता होने से जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है । जीव है इस मत को फिर पुष्ट करते हैं-सुम्हारे मामले हुए यद्भ्रान आदि कार्यों के करने का निमित्त, जीव के अभाव में, कौन होगा ? जीव ही उन कार्यों के करनेका निमित्त हो सकता है, क्यों कि व्यापार बीव क बनान है । इससे भी जीव है, यह सिद्ध होता है । इस प्रकार जीवका अस्तित्व सिद्ध करके अब ब्रह्म के प्रमाण से उसे सिद्ध करने के लिए करते हैं-सुम्हारे ज्ञानमें भी कहा है-“सर्वे भ्रममात्रमा ज्ञानमयः”

ये बता देंगे त चैतन्य है निश्चित ज्ञान विद्वान् भवेवाच है वेष्टा स मा भवेवाच है जो विच, चैतन्य, विज्ञान जने स मा आदि वक्ष्येमीत्यनु ज्ञान बाध है तेषी अन्यी सिद्धि बाध है

अन्यी सिद्धि (सांनिदी)ने भीने उवाच बनावे है-जो अन्य न होय तो पुन्य जने आपने। बता अन्य सिद्धय तेषी पुन्य-पापने। बता कोणासी अन्य अस्तित्व सिद्ध बाध है अन्य है आ भवते इसी पुष्ट भरे है-तभी आनेक यद्भ्रान आदि क्षीरी भ्रमरानु ज्ञानात् अन्य ज्ञानात् अन्य अभावमा होय क्षीरी है अन्य न ते क्षीरी भ्रमरानु निमित्त कोष्ट भरे है क्षीर है नपाय अन्य आधीन है तेषी पुन्य अन्य है जो सिद्ध बाध है आ नीने अन्य अस्तित्व सिद्ध भरीने बने वेदना यद्भाष्यती तेने। कह भ्रमने भरे भरे है-तभी आनेक बाध है-‘सर्वे भ्रममात्रमा ज्ञानमयः’

लक्षणलक्ष्यमाणोऽवयवम्—एष आत्मा—जीवः, ज्ञानमयः—ज्ञानघनरूपः इति, अतः जीवोऽस्तीति मतं सिद्धम्।—
 इत्यादि प्रयुक्चनं श्रुत्वा तस्य=इन्द्रभूतेः मिथ्यात्वं जले लवणमिव सूर्योदये तिमिरमिव, चिन्तामणौ दारिद्र्य-
 मिव गलितं=नष्टम्। तेन मय्यर्त्तव्यं प्राप्तम्। ततः खलु सः=इन्द्रभूतिः भगवन्तः=श्रीमहावीरप्रभुं वदन्ते नमस्यति,
 वन्दिता नमस्यत्वा, एवं वक्ष्यमाणं वचनम् अत्रादीत—हे भदन्त ! वृक्षस्य उच्चत्वम् मातुं=परिच्छेदुं वामनजन
 इव अहम् मत्तिमन्दः=अल्पबुद्धिः त्वया=सर्वज्ञं श्री वीरस्वामिनं परीक्षितुं समागतः। हे स्वामिन् ! यस्त्वया मह्यं
 प्रतिबोधो दत्तः, तेन=प्रतिबोधेन अहं ससाराद् विरक्तो जातोऽस्मि। अतः=सांसारिकविषयतो विरक्तत्वात् मां
 प्रवाज्य=दीक्षित्वा दुःखपरम्पराऽऽकुलात्=अनेक दुःखयुक्तात् भवसागरात्=संसारसमुद्रान् तारय।

ततः—खलु श्रमणो भगवान् महावीरः “अगम्=इन्द्रभूतिः मे=मम प्रथम=आद्यः, गणधरो भविष्यति”
 इति कृत्वा तम=इन्द्रभूतिं पञ्चशतशिष्यसहित निजहस्तेन—प्रावाजयतु=दीक्षितवान्।

चित्त आदि लक्षणों से प्रतीत होनेवाला यह आत्मा ज्ञानघनरूप है। अतःजीव है, यह मत सिद्ध हुआ।
 इत्यादि प्रभु के वचनोंको सुनकर इन्द्रभूतिका मिथ्यात्व उसी प्रकार गल गया, जैसे जल में लवण गल जाता
 है, सूर्यका उदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है और चिन्तामणि की प्राप्ति हो जाने पर दारिद्र्यता का नाश
 हो जाता है। इसी तरह इन्द्रभूति को सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गई।

तदपश्चात् इन्द्रभूति ने भगवान् महावीर को वन्दन और नमस्कार किया। वन्दन=नमस्कार करके इस
 प्रकार कहा—भगवन् ! जैसे वामन-छोटि कायवाला वृक्ष की ऊँचाई को मापने के लिए चले, उसी प्रकार
 मैं मति हीन आप सर्वज्ञकी परीक्षा करनेवाला था ! हे भगवान् ! आपने मुझे जो बोध दिया है, उस से
 मैं कृतकृत्य हो गया। मैं संसार से विरक्त हो गया हूँ। विरक्त होने के कारण मुझे दीक्षा प्रदान करके

चित्त आदि लक्षणोंवाली प्रतीत थनार आ आत्मा ज्ञानघन रूप छे तेथी एव छे अये मत सिद्ध थये। एत्थाहि प्रभुनां
 वचने सांख्यीने इन्द्रभूतिदु मिथ्यात्व ओज प्रभावे ओगणी गथु के नेम पाणीमां भोहु ओगणी नय छि,
 सूर्यना उदय थता अंधकार नाथ पाये छे अये चिन्तामणी भणतां नेम दक्षिता नाथ पाये छे। इन्द्रभूतिने सम्यक्-
 त्वनी प्राप्ति थय थारयाह इन्द्रभूतिओ भगवान् भडुवीरने वंदना अये नमस्कार कयां वन्दन=नमस्कार करीने आ
 प्रभावे कछु—भगवन् ! नेम वागन वृक्षनी उचाई मापवाने भाटे नय तेम हुं भतिहीन आप सर्वज्ञनी परीक्षा करवा
 आब्यो इतो छे प्रयो ! आपे मने ने ओध आब्यो छे तेथी हुं कृतकृत्य थये। छुं हुं संसारथी निरुक्त थय गये। छुं
 विरक्त थवाने कारणे मने दीक्षा आपीने हुं ओथी लखेव आ संसार इपी सागरभांथी तादे त्यारे भगवान् भडुवीरे
 “अगम्, इन्द्रभूति भाने, गणधर थये” ओम कहीने पावसे। थिये। साथे इन्द्रभूतिने पोटाने डाये दीक्षा आपी

दिनी यानि सप्तजानि=स्वरूपाणि सौर्वायते=असृष्टे, अतश्चिषादिब्रह्मण्यस्यमाणत्वाज्जीवोऽस्तीति सिध्यति ।
 पुनापि नीनसापनोपायमाह-‘नृ’ इत्यादि । यदि जीवो न स्यात्तन्न भवेत् तदा=तर्हि=जीवाऽसत्त्वे पुण्य-
 पापयोः कर्ता कः=जीवाविरक्तो भवेत् ? अपि तु न कोऽपि भवेत्, नहि पुण्यपापानुरूपम्यापारो जीवं विना
 सम्भवति तस्मात् पुण्यपापार्थत्वाज्जीवोऽस्तीति सिध्यति । पुनर्जीवोऽस्तीति मतं पुण्याति ‘कुष्क’ इत्यादि-
 त्वाभिमितस्य यद्गदानादिकार्यकृतस्य निमित्त जीवं विना को भवेत् ? अपि तु जीव एव उत्तरणनिमित्त भवितु
 मर्हति, व्यापारस्य जीवापीनस्यात् तस्माज्जीवोऽस्तीतिसिध्यति । इय जीवास्तित्व साधयित्वा सम्प्रति वेदप्रमाणेन
 तस्मात्पयितुमाह-‘तत्र सत्यं चि’ इत्यादि-तत्र ब्रह्मेऽपि उत्कमस्ति-“सुखे भयमात्रमा ज्ञानमयः” सः=विषादि

भर्गात् संज्ञान का नो कर्त्ता हो कर देतन्व है । भिच्छि ज्ञान विज्ञान कहकाता है । चेष्टा संज्ञा कहकाती है ।
 इन विष, चैतन्य, विज्ञान और सत्ता आदि सत्तकों से जीव का ज्ञान होता है, इससे जीवकी सिद्धि होती है ।

जीवकी सिद्धिका दूसरा उपाय बतलाते हैं-अगर जीव न हो तो पुण्य और पाप का कर्त्ता जीव के
 भविरक्त दूसरा कौन होगा ? अर्थात् कौन भी नहीं हो सकता । जीव के विना पुण्य-पाप को उत्पन्न
 करनेवाला व्यापार संभव नहीं है । इसलिये पुण्य-पापका कर्त्ता होने से जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है ।
 जीव है इस मत का फिर पुष्ट करते हैं-दुम्भारे माने हुए यक्ष्मान आदि कार्यों के करने का निमित्त,
 जीव के समाव में, कौन होगा ? जीव ही उन कार्यों के करनेका निमित्त हो सकता है, क्यों कि व्यापार
 जीव क अनीन है । इससे भी जीव है, यह सिद्ध होता है । इस प्रकार जीवका अस्तित्व सिद्ध करके अब
 वेद के प्रमाण से उसे सिद्ध करने के लिए करते हैं-दुम्भारे ब्राह्मणों की कथा है-“सुखे भयमात्मा ज्ञानमयः”

ले इतों दोष तं चैतन्य है निश्चित ज्ञान विज्ञान उहेवाच है ब्रह्म सत्ता उहेवाच है जो विष, चैतन्य, विज्ञान
 और सत्ता आदि लक्ष्योधी लक्ष्य ज्ञान बाध है तेषी लक्ष्मी सिद्धि बाध है

लक्ष्मी सिद्धि (सांनिध्य)ने भीले उपाय जनाये छे-जो लक्ष्मी न होय तो पुण्य करने पापने। इतों लक्ष्मी सिद्धि
 भीष्ट होय छे। कोटरे के कर्म पण्य कोर्ष न दहे लक्ष्मी विना पुण्य पापने उत्पन्न भेनार व्यापार संचलित नही।
 तेषी पुण्य-पापने। इतों दोषाधी लक्ष्मी अस्तित्व सिद्ध बाध छे लक्ष्मी छे आ भवने इरी पुष्ट हरे छे-तभी मानेद
 यसमान आदि भावो कल्पन ज्ञानमय अक्षयमा होय छे। लक्ष्मी ते भावो कल्पन निमित्त कोर्ष सहे
 छे भाव है व्यापार लक्ष्मी अनीन छे तेषी पण्य लक्ष्मी छे जो सिद्ध बाध छे आ रीने लक्ष्मी अस्तित्व सिद्ध
 इनीने दवे वेदना प्रभावधी तेने। बाध इराने भोटे हरे छे-तथाका बाधोभा पण्य उहेद छे-‘लक्ष्मी अस्तित्वका बाधमय’

लक्षणलक्ष्यमाणोऽयम्=एव आत्मा-जीवः, ज्ञानमयः=ज्ञानधनरूपः इति, अतः जीवोऽस्तीति मतं सिद्धम् । इत्यादि प्रयुक्चनं श्रुत्वा तस्य=इन्द्रभूतेः मिथ्यात्वं जले लवणमिव सूर्योदये तिमिरमिव, चिन्तामणौ दारिद्र्यमिव गलित=नष्टम् । तेन मम्यत्वं प्राप्तम् । ततः खलु सः=इन्द्रभूतिः भगवन्तः=श्रीमहावीरप्रभुं वदन्ते नमस्यति, चन्द्रिदा नमस्यत्वा, एवं वक्ष्यमाणं वचनम् अर्थादित-हे भदन्त ! वृक्षस्य उच्चत्वम् मातुं=परिच्छेत्तुं वामनजन इव अहम् मतिमन्दः=अल्पबुद्धिः तत्रा=सर्वज्ञं श्री वीरस्वामिनं परीक्षितुं समागतः । हे स्वामिन् ! यस्त्वया महं प्रतिबोधो दत्तः, तेन=प्रतिबोधेन अहं संसाराद् विरक्तो जातोऽस्मि । अतः=सांसारिकविषयतो विरक्तत्वाद् मां प्रवाज्य=नीक्षित्वा दुःखपरम्पराऽऽकुलात्=अनेक दुःखयुक्तात् भवसागरात्=संसारसमुद्राद् तारय ।

ततः=खलु श्रमणो भगवान् महावीरः “अयम्=इन्द्रभूतिः मे=मम प्रथम=आद्यः, गणधरो भविष्यति” इति कृत्वा तम्=इन्द्रभूतिं पञ्चशतशिष्यसहित निजहस्तेन-प्रात्राजयत्=दीक्षितवान् ।

चित्त आदि लक्षणां से प्रतीत होनेवाला यह आत्मा ज्ञानधनरूप है । अतः जीव है, यह मत सिद्ध हुआ । इत्यादि प्रभु के वचनोंको सुनकर इन्द्रभूतिका मिथ्यात्व उसी प्रकार गल गया, जैसे जल में लवण गल जाता है, सूर्यका उदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है और चिन्तामणि की प्राप्ति हो जाने पर दारिद्र्यका नाश हो जाता है । इसी तरह इन्द्रभूति को सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गई ।

तत्पश्चात् इन्द्रभूति ने भगवान् महावीर को वन्दन और नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा-भगवन् । जैसे वामन-छोटि कायवाला वृक्ष की ऊँचाई को मापने के लिए चले, उसी प्रकार मैं मति हीन आप सर्वज्ञकी परीक्षा करनेवाला था ! हे भगवान् ! आपने मुझे जो बोध दिया है, उस से मैं कृतकृत्य हो गया । मैं संसार से विरक्त हो गया हूँ । विरक्त होने के कारण मुझे दीक्षा प्रदान करके

चित्त आदि लक्षणैः प्रतीत धनार आ आत्मा ज्ञानधन रूप छे तेथी एव छे अये भन सिद्ध थये। एत्थाहि प्रभुनां वचने। सावणीने धन्द्रभूतिउ मिथ्यात्व जेब प्रभावे जोगणी गयु के जेम पाणीमा भेहु जोगणी नय छे, सूयने। उदय अता अंधकार नाथ पासे छे अने चिन्तामणी भणतां जेम हरिता नाथ पासे छे। धन्द्रभूतिने सम्यक्त्वनी प्राप्ति थई त्यारभाह धन्द्रभूतिअये भगवान भडावीरने वंदना अने नमस्कार कया वदन-नमस्कार करीने आ प्रभावे कहुं=भगवन् ! जेम वागन वृक्षनी उचाई मापवाने भाटे नय तेम हु भनिहीन आप सर्वज्ञनी परीक्षा करवा आब्ये। इतो। छे प्रबो ! आपे भने जे जेध आर्ये। छे तेथी हुं कृतकृत्य थये। छुं : हुं संसारथी विरक्त थई गये। छुं । विरक्त थवाने कारणे भने दीक्षा आपीने हु जेथी लरेल आ संसार इपी सागरमाथी तादे त्यादे भगवान भडावीर “आ धन्द्रभूति भादे। पछेले गणधर थये” जेम कहीने पायसे। शिष्ये साथे धन्द्रभूतिने पोताने छथे दीक्षा आपी।

वस्मिन् काळे तस्मिन् समये गौतमगोत्र इन्द्रमतिरत्नगारः भ्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठः संवत् प्रथमः अन्वेषसी=द्विप्यो जातः। स कीदृशः इत्याह 'इरियासमिप' इत्यादि। इरियासमितः=इरियासमित्यायुक्तः, मापासमितः, एपमासमितः आदानमाणाप्रनिक्षेपणासमितः उच्चारमसवणश्चेन्मश्चिण्ण जट्टपरिष्ठापनिकासमितः, मनःसमितः, वाससमितः, कायसमितः, मनोगुप्तः, कायगुप्तः, गुप्तः, गुप्तेन्द्रियः, गुप्तब्रह्मचारी" एतेषामीरियासमितादि गुप्तप्रचारिपरिपन्थानां पदानां व्याख्याऽस्य बहुस्वात्म्यविरहितकृततम-१७४ सूत्र टीकातोऽवसेया। तथा-त्यागी=त्यागदीनः, वने लब्धुः=वनस्य लब्धालुवनस्य विविक्षेपकत्वात् सावधव्यापारादुज्जाह्वीकः। तपस्वी-पठित्वादिपथपर्यादुःखौ से भरे हुए इस संसार स्त्री सागर से मुझे तार दीजिए। तब भ्रमण भगवान् महावीर ने 'यह इन्द्रसुति मेरा प्रथम गणधर राजा' इस-प्रकार ज्ञान से देखकर दौब सो शिष्यों सहित इन्द्रसुति को अपने हाथ से दीक्षा प्रदान की।

उस काल और उस समय में गौतम गोत्रीय इन्द्रसुति अनगार भ्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ-तप से प्रथम-द्विप्य हुए। वह कैसे वे, सो कहते हैं-यह इरियासमित वे अर्थात् इरियासमिति से युक्त वे। इसी प्रकार मापासमिति, एपमासमिति, आदानमाणाप्रनिक्षेपणासमिति वे, उच्चार-मसवण श्चेन्मश्चिण्णजट्ट परिष्ठापनिका समिति ये, मनःसमिति ये, वनसमिति वे, मनोगुप्त अर्थात् मनोगुप्ति से युक्त वे, इसी प्रकार एपनगुप्त ये, कायगुप्त वे, गुप्त ये, गुप्तेन्द्रिय वे, गुप्तब्रह्मचारी वे। इरियासमिति से छेकर गुप्तब्रह्मचारी तक के पदार्था अर्थ १७४ वे सूत्र की टीका के हिन्दी भाषानुवाच से ज्ञान छेना चारीए। वह त्यागी-स्याग दीन वे। वनमें जो लज्जवंती नामन वनगति होती है, उसके समान वापमय व्यापारों से लज्जाधील-संकोच

ते झरे अने ते अमरे गोमनेगीन भर्त्तुर्भर्तु जावुआर अमवु भनवान भदावीरना अन्ये-सोधी भदेहा शुभ्य दया तेमा देवा देवा ते भदे छे-ने इरियासमिति देवा जेट्ठे के ईर्ष्यासमितिशी मुज्ज देवा, जेअ प्रभावे व्यावासमिति, जेअपुः समिति आदान अ उभाअनिक्षेपण समिति देवा उच्चार प्रमसवण श्चेन्मश्चिण्ण बाण् अस्व परिष्ठापनिका समिति देवा, मनःसमिति देवा वनन समिति देवा, वाससमिति देवा, गुप्तः देवा, गुप्तेन्द्रिय देवा, गुप्त ब्रह्मचारी देवा, उर्ध्वः समितशी भदीने उपपन्नब्रह्मचारी सुधीना परीना अर्थ १७४मां सनन्ती दीक्षाना सुनवाती व्यापानुवाचशी अमल देवा जेट्ठे ते त्यागी-त्यागशील देवा, वनमां ने लज्जवती नामनी न स्थति घात छे तेनी जेअ वापमय व्यापारशी लज्जवती-

सम्पन्नः, क्षान्तिक्षमः=क्षमागुणेन परापकारसहनवार, जितेन्द्रियः=वशीकृतेन्द्रियगणः, शोधिः=अन्तःकरणशोधकः, अनिदानः=निदानवर्जितः, अल्पौत्सुक्यः=औत्सुक्यवर्जितः, अत्वरितः=वेगवर्जितः, स्थिर इत्यर्थः, सुश्रामण्यरतः=समीचीनसाध्वाचारपरायणः, इदमेव नैर्ग्रन्थनिर्ग्रन्थसम्बन्धि प्रवचनं पुरतः=अग्रे कृत्वा विहरति ।

सः=गृहीतदीक्षः खलु इन्द्रभूतिरनगारः गौतमगोत्रः समोत्सहयोः-सप्तहस्तपरिमितोच्छ्रितदेहः, समचतुरस्रसंस्थान-संस्थितः=समाः=तुल्याः-अन्यूनाधिकाः चतस्रोऽस्यो-हस्तपादोर्णयोर्लुपाश्चत्वारोऽपि विभागाः यस्य तत् समचतुरस्रं=तुल्यारोहपरिणाहं, तच्च संस्थानम्-आकारविशेषः इति समचतुरस्रसंस्थानं, तेन संस्थितः=युक्तः, तथा वज्रऋषभनाराचसंहननः=वज्रं=कीलिकाकारमस्थि, ऋषभः=तदुपरि-परिवेष्टनपट्टाकृतिकोऽस्थिविशेषः, नाराचम्=उभयतो मर्कटबन्धः, तथा च द्वयोरस्थनोरुभयतो मर्कटबन्धनेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थना परिवेष्टितयो

शील ये । बेला तेजा आदि भी तपश्चर्या से युक्त थे । क्षमाशील होने के कारण दूसरों के द्वारा कृत अपकारों को सह लेते थे । इन्द्रियों को वश में कर चुके थे । अन्तःकरण के शोधक थे । निदान (नियाना) अर्थात् अगामी काल संबंधी विषयों की तुल्यता से रहित थे । उत्कंडा से रहित थे । स्थिर थे । और समीचीन साधु-आचार में तत्पर थे । इसी निर्ग्रन्थ प्रवचन को आगे करके विद्वत्ते थे ।

वह इन्द्रभूति अनगर गौतम गोत्रीय सात हाथ के ढेंवे शरीर वाले थे । समचतुरस्र संस्थानवाले थे । हाथ, पैर, ऊपर और नीचे के चारो भाग जिसके समान हों उसको समचतुरस्र कहते हैं । ऐसे आकार विशेषको समचतुरस्रसंस्थान कहते हैं । उनका वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन था । कीली के आकारकी हड्डी वज्र कहलाती है । उसके ऊपर वेष्टन-पट्ट की आकृति की हड्डी को ऋषभ कहते हैं । दोनों ओर के हड्डी से मर्कट वधको नाराच कहते हैं । अतः दोनों तरफसे मर्कटबंध से बंधी हुई और पट्टकी आकृतिकी तीसरी

स डे यशील होता. छठ, अठम आदिनी तपस्याथी युक्त होता क्षमाशील होवाने दीधि भील दाना कशेद अपकारोने सहन करी देता होता छन्द्रियोंने वध करी यूथ्या होता अत करखना शोधक होता निदान (नियाणा), अटखे डे भविष्य कण सम्बन्ध विषयोंनी तुषाथी रहित होता, उत्तहाथी रहित होता स्थिर होता अने समीचीन साधु-आचारभां तत्पर होता अने निर्ग्रन्थ प्रवचनने आगण करीने विहरता होता.

ते गौतम गोत्रीय छन्द्रभूति अणुगार सात हाथ उंथा शरीरवाणा होता समचतुरस्र संस्थानवाणा होता. हाथ, पाग, उपर अने निचेना चारे भाग नेने समान होय तेने समचतुरस्र कहे छे. जेवा आकार विशेषने समचतुरस्र संस्थान कहे छे. तेभने वज्रऋषभनाराच संहनन छुः पीलीना आकारना छुडकाने वज्र कहे छे. तेना उपर वेष्टनपट्टनी आकृतिना छुडकाने ऋषभ कहे छे. गन्ने तरफना मर्कट बंधने नाराच कहे छे. तेथी गन्ने तरफथी

शरीर उदरस्थिप्रय पुनरापि हरीकूर्त सत्र निखात कीलिकाकारं वज्रनामकमस्त्यि यत्र प्रवति तत् वज्रकूपमनाराधय,
 तत् सदनन-सहन्य-वे-लीकियन्ते क्षरीरपुष्टला यन तत् सदननय-अस्थिनिषयो यस्य स वज्रकूपमनाराधसंजननः।
 तथा-इनरुलकनिकपधगौरः कनकस्य-दुर्बणस्य पुलकः-सल्लभ्य, तस्य निकप-आणनिघृष्टरेला, 'पद्म'-सुन्देन
 पमकिञ्चत्कं एवते, तेन पद्म-पधकिञ्चत्क च, सद्गु गौरः-आणनिघृष्टसुर्गरेलाकमलकिञ्चत्कवद्गौरसर्प इत्यर्थः,
 यद्वा-इनकस्य सुवर्णस्य पुनका-नारो वर्णाविश्रया, तत्पमानो यो निकप-आणनिघृष्टसुर्गरेला, तस्य यत्
 पद्म-सद्गुत्वं सद्गु गौरः-आणनिघृष्टानेकं सुवर्गरेलावकाविवययुक्तगौरः, उग्रतया-उग्रम् उच्छ्रुतं प्रहृष्ट
 परिणामत्वात्प्राणादौ विविक्कामिग्रस्ताव अपपृव्यमनञ्जनादि इत्यन्विषं तपो यस्य स तथा-दीन्रवपधयार्थान्,
 वेष्टित की दुर होनों हड़ियोंके ऊपर, उन लीनोंको फिर भी अधिक हड़करने के लिए जहाँ कीली के

आकार की वज्र नामक अस्थि खड़ी हुई हो, यह वज्रकूपम् नाराध करलाता है। जिसके द्वारा शरीर के
 पुष्टगत्व हृद किये जायें, उस अस्थि निचय-हड़ियोंके रचना-विशेषको संजनन करवे। ऐसा वज्रकूपमनाराध
 सदनन इन्द्रमुति अनगारको प्राप्त या। उनका शरीर एसा गौर-वर्णया जैसे स्वर्णके लुह को हंसौटी पर
 पिगन स सुनहरी और चमकती हुई रेखा होती है, प्रपवा जैसे कमल का किञ्चुक होता है। भूमिमाय यह कि
 उनका नरीर हंसौटी पर पिसे स्वर्ण की रे ना और कमल के केसर के समान चमकीला एवं गौर वर्ण का
 या। यथा हंसौटी पर पिसे स्वर्ण की अनेक रेखाओं के समान गोरे शरीरवाले थे। बढ़ते हुए परिणामों के
 कारण तथा गरकादि में विविध प्रकार क अभिग्रह करने के कारण उनका अनञ्जन आदि बारह प्रकार का
 तप उच्छ्रुत या, अत वे उग्रतपस्वी थे। बढ़ो हुई तपस्यावान् होने से दीन्रवतपस्वी थे। अधिक तपस्या

भङ्ग अथवा भङ्गिनी अने पट्टनी आधुतिना ग्रीव दाडकथी वी टागेव जन्ने दाडकंको उपर, जे नखेने हरीबी
 ६६ कथाने भट्टे ल्वा भीडिना आधुतु ल्वा नामत अलिख बाजेव कोर ते लज्जकप-यासव भवेवाय छे नेना
 दास शरीरना पुत्रव ६६ कथक, ते अस्ति निजव-दाडकंकी रचना विशेषने सदनन भवे छे जेवु वज्रकूपम नामक
 सदनन ईन्द्रमुति कवुयारने प्राप्त भवेव कट तेमनु शरीर जेवु गौर-वर्ण कट छे जेम सोनाना दुकलने कसोटी
 पर वज्रवासी सोनेरी अने कण्ठनी रेखा भाव छे, अथवा जेवो भयणनी पधम भाग छे तासय को ई तेमनु शरीर
 कसोटी पर कनेवा सुवर्णनी रेखा अने भयणनी इसरा जेवु अलकटु जने गौर वज्र कट अथवा कसोटी पर
 भवेवा सुवर्णनी अनेर रेखाजिनां जेवा जोस करीसण्ण कटा

अथवा जेवा अस्थिभिने भाखे तका पारकादिनां विभिन्न प्रकारना अभिग्रह करवाने भाखे तेमनु अनञ्जन आदि
 बार प्रभारतु तप उच्छ्रुत कट, तेभी तज्जे छव तपस्वी कटा यथा तपस्यावान् जेवाथी दीन्रव तपस्वी कटा सोदा

दीप्तताः=समिद्धतपश्चर्यावान्, महातपाः=वृहत्तपश्चर्यावान्, उदारः=सकलजीवैः सहमैत्रीभावात्, वीरः=परीपहो-
 पसर्गकषायशत्रुप्रणाशविधौ भयानकः, वीरगुणः=वीरा=कातरैर्दुश्चराः गुणाः=मूलगुणा यस्य स तथा, वीरतपस्वी=
 दुश्चरतपोधारी, वीरब्रह्मचर्यवासी=कातरदुश्चरब्रह्मचर्यवासी कठिनब्रह्मचर्यधारणधीरः, उत्तिष्ठशरीरः=त्यक्तदेहा-
 भिमानः, शरीरसंस्कारवर्जितो वा संक्षिप्तविपुलतेजोलेख्यः=शरीरान्तर्लीनतेजोलेख्यावान्-विशिष्टतपोजनितलब्धि-
 विशेषसमुपवृत्तेजोज्ज्वलावान्, चतुर्दशपूर्वो=चतुर्दशानां पूर्वाणा धारकः, चतुर्ज्ञानोपगतः=मति-श्रुत्यवधि-मनःपर्याय-
 ज्ञानसम्पन्नः, सर्वाक्षरसंनिपाती=सकलवर्णावगाहिवुद्धिः=सर्वाक्षरप्रवेशिकारिवुद्धिः, धमणस्य भगवतो महावीरस्य
 अदूरसामन्ते=नातिदूरे नातिसमीपे-उचितस्थाने ऊर्ध्वजानुः=उपरिकृतजानुः, अधः शिराः=नम्रीकृतमस्तकः,
 ध्यानकोष्ठोपगतः=ध्यायते-चिन्त्यतेऽनेनेति ध्यानम्-एकस्मिन् वस्तुनि तदेकाग्रतया चित्तस्यावस्थापनम् ध्यानं कोष्ठ

करने के कारण महातपस्वी थे। प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव रखने के कारण उदार थे। परीपह, उपसर्ग
 एवं कषाय रूपी शत्रुओं को नष्ट करने में भयानक होने से वीर थे। वह वीर (कायरोंद्वारा दुष्कर) मूल
 गुणों से युक्त होने से वीर गुणवान् थे। दुश्चर तपश्चरण के धारक थे। कायरजनों द्वारा आचरण न क्रिये जा
 सकने योग्य ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। उन्होंने देहाव्यास का त्याग कर दिया था, अथवा वे शरीर के
 संस्कार (श्रृंगार) से रहित थे। विशिष्ट तपस्या से प्राप्त हुई विशाल तेजोलेख्या नामकलब्धि उन्होंने शरीर में ही
 लीन (छीपा) कर रखी थी। चौदह पूर्वों के धारक थे। मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यवज्ञान से युक्त थे। उनकी बुद्धि
 समस्त अक्षरों में प्रवेश करनेवाली थी। वह भगवान् से न अधिक दूर रहते और न अत्यन्त समीप ही रहते थे।
 उचित स्थान पर रहते थे। वहाँ घुटने ऊपर कर के तथा मस्तक नमामकर ध्यान रूपी कोष्ठ को प्राप्त थे।

मोठी तपस्या કરવાને કારણે મહાતપસ્વી હતા પ્રાણી માત્ર તરફ મિત્રભાવ રાખતા હોવાથી ઉદાર હતા પરિપક્વ, ઉપસર્ગ
 અને કષાય રૂપી શત્રુઓને નાશ કરવામાં ભયાનક હોવાથી વીર હતા. તે વીર (કાયરો દ્વારા દુષ્કર) મૂળ ગુણોવાળા
 હોવાથી વીર ગુણવાન હતા. દુષ્કર તપશ્ચરણના ધારક હતા કાયર માણસોદ્વારા આવરી ન શકાય એવા બ્રહ્મચર્યનું
 પાલન કરતા હતા. તેમણે દેહાવ્યાસને ત્યાગ કર્યો હતો, અથવા તેઓ શરીરના સંસ્કાર (શૃંગાર)થી રહિત હતા.
 વિશિષ્ટ તપસ્યા વડે પ્રાપ્ત થયેલ વિશાળ તેજોલેખ્યા નામની લબ્ધિ તેમણે શરીરમાં જ લીન કરી દીધી હતી. એટલે
 પૂર્વોના ધારક હતા. મતિ, શ્રુત, અવધિ અને મન પર્યવજ્ઞાનથી યુક્ત હતા. તેમની બુદ્ધિ સમસ્ત અક્ષરોમા પ્રવેશ
 કરનારી હતી. તે ભગવાનથી વધારે દૂર પણ ન રહેતા અને અન્યત્ર નજીક પણ ન રહેતા-ઉચિત સ્થાન પર રહેતા
 હતા ત્યાં ઘુટણો ઉપર કરીને તથા મસ્તક નમાવીને ધ્યાન રૂપી કોષ્ટકો પ્રાપ્ત હતા. કોણ પણ એક વસ્તુમાં ઓકાગતા-

एव ध्यानकोष्ठ, तमुपगतं, यथा कोष्ठगतं धान्यं धीर्जीर्णं न भवति तथैव ध्यानतः इन्द्रियान्तः कारणवृत्तयो वहितं पान्तीति भावः, नियन्त्रितविवर्धयामानित्यर्थः । संयमेन=समस्तविवेकेन, तपसा=ब्राह्मचर्यविवेकेन आत्मानं भाषयमानः=वाचयन् विहरति ॥सू०१०६॥

मूलम्—यद्यप्य अमियूर्ध्वं मारणो सम्भविष्माणारणो इदमूर्ध्वं विधेयं सर्वं सो महं ईदंजालिओ दोसा । अणेण मय माया इदमूर्ध्वं वचिओ । अहुणा मरं गच्छामि अस्तब्बणुं अपणणं तत्त्वणुं मण्यमाणं तं धुण परा निणिय मायाए वचिये मज्झमायारं पठिणियदेमिचि चियारिय पंचसयसिस्सेहिं परिखुओ सगम्भं पडुसमीवे पत्तो । तं मगरं नामसंसयनिरेसणुत्वं संबोदिय एव वयासी=यो अगिमयूर । तुल्यमर्णसि कम्मविसेए संसओ वहर=न कम्म अतिय वा नतिय ? “पुरुषपरेवेद U” सर्वं यदमुह यच्च मात्वं” इवाह वेयवयणाओ तत्त्वं अप्याचेव न कम्मं । जईकम्म मये वारे पव्वत्ताएपमाणेणं तं सम्मसिया, तं नत्सिय ? जइकम्मं ममिजइ ठाहरे तेण सुणेण कम्मणा एह अमुचस्स जीवस्स कइ संवेवो इवेज्जा ? अमुपस्स जीवस्स मृशाओ कम्माओ उववायाणुमाहा कइ होउं सकिज्जा ? जहा भाणासो तवगाइणा न छिज्जाइ, चदणेव नोवविज्जाइ चि, तं मिच्छा, अइसयणावियो कम्म पव्वत्तत्तणेण पारसंति, छठमत्थाउ जीवाणं वेचिण पासिय तं अणुमाणेण जाणति । कम्मस्स विचिचयाए वेव पाणीयं सुहइराइमावा सपज्जंठे, अओ कोई जीवो राया इवइ, कोई आसो गओ वा तस्स वाणो इवइ, कोरि पयाइ, कोई छत्तपारणो इवइ । एवं कोवि सुयत्ताओ भिक्खुत्ताओ होइ, जो अरोरुच अट्टमाणो वि भिक्खं न वइइ । जमगसमणं वइइमाण्णां पोयवणियाणं मग्गे एगो तरइ, एगो सुवइमि जुइइ । पयारिसाणं कज्जाणं दिमि मी एक वत्तु में पकायतापूर्वकं चिच का स्थिर होना ध्यान करलाता है । वे उसी ध्यान स्वी कोष्ठ (कोठी) में स्थित थे । अर्थात् जैसे कोठी में रहा हुआ पान इधर-उधर फैलता नहीं है, उसी प्रकार ध्यान करने से इन्द्रियों की तथा मन की वृत्ति बाहर नहीं आती है । आशय यह है कि इन्द्रवृत्ति भग्नगार ने अपने चित्त की वृत्ति को नियंत्रित कर लिया था । वे सपरह प्रकार के संयम और ब्राह्मच्य प्रकार के तप से आत्मा को मारित करते हुए चित्रने लगे ॥सू०१०६॥

यत्र स्थितुं शिरं देवु तेने ध्यान इहे छ ते कोअ ध्यान इपी डोअ (डीपि)भां शेषेव इत्ता कोइवे हे नेम डेडिभां रेव अनाअ आभ तेम वेणइ नथी कोअ प्रयाखे ध्यान धरणाओ छिन्देयानी तथा भवती वृत्ति अकार अपी नमी आशय जेहे हे ईन्द्रवृत्ति अणुभारे योतानी चित्तनी वृत्तिने नियंत्रित इपी बीपी इली तेको अत्तर प्रधारणा सु वम अने भाइ प्रधारणा तप वहे आ आने नाशित इत्ता विवक्कणा वाच्या. (सू०१०६)

कारणं कर्ममंचैव, नो णं कारणे णं विणा किंपि कज्जं संपज्जाए । अहं य जहा सुत्तस्स घडस्स अमुत्तेण आगामेण सह संबंधो तहा कम्मणो जीवेण सह । जहा य मुत्तेहि नाणाविहेहि मज्जेहि, ओसहेहि य अमुत्तस्स जीवस्स उक्काओ अणुगहो य हवंतो लोए दीसड, तहेव अमुत्तस्स जीवस्स मुत्तेण कम्मणा उक्काओ अणुगहो य मुणेव्वो । अहं य वेयपएसु वि न कत्थइ कम्मणो निसेहो, तेण कम्मं अत्थि ति सिद्धं । एवं पट्टवयणेण संसयम्मि छिन्नम्मि समाने हट्टुट्ठो अग्निभूर्हं वि पंचसयस्सिस्स सहिओ पवइओ ॥ सु० १०७ ॥

छाया—ततः खलु अग्निभूतिर्वाहणः सर्वविद्यापारगः इन्द्रभूतिरि चिन्तयति न सत्य, स महान् ऐन्द्र-जालिको दृश्यते । अनेन मम भ्राता इन्द्रभूतिर्विश्चितः । अनुनाहं गच्छामि, अमर्तमात्मानं सर्वत्र मन्यमानं तं धूर्त्वं पराजित्य मायया वञ्चितं मम भ्रातरं प्रतिनिवर्त्तयामीति विचार्य पञ्चशतशिल्पैः परिश्रुतः सर्गं प्रसूयामीपे प्रापतः । तं भगवान् नामसंशयनिर्दिगपूर्वं संव्रोधैवगवादीत्—ओ अग्निभूते ! तव मनीषि कर्मविषये संशयो वर्त्तते, यत्—कर्मोस्ति वा नास्ति ? पुरुष एवेदं °U° सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं” इत्यादि चेदस्मिन्नात् सर्वमात्मैव न

मूल का जर्ग—‘तर्पणं’ इत्यादि । तत्पश्चात् समस्त विद्याओं में पारंगत अग्निभूति ब्राह्मणे इन्द्रभूति के समान विचार किया—सचमुच, वह तो बड़ा भारी इन्द्रशालिन्ना दीतना है ! अपने मेरे भाई इन्द्रभूति को भी अपनी जाल में फसा लिया ! अब मैं जाता हूँ और अर्चन किन्तु अपने आपको सर्वत्र माननेवाले उस धूर्त को पराजित करके छल करके-छले हुए अपने भाई को वापिस लाता हूँ । इस प्रकार विचार कर वह अपने पाँचसौ शिल्पों के साथ, गर्व सहित प्रभु के समीप पहुँचा । भगवान् ने उनके नाम और मंशय का उल्लेख करके संव्रोधन करते हुए कहा—हे अग्निभूते ! तुम्हारे मन में कर्म के विषय में संशय है कि कर्म है या नहीं है ? ‘पुरुष एवेदं °U° सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्’ इति । अर्थात् ‘यह सब पुरुष ही है

भूतनो अर्थ—‘तर्पणं’ इत्यादि । समस्त विद्याओमा पारंगत ओवा अग्निभूति ब्राह्मणे, इन्द्रभूतिना लेवोन् विचार कयो के, भरे भर ! आ पुरुष इन्द्रशालिन्ना देणाय छे । तेहे तो, मारा भाई इन्द्रभूति लेवाने पछु, पोताना क्षसदाभा न्नेडी हीधा छे वे हु त्या न्नेड ! अने पोताने सर्वस भानता ओवा छाने पनल्लत करी, मारा न्नेड बाहने अकत करी, साथे बेतो आवु ! आ प्रकाइ निर्णय करी पोताना पांचमो शिल्पोना परिवार साथे गर्व सडित प्रभु अग्नीये पछोन्थे वागवाने तेजुं नाम अने गशयने छेदेअ-करी, तेने अग्नाध्या, ने छेवा लाया दे,—हे अग्निभूति ! मारा मनमां कर्मसयधी सशय छे के नडि ? कर्म छे के डेम तेवी शंका छुं सेवी रह्यो छे के नडि ?

વાહનં ભવતિ, કશ્ચિત્ પદાતિ; કશ્ચિચ્છત્રધારકો ભવતિ । एवं कश्चित् छत्रधाराको भवति योऽहोरात्रमटन्तपि भिक्षां न लभते । युगपद् व्यवहरमाणानां पोतवर्णिजां मध्ये एकस्तरति, एकः समुद्रे वृडति । एतादृशां कार्यार्थिणां कारणं कर्म, नो खलु कारणेन विना किमपि कार्यं संपद्यते । अथ च यथा मूर्त्तस्य घटस्यामूर्त्तेन आकाशेन सह सम्बन्धस्तथा कर्मणो जीवेन सह । यथा च मूर्त्तेर्नानाविधैर्मयैः, औपदैश्चामूर्त्तस्य जीवस्योपघातोऽनुग्रहश्च भवन् लोके दृश्यते तथैव अमूर्त्तस्य जीवस्य मूर्त्तेन कर्मणा उपघातोऽनुग्रहश्च ज्ञातव्यः । अथ च वेदपदेऽपि न कुत्रापि कर्मणो निषेधस्तेन कर्मास्तीतिसिद्धम् । एवं प्रभुवचनेन संशये छिन्ने सति हृष्टष्टोऽग्निभूतिरपि पञ्च-शतशिष्यसहितः प्रव्रजितः ॥सू० १०७॥

હોતા છે, કોઈ હાથી અથવા કોઈ ઘોડા હોકર ઉસકા વાહન વનતા છે । કોઈ પૈદલ ચલતા છે, કોઈ છત્ર ધારણ કરતા છે । इसी प्रकार कोई भूख से दुर्बल होता है, और दिन-रात भटकता हुआ भी भीख नहीं पाता ! एक साथ व्यापार करनेवाले नौका-वर्णिकों में से एक पार पहुँच जाता है, और एक समुद्र में डूब जाता है । इन सब कार्यों का कारण कर्म ही है, क्योंकि कारण के बिना कोई भी कार्य उत्पन्न नहीं होता । और, जैसे मूर्त्त घटका अमूर्त्त आकाश के साथ संबंध होता है, उसी प्रकार कर्म का जीव के साथ । जैसे नाना प्रकार के मूर्त्त मद्यों से और मूर्त्त औषधों से जीव का उपघात और अनुग्रह होता हुआ लोक में देखा जाता है, उसी प्रकार अमूर्त्त जीव का मूर्त्त कर्म के द्वारा उपघात और अनुग्रह जानना चाहिए । इसके अतिरिक्त वेद-पदों में भी कहीं भी कर्म का निषेध नहीं किया गया है, अतः कर्म है, यह सिद्ध हुआ । इस प्रकार प्रभु के कथन से संशय दूर हो जाने पर हर्षित और संतुष्ट हुए अग्निभूति भी अपने पाँचसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये ॥सू० १०७॥

વાહન અને છે. કર્મની વિચિત્રતા ને લીધે કોઈ પગે ચાલે છે, તો કોઈ માથે છત્ર ધારણ કરાવે છે કર્મના લીધે, કોઈ બુખથી દુર્બલ માનવ રોટી માટે દિન રાત ભટકે છે છતા તેને પેટ પૂરતું મળતુ નથી !

એકી સાથે અને એક જ સમયે વ્યાપાર કરવાના વેપારીઓમાં એક પાર પામે છે, ત્યારે બીજો ડૂબી બચ
છે આ તમામનુ મૂળભૂત કારણ કર્મોદય છે કોઈ પણ કાર્યની પછવાડે કારણ તો હોયું જોડાયે; કારણ વિના કાર્ય
ગનતુ નથી. જેમ મૂર્ત ઘડાને સંબંધ અમૂર્ત આકાશ સાથે થાય છે તેમ કર્મનો સંબંધ આત્મા સાથે જાણ્ય
છે જેમ મૂર્ત સ્વરૂપી મધ અને મૂર્ત સ્વરૂપી ઓષધિઓ વડે જીવને ઉપધાત અને અનુગ્રહ થાય છે, તેમજ જાણ્ય
નિષેધ કરવામા આવ્યો નથી, માટે કર્મ છે તે બિદ વસ્તુ છે આ પ્રમાણે પ્રભુના કથનથી સંશય દૂર થતાં તે
હર્ષિત થયો સતુષ્ઠ થઈ તેણે પણ પોતાના પાચમેા શિષ્યોના સમુદાય સાથે દીક્ષા ગ્રહણ કરી. (સૂ. ૧૦૭)

टीका—“तए ण अग्निभूईं माहणे” इत्यादि । यतः=इन्द्रभूतेदीक्षाप्रमाणानन्तरं स्वच्छ अग्निभूतिर्माहणः सर्वं विद्यापारगः=समस्तविद्यापारकृतः, इन्द्रभूतिरिव चिन्तयति=सत्यमुपव्यथार्यम् सः=महावीरो महान् ऐन्द्रजात्किः=मायावी इत्यर्थः । अनेन मम भ्राता=इन्द्रभूतिः वञ्चितः=छलिता अधुना अग्रे गच्छसि, गत्वा च अस्वर्गं सन्तमपि आत्माने=स्व सर्वं सन्त्यमान तं धृतं पराभित्य=परास्तीकृत्य मायया वञ्चितं मम भ्रातरं प्रतिनिवर्तयामि=अनयामि इति विचार्य पञ्चशतशिवैः=परितः तर्ग्वं ययास्यापया प्रहसमीये=भीमहावीरयार्षे माहाः=माहातः तमः=अग्निभूतिं मगवान्=भीमहावीरं प्रह, नामसंभयनिर्देशरूपे=वदीयनाम तद्वदवस्थितसंभयप्रवचनपुरस्सरं सम्बोध्य एवं=रूपमात्रे वचनम् अवदीत=उक्तवान्, तथा हि—‘मो अग्निभूते । तव मनसि कर्मविषये संशयो वर्तते’ यत् कर्म अस्ति वा=अथवा नास्ति ! यतो वेदवचनमिदमस्ति—“पुरुष एवेद U सर्वं यद्वभूत यच्च माव्यम्”

टीका का अर्थ—इन्द्रभूति की दीक्षा के पश्चात् सब विद्याओं में निपुण अग्निभूति ब्राह्मण ने इन्द्रभूति के समान विचार किया=सब है यह महावीर महान्द्रजात्किना दिलाई देता है । उसने मेरे भाई इन्द्रभूति को भी उक्त लिया । अब मैं जाता हूँ और अस्वर्ग होने पर भी अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले उस मायावी को परास्त करके माया से उगे हुए अपने बन्धु इन्द्रभूति को शपथि साता हूँ । इस प्रकार विचार कर वह अग्निभूति अपने पाँचसी शिव्यों के साथ, अभिमान सहित, मगवान् के समीप गये । मगवान् ने अग्निभूति का नाम लेकर तथा उनके हृदय में स्थित सन्देह को दूषित करते हुए, संबोधन किया और इस प्रकार कहा—‘हे अग्निभूति ! तुम्हारे मन में कर्म के विषय में सन्देह रहता है कि कर्म है अथवा नहीं है ?’ वेद का वचन है कि—“पुरुष एवेद U सर्वं यत् भूतं यच्च माव्यम्” । इस वाक्य का आशय यह है कि पर जो वर्तमान है,

टीका के अर्थ—इन्द्रभूति की दीक्षा पछे अधणी विषयोभां निपुण अग्निभूति ब्राह्मणे इन्द्रभूतिमा भवेय विचार होय है वात अद्वैत सादी छे है ते भदावीर कोक भवन छे इन्द्रजी वागे छे तेखे भास भास भास इन्द्रभूतिने पवु भनी वीधि. हवे छे अठ छे अने अस्वर्गस कोका छतां पवु पोटाने सर्वज्ञ समानार भावावने परास्त करीने आबायो इन्द्रजेला माहा आभने पाछा वागीने अ पीछ आ प्रभावे (निरूप्य करीने ते अग्निभूति पोटाना पावसे। शिव्यों साक्षे अभिमानपूछे अत्रवाननी पासे अथा.

अत्रवाने अग्निभूतिने तेना नामभी संबोधन करीने तथा तेभना हृदयभां रहेला सहेकेने अद्वैत भवेय अत्रवाने आ प्रभावे छम्=हे अग्निभूति ! तमाभा भनभां इन्द्रजा विषयभां सहेके छे है अद्वैत छे नधी ? तेबनु वचन अत्रवाने छे ते अत्रवाने

અન્ન-‘ઇદ’ શબ્દોત્તરમનુશ્ચાર એવ સકારે પરે °U° કારત્વમાવજ્ઞ; તેન યદિદં=વર્તમાનં, યત્ મૃતમ્=અતીતમ્
 યત્ ભાન્યં=અવિવિયત્ તત્ સર્વં વસ્તુ પુરુષ એવ, એવકારોડચ્ચ કર્માદિવસ્તુનિષેધાર્થ; તેન પુરુષાતિરિક્તં ક્ષિચ્ચિદપિ
 વસ્તુ નાસ્તીત્યર્થ; । इत्यादि वेदवचनात् सर्वमात्मैव=મૃત મત્તદ્ભવિવિયત્ સર્વં વસ્તુ આત્મેવ ન તુ આત્માનિરિક્તં
 ક્ષિચ્ચિદપિ વસ્તુ વિદ્યતે, તતશ્ચ કર્માપિ ન વિદ્યતે इति । यद्विच्चेत कर्म भवेत्, तदा तत् कर्मप्रत्यक्षादिप्रमाणेन
 લભ્યં સ્યાત્, तन्नास्ति=પ્રત્યક્ષાદિપ્રમાણેન તદુપચ્ચિન્નં મત્તિ । यदि कश्चित् मन्यते, तदा तेन मूर्तेन कर्मणा
 सह अमूर्तस्य जीवस्य कथं=કેન પ્રકારેણ સમ્બન્ધો ભવેત્ ? मूर्तोमूर्तयोः परस्परं सम्बन्धोऽसम्भवात् । तथा-
 અમૂર્તસ્ય જીવસ્ય મૂર્તાત્ કર્મણ ઉપધાતાનુગ્રહૌ-તત્રોપધાતઃ-નરફનિગોદાદિગતિપ્રવર્તનેન પીડનમ્-અનુગ્રહં-સ્વર્ગો-
 દિગતિપ્રવર્તનેન સૌલ્યોપમોગશ્ચેત્યેતૌ કથં=કેન પ્રકારેણ મત્તિ શક્યુયાતામ્ ? मूर्तोमूर्तयोरुपवात्योपधातका-

જો મૃત છે ઓર જો માત્રી છે, વહ સમી વસ્તુ પુરુષ (આત્મા) હી છે । यहाँ ‘पुरुष’ शब्द के पश्चात् प्रयुक्त हुआ
 ‘एव’ (ही) कर्म आदि वस्तुओं का निषेध करने के लिये है, तो अभिप्राय यह निकला कि पुरुष के अतिरिक्त
 कोई भी वस्तु नहीं है । इत्यादि वेद-वचन के अनुसार जो हुआ, जो है और जो होगा, वह सब वस्तु आत्मा ही
 है । आत्मा से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं है, अत एव कर्म का भी अस्तित्व नहीं है । कर्म होता तो प्रत्यक्ष
 आदि प्रमाणों से उसकी प्रतीति होती, किन्तु प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से कर्म की प्रतीति नहीं होती ।

फिर भी कदाचित् कर्म का अस्तित्व मान लिया जाय तो मूर्त्त कर्म के साथ अमूर्त्त जीव का
 सवध किस प्रकार हो सकता है ? मूर्त्त और अमूर्त्त का आपस में संबंध संभव नहीं है । इस के अतिरिक्त
 अमूर्त्त आत्मा का मूर्त्त कर्म से उपगान-नरक-निगोद आदि गतियों में ले जाकर पीडा पहुँचाना-और अनुग्रह
 स्वर्ग आदि गति में पहुँचा कर सुख का उपभोग कराना-कैसे हो सकता है ? यह संभव नहीं कि मूर्त्त और

છ અને ને લાવી છે, તે બધી વસ્તુ પુરુષ (આત્મા)જ છે “પુરુષ” શબ્દની પાછળ વપરાયેલ ‘એવ’ (હી) કર્મ
 આદિ વસ્તુઓનો નિષેધ કરવાને માટે છે. તેથી તાત્પર્ય એ નીકળ્યું કે પુરુષના સિવાય કોઈ પણ વસ્તુ નથી. ઇત્યાદિ
 વેદવચન પ્રમાણે ને થયું, ને છે અને ને થશે, બધી વસ્તુ આત્મા જ છે આત્માથી ભિન્ન બીજી કોઇ પદાર્થ
 નથી તેથી કર્મનું પણ અસ્તિત્વ નથી. કર્મ હોત તો પ્રત્યક્ષ આદિ પ્રમાણોથી તેની પ્રતીતિ થાત, પણ પ્રત્યક્ષ આદિ
 કોઈ પણ પ્રમાણથી કર્મની પ્રતીતિ થતી નથી. છતાં પણ કદાચ કર્મનું અસ્તિત્વ માની લેવામાં આવે તો મૂર્ત કર્મની
 સાથે અમૂર્ત જીવનો સંબંધ કેવી રીતે હોઇ શકે ? મૂર્ત અને અમૂર્તનો અન્યોન્ય સંબંધ સંભવી શકે નહીં.
 તદ્વપરાત અમૂર્ત આત્માનો મૂર્ત ઉપધાત-નરક-નિગોદ આદિ ગતિઓમાં લઇ બંધને પીડા પહોંચાડવી અને અનુગ્રહ
 -સ્વર્ગ આદિ ગતિમા પહોંચાડીને સુખનો ઉપભોગ કરાવવો તે કેવી રીતે હોઈ શકે ? એ સંભવિત નથી કે મૂર્ત અને

दुष्टाभादुष्टाभाकत्वासम्भवत्, तत्र दृष्टान्तद्वयपन्यस्यति-‘यदे’-स्यादि-यथा-आकाशः तद्गगादिना न छिद्यते, तथा-चन्दननेन-वृष्टपचन्दनं द्रव द्रव्येन नोपस्त्रियते इति । एतन् अग्निपूतिमोगरं सञ्चयमुपपाद्य तन्निराकर्तुमुपाह-
‘तम्मिच्छा’ इत्यादि । हे भगिनिभूते ! तत्-तव यत् मिथ्या, यस्मादेतौः अविश्रय-ज्ञानिनः-सर्वेषां प्रत्यक्षत्वेन-
साक्षात्कारेण कर्म पश्यन्ति, घटपटादिषु कलामकरुशत्रा । छत्रस्यास्तु नीवानां वैशिष्ट्यं-गतिवैविध्यं इष्टा अनु-
मानेन तत्-कर्म जानन्ति । तथाहि अनुमानप्रयोग-जीवाः कर्मवन्तो गतिवैविध्यादिति । तथा-कर्मणोविचित्र-
तयेव-वैकल्पयन्तैव तारक्षकर्मवतां प्राणीनो-जीवानां सुखदुःखादिभावाः विविधाः सम्पद्यन्ते । यतः-यस्मात्
कारणात् कोऽपि जीवः राजा भवति, कश्चित्-कोऽपि जीवः अश्वः, कोऽपि गजो वा मृत्वा तस्य-राजः चान्नं
अमृतं मे से एक उपपाद्य हो और दूसरा उसका उपपातक हो, तथा एक अनुप्रास हो और दूसरा अनुप्रासक हो ।
इस विषय में दृष्टान्त देते हैं । यथा-आकाश चलवार, आदि के द्वारा काग नष्ट जा सकता और चन्दनदि-
के छेप से छेपा नहीं जा सकता ।

इस प्रकार अग्निभूति के मनोगत संशय का समयन करके उसका निराकरण करने के लिये कहते हैं—
 है अग्निभूति, तुम्हारा यह मत मिथ्या है। क्यों कि—सर्वज्ञ कर्म को मत्पक्ष से देखते हैं, जैसे घट पट
 आदि को अथवा ऐपेली पर रखे आँखों को देखते हैं। अत्यन्त पुरुष जीवों की गति आदि की—विलक्षणता
 को देख कर भुत्मान प्रमाण से कर्म को जानते हैं। भुत्मान का प्रयोग इस प्रकार है—जीव कर्म से युक्त है,
 क्यों कि उनकी गति में विशिष्टता देखी जाती है। तथा—कर्म की विशिष्टता—मित्रता के कारण ही, निविप्र
 कर्मवाचे भाषियों के सुख—दुःख आदि विविध मात्र उत्पन्न होते हैं, क्यों कि कोई जीव राजा होता है, कोई
 घोड़ा होता है और कोई हाथी होता है। घोड़ा या हाथी होकर मान्य होकर

[illegible]

भवति, कश्चित्-जीव तस्यैव राज्ञः पदातिर्भवति, कश्चित् जीवः छत्रधारको भवति, एवम् इत्थं कश्चित् जीवः
 क्षुत्क्षामः=क्षुधापीडितो भवति, यः=क्षुत्क्षामः कर्मवैचित्र्यात् अहोरात्रम् अटन्ति=अमन्त्रन्ति भिक्षां न लभते,
 तथा-‘जमगसमर्ग’ युगपत्-एकत्राले व्यग्रहरमाणानां पोतयणिनां मध्ये एकस्तरति=समुद्रपारं गच्छति, एकः=
 अपरः समुद्रे वृद्धति-निमज्जति, एतादृशम् विचित्राणां कार्याणां कारणं कर्मैव, न तु कर्मान्तिरिक्तं किमपि
 लक्ष्यते । ननु पूर्वोक्तानां कार्याणां स्वाभाविकत्वमिति तत्कारणतया कर्मस्वीकरणं व्यर्थमिति चेत्तत्राह—
 स स्वभावः किं वस्तु, अवस्तु वा ? यदि-अस्तु तदा तस्मात्कार्योत्पत्तिर्न कदापि भवितुमर्हति । यदि वस्तु
 तर्हि स किं मूर्तोऽमूर्तो वा ? । अमूर्तस्तदात्मतानुसारेण तस्मात् मूर्तकार्याणामुत्पत्तिर्भवतु नार्हति । यदि मूर्त-
 स्तदा स कर्मैवेति मनसि निश्चयाह-‘नो खलु’ इत्यादि ।

राजाका प्यादा होता है और कोई उसका छत्रधारक-उस पर छत्र तानने वाला होता है । इसी प्रकार कोई
 जीव भूत से पीड़ित होता है, जो अपने कर्म की विचित्रता के कारण दिन और रात भीख के लिए भट-
 कता फिरता है, फिर भी भीख नहीं पाता । तथा-एक ही समय में व्यापार करनेवाले नौका-व्यापारियों में
 से एक सकुशल समुद्र पार हो जाता है और दूसरा समुद्र में ही डूब जाता है । इन सब विचित्र कार्यों का
 कारण कर्म ही है; कर्म के सिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता ।

शक्ता—पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वमान से ही होते हैं अतएव कर्म को उनका कारण मानना व्यर्थ है ।

समाधान तुम स्वभाव को विचित्र कार्यों का कारण कहते हो तो बताओ कि स्वभाव क्या है ? वह
 कोई वस्तु है या अवस्तु ? अगर अवस्तु है तो उससे कार्यों की उत्पत्ति नहीं हो सकती । वस्तु है तो मूर्त

राजानुं वाह्यन गने छे कोइ छत्र ते राजाने पायहण सैनिक थाय छे अने कोइ तेने छत्रधारक-तेना पर छत्र धारण
 करानार थाय छे. ओज प्रभाण्णे कोइ छत्र भूथथी पीडाय छे, ले चोताना कर्मनी विचित्रताने कारण्णे हिवस अने रात
 बीथने माटे लटके छे ते पणु बीथभां कंइ पाभते। नथी तथा ओक ज सभये व्यापार करनार वडाणुभा सधेर करता
 वेपारीओ. माथी ओक सकुशल समुद्रपार करे छे अने बीने समुद्रभा ज डूणीअय छे ओ अथा विचित्र आयोनुं कारण
 कर्म ज छे, कर्मना सिवय गीणु कंइ पणु लागतु नथी

शंका-पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभावथी ज थाय छे तेथी कर्मने तेनुं कारण मानवुं ते व्यर्थ छे.

समाधान-तम स्वभावने विचित्र आयोनुं कारण छोडा छे। तातो के स्वभाव शुं छे ? ते कोइ वस्तु छे के
 वस्तु ? ले अवस्तु होय तो तेनाथी आयोनी उत्पत्ति थइ सकती नथी ले वस्तु होय तो भूत छे के अभूत ? ले

नृपमाधुर्याकरासम्भवाद्, तत्र दृष्टान्तद्वय परस्यति-‘यथे’-स्यादि-यथा-आकाशः सङ्गरादिना न छिद्यते, तथा-बन्धनेन-यष्टचन्दन इव द्रव्येन नोपलिप्यते इति। एवम् अग्निभूतिसमोगतं संश्रयमुपपाद्य तन्निराकुरुमाह-‘तन्मिच्छा’ इत्यादि। हे भग्निभूते ! तव-वश मत्तं मिथ्या, यस्मादेतौः अतिशय-ज्ञानिनः=सर्वज्ञाः प्रत्यक्षतवेन-साक्षात्कारेण कर्म पश्यन्ति, घटपटादिवत् कारात्मकश्चात्। छत्रस्यास्तु जीवानां वैविध्य-गतिवैलक्षण्यं दृष्ट्वा अनुमानेन तव=कर्म जानन्ति। तथाहि अनुमानप्रयोगः-जीवाः कर्मवन्तौ गतिवैविध्यादिति। तथा-कर्मणोविचित्र-तयैव=वैयर्थ्येनैव तारक्षकर्मवतां प्राणीनां=जीवानां सुखदुःखादिमायाः विविधाः सम्पद्यन्ते। यतः=यस्मात् कारणात् कोऽपि भोजः राजा मरति, कश्चित्-कोऽपि जीवः बन्धः, कोऽपि गजो वा मूत्वा तस्य-राज्ञः बाहने अमृतं में से एक उपपात्य हो और दूसरा उसका उपयोग करे, तथा एक भुज्याह हो और दूसरा भुज्याहक हो। तत्र विषय में दृष्टान्त देते हैं। यथा-आकाश सकृत्, यदि के द्वारा काटा नहीं जा सकृत् और चन्दनावि के छेप से छेपा नहीं जा सकृत्।

इस प्रकार अग्निभूति के मनोगत संश्रय का समर्थन करके उसका निराकरण करने के लिये करते हैं- हे अग्निभूति, तुम्हारा यह मत मिथ्या है। क्यों कि-सर्वज्ञ कर्म को प्रत्यक्ष से देखते हैं, जैसे घट पट आदि को अथवा हमेली पर रखते आच्छेद को देखते हैं। अल्पश पुरुष जीवों की गति आदि की-विलक्षणता को देख कर अनुमान प्रमाण से कर्म को जानते हैं। अनुमान का प्रयोग इस प्रकार है-जीव कर्म से युक्त हैं, क्यों कि उनकी गति में विविधता देखी जाती है। तथा-कर्म की विविधता-प्रकृता के कारण ही, विविध कर्मवाच्य प्रामियों के सुख-दुःख आदि विविध साव उपपन्न होते हैं, क्यों कि कोई जीव राजा होता है, कोई पौष्टा होता है और कोई हाथी होता है। पौष्टा या हाथी होकर राजा का पाहन बनता है। कोई जीव उस

अनुमत भाँधी जैसे उपपात्य होन अने भीतु तेन उपपातव होय तथा जैसे अनुभावर होय अने भीतु अनुभावर होय आ विवे द्योत आये छे हे-नेम आकाश तक्षार आदि दास हाथी शाकट नशी तेमज शीष छ इन्द्रादिना दोषधी दोषी शाकट नशी आ प्रमाणे अभिभूतिना मनोगत संश्रय अनु समर्थन करीने तेनु निराकरण करवाने भाटे छे छे-” इयेवीमां शबेव आभणने लुके छे अक्षय्य पुरुष लुकोनी गति आदिनी विषयवृत्ताने जेकरे अनुमान प्रमाणधी बर्भने आवे छे अनुमानने प्रयोग का प्रमाण छे-एव कर्मधी युक्त छे, कारण हे तेमनी अतिमां विविधता हेआय छे तथा मभनी विविधता-भित्तवने कारणे न विविधकर्मवाचा प्राणीजीनां सुख-दुःख आदि विविध भाव उपपन्न भव छे कारण हे होउ एव राजा साध छे हाउ घोरे साध छे अने होउ दासी साध छे घोरे होउ दासी

भवति, कश्चित्-जीव तस्यैव राज्ञः पदातिर्भवति, कश्चित् जीवः छत्रधारको भवति, एवम् इत्थं कश्चित् जीवः
 छुत्सामः=क्षुधापीडितो भवति, यः=सुत्सामः कर्मवैचित्र्यात् अहोरात्रम् अटन्नपि=भ्रमन्नपि भिक्षां न लभते,
 तथा-‘जमगसमग’ युगपत्-एककाले व्यवहरमाणानां पोतत्रिजां मध्ये एकस्तरति=समुद्रधारं गच्छति, एकः=
 अपरः समुद्रे वुडति-निमज्जति, एतादृशम् विचित्राणां कार्याणां कारणं कर्मैव, न तु कर्मानिरिक्तं किमपि
 लक्ष्यते । ननु पूर्वोक्तानां कार्याणां स्वाभाविकत्वमिति तत्कारणतया कर्मस्वीकरणं व्यर्थमिति चेत्तत्राह—

स स्वभावः किं वस्तु, अवस्तु वा ? यदि-अस्तु तदा तस्मात्कार्योत्पत्तिर्न कदापि भवितुमर्हति । यदि वस्तु
 तर्हि स किं मूर्तोऽमूर्तो वा ? । अमूर्तस्तदात्मनस्तानुसारेण तस्मात् पूर्वकार्याणामुत्पत्तिर्भवतुं नार्हति । यदि मूर्त-
 स्तदा स कर्मैवेति मनसि निश्चायाह-‘नो सलु’ इत्यादि ।

राजा का प्यादा होता है और कोई उसका छत्रधारक-उम पर छत्र तानने वाला होता है । इसी प्रकार कोई
 जीव भू-उ से पीड़ित होता है, जो अपने कर्म की विचित्रता के कारण दिन और रात भीख के लिए भट-
 कता फिरता है, फिर भी भीख नहीं पाता । तथा-एक ही समय में व्यापार करनेवाले नौका-व्यापारियों में
 से एक सकुशल समुद्र पार हो जाता है और दूसरा समुद्र में ही डूब जाता है । इन सब विचित्र कार्यों का
 कारण कर्म ही है; कर्म के सिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता ।

शंका—पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभाव से ही होते हैं अतएव कर्म को उनका कारण मानना व्यर्थ है ।
 समाधान तुम स्वभाव की विचित्र कार्यों का कारण कहते हो तो बताओ कि स्वभाव क्या है ? वह
 कोई वस्तु है या अवस्तु ? अगर अवस्तु है तो उससे कारणों की उत्पत्ति नहीं हो सकती । वस्तु है तो मूर्ते

रागनुं वालन गने छे केइ छत्र ते राजने पायहन सैनिक थाय छे अने केइ तेना छत्रधारक-तेना पर छत्र धारण
 करवगर थाय छे ओज प्रभाणे केइ छत्र भूथी पीडाय छे, जे पोताना कर्मनी विचित्रताने कारखे दिवस अने रात
 बीथने भाटेबाटके छे ते पख बीजभा कंई पाभते नथी तथा ओक ज समये व्यापार करना वहाणुमा नकर करता
 वेपानीओ भाथी ओक सकुशल समुद्र पार करे छे अने बीजे समुद्रभा न डूबी जाय छे ओ अधा नियन करीनुं कारण
 कर्म न छे, कर्मनः सिवाय बीजु कइ पख लागतु नथी

शंका-पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभावही न थाय छे तेशी कर्मने तेनु कारण माननुं ते व्यर्थ छे.

समाधान-तमं स्वभावने विचित्र कार्योनुं कारण कहा छे। तो बतावो के स्वभाव शुं छे ? ते कहा वस्तु छे के
 वस्तु ? जे अवस्तु होय तो तेनाथी कार्योनी उत्पत्ति यह शकती नथी जे वस्तु होय तो भूतं छे के आभूतं ? जे

भवति, कश्चित्-जीव तस्यैव राज्ञः पदातिर्भवति, कश्चित् जीवः छत्रधारको भवति, एवम् इत्थं कश्चित् जीवः
 क्षुत्क्षामः=क्षुधापीडितो भवति, यः=क्षुत्क्षामः कर्मवैचित्र्यात् अहोरात्रम् अटन्नापि=अमन्नमपि भिक्षां न लभते,
 तथा-‘जमगसमर्ग’ युगपत्-एककाले व्यवहरमाणानां पोतत्रिजां मध्ये एकस्तरति=समुद्रपारं गच्छति, एकः=
 अपरः समुद्रे बुडति-निमज्जति, एतादृशम् त्रिविधाणां कार्याणां कारणं कर्मैव, न तु कर्मानिरिक्तं किमपि
 लक्ष्यते । ननु पूर्वोक्तानां कार्याणां स्वाभाविकत्वमिति तत्कारणतया कर्मस्वीकरणं व्यर्थमिति चेत्तत्राह—
 स स्वभावः किं वस्तु, अवस्तु वा ? यदि-अवस्तु तदा तस्मात्कार्योत्पत्तिर्न कदापि भवितुमर्हति । यदि वस्तु
 तर्हि स किं मूर्तोऽमूर्तो वा ? । अमूर्तस्तदात्मतानुसारेण तस्मात् मूर्तकार्याणामुत्पत्तिर्भवतुं नार्हति । यदि मूर्त-
 स्तदा स कर्मवैति मनसि निधाय-‘नो खलु’ इत्यादि ।

राजाका प्यादा होता है और कोई उसका छत्रधारक-उम पर छत्र तानने वाला होता है । इसी प्रकार कोई
 जीव भूत से पीडित होता है, जो अपने कर्म की विचित्रता के कारण दिन और रात भीख के लिए भट-
 कता फिरता है, फिर भी भीख नहीं पाता । तथा-एक ही समय में व्यापार करनेवाले नौका-व्यापारिकों में
 से एक सकुशल समुद्र पार हो जाता है और दूसरा समुद्र में ही डूब जाता है । इन सब विचित्र कार्यों का
 कारण कर्म ही है; कर्म के सिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता ।

शका—पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभाव से ही होते हैं अतएव कर्म को उनका कारण मानना व्यर्थ है ।
 समाधान तुम स्वभाव को विचित्र कार्यों का कारण कहते हो तो बताओ कि स्वभाव क्या है ? वह
 कोई वस्तु है या अवस्तु ? अगर अवस्तु है तो उससे कार्यों की उत्पत्ति नहीं हो सकती । वस्तु है तो मूर्त

राजानुं वाहन गने छे केछ छत्र ते राजनेनो पायदण सेनिक थाय छे अने केछ तेनो छत्रधाण्ड-तेना पर छत्र धारण
 करानार थाय छे ओज प्रभाणो केछ छत्र भूथथी पीडाय छे, ने पोताना कर्मनी विचित्रताने कारखे द्विवस अने रात
 कीअने माटे लटके छे ते पखु बीअभा कछ पाभतो नथी तथा ओके न समथे व्यापार करनार वहाणुमां सक्षर करता
 वेपारीओ. माथी ओके सकुथण समुद्रपार करे छे अने बीज्जे समुद्रभा न डूभी जाय छे ओ अधा विचित्र आयोनुं कारण
 कर्म न छे, कर्मनः सिवय गीणु कछ पखु लागतु नथी

यथा-पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभावथी न थाय छे तेथी कर्मने तेनुं कारख मानवुं ते व्यर्थ छे.

समाधान-तमें स्वभावमें विचित्र आयोनु कारख छोछे छे । तेनाओ के स्वभाव शुं छे ? ते केछ वस्तु छे के
 वस्तु ? ओ अवस्तु होय तो तेनाथी आयोनो उत्पत्ति थय शकती नथी ओ वस्तु होय तो भूत छे के अभूत ? ओ

किमपि पाप्यदि कार्यं कारणेन विना=कारणाभावे नो सम्पद्यते, अपितु कारणेनैव किमपि कार्यं सम्पद्यते
 प्रता नीवानां रात्रत्यादि विविधकार्योणां कारणतया कर्म स्वीकारणीयमेवेति पर्यवसितम् । इत्थं कर्मणः सणा-
 मुपाय सम्पत्ति पूर्वापूर्वयो कर्मजीवयो सम्बन्धं युक्ता साधयति-‘आ व’ इत्यादि ।

अथ व-यथा पूर्णस्य घटस्य अमूर्तेन आकारेण सा सम्बन्धः, तथा=तेन प्रकारेण मूर्तस्य कर्मणः अमूर्तेन
 नीचेन सह सम्बन्धो बोध्यः । तथा व-मूर्तेः नानाविधैः=अनेकप्रकारैः मूर्तेर्मौल्यस्य उपपातः=वैकल्यादि दोषजननेन
 हानिमवसि । तदुक्तम्—

‘इ या अमूर्तः ! अग्न भर्तृते ! हो तुमारे महासुतार वह मूर्तं कावों हो उत्पन्न नहीं कर सकता । अगर
 मूर्त है तो फिर वह कर्म हो है । इसी बात को मन में छेकर करते हैं—‘नो सखु’ इत्यादि ।

एन घट आदि कीं भी काय कारण के विना उत्पन्न नहीं हो सकता । कारण से ही कोई कार्य उत्पन्न
 होता है । अतः जीवों के राजा होने आदि विविध कार्यों का कारण कर्म स्वीकार करना चाहिए । इस प्रकार
 कर्म की सत्ता मिट्टी के अव मूर्त कर्म और अमूर्त जीव का संबंध युक्ति से सिद्ध करते हैं—‘अद्य य’ इत्यादि ।
 जैसे मूर्त एन का अमूर्त आकार के साथ सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार मूर्त कर्म का अमूर्त जीव के
 साथ संबंध समग्र लेना चाहिए । अयथा=अन नाना प्रकार के मूर्त मयों के द्वारा जीव का उपपात (विरूपता
 आदि दावों की उत्पत्ति होने से हानि) होती है । कहा भी है—

अमर्तं दोष तो वमश मत प्रभवे ते मूर्तं शोधने उत्पन्न हरी शक्यो नभी. मे भूर्तं होय तो पछी ते कर्म व
 क. जोय बादने अनभं छाने हके छे—‘नो सखु’ इत्यादि

घटघट आदि होई पक्षु शर्मं शारभविना उत्पन्न यथं शक्यं नभी. शरभवी व होई शर्मं उत्पन्न बाज छे तेभी
 लोवेतु बाज यथु आदि विविध शोधने शरभ कर्मने स्वीकृत्य लेछके का प्रभावे कर्मनी सत्ता सिद्ध हवीने
 श्वे भूर्तं कर्म अने अमूर्त उपपत्ते। सन्ध युक्तिवी (बक हरे छे—‘अहत्’ इत्यादि

लेम मूर्तं पक्षने। अमूर्त आकारनी साधे सन्ध होय छे, जोय प्रभावे मूर्तं कर्मने अमूर्तं लक्षणी साधे
 सन्ध समल होय लेछके. अथवा लेम विविध प्रकारना मूर्तं भवेय शरभ लक्षणे उपपात. (विशेषतः आदि शोधनी
 उत्पत्ति पक्षवी शानी) बाज छे हस्तु पक्ष छे—

૧૫ વૈરુપ્યં વ્યાધિપિણ્ડઃ સ્વજનપરિભવઃ કાર્યકાલાતિપાતો,

૧૬ વિદ્વેશો જ્ઞાનનાશઃ સ્મૃતિમતિહરણં વિપ્રયોગશ્ચસદ્ગ્નિઃ ।

૧૭ પારુણ્યં નીચસેત્વા કુલ-વલ-તુલના ધર્મ-કામા-ર્યથાનિ,
૧૮ કણ્ઠે ભોઃ ! પોઢશૈતે નિરુપચયકરા મધપાનસ્ય દોષાઃ ॥૧॥

અપિ ચ—શ્રૂયતે ચ ઋપિર્મદ્યાવ પ્રાપ્તઽયોતિર્મહાતપાઃ ।

૨૦ સ્વર્ગાન્નનાભિરાક્ષિતો મૂલ્લવન્નિધનં ગતઃ ॥૧॥

૨૧ કિંચેહ વહુનોક્તેન પ્રત્યક્ષેણૈવ દૃશ્યતે ।

૨૨ દોષોઽસ્ય વર્તમાનેઽપિ તથા મળ્ડનલક્ષણઃ ॥૨॥

૨૩

૨૪

૨૫

૨૬

૨૭

૨૮

૨૯

૩૦

૩૧

૩૨

૩૩

૩૪

૩૫

૩૬

૩૭

૩૮

૩૯

અર્થાત્—‘મદિરાપાન સે હાનિકર યહ સોલઠ દોષ ઉત્પન્ન હોતે હું—વિરુપતા ૧, નાના પ્રકાર કી વ્યાધિયા ૨, સજનોં કે દ્વારા તિરસ્કાર ૩, કાર્ય-ફાલ કી વર્તી ૪, વિદ્વેષ ૫, જ્ઞાન કા નાશ ૬, સ્મરણ-શક્તિ ઓર બુદ્ધિ કી હાનિ ૭, સજનોં સે અલગાવ ૮, હલાપન ૯, નીચોં કી સેવા ૧૦, કુલ ૧૧, વલ ૧૨, તુલના ૧૩, ધર્મ ૧૪, કામ ૧૫, ઓર અર્થ ૧૬, કી હાનિ’ । ઓર મી કહા હૈ—

૧૭ વૈરુપ્યં વ્યાધિપિણ્ડઃ સ્વજનપરિભવઃ કાર્યકાલાતિપાતો,

૧૮ વિદ્વેષો જ્ઞાનનાશઃ સ્મૃતિમતિહરણં વિપ્રયોગશ્ચ સદ્ગ્નિઃ ।

૧૯ પારુણ્ય નીચસેત્વા કુલ-વલ-તુલના ધર્મકામાર્યથાનિ,

૨૦ કણ્ઠે ભોઃ ! પોઢશૈતે નિરુપચયકરા મધપાનસ્ય દોષાઃ ॥૧॥

એટલે કે મદિરા પીવાથી આ સોળ હાનિકારક દોષો ઉત્પન્ન થાય છે. (૧) વિરુપતા (૨) વિવિધ પ્રકારની વ્યાધિઓ. (૩) સ્વજનો દ્વારા તિરસ્કાર (૪) કાર્ય કાળની અરબાદી (૫) વિદ્વેષ (૬) જ્ઞાનનો નાશ (૭) સ્મરણ શક્તિ અને બુદ્ધિની હાનિ (૮) સજનોનોથી વિખૂટાપણું (૯) કઠોરપણું (૧૦) નીચ દોષોની સેવા (૧૧) કુલ, (૧૨) વળ, (૧૩) તુલના (૧૪) ધર્મ, (૧૫) કામ અને (૧૬) અર્થનો હાનિ બીજી પશુ કહેલ છે કે—

एतद्विषय चित्रगमिनामिरस्मद्वार्थवर्णकतानारमणिमञ्जूषा व्याख्याविभूषितस्य हस्तवैकालिक सुप्रस्य पञ्चमेऽख्ययने
त्रितीयोद्देश्यस्य 'सुरं वा मेरुं वाति' इत्यादि पदं विष्णुपदमादि गाथानां व्याख्याऽत्रलोक्नीयेति ।

तथा-पूर्वनांतादिरेपदैर्यूर्यस्य जीवस्य मनुप्रारः=रोगान्त्रयमसुष्टुष्टादिजननेनोपकारो यथा भवति, एषेव
भ्रमूर्तस्य जीनास्य तेन प्रकाशेनैव भ्रमूर्तस्य जीवस्य मूर्तेन कर्मणा उपवातोऽनुग्रहस्य ज्ञातव्य इति । एवं दृष्टान्तो
पन्थासद्वैकं कर्मोत्पिद्विद्वदुपदयोनिनियुतेः परमार्थान्यप्रमाणपददर्शनाय प्राह-'अहं यं' इत्यादि ।

“मयते च ऋषिर्मयावत्, प्राज्ञस्योतिर्महावताः ।

स्वर्गाङ्गनामिरासिमो मूर्त्यवन्निषनं गतः ॥१॥

इति चेह बहुनोक्तेन, प्रत्यक्षेनैव दृश्यते ।

दोषोक्तस्य वर्तमानेऽपि तथा मण्डनस्वभाः” ॥२॥ इति ।

अर्थात्—सुता नागा इति ज्ञान-स्योतिमास और महावपस्वी ऋषि श्री मदिरा पान के कारण अस्-
राभों से अभिमूत होकर मूर्त्य मनुष्य की तरह मूर्ति के प्राप्ति बने ॥१॥ इस विषय में अधिक कहने से क्या
लाभ ? मरणपान की सुराई हो पनमान में श्री प्रत्यक्ष देखी जाती है । करापी सर्वत्र मीठा जाता है । २॥

इस विषय में विद्वय निशामुर्धों को मेरे एक पुत्र्य आचार्य श्री घासीलालजी महाराज की बनाई हुई
आचारमणिमञ्जूषा नामक टीकावाले हस्तवैकालिक सूत्र के लैखने अरण्यवन के दूसरे उर्वेच्छक की 'सुरं वा मेरुं
वाति' इत्यादि छत्तीसरी आदि गाथाओं की व्याख्या देख लेनी चाहिए ।

अथते च ऋषिर्मयावत् प्राज्ञस्योतिर्महावताः ।

स्वर्गाङ्गनामिरासिमो मूर्त्यवन्निषनं गतः ॥ १ ॥

इति चेह बहुनोक्तेन प्रत्यक्षेनैव दृश्यते ।

दोषोक्तस्य वर्तमानेऽपि तथा माण्डनस्वभा ॥२॥ इति ।

कोटके है—आत्मगथाओं काव है है ज्ञान-अथेति प्रसजने भद्रा तपस्वी ऋषि पञ्च अक्षरी पानने हाथवे व्याख्या-
शालेशी अभिप्राय याने भूषणं मनुष्यनी लेभ शीतले देणीये जन्माष्टि ॥ १ ॥

अप्य (निये) वषादि डेवेषी शेष लाभ ? अधिराधाननी पु ॥३॥ तो वर्तमान ज्ञानमा पञ्च प्रत्यक्ष देभा है शराभो
नपि निदाय है (नोभा-आ विषयमां विक्षिप निःश्रुता धराकपादे पूर्य व्याख्या श्री घासीलाल मद्राशके देखत
अध्यासभक्ति प्रवृत्ता, 'गोभनी दीक्षणा ॥ दशवैकालिक सुदृढा पांकाओं अभिमाना जीला छेदनी सुरंवा मेरुं वाति' इत्यादि
छत्तीसरी आदि आभाजिनी व्याख्या जोड़ देनी लेखिजे—प्रहास्य) तथा लेभ (वचन प्रहासनी भूत) जीवाभिलाषी

अथ च तत्र परममान्येषु वेदपदेऽपि=वेदेष्वपि कुत्रापि=कस्मिंश्चिदपि स्थले कर्मणो नियधो नास्ति । तेन=वेदेषु कर्मणो निषेधाभावेन 'कर्म अस्ति इति सिद्धम् । एवम्=उत्करूपेण प्रभुवचनेन कर्मास्तित्व-विषयके संशये छिन्ने सति हृष्टपुष्टः=अतिप्रसन्नः सन् अग्निभूतिरपि इन्द्रभूतिवत् पञ्चशतशिव्यसहितः प्रव्रजितः=श्रीमहा-वीरहस्ताद् दीक्षितो जातः ॥मृ०१०७॥

मूलम्—तए णं वाउभूई विण्णो 'दुवेवि भायरा पवइय' ति जाणिऊण चित्तेइ-सच्चमेसो सव्वणू दीसइ, जण्यभावेण ममं दोवि भायरा तयंतिण पवइया । अओ अहमवि तत्थ गमिय सयमणोगयं तज्जीव तच्छरीर-विसय संसय अवाकरोमिचि कट्ठु सो चि पंचसयसिस्सपरिबुडो पहुसमीवे समणुपत्तो पहु तं नामसंसयनिवेस-पुवं वयइ-ओ वाउभूई ! तुज्जमणंसि संदेहो वट्ठइ-जं सरीरं तं चेव जीवो । नो अन्तो तव्वइरित्तो कोवि जीरो पंचक्खादपमाणेण तं उवलंभाभाया । जल्लुब्धुओ विव सो सरीराओ उपज्जए सरीरे चेव विलिज्जइ । अओ नत्थि अओ कोपि पयथो जो परलोए गच्छेज्जा । "विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः" इच्चाइ वेयवयणंपि अत्तथे माण । एत्थ बुवइ सव्वपाणिणं देसओ जीवो पंचक्खो अत्थि चेव, जओ सोमइआ इगुणाणं पंचक्ख-

तथा-जिस प्रकार नाना प्रकार की मूर्त औषधों से अमूर्त जीव का अनुग्रह होता है-रोग का नाश होता है, बल-पुष्टि आदि की उत्पत्ति होकर उपकार होता है, उसी प्रकार अमूर्त जीव का मूर्त कर्म से भी उपघात और अनुग्रह जान लेना चाहिए । इस प्रकार दृष्टान्तों से कर्म का अस्तित्व दिखला कर अग्निभूति के परममान्य प्रमाण को प्रदर्शित करने के लिये कहते हैं—

इस के सिवाय तुम्हारे अतिशय मान्य वेदों में भी, किसी भी स्थान पर कर्म का नियध नहीं है । वेदों में कर्म का निषेध न होने से भी 'कर्म है' यह सिद्ध होता है । इस प्रकार प्रभु केकथन से कर्म के अस्तित्व संबंधी संशय के दूर हो जाने पर हृष्ट-पुष्ट हुए अग्निभूति ने भी, इन्द्रभूति के समान, पाँच सौ शिष्यों सहित श्रीमहावीर प्रभु के हाथ से दीक्षा ग्रहण करली ॥मृ०१०७॥

अमूर्त छवने। अनुग्रह थाय छे-रोगने नाश थाय छे, जण-पुष्टि आदिनी उत्पत्ति थयने उपकार थाय छे, जेअ प्रभावे अमूर्त छवने। कर्मथी पणु उपघात अनुग्रह णाथी देवो जेअये. आ प्रभावे इधोतोथी कर्मजुं अस्तित्व गानावीने अग्निभूतिना परम मान्य प्रभावेने प्रदर्शित करवाने भाटे कडे छे-आ सिवाय अतिशय मान्य वेदोभा पणु कडे पणु स्थाने कर्मने। निषेध नथी. वेदोभा कर्मने। निषेध न होवाथी पणु "कर्म छे" ते सिद्ध थाय छे. आ प्रभावेना प्रभुना कथनथी डर्ष आने सतोप पासेल आशुभूतिअे पणु, इन्द्रभूतिनी जेअ, पांथसे। शिओ। साथे श्री महावीर प्रभुने डोथे दक्षा अंडेषु करी (सू० १०७)

चरणं संविक्रमति । सो जीवो देवित्तिर्योसो पुरं भवति । अग्रे जगता इदियाद् नस्तिविति तथा सो वं वं इदित्येव सदा, नरा-एसो सरो मए पुब्बं सुणिमो, एय वत्तुआयं मए पुब्बं विहं, एतो गंधो मए पुब्बं अयाओ, एसो महर विचारसो मए पुब्बं आसाइओ, एसो मिउकलवडाइफासो मए पुब्बं पुडो आसी । एव एवारी ओ अणुइरोवडा, सो जीवं विना कस्स होजा ? तुम्हा सत्ये वि पुत्तं—

“सत्येन सग्यस्तपसा षेयश्चक्रवर्णेण नित्यं ग्योतिर्मयो हि शुद्धोयं पश्यन्ति चीरा यतयः संयतात्मानः” इति । अइ सरीराओ अन्नो काचि जीवो न इवेज्ज ताहे “सत्येन तपसा ब्रह्मचर्येण एयरुअय” इअरं संगच्छेज्ज । अओ सिद्धे सरीराओ भिन्नो अन्नो जीवो भवति । एव एहुकएणुणेणं छिन्नसंसओ पटिबुद्धो वाउभूई वि पंव सयसिस्सेहि पवइओ । अ० १०८।

अया—उतः तल्लु वायुपुतिर्विमः ‘द्राचपि आतरौ यन्नितौ’ इति ज्ञात्वा चिन्तयति-सत्यम्, एय सर्वज्ञो इयत्ते, यममायेण मम द्राचपि आतरौ तरतिउके यन्नितौ । अतोऽयमपि उव गत्वा समनोगत वज्जीव वच्छरीरवियय सङ्गमपानारोमीहि कृत्वा सोऽपि पञ्चदशस्थिपरिवृतः मनुसमीये समनुमाप्तः । मनुस्वं नाम सङ्गनिर्देहपूरं पदवि-ओ ! वाकुपूते ! तवमनेसि सेदेहो वन्ते-यव् वरीरं तयेन जीयं, नान्यस्तद्वपवित्ति-

मूल का अर्थ—उव वायुपुति ब्राह्म ने ‘गरे दोनों माई दीक्षित हो गये’ यह ज्ञान कर विचार किया-सचमुच हा यह सर्वज्ञ प्रतीत होते हैं जिस सर्वज्ञता के प्रभाव से मेरे दोनों माई उनके पास दीक्षित हुए हैं। अत एव मैं भी यही जाकर अपने मनमें स्थित ‘वज्जीव-वच्छरीर’ अर्थात् वही जीव और वही शरीर हैं-भिन्न नहीं, इस विषय पर संदेह का निराकरण करूँ। इस तरह विचार कर वह भी अपने पाँच सौ शिखों के साथ प्रभु के पास पहुँचे। मनु ने उन के नाम का और सङ्ग का उल्लेख कर के कहा—हे वायुपुति ! तुम्हारे

भूतने। अर्थ—तब १०८ वायुपुति आयावे वायु है, आओ दीक्षित हो गया है आ आओ तोने प्रतीति यई के इअर ‘वदमान स्वामी’ सर्वज्ञ कल्याण है तेनी सुच कृता ने दीधि, आरा अन्ने आर्धजो, स साखी विरुद्धा यथा, माटे माशे य हाय पक्खं आर्धं ज्जेवत करे अने तेथी हु पक्खं निवत्तु”। माशे स थय जेवो छे हे ‘तन्वीय वच्छरीर’ अर्थात् एव छे तेज शरीर छे अने शरीर छे तेज एव छे आ अन्ने जिन-नधी पक्खं जेव छे, आनी यहाउ समाधान वर्धमान’ पासे अर्ध करी आउ । आ प्रभावे विचारस्त जनी निर्जन्म होये अने पाताना योबसे। किय ययुधय आये प्रभुनी सभिये आ गया ते इवाना यथा, प्रभुनी सभिये आनी यथास्थित स्थान पर गे। त्थार चली अज्जे, तेभनी उवर छे वही तेअय अरा नाशन आउ भन करीने तेअय अने शरीर अने शरीर

કોડપિ જીવ; પ્રત્યક્ષાદિ પ્રમાણેન તદુપલમ્ભમાત્રાત્ । જલબુદ્બુદ इव स शरीराद् उत्पद्यते शरीर एव विलीयते । अतो नास्ति अन्यःकोडपि पदार्थो यः परलोके गच्छेत् । विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः” इत्यादि वेदवचनमपि अत्रार्थे मानम् । अत्रोच्यते—सर्वप्राणिनां देशतो जीवः प्रत्यक्षोऽस्त्येव, स स्मृत्यादि गुणानां प्रत्यक्षत्वेन संवि-
दस्ति, स जीवो देहेन्द्रियेभ्यः पृथगस्ति । यतो तदा इन्द्रियाणि नश्यन्ति तदा स तं तमिन्द्रियार्थं स्मरति, यथा
एष शब्दो मया पूर्वं श्रुतः १, एतद् वस्तु जातं मया पूर्वं दृष्टम् २, एष गन्धो मया पूर्वमाघ्रातः ३, एष मधुर-
तिक्तादि रसो मया पूर्वमास्वादितः ४, एष मृदुकर्कशादि स्पर्शो मया पूर्वं स्पृष्ट आसीत् । एवं प्रकारो योऽनुभवो

મન મેં સન્દેહ હૈ કિ જો શરીર હૈ વહી જીવ હૈ । શરીર સે ભિન્ન કોઈ જીવ નહીં હૈ, ક્યોં કિ પ્રત્યક્ષ આદિ પ્રમાણોં સે ઉસકા ઉપલભ નહીં હોતા । જલ કે બુલબુલે કે સમાન જીવ શરીર સે ઉત્પન્ન હોતા હૈ । ઔર શરીર મેં હા વિલીન હો જાતા હૈ । અત એવ ઉસસે ભિન્ન કોઈ પદાર્થ નહીં જો પરલોક મેં જાતા હો । ‘વિજ્ઞાન-
ઘનએવૈતેભ્યો ભૂતેભ્યઃ’ ઇત્યાદિ (પૂર્વોછિલ્લિત) વેદ-વચન મીં ઇસ વિષય મેં પ્રમાણ હૈ । અર્થાત્ પૌંચમૂર્તોં સેં યહ આત્મા ઉત્પન્ન હોતા હૈ, ઔર પૌંચ મૂર્તો મેં હી મિલ જાતા હૈ ।

રસ કા સમાધાન યહ હૈ—સમી પ્રાણિયોં કો દેશ સે જીવ કા પ્રત્યક્ષ હોતા હી હૈ । વહ જીવ સ્મૃતિ આદિ ગુણોં કા સાક્ષાત્ જ્ઞાતા હૈ । વહ જીવ શરીર તથા ઇન્દ્રિયોં સે ભિન્ન હૈ; ક્યોં કિ જીવ, ઇન્દ્રિયોં કે નષ્ટ હો જાને પર મીં, ઇન્દ્રિયોં દ્વારા જાને હુએ વિષયોં કા સ્મરણ કરતા હૈ । જૈસે—વહ શબ્દ મૈને પહેલે સુના થા; વે વસ્તુએ મૈં ને પહેલે દેલી થીં; વહ ગંધ મૈને પહેલે સૂંચી થી; વહ મધુર ઔર તિક્ત રસ મૈને પહેલે ચખા થા; વહ

એકજ છે’ એ ધોળાઈ રહેલી શકા, સલા સમક્ષ પ્રગટ કરી “ તારા મનમા સંદેહ છે કે, એવ અને શરીર બુદ્ધા નથી, પણ એકજ છે કે રણુ કે પ્રત્યક્ષ આદિ પ્રમાણ વડે, તેની વ્યવસ્થિત શર્ત શકતી નથી જલના પરપોટા સમાન, એવ શરીરમા ઉત્પન્ન થાય છે અને તેમાજ વિલય થાય છે. શરીરથી કોઈ ભિન્ન પદાર્થ છે જ નહિ. કે પરલોકમા જતો હોય ! ‘વિજ્ઞાનઘનએવૈતેભ્યો ભૂતેભ્યઃ’ ઇત્યાદિ આ વેદવાક્યો વડે, તુ તારી માન્યતા ને પુષ્ટિ આપે છે. ”

ઉપર દર્શાવેલી વાચુક્તિની માન્યતાને નિર્મૂળ કરવા, ભગવાન સમાધાન આપે છે કે, સર્વ પ્રાણીઓ બુદ્ધા ભામે છે, તે તેતુ પ્રમાણ છે. એવમા સ્મૃતિ વિગેરે શુભો રહેલા છે, તે તેની બીજી પ્રત્યક્ષતા છે. ઇન્દ્રિયો અને શરીરની રચના ભિન્ન ભિન્ન જથ્થાથ છે, તે પણ તેનો પુરાવો છે કાણુ કે ઇન્દ્રિયોના નાશ થતાં પણુ, ઇન્દ્રિયો દ્વારા જથ્થાએલ વિષયોની સ્મૃતિ રહે છે. પહેલા સાલગેલા શબ્દો, પહેલી દેખાએલ વસ્તુઓ, અગાઉ સૂધાએલ પદાર્થો,

भरति, सो जीव त्रिना कस्य भवतु !। ता शक्तेऽप्युक्तम्—सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येव ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो
रि शुद्धो य पश्यन्ति पीरा यतयः सपतात्मानः” इति। यदि शरीरात् अन्य कोऽपि जीवो न मवेच्छा “सत्येन
तपसा ब्रह्मचर्येण एषलभ्यः” इति कथं संगच्छेत ? अतः सिद्ध शरीरात् भिन्नोऽप्यो जीवोऽस्तीति । एवं प्रभु-
पवनेन छिन्नसंशयः प्रतिशुद्धो वायुमविरपि पंचशतशित्वे प्रभूतिः ॥६०१०८॥

टीका—‘तप गं वातयूरी विष्णो’ इत्यादि । ततः लघु वायुभूतिर्विषयः द्वावपि आतरी प्रवर्जितौ” इति
ब्रह्मना मनसि चिन्तयति—तयाहि—“सत्यम्, एषा—भीमहावीरस्वामी सर्वज्ञो दृश्यते, परममावेण मम द्वावपि
कोमल या छोटार आदि सर्वे मेने परेछे छुआ या। इस प्रकार का जो स्पर्श होता है, वह जीव के
सिक्वाय भ्रिस् को होगा ! तुम्हारे ज्ञास में भी कहा है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येव ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो रि शुद्धो यं
पश्यन्ति पीरा यतय सपतात्मानः” इति ।

भयांत—‘यह नित्य, ज्योति स्वक्य और निर्मित आत्मा, सत्य, तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा उपलब्ध
होता है, जिसे पीर तथा समयवान् यति ही देखते हैं।’ यदि जीव गुणक न हो तो यह कवन कैसे संगत
होगा ? इस से सिद्ध है कि जीव शरीर से भिन्न और स्वतंत्र है। प्रभु के इस प्रकार के कथन से वायुयुति का
संशय छिन्न हो गया। वह प्रतियुद्ध हुआ और जीव सौ विषयों के साथ दीक्षित हुआ ॥६०१०८॥

टीका का अर्थ—मेरे दोनो माई महावीर स्वामी के तसीप दीक्षित हो गये’ ऐसा जान कर वायुयुति
ब्राह्मण मन ही मन विचार करते हैं—सब है—भीमहावीर स्वामी सर्वज्ञ माकूम होते हैं। यह उनकी सर्वज्ञता का ही
प्रत्यक्षिभा विजेर बाजेबा रसेल, छेरेर-मुवाण विजेर स्पष्टोबा रपरी, न्यारे याद करीजे छीजे त्पारे इभरषुभां

आवे छे आ ‘प्रभास’ एव सिक्वा गेने आवे ! तभाश शास्त्रभां पणु प्रभु छे है—“सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येव
ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो रि शुद्धो य पश्यन्ति पीरा यतयः सपतात्मानः” छति आ नित्य न्येति स्वक्ष्य निर्भण
आत्मा, सत्य-तप आने ब्रह्मचर्य-द्वारा उपलब्ध आवे छे ने के आत्माने भीर वीर सभगवान् यति जोध गछे छे
जे एव शुद्धो न होय ते, आ कथन देवी रीते अत अछाय ? आभी सिद्ध आवे छे है, एव शरीरबी भिन्न
आने भवत छे प्रभुना आना प्रकथनबी वायुयुतिना सभ्य दूर भयो, ने प्रतिष्ठाप पाभी, प्रभु आगण दीक्षा होवा
वर्षर भयो अत्रवाने पणु योअ जवसर जर्ज, तेभने पंचसेा छिन्नेनी साबै छीबा आपी दीक्षित भयो। (सं० १०८)
निशेबास—छ-प्रभूति आने अजिभूतनी प्रतिष्ठा घणी करी, छलां तेजे पणु प्रकानित भई सभाश्वी निशेबा
अ-या. भाटे आ पुरेन देछ आभा-अ जोछनेन नबी पणु अद्वय विधानेना भारे होवे जोछे। एते भाग जन्ने

आतरोँ सदन्विके प्रव्रजितौ । अतोऽहमपि तत्र गत्वा स्वमनोगत तज्जीवतच्छरीरविषयं=जीव-शरीरैक्यविषयकं संशयम् अपाकरोमि, इति कृत्वा=इत्येतद्विचिन्त्य सौऽपि=यायुभूतिरपि पञ्चशतशिष्यपरिवृतः प्रभुसमीपे समनुप्राप्तः=समागतः । प्रभुः तै=वायुभूतिं नामसंशयनिर्देशपूर्व=तन्नाम तन्मनोगतसंशयनिर्देशपुरस्सरं वदति-भो वायुभूते । तव मनसि संदेहो वर्तते-यत् शरीरं तदेव जीवः । तद्व्यतिरिक्तः=शरीरभिन्नः अन्यः कोऽपि जीवो नास्ति, प्रत्य-क्षादिप्रमाणेन तदुपलब्धभावात् । जलबुद्बुद इव=जलबुद्बुदवत् स=जीवः शरीरात् उत्पद्यते उत्पन्नः सन् शरीरे एव विलीयते=विलीनो भवति । अतो नास्ति अन्यः=शरीरातिरिक्तः कोऽपि पदार्थः=जीवपदार्थः, यः परलोके गच्छेत् ? । 'विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः' इत्यादि=विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येव अनु-विनश्यति-इति वेदवचनमपि अत्रार्थे=शरीरजीवैक्यविषये मान=प्रमाणम् । अयं भावः=विज्ञानघनो=जीव एतेभ्यो

प्रभाव है-कि मेरे दोनों भाई उनके समीप दीक्षित हो गये हैं । अत एव मैं भी उनके पास जाकर अपने मन के 'वही जीव बड़ी शरीर' अर्थात् जीव और शरीर विषयक एकता संबंधी सशय का समाधान प्राप्त करूँ । इस प्रकार विचार कर वायुभूति भी अपने पाँचसौ शिष्यों को साथ लेकर भगवान् के समीप आये । भगवान् ने वायुभूति के नाम और संशय का उल्लेख करते हुए कहा-हे वायुभूति ! तुम्हारे मन में यह सन्देह बैठा हुआ है कि-'जो शरीर है वही जीव है । शरीर से भिन्न जीव अलग नहीं है, क्यों कि प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से जीव की प्रतीति नहीं होती । जैसे जल का बुद्बुद जल से ही उत्पन्न होता है और जल में लीन हो जाता है, जल से अलग उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, इसी प्रकार जीव भी शरीर से उत्पन्न होता है और शरीर में ही विलीन हो जाता है । अतः शरीर से भिन्न कोई जीव पदार्थ नहीं है जो मृत्यु के पश्चात् परलोक में जाय । 'विज्ञानघन ही इन पृथ्वी आदि भूतों से उत्पन्न होकर उन्हीं में लीन हो जाता है' यह वेद-वाक्य भी जीव और शरीर की एकता के विषय में प्रमाण है ।

बाध्यों=जीव-अने आभारा अधानी जे जे श काओ अमने सुअवे छे, ते जधी श काओ अनुकुचे निर्यूँण थती नय छे एवमु अस्तित्व अने कर्मनुं होवापयूँ, आ जन्ने श काओ आभारा मनमा वसतती हती, तेनु निवारण आ व्यक्तिके सञ्चोट कथन द्वारा करी आभ्या पछी, मने पणु थोडी थोडी श्रद्धा तेना पर आवती नय छे. भाटे हुं पणु भारी शंका तेनी आगण प्रदर्शित करी, तेना खुदासा भेणवु । आयुं विचारी ते प्रभु पासे गयो ज्येठवे 'शरीर अने एव' ओकन छे ते नतनी तेमनी शंका, प्रभुओ स्वयं प्रगट करी आथी वायुभूतिने पोताना मननी वात ओमेल्ले डूबी रीते बाणी ते जेष्ठ विरमय थये. भगवाने, ज्येठवे, शिखीबा, लुगवाने, आशंसा विजोरे शुभोना

भवति, सो मोचं विना कस्य भवेत् ।। तत्र शशेऽप्युक्तम्—सत्येन कस्यस्तपसा ह्येव ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो रि भुदो य पश्यन्ति पीरा यतय सयतात्मानः” इति । यदि श्रीराट् अन्यः कोऽपि जीवो न भवेत्तदा “सत्येन तपसा ब्रह्मचर्येण एषकस्याः” इति कथं संगच्छेत ? अतः सिद्ध श्रीराट् मित्तोऽन्यो जीवोऽस्तीति । एवं प्रसू-
नवनेन छिन्नसंशयः प्रविशुद्धो चाप्युभयोरपि पञ्चशब्दित्वैः प्रकृतितः ॥सू० १०८॥

टीका—‘तए नं चतुर्थं विष्णो’ इत्यादि । ततः लक्ष चाप्युभयोरपि ब्रह्मचर्यं आतरो प्रकृतितौ” इति ब्राह्म्य मनसि चिन्तयति—तथाहि—“सत्यम्, एषः—धीमहावीरस्वामी सर्वज्ञो इत्येतै, यस्ममावेण मम ब्राह्मणि कोमल या फटोर भादि सर्वं मैने परेछे छुआ या । इस प्रकार का जो स्मरण होता है, वह जीव के सिवाय किस को होगा ? तुम्हारे आत्म में भी क्या है—

सत्येन कस्यस्तपसा ह्येव ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो रि भुदो य पश्यन्ति पीरा यतयः सयतात्मानः” इति ।

अर्थात्—‘यह नियम, ज्योति स्वरूप और निर्मल आत्मा, सत्य, तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा उपलब्ध होता है, जिसे पीर तथा तपमान् यति ही देखते हैं।’ यदि जीव पुरुष न हा तो यह कथन कैसे संगत होगा ? इस से सिद्ध है कि जीव क्षीर से भिन्न और स्वतंत्र है । प्रभु के इस प्रकार के कथन से चाप्युति का संबंध जिन्न हो गया । वह प्रविशुद्ध हुआ और वीच सौ क्षिप्तों के साथ दीप्ति हुआ ॥सू० १०८॥

टीका का अर्थ—‘मेरे दोनो माँ महावीर स्वामी के तर्माप दीप्ति हो गये’ ऐसा जान कर चाप्युति ब्राह्मण मन ही मन विचार करते हैं—सच है—धीमहावीर स्वामी सर्वज्ञ माक्स होते हैं । यह उनकी सर्वज्ञता का ही प्रत्यक्ष विवेक बाजिबा रहे, अक्षर-मुवाण विवेक शशजिबा स्पष्टी, अन्धारे याद भरीजे छिजे त्पारै शशस्वभां आवे छे आ ‘रुमाव’ छव सिवाय मैने थाय ? तभाग थाअभां पञ्च भक्ष छे है—“सत्येन कस्यस्तपसा ह्येव ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो रि भुदो य पश्यन्ति पीरा यतयः सयतात्मानः” अति आ नित्य अन्धेति स्वदृष्ट निर्भण आत्मा, सत्य-तप अने ब्रह्मचर्यदाश उपलब्ध थाय छे ने ने आत्माने धीर-वीर सभवाण भति जोई थहे छे । ने छव जुदो न होय ते, आ अथन देवी रीते स गत अण्णाय ? आशी सिद्ध थाय छे है, छव शरीरभी बिन्न अने मृत न छे प्रभुना आना प्रवचनभी चाप्युतिना स थय इर थयो । ने प्रतिष्ठाप थाभी, प्रभु पञ्चअण दीक्षा देवा ७५१ मध्ये अजयने स्तु थोअ अरुअर ज्यो तेभने पञ्चोसा विजयेनी आबे दीक्षा आशी दीक्षित थये । (सू० १०८)

विशेषात्—‘छ-इ-धृति अने अजिभुवनी प्रतिष्ठा वज्जी कती छतां तेजो पञ्च प्रकाशित थय स वाशभी निरुद्ध अन्ना भाटे आ पुअन ईछ थाभाअ शोकांनो नभी पञ्च अरुअत विजयने भाअर केवो जेअके । नेअ भाश अने

आतरो तदन्विके पत्रजितौ । अतोऽहमपि तत्र गत्वा स्वमनोगत तज्जीवतच्छरीरविषयं=जीव-शरीरैक्यविषयकं संशयम् अपाकरोमि, इति कृत्वा=इत्येतद्विचिन्त्य सौऽपि=वायुभूतिरपि पञ्चशतशिष्यपरिवृतः प्रशुसमीपे समनुप्राप्तः=समागतः । प्रभुः तं=वायुभूतिं नामसंशयनिर्देशपूर्व=तन्नाम तन्मनोगतसंशयनिर्देशपुरस्सरं वदति=भो वायुभूते । तव मनसि संदेहो वर्तते=यत् शरीरं तदेव जीवः । तद्व्यतिरिक्तः=शरीरभिन्नः अन्यः कोऽपि जीवो नास्ति, प्रत्यक्षादिप्रमाणेन तदुपलम्भाभावात् । जलबुद्बुद इव=जलबुद्बुदवत् स=जीवः शरीरात् उत्पद्यते उत्पन्नः सन् शरीरे एव विलीयते=विलीनो भवति । अतो नास्ति अन्यः=शरीरातिरिक्तः कोऽपि पदार्थः=जीवपदार्थः, यः परलोके गच्छेत् ? । 'विज्ञानघनैवैतेभ्यो भूतेभ्यः' इत्यादि=विज्ञानघनैवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येव अनुविनश्यति=इति वेदवचनमपि अत्रार्थे=शरीरजीवैक्यविषये मान=प्रमाणम् । अयं भावः=विज्ञानघनो=जीव एतेभ्यो

प्रभाव है-कि मेरे दोनों भाई उनके समीप दीक्षित हो गये हैं । अत एव मैं भी उनके पास जाकर अपने मन के 'वही जीव वही शरीर' अर्थात् जीव और शरीर विषयक एकता संबंधी संशय का समाधान प्राप्त करूँ । इस प्रकार विचार कर वायुभूति भी अपने पाँचसौ शिष्यों को साथ लेकर भगवान् के समीप आये । भगवान् ने वायुभूति के नाम और संशय का उल्लेख करते हुए कहा-हे वायुभूति ! तुम्हारे मन में यह सन्देह बैठा हुआ है कि-'जो शरीर है वही जीव है । शरीर से भिन्न जीव अलग नहीं है, क्यों कि प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से जीव की प्रतीति नहीं होती । जैसे जल का बुद्बुद जल से ही उत्पन्न होता है और जल में लीन हो जाता है, जल से अलग उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, इसी प्रकार जीव भी शरीर से उत्पन्न होता है और शरीर में ही विलीन हो जाता है । अतः शरीर से भिन्न कोई जीव पदार्थ नहीं है जो मृत्यु के पश्चात् परलोक में जाय । 'विज्ञानघन ही इन पृथ्वी आदि भूतों से उत्पन्न होकर उन्हीं में लीन हो जाता है' यह वेद-वाक्य भी जीव और शरीर की एकता के विषय में प्रमाण है ।

बाधकोनी=अने अभारा अधानी ने ने शकाओ अभने सुंउवे छे, ते णधी शकाओ अनुकुसे निर्भूण शती णथ छे एवमु अस्तिनव अने कर्मनु डेवापणुं, आ णन्ने शकाओ अभारा भनभा वसतती इती, तेनु निवारणु आ व्यक्तिके सचोऽ कथन द्वारा करी आऱ्या पछी, भने पणु थोडी थोडी श्रद्धा तेना पर आनती णथ छे. भाटे हुं पणु भारी शंका तेनी आगण प्रदर्शित करी, तेना पुढासा सेणुव । आवु विचारी ते प्रणु पासे गयेओ छेटवे 'शरीर अने एव' ओकन छे ते जतनी तेभनी शंका, प्रणुओ स्वयं प्रगट करी. आथी वायुभूतिने पोताना भन्नी वात ओभणु इवी रीते भाणी ते नेछ विस्मय थयो. लगवाने, एवोनी स्मृति, एशसा, चिकीर्षा, एगभिषा, आशंसा निगेरे गुणोना

यूतेभ्यः=तुयिष्यादिभ्य उत्पद्य-उत्पद्य पुनस्तात्वेन भूतानि अनुविनश्यति=तेषु यूतेष्वेव विभीनो भवतीति ।
 अभोष्यते=अस्मिन् विषये प्रतिविधीयते=सर्वभाषिनां जीवो देवत प्रत्यसोऽस्त्येव, यत'-स जीवः स्पृत्यादिगुणानां
 स्पृति-मिमांसा-चिकोर्पा-जिगमिषा-ऽऽद्यसाक्षिनां गुणानां प्रत्यसात्वेन सचित-ज्ञाता अस्ति । स -जीव देहेन्द्रि-
 येभ्यः पुण्यं अस्ति, कृता । इत्याह-'यत' इत्यादि-यतः इन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि यथा नश्यन्ति-न्यायिसत्तादि
 भित्तिन्यन्ते तदा-इन्द्रियोपातास्तथायाम सा-आत्मा स तत् पूर्वमनुपूर्वं इन्द्रियार्थ-श्रुत्यादिकं स्मरति । एतदेव
 विद्यधत्ते-'जरे' त्यादिना, यथा एषः-शब्दः मया पूर्वव्याह युवः । तथा-एतत्तत्त्वं इनमवनवसनादि वस्तु-
 ज्ञाते=मया पूर्वं दृष्टम् । तथा एव गन्धः सुरभिर्दुरभिर्वा मया पूर्वम् आघातः । तथा-एषः मधुरविकारविरसः
 मया पूर्वं भास्वार्हितः ४ । तथा-यः मृदुर्दृक्कादि स्पृशः मया पूर्वं स्पृष्टः ५ आसीदिति सक्त्र सयोजनीयम्,
 एवं प्रकारः स्मृतयो यो भवति सोऽनुभवो जीवं विना कस्य भवेत् ? अपि तु जीवातिरिक्तस्य न कस्यापि,
 अनुभवस्य जीवच्छेत्वादिति । पुनरप्याह-'तुल्यं सर्वेयि इत्यादि । त्वं शब्देऽपि उक्तमस्ति, यत्-'सत्येन

तुम्हारे इस मन्दर का समाधान इस प्रकार है-सब जीवों को अन्तः जीव प्रत्यक्ष होता ही है, क्यों कि
 जीव स्मृति आदि अर्थात्-स्मृति, जिज्ञासा, चिकोर्पा, जिगमिषा, आनंसा आदि गुणों का प्रत्यक्ष रूप से
 ज्ञाता है । वह जीव देह स और इन्द्रियों स भिन्न है क्यों कि जब शक्ति या शब्द आदि के आपात कौरव
 छिन्नी फाल्ग स इन्द्रियों नष्ट हो जाती हैं, तब इन्द्रियों के उपायात की स्थिति में भी आत्मा पहले अनुभव
 किए गए शब्द आदि विषयों का स्मरण करता है । इसी रूपन का स्पष्टीकरण करते हैं-जैसे 'वह शब्द
 मैंने पहले (श्रीम इन्द्रिय का उपायात होने स पूर्व) सुना था । वह इन भवन वसन (वस्त्र) आदि वस्तु-समूह
 मैंने पहले देना था । वह सुगंध या दुर्गंध मैंने पहले सुयी थी । वह मीठा का तिक्त रस मैंने पहले
 आस्तादन किया था । वह क्रौमन्ध या कठोर स्पर्श मैंने पहले छुआ था ।' इस प्रकार का जो स्मरण होता
 है, वह स्मरण जीव के सिवाय और किसी होगा ! जीव के सिवाय और किसी का नहीं हो सकता, क्यों कि
 अनुभव का कर्ता जीव ही है । और जो कहते हैं-तुम्हारे शब्द में भी कहा है कि-'यह नित्य, ज्योतिर्मय और
 उद्वेग शरी सभ्रम ३ है, आ लभा शुभम् ४२ शरीरार्थीभी उदरन् सर्व शक्त्या नधी, शस्त्रं हे आ शुभे, धेतना
 यष्टिवाणा अने धेतना शक्तिशी वक्षस्व हे त्वारे ४३ अं धेतना शक्ति निष्ठुव नधी, ते आ शुभे ४४ भाषी
 देवा रीते ईदुभाव पाभी यहै ? भाते आ शुभेवाण्ण एवताव, शरीरवत्-नधी, तदनं भिन्नं अने निराणु छे धन्दिशे
 दास मेगवेव ज्ञानपक्व, धन्दिशे छेत्त वना छतां स्मरणभा रही यहै छे आ स्मरणं यष्टि एवनी छे, ४५
 शरीर-नी नधी भाते एव अने भावा अने जित छे

લભ્યસ્તપસા હોય બ્રહ્મચર્યેણ નિત્ય જ્યોતિર્મયો હિ શુદ્ધો ય પશ્યન્તિ ધીરા યતયઃ સંયતાત્માનઃ इति । અંય માત્રઃ-एषः=अग्रम् नित्यं-नित्यः, छान्दस्तत्त्वानुसक्तवम्, शाश्वतः, ज्योतिर्मयः=ज्योतिः स्वरूपः, शुद्ध=निर्मलः आत्मा सत्येन तपसा ब्रह्मचर्येण लभ्यः=प्राप्यः यम्=आत्मानम् धीराः=धैर्यवन्तः जितेन्द्रिया इत्यर्थः, संयतात्मानः=कूर्मवत् तत्तद्दिद्रियार्थेभ्यो नियત્રીતमनसः, यतयः=मुनयः पश्यन्ति=साक्षात्કુર્વન્તીति । यदि शरीरात् अन्यः=पृथक् जीवो न भवेत्, तदा 'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येव ब्रह्मचर्येण' इति वेदवचनं कथं संगच्छेत ? अतः शरीराद् भिन्नो जीवोऽस्ति' इति सिद्धं भवति । एवं प्रमुशचनेन छिन्नसंशयः-प्रतिबुद्धो चायुभूतिरपि पञ्चशतशिष्यैः सह प्रव्रजितः । म० १०८॥

નિર્મલ આત્મા સત્ય સે, તપ સે તથા બ્રહ્મચર્ય સે ઉપલબ્ધ હોતા હૈ; जिसको धैर्यवान्-जितेन्द्रिय तथा संय-तात्मा-पूर्ण की तरह इन्द्रियों के रिपयों से मन को नियुहीत करने वाले-मुनि ही साक्षात् कर सकते हैं ।' यदि शरीर से पृथक् जीव न हो तो वेद का यह वाक्य किस प्रकार सगत होगा ? इस से सिद्ध है कि शरीर से भिन्न जीव की सत्ता है । इस प्रकार प्रभु के कथन से चायुभूति का संशय दूर गया । वह अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये ॥ म० १०८॥

તમાના શાસ્ત્રોમા પણ કહ્યું છે કે સંયત આત્માએ પોતાની ઇન્દ્રિયોને કાચગાની માફક ગોઠવી તેમજ મનને વિષયે માથી ખેંચી લઇને પોતાને સાક્ષાત્કાર કરવો જોઇએ આ બધુ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણરૂપ હોવાથી જીવ અને કાયા જુદા છે એમ સિદ્ધ થાય છે ભગવાનની આવી અપૂર્વ વાણીનુ શ્રવણ થતા વાયુભૂતના અતર્ગત ભાવો કેવી રીતે પડતાયા તે કહે છે કે -

‘દેહ જીવ એક રૂપે ભાસે છે અજ્ઞાન વડે,
ક્રિયાની પ્રવૃત્તિ પણ તેથી તેમ થાય છે.
જીવની ઉપત્તિ અને રોગ શેક ફા.ખ મુલ્યુ,
દેહનો સ્વભાવ જીવપદમા જણાય છે.
એવો જે અનાદિ એક રૂપનો મિથ્યાત્વ ભાવ,
સાનિના વચ્ચેનો વડે દૂર થઈ જાય છે
ભાસે જડ ચૈતન્યનો પ્રગટ સ્વભાવ ભિન્ન,
બંને દ્રવ્યો નિજ નિજ રૂપે સ્થિત થાય છે.
જડ ને ચૈતન્ય બંને દ્રવ્યોના સ્વભાવ ભિન્ન,

મુસ્ય—તદ્દર્શન વિચારામિત્રો મારણો વિ વિમરિસાદ—જ હમે વેયજ્યી સરુના મહર્પદિયા તવો વિ માયરા
 ઢિન્ન પિય ગિય સંસયા પચ્છદયા, અયો હ્મો કોતિ અલોદયો મહાપુરિસો પઠિમાસદ, સયંરિય અરમણિ
 ગચ્છામિ, જર સો મમે સંસયં ષેસ્સદ, તારે અવમણિ પચ્છસ્સામિલિ કદ્દુ સો વિ પંચસયસિસ્સપરિવાર
 પપિહો પદુસમીપે સમાગચ્છદ । પદ્ય ત ગમસંસયનિરેસપુલ્લં આમાસે—મો વિયયા ? તુઝ્ઝમર્ણસિ—‘પુદ્ધવી
 માદ પંચયુયા ન સંતિ, તેસિ આ હ્મા પઠીઈ જાયદ સા જલ પંથોચ્ચ મિચ્છા, પય સચ્ચ જગં મુણં ચદ્દ
 “સ્ત્રોતમ વે સક્કલં” હ્માદ વેયવણાઓ પિ—સંસયો ચદ્દ સો મિચ્છા । અદ પં વે તારે મુલ્લપસિદ્ધા મુમિયા
 મુમિયા—પયયા કદં દીર્ઘં ? । વેયસુ વિ પુલ્લ—“પુપિધી દેવતા—માયો વેવતા” હ્માદ, અયો પુદ્ધવી આદ પંચ-
 ચુપાદ સંતિ પિ સિદ્ધં । પર સોલા નિસમ્મ ઇન્નસંસયો વિયયો વિ પંચસયસીસેઈ પદુસમીવે પલ્લવ્યો । સ્વ૦ ૧૦૬ ।

છાયા—વંજા તલ્લ ઇગ્ગામિયો દ્વાલ્લગો વિપુલ્લવિ, —યદ્દ હમે વેદ્ધવ્યીસ્વરુપા મહાપિન્ડિતાલેયોઽપિ આતર
 ઇન્દિન્ન નિજ નિજ સંઘયા” પ્રવ્રજિતાઃ, અયોઽયં કોઽપિ અઝીકિકો મહાપુરુષઃ મતિમાસતે, તદન્તિકે મહમપિ

કુપ્રતિપલ્લે બન્ને ભેને સમબ્ધ છે

સ્વરૂપ કિતન નિજ બદ છે સબ્ધે આત્મ

અવધા તે સેમ પણ પદ્ધત્યર્થમાં છે

એવો અનુભવનો પ્રમાણ ઉલ્લાસિત થયો;

બધી ઊભી તેને આત્મવૃત્તિ થાય છે

શાશની વિચારો આશા, સ્વરૂપે શાશા એવા,

નિર્ઝન્ધનો પચ ભવ અતનો ઉપાશ છે

ઉપર પ્રમાણેની અતરધારા વાચુર્જિતની મનોભૂમિમાં જણે ઊઠી આપતાં, આનહથી તેડુ રેડુ ફેલાવા લાગ્યુ
 તેવે સમય મનનો પ્રમાણ નહિ કરતા ભગવાનની પાસે પાંચસો શિષ્યો સાથે ઠીકા ઝડકણ કરો

ઠાટિ વર્ષેટ્ટ સ્વપ્ન પલ્લ, બાગુત થતાં સમાજ;

તેમ વિભાવ અનાદિત્યો, જ્ઞાન થતાં દૂર આશ.”

આ પ્રમાણે વાચુર્જિતે બાગુત થતાં ૨ હાથાવ કરવા તરફ વળ્યા; અને પોતાની આત્મ-ચત્ત્વિતિને પોતાનામાં
 વાગવા દીધાત બન્નેયે (સ્વ૦ ૧૦૮)

गच्छामि । यदि स मम संशयं छेत्स्यति तदाऽऽमपि प्रव्रजिष्यामीति कृत्वा सोऽपि पंचशतशिल्पपरिचारपरिवृतः प्रभुसमीपे समागच्छति । प्रभुश्च त नामसंशयनिर्देशपूर्वमाकारयति—भो व्यक्त ! तव मनसि पृथिव्यादिपञ्चभूतानि न सन्ति, तेषां या-इयं प्रतीतिर्जायते सा जलचन्द्रान्मिथ्या । एतत्सर्वं जगत् शून्यं वर्त्तते—“स्वमोपमं वै सकलम्” इत्यादि वेदवचनादिति संशयो वर्त्तते । स मिथ्या । यद्येवं तदा भुवनप्रसिद्धाः स्वप्नास्वप्नपदार्थाः कथं दृश्येरन् ? वेदेवप्युक्तम्—“पृथिवी देवता आपो देवता” इत्यादि । अतः पृथिव्यादिपञ्चभूतानि सन्तीति सिद्धम् । एवं श्रुत्वा निशम्य छिन्नसंशयो व्यक्तोऽपि पञ्चशतशिल्पैः प्रभुसमीपे प्रव्रजितः ॥मृ०१०९॥

मूल का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । तत्पश्चात् व्यक्त नामक ब्राह्मण ने विचार किया—‘यह वेदव्रथी के समान महापण्डित तीनों भाई अपने-अपने संशय का निवारण कर के दीक्षित हो गये हैं । मालूम होता है, वह कोई अलौकिक महापुरुष हैं, मैं भी उन महापुरुष के पास जाऊँ । अगर वह मेरे संशय को दूर कर देंगे तो तो मैं भी दीक्षित हो जाऊँगा । ऐसा सोच कर वह भी पाँचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप गये । प्रभु ने उन्हें नाम और संशय का उल्लेख करके कहा—हे व्यक्त ! तुम्हारे मनमें यह संशय है कि पृथ्वी आदि पाँच भूत नहीं हैं, उनकी जो प्रतीति होती है सो जल-चन्द्र के समान मिथ्या है । यह समस्त जगत् शून्य रूप है । वेद में भी कहा है—‘स्वमोपमं वै सकलम्’ इति । अर्थात्-सब कुछ स्वप्न के समान है ।’ तुम्हारा यह विचार मिथ्या है । अगर ऐसा हो तो तीन लोक में प्रसिद्ध स्वप्न-अस्वप्न गंधर्वनगर आदि पदार्थ क्यों दिग्विई

भूणं न अर्थ—‘तए णं’, छत्यादि त्याग्याह व्यक्त नामना यथा ग्राह्ये विचार कथो हे आ अह त्रषु वेद समान भूतपण्डितो तेभज सगासहोदरो पोतपोताना संशयानुं निवारणु करी दीक्षित थथा ! आ उपरथी भालुम पडे छि के ते डोड अलौकिक पुरुष छे । हु पणु तेभनी पासे ञड’ । कदाच ते भारी शंङाने निवारणे तो हुं पणु तेभनी पासे दीक्षा-पर्याय धारणु करीश । आभ विचारो ते पण पायसो शिष्यो साथे त्रषु पासे पडोथी गयो ।

प्रभुको तेना नाम अने सशयनो उल्लेख करी कहुं के ‘हे व्यक्त ! तारा भनभा कोवो संशय छि के ‘पृथिवी आदि पाच भूतो इशे के नडि ? अने जे होय तो पण ञण-यद्र समान भिथ्या छि, तेभज आ समस्त जगत शून्य रूप छि वेदमा पणु कहु छि के—“स्वमोपमं वै सकलम्” तमाभ स्वभवत् छि । आ गधी जाणतोभां तने शङा उडी छि ते वात डीक छि ने ? व्यक्ते जवाण वाल्यो के ‘हु, तेभज छि, भने उपरनी वानोभां गाढ शंङको वते’ छि’ । जगवाने तेना भननु समाधान करवा कहु के ‘आ तारी मान्यता भूतबरेदी छि । जे तारा कहेवा भुज्ज आ गधु’ त्रणु लोकमा देआता नगर आदि तेभज अन्य पदार्थो स्वभवत् छि ; तो तेनज्जैनजर केभ देआय छि ?

टाका—'तए न तपयणममरा' इत्यादि । सतः=वायुभुतप्रमजानन्तरं सतु व्यक्ताभिपः—व्यक्तनामा प्राप्ताया विमृति=विचार्यति यत् इमेन्द्रप्रणमिभूति—वायुभूतयोः भेदवर्गीस्वरूपाः=सुखयुक्तसामेति चेदप्रयी तस्वरूपा मरापण्डिताः त्रयोऽपि धातरः छिन्नं निम निम संभया=विगतं सदाश्रयं वेदाः प्राप्तिताः । अतोऽयं कोऽपि अर्थोक्तिः=नोकोपरो मरापुरुषः प्रतिमासते । तदन्तिष्ठ भवमपि गच्छामि । यदि सः मम सुखं=संदरेरं ऐरस्यति । तदा भवमपि मयिभ्यमि इति कृत्वा=इति पराश्रयं सोऽपि पश्यत=शिव्यपरिवारपरिहृतः सन् प्रमुमनोये समागच्छति, प्रमुखं तप=व्यक्तं नामसंख्यनिर्देशपूर्वमाभापते=सम्प्रोधयति, तथाहि=भो व्यक्त ! तव दूते ई ई चेदा मं मी करा है—'पृथिवी देवता आपो देवता' अर्थात्—'पृथिवी देवता है, जस देवता है, इत्यादि । 'यतः पृथिवी आदि पौंच भूत हैं या सिद्ध हुआ । ऐसा मुन कर और इन्द्र में चरण करके, जिनका संख्य निरूप हो गया है, ऐसे वह व्यक्त मी पौंच सौ शिवों के साथ प्रभु के साथ विस्ति हो गये । सू० १०९॥

टोका का अर्थ—वायुभूति के दीक्षित हो जाने के पश्चात् व्यक्त नामक प्राप्ताया ने विचार किया—इन्द्र भूति, अनिमृति और वायुभूति, या तीनों मरापण्डित तीन पेट=सुखेद, यजुर्वेद और सामवेद=स्वरूप थे । यह तीनों मार्ग अपने-अपने अनेगत समर्थों के दूर कर के दीक्षित हो गये । इस कारण यह=मरावीर-कोई मोरावर मरापुरुष प्रतीत होते हैं । मैं मी उन के निकट जाऊँ । यदि उन्होंने मेरी छंका का निवारण कर दिया तो म मी दीक्षा भगीकार कर दूँगा । इस प्रकार विचार कर व्यक्त पण्डित मी अपने पौंच सौ अन्तेवासियों को साथ लेकर मगवान् के निकट पहुँचे । मगवान् ने व्यक्त का नागोषाण करने हुए तथा उनके मन का सदय प्रकाशित करते हुए इस प्रकार खरोपन किया=हे व्यक्त ! तुम्हारे अन्तःकरणमें ऐसा

वेदार्थ पञ्च उक्त है—'पृथ्वी देवता, आपो देवता' आ पृथ्वी जैसे देवता छ अने वण पञ्च देवता छ । तेनी जेभ सिद्ध बाप छ छ पृथ्वी आदि पञ्चभटाएतो विमान छ वेदवाक्यनो आबो खपयो । अबे भण्ठां देनी मिथ्या भान्ता आराम बा छ अछ, तेने पञ्च सार उपर वैराग्य भावता पांगसो शिष्योनी साबे प्रभुनी अन्तरि ते विहित करे (सू० १०८)

विरोधात्—उत्पत्ति=अभिप्रेत अने वायुभूति नखे सभा खोहार हटा तोमर पडित तही छ पञ्च देवता छ । तेनी वेदवर्गी स्वरूप हता आ ननु प्रथम पडितो पञ्च पञ्च भान स्वाभी आश्रय नही पया, ने आरे तोमर इथन तोमने अरेकर अजे पतनु' इहे त्वारेन आत्माध साधना देवता निभवा देवता छहे । आधी जेभ सम्भवा छ हे 'मरावीर' दोहोहार पुरा देवा जेअने जेभ अभिति बाप छ छ पञ्च तोमनी निज न्छ, अने आ स दारनी लजतारनी जत बाप आउ निबारी 'अन्त पडित पञ्च पानानी छ पदेक भा=वताउ निराश्रय योपवा पांजसो शिष्यो साबे उपदेवो ।

મનસિ-પૃથિવ્યાદિ પદ્યપ્રત્યાનિ ન સન્તિ, તેપાં-પૃથિવ્યાદિપ્રત્યાના યા ઇયમ્ પ્રતીતિઃ=અનુભવો જાયતે સા જલ-ચન્દ્રવત્-જલે પ્રતિવિમ્બિતશ્ચન્દ્ર ઇવ મિથ્યા યતઃ એતત્=દૃશ્યમાન સર્વ નિઃશેષં જગત્ શૂન્ય વર્તેતે । તત્ર પ્રમાણમુપ-ન્યસ્યતિ=‘સ્વમોપમં’ વૈ સકલમ્’ ઇતિ । સકલં=દૃશ્યમાનં સર્વં સ્વમોપમમ્=સ્વપ્રદૃષ્ટપદાર્થવત્ અસ્તિ વૈ=નિશ્ચયેન, ન તુ સત્યમિત્યર્થઃ, ઇત્યાદિ વેદવચનાત્, ઇતિ ઇત્યં તત્ર મનસિ સંશયો વર્તેતે । સઃ મિથ્યા અસ્તિ । તથાહિ-યદિ ઇવં-પૃથિવ્યાદિપ્રત્યક્ષકાભાવઃ સ્યાત્, તદા સુવનમસિદ્ધિઃ=સકલલોકપ્રભુતાતાઃ સ્વમાસ્વપદાર્થાઃ-સ્વમા-વસ્થાર્થાં ગજતુરગાદયઃ, અસ્માક્વસ્થાયા ગન્ધર્વનગરાદયશ્ચપદાર્થાઃ કથં-કેન પ્રકારેણ દૃશ્યેરનન્દદૃષ્ટિવિષયતયા-સંશયઃ હૈ કિ-પૃથિવી આદિ પૌંચ મૂર્તીં કી સત્તા નહીં હૈ । ઇન પૌંચો મૂર્તીં કી જો પ્રતીતિ હોતી હૈ, વહ જલ મેં પ્રતિવિમ્બિત હોનેવાલે ચન્દ્રમા કી પ્રતીતિ કી તરહ આન્તિ માત્ર હૈ । યહ સમ્પૂર્ણ દૃશ્યમાન જગત્ શૂન્ય હૈ । ઇસ વિષય મેં પ્રમાણ દેતે હૈ—‘સ્વમોપમં’ વૈ સકલમ્’ અર્થાત્-‘નિશ્ચય હી સમી કુહ સ્વમ કે સદૃશ હૈ ।’ જૈસે સ્વમ મેં ત્રિવિધ પ્રકાર કે પદાર્થ દૃષ્ટિગોચર હોને હૈ, કિન્તુ ઉનકી પારમર્થિક સત્તા નહીં હૈ, ઉસી પ્રકાર જગત્ મેં દિશ્વાઈ દેનેવાલે નિવિધ પદાર્થોં કી મી વાસ્તવિક સત્તા નહીં હૈ । વેદ કે ઉક્ત વાક્ય સે ઇસી મત કો સિદ્ધિ હોતી હૈ ।

તુમ્હારા યહ સસય મિથ્યા હૈ । અગર પૌંચો મૂર્તીં કા અભાવ હો ઓર યહ જગત્ શૂન્ય-રૂપ હો તો લોક મેં પ્રસિદ્ધ સ્વમ અસ્વમ કે અર્થાત્-સ્વમ કે બજતુરગાદિ, અસ્વમ કે ગન્ધર્વ નગરાદિપદાર્થ વયોં અનુભવ મેં આવે ?

ભગવાને તેના મનમા રહેલી શક્રને પોતાના જ્ઞાન દ્વારા જાણી લીધી અને ‘કહ્યું’ કે ‘તારામા એ જાતનો અભિપ્રાય વરતી રહ્યો છે કે પૃથ્વી આદિ પાંચ જોતો આ જગતમા છેજ નહિ પરંતુ જેમ જળમાં ચંદ્રનું પ્રતિબિંબ દેખાય છે, તે તે જળનો અદ્રમાજ છે એમ આપણે માનીએ છીએ તેમ ચંદ્રમાની પ્રતીતિ માફક આ પૃથ્વી આદિનું દેખાણું તે પણ એક ભ્રાન્તિ માત્ર છે ! આ જગત શૂન્ય રૂપજ છે ! ભ્રાન્તિપણે આ સર્વ પદાર્થો દેખાય છે, ભ્રાન્તિ-પણેજ સગા સહોદરો દેખાય છે. વાસ્તવિક રીતે તો આ વધુ દેખાય છે તે કલ્પનાનોજ સંસાર છે. “કલ્પનાથીજ ઉભો થયો છે અને કલ્પના ખસી જતાં શૂન્યપણું જ ભાસે છે જેમ સ્વપ્નમાં સકલ પદાર્થો દૃષ્ટિગોચર થાય છે અને લોગવાય છે તેને વાસ્તવિક માની તેનો રસ થૂંભાય છે, મિત્ર દુરમનનો લેહ જણાય છે. પણ સ્વપ્ન ખસી જતાં કાઈ પણ દેખાતુ નથી આ એક ભ્રમ હતો એમ જાણી આપણે નિદ્રામા સૂઈ જઈએ છીએ અગર નિદ્રામાંથી જાગત થઈએ છીએ તેમ આ સંસાર પણ એક દીર્ઘ સ્વપ્ન છે એટલે જાગીને જોતાં અગર મૃત્યુ વખતે આમાનું કાઈ આપણને જણાતુ નથી તેથી એ આ જોડું જોયું તેવા ભ્રમ ઉપસ્થિત થાય છે.”

अनुभवविषयाः क्रियेरह १, किंच त्वमिमंते चेदेऽपि पृथिव्यादिपूतपञ्चकास्तित्वम् उक्तम्, तथाहि—‘पृथिवी चेवता, आपो देवता’ इत्यादि अथः चेदेऽपि पृथिव्यादिपूतपञ्चकास्तित्वाभिपानात् पृथिव्यादिपञ्चयूतानि सन्ति, इति सिद्धम् । एवं मृत्वा-सामान्यतः भस्मगोचरीकृत्य निश्चम्य-कशयोहाभ्यां विशेषतो हविनिमित्तम्, छिन्नसञ्चयो-व्यक्तोऽपि पञ्चशतवित्त्यैः सह, प्रसूयमीये प्रयजिता ।। ४०१॥

आद्यं यद् वै कि-तुम् करते हो कि यह सब अन्न-वस्त्र के समान आन्त हैं; किन्तु क्यों न करी पारमार्थिक होने पर ही इसी जगत् उसकी आन्ति होती है । आकाश में वास्तविक वस्त्र न होता तो जल में वस्त्रमा का चम भी न होता । जगत् के पदार्थों को स्वमष्ट पदार्थों के समान कहना भी ठीक नहीं, क्यों कि जाग्रत अवस्था में वास्तविक रूप से पदार्थों का दर्शन न होता तो स्वप्न में वह कैसे दिखाई देते ? जिस वस्तु का सर्वथा अभाव है, वह स्वप्न में भी नहीं दीखती । इसके अविरक्त स्वमष्ट पदार्थों में अयंक्रिया नहीं होती, अथ एव उन्हें कवचित् असत् मान भी लिया जाय तो भी जाग्रत अवस्था में दिखाई देने वाले जिन पदार्थों में अयंक्रिया होती है, उन्हें किस प्रकार मिथ्या-असत् माना जा सकता है ? इसके अविरक्त दुन्दारे प्रमाण मूल माने हुए वैश्व में भी तो पाँच मूलों का अस्तित्व कहा है । यथा—पृथिवी देवता है, जल देवता है, इत्यादि ।

अत्रयत्ने तेने। ४१२ प्रमाद्येन। अतः कदाचित् सर्व समभवत्तु कदा हे मा त्वारी यधी आन्वता सत्त्वधी देवता छिन्न-वन्तमा तो केह पञ्च पदार्थोंनी कथानी ब्रह्माती न नथी, त्वारे मा अत्रतमा तु वैद्य, दुर्वा, भलेक, भलेवाते, नगी, तत्राव विमेश अनेक पदार्थो यथा तत्रव लुके छिन्ने आकाशमां यद् न होव तो मु तो अणमां देभाई थके ? स्वप्नमां पञ्च ने ने पदार्थो वास्तविक होते श्रेष्ठ छि तोधी न तो पदार्थो स्वप्नमां कसे छि ने पदार्थोनु अस्तित्व न होव तो ते पदार्थो हेवी शीत देभाई थके ? स्वप्नमां ने ने पदार्थो आभास तरीके अज्ञान छि ते आभासी पदार्थोंमां अर्धकिना होटी नथी, तोधी स्वप्न माद तेको तेने ब्रह्माती नथी, त्वारे स साधना सुदं पदार्थो अर्धकिनास पन्न छि आटे न ते देभावा योग्य छि अने तेभनु अस्तित्वपञ्च वास्तविक होते दहेछ छि ‘आभास’ ने भण वस्तु नथी, आधी प्रतिभिण छि आटे ते अर्धकिना संपन्नधी सव पदार्थ अर्धकिना स पन्न छि कछि ने कछि परिश्राम किना सद्धित न सव पदार्थ जेवमां आवे छि ने ने कछि किना छि ते ते सव सङ्ग छि, निरर्थक नथी आनी अर्धकिमाने छीपि तेमा रूप रस, वर्ण, इव विवेकमां हेतुहार यथा इरे छि आटे न पृथ्वी आदि पदार्थो अममन्त नथी पञ्च वास्तविक छि वेदमां पञ्च मा पदार्थोने देवनी कथामां भुक्ता छि अस्तु हे मा पदार्थोनी

મુલ્ય—ચરો વિ પંડિયા પદુસમીવે પવ્વહ્યતિ સુમિય ઉવજ્ઞાઓ સુહમ્માભિહો પંડિઓ વિ નિયસય-
 છેયણં પંચસયસિસપરિહુદો પહુસ અંતિણ સમાગઓ । પહુ ય તં કહેઈ—મો સુહમ્મા ! તુઝ્ઞમણંસિ ય્યારિસો
 સંસઓ વટ્ટઈ—જો રહ મહે જારિસો હોઈ સો પરમવેવિ તારિસો ચેવ હોંડં ઉપ્પજઈ, જહા સાલિવળેણં સાત્તી ચેવ
 ઉપ્પજંતિ, નો જવાઈયં । “પુરુષો વે પુરુષસ્વમશ્રુતે પશવઃ પથુન્વમ્” ઇચ્છાઢ વેયવળાઓત્તિ । તે મિચ્છા, —જો
 મહવાઈ ગુણજુત્તો મણુસાડ વંધઈ સો પુગો મણુસત્તળેણ ઉપ્પજઈ । જો ઉ માયામિચ્છાઈ ગુણજુત્તો હોઈ સો
 મણુસત્તળેણ નો ઉપ્પજઈ, તિરિયત્તળેણ ઉપ્પજઈ । જં કઠિજ્ઞઈ—‘કારણાણુસારં ચેવ કજ્ઞં હવઈ’ તં સંધં કિતુ
 અળેણ એવં ન સિજ્ઞઈ જ જહારુવો વટ્ટમાણમ્મત્તો તહારુવો ચેવ આગામી મ્મવો મવિસસઈ, જઓ વટ્ટમાણાગમય
 મ્મવણં પરોપ્પરં કજ્ઞકારણમ્મવો નરિય ંઓ ‘અળાગમયમ્મત્તસ કારણં વટ્ટમાણમ્મવો ંતિય ઇમો પચ્ચઓ મમ-
 મરિઓ, વટ્ટમાણમ્મે જસસ જોવસસ જારિસા અઙ્ગવસાયા હવંતિ તયજ્ઞવસાયરુચકારણાણુસારમેવ જીવાણં
 અળાગમયમ્મત્તસ આઙવંધઈ, તં વઙ્ગાડરુચકારણમણુસરીય ચેવ અળાગમયમ્મવો મ્મવઈ ।

જઈ કારણાણુસારમેવ કજ્ઞં હોજા તયા ગોમયાડઓ વિંછિયાઈણં ઉપ્પત્તી નો સંમવેજ્ઞા, ઇયકઠણંપિ ન
 સંગયં, જઓ ગોમયાઈયં વિંછિયાઈણં જીબુપ્પત્તીણ કારણ નરિય તં તુ કેવલં તેસિ સરીરુપ્પત્તીણ ચેવ કારણં, મોમયા-
 ઇરુચકારણસસ વિંછિયાદસરીરુચકજ્ઞસસ ય અણુરુચયા અતિયચેવ, જઓ ગોમયાઈણ રુચસાડ પુગલાણં જે
 ગુણા હોતિ તે ચેવ ગુણા વિંછિયાઈ સરીરેવિવલ્લભંતિ । એવં રુચકારણાણં અણુરુચયાસોગારે, વિ ઇયં ન સિજ્ઞઈ જં-
 જહા પુવ્વમ્મવો તહેવ ઉત્તરમ્મવો વિ હોઈ । વેપ્પુ વિ બુત્તં—“શ્રુગાલો વે ઇણ જાયતે યઃ સપુરીષો દગ્ધતે” ઇચ્છાઈ । અઓ મ્મવંતરે
 વેસારિસં મ્મવઈ જીવસસિ સિદ્ધં । એવં સોઙ્ખ નદ્ધસંદેહો સોવિ પંચસયસિસસેહિં પહુસમીવે પવ્વહ્યઓ ॥૫॥મ્મ૦ ૧૧૦॥

જવ વેદ મેં મી પોંચોં મૂતોં કા અસ્તિત્વ પ્રતિપાદન કિયા ગયા હું તેા યહ સિદ્ધ હુઆ કિ પોંચ મૂત હું ।
 યહ કથન સામાન્ય રૂપ સે શ્રવણ કરકે ઔર જહાપોહ દ્વારા વિશેષરૂપ સે હૃદય મેં નિશ્ચિત કરકે
 વ્યક્ત મી સંશય નિવૃત્ત હોને પર પોંચસોં શિષ્યોં કે સાથ મગવાન્ કે સમીપ પ્રવ્રજિત હો ગયે ॥મ્મ-૧૦૯॥

શક્તિ એટલી બધી હોય છે કે તેને માનવી દેવી શક્તિ તરીકે ઓળખે છે એટલા માટે જ આ પાંચ મહાભૂતોની
 પછવાડે ‘દેવતા’ શબ્દ મૂક્યો છે. આ પદાર્થો ચોતાની શકિત દ્વારા ગમે તેવું રૂપાંતર કરી શકે છે અને એક
 અણુમાત્રમાં તીવ્ર શક્તિ રહેલી છે, તેા સ્કધોની તેા વાત જ કયા રહી ? આથી આ પાંચ ભૂતો સ્વસિદ્ધ થાય
 છે. આણું અપૂર્વ સામર્થ્ય જડ દ્રવ્યોમા હોય છે તેવું કથન મહાવીર સ્વામીના સ્વયં મુખેથી સાંભળતાં તેમના શબ્દોમાં
 ‘વ્યક્ત’ ને શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ ને તે પશુ પાંચસો શિષ્યોની સાથે દીક્ષિત થયો. (સૂ.૦૧૦૯)

छाया—‘नसारोऽपि पण्डिता मधुसमीये प्रवर्जिता!’ इति श्रुत्वा उपाध्यायः सुप्रमोदितः पण्डितोऽपि निनस्तदुपपत्त्यर्थं पदमयमिदं प्रतिष्ठितः प्रमोदितके समागत । प्रथमं तु कथयति—‘यो सुधर्मन् ! तव मनसि एतादृशं संशयो वर्तते य इव मये यादृशो भवति स परमकेऽपि तादृश एव भूत्वोत्पद्यते, यथा श्राद्धिपनेन श्रास्य परात्पद्यन्ते नो यथादिक्म् । “पुरुषो वै पुरुषत्वनमनुते पशवपशुत्वम्” इत्यादि केववचनानि । तस्मिन्, यो मार्दवादिगुणयुक्तो मनुष्यायुर्ब्रह्माति स पुनर्मनुष्यत्वमेवोत्पद्यते । यस्तु मायामिध्यादिगुणयुक्तो भवति स मनुष्यत्वेन नोत्पद्यते, सिंप्रत्येन उत्पद्यते । यत् कथ्यते—“कारणानुसारमेव कार्यं भवति” तत्सत्यं, किन्तु—भनेन एवं न सिध्यति

मृत का मर्य—‘चउरो वि’ इत्यादि । ‘इन्द्रयति, अग्निभूति, वायुभूति और स्यक्त कारों ही पण्डित दीक्षित हो गये ।’ यह सुनकर उपाध्याय सुप्रमो नामक पण्डित भी अपने संशयको छेदने के लिए पौषलो द्विज्यों क साथ प्रसक्त पाठ पढ़े । प्रथमे उन से कहा—‘ये सुधर्मन् ! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि जो जीव इस मय में जैसा होता है, परमधर्म में भी वैसा ही होकर उत्पन्न होता है, जैसे जालि बाने से जालि ही उगते हैं, जो (यह) आदि नहीं । केव-वचन भी ऐसा है कि—‘पुरुषो वै पुरुषत्वमनुते पशवः पशुत्वम्’ इति । अर्थात्-पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त होता है और पशु पशुत्व को ही प्राप्त होता है ।’

तुम्हारा यह विचार मिथ्या है । जो मरुता आदि गुणों से युक्त जीव मनुष्यायु का बन्धन करता है, वह मनुष्य रूप से उत्पन्न होता है । जो तीव्रतर माया-मिथ्यात्व आदि गुणों से युक्त होता है, मनुष्य रूप से उत्पन्न नही होता, किन्तु विर्यच रूप से उत्पन्न होता है, यह जो कहा जाता है कि कारण के अनुकूप ही

भूतनो भव—‘चउरो वि’ इत्यादि ईन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति जने व्याख्याते “कारे पण्डित इक्षितं बर्ध अथा” की व्याख्यानोपेक्षायां सुप्रमो नामका पण्डित पशु पीतानां स शबेनाया निवारण आते पांक्षितो । शिष्योनी भावे प्रभुनी पादो पदोऽप्या प्रभुत्वे तेने भसु—के सुप्रमो ! तमाशा भनमा कोवो स यम छे—के रूप आ शवर्मा नेवो कोव छे परमवर्मा पशु ते कोवो भवति न मी छे, नेम आति बानवाणी आति न छे छे, पशु नम आदि भवता नमी वेह-वयन पशु कोवु छे—“पुरुषो वै पुरुषत्वमनुते पशवः पशुत्वम्” कोटो के पुरुषने पुरुषत्व प्राप्त थाव छे अने पशु, पशुत्वने न पावे छे तमादो आ विचार निरथा छे मरुता आदि शिष्योनी सुक्त कोवो के रूप मनुष्य आशुना न म आदि छे, ते मनुष्यपि उत्पन्न थाव छे ने तीव्रतर माया-मिथ्यात्व आदि गुणोनी सुक्त कोव छे, ते मनुष्यपि उत्पन्न भवता नमी यम तिर्ध-व्यपि कपत्र थाव छे कोम ने कहेवाव छे के शरवने अनुद्वेष शर्ध थाव छे ते नशानर छे पशु

યત્-યથારૂપો વર્તમાનમવસ્તથારૂપ एव आगामी भवो भविष्यति, यतो वर्तमानाऽऽनागतभवयोः परस्परं कार्य-कारणभावो नास्ति, अतः-‘अनागतभवस्य कारणं वर्तमान भवोऽस्ति’ अयं प्रत्ययो भ्रमभूतः, वर्तमानभवे यस्य जीवस्य यादृशा अध्यवसाया भवन्ति तदध्यवसायरूपकारणानुसारमेव जीवानामनागतभवस्यायुर्बध्यते, तद् वज्जा-यूरूपकारणमनुष्ठेयवानागतभवे भवति ।

‘यदि कारणानुसारमेवकार्यं भवेत्तदा गोमयादितो वृश्चिकादीनामुत्पत्तिं नो संभवेत्’ इति कथनमपि न संगतं, यतो गोमयाદિકं वृश्चिकादीनां जीवोत्पत्तौ कारणं नास्ति, तनु केवलं તેપાં શરીરોત્પત્તિવેવ કારણમ્, ગોમયાદિરૂપ કારણસ્ય વૃશ્ચિકાદિ શરીરરૂપકાર્યસ્ય ચાતુરૂપતાઽસ્યેવ, યતો ગોમયાદિકં રૂપરસાદિપુદ્ગલાનાં યે ગુણા ભવન્તિ ત एव गुणावृश्चिकादिशरीरेऽप्युपलभ्यन्ते । एवं कार्यकारणયોરનુરૂપતા સ્વીકારેડપિ एतन्न सिध्यति यत-

कार्य होता है, सो ठीक है, किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जैसा वर्तमान भव है वैसा ही आगामी भव होगा, क्योंकि वर्तमान भव और आगामी भव में परस्पर कार्य कारणभाव नहीं है । अर्थात् आगामी भवका कारण वर्तमान भव है, यह समझना भ्रम पूर्ण है । वर्तमान भव में, जीस जीव के परिणाम-अध्यवसाय जैसे होते हैं, उन्हीं अध्यवसाय रूप कारण के अनुसार आगामी भव की आयु बंधती है और वज्जा आयु रूप कारण के अनुसार ही आगामी भव होता है । अगर कारण के अनुसार ही कार्य होता तो गोबर आदि से वृश्चिक आदि की उत्पत्ति संभव न होती । यह कथन भी संगत नहीं है, क्योंकि गोबर आदि, वृश्चिक आदि के जीवकी उत्पत्ति में कारण नहीं हैं, सिर्फ वृश्चिक आदि के शरीर की उत्पत्ति में ही कारण होते हैं । और गोबर आदि रूप कारण तथा वृश्चिक जादि शरीर रूप कार्य में अनुरूपता है ही । गोबर आदि में रूप, रस, आदि पुद्गल के जो गुण होते हैं, वही गुण वृश्चिक आदि के शरीर में भी पाये जाते हैं ।

તેથી એ સિદ્ધ થતુ નથી કે જેવો વર્તમાન ભવ છે, એવો જ આગામી ભવ હશે, કારણ કે વર્તમાન ભવ અને આગામી ભવમા પરસ્પર કાર્ય-કારણભાવ નથી એટલે કે આગામી ભવનું કારણ વર્તમાન ભવ છે, એમ માનવું તે ભ્રમભર્યું છે. વર્તમાન ભવમા, જે જીવના પરિણામ-અધ્યવસાય જેવા હોય છે, એજ અધ્યવસાયરૂપ કારણને અનુસાર આગામી ભવનો અ-યુગ્મધ ય ધાય છે. અને આયુગ્મધના કારણ પ્રમાણે જ આગામી ભવ થાય છે “જો કારણને અનુસાર જ કાર્ય થતુ હોય તો છાણ-વગેરેમાથી વીછી વગેરેની ઉત્પત્તિ સંભવી ન શકત” આ કથન પણ અસંગત છે. કારણકે છાણ આદિ, વીછી આદિના જીવની ઉત્પત્તિનું કારણ નથી, પણ ફક્ત વીછી આદિના શરીરની ઉત્પત્તિના કારણરૂપ હોય છે. અને છાણ આદિરૂપ કારણતથા વીછી આદિ શરીરરૂપ કાર્યમાં અનુરૂપતા છે જ. છાણ આદિમાં રૂપ, રસ, આદિ પુદ્ગલતાના જે ગુણ હોય છે, તે જ ગુણ વીછી આદિનાં શરીરમા પણ હોય છે. આ

पया पूर्वमन्त्रस्यैवोपरमनोऽपि भवति । देवेव्ययुक्तम्—“भृगुलोके वै एष जायते यः ससुरीणो दधते” इत्यादि, भवते भवान्तरे वैसाहस्यमपि भवति श्रीवस्येति सिद्धम् । एवं भुक्त्वा नष्टसर्वेष्टः सोऽपि पञ्चदशतन्त्रियः प्रसप्तमीये प्रव्रजितः ॥द्व०११०॥

टीका—“वटरोऽपि पंडिया” इत्यादि । “वत्सारोऽपि—इन्द्रभूयामिषुति, वायुयुति, व्यक्तमिषाः पण्डिताः प्रसप्तमीये प्रव्रजिताः इति भुक्त्वा उपाध्यायः सुधर्माभिषः पण्डितोऽपि निजसप्तयष्टेद्वयार्थं पञ्चदशतन्त्रियपरिवृतः प्रमोर्नन्विके सयागत । प्रसुध संस्मागतं सुधर्माणं पण्डितं कृपयति सो सुधर्मन् । तत्र मनसि एतादृशान् अनुपदं वत्समाजस्वरूपः संभवो वर्तते, तथाहि गो-वीर्यः इह मये—अस्मिन् जन्मनि पादभ्यः—पादगम्योनिप्राप्तो भवति,

इह प्रकार कार्य-कारण की अनुकम्पता स्वीकार कर लेने पर भी यह सिद्ध नहीं होता कि कैसा पूर्व मंत्र है, कैसा ही उत्तर मंत्र भी होता है । बेदर्शियों की हवा है—“भृगुलोके वै एष जायते यः ससुरीणो दधते” इति । भर्मादि-जो मनुष्य मल सहित जलाया जाता है, वह निश्चय ही भृगुलोक के रूप में उत्पन्न होता है, इत्यादि । इससे सिद्ध है कि भवान्तर में जीव विसृष्ट रूप से भी उत्पन्न होता है । यह रूपन सृत्कर सुधर्मा उपाध्याय का संशय नष्ट हो गया । वह पूर्ववर्ती तन्त्रियों के साथ प्रव्रजित हो गये ॥द्व०११०॥

टीका का अर्थ—इन्द्रयुति भवति वारों पण्डित मनु के समीप प्रव्रजित हो गये, यह सुनकर उपाध्याय सुधर्मा नामक विद्वान् भी अपने सन्धय को दूर करने के लिये पूर्ववर्ती तन्त्रियों को साथ लेकर भगवान् के निष्ठत गये । भगवान् ने अपने समीप आये सुधर्मा पण्डित से कहा—हे सुधर्मन् ! तुम्हारे विष में ऐसा संशय है कि—जो जीव इस मंत्र में जिस योगि को प्राप्त है, वह जीव भगवामी मंत्र में भी उसी योगिका

प्रभावे धर्म-धर्मवृत्ति अनुसंधाना स्वीकृति देवाधी यन्त्र को सिद्ध मनु नहीं है लेवे पूर्व मान होय छे तेवे व्याजामी भव । छु होय छे वेदोर्मा यन्त्र शब्द छे—“भृगुलोके वै एष जायते यः ससुरीणो दधते” जेठदे के ने भन्धुय भज खाये जवाबाव छे, ते अवश्य सिधाज इये ईश्वर साव छे ईत्यादि. तेभी सिद्ध साव छे के बीज भवभा एव छुदा हिये यन्त्र उत्पन्न साव छे आ रूपन सांख्यीने सुधर्मा उपाध्यायने स यथ नाश पाभ्ये. तेभवे पांनसे सिधये खाये होका बीधी ॥द्व०११०॥

टीकाये अर्थ—छे इहति आदि कारे पंडितोन्ने भृगुनी पास होका बीधी जे सांख्यीने उपाध्याय सुधर्मा नामना विद्वान् पण पौताना कथयने इह इत्या आटे पांनसे । सन्धेनी खाये भगवान्नी पास भवा. भगवन्ने पौतानी पास आनेव सुधर्मा पौतने भुक्ते सुधर्मा । तथाथा भनर्मा जेवे स यथ छे के ने एव आ जवभी ने भाति

સઃ-જીવઃ પરમવેડર્ષિ=મજાનતરેડર્ષિ તાદશ એવ=તાદશયોનિમાનેવ ભૂત્વા ઉત્પદ્યતે । યથા-યેન પ્રકારેણ શાલિ-
વપનેન શાલય એવ ઉત્પદ્યન્તે, નતુ-તદતિરિક્ત યત્નાદિક્રમ્ । અયં તવ સંશયઃ-“પુરુષો વૈ પુરુષત્ત્વમશ્નુતે પશવઃપશુ-
ત્વમ્-પુરુષઃ=પુમાન્ પુરુષસ્ત્વં વૈ=પુંસ્ત્ત્વમેવ અશ્નુતે=પ્રાપ્નોતિ, પશવઃ=ચતુષ્પદાઃ પશુત્વ વૈ=ચતુષ્પદત્વમેવ અશ્નુતે=
પ્રાપ્નુવન્તિ, ન તુ વિપરીતાં યોનિમ-ઇત્યાદિ વેદવચનાદસ્તીતિ । તત્=તત્ત્વ મત મિથ્યા વત્તે, તથાહિ-યો=જીવો માર્દ-
વાદિ ગુણયુક્તો ભવતિ સ મનુષ્યાયુઃ=મનુષ્યયોનિયોગ્યાયુઃ વદ્નાતિ સઃ-વદ્મમનુષ્યાયુર્જીવઃ મનુષ્યત્વેન ઉત્પદ્યતે ।
તુ-પુનઃ યો-જીવઃ, માયામિથ્યાદિ ગુણયુક્તો ભવતિ, સઃ-મનુષ્યત્વેન નોત્પદ્યતે, અપિ તુ તિર્યગ્ત્વેન ઉત્પદ્યતે ।
યત્-ફલ્યતે ‘કારણાદુપારમેદ્વ=કારણાતુરુપમેવ કાર્યં ભવતિ-તત્ સત્યં, કિન્તુ વિસદ્ગમપિ ભવતિ, તથાહિ-
આમતંડુલજલસ્ય યત્રેકવિશતિ પર્યન્તં પ્રક્ષેપઃ તત્વ ‘તાન્દલિયા’ ઇતિ પ્રસિદ્ધસ્ય જ્ઞાકવિશેષસ્ય ઉત્પત્તિર્જાયતે યથાત્રા

હોકર ઉત્પન્ન હોતા છે । જૈસે શાલિ નામક ધાન્ય વોને સે શાલિ હી ઉગતે હૈં, ઉસકે અતિરક્ત જૌ આદિ નહીં
ઉગતે । તુમ્હેં યહ સંશય વેદકેં ઇસ વાક્યકેં કારણ હૈ કિ-“પુરુષો વૈ પુરુષત્ત્વમશ્નુતે પશવઃ પશુત્વમ્”
નિશ્ચય હી પુરુષ પુરુષપન કો હી પ્રાપ્ત કરતા હૈ-ઔર પશુ પશુપન કો હી પ્રાપ્ત હોતે હૈં ।

તુમ્હારા યહ મત મિથ્યા હૈ, ક્યૌં કિ જીવ માર્દવ (નમ્રતા) આદિ ગુણો સે યુક્ત હોતા હૈ, વ્હ મનુષ્ય
યોનિ કે યોગ્ય આયુ કો વૌધતા હૈ ઔર મનુષ્યાયુ વૌધને ચાલા મનુષ્ય રૂપ મેં ઉત્પન્ન હોતા હૈ, કિન્તુ જો
જીવ માયા-આદિ ગુણોં સે યુક્ત હોતા હૈ, વ્હ મનુષ્ય રૂપ સે ઉત્પન્ન નહીં હોતા, કિન્તુ તિર્યંચ રૂપ સે
ઉત્પન્ન હોતા હૈ । જો કહા જાતા હૈ કિ ‘કારણ કે અનુરૂપ હી કાર્ય હોતા હૈ,’ વ્હ મત્ય હૈ, પરન્તુ ઇતને સે
વર્તમાન ભવતા સાદૃશ્ય ભવિષ્યત્કાલિક ભવ મેં સિદ્ધ નહીં હોતા હૈ । વર્તમાન ભવ, ભવિષ્યત્ ભવ કા કારણ
હોતા હૈ-ય્હ જો મત હૈ વ્હ આન્તિપૂર્ણ હી હૈ । વર્તમાન ભવ ભવિષ્યત્ ભવ કા કારણ નહીં હોતા હૈ, પરન્તુ

પામ્થે છે, તે છવ આગામી ભવમા પશુ તેજ યોનિમા ઉત્પન્ન થાય છે, જેમ શાલિ નામનું અનાજ વાવવાથી
શાલિ જ ઉગે છે, તે સિવાય જવ આદિ ઉગતાં નથી વેદતા આ વાક્યને કારણે તમને એ સંશય થયો છે--
“પુરુષો વૈ પુરુષત્ત્વમશ્નુતે પશવઃ પશુત્વમ્”-આવશ્ય પુરુષ પુરુષપણને પામે છે અને પશુ પશુપણને પામે છે.
તમારો આ મત મિથ્યા છે, કારણ કે જે છવ માર્દવ (નમ્રતા) આદિ ગુણોવાળો હોય છે, તે મનુષ્યયોનિને યોગ્ય
આયુ-અન્ધ યાદી છે, અને મનુષ્યાયુ બાધનાર મનુષ્ય રૂપે ઉત્પન્ન થાય છે, પશુ જે છવ માયા-મિથ્યાત્વ આદિ
ગુણોવાળો હોય છે, તે મનુષ્ય રૂપે ઉત્પન્ન થતો નથી, પશુ તિર્યંચ રૂપે ઉત્પન્ન થાય છે. કારણને અનુરૂપજ કાર્ય
થાય છે એમ જે કહેવાય છે તે સત્ય છે, પશુ જેટલાથી વર્તમાન ભવની ભવિષ્યકાળના ભવ સાથેની સમાનતા
સિદ્ધ થતી નથી વર્તમાન ભવ, ભવિષ્યના ભવનું કારણ હોય છે એવો જે મત છે તે ભ્રામક છે. વર્તમાન ભવ

यन्नादिदण्डेष्वेव-यीभात्कृत्स्नीकाध्वस्त्योस्त्यसि भवति भयत्वा सप्तशतौचितं कास्त्यपत्रस्य घृतं सद्यो विपायते इत्यादि, अपि च सर्वमानभवत्सादृश्यमगायिनि भवे न सिध्यति, यतो वर्षगतमवतानगतमवयवीः कार्यकारणभावो नास्ति । सर्वमानभवत्तज्ज्ञानगतभवस्य कारणं भवतीति यन्मते तद् भ्रान्तिपूर्णमेव, परन्तु सर्वमानमये यादृशा अव्यवसाया प्रसन्ति, तादृशाऽऽव्यवसायरूप कारणानुसारमेव जीवा अनागतभवसम्बन्धिकाभायुर्भवन्ति, सर्वदुस्स्य एव जीवाना मनागतमनो भवति । किंच कारणानुरूपकार्यस्वीकारे गोमयादिनो द्वयिकादीनामुत्पत्तिर्न संभवत् इति यदुच्यते, तदुच्यतेमीचीनमेव, यतो गोमयादिकं द्वयिकादीनां जीरोत्पत्तौ न कारणम्, किन्तु तेषां क्षरीरोत्पत्तावेव कारणम् । गोमयादिरूप कारणस्य, द्वयिकादि क्षरीरस्य कार्यस्य च आनुक्यमस्त्येव, यतो गोमयादौ स्मरसादि पुरुषानां ये गुणा भवन्ति स एव गुणा द्वयिकादि क्षरीरेष्वप्युपलभ्यन्ते । इत्थं च कार्यकारणयोरानुरूप्यस्वीकारोऽपि यादृशः पूर्वभरत्सादृश्य एव उच्यते इति न सिध्यति । इदं न ममैवायिममम्, अपि तु त्वेवेऽप्युक्तमस्ति-

पूर्वमान मन् में जिस प्रकार के अथर्वसाय होते हैं, उस प्रकार के अथर्वसायरूप कारण के अनुसार ही जीव भविष्यत्कामिक भव सम्बन्धी आयु ढाँचे हैं और मनुसार ही जीवों को भविष्यत्कामिक भव होता है। तथा-कारण के अनुसार कार्य स्वीकार करने पर गोमय (गोबर) आदि से हृदिक आदि की उत्पत्ति की संभावना नहीं है, यह जो कहा जाता है, सो भी असंगत है; क्योंकि कि गोबर आदि हृदिकादि के जीव की उत्पत्ति में कारण नहीं है, किन्तु उनके शरीर को उत्पत्ति में ही कारण हैं। गोमयादि रूप कारण और हृदिकादि के शरीर रूप कार्य में सादृश्य है ही, क्योंकि कि गोबर आदि में रूप रसादि पुद्गलों के जो गुण हैं वही गुण हृदिकादि शरीर में भी उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार कार्यकारण में सादृश्य स्वीकार करने पर भी नैसा पूर्वमव होता है वैसा ही उचर भव भी होता है, यह सिद्ध नहीं होता।

અવિષ્કૃતના ભવનુ કારણ હોતો નથી પણ વર્તમાન ભવમાં ને પ્રકારના અભ્યવસાય હોય છે, તે પ્રકારના અભ્યવસાયકારુ પ્રાણ પ્રમાણે જ અવિષ્કૃતના ભવ સભવી જ્ઞાપી બાધિ છે અને તે પ્રમાણે જ હોયોના અવિષ્કૃતના ભવ હોય છે તથા કારણને અનુરૂપ કાર્યના સ્વીકાર કરતાં છાણ આદિથી વીછી આદિની ઉત્પત્તિની સભવના હોતી નથી, એમ ને કહેવાય છે તે પણ જ્ઞાન્યત છે કારણ કે છાણ વગેરે વીંછી નહોતેના છવની ઉત્પત્તિના કારણકરુપ નથી પણ તેમના યારીરની ઉત્પત્તિના કારણકરુ છે છાણ આદિ રૂપ કારણ અને વીછી આદિનાં યારીરકરુ કાર્મમાં આદ્ય (સમાનતા) છે જ, કારણ કે છાણ આદિમાં રૂપ, રસ આદિ પુણ્યોના ને રૂણ છે તે જ રૂણ વીંછી આદિનાં યારીરમાં પણ હોય છે તથા પ્રમાણે કાર્મ કસ્વામા આદ્યને સ્વીકારવા છતાં પણ “નેવો પુન” કન હોય છે તેવો કુતારભવ હોય છે” જે સિદ્ધ થતુ નથી તથા કેવળ આદિ જ અભિપ્રાય નથી, પણ તેમાં પણ કઈ છે-

“શ્રુગાલો વૈ એપ જાયતે, યઃ સપુરીપો દઘતે” યઃ સપુરીપઃ વિષ્ણસહિતઃ દઘતે—અસ્મી ક્રિયતે સઃ—શ્રુગાલો વૈ=શુગાલ એવ જાયતે—इत्यादि, અતો ‘ભવાન્તરે જીવસ્ય વૈસાદય ભવતિ’ इति सिद्धम् । एवम्=पूर्वोक्तं श्रीवीर-वचनं श्रुत्वा नष्टमन्देहः=छिन्नसंशयः सोऽपि=सुधर्माऽपि पञ्चतत्त्वैः सह प्रभुसमीपे प्रवर्तितः ॥५॥ सू० ११०॥

મૂલમ્—તए ण उज्झायं सुहम्म पवइयं सोऊण मंडिओनि बहुदुसयसीसेहिं परिवुडो पट्टसमीवें समणु-पत्तो । पट्टय तं कहेइ=ओ मंडिया ! तुज्झ मणंसि बंधमोक्खपिसओ संसओ वट्ठइ=जं ‘जीवस्स वंधो मोक्खो य हवइ न वा ।’ ‘स एप विगुणो विवुनं वध्यते संसरति वा मुच्यते मोचयति वा’ इच्चाड वेयवयणाओ जीवस्स न वंधो न मोक्खो । जइ वंधो मन्निजइ ताहे सो अणाइओ वा ? पन्छाजाओ वा ? जए अणाइओ ताहे सो न छुट्ठिजइ=जो अणाइओ सो अणंताओ हवइ तिसयणा । जइ पच्छाजाओ ताहे कया जाओ ? कह छुट्ठिजइ ? त्ति । त मिच्छा । लोए जीवा असुहकम्मबंधेण दुहं, सुहकम्मबंधेण सुहं पत्ता दीसंति, सयलकम्म-छेएण जीवो मोक्खं पावइत्ति लोए पसिद्धं । ‘अणाबंधो न छुट्ठिजइ’ त्ति जं तए कहियं तं पि मिच्छा, जओ लोए सुवणस्स महियाए य जो अणाई संबंधो सो छुट्ठिजइ चेव । तवसत्थेसुवि’ वुत्तं—“ममेति वध्यते जन्तु-निर्ममेति प्रमुच्यते” इच्चाइ । पुणोवि—

“मन एव मनुष्याणा कारणं, वन्यमोक्षयोः ।

वन्धाय विषयासक्त, मुक्तये निर्विषयं मनः” ॥ १ ॥ इच्चाइ ।

અઓ સિદ્ધં જીવસ્સ વંધો મોક્ખો ય હવइ ति । एव सोचा त्रिभिन्नो छिन्न संसओ षड्विबुद्धो मंडिओ वि अश्रुदुद सयसीसेहिं षण्वइओ ।

यह केवल मेरा ही अभिमत नहीं है, किन्तु वेद में भी कहा है—“श्रुगालो वૈ એપ જાયતે યઃ સપુરીપો દઘતે” इति । जो मनुष्य विषा सहित जलाया जाता है वह निश्चय ही श्रुगाल रूप में उत्पन्न होता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि भवान्तर में विसदृशता भी होती है । इस प्रकार के श्रीमहावीर के वचन मुनकर सुधर्मा भी छिन्नसंशय हो गये । वह भी अपने पंचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप दीक्षित हो गये ॥मृ० ११०॥

“શ્રુગાલો વૈ એપ જાયતે યઃ સપુરીપો દઘતે” એ મનુષ્ય મળ સહિત જલાવાય છે તે ચોક્કસ શિયાળ રૂપે ઉત્પન્ન થાય છે તેથી એ સિદ્ધ થાય છે કે ભવાન્તરમા વિસદૃશતા પણ હોય છે આ પ્રમાણે શ્રી મહાવીરનાં વચનો સાંભળીને સુધર્માના સશયનુ પથુ નિવાસથુ થઈ ગયું. તેમણે પથુ પોતાનાં પાત્રસો શિષ્યો સહિત પ્રભુ પાસે દીક્ષા ગ્રહણ કરી. ॥સૂ० ૧૧૦॥

मंदिरं पश्य जयं साधा मोरिय पुत्रो वि नियससयछेयण्हं अभ्युद्वसयसीसेहिं गच्छिहो पट्ट समीचे पत्तो । त वि पट्ट एव वंर करेइ-नो मोरियपुचा । सुब्बमणंसि एवारिसो ससओ वइइ-अ देवा न सति 'को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इन्द्र यम वरुण कुयेरादीन' ॥ वपणाओ । तं मिच्छा वेएवि-“स एए गणपुगी यममानोऽउत्ता स्मगोळोक्कं गच्छति” इइ वण्णं निज्झा । अइ येवा न मवेज्जा ताहे देवछेओपोपि न मवेज्जा, एवं सइ “स्मगोळोक्कं गच्छति” इइ वण्णं कइ संगच्छेज्जा । एण्णं क्केणं वेक्खणं ससा सिज्झा । अच्छउ ताव तत्तयवण्णं, पस्सठ इमाए परिसाए ठिए इदाइ देवे । पक्कवत्तं एए देसा दीसति । एवं पट्टस्स वण्णं सोपा नितान्म मोरियपुत्तो छिन्नसंसओ अभ्युद्व सयसीसेहिं पन्नाओ ॥पृ० १११॥

छाया- ततः सन्तु उपाध्यायं सुयमौर्धं यत्रजितं श्रुत्वा मण्डिकोऽपि भर्द्धवर्त्यवृत्तमिच्छतिः परिकृतः प्रभु समीपे समनुग्राहः । प्रभुश्च तं कथयन्-ओ मण्डिक । तत्र मर्नास एवमोसविषयः संख्यो वसते, यत्-जीवस्य बन्धो मोक्षव मरति न वा ? “स एए विण्णो विदुर्ने वरुणत्ते संसरति वा सुव्वत्ते मोचयति वा” इत्यादि वेइववनाज्जीवस्य न बन्धो न मोक्षः । यदि बन्धो मन्यते तदा स अनादिको वा पक्काजातो वा ? यय-नादिस्सदा स न छुट्थेत् “योऽनादिकः सोऽनन्तरः” इति वचनात् । यदि पक्काजातस्तदा कदा जातः ? कयं

सूय का अय-‘तए न’ इत्यादि । तत्पश्चात् उपाध्याय सुयमौ को वीक्षित हुआ मुनकर मण्डिक भी सादेवीनसी चित्त्यों के साथ मगवान के पास गये । मगवान ने मण्डिक से कहा—दे मण्डिक ! तुम्हारे मन में पून्य और माप के विषय में संख्य है-कि जीव को बन्ध और मोक्ष होता है या नहीं ? ‘स एए विण्णो विदुन् वरुणत्ते संसरति वा सुव्वत्ते मोचयति वा’ यह निर्गुण और व्यापक आत्मा न बद्ध होती है न रांतरव करती है, न मुक्त होती है न किसी को बद्ध करती है । इत्यादि वेदवाक्य से न जीव का बन्ध होता है, न मोक्ष होता है । यदि बन्ध माना जाय तो ॥ अनादि है मयका पीछे से उत्पन्न हुआ है ? अगर अनादि

भूतनेन अर्द्ध ‘तए न’ प्रत्यधि सुधओ नाभना उपधावने जणुआए क्खेत्ता सांखजो, भंदिउ नाभने । विद्वान् आसण्णं पण्ण आदानवुत्ते । विधेजेना भस्वित्ता आदे, जगवान् समीप गथे । तेने सओधी चान् इत्ता, भजवान् वेअथा हे दे भंदि । सु तास भनओ जय जने शिख सज्जेयी शझ छे ? एव ने जय शिख छे, न हे नदि । ज्जा निरुत्तु जने न्नापय आत्मा जधते । नओ क सासओ इत्ते नथी तेजज्ज अउत्त पण्ण देतो नथी जने केअने अउत्त ओ पण्ण सत्ते । नथी । तास वेअवाअओ “स एए विण्णो विदुन् न वरुणत्ते संसरति वा सुव्वत्ते मोचयति वा” आ प्रभावे तु ठडे छे हे एवनेन शिख हे जय छेते ज नथी तास भत जेवे छे हे जे जने भनवाओ

छुटयत इति, लोकै जीवा अशुभकर्मबन्धनेन दुःखं, शुभकर्मबन्धनेन सुखं प्राप्ता दृश्यन्ते, सञ्जगन्मर्मेच्छेदेन जीवो मोक्षं प्राप्नोतीति प्रसिद्धम् । अनादिवन्धो न छुटयते, इति यस्वया कथितं तदपि मिथ्या । यतो लोके सुवर्णस्य मृत्तिकायाश्च योऽनादिः सम्बन्धः स छुटयत एव । तत्र शास्त्रेऽप्युक्तम्—“ममेति वध्यते जन्तु-निर्भमेति प्रमुच्यते ॥” इत्यादि । पुनरपि—

इति भाष्यः । उक्तं च
 “मन एव मनष्याणां कारणं ब्रह्ममोक्षयोः ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धनमप्यमृतम् ॥१॥ इत्यादि ।

अतः सिद्धं जीवस्य वन्धो मोक्षश्च भवतीति । एवं श्रुत्वा विस्मिताश्चक्रसंशयः प्रतिबुद्धी मण्डिकोपि अर्द्ध-
वन्धाय विपयासक्तं, मुक्त्यै निवृत्तयै मनः ॥ १॥ स्थापय ।

अतः सिद्धि जीवस्य वन्धा मोक्षाय न स्यात् ।
 तो वह कभी छूटना नहीं चाहीये, क्यों कि यह कहा गया है कि 'जो अनादि होता है, वह अनन्त होता है।' अगर बाद में उत्पन्न हुआ तो कब उत्पन्न हुआ? और कैसे छूटता है? यह मत मिथ्या है, क्यों कि यह लोक में जीव अथुम कर्म-बंध से दुःख को और शुभ कर्म-बंध से सुख को प्राप्त करते देखे जाते हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि समस्त कर्मों का नाश होने से जीव मोक्ष प्राप्त करता है।

अनादि बंध छूटता नहीं, ऐसा तुमने कहा सो भी मिथ्या है, क्यों कि लोक में स्वर्ण और मृत्तिका का जो अनादि संबंध है, वह छूटता ही है। “ममेति बध्यते जन्तुर्निममेति प्रमुच्यते” इति। अर्थात्—“ममत्व के कारण जीव को बन्धन होता है और ममता से रहित जीव मोक्ष पाता है”—

“मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयोः ।

वन्धाय विषयासक्तं, मुक्तये निर्विषयं मनः” ॥ १ ॥

આવે તો આ ‘ગાન્ધ’ને અનાદિ માનવો પડે, તો તેનો અંત હોઈ શકે નહિ કારણ કે જે યાત્રત અનાદિ હોય, તે અનંત હોવી જોઈએ. અગર જીવનો બંધ આદિવાળો માનો તો, ક્યારે બંધની ઉત્પત્તિ થઈ? તેમજ તે ક્યારે અને કેવી રીતે છૂટી શકે? ઉપર પ્રમાણેનો તારો મત પ્રવર્તી રહ્યો છે પરંતુ તે મત મિથ્યા છે. કારણ કે સંસારમાં જે સુખ લોગવે છે તે શુભ કર્મનો બંધ છે; અને દુઃખ લોગવે છે, તે પાપ કર્મ (અશુભ)નો બંધ છે, અને આ સમસ્ત શુભાશુભ કર્મનો નાશ થતા, જીવ સુકત થાય છે. ને ચોક્ષની પ્રાપ્તિ કરે છે. તે કહ્યું કે, અનાદિબંધ છૂટે નહિ, તે પશુ જોડુ છે. કારણ કે આ જગતમાં. કંચન અને માટીનો સંયોગ અનાદિનો છે, છતાં તે છૂટી જાય છે; તો ‘કર્મ’ પશુ જડ દ્રવ્યની સૂક્ષ્મ રજ છે, માટે તે પશુ જૂદું થવું જોઈએ. મૂળજ્ઞ વાત એ છે કે “મમેતિ વચ્યતે જન્તુ નિર્મમેતિ પ્રમુચ્યતે” જીવના મમત્વ લાવને લીધે બંધ થાય છે; અને મમત્વ લાવ છૂટતાં જીવનો મોક્ષ થાય છે. ફરી પશુ કહ્યું છે—

बहुपञ्चतन्त्रिन्यैः प्रवृत्तः ॥ ६ ॥

मण्डिक प्रवृत्तिं धृत्वा मौर्यपुत्रोऽपि निनसशयच्छेदनायैः अर्द्धवतुष्यतश्चिन्तयैः परिहृतः प्रभुसमीपे प्राप्त ।
तमपि प्रहरेत्वेव कल्पयति-मो मौर्यपुत्र । तव मनसि एषाहस्य संशयो वसति यत् देवान न सन्ति-“को जानाति
मायोपमान् गीर्वाणान् इन्द्र-यम-रक्ष-कुबेरादीन्” इति वचनात् । तन्मिथ्या । वदऽपि-“स एष यज्ञपुत्री यन्
मानोऽञ्जसा स्वर्गलोके गच्छति” इति वचनं विद्यत । यदि देवान न मयेयुस्तदा देवलोकोऽपि न भवेत् ।

अर्पति-“मन ही मनुष्यों के बन्ध और मोच का कारण है । विषयों में आसक्त मन बन्ध का और
विषयों से निवृत्त मन मुक्ति का कारण होता है” इत्यादि । इस स जीव को बन्ध और मोच होता है, यह
भिन्न हुआ । इस प्रकार सुनकर मण्डिक वसन्ति हुए । उनका सन्धय दूर हो गया । उन्हें प्रतिबोध प्राप्त हुआ ।
हे मी सादेजीनसौ शिल्पों सहित दीक्षित हो गय ।

मण्डिक को दीक्षित हुए सुनकर मौर्यपुत्र भी अपनी सन्धय निवारण करने के लिए साठे बीनसौ शिल्पों के
परिवार सहित मनु के पास आया । प्रभुने उनसे मी ऐसा कहा-हे मौर्यपुत्र ! तुम्हारे मन में ऐसा संदेह है
कि देव नहीं हैं क्यों कि-“को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान्” अर्थात्-“माया के समान इन्द्र, यम, रक्ष
और कुबेर आदि देवों का कौन जानता है ?” ऐसा कहा गया है ।

तुम्हारा यह विचार मिथ्या है । वर में मी यह शाय है-“स एव-यज्ञपुत्री यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोके

“मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयो ।

ब-शाय निपासक, युक्तये निर्विषये मन ” ॥ १ ॥ इति ।

आ जय अने शोकना भयक्षुत ‘भन’ छे विषयोभां जे ‘भन’ आसक्ति शजे ते ‘भन’ जय छे छे, अने
जे विषयोभां निवृत्त रहे छे ते ‘भन’ने पाये छे आभी छवने जय अने शोक छे ते आसीत थाय छे

आम साभनी भक्ति वाञ्छुन थये। तेना जय जामी अये। ते प्रतिबोध पाभता साधनथसे। शिरो। आये
क्षिप्त थये। भक्तिने प्रतिबोध पाभये। जेई भौधपुत्र पवु येतान आधानथसे। शिरोनय परिवार आये आधान
निवासन अये। प्रभु पसे अये। प्रभुने वपु तेने पल्लु है “हे भौवपुत्र ! तभास दिवभां जेदी आ छे है ‘देव’
नभी तसे देवाने (अन्तर ब्रह्म, वरुण, कुबेर बिजेशने) आभावी आने। छे ते पात जराणस छे ने ? परत आ बातने।
तभने सदेह छे ते अस्थाने छे वेद-वाङ्मय पवु छे छे है “स एव यज्ञपुत्रा यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोके गच्छति”

एवं सति “स्वर्गलोकं गच्छति” इ; वचनं कथं संगच्छेत ?। एतेन वाक्येन देवानां सत्ता सिध्यति । तिष्ठतु तावच्छास्त्रवचन, पश्यतु अस्यां परिपदि स्थितान् इन्द्रादिदेवान् । प्रत्यक्षमेते देवा दृश्यन्ते । एवं प्रभोर्वचनं श्रुत्वा=निशम्य मौर्यपुत्रः छिन्नसंशयोऽर्द्धचतुर्थशतशिष्यैः प्रव्रजितः ॥सू०११॥

टीका—‘तए णं उदञ्जायं सुहम्मं’ इत्यादि । ततः खलु उपाध्यायं सुधर्माणं प्रव्रजितं श्रुत्वा मण्डिकोऽपि अर्धचतुर्थशतशिष्यैः=सार्द्धनिशतशिष्यैः परिवेष्टितः प्रभुसमीपे समनुप्राप्तः । प्रभुश्च तं=मण्डिकं कथयति, तथाहि—भो मण्डिक ! तव मनसि वन्धमोक्षविषयः संशयो वर्तते—संशयस्वरूपमाह—यदित्यादिना, यत्-जीवस्य वन्धो

गच्छति’ अर्थात्—‘यज्ञरूप आयुध (सत्त्व)वाला यज्ञकर्त्ता शीघ्र ही स्वर्गलोक में जाता है।’ यदि देव न होते तो देवलोक भी न होता ! ऐसी स्थिति में स्वर्ग लोकमें जाता है’ यह कथन कैसे संगत हो सकता है ? इस वाक्य से देवों की सत्ता सिद्ध होती है । परन्तु शास्त्र के वाक्य को रहने दो, इसी परिपद् में स्थित इन्द्र आदि देवों को देख लो । यह देव प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहे हैं । प्रभु के इस प्रकार वचन सुनकर और समझकर मौर्यपुत्र भी छिन्न संशय होकर साढे तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये ॥११॥

टोका का अर्थ—तत्पश्चात् उपाध्याय सुधर्मा को प्रव्रजित हुआ सुनकर मण्डिक भी साढे तीनसौ शिष्यों के परिचार के साथ भगवान् के समीप पहुँचे । भगवान् ने मण्डिक से कहा—हे मण्डिक ! तुम्हारे मनमें वन्ध-मोक्ष-विवेक संशय है । उस संशयका स्वरूप बतलाते हैं—जीव का बंध और मोक्ष होता है या नहीं ? तुम्हारे इस

यसङ्ग आधुवाणा, यसङ्कर्ता शीघ्रपणु स्वर्गभां ज्ञय छ जे तभारा कडेवा सुज्ज देव न छाय तो देवलोक पणु न छोवो जेधज्यो, तो आ ‘स्वर्ग’ इपी कथन जे वेद-वाक्यभां कडेवाभां आयुं छ ते तभारा कथन साथे डेवी रीते गधजेसतु छ ? आ वेद-वाक्यथी ज सिद्ध थाय छ डे देवो छ अने देवोनी सत्ता पणु छे. शास्त्रनी वातने तमे असत्तु न करे तो पणु आ परिषद्भां जे देवो साक्षात् गेहा छ तेने जेह द्यो. प्रभुनुं आयुं वचन साभणी मौर्यपुत्र पणु संशय दक्षित थयेने सादान्तुसो शिष्यो साथे तेबो पणु प्रमत्त्या अंगीकार करी (सू०१११)

विशेषार्थ—‘सुधर्मा’ नेवा विद्वान् उपाध्याय पणु भगवान्नी वाणीथी यक्षित थया जेम जणुवाथी भंडिक पणु चेताना सादान्तुसो शिष्योना समूह साथे भगवान् तरङ्ग जवा स्वाना थये। भगवाने तेना मननी सपाठी पर तरता भावोने जेह दीधा, ने ते भावोभा गध-भोक्ष इपी यडाज्यो छती इती ते तेमजे गहरी दीधी. भगवाने ते शडाज्योने आगण करी भंडिकने कहुं डे तने छवना गध अने भोक्षनी श्रेणी ज्योटी दाजे छ ? जे तुं गंध अने

મોક્ષમ્ મન્વતિ ન યા ? હવાગ્ર સંદાયે કારણમ્-‘સ’ એવ વ્યિણો વિદ્યુર્ને વ્યવ્યતે સંસરતિ ચા મુચ્યતે મોક્ષયતિ
 ચા “સ’ એવ્યઃ=જીવઃ=વિણુઃ=નિર્ણયઃ=વિદ્યાઃ=વ્યાપકઃ ન વ્યવ્યતે=વચ્ચનં ન યાતિ, યા=અથવા ન સંસરતિ=
 મોક્ષયતે મર્ષ ન પ્રાપ્નોતિ, તથા ન મુચ્યતે=ન મુક્તો મન્વતિ, યા-અથવા ન પરં મોક્ષયતિ ।” ફલ્યપિવેદવચ્ચન-
 નિષ્કરોસ્તિ । સ્વ ‘સ’ એવ વ્યિણુઃ’ ફલ્યપિવેદવચ્ચનાદેવ ‘મીવસ્ય ન વચ્ચો ન વાપિ મોક્ષો મન્વતીતિ મન્યસે ।
 અત્રેત્ય તત્ત્વ યુક્તિઃ-યદિ મીવસ્ય વચ્ચો મન્યતે, તદા-સા=વચ્ચઃ યનાદિકઃ=આદિરાશિઃ નિત્ય ફલ્યર્થઃ,
 ચા-મયના વચ્ચાત નાતઃ ? તુચ ચદિ યનાદિકઃ=નિત્યો મન્યતે, તદા સ ન છુટયેત=ન છિદ્યેત, ‘યોઽનાદિકઃ

સંદાય કા કારણ વેદ કા યદ વચ્ચન ફે-‘યદ નિર્ણય ઔર સર્વજ્ઞાપી માત્રા ન તો વંચન કો પ્રાપ્ત હોવી ફે, ન
 ઉત્પન્ન હોવી ફે, ન મુક્ત હોવી ફે ઔર ન ફસરે કો મુક્ત કરતી ફે ।’ ફલી વેદ વચ્ચન સે તુલ્ય માનતે ફો ફિ જીવ કો
 ન વંચ હોવા ફે ઔર ન મોક્ષ હોવા ફે । ફસ વિષય મેં તુમારી યુક્તિ યદ ફે-અમાર જીવ કા વંચ માના કાપ
 તો યદ વંચ અમાદિ ફે યા સાદિ-વાલ્ મેં ઉત્પન્ન ફુલા ફે ? અમાર નિત્ય માના કાપ તો યદ છુટ નહીં સકવા;

શિક્ષને કલિષ્ઠ માનતો હોય તો તુ યોદે સ્તે છે । તારા કલ્પન મુજબ આ આત્મા નિર્દુષ્ટ અને સર્વ-આપી છે
 તેથી તને બંધ ફે શિક્ષ હોય જ નહિ એવો તારો અભિપ્રાય છે

ઉપ ની વ ? માનતા વધન યેશસ્તે શોભતી છે જગતમાં ઉભાથી આંત્રે રેખાય છે ફે—

એક શંકા ને એક નૃપ, એ આપી ને હોઈ,
 કાશ્વ નિપ ન કાશ્વે તે, તેજ મુલામુલ વેધ
 મુલ કદે ફળ હોત્રવે, રેવાદિ ત્રિતિ મોંઘ
 અમુલ કદે નકોદિ ફળ, કમ્પેક્ષિત ન કર્માન્ધ
 ને ને કાશ્વ બધના, તે બધનો યયઃ
 તે કાશ્વ છેકલ હથા, કોણ જલ જાત
 શત્રુ દૂન અજ્ઞાન છે, મુજબ કમ્પેના અયઃ
 યામ નિવૃત્તિ નેકથી, તેજ શિક્ષનો પક્ષ
 આત્મા યત્ત્વ મેત-અમલ, સર્વોચ્ચ સકિતઃ
 નેથી કેવલ પાત્રીએ, શોભાયતે તે રીત

સોડનન્તકઃ, યઃ=પદાર્થઃ અનાદિકઃ=આદિ રહિતો ભવતિ સઃ અનન્તકઃ=અન્તરરહિતઃ-નિત્યોડપિ ભવતિ, ઇતિ વચનાત્ । एवं च नित्यस्य सदास्थायित्वात् अनादिको जीवन्धो न छिद्येतेति पर्यवसितम् । अथ द्वितीय-विकल्पितं खण्डयितुमाह-‘यदि पथाज्जातः’ इत्यादिना-यदि पथात् जीवस्य वन्धो जातः तदा=पथाद्वन्ध-स्वोकारे कदा=कस्मिन् काले सजातः? कथ-केन प्रकारेण च स लुट्यते? छिद्यते? अत्र नास्ति किमपि प्रत्यु-त्तरम्-इति । अतो जीवस्य नास्ति वन्धो न चापि मोक्ष इति पर्यवसितम् । इदं यत्तत्र मत्तं तन्मिथ्या । यतो लोके जीवाः अशुभकर्म-वन्धनेन तत्कर्मजनित दुःखं प्राप्ता दृश्यन्ते’ इति परेण सम्बध्यते, एवं शुभकर्मवन्धनेन जीवाः सुखं प्राप्ताः दृश्यन्ते । तथा सकलकर्मछेदेन-कर्मफलपस्य व्यानानलेन भस्मसात्करणेन जीवः सुख-दुःखनिबिचीभूत-शुभाशुभकर्मकृतवन्धनाभावात् मोक्ष=मुक्तिं प्राप्नोति इति प्रसिद्धम् । तथा-‘अनादिवन्धो न

क्यों कि जो पदार्थ आदि-रहित होता है, वह अन्तरहित भी होता है । इस तरह जो नित्य होता है वह सदैव बना रहता है, अतएव अनादिकालीन जीव का वंध नष्ट नहीं होना चाहिए । अब दूसरे विकल्प का खंडन करने के लिए कहते हैं-अगर जीव का वंध पथात् उत्पन्न हुआ है तो वह किस समय हुआ? और किस प्रकार लुटता है? इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं है । अत एव सिद्ध हुआ कि जीव को वंध और मोक्ष नहीं होता ।

यह जो तुम्हारा मत है सो मिथ्या है, क्योंकि कि लोक में प्रसिद्ध है कि जीव अशुभ कर्म-बंधन के कारण, उस कर्मजनित दुःख के भागी देखे जाते हैं, और शुभकर्म बंध के कारण जीव सुख के भागी देखे जाते हैं । तथा ध्यान रूपी अग्नि से समस्त कर्म समूह को भस्म कर देने के कारण, जीव सुख और दुःख के कारणभूत शुभ एवं अशुभ કર્મોં से होनेવાले વંધ का अभाव होने से मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

અર્થાત્—એક રાક છે અને એક રાજ છે એ શબ્દથી નીચપણું, ઉંચપણું, કુરૂપપણું, સુરૂપપણું એમ ઘણું વિચિત્રપણું છે, અને એવો બે લેહ રહે છે તે-સર્વ સમાનતા નથી. તેજ શુભાશુભ કર્મનો બંધ છે, એમ સિદ્ધ થાય છે. કેમ કે કાન્થુ વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થતી નથી. શુભ કર્મ કરે તો તેથી દેવાદિ ગતિમા તેનું શુભ ફળ લોગવે. અને અશુભ કર્મ કરે તો નરકાદિ ગતિને વિષે તેનું અશુભ ફળ લોગવે. તને કર્મનો બંધ સમજવો. હવે તે બંધના વિશેષી સ્વભાવને મોક્ષ કહે છે. બે બે કારણો વડે બધ થાય છે તે તે કારણોને છેદવાથી મોક્ષ માર્ગ આવી મળે છે અને ભવનો અંત આવી બધ છે. કર્મના બધનમાં રાગદ્વેષ અને અજ્ઞાન પાથાર્યે છે. આ ત્રણેનું એકત્વ એ કર્મની ગાઠ છે આ ત્રણ વિના કર્મનો બધ થાય જ નહિ; અને આ ત્રણેથી નિવૃત્તિ કરવી તે ‘મોક્ષ’ કહેવાય.

'दृष्टयते' इति यवया कथितं, तदपि मिथ्या ! यत् लोके सुवर्णस्य मृषिकायाश्च परस्परं योऽनादिः=अवाहा
 पेक्षयाऽनादिकावगतः सम्भवो भवति, स दृष्टयते एव । एतदेव जीवस्यापि अनादिबन्धो निस्तंभ्य दृष्टयते
 इति बोध्यम् । अथ विषये तत्र बहुोऽयुक्तमस्ति—'मयेति बध्यते जन्तुः' इत्यादि । अथ भावाः—जन्तुः मम=
 मदीयम् एतदुपश्रुतादिकम् इति स्वीकुर्वन् सन् ममता रन्ध्वा बध्यते=बन्धं याति, पुन स जीव निर्ममेति—
 'मम पुश्रुतादिकं नास्तीति ममत्वमकुर्वन् ममुच्यते इति । एतोऽन्यदपि तत्र आत्त बन्धमोक्षपरं प्रभूतं बचन
 मस्ति । तदेव दर्शयितुमाह—'पुनरपि' इत्यादि । पुनरपि तत्र आत्ते मोक्षं—'मन एव मनुज्याणाम्' इत्यादि ।
 मनुज्याणां—बन्ध—मोक्षयोः, कारण—मन एव=अन्तःकरणविशेष एव, न तु तदन्यः कोऽपि पदार्थस्तयोः कारण
 मस्ति । तत्र विषयासक्तं मनः जीवस्य बन्धाय—चतुर्विधकसत्तारपरिघणाय भवति । तथा—निर्वियमम्=इन्द्रिय
 विषयासक्तिरहित मनस्तु सुखे=जीवस्य मोक्षाय—मनश्चमणविरणाय भवतीत्यादि । अतो जीवस्य बन्धो मोक्षश्च
 भवतीति सिद्धम् । एवं श्रुत्वा विस्मितः छिन्नबन्धुः सन् मतिपुदो भूत्वा मच्छिकोपि भर्देचतुयंशतस्यैः सह प्रयजितः ।
 ननु—अगिगृष्टिकुट्टरं कर्म संख्यावत्स्य को विशेषः ? उच्यते—स कर्मसंज्ञा गोचरः, अयं तु तस्मिन् सत्यपि
 जीवकर्मसंज्ञा गोचरोऽस्तीति विशेषो दातव्यः ।

हमने कहा कि अनादि बंध फूटता नहीं है, तो भी मिथ्या है । लोक में सोने और मीठी का परस्पर
 जो प्रवाह की प्रपेक्षा से अनादिकासीन संबंध है, वह फूट ही जाता है । इसी प्रकार जीव का भी कर्मों के
 'एव पुनरप्यत्र' आदि मरे है' ऐसा मानते है तो ममता की रस्सी से बंधता है और जब जीव यह समझ
 छेता है कि 'पुन फलत्र आदि मेरे नहीं है' तो ममत्व से रहित होकर मुक्त होता है । इसके अतिरिक्त भी
 बंध-मोक्ष का समर्थन करमेवाले बहुत से प्रश्न हमारे ज्ञान में विद्यमान हैं । कहा भी है—'मनुज्यों के बंध
 और मोक्ष का कारण मन ही है, मन के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है । विषयों में आसक्त मन चार
 गति रूप संसार भ्रमण का कारण होता है । तथा इन्द्रिय-विषयों की आसक्ति से रहित मन जीव के मोक्ष—
 मम भ्रमण के मन्त्र का कारण होता है ।' इससे सिद्ध हुआ कि जीव को बंध और मोक्ष होता है ।

मोक्ष केने ? आत्माने ! या आत्मा देवा छ ? तो ते हके छे हे 'ध्या' रूप, अनिराशी, वित-बन्ध, स्वभावमय,
 अन्य सर्व बिभाव अने देहादि संशोधना आलासधो संकट जोवा 'ऐवण' जोरहे शुद्ध आत्मा' भा' इया प्राय
 इत्याभा प्रयोग ते मोक्ष भाव जने भा 'ध्या' प्राय यान जोरहे 'मोक्ष' यथो हकेवाच्य ॥

“मण्डिक मि” इत्यादि । गण्डिकं प्रव्रजितं श्रुत्वा मौर्यपुत्रोऽपि निजसंशयच्छेदनार्थम् अद्वचतुथशतशिल्प्यः= पञ्चाशदुरत्तशतत्रय-परिमितशिल्प्यैः परिहृतः सन् प्रभुसमीपे प्राप्तः । तमपि प्रभुः एवं-वक्ष्यमाणं वचनं कथयति- भो मौर्यपुत्र । तव मनसि एतादृशः संशयो वर्तते, यत् देवाः न सन्ति, तत्र प्रमाणतयौपन्यस्तं वचनं प्रकटयति-“को जानाति” इत्यादि । मायोपमान्=मायावत् अलीकान् इन्द्र-यम-वरुण-कुबेरादीन् गीर्वाणान्=देवान्

इस प्रकार सुनकर मण्डिक विस्मित हुए । उनका संशय दूर हो गया । वह प्रतिबोध प्राप्त करके अपने साढेतीन सौ शिल्पियोंके साथ दीक्षित हो गये ।

शंका-अग्निभूति द्वारा किये गये कर्म-विषयक संशय से इस संशय में क्या अन्तर है ? समाधान-अग्निभूतिको कर्म के अस्तित्व में ही सन्देह था । पर मण्डिक कर्मका अस्तित्व तो मानते थे किन्तु जीव और कर्म के संयोग के संबंध में शंकित थे । यही दोनों में अन्तर है ।

मण्डिक को दीक्षित हुआ सुनकर मौर्यपुत्र भी अपने संशय का निवारण करने के लिए अपने तीन सौ पचास शिल्पियों के साथ भगवान् के समीप पहुँचे । उन्हें भी भगवान् ने आगे कहे वचन कहे-हे मौर्यपुत्र ! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि देव नहीं है । इस विषय में प्रमाणरूप से प्रयुक्त वचन प्रकट करते हैं-‘माया के समान मिथ्या इन्द्र, यम, वरुण, और कुबेर आदि देवों को कौन देखता है !’ इस कथन से देव नहीं हैं, ऐसा सिद्ध होता है । किन्तु तुम्हारा देवों को स्वीकार न करना मिथ्या है, क्यों कि वेद में भी ऐसा कहा है कि-‘यह यज्ञ रूपी शस्त्रवाला यजमान-यज्ञकर्त्ता शीघ्र ही स्वर्गलोक में जाता है ।’

भगवाने गंध और मोक्षनुं कथन, मार्ग और शुद्धता को त्रुष्टे भतावता भंडिक विस्मित थये और प्रव्रज्या अंगिकार करी ते विरक्त भन्यो. तेना साक्षात्प्रत्यक्षो शिल्पोको पथु तेज मार्ग अदुष्टु कुर्यो

शंका-अग्निभूतिनी कर्म संधानी और भंडिकनी कर्म-गंध संधानी शंकाओभा शु करक छे ?

समाधान-अग्निभूतिने तो भुद ‘कर्म’भांज संहैछु छतो. तेने मन ‘कर्म’ नेवुं कर्छ छेज नछि ओभ दागतु. परंतु भंडिक ‘कर्म’ना अस्तित्वने स्वीकारतो छतो, पथु एव और कर्मनो संधं थतो लुशे के केम ? तेनी शंका ते सेवी रह्यो. छतो आ भनेभा आटलुं अंतर छे.

भंडिकने प्रव्रज्यत थयेछ जल्ही भौर्यपुत्र पथु पोतानी शकाना निवारणु अर्थ साक्षात्प्रत्यक्षो शिल्पो. साथे उपलब्धो. भौर्यपुत्रनी शंका ‘देव’नुं अस्तित्व छे नछि ते भागतनुं छतुं. तेनु कहेवुं छतुं के आ भक्षा धुन्द्रो-यम कुमेर वरुण आदिने केवुं जेथा छे ? तेनी शकाना निवारणु अर्थ भगवाने देव-वाक्यनो दाभ्यो दाकी भताव्यो. ने स्वर्गनी

को जानाति=मत्स्याशालम्भाननपिभी करोति” इति एवनात् देवा न सन्वीति । तन्मिथ्या—तद्—देवायावस्वी
 कृषद् तद् मिथ्या । यतो वेदेऽपि “स एष यथायुषी यजमानोऽडासा स्वर्गलोके गच्छति” सः एषः—अपे
 यथायुषी=यागारूपश्रवणं यजमानः=यजकृता—अडासा=दीर्घं स्वर्गलोके गच्छति इति—एतद् एव न विपद्यते । यदि
 देवा न मयेयुः तदा देवलोकोऽपि न भवेत् । एवं सति ‘स्वर्गलोके गच्छति’ इत्य—एतद् एव न कथं संगच्छेत् ?
 वस्त्वीकारे तु देवलोकं सत्स्यापि देवानामपि सिद्धिः पर्यवसिता । इत्यमागमभाषणेन देवान् साधयित्वा
 सम्प्रति मत्स्यधर्मभाषणेन तान् साधयति—‘अच्छेत्’ इत्यादि । आस्ता=विच्छेत् तान् श्रावचनम् ; परमहं भवान्
 प्रत्यक्षतोऽस्यां परिपदि स्थितान्=विषयमानान् इन्द्राविदेवान् इति । एवं यमोर्वचनं धृत्वा=सामान्यतः श्रवण
 गोचरीकृत्य, निरूप्य=कारापोहार्थ्यां विक्षेपतो इति निश्चित्य=योर्येषु छिन्नसंख्यः सत् अर्द्धचतुर्दशद्वित्यैः
 सप्त प्रयनितः । अ० १११ ।

मूलम्—योर्येषु पञ्चदशं दृष्टिं शर्कपिजो चित्तेर—जो जो तस्स समीचे गओ सो सो पुणो न निव्वत्तो ।
 सत्वेसिं ससओ वेव छिओ । सत्वे वि य पव्वइया । अओ अपि गच्छामि ससयं उदेमिचि कहुं पिसय
 सीससइओ पडुसमीये सपओ । तं वुहं भगव वपर—ओ अकंपिया ! तुक्कमणंसि इमो ससओ असि ज
 नेइया न संति “न इवै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति” इवाइ वयवओ पि तं सिच्छा । नारया सति वेव,
 न त्वं ते एत्थ आगच्छंति, नो नं मज्झसा तस्य गमि तं सक्कति । असययामिओ ते पव्वसत्तेण पासति ।
 तव सत्थंमि वि—“नारको वै एष जायते यः शुद्रान्मममति” एयारिस पक्क लम्पइ, ज्ञानारणा न भविज्जा
 न्कार देव न होवै तो देवलोकं मी न होवा । पेसी स्थिति में ‘स्वर्गलोक में जावा है’ यह वाक्य कैसे ठीक
 बैठ सकता है ! इस वाक्य को स्वीकार करने पर देवलोक और देवलोक में रहनेवाले देवों की मी सिद्धि हो
 गई । इस प्रकार आत्म प्रमाण से देवों की सत्ता का साधन करके अब प्रत्यक्ष प्रमाण से साधन करते हैं कि
 ‘ज्ञात वचनों को जाने दो, तुम इस परिपद में बैठे हुए इन्द्र इन्द्र आदि देवों को प्रत्यक्ष देखलो’ । इस प्रकार
 मनु के वचन सुनकर तथा ऊहापोह कर के विक्षेपरूप से इत्य में निश्चित कर के योर्येषु सत्वेर—सहित हो
 कर साठे तीन सौ शिष्यों सहित बोधित हो गये । अ०—१११ ।

देवादी भवादी दीधो. ने ने शुभं भवन्ते. भव सन्धी दोम ते सव्वं कव्वेओनु अथाथ पव्वन इहनाइ देवअतिमा
 अथ पे केम वेदनी वात अजयाने इरी ज्वा कपपंत तोअनी पस्सिभुओ आवेवा देवानी कालरी भवादी तेनी स. ४।
 निन्देण इरी, आओ ते पित्तमा साधनवुत्ते। शिष्वा सुसुधम सावे वीक्षित भूत श्रवणानो आआओ निक्कइया वाज्जा (सं० १११)

देवादी भवादी दीधो. ने ने शुभं भवन्ते. भव सन्धी दोम ते सव्वं कव्वेओनु अथाथ पव्वन इहनाइ देवअतिमा
 अथ पे केम वेदनी वात अजयाने इरी ज्वा कपपंत तोअनी पस्सिभुओ आवेवा देवानी कालरी भवादी तेनी स. ४।
 निन्देण इरी, आओ ते पित्तमा साधनवुत्ते। शिष्वा सुसुधम सावे वीक्षित भूत श्रवणानो आआओ निक्कइया वाज्जा (सं० १११)

ताहे 'सुहृन्मभक्वगो नारगो होइ' त्ति वक्क कह सगच्छिज्जा ? । अणेण सिद्धं नारगा संति त्ति । एव सोच्चा अकंपिओ वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ ॥८॥

‘अकंपिओ वि पव्वइओ’ त्ति जाणिय पुण्णपात्रसंदेहजुओ ‘अयल-भाया’ इय नामगो पंडिओ वि तिसयसीसेहिं परिखुडो पहुसमीवे समागओ । त दट्ठुणं भगवं एवं वयासी-भो अयल-भाया ! तव हिययंसि रमो संसओ वट्ठ-जं पुण्णमेव पक्किट्ठं संतं पक्किट्ठ सुहस्स हेऊ ? तमेव य अवचीय माणमच्चंत थोवावत्थं संतं दुहस्सहेऊ ? उय तय इरित्तं पावं क्किपि वत्थु अत्थि ? अहया एगमेव उभयरूवं ? उभयंपि संतं तं वा अत्थि ? उय पुरिसा इरित्तं अन्नं क्किपि नत्थि ? जओ वेएसु क्हियं ‘पुरुष एवेद °U° सर्वं यदभूतं यच्च भान्वं’ इच्चाइ त्ति । तं भिन्छा । इहलोए पुण्णपात्रफलं पच्चक्खं लक्खिज्जइ, एवं ववहारओ वि पत्तिज्जइ-जं पुण्णस्स फलं दीहा उय लच्छी रुवारोण-सुकुलजम्माइ, पावस्स य तव्विवरीयं आपा उयाइफलं, इय पुण्णं पावं च संतं तं वियाणाहि ‘पुरुष एवेदं इच्चेयम्मि विसए अग्निभूःपण्हे जं मए कहिय तं चेव मुणेयव्वं । तव सिद्धते वि पुण्णं पावं च संतं तत्तणेण ग्हियं, तं जहा—“पुण्यः पुण्येन कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा” इच्चाइ । अणेण सिद्धं पुण्णं पावं च उभ यमवि संतं तं वत्थु विज्जइ । इय सुणिय छिन्न संसओ अयलभाया वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ ॥सू० ११२॥

छाया—मौर्यपुत्रं प्रव्रजितं श्रुत्वा-अकम्पितः चिन्तयति-यो यस्तस्य समीपे गतः स स पुनर्न निवृत्तः, सर्वेषा संशयस्तेन छिन्नः, सर्वेऽपि च प्रव्रजिता अतोऽहमपि गच्छामि संशयं छेदयामीति कृत्वा त्रिशत-शिष्य-सहितः प्रभुसमीपे संप्राप्तः । तं दृष्ट्वा भगवान् वदति-भो अकम्पित ! तव मनसि अयं संशयोऽस्ति, यत्-नैरयिका

मूल का अर्थ—‘मोरियपुत्तं’ इत्यादि-मौर्यपुत्र को प्रव्रजित हुआ सुनकर अकम्पित ने सोचा-जो जो उनके पास गया सो वापिस न लौटा । उन्हो ने सभी का संशय दूर कर दिया । सभी दीक्षित हो गये । तो मैं भी जाऊँ और अपने संशय का निवारण करूँ ।’ इस प्रकार विचार कर तीनसौ शिष्यों के साथ वह महावीरप्रभु के समीप पहुँचा । अकम्पित को देखकर भगवान् ने कहा-हे अकम्पित ! तुम्हारे मन में यह

भणने। अर्थ—‘मोरियपुत्तं’ इत्यादि मौर्य पुत्रने अवब्रित थयेक भूषी, अकंपिते विचार क्यो ऊ, ने ने तेनी चासे गया, ते पाछा वणता न नथी तेथे तो, सर्वना संशय हर क्यो। हर थातां तेओ दीक्षित थइ, आत्म संधारथा तरक्ष वणी गया. ई पणु भई’ अने भारी शक्योने हर कइ ! आभ विचारी वषुसो शिष्यो साथे ते प्रभु सभीये पछोअये। पछोअतां वेत न प्रभुओ तेने प्रश्न क्यो ऊ “हे अकंपित ! तारा मनमां स’देऊ छि नारकीना

न सन्ति “न है प्रेत्य नरकै नारकाः सन्ति” इत्यादि कथनाविवृति, त्रिपिण्या, नारकाः सन्त्येव न पुनरस्ते उवाचगच्छन्ति, नो सख मनुज्यास्तप्राप्तुं शक्नुवन्ति । अस्मिन्महाभारतानिस्तान् प्राप्त्यसत्त्वेन पश्यन्ति । तव आक्षेपः—“नारको वै एष जायते यः शत्रून्ममभाति” एतादृश वाक्यं स्रभ्यते । यदि नारका न मयेयुस्तथा ‘शत्रून्ममहाको नारको ममभति’ इति वाक्यं कथं संगच्छेत ? । अनेन सिद्ध ‘नारकाः सन्ती’ हि । एवं श्रुत्वा अकम्पितोऽपि पिशुनश्चिन्त्यैः प्रव्रजितः ।

‘अक्रान्तिवतोऽपि प्रवर्जितः’ इति ज्ञात्वा पुष्यपापसन्देहयुतोऽबलप्रावोति नामकः पाण्डितोऽपि भिन्नतत्त्वैः परिहृतः प्रहसनीये समागतः । न हृष्टा मगनायेवमथादिह-भो अयलप्रातः त्वं हृदयेऽयं संसयो वसते यत्-

संदेह है कि नारक जीव नहीं है, क्यों कि शब्द में कहा है—‘न इ वै प्रेत्य नारकाःसन्ति’ इति। अर्थात्—‘परमव में, नारक में नारक नहीं है।’ ठीकतया यह मत मिथ्या है। नारक तो हैं ही, किन्तु वे यही आते नहीं हैं और न मनुष्य ही वहीं जा सकते हैं। फिर भी लोकोपराधानी उन्हें मत्स्य रूपसे देखते हैं। हमारे जाल में भी ऐसा वाद्य देला है कि नारकों के एव जायते यः शुद्राकमन्ताति’ इति अर्थात्—‘शुद्र का अन्त लाता है, वह नारकरूप में उत्पन्न होता है। अगर नारक न होते तो ‘शुद्र का अन्त लाने वाला नारक होता है, यह कैसे संगत होगा ! इससे संगत होगा ! इससे नारकों का अस्तित्व सुनकर अकम्पित भी तीनसौ श्रियों के साथ दोसित हो गये।

‘अकस्मिन् मी दीक्षित हो गये’ यह शान कर पुष्प-पाप के विषय में सन्देह रखनेवाले भवसन्धाता नामक पण्डित भी तीनतीस दिनों के साथ प्रभु से पास गये। उन्हें देखकर भगवान् ने ऐसा कहा है

આને પ્રકૃતિની રીતે સમજાવવાથી, પુરુષ-પાપમાં સદેહ સમજાવવાથી, અજ્ઞાનતાના નાશનેથી પરિવ્રત પશુ ત્રણેયો સિદ્ધિઓ આપે પ્રકૃતિની પાસે ગયાં. તેને જોઈ, ભગવાને પ્રમ કહ્યો કે ‘હે અજ્ઞાનભાવા ! તારા મનમાં જોની માન્યતા થઈ ગઈ

पुण्यमेव प्रकृष्ट सत् प्रकृष्टसुखस्य हेतुः, तदेव चाऽप्यचीयमानमत्यन्तस्तोकावस्थं सत् दुःखस्य हेतुः ? उत तदतिरिक्तं पापं किमपि वस्तु अस्ति ? अथवा एकमेवोभयरूपम् ? उभयमपि स्वतन्त्रं वाऽस्ति ? उत पुरुषातिरिक्तं किमपि नास्ति, यतो वेदेषु कथितं “पुरुष एवेदं” सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं” इत्यादीति, तन्मिथ्या । इह लोके पुण्य-पापफलं प्रत्यक्षं लक्ष्यते । एवं व्यवहारतोऽपि प्रतीयते-यत् पुण्यस्य फलम् दीर्घायुष्क-लक्ष्मी-रूपा-ऽऽरोग्य-सुकुलजन्मादि, पापस्य च तद्विपरीतमल्पायुष्कादि फलम्, इति पुण्य पापं च स्वतन्त्रं विजानीहि, ‘पुरुष एवेदं’ मित्येतास्मिन् विषये अग्निभूतिप्रश्ने यन्मया कथितं तदेव ज्ञातव्यम् । तव सिद्धान्तेऽपि पुण्यं पापं

अचलप्राप्ता ! तुम्हारे हृदय में ऐसा सन्देह है कि पुण्य ही जब प्रकर्ष को प्राप्त होता है तो प्रकृष्ट सुख का हेतु हो जाता है और जब वही अपकर्ष को प्राप्त होकर अत्यन्त अल्प होता है तो दुःख का कारण बनजाता है, अथवा पुण्य में भिन्न पाप कोई अलग वस्तु है ? अथवा एक ही वस्तु उभयरूप है ? या दोनों स्वतंत्र है ? या पुरुष (आत्मा) के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है ? क्यों कि वेदों में कहा है-‘पुरुष एवेदं’ U० सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्’-इति । अर्थात्-‘यह सब पुरुष ही है जो हो चुका है, और जो होगा।’ इत्यादि ।

तुम्हारा यह सशय निराधार है । इस लोको में पुण्य और पाप का फल प्रत्यक्ष दिग्विद् दे रहा है । इसके अनिरिक्त व्यवहार से भी प्रतीत होता है कि दीर्घ आयु, लक्ष्मी, सुन्दर रूप, आरोग्य, सुकुल में जन्म आदि पुण्य का फल है, और पाप का फल इससे विपरीत अल्पायु आदि है । इस लिए पुण्य और पाप को स्वतंत्र समझो । ‘यह सब पुरुष ही है’ इस विषय में अग्निभूति के प्रश्न के उत्तर में मैंने जो कहा है, वही यहाँ

छं के, ज्यारे पुण्य धातु वधी नय, त्यारे धातुं सुभ आवी भणे छ, कोटवे धातु सुभना हेतुइय भने छ, અને ન્યાતે ઘટતુ જાય ને અલ્પ થઈ જાય, ત્યારે તે પુણ્ય, પાપતું કારણ બની જાય છે ? આ ઉપરાંત શું ? એમ પણ માની રહ્યો છે કે, પાપ બેલુ કોઈ તત્ત્વ પુણ્યથી નિરાળુ નથી, અથવા આ એક તત્ત્વ બંને રૂપ છે ? તેમજ બંને અલગ-અલગ છે ? આથી વળી આગળ વધી તુ એમ માની રહ્યો છે કે આ જગતમા ‘આત્મા’ સિવાય બીજો કોઈ પ્રદાર્થ નથી ? કારણ કે વેદવાક્ય એમ કહે છે કે આ જગત કેવળ બ્રહ્મમય છે, બ્રહ્મમય હતું ને બ્રહ્મમય રહેશે ? તેને પણ તુ એમ જ માને છે ? કેમ એમ જ ને ? તારા આવા પ્રકારના તમામ અભિપ્રાયો નિરાધાર છે. આલોકમાં પુણ્ય-પાપના ફળો પ્રત્યક્ષ દેખાય છે આ સિવાય બ્યવહારમા પણ દેખાય છે કે દીર્ઘઆયુ, લક્ષ્મી, સુંદર રૂપ, આદિગ્ય, સારા કુળમા જન્મ આદિ પુણ્યના ફળ છે, અને આનાથી વિપરીતાવાળું અલ્પ આયુ વિગેરે પાપના ફળરૂપ છે, મારે પુણ્ય અને પાપને સ્વતંત્ર સમજવા જોઈએ. સમસ્ત જગત ‘આત્મમય છે’ એ વિષયમાં અગ્નિભૂતિના પ્રશ્નને ઉત્તર દેવાયો હતો તે ઉત્તરથી સમજણ કરી લેવી. તમારા સિદ્ધાંતમાં પણ પુણ્ય અને પાપને સ્વતંત્ર પણે

ચ મ્હનનત્વેન શરીરં, તપથા—“પુણ્યઃ પુણ્યેન કર્મણા, પાપઃ પાપેન કર્મણા” ઇત્યાદિ । ધ્યનેન સિદ્ધ-પુણ્ય પાપં
 ચ ઉપમપિ સ્થત્ય વસ્તુ વિચરે । ઇતિ શુભા શિખસંયોગસલધાવાસિ શિશુતશ્ચિયોઃ પ્રવ્રજિતઃ । ॥૫૦.૧૧૨॥

ટીકા—“મોરિયુષ્ણં પન્થશ્ચ” ઇત્યાદિ । મોરિયુષ્ણં પ્રવ્રજિતં મુભા અક્રમ્પિતઃ—અક્રમ્પિતનામા પવિટ્રઃ
 ચિન્તનપતિ । તપાદિ—યો યસ્તસ્ય સમીપે ગતઃ સ સઃ પુનસ્તતો ન નિશ્ચિન્તઃ—ન પરાશ્ચ્યાડ્યાઃ । સર્વેર્ણાં સંધયઃ
 પેન પિન્નઃ—દૂરીકૃતઃ, સર્વેર્યપિ ચ તત્પાત્ર્યે પ્રવ્રજિતાઃ । અતોડશ્મપિ ગચ્છામિ, સ્વકીય સંધયં શેષ્યામિ,
 ઇતિ હૃદયાન્—વત્ત્વ વિષાયે શિશુતશ્ચિયસંવિતઃ પ્રશ્નસમીપે સમ્પ્રાપ્તઃ । તથા હૃદ્યા મગવાન્ વ્રદતિ—ઓ અક્રમ્પિત !
 ન હૈ વૈ મેત્ય નારકાઃ સન્તિઃ’ મેત્ય—પરમથે નરકે—નિરયે નારકાઃ—ઐરપિકા નરકોત્પન્ના બીલા ન વૈ—નૈવ

સમસ છેના વાગિય । હુમારે સિદ્ધાન્ત મેં મી પુણ્ય ઓર પાપ કો સ્વતંત્રસ્થ મેં હી ઓંગીકાર ક્રિયા હૈ । જૈસે—
 ‘પુણ્યઃ પુણ્યેન કર્મણા પાપઃ પાપેન કર્મણા’ ઇતિ । અર્થાત્—‘પુણ્યકર્મસે પુણ્યવાન્ હોવા હૈ’ ઓર પાપકર્મસે
 પાપવાન્ હોવા હૈ ઇત્યાદિ । હસ સે સિદ્ધ હૈં કિ પુણ્ય ઓર પાપ—બોનો સ્વતંત્ર પ્રકારો હૈં । યા મુનકર અવલધાતા કા
 સંધય મી છિમ્મ હો ગયા । વહ અપને તીનસો શિવ્યોં કે સાથ દીસિત હો ગયે ॥૫૦.૧૧૨॥

ટીકા કા અર્થ—મોરિયુષ્ણ કો લોસિશ્વ હુમા મુનકર અક્રમ્પિત નામક પવિટ્ર વિચાર કરને લગે—ઓ
 જો મી મકાપીર ક પાસ ગયા, વહ વહ લીટકર વાસિસ નહીં આયા । હન્નાં ને સમી કે સંધય કા નિવારણ
 કર દિયા ઓર સમી ઉનકે સમીપ દીસિત હો ગયે । તો મેં મી કયોં ન જાઠ્ઠો ઓર અપને સંધય કા નિવારણ
 કર્હૈ ? હસ તરહ વિચાર કર અક્રમ્પિત પશિય મગવાન્ કે પાસ અપને તીનસો શિવ્યોં કે પરિચાર કો સાથ
 હેકર પાવૈ । ઉન્ને વૈલકર મગવાન્ ને હઠા—હે અક્રમ્પિત ! ‘પરમથ મેં, નરક મેં નારક—નરકનીચ નહીં હૈ । હસ

અચીકાર કરવામાં આવ્યાં છે એમ હૈ—‘પુણ્ય પુણ્યેન કર્મણા, પાપ પાપેન કર્મણા’ એ—હે પુણ્ય કર્મથી પુણ્યવાન
 થવાય છે અને પાપ કર્મથી પાપવાન બનાય છે આવી સિદ્ધ થાય છે કે પુણ્ય અને પાપ બને સ્વતંત્ર પદાર્થો છે આપુ
 સાબતી અલગપ્રાવાતો ક શય છેકાઈ ગયે અને તે પશુ પોતાના ત્રણેય શિષ્યો સાથે દીક્ષિત થયે (સં.૧૧૨)

મોરિયુષ્ણ નિરેશને વિશ્વામ્યાં કલ્પા શેષા એવામાં આવતાં અક્રમ્પિતના મનોભાવો પશુ બહાવા તેના આત્મા
 પશુ કલ્પી ઉદ્ધેલ નારહીના હોવા છે કે નહિ તવી ય કા સેવતા તે અતવાન પાસે આવી પહોંચયે । અતવાને તેને
 સમજાનુ કે નારહીના હોવો અહીં આવી શકતા નથી, કારણ કે તેઓનુ શરીર એવુ હોય છે કે નરક બહાર
 અંધ શકતા નથી, તેમ જ અહિં આવુ શકુ દૂર છે તેમ જ કહીન છે તેથી આનન એમ ત્યાં અંધ શકતો નથી;
 તેમ જ તેઓ પશુ અહીં આ ૧ પશુ શકતા નથી. આટલા બધા આવાઅમન યાદે દેવી શક્તિ એટલે બધાર શક્તિ
 હોવી બેધલે તે તેમનામાં નથી હોતી.

સન્તિ, 'હ' इति वाक्यालङ्कारे। इत्यादि वचनात्-तव मनसि अयं संशयोऽस्ति, यत्-'नैरयिका न सन्ति' इति। इदं यत् तव मतं-तत् मिथ्या। यतः नारकाः सन्त्येव, किन्तु ते अत्र=अस्मिन् लोके पुनर्न आगच्छन्ति। तत्र=नरके मनुष्याः गन्तुं न शक्नुवन्ति। अतिशयशक्तिनः तान्=नरकवर्तिनो नारकान्=नरकजीवान् प्रत्यक्षत्वेन=केवलज्ञानालोकेन साक्षात्कारेण पश्यन्ति। तव शास्त्रेऽपि "नारको वै एष जायते यः शूद्रान्ममश्नोति" "यो द्विजः शूद्रान्मम् अश्नाति शुक्ले एषः=असौ शूद्रान्नभोक्ता नारकः=नरकोत्पादी जायते वै=भवत्येव" एतादृक् वाक्यं लभ्यते। यदि नारका न भवेयुः तदा 'शूद्रान्नभक्षकः नारको भवति' इति वाक्यं कथं=केन प्रकारेण संगच्छेत। अनेन 'नारकाः सन्ति' इति मतं सिद्धम्। एवं श्रुत्वा अकम्पितोऽपि त्रिशतशिल्पैः सह प्रव्रजितः।८।

'अकंपिओ वि' इत्यादि—'अकम्पितोऽपि प्रव्रजितः' इति ज्ञात्वा-पुण्यपापसन्देहयुतः=पुण्यपापत्रिपये सन्देहवान् अवलम्बता-इति नामकः पण्डितोऽपि त्रिशतशिल्पैः परिवृतः सन् प्रभुसमीपे समागतः। तं दृष्ट्वा

वेદવાક્ય સે તુમ્હારે મનમેં યહ સંશય હૈ કિ નારક નહીં હૈ। લેકિન તુમ્હારા યહ મત મિથ્યા હૈ। નારક તો હૈ, પર વે ઇસ લોક મેં આતે નહીં હૈં ઓર મનુષ્ય નરક મેં (ઇસ શરીર સે) નહીં જા સકતે। હૌં, અતિશય જ્ઞાની નરક કે જીવો-નારકોં કો કેવલ જ્ઞાન સે પ્રત્યક્ષ દેલતે હૈં। તુમ્હારે જ્ઞાત્ર મેં મીં એસા વાક્ય મિલતા હૈ કિ-"નારકો વૈ એષ જાયતે યઃ શૂદ્રાન્મમશ્નાતિ" જો વ્રાહ્મણ શૂદ્ર કા અન્ન લેતા હૈ, વહ નરક મેં નારક કે રૂપ મેં ઉત્પન્ન હોતા હી હૈ। અગર નારક ન હોતે તો 'શૂદ્રાન્-મોજી નારક હોતા હૈ' યહ વાક્ય કેસે સંગત હોતા? ઇસસે સિદ્ધ હૈ કિ નારક જીવોં કી સત્તા હૈ। એસા સુનકર અકમ્પિત મીં તીનસો શિર્ષોં કે સાથ દીક્ષિત હો ગયે ॥ ૮ ॥

અકમ્પિત મીં દીક્ષિત હોં ગયે, યહ જ્ઞાનકર પુણ્ય-પાપ કે ત્રિપય મેં સન્દેહવાલે અવલમ્બતા નામક

આ ઉપરાંત તઓ પરમાધર્મી દેવોની અધીનતામા રહેલા છે. તેઓ પાપના ઉહયે, ત્યાંની ક્ષેત્રવેદના ઉપરાત પરધર્મીના પ્રહારો સતત અમેઘપથો સહાજ કરે છે, આથી તેઓ અહીં આવી શકતા નથી; તેમજ માર આડે કાઇ સૂત્રું પણ નથી અને પરમધર્મીના તંત્ર નીચેથી ધડીએક પણ અળગા થઇ શકતા નથી. નારકોનું અસ્તિત્વ છે એમ વેદોનું પણ કથન છે. "નારકો વૈ એષ જાયતે યઃ શૂદ્રાન્મમશ્નાતિ" એટલે જે શૂદ્રનું અન્ન ખાય તે નારક થાય છે અગર નારક નહીં હોત તે! આ વાક્ય કેવી રીતે સુસંગ બનત? તેથી સિદ્ધ થાય છે કે નારક છવોની સત્તા છે. આવી અપૂર્ણ વાણીશ્રી અકમ્પિત પિંગળી ગયો અને પોતાના ત્રિશુભો સાથે તે પણ દીક્ષિત થઇ ગયો. ૮।

અકમ્પિતનું પ્રવજન સાંભળી પુણ્ય-પાપ એ એક જ તત્વ છે એવી માન્યતાવાળા અચળશ્રતા નાસના પડિત

मगवान् परम् भगवादीव—“ओ अवलम्ब्यताः ! तव इदमेव अर्थ संशयो वर्तते यत्—‘पुण्यमेव प्रकृत्युपेयं=अविश्रयितं सत् प्रकृत्युपेयस्य हेतु=कारण भवति ! तदेव=पुण्यमेव व=पुनः, अपचीयमानं=शीयमाणम्, अत एव स्तोत्रा वस्वम्=अस्वीयमानमाप्नोति सत् दुःखस्य हेतुर्भवति ! उत आहोस्ति तद्विचित्रं=पुण्यमिन्नं किमपि किञ्चित् वस्तु अस्ति=विद्यते !, अथवा परमेश्वर=पुण्यपापयोरेकतमेव उभयस्य=पुण्यपापयोरेकमेव विद्यते !, यथा-उभयमपि इय मपि-पुण्यं पापं च स्वतन्त्र=स्वतन्त्रात्मनो=स्वतन्त्र-पुण्यं अस्ति ! उत-यथा-पुरुषातिरिक्तं=पुरुषमिन्नं=आत्ममभिप्राय किमपि=किञ्चिदपि पुण्यपापादि वस्तु नास्ति ? यत्-यस्मात्-पुरुषातिरिक्तस्य कस्यापि पदार्थस्य सत्त्वाभावादेतो चेदेव कथितम्, तथाहि-‘पुरुष एवेद’^७ सर्वं यद् भूतं यच्च भगवम्’ यत् इदं=वर्तमानं, यद् भूतं=अतीतं, यच्च भगवम् भविष्यत्, तत्-सर्वं वस्तु पुरुष एव=आत्मेव, न तदतिरिक्तं पुण्यपापादि किमपि वस्तु विद्यते’ इत्यर्थः” इत्यादि। इति=इत्थं तत्र मनसि पुण्यपापविषये संशयोऽस्ति। तन्मिथ्या,। यतः—“इहोके=अस्मिन् माके पुण्य-पापकर्म=मुकुरदृक्कर्म परिणामः प्रत्यक्षं=साक्षात्स्वयमेव=इत्यते। एव अथवाततोऽपि प्रतीयते=प्राप्यते, यत्-पुण्यस्य फलम्-नीर्पापक-अस्वी-क्या-ऽऽरोगयदुक्तं ज्ञान्यादि, अथ पापस्य च तद्विपरीतम् अस्या-

पण्डित मी भवने तीर्त्तसी अठेवासिधो सतिव भगवान् के पास पहुँचे। उन्हें देखकर भगवान् ने इस प्रकार कहा—दे अवलम्ब्यता ! तुम्हारे अन्तःकरण में यह संशय है कि पुण्य ही जब प्रकृत (उच्च कोटि का) होता है तो वह भुवन का कारण होता है और जल वही पानी पुण्य पट जाता है, और अन्त्य रहता है तब इस का कारण बन जाता है ! अथवा पाप, पुण्य से भिन्न कुछ स्वतंत्र वस्तु है ? अथवा पुण्य अथवा पाप का कोई एक ही स्वरूप है ? या दोनों परस्पर निरोपेक्ष स्वतंत्र हैं ? अथ च आत्मा के अविरक्त पुण्य-पाप कोई वस्तु नहीं है ? क्यों कि वेद में यह कहा गया है कि—‘ओ वर्तमान है, जो अतीत में था, और भविष्यत् में होगा वह सब पुरुष (आत्मा) ही है, आत्मा से भिन्न पुण्य-पाप आदि कोई पदार्थ नहीं है।

तुम्हारे मन में ऐसा संशय है किन्तु यह मिथ्या है। इस संसार में पुण्य और पाप का फल प्रत्यक्ष निर्माण दे रहा है। स्पष्टतः से जो प्रतीत होता है कि पुण्य का फल दीर्घजीवन, सम्पत्ति, समीप्यस्वरूप, यशस्वि अतिवृत्तिभोग आदि कई वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, वेना जितनात जोये। कृते है अन्तरे १२५५ उक्त्ये हेतिमां प्रवर्ततु देय है त्वारे ते सुखदुःख भाग्य जने है अने पुण्य वस्तु अथ अन्तर अन्तर अथ अन्तर अथ अन्तर ते दुःखदुः भाग्य जने है अथ जने तत्पिने अथवृत्तिभावा जोह इय भावतो कृते, भगवान् ने प्रत्यक्षवाचकं जगत्सु भगवत्कर्म ने दो लये सुप्रभम स्थिति जोअन्तो रह्य है ते पुण्यवना

शुष्कાદિ=અલ્પાયુક્તવદારિદ્ર્ય-કુરુપત્ત્વ-સરોગત્ત્વ-દુઃકુલ-જન્મપ્રકૃતિફલમ્ । इति प्रागुक्तानां पुण्यपापफलानां
 प्रत्यक्षलक्ष्यमाणत्वेन व्यवहारतश्च प्रतीयमानत्वेन च पुण्यं पापं च विना दीर्घायुष्कृत्वादि स्तोकायुष्मत्तत्वादिरूप-
 फलानुपपत्त्या पुण्य-पापं च स्वतन्त्रं-परस्परानपेक्षि-पृथक् पृथग् विजानीहि । “पुरुष एवेद” मित्येतस्मिन् विषये
 अग्निभूतिप्रश्ने यत्-समाधानवचनं कथितम्-तदेवात्रापि ज्ञातव्यम्, तत्र सिद्धान्तैऽपि-पुण्यं पापं चैतदुभयं स्वतन्त्र-

નીરોગતા ઓર સત્કુલ મેં જન્મ આદિ હૈ, ઓર પાપ કા ફલ જન સે ઉલટા-અલ્પાયુ, દરિદ્રતા, કુરુપતા, રુગતા
 ઓર અસત્કુલ મેં જન્મ આદિ હૈ. ઇમ પ્રકાર પુણ્ય ઓર પાપ કે ફલ સાધાત્ દિગ્વાઈ દેતે હૈ ઓર વ્યવ-
 હાર સે યહ પ્રતીત હોતા હૈ કિ પુણ્ય કે વિના દીર્ઘાયુ આદિ તથા પાપ કે વિના અલ્પાયુ આદિ સુફલ ઓર
 દુષ્ફલ નહીં હો સકતે, અત એવ પુણ્ય ઓર પાપ કો પર્યાય કી અપેક્ષા સ્વતન્ત્ર-પરસ્પર નિરપેક્ષ, પૃથક્-
 પૃથક્ હૈ. યહી માનના ચાહીએ. તથા કારણ મેં ખેદ ન હો તો કાર્ય મેં ખેદ નહીં હો સકતા. સુખ ઓર
 દુઃલ પરસ્પર વિરુદ્ધ દો કાર્ય હૈ, અતઃ ઉનકા કારણ મી પરસ્પર પિરુદ્ધ ઓર અલગ-અલગ હોના ચાહીએ.
 પુણ્ય-પાપ કો અભિન્ન માનોગે તો ઉસસે સુલ-દુઃલ રુપ દો કાર્ય નહીં હોગે; અથવા મુલદુઃલ કો મી અભિન્ન
 હી માનના પડેગા. ફિન્તુ સુલ ઓર દુઃલ કો અભિન્ન માનના પ્રતીત સે વાધિત હૈ. જૈસે દીપક કી મદન્તા
 અન્ધકાર કો ઉત્પન્ન નહીં કરતી ઉસી પ્રકાર પુણ્ય કી મદન્તા દુઃલ કો ઉત્પન્ન નહીં કર સકતી.

‘યહ સવ પુરુષ હી હૈ’ इत्यादि वाक्य के विषय में जो तुम्हें सन्देह है उसका समागम अग्निभूति के
 प्रश्न में जो समाधान मैने किया है, वही यहाँ भी समझ लेना । इसके अतिरिक्त तुम्हारे आगम में भी पुण्य

ક્ષણ રૂપે છે અને હુ અમય સ્થિતિ અલ્પ કે વધારે તે બધુ પાપના ક્ષણ રૂપે હોય છે પુરુષ અને પાપોનેા ઉદય
 સાથે સાથે પશ્ચ વસતેા હોય છે એક બાબતમા પુરુષના ક્ષણ રૂપે સુખનેા અનુભવ થનેા હોય છે, ત્યારે સાથે સાથે બીજી
 બાબતમા પાપના ઉદયે હુ અ વેદતેા હોય છે. દૈએ ટકે સુખી ગપ્તેા: છત્ર, ઘેરા-છોકરા તેમ જ શારીરિક વેદનાને ઉદયે
 હુ અ અનુભવતેા માહુમ પડે છે. માટે પુરુષ-પાપની પધર્થો, સ્વતંત્ર, પરસ્પર નિરપેક્ષ અને પૃથક્ પૃથક્ હોય છે.

જો કારણમા લેહ ન હોવ તો, કાર્યમાં લેહ પડતો નથી સુખ અને દુઃખ જાંને પરસ્પર વિરોધી સર્વરૂપે છે.
 માટે તેના કારણો પશુ, પરસ્પર વિરુદ્ધ હોવા જોઈએ, એટલે અલગ અલગ હોવા જોઈએ. જો પુરુષ પાપ જાંનેને
 એક માનેા, તો તેના સુખ અને દુઃખ જાંને પરિણામેા જુદાજુદા હાઈ શકે નહિ. માટે તે અભિન્ન નથી, પણ
 બિન્ન છે. દીપકની મંદતા, અંધકાર ને ઉત્પન્ન કરી શકતી નથી, તેમ પુરુષની મંદતા હુ અને ઉત્પન્ન કરી શકતી નથી

तं तमेवैति कौन्तेय ! सदा तद्भावभावितः” इच्छाह । अओ सिद्धं परलोगो अत्थिचि । एवं सोच्चा निसम्म छिन्नसंसओ मेयज्जोवि तिसयसीसेहिं पव्वइओ ॥१०॥

तं पव्वइयं सोच्चा एगारसमो पंडिओ पभासाभिहोवि तिसयसीससहिओ नियसंसायवणयणत्थं पहुसमीवे समणुपत्तो । पहुणा य सो आभट्ठो-भो पभासा ! तव मणंसि इमो संसओ वट्ठइ-जं निव्वाणं अत्थि नत्थि वा ? जइ अत्थि किं संसारभावो चेव निव्वाणं ? अह वा दीव सिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं ? जइ संसाराभावो निव्वाणं मन्निज्जइ, ताहे ते वेयविरुद्धं भवइ, वेएसु कहिय-“जरामर्यं वै तत्सर्वं यदग्निहोत्रम्” इति । अणेण जीवस्स संसारभावो न भवइत्ति । जइ दीव सिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं मन्निज्जइ, ताहे जीवाभावो पसज्जइत्ति । तं भिच्छा । निव्वाणं ति मोक्खो चि वा एगट्ठा ! मोक्खो उवट्ठस्सेव हवइ । जीवो हि कम्मोहिं वट्ठो अओ तस्स पयणविसेसाओ मोक्खो भवइ चेव । अस्स विसए मंडिय पण्हे सव्वं कहियं, तं धारेयव्वं तवसत्थे पि वुत्तं-“द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च । तत्र परं “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” ति । अणेण मोक्खवस्स सत्ता सिज्जइ । अओ सिद्धं मोक्खो अत्थि चि । एवं सोच्चा छिन्नसंसओ पभासोवि तिसयसीसेहिं पव्वइओ ॥११॥

एत्थ संगहणीगाहादुगं—

जीवेयं कम्मविसए, तज्जीवय तच्छरीरं भूँ ए य ।

तारिसय जम्मजोणी परे भवे, वंधमुक्खे य ॥ १ ॥

देव नेरइये पुण्णे, परलोए तह य होइ निव्वाणे ।

एगारसावि संशयच्छेए पत्ता गणहरत्तं ॥ २ ॥इइ॥

को गणहरो कइसंखेहिं सीसेहिं पव्वइओत्ति-पडिवाइया संगहणी गाहा -

पंचसयो पंचण्हं, दोण्ह चिय होइ सद्धतिसयो य ।

सेसाणं च चउण्हं, निसओ तिसओ हवइ गच्छो ॥ १ ॥

एवं पहुसमीवे सव्वे षोयालसया दिया पव्वइया ॥मृ० ११३॥

॥ इय गणहरवाओ ॥

छाया—मेतार्योऽपि निज संशयच्छेदनार्थं त्रिशतशिष्यैः परित्तः प्रभुसमीपे समागतः । भगवान् तं वदति—
भो मेतार्य ! तव मनसि अयं संशयो वर्त्तते, परलोको नास्ति । यतो वेदेषु कथितम्—“विज्ञानघनएवैतेभ्यो

त्वेन घृतीतं-स्वीकृतम्, तद्यथा-“पुण्यः पुण्येन कर्मणा पाप पापेन कर्मणा” ग्रीष्म-पुण्येन शुभकर्मणा पुण्य-पुण्यवान् भवति, पापेन-अशुभकर्मणा पाप-पापवान् भवति, ‘पुण्यः, पापः’ इत्युभयमतत्पर्योद्घोषमादिस्त्वाद्यष्टप्रत्ययः। तेन पुण्यपापद्वयोः ग्रीष्मोऽपि विशेष्यनिष्ठत्वायुं स्वम्। यद्वा-वैदिकमयीगत्वायुं स्वम्, तेन पुण्यपापं चेत्पुण्यं शुभाशुभकर्मभ्यां भवतीत्यर्थः। इत्यादि। अनेन पुण्य पापं चेत्पुण्यमपि स्वतन्त्रं नस्तु विपरीते इति सिद्धम्। एवं भगवतो वचनं श्रुत्वा छिन्नसन्धयः सर्वं भवन्नाजितः सारं प्रवृत्तिः। ॥मृ० ११॥

मूलम्—येयञ्चो वि नियतसंयच्छेयणहं विमपत्तीसेहि पांखुहो पडु समीचे समागमो । अगरीं वप्य-
मो नेयञ्चा । तव मर्गसि इमो ससमो बद्ध-परलोगो नत्वि । अमो वेपसु करिध-“विज्ञानपनपैतेभ्यो भूतेभ्यः
समुत्पाप पुनस्तान्वेवानुविनरपति न मेत्यसङ्गच्छति” इषाह । तं मिच्छा । परलोगो भवत्यिवेव ज्ञानाद्वा मायमेवस्त
बासल माठणइदुपाणे सभा करं मये ? । तव सिद्धेति वि कुष-“यं ये वासि स्मरन् मां स्तानत्य-ते कछेनरम् ।

और पाप दोनों को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। कहा है—“पुण्यः पुण्येन कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा” यर्षाह—गीत ग्रन्थ कर्म से पुण्यवान् होता है और अशुभ कर्म से पापवान् होता है। ऐसा मान ने पर वाक्य का अर्थ यह होगा—शुभ कर्म से पुण्य और अशुभ कर्म से पाप होता है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि बुद्ध और पाप-दोनो स्वतंत्र वस्तुएँ हैं। आशय यह है कि औरत मन में कोई भी दो फलार्थ सर्वपाप निषेध या सर्वपाप अभिषेध नहीं होती, तथापि अक्षयव्रतता के माने हुए सर्वपाप अमोदपक्ष का निरास करने के लिए यहाँ केवल भेद-पक्ष का समर्थन किया गया है। द्रव्य की अपेक्षा दोनो में अमोद ही है, अनेकान्यत्राद के हाताओं को यह समझना कठिन नहीं। भगवान् के यह वचन सुनकर अक्षयव्रतता का संक्षेप छिन्न हो गया। यह भी अपने तीनस्तो शिष्यों के प्राण दीक्षित हो गये। ॥२०११२॥

તમામ આત્મક શાસ્ત્રોમાં પણ પ્રવચન અને પાપના તત્ત્વોને હુદા કરવાં છે. એમ કહે—“પુણ્ય, પુણ્યેન કર્મણા, પાપ પાપે ન કર્મણા” એટલે વચન કાપાવણા, પ્રવચન ઉપાસન કરે છે. અને તેને સ્વર્ગીય સુલોની પ્રાપ્તિ થાય છે, તેમ તમામ શાસ્ત્રોમાં નિર્દેશન છે અમામ મત પ્રમાણે દેશ પણ એ જાણે. સર્વેના ભિન્ન કે સ્વયં આભિજ્ઞ હોનાં નથી. બધા, વચનજાતાનો સંદેહ એ સર્વેના અલેક્ષ્ય પદ્ધતિ હોય, તેને નિર્મૂળ કરવા, અને દરેક પદ્ધતિને અધિકારી મળે પણ અનેક નિમિષ બિન્ન એવા, ભગવાને અમન્ય આવી હતી

આ શ્રોત વાંચનને જનરેખિત હિન્દુ યાન પ્રાપ્ત થતાં, અલગબાદ વૈશાખ મે પાંચમે, અને સ્વયં શિક્ષિત થયેલા તેની સાથે તેના ત્રણસા મિત્રોએ પણ દીક્ષા લાગ્યા હતા (સં.૧૧૨)

तं प्रवृजितं श्रुत्वा एकादशः पण्डितः प्रभासाभिधोऽपि त्रिशतस्त्रिव्यसहितो निजसंशयापनयनार्थं प्रभु-समीपे समनुप्राप्तः । प्रभुणा च स आभाषितः—भो प्रभास ! तव मनसि अयं संशयो वर्तते, यत्निर्वाणम् अस्ति ? नास्ति वा ? यद्यस्ति, किं ससाराभाव एव निर्वाणम् ? अथवा दीपशिखाया इव जीवस्य नाशो निर्वाणम् ? । यदि संसारभावो निर्वाणं मन्यते, तदा तद् वेदविरुद्धं भवति । वेदेषु कथितम्—“जरामर्यं वै तत्सर्वम् अग्निहोत्रम्” इति । अनेन जीवस्य ससाराभावो न भवतीति । यदि दीपशिखाया इव जीवस्य नाशो निर्वाणं मन्यते, तदा जीवाभावः प्रसज्यते—इति । तन्मिथ्या । निर्वाणमिति मोक्ष इति वा एकाग्र्यौ । मोक्षस्तु वदस्वैव ।

अत एव परलोक का अस्तित्व स्वीकार करना चाहिए । इस कथन को कानों से सुनकर और हृदय में धारण करके संशय छिन्न हो जाने पर मेतार्य भी तीनसौ शिष्यों सहित दीक्षित हो गये ।

मेतार्य को दीक्षित हुआ सुनकर ग्यारहवें पण्डित प्रभास भी तीनसौ शिष्यों सहित अपना संशय दूर करने के लिए प्रभु के पास पहुँचे । प्रभुने उनसे कहा—हे प्रभास ! तुम्हारे मन में यह संशय है कि निर्वाण है या नहीं ? अगर है तो क्या संसार का अभाव ही निर्वाण है ? अथवा दीपक की शिखा के समान जीव का नाश ही जाना निर्वाण है ? अगर संसार का अभाव निर्वाण माना जाय तो वह वेद से विरुद्ध है । वेदों में कहा है ‘जरामर्यं वै तत्सर्वं यदग्निहोत्रम्’ इति । अर्थात्—‘यह जो अग्निहोत्र है सो सब जरा-मरण के लिये है ।’ इस से प्रतीत होता है कि जीव के संसार का अभाव नहीं होता है । अगर दीपक की लौ के समान जीव का नाश होना निर्वाण माना जाय तो जीव के अभाव का प्रसंग आता है ।

परलोक अस्तित्व स्वीकारवानु रहो छे आ उपदेश्यो भेत्तार्यं भन पीगणी गयुं. अने पोताना त्रयुसो शिष्यो साथे तेखे दीक्षा अंगीकार करी.

मेतार्थ सुनिज्ये पथ्य, दीक्षा दीधी छे ज्ये भवणी अग्यारमा पडित प्रभास पथ, त्रयुसो शिष्यो साथे, पोतानी भान्यतानु दपष्टीकरं मेणववा साइ प्रभु पासे जवा रवाना थयो प्रभुज्ये तेनी भान्यता ज्ञानद्वारा भवणी दीधी; ने ‘निर्वाणु’ नथो तेम तेनी भान्यतानी तेखे रण्यथात करी. आ साथे तेनु पीजु पथ जो भंतव्य-हुतुं के, संसारनो अभाव तेनुं नाम ‘निर्वाणु’ छे. तेमज, जेम द्विधानी शिष्यानी समान जवनो नाथ थयो ते ‘निर्वाणु’ कुडवाय छे

भगवान, उपर वरुणवेद तेना विचारो ने निर्भूण करवा, समज्ज आये छे के, वेदोक्ति ‘जरामर्यं वै तत्सर्वं यदग्निहोत्रम्’ धति अर्थात्—ज्याजे अग्निहोत्र छे, जधु जरा-मरण भाटे छे आधी प्रतीत थाय छे के, जवन ससारनो अभाव नथी. जे दीपक समान जवनो नाथने निर्वाण तरीके भानवासां आवे तो, जवनो अभाव भान-

देवे नैरविके पुण्ये परलोके तथा च भवति निर्वर्णने ।

१२ १३ १४
एकादशपि संशयच्छेदे प्राप्ता गणधरताम् ॥२॥ इति ।

को गणधरः कृतिसंख्यैः शिष्यैः प्रवर्जित इति प्रतिपादिका संग्रहणी गाथा—
पञ्चशतः पञ्चानां द्रव्यैश्च भवति सार्द्धविशतश्च ।
शेषाणां च चतुर्णां विशतः विशतो भवति गणः ॥१॥

एते प्रश्नसमीपे सर्वे चतुश्चत्वारिंशच्छतानि द्विजाः प्रवर्जिताः ॥११३॥

॥ इति गणधरवादः ॥

देवेनैरविके पुण्ये, परलोके तद् य होइ निव्वाने ।

एगारसापि संसयच्छेए पत्ता गणहरत्तं ॥ २ ॥ इति ।

अर्थात्—ग्यारह गणधर को निम्नलिखित ग्यारह विषयों में सन्देह थे—(१) इन्द्रधृति को जीव के विषय में (२) अग्निधृति को कर्म के विषय में (३) वायुधृति को तज्जीव-तच्छरीर (वही जीव वही शरीर) के विषय में (४) व्यक्त को श्रुतों के विषय में (५) सुधर्मा को पूर्वभव सरीखे उत्तरभव के विषय में (६) मण्डिक को वन्द-मोक्ष के विषय में (७) सौर्धणुच को देवों के विषय में (८) अकम्पित को नारको के विषय में (९) अवल-साता को पुण्य-पाप के विषय में (१०) मेतार्थ को परलोक के विषय में और (११) प्रभास को मोक्ष के विषय संशय था । संशय का हटव होने पर ग्यारहों गणधर-पद को प्राप्त हुए ॥ १-२ ॥

देवे नैरविके पुण्ये, परलोके तद् य होइ निव्वाने ।

एगारसापि संसयच्छेए पत्ता गणहरत्तं (२) इति

अर्थात्—अग्यार गणधरोंने निचे दाय्या मुअण, अग्यार विषयोमां शंका-इती (१) छन्दधृतिने ‘अव’ना विषयमां, (२) अग्निधृतिने ‘उभ’ आणतमां (३) वायुधृति ने तण्णव अने तच्छरीरमां ओट्ठे जे शरीर छ तेण एव ते आ विषयमां, (४) व्यक्तने पांय गइआण्ठो आणतमां, (५) सुधर्माने पूर्वभाव जेवोण उत्तरभव होय तेने दगलां विषयमां, (६) मण्डिकने अंध-मोक्ष संबंधी, (७) सौर्धणुचने ‘देवो’ संबंधी, (८) अकंपितने ‘नारकी’ना गोशुद्धयक्षा विरे, (९) अवलसाता ने पुइय-पाप ने दगतो, (१०) मेतार्थने परलोक संबंधी, (११) प्रभासने मोक्षानी आणतमां संशय इतो ।

નીનો રિ કર્મનિર્વહ; અતસ્તસ્ય પ્રયત્નવિષેષાન્મોક્ષો યદ્વચેવ । અસ્ય વિષયે મષ્ટિક્ષ્મન્ને સર્વે કથિતં તદ્ વાચિતમ્પય । ત્વ શાક્ષેડ્યુક્ત્ય—‘દે વ્રક્ષણી વેદિતવ્યે પરમપરં વ’ । ત્વ પરં—‘સત્ય જ્ઞાનમનન્ત વ્રક્ષ’ ઇતિ । પ્રત્નેન મોક્ષસ્ય સ્થા સિચ્ચતિ । અતઃ સિદ્ધં મોક્ષોડ્ડતીતિ । एवं મુત્વા છિન્નસંસ્રયઃ પ્રયાસોડપિ ચિદ્વશિચ્ચૈઃ પ્રવ્રજિત’ ॥૧૧॥

અમ્ર સંપ્રણી ગાથા દ્વયમ્—

નીચેં વ કર્મનિષયે, તક્ષીરક તક્ષરીરે—ચૂતે વ ।

તાદશક જન્મયોનોં પરે મૈવે, વન્ધેમોક્ષો વ ॥૧॥

તુમ્હારા યા સુન્દર નિરાપાર છે । નિર્વાણ ઔર મોક્ષ દોનોં एक ही કાર્યે કો વત્સાને ઘાટે ક્ષબ્દ હૈ । શ્વ નોંષ કા હી મોક્ષ હોતા હૈ । જીવ કમોં સે શ્વ હૈ, અતઃ પ્રયત્ન-વિષેષ સે ડસક્ષા મોક્ષ હોતા હી હૈ । મોક્ષ કે વિષય મૈં મષ્ટિક કે વ્રક્ષ મૈં કહા હૈ, શ્વ સર્વ સમય હેના વાશિષ । તુમ્હારે કાલ મૈં મી કહા હૈ—‘દે વ્રક્ષણી વેદિતવ્યે પરમપરં વ’ । ત્વ પરં સત્ય જ્ઞાનમનન્તં વ્રક્ષ’ ઇતિ । અર્થાત્—દો વ્રક્ષ કે વ્રક્ષ સત્ય, જ્ઞાન ઔર અનન્ત સ્વરૂપ હૈ । હવ સે મોક્ષ કો સ્થા સિદ્ધ હોતી હૈ । અતઃ મોક્ષ કા સદ્ભાવ સિદ્ધ હુઆ । હવ પ્રકાર ટુનકર પ્રયાસ મી સમ્યગ્-નિષ્ઠ હોકર સીનતી ક્ષિયોં કે સાથ વૈજિત હો ગયે ।

કિસ ગજવર ના કૌન સ્ત્રય યા ? હવ વિષય મૈં ચૌં દો સપ્રણી ગાથાઈ હૈ—

“નીચેં ય કર્મનિસય, તક્ષીવ ય તક્ષરીર ચૂત ય ।

તારિસય જન્મયોની પરે મૈવે વંધયુક્તે ય ॥ ૧ ॥

યાનો પ્રસ જ ઉપસ્થિત થાય છે મારે વાશ આ સુદૃઢ પાયા વડતો છે । નિવોલ્લ જન મોક્ષ બને એકજ અર્થે વતાવવાવાળા પ્રયત્નવન્ધક થયો છે । એ છવ જખલ્લ છે । તેનાજ મોક્ષ હોય । છવ ક્ષોવટે જખાયેક હોય તેનાજ વિશેષ પ્રત્નેના વડે મોક્ષ કશ થયે શાક્ષની બાબતમાં છમ્ર જનપર મંચિને ને રહીલો । વડે અમન્તવવામાં આ ચો, તે રહીલો અઢી જલ્લ કમલ દેવી । તમાશ થાઅમાં પણ કમ્લ છે કે, ‘દે વ્રક્ષણી વેદિતવ્યે પરમપરં વ ત્વ પરં સત્ય જ્ઞાનમનન્તં વ્રક્ષ’ ઇતિ અર્થાત્—જે પ્રકારના વ્રક્ષ બાજુવા નીર્ધજે એક ‘પરવ્રક્ષ અને બીજા અપરવ્રક્ષ’ આ જન્મેમાં પરવ્રક્ષ, સત્ય, જ્ઞાન અને જનત સ્વરૂપી છે । આવી ‘શાક્ષ’ના સદ્ભાવ સિદ્ધ થાય છે । આના અગ્રિતીય પ્રવચન દાસ, પ્રકાશનો સઘન રજો બચે, અને તલ્લસો શિષ્યો સાથે તે રહીત થયા । કયા અણુપરને કયો સઘન કોતો ? આ નિવરમાં અઢી જે સઘનકી બાજાનો આપવામાં આવે છે—

નીચેં ય કર્મનિસયે તક્ષીવ ય તક્ષરીર ચૂત ય ।

તારિસય જન્મયોની પરે મૈવે વંધ યુક્તે ય (૧) ॥

टीका—'मेयजोडसी'-स्वाद। मेतावोंउपि निजसंख्यच्छेदनार्थे त्रिशतश्रित्यैः परिहृतः प्रमुसमीये समागत'। मगवान्-ए वदति-मो मेतार्थ ! तब मनसि अर्धे-वसमाण सखयो वर्तते, तथाहि-'परलोको नास्ति, यतो

ज्ञोन गणपर फितने श्रित्यों के साथ वीसिठ हुए, यह कहने वाली संव्रणी गाया यह है—
पंचसयो पंचण, दोषं चिय होए सद तिसयो य ।

सेसार्ण च चठणं, तिसयो तिसयो इए गच्छो ॥ इति ।

अर्थात्-पारंग के पांच (गणपरी) के पांच-पांचसौ, दो के साठेतीनसौ-साठेतीनसौ और दोपचार के तीन-तीनसौ श्रित्यों का समुदाय या १।१। इस प्रकार प्रभु के समीप सब बवालीससौ ब्राह्मण (गणपरी) के श्रित्य मी उस समय वीसिठ हुए। अर्थात् सब बवालीससौ ग्यारह (४४११) वीसिठ हुए ॥ इ० ११३॥

॥ गणपरबाद समाप्त ॥

टीका का अर्थ—मेतार्थ मी अपना संख्य छेदन करने के लिए अपने तीनसौ श्रित्यों के साथ प्रभु के समीप आये। मगवान् ने उनसे कहा—हे मेतार्थ ! तुम्हारे मन में यह संख्य विद्यमान है कि-परलोको नहीं है;

आ अन्धारे ब्राह्मणे। पोताना बिभये। स अमी ने ने श्रद्धाओ तेजो। सेवी श्रद्धा दत्ता ते ते श्रद्धाओ। न् अस्तिगत निशकश्रु बदां तेजो। तीमवैश्रद्धाओ चारुमा। स आरनी अपारदाते अक्षी, तेजो। वीक्षित क्क अक्षुपर न् ने प्राप्त यमा क्क इमा अक्षुपर। डेट्टेइटा श्रित्यो। आये वीक्षित यमां ते अतावतापणी स अक्षुषी आमा अदि हरेवामां आये छे—

“पंचसमो पंचार्ह, दोषं चिय होय सद तिसमो य ।

सेसार्ण च चठणं, तिसमो इए गच्छो ॥” इति

अर्थात्—यहमातना पाचअक्षुपर, पांचसो-पांचसो श्रित्यो आये छे साधनअसो। आये अने आधीना आये अक्षुसो। तबसे श्रित्योना अमुदाय आये इमा। धारण करी। मा अभाव्ये प्रभु पासे अथा अर्थी सुभाणीयसो। ब्राह्मणो। जे जेइले अन्धारे अक्षुपरशेनी आये अथा सुभाणीयसो ने अन्धीबार ब्राह्मणो। जे इमा पंचो अजिहार करी (इ०-११३)

॥ अक्षुपरबाद स पूज् ॥

टीका अर्थ—मेतार्थ पञ्च पोताना अ यमना निवारण पाटे पोताना अक्षुसो श्रित्यो आये प्रभुनी पासे अन्धमा अन्धवाने तेने इछ-हे मेतार्थ ! तबअ मनमां जे सख छे हे-परलोको नहीं, धारण हे वेदोमां हरेव छे हे

વેદેષુ કથિતમ્-‘વિજ્ઞાનઘનનૈવૈતેભ્યો ભૂતેભ્યઃ સમુત્થાય પુનસ્તાન્યેવાભુવિનશ્યતિ ન પ્રેત્યસંજ્ઞાઽસ્તિ’ इत्यादि । एतद्विवरणमिन्द्रभूतिप्रसङ्गे कृतमिति ततोऽवसेयम् । इति यन्मन्यसे तत् मिथ्या । परलोकोऽस्त्येव, अन्यथा-जातमात्रस्य बालस्य मातृस्तनदुग्धपाने संज्ञा कथं भवेत् ? । परलोकस्वीकारे तु पूर्वभवानुभूतदुग्धपानस्यानुभवाद्भवति मातृस्तन्यपानचेष्टा बालस्य । तत्र सिद्धान्तेऽप्युक्तम्-“यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । ते तमेवैति कौन्तेय ! सदा तद्भावभावितः । १ ।’ हे कौन्तेय ! जीवः अन्ते=मरणकाले यं यं वाऽपि भाव स्मरन्=चिन्तयन् कलेवर=शरीरं त्यजति, स सदा तद्भावभावितः=अन्तकालचिन्तितभाववासितः सन् त तमेव=अन्त स्मृतमेवामुक्रममुक्तं भावम् एति=प्राप्नोति । इत्यर्थः । १ । इत्यादि वचनमुक्तम्, अतः परलोकोऽस्तीति स्वीकरणीयम् । एवं श्रुत्वा=सामान्यतः श्रवणगोचरीकृत्य, निशम्य=विशेषतो हृदयधार्य छिन्नसंशयः सन् मेता-योऽपि निशतशिल्पैः प्रव्रजितः । १० ।

क्यों कि वेदों में कहा है कि विज्ञानघन आत्मा ही इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं भूतों में लीन हो जाता है, परलोक नहीं है, इत्यादि । (इस वाक्य का विवरण इन्द्रभूति के प्रकरण में किया जा चुका है, वहीं से जान लेना चाहिए) हे मेतार्य ! ऐसा तुम मानते हो सो मिथ्या है । परलोक का अदृश्य अस्तित्व है । अगर परलोक न होता तो तत्काल जन्मे हुए बालकों को माता के स्तन का दूध पीने की बुद्धि कैसे होती ? परलोक स्वीकार करने पर तो पूर्वभ्रम के दुग्धपान का संस्कार से माता का स्तनपान करने की चेष्टा संगत हो जाती है । तुम्हारे सिद्धान्त में भी कहा है-हे अर्जुन ! जीव मरणकाल में जिन-जिन भावों का स्मरणचिन्तन करता हुआ शरीर का परित्याग करता है, वह अन्तिम समय में चिन्तन क्रिये हुए उन्हीं भावों से भावित-वासित होकर उसी-उसी भाव को प्राप्त करता है । इत्यादि । अत एव परलोक को स्वीकार करना चाहिए ।

વિજ્ઞાન ઘનન આત્મા એ ભૂતોથી ઉત્પન્ન થઇને ફરી એજ ભૂતોમા લીન થઈ બન્ય છે, પરલોક નથી, ઈત્યાદિ (આ વાક્યનું વિવેચન ઇન્દ્રભૂતિના પ્રકરણમા કરાઈ ગયું છે તેમાંથી બેઈ લેવું.) હે મેતાર્ય ! એવું તમે માનેા છો તે વ્યર્થ છે પરલોકનું અસ્તિત્વ બરેર છે બે પરલોક ન હોત તો તુરતના જન્મેલા બાળકને માતાના સ્તનનુ દ્ધ પીવાની બુદ્ધિ કેવી રીતે હોત ? પરલોક સ્વીકારતા તો પૂર્વભવના સંસ્કારથી માતાનુ સ્તન-પાન કરવાની ચેષ્ટા સંગત થઈ બન્ય છે. તમારા સિદ્ધાંતમા પણ કહેલ છે-‘હિ અર્જુન ! એવ મરણકાળે બે બે બાવેનું સ્મરણ-ચિન્તન કરતા શરીરનો પરિત્યાગ કરે છે, તે અન્તિમ સમયમાં ચિન્તિત ભાવેથી ભાવિત-વાસિત થઇને તે તે ભાવને પ્રાપ્ત કરે છે” ઈત્યાદિ. તેથી પરલોકને સ્વીકારવો બેઇએ.

तं मेतार्यं प्राप्नोति भुत्वा एकाग्रः पण्डितः प्रमातामिषोऽपि=प्रमासनामकोऽपि त्रिषवश्चिप्यसिरोतो निजसंभ्रयापनयनार्ये=स्वसंभ्रयच्छेदनायै प्रहसमीये=भी मारावीरप्रहृषां समनुभासाः=समागतः । प्रमुखा च स प्रमाम् प्रामारितः=उक्ताः-भो प्रमास ! तव मनसि अयं संखयो वर्धते-यत् निर्वाणम् अस्ति ! नास्ति वा ? इति । यदि निर्वाणमस्ति, कदा तन्निर्वाणं किं संसारमात्रं एव=वस्तुतिष्ठमणलक्षणसंसारोऽप्राप्तिरेव-भुदात्मस्वरूपेऽवस्था-नमव ? अथवा-दीपदिवाया नाश इव=सर्वथाऽभाववत् जीवस्य नाशः=सर्वथाऽभाव एव निर्वाणम् ? अथ द्वित्रिषे एव-यदि संसारामात्रो निर्वाणम्-इति प्रथमः पक्षो मन्यते, कदा तद् वेदविषय मवति । यतो वदेत् कथितम्-“अराम्यं वै तत्सर्वं यदेतद्विजिज्ञोऽग्रम्” इति । अयमर्थः-यदेतत्-अनेकविधम् अन्निर्वाणं तत्सर्वं नरामयम्=नरामरलनिमित्तमिति । अनेन वैश्ववर्तेन जीवस्य संसारामात्रो न भवतीत्युपलभ्यते । यदि इत्त प्रकार सुनकर और विस्तार रूप से अन्तःकरण में धारण करके मेतार्य भी छिन्नसंभ्रय होकर चीनसों दिव्यों के साथ दीक्षित हो गय । १० ।

मैलाव को दीक्षित हुआ सुनकर ग्यारहवें प्रभास नामक पंडित भी सीन्सी अन्वेवासियों सहित अपने मंडप को दूर करने के लिए श्रीमहावीर स्वामी के समीप पहुँच। भगवान् प्रभास से बोले—हे प्रभास ! तुम्हारे मन में यह संस्य है कि निर्वाण है अथवा नहीं ? अगर निर्वाण है तो क्या वह संसार का अभाव ही है, अर्थात् चार गतियों में अमण का संसार का रुक जाना—शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हो जाना ही है ? अथवा दीपक की सिला के नाश के समान जीव का सर्वथा अभाव हो जाना ही निर्वाण है ? इन दोनों बातों में स यदि संसार का अभाव निर्वाण है, यह पहला फल माना जाय तो वह वेद से विरुद्ध है, क्योंकि कि वेदों में कहा है कि—‘यह जो नाना प्रकार का अग्नि होत्र है, वह सभी जरा और मरण का कारण है।’

आ प्रभावे आकर्षणेने जने विरोध रूपे वाढवण्याचा भारचु करीने सेवास ह्या सधर्मसिद्ध यथाने नवसे।
 निज्ये। आये दक्षित हस्य. १०

સેવાપત્રને દીક્ષિત કરેલ સર્જણીને અગિયારમા પ્રવાસ નામના પદિત પણ તપસી અતેવાસિધો સાથે
 પોતાના સંસ્કરણ દ્વારા કરવાને માટે શ્રીમદ્વાનીર સ્વામી પામે તથા ભગવાને પ્રભાસને કહ્યું-હે પ્રવાસ! તમારા
 મનમાં કો સંકલ્પ છે? નિર્વોળ છે કે નથી? એ નિર્વોળ હોય તે મું તે સચારનો અભાવ જ છે કોટલે
 દે વ્યાર અતિથોમાં બમણુ રૂપ ચચારનુ અગ્રી જનુ-કુદ આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિત થવુ જ છે ને? અથવા રીપકની
 ન્યોતના નાચની નેમ છવેના અથવા અભાવ થઈ જવો એ જ નિર્વોળ છે! એ જન્મે પશિમાંથી એ સચારનો
 અભાવ નિર્વોળ છે એ પહેલો પણ માનવામાં આવે તો તે વેદની વિરુદ્ધ છે કારણ કે વેદોમાં કહેલું છે કે-

दीपशिखाया नाश इव जीवस्य नाशो निर्वाणम्-इति द्वितीयः पक्षो मन्यते, तदा जीवभावः=जीवस्य सर्वोच्छेदः प्रसज्यते? इति तत्र निर्वाणविषये संशयोऽस्ति। तन्मिथ्या=तदेतत्तत्र संशयजालं मिथ्याज्ञाननिवृत्ति-भित्तम्। यतो-निर्वाणमिति मोक्ष इति च एकाग्रौ। मोक्षस्तु वदस्यैव भवति। जीवस्तु कर्मभिः=अनादिकालतो ज्ञानावरणीयादिकर्मभिर्वद्धः, अतः प्रयत्नविशेषात्तस्य मोक्षो भवत्येव। अस्य विषये मण्डिकप्रश्ने सर्वं कथितं, तत एव त्वया धारयितव्यम्। नाहमेव ब्रवीमि, तत्र गातेऽप्युक्तम्-‘द्वे ब्रह्मणी’ इत्यादि। अयमर्थः-परम्

इस वेद-वाक्य से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि जीव के ससार का अभाव हो ही नहीं सकता। अगर दीपशिखा के नष्ट हो जाने के समान निर्वाण-मोक्ष-माना जाय तो जीव के सर्वथा अभाव की अनिष्टावृत्ति होती है। निर्वाण के विषय में तुम्हें यह संशय मिथ्याज्ञान से उत्पन्न हुआ है। क्योंकि कि निर्वाण और मोक्ष, दोनों एकार्थवाचक शब्द हैं। मोक्ष वद्ध का ही होता है। जोव अनादि काल से ज्ञानावरणीय आदि कर्मों से वद्ध है, अतः विशेष प्रयत्न करने से उसका मोक्ष होता ही है। उस विषय में मण्डिक के प्रश्न में जो कहा है, वह सब यहाँ भी समझ लेना चाहिए।

अभिप्राय यह है कि ज्ञानावरणीय आदि कर्मों से जब आत्मा मुक्त हो जाता है तो उस में औपाधिक भाव-कर्मजनित विकार भी नहीं रहते। उस समय आत्मा अपने वास्तविक शुद्ध चैतन्यस्वरूप को प्राप्त करता है। जन्म जरा और मरण से सर्वथा रहित हो जाता है। यही मोक्ष का स्वरूप है। ‘अग्निहोत्र जरा मरण का कारण है’ इस कथन से यह मिद्ध नहीं होता कि जीव के जरा-मरण का अभाव हो ही नहीं

ले विविध प्रकारना अग्निहोत्र छे ते पथा जरा अने भरखुनु कारखु छे.” आ वेदवाक्यथी तो जे न सिद्ध थाय छे के छवने संसारने अभाव छोई शकतो न थो ले दीप-शिख ना नाश थवा सभान निर्वाण-मोक्ष बनाय तो छवना सर्वथा बलावन्ती अनिष्टावृत्ति नडे छे. निर्वाणना विषयमां तभने आ भंशय छे. आ मथय मिथ्याज्ञानधी उत्पन्न थयो छे. कारखु के निर्वाण अने मोक्ष जे अन्ने जेकार्यवाचक शब्दो छे. मोक्ष गछने (अंधायेन) न थाय छे छव अनादि क्षणथी ज्ञानवरणीय आदि कुत्रोथो गछ छे तेथी विशेष प्रयत्न करवाधी तेने मोक्ष थाय छे न. आ विषयमां मडिकना प्रश्नमा ने कछुं छे ते गछुं अर्धी पखु सभछ देवुं लेछथे.

तात्पर्य जे छे के ज्ञानवरणीय आदि कुत्रोथी नथादे आत्मा मुक्त थई जाय छे तो तेमां औपाधिक भाव-कर्मजनित विकार पखु रहेतो नथी ते सभये आत्मा पोताना वास्तविक शुद्ध चैतन्य स्वरूपने प्राप्त करी ले छे. जन्म, जरा अने भरखुथी तदन रहित थई जाय छे जे न मोक्षनुं स्वरूप छे. “अग्निहोत्र जरा-मरणनुं कारखु छे” आ कथ थी जे साक्षित थनुं नथी के छवने जरा-मरणने अभाव थई शकतो न थथी. आ वाक्यमां तो प्रति-

भारं वेति द्वे द्रमणी वेदितव्ये-ब्रह्मद्वयं ब्राह्मणमिति । तत् द्विविधे ब्राह्मणि यत् परं ब्रह्म तत् सत्य-ज्ञान-नन्तस्वरूपम् । तदुक्तं वेदे-“सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” इति । यदि जीवस्य मोक्षो न स्यात्तदा सत्य-सत्य-ज्ञानानन्तस्वरूपमिति न स्यात् । ततश्च तत् प्रमाणत्वेनाभिमतानां चेदानां क्वचनं कथं संगच्छेत ? अनेन वेद-प्रवनेन तु मोक्षस्य सत्ता सिध्यति । अतः सिद्ध मोक्षोऽस्तीति । एवं प्रमोक्षवचनं भुत्वा छिन्नसंक्षयः स प्रमासोऽपि भिद्यतद्विद्यैः सह प्रष्टव्याभ्यं प्रायजितः ॥१॥

सकता। इस वाक्य में तो यह प्रतिपादित किया गया है कि अग्निहोत्र बरा-बरण के अन्त का कारण नहीं, मरुत बरा-बरण का कारण है। इस में ध्यान, अध्ययन, तपश्चरण आदि कारणों से होनेवाले बरा-बरण के अभाव रूप मोक्ष का निषेध नहीं किया गया है। अग्निहोत्र आरंभ-समाप्ति एवं हिसाजनिष्ठ तथा स्वर्ग और वैभव आदि की कामना से प्रेरित अनुष्ठान है, यह एवं उसे बरा-बरण का जो कारण कहा है सो उचित ही है। मौन सम्पन्न और सम्पन्न चरित्र से होता है, उसका निषेध उक्तवाक्य में नहीं है। "मैं ही ऐसा करता हूँ, तो नहीं; हमारे अन्त में भी कहा है—बरा-बरण के—

एन दातों में से जा पर ब्रह्म है यह सत्य, ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप है। वेद में भी कहा है—सत्यं ज्ञान मन्वं ब्रह्म ।' आर जीव को मात्स न होवा वो उसे सत्य, ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप की भाँति कैसे होवी? ऐसी स्थिति में समाप्त माने हुए तुम्हारे वेदों का कथन किस प्रकार संगत होगा? वेद के इस ज्ञान को मात्स की सच्चा ही होवी है। अतः मोक्ष है समाप्त ।

પદન કાચેલ છે કે અસિદ્ધોત્તર-અરણ્યના અવનુ બારણું નથી, પ્રવૃત્તિ બરા-અરણ્ય કારણ છે એમાં ક્યાન, અધ્યવન, વપકાર્ય આદિ કારણોથી યનાર બરા-અરણ્યના અભાવ રૂપ શોધના નિરેષ કારણે નથી અસિદ્ધોત્તર બારણ ને કારણ કહેલ છે તે ચોક્કસ છે શોધ સરખાઈ શાન અને સરખાઈ શાનથી મળે છે તેના નિરેષ કારણ-અરણ્ય અને અરણ્ય નથી કે જો એમ કહી છ કોટક જ નથી પણ તમ સંચારમાં પણ કહી છે-અરણ્ય ને લેલ છે-પર પ્રાપ્તિનથી જાણ" એ જાણે શોધ ન લેલ છે તે સત્ય, શાન અને અનત સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ કેવી રીતે થાય ? એવી સ્થિતિમાં પ્રમાણરૂપ અનેક વખતો વેળો કમન કમન રીતે મળત રહેશે ? વેળના આ વાક્યથી તે શોધની મર્યાદા ન મળે શાય છે તેથી શોધ છે તે નિષ્કર્ષ સિદ્ધ થાય છે અરણ્યના આ પ્રકારના વચ્ચેના અસિદ્ધોત્તર અપ્રાપ્તિ

अत्र-एतेषामेकादशगणधराणां सशयविषये संग्रहणीगाथाद्वयम्—‘जीवे’ इत्यादि। इन्द्रभूतेः जीवे-जीव-विषये संशयः १। कर्मविषये अग्निभूतेः २। तज्जीव तच्छरीरे=तज्जीवतच्छरीरविषये संशयो वायुभूतेः ३। भूते=पञ्चभूतविषये संशयो व्यक्तस्य ४। परमये तादृशकजनमयोर्नो यो जीव इह गवे यादृशो भवति स परमवेऽपि तादृश एव भवति, इति त्रिपयकः संशयः सुधर्मणः ५। वन्धमोक्षे=वन्धमोक्षविषये मण्डिकस्य संशयः ६। देवविषये सशयो भौर्यपुत्रस्य ७। नैर्यिके=नारकविषये संशयोऽकम्पितस्य ८। पुण्ये=पुण्यविषये-उपलक्षणात् पापे च संशयः अवलम्बातुः ९। परलोके=परलोकविषये संशयो मेतार्यस्य १०। तथा च निर्वाणे=मोक्षविषये संशयः प्रभासस्य ११। इति।

एते=इन्द्रभूत्यादिप्रभासान्ता एकादशापि गणधराः स्व स्व संशयच्छेदे सति गणधरत्वं प्राप्ता इति।

प्रभास भी छिन्नसंशय होकर अपने तीनसौ शिष्यों के साथ प्रभु के पास प्रव्रजित हो गये।

इन ग्वारह गणधरों के संशय के विषय में दो संग्रहणी गाथाएँ हैं—(१) इन्द्रभूति को जीव के विषय में संशय था। (२) अग्निभूति को कर्म के विषय में संशय था। (३) वायुभूति को वही जीव है और वही शरीर है, ऐसा संशय था। (४) व्यक्त को पाँच भूतों के विषय में संशय था। (५) सुधर्मा को यह संशय था कि जो जीव इस भव में जैसा है, परभव में भी वैसा ही जन्मता है। (६) मण्डिक को वन्ध और मोक्ष के विषय में संशय था। (७) भौर्यपुत्र को देवों के अस्तित्व के विषय में संशय था। (८) अकम्पित के नारकों के विषय में संशय था। (९) अवलम्बाता को पुण्य-पाप संबंधी संशय था। (१०) मेतार्य को परलोक में संशय था और (११) प्रभास को मोक्ष के अस्तित्व में संशय था। इन्द्रभूति से लेकर प्रभास

तक संशयरहित रहने के लिये साधे प्रभु पास से शिक्षा ली थी।

ये अगिथार गणधरों के संशयना विषयमा ये संग्रहणी गाथाओं छ—(१) इन्द्रभूतिने एवना विषयमा संशय छतो। (२) अग्निभूतिने कर्मना विषयमा संशय छतो। (३) वायुभूतिने ओव एव छे अने ओव शरीर छे ओवो सशय छतो। (४) व्यक्तने पांच भूतना विषयमा संशय छतो। (५) सुधर्माने ओवो सशय छतो छे ओव आ लवमा ओवो छे, परलवमा पखु तेवोव जन्मे छे। (६) भंडिकने बंध अने मोक्षना विषयमा संशय छतो। (७) भौर्यपुत्रने देवना अस्तित्वना विषयमा संशय छतो। (८) अकम्पितने नारकीना विषयमा संशय छतो। (९) अवलम्बाताने पुन्य-पापना विषयमा संशय छतो। (१०) मेतार्यने परलोकने विषे संशय छतो। (११) प्रभासने मोक्षना अस्तित्व विषे संशय छतो। इन्द्रभूतिथी भांडीने प्रभास सुधीना ते अगिथारे गणधर पोतयेताने संशय

वालं अग्रेऋतं अन्नाओ वहूओ उगगभोगरायणामच्चभिरिणं कन्नाओ पव्वावेइ । पुणो य वहवे उगगभोगाङ्कुलप्यधूरा
 नरा नारीओ य पंचाणुव्हयं सत्तसिक्खवाव्हयं एवं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिय समणोवासया जाया ।
 तएणं से समणे भगवं महावीरे तित्थयर नामगोय कम्मक्खवण्हं समजसमणीसावयसाविथारूवं चउन्विहं
 संयं ठाविय इंदभूइपरिभिइणं गणहराणं—‘उप्पन्ने वा विगमे वा धुवे वा’ इय तिवइं दलइ । एयाए तिवइए गणहरा
 दुवालसंगं गणिपिडणं विरयंति । एवं एगारसण्हं गणहराणं नव गणा जाया तं जहा—सत्तण्हं गणहराणं परोप्पर-
 भिन्न वायणाए सत्तगणा जाया । अर्कपियायलभायाणं दुण्हं पि परोप्परं समाणवायणयाए एगो गणो जाओ ।
 एवं मेयज्जपभासाणं दुण्हं पि एगवायणयाए एगो गणो जाओ । एवं नव गणा संभूया ।

तएणं से समणे भगवं महावीरे मज्झिम पात्तापुरोओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमिसा अणेने भविए
 पडिवोइमाणे जणवयविहारं विहरइ । एवं अणेनेसु देसेसु विहरमाणे भगवं जणाणं अण्णाणदेणमवणीय ते
 णाणाइसंपत्तिजुए करीअ । जहा अवरम्मिपगासमाणो भाणू अधयारमवणीय जगं हरिसेइ तहा जगभाणू भगवं
 मिच्छत्तांधयारमवणीय णाणप्पगासेण जग हरिसीअ । भवक्खवपडिए भविए णाणरज्जुणा वाहिं उद्धरीअ । भगवं
 जले धरो व असोइधम्मदेसणाभियधाराए पुहविं सिंचीअ ।

एवं विहारं विहरमाणस्स भगवओ एगचत्तालीसं चाउम्मासा पडिणुणा, तं जहा—एगो पढमो चाउ-
 म्मासो अत्थियगामे १ । एगो चंपा णयरीए २, दुवे पिट्ठचंपाणयरीए ४ । वारस वेसाली णयरी वाणिय-
 गामानिस्साए १६ । चउइस रायगिह णगर नालदणाम य पुरसाहानिस्साए ३० । छ मिहिलाए ३६ । दुवे
 भहिलपुरे ३८ । एगो आलंभियाए णयरीए ३९, एगो सावथीए णयरीए ४० । एगो वज्जभूमि नामगे अणा-
 रिय देसे जाओ ४१ । एवं एगचत्तालीसा चाउम्मासा भगवओ पडिणुणा ४१ । तएणं जणवयविहारं विहरमाणे
 भगवं अपच्छिमं वायालीसइमं चाउम्मासं पावापुरीए हत्थिपालरणो रज्जुगसालाए जुणाए ठिए ॥सू०११४॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये चन्दनवाला भगवतः केवलोट्पत्तिं विज्ञाय प्रव्रज्या ग्रहीतुमुत्कण्ठिता
 सती प्रभु समीपे संप्राप्ता । सा च प्रभुमादक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि । उस काल और उस समय में चन्दनवाला भगवान् महावीरप्रभु को
 केवली हुए जानकर दीक्षा ग्रहण करने के लिये उत्कण्ठित हुई प्रभु के समीप पहुँची । उसने प्रभु को आदक्षिण-

भूणेतो अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि ते काले अने ते समये चंदनवाला भगवानने देवण ज्ञाननी प्राप्ति
 अर्थ ओम नमो दीक्षा ग्रहण करवा उद्यत बनी, अने प्रभुनी पासे आवी पडोअी. तेथीको प्रभुने आदक्षिण प्रदक्षिण-

एतमगदीर-इ-जमि सन्तु महन्त ! मंसारमगादिनाजई देवानुमियाणामन्तिके मय
मगान् महाशीरः ती चन्दनवानामग्रे कृत्वा अन्या बहीः उग्रमोगराजन्यामात्यमयुती
पुनश्च १८८ उग्रमोगादिदृन्मयुता नरा नायक पञ्चाशुनिक सप्तशिश्राविकम् एवं द्वाश
भामनोमगदा जाला ।

बल्लु श्रमणो
५३: मयानपति ।
विषम प्रविषय

ननु तनु म धमणा मगवान् महाशीरस्तीर्थस्तनामयोगकर्मसंस्कार्ये श्रमणधमणी धावकभ्रात्रिकारूपं
चतुर्भिर् मीं व्यापयित्वा इन्द्रयुविमयुधियो गणपरेभ्य - "उत्समो वा विगमो वा धुको वा" इति त्रिपदी
इदानी । एतया त्रिपदा गणपरा द्वाद्वाद गणितिकं विरचयन्ति । एवं एकादशानां गणपरानां नव गणा
मद्विजिह्वार इन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया- 'मगवान् ! ससार के मय से उद्दिग्न होकर

मे दसानुसिप क मपीय मगगा भगीकार करना चाहती हैं । तब धमण मगवान् महावीरने चन्दनबाला को
भाग करत और भी बहुत मी उग्रवंत, मोगवंत, राजन्वंत की तथा अमात्य आदिकों की कन्याओं को
नीतित किया । फिर बहुत मे उग्रद्वय, मोगद्वय आदि में जन्म हुए नरों तथा नारियों ने पाँच अशुव्रत एवं
मान विहाय गमन-चार मगर क दुरस्य धर्म का स्वीकार किया, और उन्होंने धावक-भ्रात्रिका का पद पाया ।

गन्धर्व धमन मगवान् महावीरने मार्यकर नाम गोन का तय करने के लिए साधु, साध्वी भावक
और धारिण कर चतुर्भि मय की स्थापना करके इन्द्रयुधि आदि गणपरी को 'उत्साह, व्यय और धीव्य'
जिन प्रकार की त्रिपदी मदान की । इस त्रिपदी के आधार से गणपरीने द्वाद्वाद गणितिक की रचना की ।

पूरे १८८ नमस्कार की निवेदन हुआ है- के अजयन्त । स साधो उद्दिग पायी आपनी सन्धीय रीक्षा अजीशार
इत्या आशु १३ अमलु अमवाने अमसर अक्षी स भति आपी अने अदवणाली रीक्षा यत्तं बली उग्रवशी,
वेमवकी अने धावक-सन्धी कन्यामे तम न अभास विदेनेनी पुत्रीकोले ससार छोडी प्रमगवा अजीशार की,
अ उग्र ण उग्रद्व, मोमद्व विदेनेनी नर-पारीकोले पाय अशुव्रत अने सात शिक्षावत कोम पार प्रमरणा
कनटो १८८८ १८८८ अजीशार की अने अमवाने ज्ञाया नर-पारीकोले आवड अने आविहाय अमर्यु कयु
नमस्कार-१८८८ नम-येनेना खय इत्य आरे अमवाने आशु-सन्धी अने धावि-आनिध ३४ अद्विष सपनी स्थापना
१८८८ १८८८ १८८८ विदेने विदेने अमसर देवेने उत्साह, व्यय अने धीव्यनी त्रिपदीनु प्रधान कयु" आ त्रिपदीना
आपारे अमसरमे द्वाद्वाद गणितिक रचना की

जाता., तद्व्या-समाना गणधराणा परस्परभिन्नवाचनया समगणा जाताः। अकम्पिता-ऽचलभ्रातृयोर्द्वयोरपि परस्पर समानवाचनया एको गणो जातः। एवं मेतार्यप्रभासयोर्द्वयोरपि एकत्राचनया एको गणो जातः। एवं नव गणा संभूताः।

ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरो मध्यमपापापुरीतः प्रतिनिष्काम्यति, प्रतिनिष्काम्य अनेकान् भक्तान् प्रतिबोधयन् जनपदविहारं विहरति। एनमेनेकेषु देशेषु विहरन् भगवान् जनानामज्ञानदेन्यमपनीय तान् ज्ञानादिसम्पत्तिद्युतानकरोत्। यथा-अम्बरे प्रकाशमानो भानुरन्धरारमपनीय जगद् हर्षयति, तथा जगद्भानुभगवान् मिथ्यात्वान्धकारमपनीय ज्ञानप्रकाशेन जगद् अहर्षयत्। भवकूपपतितान् भक्तिकान् ज्ञानरज्ज्वा बहिरुदधरत्। भगवान् जलधर इव असौघधर्मदेशनामृतधारया पृथिवीम् असिञ्चत्।

ग्यारह गणधरों के नौ गण हुए। वे इस प्रकार-सात गणधरों की भिन्न भिन्न वाचनाएँ होने से सात गण हुए। अकम्पित और अचलभ्राता-दोनों की परस्पर समान वाचना होने से एक गण हुआ। इस प्रकार मेतार्य और प्रभास दोनों की भी एक ही वाचना होने से एक गण हुआ। इस प्रकार नौ गण हुए।

तदन्तर श्रमण भगवान् महावीर मध्यम पावापुरी से विहार कर अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए जनपद-विहार विचरने लगे। इस प्रकार अनेक देशों में विहार करते हुए भगवान् ने लोगों की अज्ञान रूपी दरिद्रता को दूर करके उन्हें ज्ञानादि की सम्पत्ति से युक्त किया। जैसे आकाश में प्रकाशमान होता हुआ भानु अंधकार को दूर करके जगत को हर्षित करता है, उसी प्रकार जगद्भानु भगवान् ने मिथ्यात्त्व रूपी अंधकार का निवारण करके ज्ञानके आलोक से लोक को आह्लादित किया। भव रूपी कूप में पड़े हुये

आ अगीअार गणधर देवेना नव गच्छ थया सात गणुधरेनी शुद्धी वायना होवाने डारणु सात गच्छ गणुया. अक पित अने अचलभ्राता यन्नेनी परस्पर सभान वांयना होवाथी तेओनेा ओक गच्छ थये। आ प्रकादे मेतार्य अने प्रभास यन्नेनी ओक ज वायना होवाथी तेभेना पणु ओक गच्छ गणुयो. आ प्रकादे अगियार गणुधरेना नव गच्छ थया

त्यारपल्ली श्रमणु भगवान् महावीर मध्यम पावापुरीथी विहार करी अनेक भन्थ लुयेने प्रतिगोध देता देता जनपदभां वियरवा दाअ्या आ प्रभाणु अनेक देशेभा विहार करी लगवाने होडोनी अज्ञानइपी दरिद्रता हर करी. अने गानाहि संपत्तिनु दान इयुं. जेभ आकाशभां प्रकाशित थो। सूर्य अंधकारने हर करी जगतने आनंदित यनावे छ तेभ जगतभानु लगवाने [मथ्यात्वइपी अंधकारनु] निवारणु करी ज्ञान द्वारा लोकने आह्लादिक यनावे।

एकम् चित्तं विहारी भगवत्" एकस्मिन्निदित चतुर्मासाः प्रतिपूर्णाः। तपस्या-एकः प्रथम सो-
 ऽस्तिग्रहमासे १। एकस्म्यनगर्याम् २, द्वौ पृष्ठव्यायानगर्याम् ४। द्वादश वैशाखीनगरी चाणिनग्रामनिशा-
 याम् १६। पतुर्दश रामणनगरे नालन्नानामकपुरासातानिभ्याम् ३०। पट्टमिथिलायाम् ३६। द्वौ मरिचपुरे ३८।
 एक आनन्धिकायां नगर्याम् ३९। एकः श्रावस्त्यां नगर्याम् ४०। एको वज्रभूमिनामके अनार्यदेशे जातः ४१।
 उतः मनु जनपदविहारं विहरन् भगवान् अपश्चिमं द्विषत्वारिंशच्चर्मं चतुर्मासे पाषाणपुर्यां हस्तिपालनारण्य
 रज्जुकनानायां नीर्णयां स्थितः ॥मृ०११४॥

टीका—'तेन' काष्ठेने केनं समरणे' इत्यादि। तस्मिन् काष्ठे तस्मिन् समये-वन्दनवाला भगवत्तम्
 भीरीरस्तामिनः कैपमोरपरि विद्याय प्रदग्ग्यो=दीर्घां प्रीतिम् उत्कृष्टिष्ठा=उत्सुका सती प्रसुप्तमीये=धीवीरस्वामि
 मर्त्यो का ज्ञान की दोर से बाहर निकाला। भगवान् ने मेघ की भाँति अमोघ चर्मोपदेश की स्मृतमयी
 पाठा से पृथ्वी को सिंचन किया। इस प्रकार विहार करते हुए भगवान् के एकतालीस चतुर्मास पूर्ण हुए।
 ४ इस प्रकार-पहला चतुर्मास अस्विक ग्राम में (१), एक चम्पनगरी में (२), दो चतुर्मास पृष्ठव्या में (४),
 चार वैशखी नगरी और चाणिक्य ग्राम में (१६), चौदह रामपुर नगर में-नालंदा नामक पाठे में (३०),
 छह मिथिया में (३६), दो मरिचपुर में (३८), एक आनन्धिका नगरी में (३९) एक श्रावस्तो नगरी में (४०),
 और एक वज्रभूमि नामक अनार्य देश में (४१), हुआ। इस प्रकार भगवान् के एकतालीस चौमासे व्यतीत
 हुए। तत्पश्चात् जनपद विहार करते हुए भगवान् अन्तिम वयसीसदो चौमासा करने के लिए पाषाणपुरी में
 हस्तिपान रामा के पुराने जुगोवर (अकतस्यान) में स्थित हुए ॥मृ०११४॥

अनर्थकी इषामां पठेका अन्येने ज्ञानधरो दोरी वदे लंदार हाथाल अजयने मेवनी भाइक अभिषेचये धर्मोपदेशनी
 भास वदे पूथ्वीने सिंचन ४३

जय प्रभावे निरतर विहार करता, अजयने कोटवालीस चतुर्मास पूर्यं ४३। तेन चतुर्मास-नीये सुखल छः—
 पठेक वैश्यायु अस्थि आभर्मा (१), कोक च पाननगरीमां (२), दो पृष्ठ व पाननगरीमां (४), पार व्यापुर्मास
 वैशाखी नगरी भने चण्डिग्न आभर्मा (१६) कोक व्यापुर्मास शक्युति नगरीना नादवा नामना पाथर्मा (३०), छ
 वैश्यास मिथिलाभा (३६) जे अरिचपुरमां (३८), कोक आनन्धिका नगरी (३९), कोक श्रावस्ती नगरीमां (४०), अने
 कोक वज्रभूमि नामना अनार्य देशमां (४१) त्पारनाह विहार करता करता अजयने अन्तिम कोटवालीस चतुर्मास
 पाषाणपुरीमां, हस्तिपालन रामनी भूमी हाथुशाण (अकतस्यान)मां ४३ (मृ०११४)

निकटे संप्राप्ता सा च प्रभुम् आदक्षिणप्रदक्षिणम्=अञ्जल्लिपुट वद्धा तं वद्धाञ्जल्लिपुटं दक्षिणकर्णमूलत आरभ्य ललाटप्रदेशेन वामकर्णांतिकेन चक्राकारं त्रिः परिभ्राम्य ललाटदेशे स्थापनरूपं करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम्=अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत्-हे भदन्त ! संसारभयोद्विग्ना=भवभयव्रस्ताऽहं देवानुग्रियाणां भवताम् अन्तिके=समीपे प्रव्रजितुं=दीक्षां ग्रहीतुम्-इच्छामि खलु । ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरः तां चन्दनवालां अग्रे=पुरतः कृत्वा अन्याः=चन्दनवालातिरिक्ताः वद्मीः=अनेकाः उग्रभोग राजन्याऽऽ-मात्यप्रभृतीनाम् कन्याः प्रव्रजयति=दीक्षयति । पुनश्च वहवः=अनेके-उग्रभोगादिकुलप्रभृताः-नरा नार्यश्च पञ्चा-पुन्रक्तिकं सप्तशिक्षाव्रतिकम् एवम्=अनेन प्रकारेण द्वादशविधं=द्वादशप्रकारकं गृहिधर्मं प्रतिपद्य=स्वीकृत्य श्रमणोपासकाः=श्रावकाः जाताः ।

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में भगवान् महावीर स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई जानकर चन्दनवाला दीक्षा ग्रहण करने के लिए उत्सुक होकर भगवान् के निकट पहुँची । उसने भगवान् को आदक्षिण प्रदक्षिण की-हाथजोड़ कर, जुड़े हुए हाथों को दाहिने कान से आरंभ करके ललाट की तरफ से बाँये कान के पास तक चक्राकार तीन बार घुमाकर ललाट-प्रदेश पर स्थापित किया । आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके आगे कहे हुए वचन कहे-‘हे भगवन् । संसार के भय से त्रास कौ प्राप्त मैं आप-देवानुग्रिय के समीप दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ । तब श्रमण भगवान् महावीरने चन्दनवाला को आगे करके चन्दनवाला के अतिरिक्त और भी बहुत-सी उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल (क्षत्रियकुल) की तथा अमात्य आदि की कन्याओं को दीक्षा प्रदान की । तत्पश्चात् उग्रकुल, भोगकुल आदि कुलों में जन्में हुए अनेक नर-नारियोंने पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत रूप द्वादश प्रकार के गृहस्थ धर्म को अंगीकार किया और श्रावक-श्राविका बने ।

विशेषार्थ—अथपणुभा ७ स सारनेो दु’अहु अतुलव भणता, यइनणादामां तीव्र वैशगथनी धारा छटी. संसार तरक्षनेो वेग धटवा मांइये ! भगवानने आहारदान आभ्या पछी, तेनुं भन भयन्त्या तरक्ष रेछुं छुं’ ते आण ते सभये भगवानने डेवत्तज्ञान उत्पन्न थयुं’ जण्णी, यंइनणादानी दीक्षा भाटेनी तादावेही जणी. अने भगवाननी पासे आची दीक्षानी भागण्णी करी. भगवाने तेने दीक्षा आयी. यंइनणादानी पाछण, उअकुण, लोअकुण आदिनी छेन-हिकरीआ, बहुआरे, माताआ, भौदाआ अने कुमारिकाआये पणु दीक्षा दीधी जेआे दीक्षा देवा असासअर्थ’ इता तेआये पांथ आयुवत अने सात शिक्षाव्रत, अेभ पार प्रहारनेो गृहस्थ धर्म’ अंगीकार करो आवड श्रावका थया.

ततः तल्ल सः धमणो मगवान् महावीरः तीर्थंकर नामगोत्रमसंपणार्थः पूर्वमनोपासितस्य गोत्रकर्मको निर्गन्धार्यं धमज-धमणी आचक-भाषिकास्यं चतुर्विधं=चतुष्पकारकं सङ्गं स्यापयित्वा इन्द्रभूतिभूतिभ्यः= इन्द्रभूत्यादिभ्यो गणपरेभ्यः 'उत्पन्नो वा विष्णो वा ध्रुवो वा' इति=स्याकारिकां त्रिपदी=पदत्रयीं ददाति । एतथा=मनया त्रिपया गणधरा=इन्द्रभूत्यादयः द्वादशान् गणिष्टिक विरचयन्ति । एवम्=इत्यम् एषाद्वानां

एतत्पदात् धमज मगवान् महावीर ने पूर्ववद् गीर्थंकर नामगोत्र कर्म का सप्त करने के लिए, धमज, धमणी, आचक और भाषिका रूप बार प्रकार के संप की स्थापना करके इन्द्रभूति आदि गणधरों को उत्पाद, व्यय और प्रौढ्य की त्रिपदी प्रदान की । अर्थात् गणधरों के समस्त यह प्रकृष्टता करने हैं कि जगत् के समस्त चेतन, अचेतन, सूर्य, अपूर, सूक्ष्म, सूक्ष्म आदि पदार्थ पर्याय की अपेक्षा उत्पत्तिशील और व्ययशील हैं तथा इष्ट्य की अपेक्षा प्रौढ्यशील हैं । प्रत्येक पदार्थ प्रवृत्तिगण अपने पूर्वपर्याय का परित्याग करता है, उनपर पर्याय की प्रवृत्ति करता है, फिर भी इष्ट्य से उर्जा का रूपों रक्ता है । प्रीति का मनुज्य-पर्याय की अपेक्षा किनाह होता है, वेव-पर्याय की अपेक्षा उत्पाद होता है, किन्तु आत्मदृष्ट्य वरी का वरी बना रहता है ।

इस त्रिपदी को प्राप्त करके इन्द्रभूति आदि गणधरों ने गणिष्टिक रूप द्वादशीगी-आचार आदि बार वगैरों की रचना की । अर्थात् गणधर ऐसे मेघावी, धारणाशक्तिसम्पन्न तथा विचित्र बुद्धि के पत्नी ये कि मगवान के इस दृष्ट-वाक्य को समग्र कर उन्होंने उसे अत्यन्त विस्तृत रूप प्रदान किया और वे बार

अन्याने साधु आर्षी, आचक, भाषिक रूप अतुविध सवनी स्थापना करी हैनवतान धर्ता, सर्वं एतद्वज्जो निभूज्यो कर्त्तव्य है जहां आर्षी अतुविध सवनी स्थापना करानी एतल अजवानने हैम सर्व आर्षी करे ? तेदा अजवानभां जे है, आ स्थापना एतज्जपुत्तं करवानां आर्षी न करी परतु अजवानने, पूर्वजने ने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जनं करुं' एतु तेभां तेदा इणद्वये 'वीर्य' आवावानु एतु तेभी आ 'वीर्य नी स्थापना पूर प्रयोगादि करेना उदये कर्त्त

पणी प्रभुको जसुधर देवाने निपरीतु हान करुं' आ त्रिपदी कोरदे तल्ल परदे जेपां है-उत्पाद, व्यय, जने प्रोढ्य उत्पन्न कोरदे ईत्यदि, अक्ष कोरदे नाश जने प्रोढ्य कोरदे उपाधु-रक्षित्वा । आ त्रिपदी व्यापत्तां, अजवानने निरुपसु करुं' है अजतना अजतन पदाशीनी, जेवा है अजतन, अजितन, अर्त्त, अमूर्त्त साधु, है स्वयं विजेश्वरी तल्ल अजतन साधु करे छे आ ज्वरसाजाने, जैन-पाणिनाथिक अजोभां 'अर्षी' करेवाभां आवे छे, आ पचायि, अर्षी करेवा है छे पदाश्वनी अजवाती करे छे, आजगनी अर्षी नाश पाये छे जने नवी उत्पन्न साधु छे जहां ने इत्य अर्षित आ पचायि उत्पन्न जने नाश साधु छे, ते इत्यभां छे छे पण ऐश्वरीय साधु नशी जने इत्य

ગળધરાણામ્, इन्द्रभूत्यादोना, नव गणाः जाताः । तद्यथा-सप्तानाम्=इन्द्रभूत्य १,-निभूति २-गङ्गभूति ३-व्यक्तः-सुधर्म ४-मण्डिक ५-मौर्याणाम् ७, गणधराणां, परस्परभिन्नगणनया समगणाः जाताः । ७ । अक्रम्यता १-ऽचलभ्रान्तो २ ईयोरपि परस्पर समानगणनया एको १ गणो जातः ८ । एवं नव गणा संभूताः ।

અંશોં કી રચના કરને મેં સમર્થ હો સકે । ઇસકા અભિપ્રાય યહ મી નિકલતા હૈ કિ સમગ્ર જૈનદર્શન કા મૂલ આધાર ઉત્પાદ બ્યય ઔર ધ્રોવ્ય કી ત્રિપદી હી હૈ । ઇસ ત્રિપદી કી વિસ્તૃત ઔર વિગદ પ્રાલોચના હી જૈન દર્શન કા હૃદય હૈ । જૈનદર્શન કા સમસ્ત દાર્શનિક વિનિતન ઇસી ત્રિપદી કી શ્રૂમિકા પર પ્રતિષ્ઠિત હૈ ।

દ્રવ્યપણે ટકી રહે છે, માટે પ્રત્યેક પદાર્થ તૈવ્દશીલ હોય છે એટલે દરેક દ્રવ્ય, ઉત્પાદ, વ્યય અને તૈવ્દ્યપણે નહેકુ છે પદાર્થ' પર્યાયની અપેક્ષાએ, 'ઉત્પત્તિ' શીલ અને 'વ્યય' શીલ મનાય છે, પણ દ્રવ્ય અપેક્ષાએ, 'ધ્રોવ્ય' શીલ માનવામા આવે છે પ્રત્યેક પદાર્થ, પ્રતિક્ષણ પૂર્વ પર્યાયનો પરિચય કરે છે, ઉત્તર પર્યાયને ઝડપ કરે છે, છતાં દ્રવ્ય તેો ન્યા હોય ત્યાજ પડયું રહે છે. છલનો, મનુષ્ય પર્યાયની અપેક્ષાએ વિનાશ ગણાય છે, દેવ-પર્યાયની અપેક્ષાએ, ઉત્પાદ ગણાય છે, અને આત્મ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ, તૈવ્દ્ય મનાય છે. આ ત્રિપદીની પ્રાપ્તિ થતાં, ગણધર દેવોની જ્ઞાનશક્તિ ધણી વૃદ્ધિ પામી મૂળ તેો તેઓ જ્ઞાની હતા. જ્ઞાનના ઇન્દ્રિયક હતા, અને જ્ઞાન પિપાસુ પણ હતા ! પણ તેઓની જ્ઞાનશક્તિ, અવળી ચાલી ગયેલ હતી તેમા ભગવાનનો યોગ પ્રાપ્ત થતાં, તે જ્ઞાનશક્તિ મરણી બની, અને જ્ઞાનનો અશુદ્ધ પ્રવાહ બે અવરોધિત થયો હતો, તે ત્રિપદી દ્વારા, બહાર અસોધપણે વહેવા લાગ્યો, અને ભગવાનની વહેતી વાણીને ઝીલવા લાગ્યો. દેવલીની વાણીના સૂક્ષ્મતમ ભાવોને ઝીલવા, ગણધરેો પણ શક્તિમાન હોતાં નથી, છતાં સર્વ કરતાં, તેમની શ્રાદ્ધશક્તિ ધણી તીવ્ર હોવાથી તે મોટા પ્રમાણમાં તેમુ ઝહણ કરી શકે છે આ વાણીને, ગણધર દેવો ઝીલતા ગયા, અને તેને દ્વાદશાંગ રૂપ પેટીમાં વણતાં ગયાં, આ દ્વાદશાંગ રૂપ પેટીમા, 'આચારાગ' આદિ બાર અગોની રચના કરવામાં આવી છે ગણધર દેવો, બુદ્ધિશાળી, તીવ્ર બુદ્ધિના ધણી તેમજ તીવ્ર ગ્રહક શક્તિના ધારક હોવાથી, ભગવાનના વાક્યો અને શબ્દોને સમજી, તેમું અત્યંત વિસ્તૃત રૂપ તેઓએ બનાવ્યુ આ ઉપરથી એવો અભિપ્રાય નીકળી આવે છે કે, સમગ્ર જૈનદર્શનનો મૂળ આધાર, ઉત્પાદ-વ્યય અને ધ્રોવ્યની ત્રિપદી ઉપર છે. આ ત્રિપદીનો વિશેષ વિચાર, તેમું મંથન, અને સ્વાધ્યાય જો જૈનદર્શનનો સાર છે. જૈનદર્શનનુ સમસ્ત ચિંતન, આ ત્રિપદીની ભૂમિકા ઉપરજ કેન્દ્રિત થયું છે.

वैत संछ स भ्रमणां भगवान् महाभारो मध्यमपापापुरीतः प्रसिनिष्काम्यशिमितिनिस्सरति, प्रसिनिष्काम्यमच
प्रसिनिष्ठस्य अनेकान्वाहून् मरिचान्मध्यमजीवान् प्रतिषोषयन्मतिपुदान् कुर्वन् जनपदविहार निररति ।
एवमनेन प्रकारेण अनेकेषु देशेषु शिरान् भगवान् महावीरो जनानाम्मध्यजनानाम् अज्ञानेनैवम् अज्ञान-
रूपदादित्यम् अपनीय तान् जनान् ज्ञानादिसम्यपियुवान्ज्ञानादिसम्यपिज्ञानिः अकरोत्=कृतवान् ।

ग्यारह गजवरों के नौ गच्छ हुए । ये इस प्रकार-इन्द्रश्रुति, अग्निश्रुति, वायुश्रुति, व्यक्त, सुपर्मा,
मन्दिक्त और सौर्यपुत्र इन सात गणवरों की भिन्न-भिन्न वाचनार्थ होने से साठों के सात गच्छ हुए ।
अक्रमित और अवलधारा की वाचना मिलती थी, अत दोनों का एक ही गच्छ बना । इसी प्रकार मेवार्य
और पमास की भी एक ही वाचना थी, अत एव उन दोनों का भी एक ही गच्छ हुआ । इसी प्रकार नौ गच्छ हुए ।
तत्पश्चात् षट् भ्रमण भगवान् महावीर मध्य पाषाणुरी से विहार किये । अनेक देशों में विचरते हुए भगवान्
नीचों को मतिकोष प्रदान करते हुए जनपद-विहार विचरने लगे । अनेक देशों में विचरते हुए भगवान्
महावीरने मध्य जनों की अज्ञान रुषी दृष्टिवा को दूर करके उन्हें ज्ञानादि की सम्पत्ति से समृद्ध बनाया ।
जैसे आकाश में प्रकाशित होनेवाला सूर्य अन्धकार का विनाश करके जगत् के नीचों को इतिव करता है,
वैसी प्रकार भगवान् ने मिथ्यात्व रुषी अन्धकार को दूर करके संसार के मायियों को ज्ञानवित्त किया ।
तथा मरकूप में पड़े हुए जनों को ज्ञान रुषी रस्सी से उबारता । अर्थात् आर्यभ-परिग्रह में मासक्त चित्त

अजीवार मनुष्यदेहा नव अमृष्ट द्रव्य, जेवा हे धर्मरूपिणी भौमपुत्र सुधीन सात अवधरुनेनी सुरी सुरी
वाचनाने बीधे सात अमृष्ट द्रव्य अङ्कशित करने आलक्षणा, आ जेठनी सरणी वाचना होवाथी आ जेठने अङ्क
आइये अमृष्ट द्रव्य जेवीन दिते भिताइं करने प्रभाव, आ जेठनी सरणी वाचना होवाथी आ जेठने अङ्क-नवरी
अमृष्ट द्रव्य आ प्रयावे नव अमृष्ट द्रव्य अत्रवान् पाषाणुरीभांथी विहार करी, देशे देशभां विचरवा ताञ्चा अत्रवानना
पुरवप्रावे, लब्धननेना शिवाये तेन द्रव्य ताञ्चे, तेजो सारना तापथी युक्त द्रव्य स सासनी क्षणी अवतस्तभांथी
धृती, यत्किन क्षंकी तणे आरवा ताञ्चा खानप्रकाश यतां, अपेक्षार दूर द्रव्य ताञ्चे, अपेक्षी द्रव्यभांथी क्षमेयने
आटे लक्षार नीक्षणी, अत्रवाननी वाणीरुप अवलक्षणत तेजोके पान करूं आरवा करने परिश्रम के ससारत गुण
छि जेस अत्रवानक्षार-निक्षेप वाक्की अरु आ आरवा करने परिश्रम, सब प्रकारवा इवैशना भूण छि, तेन
अवी द्रव्य अवी छेयेको, तेना सह तर त्याज करी, अने ने सह तर त्याजी साधना नहि, तेजो, तेन परिभाष करी,
अनासक्त भावे रहैवा ताञ्चा. सर्वभूतान इहान् करने आदिनसुख वाणीतु लक्षण यतां, द्रव्य छेवा साधना पवित्रे

यथा-अम्बरे=आकाशे प्रकाशमानः=देदीप्यमाना भानुः=सूर्यः अन्धकारम् अपनीय जगद् हर्षयति=आनन्दयति,
 तथा=तेन प्रकारेण जगद्भानुः=स्वकीयकेवलज्ञानरश्मिना जगत्प्रकाशकत्वेन जगत्सूर्यो भगवान् मिथ्यात्वान्धकारम्
 अपनीय=दूरीकृत्य जगत् अहर्षयत्=आनन्दितवान् । तथा-भवकूपतितान् जनान् ज्ञानरज्ज्वा=ज्ञानरूपया रज्ज्वा
 वहिरुद्धयत्=वहिरुद्धृतवान्, आरम्भपरिग्रहप्रसक्तचित्तान् जनान् ज्ञानप्रदानेन मोक्षमार्गगामिनः कृतवानित्यर्थः ।
 तथा-भगवान् इव=मेघ इव अमोघधर्मदेशनामृतधारया=अवन्-यधर्मोपदेशरूपामृतवर्षणेन पृथिवीं असिञ्चत् ।
 अय भावः-यथा-मेघो ग्रीष्मतापत्तां पृथिवीं स्व जलधारयाऽऽर्द्रीकृत्य सस्यसम्पत्तिवहूलां करोति, तथैव भगवान्
 धर्मोपदेशरूपजलवर्षणेन पृथिवीं=भव्यहृदयभूमिं ज्ञानदर्शनचारित्ररूपसस्यसम्पत्तियुतामकरोदिति ।

एवम्=पूर्वोक्तेन प्रकारेण-तीर्थङ्करपरिपाटया दीक्षादिनादारभ्य अनवरतविहारं विहरतः=निरवच्छिन्नविहारं
 कुर्वतो भगवतः एकत्वविरिणश्च चातुर्मासाः प्रतिपूर्णाः=व्यतीताः । तद्यथा-एकः प्रथमश्चातुर्मासोऽस्थिरक्रामे=

वाले जीवों को ज्ञानप्रदान करके मोक्षमार्गगामी बनाया । तथा-भगवान् ने मेघ के समान अमोघ (सफल)
 धर्म-देशना की सुधा-धारा प्रवाहित करके महीतल का सिंचन किया । अभिप्राय यह है कि जैसे मेघ गर्मी के
 ताप से संतप्त पृथ्वी को अपनी जलधारा से सींचकर धान्य-सम्पत्ति की बहुलता से युक्त कर देता है, उसी
 प्रकार भगवान् ने धर्मोपदेश रूपी जल की वर्षा करके भव्यजीवों की हृदय-भूमि को ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी
 धान्य-सम्पत्ति से युक्त कर दिया ।

इस प्रकार तीर्थंकरों की परम्परा के अनुसार दीक्षा के दिन से लेकर निरन्तर विहार करते हुए
 भगवान् के एकताक्षीस चौमासे व्यतीत हो गये । वे इस प्रकार हुए-एक पहला चौमासा अस्थिरक ग्राम में १,

भन्था. लगवानन्ती वाष्णी निर्भज्य अने निर्दोष इत्ती, तेथी ते वाष्णीये धष्ठा एवोने साथा राडे स्थिर कथो. लगवाननी
 वाष्णीनुं श्रवण्, जेठ मासना धगधगता उनाणामा अकणायेला एवोने जेम ठडु भरदनुं पाष्णी भणता शांति प्रसरे
 छे, तेम संसार ताथथी तपेला एवोने ठंडकवाणुं भन्थु. अने तेजो पणु, आगेकदम भरवा लाग्या. जेम आप्रूट सेध
 धाराथी, पृथ्वी, धन धान्य सयत्ति वडे नाथी ठठे छे, तेम लगवाननी दिव्यवाष्णी वडे, दोडोभां उत्साड अने आनंद
 उभरावा लाग्यो. अने दोडो साथा ज्ञान अने साथा यादिरना आराधक भन्था.

तीर्थंकरों की परंपरा अनुसार, लगवानना चौमासानी गण्त्री, वीक्षाना दिवसथी शुरु थाय छे, आ प्रभावे
 गण्तां, प्रभुना ओकनादीस चातुर्मास थाय छे. आ सधना चातुर्मासो भूण पाठना अनुवादोभां गताववाभां आग्या

अस्यैकान्ति ग्रामे मातः १, एकधम्मनमर्याय २, द्रौ चातुर्मासो पृष्ठम्यानमर्याय ४, द्वादश चातुर्मासा वैशाखी नगरीषाणिकग्रामनिधाय १६, तथा—चतुर्दश चातुर्मासा रामगृह्नगरेऽनगृह्नगरेऽनमर्यायान्तिन्यां नात्मन्दनामरूपुलान्ति-निधाय ३०, तथा—यद् चातुर्मासा भिरिलायाम् ३६, तथा—द्रौ चातुर्मासो भरिन्पुरे ३८, एकधातुर्मास आयन्तिम-क्रापी नगर्याय ३९, एकः श्रावस्याय ४०, तथा—एकधातुर्मासो वज्रभूमिनामके अनार्यदेने जातः ४०, एवम्—अनेन प्रकारेण मगरतः एकचत्वारिंशत्संख्याकाः चातुर्मासाः प्रतिपूर्णाः=समाप्ताः। ततः खलु जनपदचिह्नारे विरान् मगरान् अपश्चिमय्=अन्तिमे द्विचत्वारिंशच्चयं चातुर्मास पाषाणयुगं इतिपूर्णाः=समाप्ताः। अतः खलु जनपदचिह्नारे रज्जुकुन्दाभायो=कदम्बगृहे 'युगीपर' इति प्रसिद्धे स्थितः। प्र० ११४।

मूलम्—वेणु काळेण सेण समणं समणे मगवं महावीरे आसप नियन्विज्जान्तिहिं भणुइविय मग्ग पेमाञ्जुआगरचस्स अस्स "मम निग्वाण दइण कैयब्बानुण्णपिण्डिकरो मा मवउ" चि ण्डु गोपमसाणि दव सम्ममारण पडिबोहणहं आसन्नगाममि विवसे पेसीअ।

तेषु समणे मगवे महावीरे सीसं वासाह भगार वासमग्गे वमिय, सादरेगाह दुवानसवासाह उउमय परिणाय, देव्याह तीसं वासाहं केवल्लिरियाए एवं वायलीसे वासाह सामणपरियाए वसिय, वायनरि वासाह सन्नाउयं पावरा लीणे वेयणिज्जा उयनामणुणकम्मे इमीसे ओसण्णिणीए दूतममुसनाए समाए वट्टवीरुक्ताए तीरिं वासहिं अदनकसेहि य मासेहि सेसहि पावाए वयरीए हरियथावत्स एब्बो रज्जुपसावाए जुयाए वत्स दुववाधीस इमत्स वासापासत्स जेसे चठवे मासे सवमे पवले कसियवडुछे, तस्स ण कसिय वडुनत्स

एक चम्पानगरी में २, द्रौ चौमासे पृष्ठम्या में ४, वार वैशाखी नगरी और वाणिजग्राम में १६, चौदह राजगृह नगर के नात्मन्दा नामक उपनगर में ३०, छह चौमासे मिथिला नगरी में ३६ दौ मरियपुर में ३८, एक आर्कभिका नगरी में ३९, एक आचस्ती नगरी में ४०, और एक वसपुमि नामक अनार्य देउ में ४१, इस प्रकार मगवाह के एकधात्रीस चतुर्मास कीत गये। तदुपरात् जगपद् विहार करते हुए मगवान् अन्तिम पर्याप्तीसो चौमासा करने के लिए पाषाणुरी में इतिवचन राजा के पुरानी जुगीपर में स्थित हुए। प्र० ११४।

७ पुनः बुध स्वये शोभासा हरिवाही ते पजते वस्तवी देखनी खचणी सोभाजोने आपरी देवाभं आची ७तो आधी धवना भटुभे, भाववाननी बाकीने। आपूलका भेजवी शङका इत्या। उबहु अरेरे रे जेतावीसिय आतुभोस पावपुरीभोले रे ७त्तं सधनी स्वाधन, जिपरीत भ्राम विबेरे मकु केतु, तोल गाथभं यहु अही कभराने ते पजते पावपुरीभं रा७न् ७एना कीरवाक नाभना राजनी हावुशाज्जभां (७शवत्थानभां) शोभासु भुवु" (सं० ११४)

पन्नरसीपकलेणं जा सा चरसा रयणी, तीए अदरत्तीए एणे अवीए छहेणं भत्तेणं अपणएणं सपल्लियं कनिसण्णे दस अज्झयणाइं पावफलधिवागाइं, दस अज्झयणाइ पुण्णफलविवागाइं कहित्ता, छत्तीसं च अपुट्टवागरणाइं वागारित्ता एवं छपण्णं अज्झयणाइं कहित्ता पहाणं नाम मरुदेवज्झयणं विभावेमाणे कालगए विइंक्ते समुज्जाए । छिन्न-जाइ जरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे भुत्ते अंतगडे परिणिब्बुडे सन्वदुक्खप्पहीणे जाए । तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदे नासं दोच्चे संवच्छरे पीइवद्धणे मासे नंदिवद्धणे पक्खे, अग्गिवेस्से उवसमिस्सि अवर नामे दिवसे, देवा-गंदा निरति त्ति अवरनामा रयणी, अच्चे लवे, मुहुत्ते पाण्ण, सिद्धे ओवे, नामे करणे, सन्वट्टसिद्ध मुहुत्ते साई नक्खत्ते चंदेण सद्धि जोगसुवागए चावि होत्था ।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालमए तं रयणिं च णं वट्ठहिं देवेहिं देवीहि य ओवयमाणेहि य उपपयमाणेहि य देवुज्जेण देवसण्णिवाए देवकहकदे उप्पिजलगभूए यावि होत्था ॥सू० ११५॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः आसन्नां निजनिर्वाणतिथिमनुभूय मम प्रेमानुरागेरुक्तस्यास्य “मम निर्वाण दृष्ट्वा केवलज्ञानोपतिप्रतिबन्धो मा भवतु” इति कृत्वा गौतमस्त्रामिनि देवशर्मब्राह्मणप्रतिबोधनार्थमासन्नश्रमे दिवसे प्रैषयत् ।

स खलु श्रमणो भगवान् महावीरस्त्रिशद् वर्षाणि अगारवासभ्ये उपित्वा सातिरेकाणि द्वादशवर्षाणि छद्मस्थपर्याये, देशानानि त्रिशद् वर्षाणि केवलपर्याये, एवं द्विचत्वारिंशद् वर्षाणि श्रमणपर्याये उपित्वा

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीरने अपने निर्वाण का दिन समीप जानकर ‘मेरे प्रेम में अनुरक्त इन्द्रभूति के मेरा निर्वाण देखकर केवल ज्ञान की उत्पत्ति में विघ्न न हो, ऐसा विचार कर गौतम स्वामी को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए पास के एक ग्राम में, दिन में भेज दिया ।

वह श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष गृहवास में रहे । कुछ समय अधिक चारह वर्ष तक छद्मस्थ-पर्याय में रहे, तथा कुछ कम तीस वर्ष केवली पर्याय में विचरे । इस प्रकार चयालीस वर्ष श्रमण-पर्याय में

भूजने। अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि। ते क्षण अने ते समये भगवान् महावीर चोताने। निवोषुद्धण नल्ल अण्णे। अल्लो ‘धुन्द्रभूतिने भारा उपर अथागग्रेभ छे, अने तेने दीधि, तेनुं डेवणसान अवदेशाधार्थं जशे’ ओम विचारी गौतम स्वामीने ते दिवसे सांले देवशर्मा ब्राह्मणने प्रतिबोध करवा भोक्खी दीधा। आ देवशर्मा ब्राह्मण, नल्लकना गामभां रळेते। अने ते भोक्षपथिक्क तेभज सत्यने अल्लु करवावाणे। जल्लुतो। अतो। श्रमणु भगवान् महावीर त्रीस वर्ष गृहस्थावासभां रह्हा। आर वर्षथी कुंछिक्क अधिक्क-अर्थात् आर वर्ष साडा छ भास छद्मस्थ-पर्यायभां रह्हा। त्रीस वर्षभां

दासताविषयीणि सर्वायुष्कं पालयित्वा हीणे वेदनीयायुष्कनामगोप्रकर्माणि अस्या अनसर्पिण्यादुप्यममुपमायां
 समार्यां बहुव्यतिक्रान्तायां विष्णु वर्षेणु अर्द्धनवमेणु च मासेषु, पापायां नगर्वां हस्तिपालस्य रामो रज्जुकडाखायां
 मीर्णायां तस्य द्विषत्वारिंशत्तमस्य वर्षायासस्य यः स चतुर्थो मासः सप्तमः पक्षः कार्तिकपक्षद्वयः, तस्य खलु
 कार्तिकपक्षपुरुषस्य पञ्चदशीपक्षे या सा घरमा रमन्ती, तस्या वर्षायां एकोऽद्वितीयः पठ्ठेन भक्तोपायनकेन
 संपत्यकुनिष्पन्नाः दश अध्ययनानि पापफलविनाशानि दक्षाध्ययनानि पुण्यफलविपाकानि कथयित्वा पट्टत्रिंशद्या
 पट्टव्याकरणानि व्याकृत्य एवं पट्टपञ्चाशदध्ययनानि कथयित्वा यथानं नाम मरुदेव्याध्ययन विभावयन् कालागतः
 व्यतिक्रान्तः समुपातः छिन्नजातिनरामरचयन्तः सिद्धो बुद्धो मुक्तोऽन्वकृतः परिनिर्हृतः सर्वदुःखसमहीनो जातः ।

तौ और बहुर वर्ष की समग्र आयु भोगी । तत्पश्चात् वेदनीय आयुष्क, नाम और गोप्र कर्म के सीम
 होने पर, इस अवसरपरिणी फाल के दुप्यम मुपम आरे का अधिक भाग बीज जाने पर, तीन वर्ष और
 सावेअठ मास छेप रहने पर, पावापुरी में राजा हस्तिपाल के जीर्ण जुगीपर में, उस ययाकीसवें चौमासे के
 चौथे मास, सात में पक्ष-कार्तिक कुज्यपक्ष की अमावास्या की अन्तिम प्राची रात्रि में, एक अद्वितीय (मकैले)
 निर्मल गृहमक की तपस्या करके पर्यक्रासन से विराजमान हुए । दस अध्ययन पाप के फल-विपाक के और
 दस अध्ययन पुण्य के फल-विपाक के बहाकर तथा छपीस बिना पूछे प्रभो का उत्तर देकर-इस प्रकार
 छयन अध्ययन करमा कर, प्रपान नामक मरुदेव के अध्ययन का प्ररूपण करते हुए कालपर्यन्त को मास हुए,
 संसार से निहृव हुए, पुनरागमन-रहित ऊर्ध्वगति-कर गये, जन्म जरा और मरण के बन्धन से रहित होगये ।

मंडिक बोझ देवदोषोपशमं विधत्ते. आवी रीते विवाहीय वर्षं शायुपशमोश्चभां रक्षां अने समग्र रीते ओतेर वर्षेणु
 आयुष्मन् पूर्वं कर्तुं त्वास्याह वेदनीय, आयुष्मन्, नाम अने ओत्रकर्मं कीलु रत्तां, अवसरिणी भजना दुप्यममुपमा
 आशाने वसे। अथे भग्न भवतीत रत्तां तखु वर्षं अने सादा आह आस जाही रहेतां, पावापुरीभां, हस्तीपाल राजानी
 शुनी हरशण-दायुषाणाभां, विवाहीयमा शोभासाभां अने अतुमोशना सातमा पञ्चपदिव्याम, शरवह पक्ष
 आभावाश्वा (जुश्वती आसे वही अमावासी-वीणाजी)नी छिन्नी अर्धेऽश्विन्ति, जोकवा निर्भर वेदां तुपअरख
 हरिने, पूर्व-ह-पक्षां आसनवाणीने सजयान विरभन्ना दुप्य विपक्ष नामना सरला इस अभ्यवेदने अने दुप्य
 विपक्ष सुतना दश अभ्यवेदने प्रवचन कथो जाह, तथा अजुषाकोक छनीय प्रभोना छित्तरे आया पक्षी,
 उरभन अभ्यवेदनु हरमान कथो जाह 'प्रधान नामना मरुदेवना अभ्यवेदनु प्रवचन खावतु रत तेवामा,
 करवान भागधर्म' पाश्चा. भागधर्म' पाभतां सुसाक्षी निवृत्त यथा पुनरागमन रहित जन्म उर्ध्वगति

तस्मिन्काले तस्मिन् समये चन्द्रो नाम द्वितीयः संवत्सरः, प्रीतिवर्धनो मासः, नन्दिवर्धनवेश्यः उप-
शमेत्यपर नामा दिवसः देवानन्दा निरतीत्यपरनाम्नी रजनी अर्चो लवः सुहूर्त्तः प्राणः, सिद्धः स्तोकः नागः-
करणं, स्वार्थसिद्धो सुहूर्त्तः स्वातीनक्षत्रं चन्द्रेण सार्धं योगसुपागतं चापि अभवत् ।

यस्यां रजन्यां च खलु श्रमणो भगवान् महावीरः कालगतस्तस्यां रजन्यां च खलु बहुषु देवेषु देवीषु
च अवपतत्सु च उत्पतत्सु च देवोद्द्योतः देवसंनिपातः देवकलकलः उत्पञ्जलकभूतश्चाप्यभवत् ॥मृ० ११५॥

टीका—‘तेणं कालेणं तेणं समएणं’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः,

सिद्ध हुए, बुद्ध हुए, मुक्त हुए, परम शान्ति को प्राप्त हुए और समस्त दुःखों से रहित हुए ।

उस काल और उस समय में चन्द्र नामक द्वितीय संवत्सर था, प्रीतिवर्धन मास था, नन्दिवर्धन पक्ष
था । अग्निवेश्य जिसका दूसरा नाम उपशम है, दिन था । देवानन्दा, अपर नाम निरति नामक रात्रि थी ।
अर्ध नामक लव था, सुहूर्त्त नामक प्राण था, सिद्ध नामक स्तोक था, नाग नामक करण था, सार्थसिद्ध
सुहूर्त्त था और स्वाती नक्षत्र चन्द्रमा के साथ योग को प्राप्त था ।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ, उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के
नीचे आने और उपर जाने के कारण देव-प्रकाश हुआ, देवों का कल-कल हुआ देवों की बहुत बड़ी
भीड़ लगी ॥मृ० ११५॥

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर ने अपने निर्वाण के दिन समोप

करी गया. जन्म जरा અને भरણના બધનથી રહિત થઈ સિદ્ધ, બુદ્ધ, મુક્ત, પરિનિર્વૃત, અને સર્વદુઃખોના
અંતકારી થયા, પરમશાંતિ ને પામી સમસ્ત હુ બોથી રહિત બન્યા. તે કાળ અને તે સમયે ‘ચદ્ર’ નામનું ધીણું
વરસ ચાલતુ હતું. તેમા પ્રીતિવર્ધન માસ હતો અને નદિવર્ધન નામનું પપ્પવાડિયુ હતું ‘અગ્નિવેશ્ય’ અથવા
‘ઉપશમ’ નામનો દિવસ હતો. દેવાનંદા અથવા ‘નિરતિ’ નામની રાત્રી હતી. ‘અર્ધ’ નામનો લવ હતો. ‘સુહૂત’
નામનો પ્રાણ હતો ‘સિદ્ધ’ નામનું સ્તોક હતું. ‘નાગ’ નામનું કશુ હતું ‘સર્વાર્થસિદ્ધ’ નામનું સુહૂત હતું, અને
સ્વાતિ નક્ષત્રનો ચક્રમા સાથે યોગ વરતી રહ્યો હતો. જે રાત્રિએ શ્રમણ ભગવાન મહાવીર નિર્વાણ પામ્યા, તે રાત્રીએ
ધણા દેવદેવીઓના આવાગમનને લીધે દેવ-પ્રકાશ થવા પામ્યો હતો.

આ ઉપરાંત દેવોનો મેળો ભર્યો હતો. દેવોના કલકલાટની સાથે ઘણી ભીડ પશુ જામી હતી. (સૂ. ૧૧૫)
વિશેષાર્થ—ભગવાન મહાવીરે પોતાનો અતકાલ નશુકમાં પ્રવર્તેલો બોયો-એટલે દેહ છૂટવાનો વખત આવી

आसन्नोऽसमीपमातो निजनिर्वाणशिष्यिः=स्वमोहादिनाम् अनुसृणुष=आत्मा मम भेमानुगारकस्य=मयि स्नेहवत्।
अप्य=नीतिमय मम निर्दण्ड इष्टा, केवलज्ञानोत्पत्तिप्रतिबन्धः=केवलज्ञानमाप्स्यन्त्यरागो मा-मयवत् इति कृत्या=
इति विचार्य गौतमस्त्वामिने दशदमैश्चाष्टमप्रतिबोधनार्थे=दशदमैरस्यस्य ब्राह्मणस्य प्रतिबोधप्रयोजनाय, आसन्नप्राप्ते-
पापापुरस्मिणीपरतिनि द्राये विवस्ते भेषपशु=भेषितवान्।

स त्वत् श्रमणो भगवान् मयाभीरुः पिश्रव् वर्षाणि भगवत्प्राप्तमभ्ये=पुष्टिवासमभ्ये, उपित्वा=वास कृत्वा
सातिरुकाणि=साधिकाणि द्वादशवर्षाणि छपस्यपयौय, देशोनानि=किंचिदुनानि पिश्रव् वर्षाणि केवलधिर्पयौय=
केवलिते, परं द्विचत्वारिंशद्व वर्षाणि श्रामण्यपयौय=चारिष्यपयौय उपित्वा=सित्वा जन्मकाष्ठान्मरारभ्य द्वाप्तसति
वर्षाणि तत्तापुलं=सर्वमायुः प्राप्तयित्वा=समाप्य वेदनीयायुःकृत्यमोषकर्मणि क्षीणे सति अस्या अवसर्पिण्याः=
ज्ञानकर धरे उपर स्तेर एतदेवाहे गौतम को मेरा निर्वाच देवकर केवलज्ञान की प्राप्ति में विघ्न न हो'
इस प्रकार विचार कर गौतमस्वामी को दशदमों नामक ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए पावापुरी के
समीपवर्ती किसी ग्राम में दिन के पीछे समय मेज दिया।

श्रमण भगवान् मयाभीरु हीम वर्ष तक दशशत में रहे। कुछ समय अवधिक बार वर्ष पर्यन्त छपस्या
वस्या में रहे। और कुछ समय कम हीस वर्ष केवलमी-पर्याय में रहे। इस प्रकार ब्यालीस वर्षों तक चारिष-
पयौय में रहे। जन्मकाल से मारम करके समग्र आयु बरकर वर्षकी योगी। तत्पश्चात् वेदनीय, आयु,
पक्षेभ्योः उ जेम अथु तेजोने अथुत्त दत्त हे छ-प्रभृति नामना आश भृष्टिभने आश पर बखो अनुसृजते

आ अनुदानधी गौतम अथ देवानक्षान वजते पैदाकी अनभिमानी इवाय ध्युत था। ते तेने निरावरयु जेवु
हेवमान प्राप्त वशामं दिव्य छपसित थाव जोटवा भूते गौतमभवापनि भालेना आभमं रकेनार देवधामां नामना
प्रकल्पत प्रतिबोध आटे विवस्ते न मोहसी हीन।

अथय भगवान्नु जमम लुपतनु जिहापदोहन कर्ता आपजने अज्जवा मजे छे हे तेजोने त्रीस वरसने।
जमम नकरय लुपनमां पञ्च मजे। आ लुपनमां आत्मानरथा पाड इत्तां तेअना आदिना गुरुसक लुपनमां तेमबे
पैदाने अकालक्षान भवनीरहे जने। पञ्चत इधामां आजेणे पार वर्षकी अविश वजत इहीन साधु अनवरशामां
पञ्चर हये। आ हाणामां तेमबे अजीरक प्रवासे आहो जने आरभत्तापनाही प्राप्ति इही। आदिना त्रीय वर्षी
देवडीवले अदीन इही ज्योतिर वर्षत्त अथय आकुप्य तेमबे भूरे इहुं। आ अञ्चरे लजवने जे पावीस वर्षेणु अदिन
अज्जु भगवान् थाव छे जहाँ देहकी। इति उगी रहे छे आ देहने आकारे वेदनीय, आशुभ, नाम जने

एतदवसर्पिणी सम्बन्धिन्यां दुष्पमसुपमायां समायां बहुव्यतिक्रान्तायाश्च=अधिकांशेन व्यतीतायां, तस्या पुनः त्रिषु वर्षेषु अर्द्धेनवमेषु=सार्धोष्टासु मासेषु शेषेषु=अवशिष्टेषु सप्तसु, पापायां नगर्यां हस्तिपालस्य=तदाख्यस्य राज्ञः जीर्णार्यां=पुराण्यां रज्जुकशालायां तस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य वर्षावासस्य=वर्षर्तुनिवासस्य=चातुर्मासस्य यः स चतुर्थो मासः, सप्तमः पक्षः=श्रावणकृष्णपक्षादयं सप्तमः पक्षः कार्तिक बहुलः=कार्तिककृष्णपक्षः, तस्य खलु कार्तिकबहुलस्य=कार्तिककृष्णपक्षस्य पञ्चदशीपक्षे=अमात्रास्यातिर्यो या सा चरमा=अन्तिमा रजनी=रात्रिः, तस्याः रजन्या अर्धरात्रे=रात्रेर्द्धभागे एकः=एकाकी अद्वितीयः=अपरसृक्किगामिजनरहितः, अपानकेन जलपानरहितेन पण्ठेन भक्तेन=दिनद्वयतपोरूपेण युक्तः संपलङ्कनिषण्णः=पद्मासनोपविष्टः दश अध्ययनानि पापफलविपाकानि=

नाम श्रौर गोत्र नामक चार अघातिक कर्मों का क्षय हो जाने पर इसी अवसर्पिणी काल के दुष्पम-सुपम नामक चौथे आरे का अधिक भाग जीत जाने पर और सिर्फ तीन वर्ष तथा साडेआठ महीने शेष रहने पर पावापुरी में हस्तिपाल राजाकी पुरानी शुल्कशाला में वयालीसवें चौमासे के चौथे मास और सातवें पक्ष में कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में और कार्तिक कृष्णपक्ष की अमावस्या तिथि में, अन्तिम रात्रि के अर्ध भाग में अर्थात् आधी रात के समय में अकेले-दूसरे मोक्षगामी जीव के साथ के बिना ही जल-पान रहित बड़े की तपस्या के साथ पद्मासन से विराजमान हुए। उस समय त्रिपाकमंत्र के प्रथम स्कन्ध नाम से प्रसिद्ध पाप का

गोत्र कर्म रहेता होय छे. देह छूटतां आ क्योने। पणु सहतर नाथ थर्छ भय छे अने एव निराकार अवस्था प्रकट करी सिद्ध थाय छे.

लगवानना अंतिमकाण वभते असर्पिण्काण यावतो इतो. आभां पणु दुग्धम सुषमा नामना योश्वा आशानो। दगलग धूरे। समय व्यतीत थयो इतो ओटवै योथा आराना इक्षत वषु वर्षं अने साधव्याह भडिना न थाडी रक्षा इता आ समये लगवान पावापुरीभा इता. त्याने। राण हुस्तिपाद इतो. तेनी गणुशाणाभां पणु लगवाने जेताबीससुं यातुर्मास क्युं इतुं. आ यतुर्मासने। योथा भडिने। आवी रह्यो इतो. तेम न यतुर्माससुं सातसुं पणवाडियु व्यतीत भर्छ रहुं इतुं. आ मास कार्तक भडिना इतो, जेने आपणु आसो मास तरीडे गणुओ छीज्ये.

कार्तिक बह (शुभरातीमां आसो बह) अभामने द्विसे अर्ध रात्रिना पाछदा पछोरे लगवान मोक्ष पधार्या, लगव नने। देह छूटती वभते लगवान ओकदा न मोक्षगामी इता. ते समये नगतने। के। पणु एव सिद्ध थये। न इतो. अंतिम समये लगवाने योवीडारना त्यागइप छुठ आदरेद इतो. तपश्चरणु साथे पद्मासन वाणी स्थिर

विपाकसूक्ष्मस्य मयमरुतमन्वेन प्रसिद्धानि दुःखविपाकनामकानि दशसत्यकान्यध्ययनानि, तथा दशअध्ययनानि
 पुण्यफलविपाकानि=विपाकसूक्ष्मस्य द्वितीयसूत्रक पद्येन प्रसिद्धानि सुखविपाकनामकानि दशाध्ययनानि कथयित्वा,
 च=तुनः पदप्रतिशब्द=पदप्रतिशब्ददशयनात्मकानि अष्टव्याकरणानि=अष्ट विनैव उक्तानि उत्तराध्ययनात्मना प्रसिद्धानि
 व्याकृत्य=उक्तत्वा एवम्=अनेन प्रकारेण पदपञ्चाशदध्ययनानि कथयित्वा प्रधाननामकं मन्वेदवाक्ययनम् विभावयन्=
 निरूपयन् कामगतः=कासयमयासा, कायस्थितिवस्यति कालगतः, व्यतिक्रान्तः=सत्साराद् व्यतिगतः, समुपगतः=
 अधुनराहणोर्ध्वं गतः। छिन्नप्रतिजराभरणवन्धनः=उन्मूलितमातिजराभरणकारणकर्मा, सिद्धः=साधितपरमार्थः,
 शुद्धः=शतदशवार्यः, मुक्तः=सकलकर्मकलापपाशविमुक्तः, अन्तर्गतः=दूरीकृतसर्वदुःखः, परिनिर्मुक्तः=सर्वसन्तापा-
 भावात् परमशान्तिप्राप्ताः, तथा च कीदृशो जात इति दर्शयति=सर्वदुःखमर्पणः=यहीगणकारीरमानससर्वदुःखः
 जातः अमरत्वं।

फलविपाकदर्शनेवाले इस दुःखविपाक नामक ग्रन्थयनों को तथा विपाकसूत्र के द्वितीय अध्ययन के नाम से
 प्रसिद्ध, पुण्य का फल बतलानेवाले दस सुखविपाक नामक अध्ययनों को कथ कर और उत्तराध्ययन के नाम से
 प्रसिद्ध उचीत अध्ययन रूप अष्टव्याकरणों को अर्थात् पूछे बिना ही किये गये व्याकरणों को कह कर
 और इस प्रकार सब छप्पन अध्ययन फरसा कर प्रथम नामक मन्वेदव अध्ययन का प्रस्थान करते हुए
 कालधर्म को प्राप्त हुए। अर्थात् कायस्थिति और मवस्थिति से मुक्त हुए, पुनरागमन रहित गति को प्राप्त
 हुए, जन्म मरा और मरण के बन्धन से मुक्त हुए, परमार्थ को साधकर सिद्ध हुए, तत्त्वार्थ को जानकर
 शुद्ध हुए और समस्त कर्मों के समुद्र से मुक्त हुए, उनके समस्त दुःख दूर हो गये। किसी भी प्रकार का
 संताप न रहने से परम शान्ति को=निर्वाण को=प्राप्त हुए, और इस कारण समस्त शारीरिक और मानसिक
 दुःखों से रहित हो गये।

आधा मन, बचनना योजे विरामना होता, शुद्ध ध्यानना होता पाये आदिह थाई पांय ध्युअक्षर जेटते प्य-इ-उ-
 न्-त्तं आ पांय अक्षरिना उअत्तुआं नेट्ठे। वजत पधार धाव तेट्ठे। वजत ते पाये रकी शेव रहेवा वेहनीय,
 आमु नाम, जेव आ चारे हसोनी धम हरी शेअ पधारो
 ने वजते जजवान तपस्या आये पधारन वाली विहा होता ते अमये जजवाननी वाणीना छवटये प्रवाद
 नीअये भतो बते। जेम आइत्थ आसने छेड्ठे। वरसाह पण्णसिद्धि धिपधार पठे छे तेम जजवाननी आ वाणी
 छवटो बतोः तेथो नेट्ठे। शोरे। वाणी दास ज्ञापणा आही बणा ते अन् शब्दादिह पुअत्थे। अण्ण अण्णये वहेवा
 मना ने वाणी इये जे अण्ण स्थव भुजिधी ध्यान आरहेत नीअण्व म अण्ण।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये भगवतो-निर्वाणकालावसरे चन्द्रो नामद्वितीयः संवत्सर आसीत्, तथा प्रीतिवर्द्धनो नाम मासः, नन्दिवर्द्धनो नाम पक्षः, उपशयेत्यपरनामा अग्निवेश्यो नाम द्विवसः, निरतीत्यपरनाम्नी देवानन्दा नाम रजनी=रात्रिः, अर्चो नाम लवः, मुहूर्त्तौ नाम प्राणः, सिद्धो नाम स्तोकः, नागो नामकरणं, स्वार्थसिद्धो नाम मुहूर्त्तः, स्वाती नक्षत्रं चन्द्रेण सार्द्धं योगं=संवन्धम् उपागतं चापि अभवत् ।

यस्यां रजन्यां=रात्रौ च खलु श्रमणौ भगवान् महावीरः, कालगतः-कालं कृतवान् तस्यां रजन्यां च खलु बहुषु देवेषु देवीषु च अवपतत्सु=अध्वागच्छत्सु उत्पतत्सु=ऊर्ध्वं गच्छत्सु च देवोद्द्योतः=देवमकाशः, देवसंनिपातः=देवसङ्गमः, देवकलकलः=देवनादः उत्पिञ्जलकभूतः=संवाधश्चापि अभवत् । 'बहुहिं देवेहिं' इत्यादिषु समन्वये तुलीया ॥सू-११५॥

मूलम्—तएवं से गौयमसामी ममणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणं मुणिय वज्झाहए विव खणं मोणमोलविय णडो जाओ । तओ पच्छा मोहवसंगओ सो विलवइ-ओ ! सो ! भदंत महावीर ! हा ! हा !

उस काल और उस समय में अर्गात् भगवान् के निर्वाण के अवसर पर चन्द्र नामक द्वितीय संवत्सर था । प्रीतिवर्द्धन नामक मास, नन्दिवर्द्धन नामक पक्ष, उपशम जिसका दूसरा नाम है ऐसा अग्निवेश्य नामक दिवस था । देवानन्दा, जिसका दूसरा नाम निरति है, रात्रि थी । अर्ध नामक लव, मुहूर्त्त नामक प्राण, सिद्ध नामक स्तोक, नाग नामक करण, सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त्त था और स्वाती नक्षत्र के साथ संवत्स को प्राप्त था ।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ, उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के नीचे जाने और ऊपर जाने से देवप्रकाश हुआ, देवों का संगम हुआ, देवों का कलकल नाद हुआ और देवों की बहुत बड़ी भीड़ भी हुई ॥सू०११५॥

આ વખતે ભગવાનના પ્રવચનના વિષાક સૂચનો પ્રથમ શ્રુતસ્કંધ બેને હુ ખવિષાક તરીકે ઓળખવામાં આવે છે, તેમ જ વિષ કસૂરનો બીજો શ્રુતસ્કંધ જેમાં પુણ્યના સુખરૂપ ફળો વર્ણવ્યાં છે તે વિષાકસૂચ વાણીમાં આવતું' આ ઉપરાત વણપૂછેલા એવા છત્રીસ અધ્યયનવાળુ ઉત્તરાધ્યયનસૂચ તેમના સુખ દારા નીકળતું' હું, તેમ જ છપ્પન અધ્યયનો પણુ પ્રવચનમાં બજાતા હતા આ અધ્યયનોમાં 'મરુદેવ'નું અધ્યયન ચાલતું હતું' તે દરમિયાન ભગવાનનો દેહ છટી ગયો અને અબ્બર-અમર અવિનાશી અને ચૈતન્ય સ્વરૂપ એવા પદને ભગવાનનો આત્મા પામ્યો. તે વખતે કયા કયા યોગો, નક્ષત્રો, સુક્ષ્મો, માસ, દિન વિગેરે વરતી રહ્યાં હતા. તેનું ખ્યાન મૂ' પાઠમાં અકિત કરવામાં આવ્યું' છે (સૂ.૦૧૧૫)

पीर ! एष किं कृत्यं भगवत्या, नै चरणपद्मभासगे म दूरे पेशिय मोक्षं गण । किमहं सुखं हृत्प्रेम गहिय
अचिद्विस्त, किं देवाणुपियाण निम्नानुपियाण अपत्यिस्तं, से नं मं दूरे पेशीय । जह दीणसेवगं म सएण
सदि अनहस्त वो किं मोक्षस्वयं संकिण्ण अनविस्तं ? भगवुरिस्ता उ सेवगं विणा स्वयंपि न विद्विहि,
मद्वेण सा नीरं करं विसरिया । इमा पविषी विपरिया जाया । सह भयणं ताव दूरे चिट्ठ परं भवत्समए
ममं विट्ठि भोट्ठि दूरे पत्तिदीप । को अवरातो मए क्खो न एव कृत्यं । भद्रुणा को ममं गोयम गोपयेसि
कहिय संबोहिस्स, कमहं एण दुत्तिउत्तामि, को मे दियथयं एणं समाहिस्स । लोए मिच्छंघयातो पसरिस्स,
तं क्खेत्तं भवाकस्सि । एवं निक्खयाने गोयमसागी मणंसि चिंतीय-‘सब, जं वीयराणा रागरहिया चेव
इवति । नत्त नाम चेव वीयरानो से कंसि रागं क्खेत्ता । एवं सुविय जोहिं पडंअ । ओहिणा भव
कुत्तादिणं मोहकनिय वीयरानो वारंमयकवं नियावराहं जाणिय तं स्वाभिय एक्कायावं करेइ अनुविठेइ य-
को ममं ? मं कस्स ? एगो एव अप्पा आगच्छ गच्छइ य, न कोवि तेण सदि आगच्छ गच्छइ य ।

“ एगो इ नत्ति मे कोइ, नाहमन्तस्स कस्स वि ।

एव मय्यणमणसा, अदीप्पिमणुसासए ” ॥ १ ॥ इवाइ ।

चरणेण एव च मावता मावियस्स गोयमसामिस्स कथियसुक्कादिक्वाए दिव्यरोदयसमयमि चेव लोयान-
लोयानोक्कमसामत्य निक्कावं कस्मिं पडियुणं क्ख्याइय निराकर्णं अर्धत्तं अनुत्तर केवलवरनामदंसवं समुपप्यं ।
तथा मय्यारवाणमंतरजोहिसियमिमावतासीहि देवदेवीविदेहि सयसयवृत्तिसिद्धेहि आनंत्तुण केवलमहिमा कया ।
तेलुक्कमि अमदाबंधो संजाओ । भगवुरिस्ताणं सत्त्वावि वेत्ता विवरा एव इवति । वराहि — ,

“ अहंकारो वि बोहस्स, एगो वि सुक्कमपिओ ।
विसाओ क्खेत्तस्सारी, विवत्तं गोयमसामिओ ॥ १ ॥

नै राणिं व नं समणे मगं मडादीरे क्खामए, सा रयवी खेवेहि उज्जेविया । सयसिय सा रयवी
मोए दीपामिपियसिद्धा जाया । नवमहर्ई नगळेच्छई कासी कोसम्भगा अद्धारस्स वि गणरायाणो ससार
पारकरं पोसोववासादुगं कस्सि । वीए दिवसे कथिय सुद्धपडिक्वाए गोयमसामिस्स केवलमहिमा देवेहि
कया, तेणं तं दियसं नूयणवृत्तिसारंभदियसचणेण पसिद्धं भायं । भगवओ जेतुमाउवा नैविद्वलेण मगं
मोइ भायं गोया सोमसापरे निमिक्खिएण वउत्तं कृत्यं । सुद्धसणाए भाणीए तं आस्तासिय नियमिरे आणाविय
पउत्तस्स पारणं कस्मिं ने- ॥ माउवीयपि पसिद्धिं पणा ॥ म० १ १ ६ ॥

छाया—ततः खलु स गौतमस्वामी श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य निर्वाणं श्रुत्वा वज्राहत इव क्षण मौनमवलम्ब्य स्तब्धो जातः। ततः प्रश्नाद् मोहवशज्ञतः स विलपति—भो भो भदन्त ! महावीर ! हा ! हा ! वीर ! एतत् किं कृतं भगवता ? यत् चरणपुष्पासकं माम् दूरे प्रेष्य मोक्षं गतः, किमहं त्वां हस्तेन गृहीत्वा अस्थास्यम्, किं देवानुश्रियाणां निर्वाणविभागं प्रार्थयिष्यम्, येन मां दूरे प्रेष्यः यदि दीनसेवकं मां स्वकेन सार्द्धमेनेष्यः, तदा किं मोक्षनगरं सङ्कीर्णमभविष्यत् ? महापुरुषास्तु सेवकं विना क्षणमपि न तिष्ठन्ति, भदन्तेन सा नीतिः कथं विस्मृता ? इयं प्रवृत्ति विपरीता जाता। सहनयनं तावद् दूरे तिष्ठतु, परमन्तसमये मां दृष्टि-तोऽपि दूरे प्राक्षिपः, कोऽपराधो मया कृतः ?। यद् एवं कृतम्। अधुना को मां गौतम गौतमेति कथयित्वा सम्बोधयिष्यति, कमहं प्रश्न प्रश्यामि, को मे हृदयगत प्रश्न समाश्रयस्यति। लोके मिथ्याग्रन्थकारः प्रसरिष्यति,

मूल का अर्थ—‘तएणं से’ इत्यादि। उसके बाद गौतमस्वामी श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ सुन कर, क्षण भर मौन रह कर सुन्न हो गये, जैसे वज्र का आघात लगा हो। उसके बाद मोह के वशीभूत होकर वह विलाप करने लगे—हे भगवन् ! महावीर ! हा हा ! वीर ! यह क्या किया आपने ? मुझ चरण-सेवक को दूर भेज कर आप मोक्ष चले गये ! मैं क्या आप को हाथ से पकड़ कर बैठ जाता ? क्या देवानुश्रिय के मोक्ष में हिस्सा बँटाने की मांग करता, जिससे मुझे दूर भेज दिया ? अगर इस दीन सेवक को भी साथ लेते जाते तो मोक्षनगर सँकड़ा हो जाता—वहाँ जगह नहीं मिलती ? महापुरुष सेवक के बिना क्षणभर भी नहीं रहते; आपने यह नीति कैसे बिसार दी ? यह तो उल्टी ही बात हुई ! अरे साथ ले जाना तो दूर रहा, मगर अन्तिम समय में मुझे नजरो से भी ओझल फेंक दिया ! ऐसा क्या अपराध किया था मैंने जो यह किया ? आह, अब ‘गोयमा, गोयमा, कह कर कौन मुझे संवोधन करेगा ? मैं किससे

भूणने। अर्थ—‘तएणं से’ इत्यादि। त्वारमाह गौतमस्वामी भगवान् महावीरसुं निर्वाणं सांख्यी धडीबर शूतकार थर्छ गया तेभने वज्र जेवे। आघात लाग्ये। त्वारपणी मोहवश थर्छ विहाय करवा भंउथा। विहाय करता करता जेदवा लाग्या के छे भगवान ! आये शु कथुं ? आप तभारा चरणसेवकने तरछाडी मोक्ष पधारी गया ? शु छे तभारे। साथ पकडी जेसी जवानो हुतो ? शुं मोक्षमा भाग पडाववानो हुतो ? जेथी तभोजो भने हर मोकली आग्ये ! शु तभे भने साथे लई जत तो त्वां ज्य्याने। तोडो पडत ? महापुरुष सेवक विना धडी पणु रडी शकता नथी ! आये कछ नीतिनु पादन कथुं ? आ तो उदडी वान भनी ! साथे देवानु तो हर रह्य, पणु अंतिम सभये तभे नजरथी हर कथो ! में आवो कथो अपराध कथो हुतो ? ‘अरे भने गोयमा ! गोयमा ! कडी

તે કાઃ રત્નુ અપારકરિષ્યતિ ? । एवं विष्णुर्न गौतमस्वामी मनस्यधित्वयत्-सत्यं, यद् वीतरागाः-न्तगरीशिता एव भवन्ति, यस्य नामैव वीतरागः स कस्मिन् रागं कुर्यात् । एवं श्रुत्वा अवर्षि प्रयुङ्क्ते । अवर्षिना भनकूप पाणिनें मोहकन्ति वीतरागोपालम्भक्यं निनापराधं श्रुत्वा सामयित्वा एवाचारं करोति भ्रुवधित्वयति च-को मम ? अहं कस्य ? एक एव आत्मा आगच्छति गच्छति च, न कोऽपि तेन सर्वेषु आगच्छति गच्छति च ।

“एकોऽहं नास्ति मे कोऽपि नारमन्यस्य कस्यापि ।

एवमात्मानं मनसा भवेन्मनुजासयेत्” ॥ १ ॥

પ્રશ્ન કર્યો ? કોન મેરે હૃદયગત પ્રશ્ન કા સમાધાન કરેગા ? કોઈ મેં વિષ્ણુત્વ કા જો મન્યકાર ફેલેગા, કોન હસે હર કરેગા ? હસ પ્રકાર વિભાગ કરશે-કારણે ગૌતમસ્વામી ને મન મેં વિચાર ક્રિયા-સર્વ છે, ગૌતમ રાગ રાગ-રહિત હો જોતે હૈં । કિસકા નામ હી વીતરાગ છે, વહ કિસ પર રાગ કરેગા ? યહ જાનકર ગૌતમ સ્વામી ને અવધિજ્ઞાન કા પ્રયોગ ક્રિયા । અવધિજ્ઞાન સે મનકૂપ મેં ગિરાનેવાલા, મોહયુક્ત ઔર વીતરાગ કો ઉત્કરના દેના હસ અપના અપરાધ જાન કર ઔર સત્યા કર એવાચાર ક્રિયા ઔર વિચાર ક્રિયા ।

“પગો હં નસિય મે કોરો, નારમનસ કસ્સસિ ।

एवमप्यणमजसा, भदीणमणुसासए” ॥ ૧ ॥

“મેરા કોન ઔર મેં કિસકા ? કલેસા હી આત્મા આપા હે ઔર જાતા હે । મ કોઈ હસ કે સાય આપા હે ન જાતા હે । મેં મલેસા હૈં, મેરા કોઈ નહીં હે ઔર ન મેં હી કિસી મન્ય કા હૈં । હસ પ્રકાર મન સે

દેણુ યોલાવો ? ’ કુ હોને પ્રશ્ને પૂછીયા ? આરી યા કાલ સમાધાન દેણુ કર્યો ? જગતના મિશ્રાત્વ રૂપ અધકારને દેણુ કર કર્યો ? આ પ્રશ્નએ વિદ્યાપ કસર્તી ઔતમસ્વામીએ વિચાર કર્યો કે જે આત્મ છે । વીતરાગ તે શાશ્વતિત્વ જ સોમ ! જે શાશ્વતિત્વ કરવા છે તે જ વીતરાગ કહેવાય । આવા વીતરાગી કોના ઉપર શાજ કરે ? આત્મ સુખજવાં ગૌતમ સ્વામીએ અવધિજ્ઞાનના ઉપયોગ અરૂને

અવધિજ્ઞાનથી ભેતા બધાંયુ કે સર્વપુરુષો કહ સેવનારી ચોક્કવાળી વાણી યોગી વીતરાગને કહેતા હેતાં મહાન અપરાધ થાય છે । આથી તેઓએ કહેલ અપરાધની આદી આગીને પશ્ચાત્તાપ કરવા લાગ્યા પશ્ચાત્તાપ આજે વિશ્વારો ઉદ્ધારના છે—

“પગો હં નસિય મે કોરો, નારમનસ કસ્સ સિ ।

एव मयणमणसा, भदीणमणुसास ए ॥ ૧ ॥

કુ દેણુ, આજ દેણુ ! કુ હોને ? આત્મા કોટોલા બાય છે અને કોટોલા આવે છે ! તેની સાથે કોઈ જવ જવ નથી તેમ જ આનંદ પવન નથી । કુ કોટોલા જ છે । આજ કોઈ નથી અને કુ પવન કોટોલા નથી । આ પ્રકારે મનથી અધીપ થઈ આત્મા ઉપર શાન્ત ચલાવનાર થવું ભોલું

इत्यादियचनेन एकत्वभावनाभावितस्य गौतमस्वामिनः कार्तिकशुक्लप्रतिपदि दिनकरोदयसमये एव लोकोलोकाऽऽलोकनसमर्थं निर्माणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णम् अव्याहतं निरावरणम् अनन्तम् अनुत्तरं केवलवज्रज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् । तदा भवनपतिव्यन्तरज्यौतिषिकविमानवासिभिः देवदेवीवृन्दैः स्व-स्व-ऋद्धि-समृद्धिभिः आगत्य केवलमहिमा कृतः । त्रैलोक्ये अमन्दानन्दः संजातः । महापुरुषाणां सर्वा अपि चेष्टाः हितकर्य एव भवन्ति । तथाहि—

“अहङ्कारोऽपि बोधाय, रागोऽपि गुरुभक्तयेः ।

त्रिपादः केवलायासीत्, चित्रं गौतमस्वामिनः” ॥ १ ॥

अपने अदीन=उदार आत्मा का अनुशासन करना चाहिए । इत्यादि वचन से एकत्वभावना से भावित गौतम-स्वामी को कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् के दिन, सूर्योदय के समय ही लोक और अलोक के अवलोकन में समर्थ, निर्वाण का कारण, सब पदार्थों को साक्षात्कार करने वाला, प्रतिपूर्ण अव्याहत, निरावरण, अनन्त, और अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया । उस समय भवनपति व्यन्तर, ज्यौतिषिक और विमानवासी देवों और देवियों के समूह ने अपनी-अपनी ऋद्धि-समृद्धि के साथ आकर केवलज्ञान की महिमा की तीनों लोकों में अमन्द आनन्द हो गया । महापुरुषों की सभी चेष्टाएँ हितकर ही होती हैं । कहा भी है—

“अहंकारो वि बोहस्स, रागो वि गुरुभत्तिओ ।

विसाओ केवलस्सासी, चित्तं गोयम सामिणो” ॥१॥ इति ।

अर्थात्—आश्चर्य है कि गौतमस्वामी का अहंकार बोध-प्राप्ति का कारण बन गया, राग गुरुभक्ति का

आ प्रभाणु ओक्त्व लावनाशी लावित थर्ध गौतम स्वाभोओ डारतड सुह ओडभना द्विवसे सुयोह्य वथते डेवण-ज्ञान प्राप्त ड्यु” आ डेवणज्ञान डोडडोडने जेवावाणुं निर्वोखुना डारणुअर, स्वपरप्रडशक, प्रतिपूर्ण, अव्याहत, नि-रावरण, अनन्त, अनुत्तर अने श्रेष्ठ डोय छे डेवणज्ञान साथे डेवणदर्शन पणु उत्पन्न थयुं । ते समये लवन-पति, व्यन्तर, ज्योतिषिक अने विमानवासी डेवदेवीओनो सभूड पोतपोतानी रिद्धि-समृद्धि साथे उतरी आव्ये। अने डेवणज्ञाननो उत्सव उज्ज्व्ये। तणु डोडभां अपूर्व आनंद व्यापी रह्यो। मडापुरुषेनो सर्वव्यवहार डितडर न डोय छे। डहुं छे डू—

“अहंकारो वि बोहिस्स; रागो वि गुरुभत्तिओ ।

विसाओ केवलस्सासी, चित्तं गोयमसामिणो” ॥ १ ॥

अर्थात्—आश्चर्य छे डे गौतम स्वामीनो अडडर, बोध प्राप्तिनुं डारणु थनी गथुं । राग गुरुभक्तिनुं डारणु

यस्यो राज्यां च लच्छु श्रमणो मगनाय मरावीरः कालगतः सा राजनी देवैरूपोदिता, सत्यमसि सा राजनी लोके दीपानभिक्ता इति प्रसिद्धा जाता। नवग्रहकी-नवलेखकी-काशी-कोषकका अष्टादश्याति गणराजाः सप्तापारदर् पौषपौषनासादिकमूर्धन। द्वितीये दिवसे कार्तिकशुद्धप्रतिपदि गौतमस्वामिनः केवलमरिसा देवः कृतः। तेन स दिवसो नूतनवर्षारम्भसित्येन प्रसिद्धो जातः। मगवतो न्येष्टघाता नन्दिर्यनेन मगवन्ते मोसगतं शुक्ता शोकसागरे निमग्नेन चतुर्थे कृतम्। सुदर्शनया मगिन्या समावाप्त्य निजगुरो आनाय्य चतुर्थस्य पारणमं करितम्, तेन सा कार्तिकशुद्धद्वितीया भ्रातृद्वितीयेति प्रसिद्धिं प्राप्ता। ॥सू० ११६॥

कारण वना-झार झोके केवलज्ञान का कारण हो गया।

निस रात्रि में श्रमण मगवान् मरावीर मुक्त हुए, उस रात्रि में देवी ने खूब प्रकाश किया। तभी से यह रात्रि लोक में 'दीपावली' के नाम से प्रसिद्ध हुई। काशी देश के नौ मछुकी और कोकल देश के नौ लेखकी इस प्रकार झारहों मगराजालोने संसार से पार करनेवाले दो-दो पौषपौषवास किये। दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला प्रतिपद् को देवी ने गौतमस्वामी के केवलज्ञान की मरीया की। इस कारण वह दिन नूतन वर्षारम्भ का दिन प्रसिद्ध हुआ। मगवान् को मोस गया सुन कर झोके-सागर में हवे हुए मगवान् के न्येष्ट घाता आला नन्दिर्यने ने उपवास किया। सुदर्शना वरिन ने उनको सन्तवना देकर और अपने पर पर लोकर उपवास का पारण करवाया। इस कारण कार्तिक शुक्ला द्वितीया 'मार्ग इन' के नाम से प्रसिद्ध हुई। ॥सू० ११६॥

कई पदसु श्लोक अने देवद सान्दु श्रावण भुज

ने सन्दीपे श्रमण लगवान् मरावीर अष्टा वना ते रात्रिने देवाले पृथ प्रकाश थावपी अने तेवी ॥ ते सन्दीपे श्रमण 'दिवानी' तरीहे प्रसिद्धि पापी

शाली देवान् भस्वति आतिना नव सुगुटभंश थावले अने श्रावण देवान् लेखकि आतिना नव लेख मुक्त आदार देवान् शान्तिने स सागर पार उपवासा जाण्ने पौषपौष उपवास क्यो कृता शाली देवान् थावले 'भस्विक' तरीहे अने श्रावण देवान् थावले लेखकि तरीहे जोगणपाय छे

वीने दिवसे मगवत मुक्त कोकभना दिवसे देवाले गौतमस्वामीना उपवासनेना भद्रिया भयो, तेवी ते 'नूतन वर्षारम्भ' तरीहे जोगणपाय छे

भगवानने शोक पथापी आशी श्रावणत बयेवा भगवान्ता न्येष्ट आता न दीवर्धने उपवास भयो। तेभानी सुश्रय ना नन्देन नन्दिर्यने सान्दना आपी तेभने पीताने घेर पावसु कशानु तेवी शावणी ॥ तरीहे प्रख्यात छे (सू० ११६)

टीका—‘तए णं से गोयमसामी’ इत्यादि । ततः खलु सः गौतमस्वामी श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य निर्वाणं=मोक्षं श्रुत्वा वज्राऽऽहत इव=वज्रताडितवत् क्षणं=क्षणपर्यन्त, मौनं अवलम्ब्य=आश्रित्य स्तब्धः=कुण्ठितचेष्टः जातः, ततः पश्चात्-तदनु मोहवशद्गतः=जातमोहः स गौतमस्वामी विलपति=विलापं करोति-भो भो भदन्त ! महावीर ! हा ! हा ! वीर ! एतत् किं कृतम् भगवता ? वरणपथुपासकं=स्वचरणसेवकं माम् दूरे प्रेष्य मोक्षं=निर्वाणं गतः । किम् अहं त्वां हस्तेन गृहीत्वा अस्थायम्=स्थितोऽभिव्यम् !, किं-देवानुग्रियाणां निर्वाणविभागं प्रार्थयिष्यम्=अयाचिष्ये ? येन हेतुना मां दूरे प्रेषयः=प्रेषितवान् । यदि दीनसेवकम् मां स्वेन सार्द्धम्=अनेक्यः, तदा-तर्हि किं मोक्षनगरं=मुक्तिपुरं, सङ्कीर्णं=निरवकाशम् अभिव्यवत् ? । महापुरुषास्तु सेवकं विना क्षणमपि न तिष्ठन्ति, भदन्तेन सा=सेवकसहनयनी नीतिः=परिपाटी कथं=केन प्रकारेण विस्मृता=विस्मरणपथं नीता ? इयम्=एषा प्रवृत्तिः विपरीता=विपर्यस्ता जाता । सहनयनं तु तावत् दूरे तिष्ठतु, परं=किन्तु अन्तममये=निर्वाणकाले, मां दृष्टितोऽपि=नेत्रतोऽपि दूरे प्राक्षिपः=प्राक्षिप्तवान् । कः अपराधः मया कृतः ?

टीका का अर्थ—तव गौतमस्वामी श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ सुन कर, मानों वज्र से आहत हुए हों, इस प्रकार क्षणभर मौन रह कर सुन्न हो गये ! तत्पश्चात् मोह के वश ही कर वह विलाप करने लगे, हे भगवन् ! महावीर ! हा ! हा ! वीर ! आपने यह क्या किया ? मुझ चरणसेवक को दूर भेज दिया और आप स्वयं मोक्ष चल दिये ! क्या मैं आप को हाथ से पकड़ कर बैठ जाता ? क्या आप के मोक्ष में हिस्सा माँग लेता ? फिर क्यों मुझे दूर भेज दिया ? अगर मुझ गरीब सेवक को अपने साथ लेते जाते तो क्या मोक्ष-नगर में जगह न मिलती ? महापुरुष सेवक के विना क्षण भर भी नहीं रहते, भदन्त ने यह परिपाटी कैसे खुला दी ? यह ता उल्टी ही बात हो गई ! खैर, साथ ले जाना तो दूर रहा, मुझे आँखों से भी ओझल फँक दिया ! क्या अपराध किया था मैंने, जिससे आपने ऐसा किया ? अब आप

टीका ने अर्थ—ज्यादे भगवान भडावीर निर्वाण पाभ्या ते सावणीने गौतमस्वामीने ज्येष्ठे वज्रपात अये। होय तेयो आधात लाज्ये। आ प्रभाजे क्षणवार मौन रहीने सूनभून थर्छ गया त्याख्याह मोक्षने वश थधने ते विदाप करवा लाज्या-‘हे, हे, भगवान ! भडावीर ! अदे रे ! वीर ! आपे आ शुं क्युं ? यरष्ठ सेवक जेवा भने हर मोक्षदीने आप मोक्षे सिधाज्या ! शुं हुं आपने। हाथ पकडी जेसी जवाने। इतो ? शुं आपना मोक्षभा भाग भागत ? तो भने शा माटे हर मोक्षदी दीधा ? जे भने-गसीण सेवकने आपनी साथे लध गया होत तो शुं मोक्ष-नगरमां जज्या न भगत ? भडायुरुष सेवक विना जेक क्षण रहेता नथी, आपे आ परिपाटी (नियम) डेम भूदावी दीधी ? आ तो जवणी ज वात जनी गध ! जेर, साथे लध जवानुं तो हररह्य पबु भने आंजे। साभेक्षी

यत्=यस्यात् अपरापात् एवम्=त्यं कृतम् । अधुना=तत्राहं देवानुग्रियाणां अभावे को मां गौतम गौतमेति कथयित्वा सम्बोधयिष्यति । कं जनम् अहं प्रभो प्रस्थापि ? को जनो मे=मम इत्यतः=मनोजवस्थितं प्रभं समापास्यति ? कोके मिथ्यान्यकारः=मिथ्याकृत्यान्वकारः, प्रसरिष्यति=विस्तीर्णो भविष्यति, स=मिथ्यान्वकारः, को जनः अपाहरिष्यति=दूरीकरिष्यति ? एवम्=इत्यम्, विलम्बन=विलापं कुर्वन् गौतमस्वामी मनसि=इति अचि न्ययत्=सत्य=यथार्थं, यत्=वीतरागाः, रागरहितान्तरागवर्जिता एव भवन्ति यस्य गौतम वीतरागः सः कस्मिन् रागे कुर्यात् ? यदि ह न कस्मिन्नापि । एवम्=इत्यम्, शाला अवधिम्=अवधिज्ञानं प्रयुक्ते । अवधिना=अवधि ज्ञानोपयोगेन भवद्वेषपातिने=संसारकर्मरूपपातनशील मोहकलित=मोहयुतं वीतरागोपालम्भरूप=भीमशरीरस्वामिनं प्रति उपालम्भरूपम्=उपात्ममन्त्रणं निनापराधं शाला सामयित्वा एवाचापम् कर्ततेति । अदुचित्वयति व=को जनो ममास्ति ? अहं न कस्यास्मि ? अस्मिन् संसारे न कोऽपि ममास्ति, न चाहं कस्यचिदस्मीत्यर्थः ।

वेदानुग्रिय के अभाव में कौन 'गोयमा, गोयमा' कह कर मुझे संबोधन करेगा ? किससे मैं प्रश्न पूछूंगा ? कौन मेरे मन के प्रश्न का समाधान करेगा ? लोक में मिथ्यात्व का अन्वकारक फल जायगा, अब कौन उसे दूर करेगा ? इस प्रकार विलाप करते हुए गौतमस्वामी ने मन में विचार किया-सत्य है; वीतराग, राग से वर्जित होते हैं । जिसका नाम ही वीतराग हो, वह किस पर राग रखेगा ? किसी पर भी नहीं । ऐसा जान कर गौतमस्वामी ने अवधिज्ञान का उपयोग स्थाया । अवधिज्ञान के उपयोग से उन्हें मावूम हुआ कि यह भगवान् को उपालम्ब देना मेरा अपराध है । यह अपराध सब रूपी कुरा में गिराने वाला और मोहनित है ! यह जान कर उन्होंने अपने अपराध के लिए एवाचाप किया और विचार किया कि-

पक्ष कहस्य ह्ये ? मे जेदे ह्ये अपराध ह्ये ? ते ह्ये की अपाध ह्ये ? हवे आप देवानुग्रियना अभा-
वमां हेव जेवमा जेवमा' ह्येने भवे सञ्चिधन ह्ये ? हेने हं प्रभो प्रष्टीय ? हेव आरा भनना प्रष्टीय
समाधान ह्ये ? दोहमां मिथ्यात्वेपी अवधार हेबाये. हवे हेव तेने इर ह्ये ?

आ प्रभावे विलाप ह्ये जेतमस्वाधीके भनमां विचार ह्ये ? हे सत्य छे वीतराग सभ विनाना हेव छे
नेनु नाम न वीतराग छे ते हेना पर सभ राजे ? हेरुना पर पव नही । जेभ सभछेने जेतमस्वाधीके अवधि
नानेना उपवेश ह्ये. अवधिज्ञानना उपवेशी तेभने बाजु हे ज्ञा प्रभावे अवधानने ह्येहे आपवे ते भाशे
अपराध छे आ अपराध अवश्य ह्येमां चान्दर अने मोहनित छे जेभ अवधिने तेभने पीताना अपराध भाटे
पथ्याप्ताप ह्ये अने विचार ह्ये ? हे ससारमां आइ हेव छे ? अने हं हेने छे ? जेहे छे हे आइ हेरु नही

यतः आत्मा एक एव=सजातीयद्वितीयरहित-एव परलोकात् आगच्छति च=पुनः एकाकी एव लोके गच्छति ।
न कोऽपि तेन-आत्मना सार्द्धं=सह, आगच्छति गच्छति च । तदुक्तम्-‘एगोह’ इत्यादि ।

एकः=अद्वितीयः अहमस्मि, कोऽपि मे=मम नास्ति । अहं च अन्यस्य कस्यापि नास्मि । एवम्=इत्थम्
मनसा=चित्तेन अदीनम्=उदारम् आत्मानम् अनुशासयेत् ॥१॥

इत्यादिवचनेन एकत्वभावनाभावितस्य गौतमस्वामिनः कार्तिकश्रुप्रतिपदि दिनकरोदयसमये=सूर्योदय-
समकाले एव लोकलोकाऽऽलोकनसमर्थं=लोकालोकदर्शनक्षमं निर्वाणं=मोक्षकारणतया तत्स्वरूपं कृत्स्नं सर्वपदार्थ-
साक्षात्कारितया सर्वस्वरूपम् प्रतिपूर्णं=वैकल्यरहिततवाऽविकलम्, अव्याहतम्=व्याघातवर्जितं निरावरणम्=
आवरणरहितम्, अनन्तम्=अन्तरहितम्, अनुत्तरम्=सर्वश्रेष्ठं केवलज्ञानदर्शनं=केवलज्ञानं च समुत्पन्नं=

संसार में मेरा कौन है ? और मैं किस का हूँ, क्यों कि यह आत्मा बिना किसी दूसरे आत्मा के साथ-अकेला ही
परलोक से आता है और अकेला ही परलोक में जाता है । न कोई आत्मा के साथ आता है, न साथ जाता
है । कहा भी है—

‘मैं अकेला हूँ-अद्वितीय हूँ । मेरा कोई नहीं है और मैं किसी का नहीं हूँ । इस प्रकार मन से अपने
दैन्यरहित-उदार आत्मा का अनुशासन करे !’

इस प्रकार एकत्वभावना से प्रभावित हुए गौतम स्वामी को कार्तिक श्रुक्ता प्रतिपदा को, ठीक सूर्योदय के
समय ही, लोक और अलोक को जानने-देखने में समर्थ, मोक्ष के कारणभूत, समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष
करने वाले, अविकल-सम्पूर्ण, सब प्रकार की रुकावटों से रहित, सब प्रकार के आवरणों से रहित, सब प्रका-
रकी द्रव्य क्षेत्र काल भाव संबंधी परिधियों से रहित तथा शाश्वतस्थायी और सर्वोत्तम केवलज्ञान और

अने हुं देखने। नथी, डारखु डे आत्मा भीज डे। पण आत्माना साथ बिना ओड्डो न परलोकभांथी आवे छे
अने ओड्डो न परलोकभांथी आवे छे । आत्माना साथे डे। आवतुं पण नथी अने नतुं पण नथी । कहु पण छे—

“हुं ओड्डो छु-अद्वितीय छु भाइं डे। नथी अने हुं देखने। नथी । आ प्रमाणे मनथी पोताना हेन्यरहित-
उदार आत्मानु अनुशासन करे ।”

आ प्रमाणे ओकर भावनाथी प्रभावित थये। गौतम स्वामीने डारटुं सुह ओकरे परापर सूर्योदयने सभथे न
लोड अने ओड्डोने नथुवा-हेणवाने सभर्थ मोक्षना डारखुलूत, सभस्त पदार्थोने प्रत्यक्ष करनार, अविकल-संपूर्ण,
सधणी नतनी आडबिडीयो बिनानुं, सधगा प्रकारना आवरखे। बिनानुं, सधगा प्रकारनी द्रव्य, क्षेत्र, क्षेत्र, क्षेत्र अने

जातम् । तदा=अस्मिन् समये यवनपतिभ्यन्तर्याविधिकविमानवासिभिः देवदेवीहृत्यैः=देवदेवीसमूहे
 नृदि-समृद्धिभिः, आगत्य=गौतमस्नाभिपान्थैः समागत्य केनकमरिभा=केनकमरहोत्सवः कृतः । तदा त्रैलोक्ये=
 विष्णु लोकेषु भगवदानन्दः=महाशान् प्रमोदः संजातः । महापुरुषार्थो=महात्मनः सर्वं अपि चेष्टा= क्रिया
 मोक्षरूपायककारिण्य एव भवन्ति । तथाहि-

गौतमस्त्वामिनः आङ्कुरोऽपि विषामदोऽपि बोधाय=सुम्यस्यमाप्तये आसीत्=अभूत्, तथा=तस्य रागोऽपि एवमकित=गुरुमक्तये, आसीत्, विषाद्रोऽपि=मगनाशिरणमनिवः सेदोऽपि केवलाय=केवलज्ञानमाप्तये आसीत्, इत्येवं गौतमस्त्वामिनः सर्वं वरिष्ठं विप्रम्=व्याख्यकारकम् आसीत् । इति ।

केवल दर्शन उत्पन्न हो गया। मगवान् गौतम सर्व और सर्वदर्शी हो गये।

उस समय सवनपति, ब्यन्तर, ज्यौतिषिक और विमानवासी-चारों निकायों के देवों और देवियों ने अपनी-अपनी शक्ति-समृद्धि के साथ गौतमस्वामी के पास आकर केवलज्ञान का मोत्सव मनाया। उस समय तीनों लोकों में खूब आनन्द ही आनन्द हो गया। महापुरुषों की सभी क्रियाएँ शिवकारिणी ही होती हैं। इसलिए न, गौतम स्वामी को अपनी विद्या का अहंकार हुआ तो उससे उन्हें सम्यक्त्व की भाँति हुई। अर्थात् अहंकार से प्रेरित होकर वे सगन्धान् को पराजित करने चले तो सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। इसी प्रकार उनका राग भाव शुकभक्ति का कारण बना। सगन्धान् के वियोग से उत्पन्न हुआ खेद केवलज्ञान की भाँति का कारण हो गया। इस प्रकार गौतमस्वामी का समग्र धर्म अभ्यसनक है-भनोला है।

જાણ સંભવી પ્રસાદજ્ઞા (સોમ) વિનાન તથા શાશ્વત-સ્વામી અને સર્વોત્તમ દેવળક્ષ્મી અને દેવગદ્યન ઉપસ
યમુ ભગવાન જીવમ સર્વન અને સર્વદર્શી શ્વ ગજા તે સમયે ભવનપતિ બ્રહ્મા, ભ્યોતિષિક અને વિભાનવાસી
યારે નિમગ્નના દેવો અને દેવીજાત્રે પાતપાતાની સ્તુતિ-સમુદિગી સાથે ભૌતમ સ્વામી પાસે જાવીને દેવળક્ષ્મીનેના
મહેમ્મત્ત્વ ઉચ્ચે, તે સમયે ત્રણે દોષમા જાનક આનક છાયાઈ ગયો.

મહાપુરુષોની અપળી ક્રિયાઓ હિતામરી કોષ છે જુઝાને, જોતમ સ્વામીને પોતાની વિધાનુ વ્યવિમાન થયુ તેના તેમને સમર્થત્વ પ્રાપ્ત થયુ એટલે કે આક્રમણી પ્રેરણને તેઓ અજવાનને પરાજિત કરવા ઉપરકા તે સમર્થત્વ આપ્યા. જોજ પ્રમાણે તેમનો શરણાગત યુદ્ધભજિતનું કારણ બન્યો. અજવાનના વિરુદ્ધથી ઉત્પન્ન થયેલ એક દેવતાજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કારણ બન્યો આ પ્રમાણે જોતમ સ્વામીનું વ્યાપ્ત્ય વ્યવિત આક્રમણીયક-અનેગણુ છે તે શરતે

यस्यां रजन्यां=रात्रौ च खलु श्रमणो भगवान् महावीरः कालगतः=कालधर्म प्राप्तः सा रजनी देवैः उद्घोषिता=दिव्यज्योतिषा प्रकाशिता तत्प्रभृति तदादि सा रजनी लोके 'दीपावलि' इति नाम्ना प्रसिद्धा जाता । नवमल्लकी-नवलेच्छकी-काशी-कोसलकाः=मल्लकीजातीयाः काशीदेशस्य नव गणराजाः लेच्छकीजातीयाः कोसलदेशस्य नव गणराजा इत्येवं अष्टादशपि गणराजाः संसारपारकरं-भवसमाप्तिकारि पौषधोपवासद्विकं-पौषण पौषः=धर्मपुष्टिः-तं धत्ते=शुक्लातीतिपौषधः, स चासावुपवासश्चेति, यद्वा-पौषधम्=प्रागुक्तव्युत्पत्तिकम् अष्टम्यादि-पर्वदिनजातं तत्रोपवासः-उप=आर्हास्त्यागमुपेत्य वासः=निवसनं-पौषधोपवासः, तस्य द्विकं=द्वयम्-चतुर्दश्याममा-वास्यायां च पौषधोपवासम् अक्षुर्वन्=कृतवन्तः । द्वितीये दिवसे=दिने कार्तिकशुद्धप्रतिपदि गौतमस्वामिनः केवलमहिमा=केवलज्ञानमहोत्सवो देवैः कृतः । तेन हेतुना स दिवसः=कार्तिकशुद्धप्रतिपदिनं नूतनवर्षारम्भ-दिवसत्वेन प्रसिद्धो जातः । भगवतः-श्रीवीरस्वामिनः ज्येष्ठभ्रात्रा नन्दिवर्धनेन भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनं प्रोक्षन्तं=

जिस रात्रि में श्रवण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, वह रात्रि देवों ने दिव्य प्रकाशमय बना दी थी, तभी से वह रात्रि 'दीपावलि' इस नाम से प्रसिद्ध हुई । मल्लकी-जाति के काशी देश के नौ गणराजाओं ने तथा लेच्छकी जाति के कोसल देश के नौ गणराजाओं ने, इस प्रकार अठारहों गणराजाओं ने संसार जन्ममरण का अन्त करने वाले दो-दो पौषधोपवास किये । पौष अर्थात् धर्म की पुष्टि करने वाला उपवास पौषधोपवास कहलाता है । अथवा धर्म का पौषण करने वाला, अष्टमी आदि पर्व-दिनों में किया जाने वाला, आहार आदि का त्याग करके जो धर्मभ्यानपूर्वक निवास किया जाता है, वह पौषधोपवास कहलाता है । दूसरे दिन अर्थात् कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को देवों ने गौतम स्वामी के केवलज्ञान का महोत्सव मनाया था इस कारण वह दिन-कार्तिक शुक्ला प्रतिपद् नवीन वर्ष के आरंभ का दिन कहलाया ।

श्रमण भगवान् महावीर अणधर्म पाभ्या, ते रात्रिने देवोऽग्रे दिव्य प्रकाशयथी प्रकाशित इही नाभी हुती त्भारथी ते रात्रि 'दीपावलि'ना आ नामथी प्रसिद्ध थध् । मल्लकी जातिना आशी देशना नव गणराजन्तोऽग्रे तथा लेच्छकी (लेच्छवी) जातिना कोसल देशना नव गणराजन्तोऽग्रे, आ रीते अढारे गणराजन्तोऽग्रे संसार जन्ममरणुनो अन्त दावनार अे अे पौषधोपवास कर्था. पौषध ओटवे ऊ धर्मनी पुष्टि करनार उपवास पौषधोपवास कहेवाय छे. अथवा धर्मवुं पौषधु करनार, आठम आदि पर्व दिने कराता, आहार आदिनो त्याग करीने अे धर्मभ्यान पूर्वक निवास कराय छे, ते पौषधोपवास कहेवाय छे. भीने हिवसे ओटवे आर्तक शुही ओकसे देवोऽग्रे गौतम स्वामीना देवणसानेनो महोत्सव उब्भये। हुतो. ते आरखे ते हिवसे-आर्तक शुही ओकम-नूतन वर्षनो प्रथम दिवस कहेवाये।

मोक्षमात्र भुत्वा श्रोत्रसागरे=श्रीश्रीस्वामिभिराविद्योगजनिवश्रोत्रसागरे निमग्नेन सत्ता वतुर्ये=वतुर्यमक्त कृतम्। सुदर्शनया=सुदर्शनानामन्या नन्दिकर्षणस्य भगिन्या ए=नन्दिकर्षणम् आवाप्त्य=पर्यवचनेनानाऽऽभामित कृत्वा निजपुरे=स्वमन्त्रे भानाव्य वतुर्यस्य=वतुर्यमक्ततपसः पारणक कारितम् तेन=सा काविकुब्जद्वितीया 'मातृ द्वितीया' इति=मन्त्रेन नाम्ना प्रसिद्धि=पल्याति प्राप्ता ॥श्रु०११६॥

भगवद्वयो परिवारवर्णण

मृगम्=तेणं काष्ठेणं वेणे समणं समणस्त सगन्धयो महावीरस्त इदं पुरुषार्थनिर्णय (१४००) चउरस्त सप्तसप्तार्द्धं उच्छिन्ना साद्रुसपया होत्वा। वरुणवासापर्यभिर्णि (३६०००) मरुतीसप्तमणीसाःस्तोत्रं उच्छिन्ना सप्तमणीसपया। संभवोक्तविकल्पमार्गे (१५९०००) परुणसद्विहस्तसम्परिणं एगमयसहस्रममोवासगण उच्छिन्ना सप्तवासासप्तपया। सुक्ता रेवपर्यभिर्णि (३१८०००) मरुतस्त सप्तसम्परिणं तिसप्तसहस्रसप्तमयो-वासियाणं उच्छिन्ना सप्तगोवासियसपया। अजिण्यं विजसकासार्णं सन्वत्तरसन्निवार्णं विजन्सेव अचिदर वागाभाणं तिसयाणं चउरपुत्रुमी उच्छिन्ना चउरसपुत्रियसपया। अदसपपण्यं वेरससयाण ओहिना बीज उच्छिन्ना ओहिनायिसंरया। उष्यम्बरनानैरमणराण सप्तसयाणं कृवन्नाणीणं उच्छिन्ना केवन्नायिसंरया। अवेयाणं देविदिव्या सप्तसयाणं वेउरुमी उच्छिन्ना वेउरुवियसंरया। मृगजनेषु दीयेषु दोषु य सप्तरेषु पञ्चपण्यं तस्मिन्निदियाण मणोग ए मावे ज्ञाणमाणाण पंचसयाणं विउल्लमर्ग उच्छिन्ना विउल्लमर्संरया। सवेचमधुयापुराए परिसाए सए अषाजियाणं चउरसयाणं सार्णि उच्छिन्ना सासपया होत्वा। सिद्धाय जार सवदुस्सप्यहीणां सप्तसयाणं अवेवासीण उच्छिन्ना सपया, एवं वेव चउरमसयाण अजियायिम्पिणा उच्छिन्ना संपया, एवं सव्या एगनीसहसया सिद्धसंपयाण अणुसरोवसाहाणं उच्छिन्ना अणुसरोवसाहायसंपया होत्वा। दुषिवा य भंतगदभूमी होत्वा, तज्जहा=जुगेतगदभूमी य परियायसगदभूमी य ॥श्रु०११७॥

भगवान् महावीर के अष्टौ प्राता नन्दिरपन्ने, अगवान् को मोक्ष प्राप्त हुआ मुन कर, श्रोत्र के सागर में निमग्न होकर उपवास दिया या। तब नन्दिकर्षण की वरिष्ठ सुदर्शना ने उन्हें सान्त्वना दे कर और अपने घर में भाकर उपवास का पारणा कराया। इस कारण कार्तिक शुक्ला द्वितीया 'माई-दूज' के नाम से विख्यात हो गई ॥श्रु०११६॥

भगवान् महावीरने शीतल आर्ष नन्दिकर्षण, अगवाने शिव प्राप्त होये ते आश्वीने, शीतल आश्वीने शीतले उपवास होये होते तब नन्दिकर्षण ने उन सुदर्शनाजे तेभने सान्त्वना दर्शने अने पारणा देर आश्वीने उपवासउ पारणा कराये का आदले आदक शशी नील आर्ष आश्वीने नाम भगवात अर्चये ॥श्रु०११६॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य इन्द्रभूतिप्रभृतीनां चतुर्दशसहस्र-
साधूनामुत्कृष्टा साधुसम्पदा जाता। चन्दमवाद्याप्रभृतीनां षट्त्रिंशच्छ्रमणीसाहस्रीणामुत्कृष्टा श्रमणोसम्पदा,
शङ्खपुष्कलिप्रभृतीनामेकोनषष्टिसहस्राभ्यधिकानामेकशतसहस्रश्रमणोपासकानामुत्कृष्टा श्रमणोपासकसम्पदा, सुलसा-
रेवतीप्रभृतीनामष्टादशसहस्राभ्यधिकानां त्रिशतसहस्रश्रमणोपासकानामुत्कृष्टा श्रमणोपासिकसम्पदा, अजिनानां
जिनसंकाशानां मर्वाक्षरसंनिपातिना जिनस्येवावितथं व्याकुर्वतां त्रिशतानां चतुर्दशपूर्विणामुत्कृष्टा चतुर्दशपूर्वि-
सम्पदा, अतिशयप्राप्तानां त्रयोदशतानाम् अबधिज्ञानिना उत्कृष्टा अवधिज्ञानिसम्पदा, उत्पन्नवरज्ञानदर्शनधराणां
सप्तशतानां केवलज्ञानिना उत्कृष्टा केवलज्ञानिसम्पदा, अदेवानां देवर्दिप्राप्तानां सप्तशतानां वैक्रियिणां उत्कृष्टा

भगवान् के परिवार का वर्णन

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर की
इन्द्रभूति आदि चौदह हजार साधुओं की उत्कृष्ट साधु-संपदा था। चन्दनवाला आदि छत्तीस हजार साधियों की
उत्कृष्ट साधो संपदा थी। शंख, पुष्कलि आदि एक लाख उनसठ हजार आचर्यों की उत्कृष्ट आचर्यसम्पदा
थी। सुलसा रेक्ती आदि तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट श्राविका-सम्पदा थी। जिन नहीं
परन्तु जिन के समान, सर्वाक्षरमन्त्रिणी और जिन की भौति ही सत्य प्ररूपणा करनेवाले चौदह पूर्वधारकों की
उत्कृष्ट तीनसौ चौदह उत्कृष्ट पूर्वधारी-सम्पदा थी। अतिशय को प्राप्त तेरहसौ अवधिज्ञानियों की अवधि-
ज्ञानी-सम्पदा थी। सातसौ उत्पन्न-र ज्ञानदर्शन को धारण करनेवाले केवलियों की केवली-सम्पदा थी।
देव न होने पर भी देव-कुट्टि को प्राप्त मातसौ वैक्रियलब्धि के धारकों की वैक्रियिक-सम्पदा थी। अर्हार्ह

भगवान् परिवारन् वरुण

भूणो अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि ते काल ते समये श्रमण भगवान् महावीर ने, धन्द्भूति विगेरे यौह
हुअर साधुओं की उत्कृष्ट साधुसंपदा होती। यदनभाणा विगेरे छत्रीश हुअर साधुओं की उत्कृष्ट संपदा होती।
श य, पुष्पकलि विगेरे ओक्ष दाण ओगबुसाह हुअर श्रावकों की संपदा होती सुलसा देवती विगेरे त्रयु दाण
अदार हुअर श्राविकों की संपदा तेमने होती। उन नहि पणु उन समान, सर्वाक्षरसन्निपाती अर्थात् सर्वश्रुतना
ब्धुनार अने नेनी वृत्ति सत्य प्ररूपणा करवात्री, ओवा यौह पूर्वधारकों की, त्रयुसा उत्कृष्ट यौह पूर्वधारी संपदा होती।
अतिशयनी प्राप्तिवाणा तेरहसौ अवधिज्ञानी-अवधिज्ञानी संपदा होती। सातसौ उत्पन्न वरज्ञान दर्शनने धारण करवा-
वाणा देवज्ञानी-देवणी संपदा होती। देव नहि पणु देवभक्तिने प्राप्त मातसौ अनिओनी वित्त्त संपदा होती।

वैकिंचिसम्पदा, अर्धवर्तयेयु द्वीपेषु इयोध समुद्रयोः पर्याप्तकानां सच्छिद्वप्रेन्द्रियाणां मनोगतान् भगवान् जानतां पञ्चवतानां विपुलमयीनां उत्कृष्टा विपुलमयिसम्पदा, सर्वदमदुनासुरार्थां परिपदि वाये अपरानिनां चतुश्चतानां चादिनां उत्कृष्टा चादिसंपदा जाता। सिद्धानां यावत्-सर्वदुःखमहीनानां सप्तशतानामन्वेषासिनां उत्कृष्टा संपदा, एवमेव चतुश्चतानामार्पिकासिद्धानां उत्कृष्टा संपदा, एवं सर्वा एकचिद्वतिः श्रुतानि सिद्धसंपदा भासीव। गतिरन्यानां स्थितिरन्यानां गमिष्यद्राजामष्टवतानामनुषरोपपत्तिकानामुत्कृष्टा अनुषरोपपत्तिस्तम्पदाऽऽसीत्। द्वित्रिणा चान्तकृतयुगमिष्य सयथा-युगान्तकृतयुगमिष्य पर्यायान्तकृतयुगमिष्य ॥सू० ११७॥

टीका—तेषां कावेभ्यं तेभ्यं समर्पणं? इत्यादि। तस्मिन् काळे वरिष्य समये भ्रमणस्य भगवतो महावीरस्य इन्द्रभृति-महवीरानाम्-इन्द्रभृतादीनां चतुश्चतस्रस्र १४००० साधूनां उत्कृष्टा साधुसम्पदान्साधुसम्यचिरासीव।

द्वीपों और समुद्रों के पर्याप्त संगी वैकिंचिप मीलों के मनोगत भावों को जाननेवाले पाँचसौ विपुलमयि ज्ञानि योंकी विपुलमयि-सम्पदा थी। वेदों, मनुष्यों और असुरों सहित गरिष्वर्ग, चन्द्र-विवाह में, परानित न होनेवाले-चारसौ चादियों की उत्कृष्ट वादी-सम्पदा थी। सिद्धों यावत् समस्त दुःखों से रहित सातसौ सिद्धों की उत्कृष्ट सिद्ध-सम्पदा भी। इसी प्रकार चौदहसौ आर्यिका सिद्धों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। इस तरह दोनों का मिश्रकर इकस सौ सिद्धों की सम्पदा थी। गतिरन्याण, स्थितिरन्याण और भावीभद्र भद्र सौ अनुषरोपपत्तिकों (अनुषर विमान में उत्पन्न होने वालों) की उत्कृष्ट अनुषरोपपत्तिक सम्पदा थी। दो प्रकार की भन्तकृतयुगमिष्य थी। जैसे-युगान्तकृतयुगमिष्य और पर्यायान्तकृतयुगमिष्य ॥सू० ११७॥

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में भ्रमण भगवान् महावीर की इन्द्रभृति आदि चौदह हजार साधुओं की उत्कृष्ट साधु-सम्पदा थी; अर्थात् भगवान् के चौदह हजार साधु थे। चन्द्रनवाळा आवि छप्पस

अर्धी द्वीप अने छे समुद्र चरित्तना पञ्चोसस्रर्शी पञ्चोस्र्य लोवेना मनोभव लोवेने अनुषवाणा पञ्चसो विपुलभृति गान्दीजीनी विपुलभृति-सुभा कृती, देवा, मनुष्या अने असुरा सहितनी गरिष्वर्ग्य वाह-विवाहमां परानित न पवापना आसो वादीजीनी कुरुषु वादीम पञ्च कृती सिद्धी यावत् समस्त दुःखोणी रहित भावसे सिद्धोनी कुरुषु सिद्ध-संपदा कृती, आ प्रार्थि कोसे आदिना-सिद्धोनी उत्कृष्ट संपदा कृती, आ प्रार्थने अने भणी ओषवीसोसे सिद्धोनी संपदा कृती, अतिरन्याण स्थितिरन्याण अने जानीभद्र आसो अनुषरोपपत्तिको अनुषर विमानमां अनुषवाणानी कुरुषु संपदा कृती, छे प्रार्थनी अनुषरोपपत्तिक कृती (१) युगान्तकृतयुगमिष्य, (२) पर्यायान्तकृतयुगमिष्य (सू० ११७) निशेषार्ध—ते राज अने ते सभसे आभय लजवान भवोवीर्य शासन केदस जमु देवपन्तु क्षत छे कोह केनर पुरेज स मु पञ्चोष वाली रखा कृता, भगवानना प्रवचनानां केष देवन कापी लोवेने सासायानरभाषी भग्यानी

ચન્દનચાલાપ્રથતીનાં=ચન્દનવાલાદીનાં-પટ્ટત્રિશચ્છ્રમણીસાહસ્રીણાં=ષટ્ત્રિશતસહસ્રપરિમિતસાચ્વીનામ્ ઉત્કૃષ્ટા શ્રમણી-સમ્પદા-સાધ્વીરૂપસમ્પત્તિરાસીત્ । શઙ્ખપુષ્કલિપ્રથતીનાં-શઙ્ખઃ શતકારનામા, પુષ્કલી ચ શ્રમણોપાસકૌ તત્પ્રથતીનાં=તદાદોનામ્ એકોનપશ્ચિસહસ્રાશ્યધિકાનામ્=એકોનપશ્ચિસહસ્રોત્તરકાણામ્ એકશતસહસ્રશ્રમણોપાસકાનામ્=એકોનપશ્ચિસહસ્રાધિકૈ ફલસંલ્ચકશ્રાવકાણામ્ ૧૫૯૦૦૦ ઉત્કૃષ્ટા શ્રમણોપાસકસમ્પદા-શ્રાવકરૂપસમ્પત્તિઃ જાતા । તથા-મુલસા રેવતી પ્રથતીનામ્-અષ્ટાદશસહસ્રાશ્યધિકાનામ્=અષ્ટાદશસહસ્રોત્તરકાણાં, ત્રિશતસહસ્રશ્રમણોપાસિકાનાં=અષ્ટાદશસહસ્રાધિક લક્ષત્રયસંલ્ચકશ્રાવિકાણામ્ ઉત્કૃષ્ટશ્રમણોપાસિકાસમ્પદા શ્રાનિકાસમ્પત્તિઃ જાતા । તથા-અજિનાનામ્=અસ

હજાર સાધિયોં કી ઉત્કૃષ્ટ સાધ્વી-સંપદા થી, અર્થાત્ છત્તીસ હજાર સાધિયોં થીં । શંખ, શતક-અપરનામ-ચાલે તથા પુષ્કલિ વગેરેક એક લાખ ઉનસઠ હજાર (૧૫૯૦૦૦) શ્રાવકોં કી ઉત્કૃષ્ટ શ્રાવક-સમ્પદા થી । મુલસા રેવતી (રેવતી ગ્રહ ભગવાનકો ઔપચ દાન દેને ચાલી થી ।) આદિ તોન લાખ અઠારહ હજાર શ્રાવિકાઓં કી ઉત્કૃષ્ટ શ્રાવિકા સમ્પદા થી । જિન અર્થાત્ સર્વજ્ઞ ન હોને પર મી સર્વજ્ઞ ઔર સર્વાશ્વર-સન્નિપાતી અર્થાત્

દેવાને હોતો. તેમના પ્રવચનની પ્રથમ ભૂમિકા વૈરાગ્ય હતી. આ પ્રવચનો એટલા બધા નિર્દોષ હતા અને શીતલ વહેના કે યોગ્ય હોવાનું વક્ષણ આ તરફ થઈ રહ્યું હતું ને સંસારતાપમાથી ઉગરવાનો ભાગ ભગવાનની નિર્દોષ અને નિર્મળ વાણી છે, એમ સમજી ધણા આત્માર્થી અને મોક્ષાર્થી હોવાને સાધુવ્રતો અંગીકાર કર્યાં.

પુરુષો ઉપરાત નિર્મળ અને સરળ હૃદયની મહેનો પણ દ્વઉદ્ધાર નિમિત્તે ભગવાન પાસે ક્ષીકૃત થઈને ભગવાનની અમૃતમય વાણીનું પાન કરવા લાગી. આ વાણી દિલને ઠંડુંકે આપનારી હોવાથી આત્મરસ ભભવા લાગ્યો. તેના પ્રતાપે સ્ત્રી-સુમુદ્રાચે મહાવ્રતો અંગીકાર કર્યા, જેમની સંખ્યા છત્રીસ હજારની હતી, પુરુષો કરતાં સ્ત્રીઓના હૃદયો ધર્મથી વધારે રંગાય છે, તેથી તેમની સંખ્યા પુરુષો કરતાં વધતી ગઈ. તેમનામાં સૌથી મોટા અને અગ્રેસરપદે અંદનખાળા હતાં.

જેઓ સાધુપણું દેવાને અગ્રહત નિવડયા તેઓએ આર વ્રત ધારણ કર્યાં, એટલે સંસારમાં રહી પાપભક્ષિ બની સર્વ પ્રકારના વ્યાપારો તથા ભોગ અને ઉપભોગની વસ્તુઓનું પરિભ્રમણ કરી ધાર્મિક ક્રિયાઓ કર્યા કરતા. નીતિ-પૂર્વક ધન પ્રાપ્ત કરી. નિષ્પાપી જીવન વિતાવવાના પ્રયાસો તેઓ કરતા. આવો વર્ગ ધણો મોટો હતો અને તેની સંખ્યા એક લાખ યોગણુસાહ હજારની થઈ આ વર્ગને ‘શ્રાવક વર્ગ’ કહેવામાં આવ્યો, જે ભગવાનના પ્રરૂપેલા સિદ્ધાંતો અનુસાર ચાલી તેમના અનુયાયીઓ ગણાતા હતા. તેઓમાં શંખ જેનું ધીજી નામ થતક હતું તે અને પુશ્કલિ વિગેરે સૂખ્ય હતા. સંસારમાં રહેતો સ્ત્રીવર્ગ પણ ભગવાનના પ્રરૂપેલા આર વ્રતોને અંગીકાર કરી જીવન

यशानां त्रिनसङ्क्रान्तानां=त्रिनद्वययानाम् सर्वांशरसनिपातिनां सर्वे च ते अक्षरसंनिपाताः=अक्षरसंयोगाः=सर्वांशरससंनि-
 पाताः, ते सन्ति येषां ते तथा=विदितसकलव्याप्त्या इत्यर्थः, तथा, पुनः कहेद्वयानाम् ? त्रिनस्येष=त्रिनव-
 मविवय=यथायं, न्याकुर्वय=मयनिर्णयं कुर्वतां त्रिदशानां=त्रयप्रयसंल्यकानां चतुर्दशसंल्यकपूर्वपरिणाम् उत्कृष्टा
 चतुर्दशसंल्यकानाम्। तथा=अतिथयमाप्तानाम्=प्रमाणवशाद्विनाम् त्रयोदशदशानां=त्रिदशवर्षाधिकैरक्षरसंल्यकानाम्
 अत्रिदशानिनाम्=प्रवचिद्वानवताम् उत्कृष्टा अत्रिदशानिसम्पदा=अवचिद्वानसम्पदभूमिरूपसम्पत्तिः, तथा=उत्तमवर
 द्धानदर्शनपरानाम् उत्कृष्टा अत्रिदशानिसम्पदा=सप्तदशवर्षाणां सप्तदशवर्षाणां सप्तदशवर्षाणां सप्तदशवर्षाणां केवल-
 द्धानिनाम् उत्कृष्टा कवचप्रशानिसम्पदा, तथा चतुर्दशानां=देवविम्बानामपि देवविम्बानां सप्तदशानां=सप्तदशवर्षाणां
 वैचित्र्याणां=वैचित्र्यवशिक्रियतां उत्कृष्टा वैचित्र्यवशिक्रियतां, तथा=अर्द्धवर्षेषु द्वीपेषु=जम्बूद्वीप=वातकील्लव पुष्क-

सम्पूर्णं भूतं कृत्वा, तथा यथार्थं अर्थात् सर्वत्र जैसा उत्तर देने वाले बौद्ध पूर्वचारियां की तीन सौ उत्कृष्ट
 चतुर्दशवर्षाणी सम्पदा थी। अवचिद्वान को धारण करनेवाले प्रमाणवशाती तरह सौ भूमियों की उत्कृष्ट अवधि
 द्धानी सम्पदा थी। उत्तम हुए द्धान और दर्शन को धारण करने वाले सात सौ फेवल्लानियों की उत्कृष्ट
 कवची=सम्पदा थी। दश न होने पर भी देव-ऋद्धि अर्थात् वैचित्र्यलब्धि को धारण करने वाले सात सौ भूमियों की
 उत्कृष्ट सम्पदा थी। जम्बूद्वीप, वातकील्लवद्वीप और पुष्कराध्वीद्वीप=दश तरह अर्द्ध द्वीपों के तथा स्रवण

निवन्देन, ते भूमिमा नन्देनी सञ्चया पञ्च त्रयुवाच अक्षर दब्धननी कृती, तेमा अभ्यपद्ये सुवसा देवी अने
 देवती देवी कृती देवती केवल्लि कभवानने औपधनु दान आभु कृती

त्रिन नद्वि पञ्च त्रिन त्रिण कोटि के अर्ध स नद्वि पञ्च अर्ध स भान नेटु सान कृती, 'सर्वाक्षरसंनिपाती' कोटि
 स 'पञ्च' भूतयानना दाया, अने यथार्थ=कोटि के अर्ध स भान उतर आषवावाणा कोटि पूरु सान धारण कववावाणा
 और पूरुअर्धकोटी त्रयुवानी सञ्चया कृती आ कृत्वातीकोने उपदेश सर्व न लेवा न छे आवा भूतयाननी।
 'सुवसाञ्चिमा' तरीके कोणनाम छे धारण के नेम देवलीकोने केवल्लान प्रत्यक्ष कोम छे तेम आ भूतदेवलीकोने
 केवल्लान परेश कोम छे देवलीकोना नेटु न तेमा अनुमान प्रमाणवी न आवी सहे छे अने कही सहे छे आवा
 'देवलीको' आमान भानदेवलीको अकेवाय भूतदेवलीको ने देवलीको नद्वि प्रत्यक्ष अने परेश नेटो न दश कोम छे

प्रमाण पाटी सहे तेमा ऊर्ध्व यजेपारक अने अवचिद्वानना धारण जेवा भूमिनी सञ्चया तेरेसे। नेटवी
 कृती उरनन सवक सान अने सर्वानना धारण जेवा साने केवल्लानीको प्रभु पासे कृता देव नद्वि पञ्च देव नेटवी
 विम्बयानिना धारण जेवा विचित्रवन्धन धारण कववावाणा आतसे। वैचित्र्यकोना स भ प्रभु पासे कृते। न सुधीय,

राद्रूपेषु द्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोः पर्याप्तिकानां सञ्ज्ञपञ्चेन्द्रियाणां मनोगतान्=हृदयस्थितान् भावान्=अभिप्रायान्
 जानानां पञ्चशतानां=पञ्चशतसंख्यकानां विपुलमतीनाम् उत्कृष्टा विपुलमतिसम्पदा, तथा=सदेवमनुजामुरायाम्=
 देवमनुज्यामुरसहितार्या, परिपदि=सभाया, वादे=शास्त्रार्थविचारे अपराजितानाम्=अपरास्तानां चतुश्शतानां=चतुश्शत-
 संख्यकानां वादिनाम् उत्कृष्टा वादिसम्पदा जाता। तथा=सिद्धानां 'यावत्'—पदेन बुद्धानां, मुक्तानां, परिनिर्वृत्तानाम्,
 इत्येपा संग्रहः, सर्वदुःखप्रहीणानां=प्रहीणसर्वदुःखानां सप्तशतानां=सप्तशतसंख्यकानाम्=अन्तेवासिनां=शिष्याणाम्
 उत्कृष्टा संपदा, एवमेव=अनेन प्रकारेण चतुर्दशशतानां=चतुर्दशशतसंख्यकानाम् आर्यिकासिद्धानाम्=सिद्धिप्राप्तानां

समुद्र और कालोदधिसमुद्र:-इन दो समुद्रों के प्रयाप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मन के भावों पर्यायों को जानने
 वाले पाँच सौ विपुलमति-मनःपर्ययज्ञान के धारक विपुलमतियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। देवों, मनुष्यों और
 असुरों से सहित सभा में शास्त्रार्थ के विचार में पराजित न होने वाले चार सौ वादियोंकी उत्कृष्ट वादी-
 सम्पदाथी। सिद्ध, और 'यावत्'—पद से—बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत तथा सब दुःखों का अन्त करने वाले सातसौ
 सिद्धों की उत्कृष्ट संपदा थी। इसी प्रकार चौदहसौ 'सिद्धि को प्राप्त साधवियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

धातुकी भंड और अर्ध पुष्करार्ध द्वीप, जोवा अही द्वीपों तथा लवण समुद्र और शबोहधि समुद्र जोवा ये समुद्रोंमां
 रहेवा तमास पर्याप्त प्राप्त करेव सशालेयानां मनोगत भावों और वारंवार करती मननी अवस्थाने लवणवाणा
 विपुलमति मनःपर्याय ज्ञानना धरवावाणा विपुलमतियोंनी संध्या पाथसो नेटली हली. देव-मनुष्य और
 असुरों मक्षितनी सभामा यास्वार्थ करवामा कदापि पणु परलुत न थाय तेवा वादीज्योनी संध्या यारसोनी हली.

उपर लवणवेदा मनःपर्ययज्ञानना धारकोमा ये विभाजो होय छे. (१) ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानवाणा.
 (२) विपुलमति मनःपर्ययज्ञानने धारण करवावाणा. तेमा विपुलमति ज्ञान ऋजुमतिज्ञान करता सूक्ष्मभावोने तथा
 मनमा यता परिवर्तनेने लवणी शडे छे ऋजुमतिभाजानी संध्या दर्शाववामा आवी नथी. ऋजुमतिज्ञान धराववा-
 वाणा आरभाजो द्रव्य और लान मननी सपाटीज्ये तरता भावो-विचारोने लवणी शडे छे. त्यारे विपुलमतिवाजा
 मनना अंतर्गतमां जे विचार उपस्थित थता होय तेने निशेषणल्ये लवणी शडे छे.

अहि' वादीज्योनी वात करी ते वादीज्यो जोकातिक वाह करीने पोताना संप्रदायने स्थिर करवामां प्रथर और
 प्रजल स्ता नेम अहि' कहेवुं नथी, पणु अनेकांत दृष्टिथी वातने सिद्ध करवावाणा आ वादीज्यो हता. सिद्धयावत्
 ओटवे सिद्ध पुद्ध मुक्त परिनिर्वृत और सर्व दुःखोना अंत करनार जोवा सातसो सिद्धोनी संध्या हली. आ पुरुष
 सिद्धो उपरात ओ-सिद्धो पणु हता, जेभने 'आर्यिकज्यो'ना नामथी जोणणवामां आवे छे. आ सिद्ध आर्यिक-

आयिक्यात् सम्पत्, एतद्व्यत्ययेन प्रकारेण प्रयवतः सर्वा एकवचिनि। अत्रानि एकवचिनिश्चितपरिमित सिद्धसम्पत्त्या आसीत्। तथा-नतिक्रम्याभावात् अन्तरमये स्त्रोभनगविमताम्-मोक्ष्यमाणानां, स्थितिक्रम्याणानाम्-देवलोके प्रयश्चित्तस्तारोपमस्त्विति प्राप्यमाणानां, आगमिष्यद्ग्राणां-अविष्यद्ग्रे मनुष्यत्वं प्राप्यमोक्षरूपमत्र प्राप्यमाणानां अतएव अष्टव्रतानाम्-अष्टव्रतसंस्कारानाम् अनुष्ठारोपपाठिकानाम् उत्कृष्टा अनुष्ठारोपपाठिकस्यदा आसीत्। तथा-द्विविचित्रिमकारा च अन्तर्कृतयुग्मि-आसीत्, तथा-युगान्तकृतयुग्मिः १ पर्यायान्तकृतयुग्मिः २ तत्र-युगान्तकृतयुग्मिः-युगान्ति-कालान्तरनिरोधः, तानि च क्रमवर्तीनि, तत्साधन्यादि ये क्रमवर्तीनो युगव्यवस्थित्यवस्थाः।

इस तरह सब विषय कर इकीस सौ सिद्धों की उत्कृष्ट सिद्ध-सम्पदा थी। आगे अनन्तर मन् में मुक्ति प्राप्त बोले; देवलोके में संतोस सागरोपय की स्थिति प्राप्त करने बोले तथा जो आगे मन् में मनुष्य होकर मोक्षस्व मन् को प्राप्त करेंगे ऐसे आठ सौ अनुष्ठारोपपाठिकों (अनुष्ठारविमान में जानेवालों) की उत्कृष्ट अनुष्ठारोपपाठिक सम्पदा थी।

तथा-दो प्रकार की अष्टकृत युग्मि-वी-(१) युगान्तकृतयुग्मि और पर्यायान्तकृतयुग्मि। काल की एक प्रकार की अवधि को युग करते हैं। युगक्रम से होते हैं। इस समानता के कारण एक, द्वय, त्रय, चतुर्विध आदि के क्रम से होने वाले युग कहलाते हैं। उन युगों से प्रमित मोक्षगमियों के काल को युगान्तकृतयुग्मि करते हैं। आशय यह है कि भगवान् मरावीर के तीर्थ में, भगवान् मरावीर के निर्वाण से आरंभ करके जन्मस्त्वामी के निर्वाण परन्तु का काल युगान्तकृतयुग्मि है। इस के पश्चात् मोक्ष गमन का विच्छेद

कोनी संभाने आंकडे। ओटोस सुधी भोलेबो। ओता नभा श्री-पुरु सिद्धो भणो कोटवीभये। इतल न्ना भवभां लभाननी अमरि तामुष्याभां विजयी वहा। इतल, तेओभां डेटव्हा। एवा आवता भवभां देवलोका। त्रेवीश साभरो-पमत आशुय। तर्ह देवपुंसे देवपन्न। कडी ने त्वापयथीति। भव अनुभवे। हरी ओक्षनी प्राप्ति। कथे, कोना अनुत्तर विमानभां देवपन्न कवापगकोनी अम्भा आम्भे। नेटवी। इतवी।

वे प्रभरनी 'अतएव अमिश्र'। हरेवाभां आवी। से (१) मुत्ता-पुत्त अमिश्र, (२) पथेय-पुत्त अमिश्र। हाणनी कोस प्रभरनी। कडने 'युग्म'। हरे। से। भागना। पय् अक्कासि। इति। वे। वापता। पाइवाभां आम्भा। से। आव। कोस। भाग। बाने। सुग। हरे। से। आवा। सुओना। पय्। हम्। योम। से। हाएव्। से। तेनी। पय्। हम्। जद। अवस्था। से, से। युग्मभां। सुम्भाननी। अमिश्र। को। उरु, सिक्क, प्रसिक्क, निरिहनी। अतुङ्गे। अवस्था। को। कटी। से। तेनी। कोस। जने। आव। देवलोका। हम्। यम्भे। यम्भा। हावा। कोस। ते। सुग। हम्। जद। सुग। वरी। से। कोस। पय्। से। पय्। यम्भे। सिक्क। निरिह।

પુરુષાસ્તેડપિ યુગાનિ, તૈઃ પ્રમિતા અન્તકૃતાનાં=નિર્વાણગામિનાં શ્રુમિઃ=કાલઃ મગત્તો મહાવીરસ્વામિનસ્તીથે તન્નિર્વાણાદારસ્ય જમ્બૂસ્વામિનો નિર્વાણાવધિકો નિર્વાણગામિના કાલ इत्यर्थः । ततः परं निर्वाणगमनमुच्छिद्यम् । द्वितीया-पर्यायान्तકૃતશ્રુમિઃ-પર્યાયઃ=મગત્તઃ કેવલિત્વપર્યાયઃ તસ્મિન્-સતિ અન્તો મગ્ગાન્તઃ કૃતો ચૈસ્તેપાં શ્રુમિઃ-શ્રુક્તિમાર્ગશ્રુમિકા, સા પર્યાયાન્તકૃતશ્રુમિઃ-મગત્તમહાવીરસ્ય કેવલજ્ઞાનોત્પત્ત્યનન્તરં વર્ષચતુષ્ટયાનન્તરમાર-વ્યશ્રુક્તિમાર્ગશ્રુમિરિતિ માત્રઃ । इति श्रुतिद्वयम् ॥सू०११७॥

હો ગયા । શ્રુક્તિમાર્ગ કી શ્રુમિ પર્યાયાન્તકૃતશ્રુમિ કહ્ણતી હૈ । મગગાન્ કી કેવલી-પર્યાય કો યદ્દા ‘પર્યાય’ કહ્ણા હૈ । વહ પર્યાય હોને પર જિન્દોને મગ્ગ કા અન્ત ક્રિયા-મોક્ષ પાયા, ઉનકી શ્રુમિ પર્યાયાન્તકૃતશ્રુમિ કહ્ણતી હૈ । કાત્પર્યં યહ કિ મગગાન્ મહાવીર કી કેવલી-પર્યાય ઉત્પન્ન હોને કે અન્તર, ચાર વર્ષ વાદ પ્રારંભ હુઈ મોક્ષમાર્ગ કી શ્રુમિ પર્યાયાન્તકૃતશ્રુમિ હૈ । યહ દો શ્રુમિયાં થી ॥સૂ.૦૧૧૭॥

કેમથી થવાવાળી વ્યક્તિઓ ‘યુગપ્રધાનપુરુષ’ તરીકે કહેવાય છે. આવા યુગપ્રધાન પુરુષોની પણ શ્રુમિકાઓ હોય છે. આ શ્રુમિકાઓ પાકતા આવા યુગપ્રધાન પુરુષો પશુ બંધ થઇ જાય છે, તેથી આવા સર્વોત્તમ પુરુષોની શ્રુમિકા અદૃશ્ય થયેલી મનાય છે. આવી શ્રુમિકાને ‘યુગાન્તકૃત શ્રુમિકા’ કહેવાય છે.

કહેવાતું ‘તાત્પર્ય’ એમ છે કે ભગવાન મહાવીરના શાસનમાં ભગવાન મહાવીરના નિવાસુધી આરંભ કરી જંબુસ્વામીના નિર્વાણ પર્યંતના કાળને ‘યુગાન્તકાળ’ કહે છે ને આ યુગાન્તકાળ ને શ્રુમિકાએ વરતી રહ્યો હોતો તે શ્રુમિકા ‘યુગાન્તકૃત શ્રુમિકા’ તરીકે ઓળખાય છે. જંબુસ્વામી પછી મોક્ષપર્યાય બંધ થઈ ગઈ છે એમ શાઓકત વચન છે એટલે જંબુસ્વામી જેવા છેલ્લા મહાન યુગપુરુષ ને શ્રુમિકાએ ઘડ ગયા તે મોક્ષશ્રુમિકા હવે બંધ થઈ ગઈ છે તેથી તે શ્રુમિકા ‘યુગાન્તકૃત શ્રુમિકા’ તરીકે પ્રસિદ્ધ છે. મોક્ષશ્રુમિકાની પહેલાં કેવલી પર્યાયની શ્રુમિકા હોય છે. મોક્ષપર્યાયશ્રુમિકા નેને ‘યુગાન્તકૃત શ્રુમિકા કહે છે’ તે તો બંધ થઈ ગઈ ! ત્યારપછીની કેવલી પર્યાયની શ્રુમિકાની વાત કરીએ.

સુક્તિ-માર્ગ સહાયકારક શ્રુમિકાને પર્યાયાન્તકૃત શ્રુમિકા કહે છે. ભગવાનની કેવલી પર્યાયને અહિં ‘પર્યાય’ કહેવામાં આવી છે. આ પર્યાય ઉત્પન્ન થતા જેમણે ભવનો અંત કર્યો મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરી તેવા કેવલજ્ઞાનપ્રાપ્ત છવોની શ્રુમિકા ‘પર્યાયાન્તકૃત શ્રુમિકા’ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે ભગવાન મહાવીરની કેવલી પર્યાય થયાં. પછીના ચાર વર્ષ બાદ ‘પર્યાયાન્તકૃત શ્રુમિકા’ શરૂ થઈ. આ ‘પર્યાયાન્તકૃત શ્રુમિકા’ને ‘મોક્ષમાર્ગની ઉત્તર શ્રુમિકા’ કહે છે. (સૂ.૦૧૧૭)

मूलम्—तेषु काष्ठेभ्यं तेषां समपण समणस्स भगवतो महावीरस्स पट्टमि सिरिसुइम्म सानी अहेसि ॥इ०११८।
 छाया—तस्मिन् काष्ठे तस्मिन् समये भ्रमणस्य भगवतो महावीरस्य पटे श्री सुधर्मस्वामी-आसीत् ॥इ०११८॥
 टीका—“तेण काष्ठेण तेणं समपण” इत्यादि। तस्मिन् काष्ठे तस्मिन् समये भ्रमणस्य भगवतो
 मराठीरस्य पटे श्रीसुधर्मस्वामी आसित्। श्रीगौतमस्वामिनः केशलित्वात्पट्टस्याप्यत्राभावेन श्रीसुधर्मस्वामिन
 एव पटे स्वापना। यतः आगमे-‘धुतं मे आशुप्पन्’। तेन गणकता एवमाकृषातम्। पत्रमुक्तम्। यदि केवलिनः
 पटे स्वापनाऽनविव्यपदा केवलिन’ सर्वसाक्षात्कारात् कुत्रचिदपि आख्यायिकात् भगवता एवमाकृषातमेव मे
 श्रुतमिति नाक्ययिष्यत्। अतः केवली पटे न स्वाप्यते। इति ॥इ०११८॥

मूल का अर्थ—'सोच जाछे न' इत्यादि। उस काल और उस समय में अण्ण भगवान् महावीर के पाद पर धीसुपमां स्नामी थे। (अ० ११८॥)

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में अमण मगवान् महावीर के पाट पर श्री सुधर्मास्वामी बैठे। श्री गौतम स्वामी केवली हो चुके थे, अतः पाट पर नहीं बैठे; इस कारण सुधर्मास्वामी पाट पर प्रतिष्ठित किये गये। इस का कारण यह है—ब्रह्म में 'ये आयुष्मन् !' मैंने सुना है, उन मगवान् ने ऐसा कहा है। ऐसा उडेल है। अगर पाट पर केवली को स्थापना होती तो केवली सर्वज्ञों-सर्वशक्त होते हैं, उन्हें किसी से कुछ सुनने की आवश्यकता नहीं होती, तो फिर वह ऐसा न करते कि—'मगवान् ने ऐसा कहा है, मैंने सुना है।' मत पूछ केवली पाट पर प्रतिष्ठित नहीं किये जाये ॥पृ० ११८॥

મળા અને યીમનો અર્થ—'તેજ કાલેજ' હવાદિ તે કાળ અને તે સમયે કાજવાન મહાવીરના નિવૃત્તિ બાદ તેમની પાટે મુખમંદિરાથી વિશાળના કોમ શાઓજી રચન છે સુધમાં સ્વામી કર્ણા પહેલે હસે ગ્રોતમ સ્વામીનો હતો, કસવ કે તેજો રીક્ષામાં પરીઠ હતા તેમ જ દેવલી પવ્વ હતા, ત્યારે મુખમો સ્વામી 'દેવલી' પવ્વ ન હતો, તેમ જ રીક્ષા અને વરમા પવ્વ ગ્રોતમ સ્વામી કર્ણા બાના હવા તેા ગ્રોતમ સ્વામીનિ બાદે મુખમો સ્વામી પાટ વિજર બિપાલિત થતા તે કેમ જાયુ ?

તેના પ્રમુવરમાં સાચોજીવ્યાન જોમ છે કે 'હે આશુખન! મે સર્વજન્ય છે કે તે બગવાને જોમ કમ્મ છે' મેનલી પદ ઉપર નેત્રે તેા દેવજા સર્વમ્ અને સર્વશ્યા' જોમ છે, અને તેને જોઈના પ્રવચનનો ઉલ્લેખ કરવાની આપરકતા સુદેવી નથી. પાટો સિપન થયેલ અખિત બગવાનના પ્રવચનનો ઉલ્લેખ ન કરે તેા અત્રવાનના સાસનનો ઘોર ખામ ખાટો ત્રોવમ સ્વામી પાટે ન બિશળ્યા. (સુ.૧૧૮)

मूलम्—कोल्लागसन्निवेशे धम्मिच्छविप्पस्स भदिलाभज्जाए जाओ सुहृन्मसामी चत्तइसविज्जापारगो फण्णासचारसंते पव्वइओ। तीसं वासाइं मिखिक्कमाणसामिस्स अंतिए निवसिय भगवओ निव्वाणाणंतं वारस-वरिसाइं छउमत्थपरियाग पाउणिता जम्मओ वाणउइवरिसंते गोयमसामिनिव्वाणाणंतं केवल्लणां पाविय अट्टवरिसाइं केवल्लिपरियागे ठिच्चा एणसयवरिसाइं सव्वाउयं पालइत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणा-णंतं वीसइवरिसेसु वीइक्कंनेछु जंबूसामिणं नियपट्ठे ठाविय शिवं गए ॥सू०११९॥

छाया—कोल्लाक्सन्निवेशे धम्मिच्छविप्पस्स भदिला भार्यायां जातः। सुधर्मस्वामी चतुर्दशविधापारागः पञ्चाशद्वर्षान्ते प्रव्रजितः। त्रिंशद्वर्षाणि श्रीवर्द्धमानस्वामिनोऽन्तिके न्युष्य भगवतो निर्वाणानन्तरं द्वादशवर्षाणि छद्मस्थपर्यायं पालयित्वा जन्मतो द्विनवतिवर्षान्ते गौतमस्वामिनिर्वाणानन्तरं केवल्लज्ञानं प्राप्याष्टवर्षाणि केवल्ल-पर्याये स्थित्वा एकशतवर्षाणि सर्वायुष्कं पालयित्वा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य निर्वाणानन्तरं त्रिंशतिवर्षेषु वयतिक्रान्तेषु जम्बूस्वामिन निजपट्ठे स्थापयित्वा शिवं गतः ॥सू०११९॥

सुधर्मा स्वामी का परिचय

मूल का अर्थ—‘कोल्लागसन्निवेशे’ इत्यादि। सुधर्मास्वामी कोल्लाक सन्निवेश में धम्मिल ब्राह्मण की महिला भार्या के उद्गरे से जन्मे। चउदह विद्याओं के पारगामी थे। पचासवें वर्ष के अन्त में दूरीक्षित हुए। तीस वर्ष तक श्री वर्द्धमान स्वामी के समीप रह कर, भगवान् के निर्वाण के पश्चात् वारह वर्ष तक छद्मस्थ ब्रवस्था में रहे। जन्म से लेकर वानवे वर्ष के अन्त में गौतमस्वामी के निर्वाण के अनन्तर केवल्लज्ञान प्राप्त करके, आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रह कर, एक सौ वर्ष की समग्र आयु भोग कर, भगवान्

सुधर्मा स्वामीना परिचय

भूणो अर्थ—‘कोल्लाग सन्निवेशे’ इत्यादि। सुधर्मा स्वामी केवल्लज्ञान नामना सन्निवेश में धम्मिल ब्राह्मण की महिला भार्या की दूरीक्षित थी। चउदह विद्याओं के पारंगत थे। तीस वर्ष सुधी वर्द्धमानस्वामी की समीप में रहे। पचास वर्ष के अन्त में दूरीक्षित हुए। तीस वर्ष तक श्री वर्द्धमान स्वामी के समीप रह कर, भगवान् के निर्वाण के पश्चात् वारह वर्ष तक छद्मस्थ ब्रवस्था में रहे। जन्म से लेकर वानवे वर्ष के अन्त में गौतमस्वामी के निर्वाण के अनन्तर केवल्लज्ञान प्राप्त करके, आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रह कर, एक सौ वर्ष की समग्र आयु भोग कर, भगवान्

टीका—‘दोष्ठागलनिषेस’ इत्यादि। कोष्ठागलनिषेस=कोष्ठाक नामके ग्रामे, यम्मिलविमस्य=यम्मिला मयप्रमाणस्य मरिनामार्यायां मातः=उत्पन्नः सुधर्मस्वामी चतुर्दशविधापारागः=वेदचतुष्टयं, ऋग्यजुःसामाग्यरक्ष्य-
 शिक्षा-इत्यन्याङ्गण-निरुक्त-ज्योतिष-छन्दोक्त्य-वेदाङ्गयष्ट्य-भीमांसा-न्याय-धर्मशास्त्रपुराणानि चेति चतुर्दश-
 विधापारागतः, पञ्चाद्वर्षादे प्रथमिता=दीक्षां गृहीतवान्। तत्र त्रिंशद् वर्षाणि-यावत् धीर्यमानस्त्वामिनः
 अन्तिके=समीपे पुण्य=निवासं कृत्वा भगवतः=धीवीरस्त्वामिनो, निर्वाणानन्तरं=मोक्षप्राप्त्यनन्तरं द्वास्त्रिंशद्वर्षाणि
 छयस्यपर्यायं पालयित्वा, मन्त्र=उत्तराधिकारमात् द्वात्रिंशद्वर्षात् गौतमस्याभिनिर्वाणानन्तरं केवलज्ञानं प्राप्य,
 अष्टवर्षाणि केवलपर्याये स्थित्वा एकशतवर्षाणि सर्वपुण्यैः=सकलपुण्यैः पालयित्वा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य
 महावीर क निर्वाण के बाद बीस वर्ष बीड जाने पर मग्नस्वामी को अपने पाट पर स्थापित करके
 मोक्ष पाया। मृ० १९॥

टीका का अर्थ—कोष्ठाक नामक ग्राम में, यम्मिल नामक द्वाक्षण या। उसकी पत्नी मरिना थी।
 सुधर्मस्वामी उसी के उदर से उत्पन्न हुए। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद में शिक्षा, कला,
 व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द-इन छह वेदों में तथा सीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण इन
 सब चौदह विधाओं में पारंगत थे। पचासवें वर्ष के अन्त में उन्होंने दीक्षा आगीकार की। उसके बाद
 बीस वर्ष तक धी र्धमानस्वामी के समीप निवास करके, भगवान् वीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात्
 बारह वर्ष तक छयस्य-पर्याय में रह कर, मन्त्र से शान्ति (१२) वर्ष के अन्त में, गौतमस्वामी के मोक्ष
 जाने के बाद केवलज्ञान प्राप्त करके, आठ वर्ष तक केवली-पर्याय में स्थिर रह कर, एकसौ वर्ष की

वयस्य आयु में पड़ करी तेला मोक्ष पधामें। तेला भगवान् महावीरना निबोध ग्राह वीर वष पूरा धये मोक्ष
 भया कदा मोक्ष पधामो पडेना तेलाजे व भूस्थानीये धितानी पाटे स्थपित भयो कदा। (सं० ११८)

टीका का अर्थ—कोष्ठाक नामका अनिवेशभं प्रसिद्ध नामनेला जेका प्राक्षाण रहेला कता तेनी पत्नीज नाम
 मरिना कद सुधर्मो स्वामी तेने सेते व म पाम्या कदा। तेला मग्नेह साभवेह, मग्नेवेह अने कार्यवेहमां
 निपुण कदा। शिक्षा-इत्यन्याङ्गण-निरुक्ता-ज्योतिष अने छह जेना वेदना लजे ज्ञेयोभां पारंगत कदा भीमांसा
 न्याय धर्मशास्त्र अने पुराण विज्ञेय ज्यो भली मोह विद्याज्योभां भवीण कदा प्रभुनेा योग तेभने पञ्चाशमा वर्ष
 प्राप्त भये। बीस वर्ष सुधी तेगळे भगवानेना समान भये। त्वार पछी साधुद्वयोभां पय्या आगल वधी आयुमा

निर्वाणानन्तरं विंशतिवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु निजपट्टे=जम्बूस्वामिनं स्थापयित्वा शिवं=मोक्षं गतः ॥सू० ११९॥

जंबूस्वामिपरिचओ

मूलम्—रायगिहे णयरे उसम्भदत्तस्स सेट्ठिणो धारिणीए अंगजाओ पंचमदेवलोगाओ चुओ जंबू नाम पुत्तो होत्था। सो य सोलसवरिसीओ सिरिमुहम्मसामिसमीवे धम्मं सोच्चा पडिबुद्धो पडिवन्नसीलसम्मत्तो अम्मापिऊणं दढानहेण अट्टकन्नाओ परिणीअ। विवाहरत्तीए सो ससिणेहाहि=ताहि पेसंसमिय वाणीहिं न वामोहिओ। सो य परोप्परं कहापडिकहाहिं ता अट्ठवि इत्थीओ पडिवोहीअ। तीए रत्तीए चौरियट्ठं गिहे पविट्ठं नवनवड् अम्भाहिंएहिं चउहिं चोरसएहिं परिवुड पम्माभिहं चोरंपि पडिवोहीअ। तओ पच्छा उइयंमि दिणयरे पंचसयचोरभज्जट्ठग=तज्जणगजणणीहिसद्धिं सय पचसयसचवीसइहमो होऊणं णवणवईओ कणगकोडीओ परिच्चज्जा सुहम्मसामिसमीवे पवइओ। से ण सिरिजंबूसामी सोलसवरिसाइ गिहत्यत्ते, वीस वासाइ छाउमत्थे, चोया-लीसं वासाइं केवल्लिपज्जाए, एवमसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता पमवं अणगारं नियपेट्ठे ठाविय सिरिबीर निव्वाणाओ चउसट्ठितमे वरिसे सिद्धिं गए।

सिरि जंबूसामी जाव मोक्खंगओ नासो ताव एव भरहे वासे दसठाणा भविंसु, तं जहा=मणपज्जवणाणं १, परमोहिणाणं २, पुलागलद्धी ३, आहारगसरीरं ४, खवगसेणी ५, उवसमसेणी ६, जिगक्कप्पो ७, संजमत्तिगं ८, केवल्लणाणं ९, मिज्झणा १० य त्ति। मोक्खं गए उ तस्सि एया ठाणा वुच्चिण्णा।

भवंति एत्थ दुवे संगहणी गाहाओ—

वारसवरिसेहि गोयसु, सिद्धो बीराउ वीसहि सुहम्मो।

चउसट्ठीए जंबू, वुच्चिन्ना तत्थ दस ठाणा ॥१॥

मण १, परमोहि २, पुलाए ३, आहारग ४, खवग ५, उवसमे ६, कप्पे ७।

संजमत्तिग ८, केवल ९, सिज्झणा १०, य जंबुम्मि वुच्चिन्ना ॥२॥ इइ ॥सू० १२०॥

समस्त आयु भोग कर, श्रमण भगवान् महावीर के मोक्षगमन के पश्चात् वीस वर्ष व्यतीत होने पर जंबू स्वामी को अपने पाट पर स्थापित करके मोक्ष पधारे ॥सू० ११९॥

वर्षं देवदत्ताननी आसि डरी आह वर्षं सुधी देवदी अवस्था मा स्थित रली सोसुं (१००) वर्षं पूइं ऊथो आह ओट्टे लगवान मोक्षे गया पछी वीस वर्षं पूरा थये मोक्षमार्गं खुट्ठे। रळे ने लगवाननी दाइशांगी हो। डोने सतत सालणवा भणे ते धरादाथी ज'यूस्वामी नेवा उत्तम अने योअ्य पुरुषने पाटे स्थिर ऊथो। (सू० ११९)

छाया—रानघरे नगरे ऋषभदत्तस्य भेष्टिनो धारिण्या अङ्गनातः पञ्चमयेषोकाच्युतो वंदूनामपुत्र आसीत् । स च पोटअवर्गीयः श्रीसुर्यमस्वामिसमीपे पर्मे भुत्वा प्रतिपुत्रः प्रतिपन्नशीलसम्यक्तयः अन्वापिभोदप्राप्तेषाष्टकन्याः पश्यन्त । विवाहप्राप्तौ सस्नेहाभिस्तापिः प्रेमसंशुलवाणीभिर्नित्यगीरोरितः । स च परस्परं कथा प्रतिक्रियामित्वा अद्यापि स्त्रियः प्रत्यबोधयत् । तस्यां रात्रौ चौर्यार्थं घुरे मण्डित नवनवत्यभ्यधिकैश्चतुर्भिर्बोरसुते परित्तं प्रम वामिर्षं चौरमपि प्रत्यबोधयत् । तदाः पश्चात् उदिते दिनकरे पञ्चअश्वघोर-गार्गाष्टक-उल्लङ्घननी-निजजनक-

जवूस्वामी का परिचय

मूल का अर्थ—‘रायगिरे’ इत्यादि । राजसूदनगर में ऋषभदत्त अछी की धारिणी नामक भायी की कुल से उत्पन्न, पञ्चम देवकोक से आये हुए जंपू नामक पुत्र थे । सोलह वर्षकी उम्र में सुधर्मास्वामी के समीप पर्मे सुनकर प्रतिबोध पाया । शीलव्रत और सम्यक्च धारण किया । माता-पिता के प्रबल आग्रह से आठ कन्याओं के साथ विवाह किया । सुरागराज में वह स्नेहवती गलियों की प्रेमपूर्ण वाणी से मोहित न हुए । उन्हीं ने परस्पर कथामों के उत्तर में कथाएँ कहकर आठों पत्नीओं को प्रतिबोधित किया । उसी रात्रि में चोरी करने के लिए घर में घुसे हुए चारसौ निन्यानवे (४९९) चोरों सहित प्रमथ नामक बोर को भी प्रतिबोधित किया । उसके बाद दिन उगने पर पांचसौ चोरों, आठों पत्नीओं, पत्नीओं के माता-पिताओं

जवूस्वामीना परिचय

भूतनाम जवू—‘रायगिरे’ इत्यादि शब्दगुटी नगरीभां उपलब्धत्त स्थाने धारिणी नामनी भायां उत्पत्ति तेन जवू नामना खिन्न पुत्र भूतो, ते पाञ्चभा देवकोकणी ज्वाल्यो भूतो । सोलह वर्ष-नी उमरि देखे सुधर्मास्वामीनी पासि पर्मे सांभल्यो, आ आलजी तेने प्रतिबोध बये । प्रतिबोध बर्ता तेभुं शीलव्रत जगीश्वर भुं ने साबे साबे धर्मभरवने पण धारण भये । माता-पिताना प्रभव ज्वाल्यो तेभुं ज्वाल्यो साबेनु पाविमहवुं भुं प्रभव सनीजे पणु ते ज्वावी स्नेहाद जने सुइर जलीना प्रेमभी शोधित न बया तेभुं ज्वाभ राव प्रभोत्तरी क ज्वाडे भिक्षुने देरा-बनी भावना अभ्युत्त करी ।

आ वचते तेभना बरमा ज्वासे नवावुं भिक्षु भिक्षा दाभव बया । आ भिक्षुने जपरी प्रभव नामने । थोडा थोडा बहे, तेने पण जवूजे बोध ज्वापी देवाज्जवन जनाये । त्याशब्द वीने दिवसे शांभसो भिक्षु, ज्वाल्यो ज्वाली पत्नीजो,

जननीभिः सार्धं स्वयं पञ्चशतसप्तविंशतितमो भूत्वा नवनवति कनककोटीः परित्यज्य सुधर्मस्वामीसमीपे प्रव्रजितः । स खलु षोडशवर्षाणि गृहस्थत्वे, विंशतिवर्षाणि छात्रस्थ्ये, चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि केवलपर्याये, एवमशीतिवर्षाणि सर्वयुष्कं पालयित्वा प्रभवमन्तारं निजपट्टे स्थापयित्वा श्रीवीरनिर्वाणाच्चतुष्षष्टितमे वर्षे सिद्धिं गतः ।

श्रीजंबूस्वामि मोक्षं गते सति भरते वर्षे दशस्थानानि व्युच्छिन्नानि, तद्यथा—मनःपर्यवज्ञानम् १, परमावधिज्ञानम् २, पुलाकलब्धिः ३, आहारकशरीरम् ४, क्षपकश्रेणिः ५, उपशमश्रेणिः ६, जिनकल्पः ७, संयमत्रिकम् ८, केवलज्ञानम् ९, सिद्धि १०, इति । मोक्षं गते तु तस्मिन् एतानि स्थानानि व्युच्छिन्नानि ।

तथा अपने माता-पिता के साथ, स्वयं पाँचसौ सत्ताईसवें होकर निन्यानवें करोड़ सौनौयों का त्याग करके सुधर्मास्वामी के समीप संयम धारण किया । वह सोलह वर्ष गृहस्थावस्था में, बीस वर्ष छात्रस्थावस्था में, चत्वारसीस वर्ष केवली-पर्याय में रह कर और कुल अस्सी वर्ष की आयु पाल कर प्रभव अनगर को अपने पाट पर स्थापित करके श्रीवीरनिर्वाण से चौसठवें वर्ष में सिद्धि को प्राप्त हुए ।

श्री जंबूस्वामी के मोक्ष जाने पर इस भरतक्षेत्र में दस स्थानों का विच्छेद हो गया । वह इस प्रकार हैं—(१) मनःपर्यवज्ञान, (२) परमावधिज्ञान, (३) पुलाकब्धि, (४) आहारक शरीर, (५) क्षपकश्रेणी, (६) उपशमश्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) तीन चारित्र, (९) केवलज्ञान, (१०) मोक्ष । उनके मोक्ष जाने के बाद यह दस स्थान विच्छिन्न हुए ।

तेभ्यो मानपिताभ्यो तथा पोताना मातपिता साथे अभे भुल भणी जंभू शिभे पांथसे। सत्तावीश जंभू दीक्षा अणु करी दीक्षा देता पड़ेलां पोतानी पासे नवाणु कदेश सौनेभा हुता, तेनो पाणु पदित्याग कथो। आ धनने। त्याग करी सुधर्मा स्वामी पासे आवी सर्वजणुओ आणुगार धर्मने अपनाओ।

जंभूस्वामी सोण वर्ष गृहस्थाश्रमभा, बीस वर्ष छात्रस्थ अवस्थाभा ने आदीस वर्ष डेवली अवस्थाभां रह्या हुता। कुल ओसी वर्षनुं आयुष्य पूहूं करी प्रभवअणुगारने पोतानी पाटे स्थित करी निर्वाणु पधायो। वीर निर्वाणु भाद योसकमे वर्ष तेओ सुकृतिपदने पाभ्या ने तेभनी वाणीनुं स्थान प्रभव नामना अणुगारने सोपायु। जंभूस्वामी मोक्ष पधारतां दश स्थानोने। विच्छेद थयो। जे नीथे प्रभाणु छे—(१) मनः पर्यवज्ञान, (२) परम अवधिज्ञान, (३) पुलाकलब्धि, (४) आहारक शरीर, (५) क्षपकश्रेणी, (६) उपशमश्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) अणु चारित्र, (९) डेवज्ञान, (१०) मोक्ष।

मरतोऽत्र ये संप्रवर्णीयाग्रे—

द्राक्षन्वर्षेषु गौतमः सिद्धो वीराष्ट्रं विंशतौ सुपर्मा ।

चक्षुषपृष्ठो नैयः, व्युच्छिन्नानि तत्र दक्षस्यानानि ॥१॥

मनः १, परमावधि २, पुष्पाङ्क ३, आभारक ४, सप्तको ५, पञ्चमाः ६, इत्यु ७ ।

संयमत्रिक ८, कैवल्य ९, सिद्धि १० य जम्बा व्युच्छिन्नानि ॥२॥

॥शृ०१२०॥

यहो दो संप्रवर्णीयाग्रे हैं—

भारतवर्षिसेहि गोयसु, सिद्धो विराट वीरसु सुहम्मो ।

चउसट्टीए जंघु, बुच्छिन्ना सत्य दस ठाणा ॥१॥

मण १, परमोहि २, पुष्पाङ्क ३, आभारक ४, सप्तको ५, उवसमे ६, कल्पे ७ ।

संयमत्रिक ८, कैवल्य ९, सिद्धि १० य जंघुमि बुच्छिन्ना ॥२॥ इति ।

धीवीर निर्वाण से चार वर्ष वीतने पर गौतम, वीस वर्ष वीतने पर सुपर्मा और चौसठ वर्ष वीतने पर नैयसामी का निर्वाण हुआ । उसके पश्चात् दक्षस्यान विच्छिन्न हो गये ॥१॥

नैयसामी के बाद विच्छिन्न दस स्थान पर हैं—(१) मनःपर्यवधान, (२) परमावधिमान, (३) पुष्पाङ्कनिच, (४) आभारक क्षीर, (५) सप्तकोक्षी, (६) उपस्यभेणी, (७) मितकल्प, (८) वीन संयम, (९) कैवल्यमान, (१०) मुक्ति ॥२॥ ॥शृ०१२०॥

इय स्थाने आये जटावती से आधात्रे आदि पक्षी देवाभां आनी छे—

भारत वर्षिसेहि गोयसु सिद्धो वीराट वीरसु सुहम्मो ।

चउसट्टीए जंघु बुच्छिन्ना सत्य दस ठाणा ॥१॥

मण परमोहि पुष्पाङ्क, आभारक, सप्तको, उवसमे, कल्पे ।

संयमत्रिक कैवल्य सिद्धिणा य जंघुमि बुच्छिन्ना ॥२॥ इति ।

अर्थात्—धीवीर (नैयसामी) आर पर गौतम, वीरसु वष वीरतां सुधभां अने आत्मा वर्ष वीरतां अर्थात्

नैयसामी धनु ते पछी नीचे बन्धावेला इय स्थाने आये जटावती से आधात्रे आदि पक्षी देवाभां आनी छे—

मरी, (५) सप्तकोक्षी (६) उपस्यभेणी, (७) मितकल्प (८) वीन संयम (९) कैवल्यमान, (१०) मुक्ति (११) शिव (१२) आत्मा

टीका -- 'रायगिहे नगरे' इत्यादि । राजगृहे नगरे ऋषभदत्तस्य=ऋषभदत्तनामकस्य श्रे नः धारिण्याः अङ्गनातः देवलोकात्=पञ्चमब्रह्मदेवलोकात् च्युतः जंबूनामपुत्रः जंबूनामकपुत्रः आसीत् । स च षोडशवर्षीयः=षोडशवर्षवयस्कः सन् श्रीमृधर्मस्वामिसमीपे धर्मं श्रुत्वा प्रतिबुद्धः=बोधप्राप्तः, प्रतिपन्नशीलसम्यक्त्वः=स्वीकृत-शीलसम्यक्त्वः अस्मा-पित्रोः=मातापित्रोः दृढाग्रहेण=अत्यन्तानुरोधेन अष्ट=अष्टसंख्याः कन्याः पर्यणयत्=परिणयितवान् । विवाहरात्री स-जंबूकुमारः सस्नेहाभिः=स्नेहवतीभिः ताभिः-अष्टाभिः कन्याभिः प्रेमसंभूत-वाणीभिः=सानुरागवाग्भिः न व्यामोहितः=न मोहं गतः । स च परस्परम्=अन्योऽन्यं कथाप्रतिक्रियाभिः=उत्तर-प्रत्युत्तरैः ताः=परिणीताः अष्टापि स्त्रियः प्रत्यवोधयत्=प्रतिबोधितवान् । तस्यां=विवाहसम्बन्धिन्यां रात्रौ वीर्याग्नें गृहे=स्वभवनने प्रविष्टं नवनवत्यभ्यधिकैश्चतुर्भिः चोरशतैः परिवृतं=परिवेष्टितं युक्तमित्यर्थः, प्रभवामिधं=

टीका का अर्थ--राजगृह नगर में ऋषभदत्त सेठ की धारिणी नामक पत्नी के उदर=अङ्गनात ब्रह्म नामक पौत्र के देवलोकात् से द्रव्यहर आये हुए जंबू नामक पुत्र थे । सोलह वर्ष की उम्र में उन्होंने सुधर्मा स्वामी से धर्म का उपदेश सुना और प्रतिबोध प्राप्त किया । प्रतिबोध पाकर शील और सम्यक्त्व अंगीकार किया । माता-पिता के तीव्र अनुरोध से आठ कन्याओं के साथ विवाह किया । मगर विवाह की रात्रि-सुहागरात में वह जंबूकुमार अनुरागवती उन आठों कन्याओं की प्रणय-परिपूर्ण वाणी से मोहित न हुए । उनके साथ जंबूकुमार की आपस में कथाएँ-प्रतिकथाएँ हुईं । आठों रमणियों ने जंबूकुमार को अपनी और आकृष्ट करने के लिए अनेक कथाएँ कहीं । उनके उत्तर में जंबूकुमार ने भी कथा कही । इस प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर होने पर आठों नवविवाहिता पत्नीयों को भी प्रतिबोध प्राप्त हुआ ।

उसी-विवाह की रात्रि में चारसौ निन्यानवे चोरों को साथ लेकर प्रभव नामक प्रसिद्ध चोर चोरी

टीकाने अर्थ--राजगृह नगर में ऋषभदत्त सेठ ने धारिणी नामकी पत्नीना उदरे जन्म पाये। ब्रह्म नामना पाथमा देवलोकाभायी आवेक जंबू नामनो पुत्र हते। सोल वर्षकी उमरे तेहे सुधर्मास्वाभी पासे धर्मनो उपदेश सांभल्यो अने प्रतिबोध पाभ्यो। प्रतिबोध पाभीने शील अने सम्यक्त्व अंगीकार क्युं। माता-पिताना आग्रहधी तेहे आठ कन्याओ साथे लग्न कयो। पशु विवाहनी रात्रे-सुहागरात्रिओ ते जंबूकुमार ते आठ अनुरागवाणी कन्या-ओनी प्रणय-परिभूषुं बाणीथी मोहित थयो नई। तेमनी साथे जंबूकुमारनी आपसभां कथाओ-प्रतिकथाओ थध. आठ रमणीओओ जंबूकुमारने प्योतानी तरङ्ग आकर्षवाने माटे अनेक कथाओ कही। तेमना उत्तरभां जंबूकुमार पशु कथा कही। आ प्रभाओ उत्तर-प्रत्युत्तर थतां आठ नवोढा पत्नीओ पशु प्रतिबोध पाभी।

जो न विवाहनी रात्रे चारसो नवायुं (४६६) चोराने साथे लगने प्रभव नामनो प्रख्यात चोर चोरी करवाने

प्रमदनामकं चौराणि प्रत्यरोधयत्—प्रतिबोधितवान्। तब 'पमात्=उदन्तर्' उचिते दिनकरे=दूरे पञ्चमठचौर-
भाण्डक-उखनक-दननी निग्रमनकननीभिः साथे सर स्वयम् आत्मना पञ्चमठसप्तविंशतितमो भूत्वा नव
नवतिं हनकरोटीः=सुवर्णमुद्राकोटीः परित्यज्य-विश्रय मुग्रमस्यामिसमीपे प्रयतिता=द्रीपां गृहीतवान्। स
मंभुद्भिः तल्ल पोढश्चर्याणि यावत् शूरस्यत्वे निचतिं वर्षाणि छात्रस्ये=छत्रस्यपाय, चतुष्टयार्तिशतवर्षाणि
केचिन्मर्षाये एवम्=इत्यम् अशीति वर्षाणि सर्वायुक्तं पालयित्वा प्रमत्तं मनगारं, निजपेटे=स्वपेटे स्थापयित्वा
श्रीवीरनिर्वाणक=धीमतावीरस्वामि-भोक्तृगमनकालादारभ्य चतुष्टयिष्टमे वर्षे सिद्धिं गतः।

श्री जंबूस्वामी चारुक्तात्मपुत्रं मोक्ष गतो नासीत्, तत्रदेव मरते वर्षे=वस्यमायानि दसस्यानानि
भासन् तपया-मनःपर्यवसानम् १, परमारविज्ञानम् २, पुनःकल्पम् ३, आशारुद्रीरम् ४, सप्तकेभिः ५, उप-
कारने के सिय मंभुद्भमार के घर में घुसे। उन्हें भी उन्होंने प्रतिबोधित किया।

तत्पश्चात् ययौवय रामे पर पौचसी चौरों के साथ आठों पत्नीओं के साथ, पत्नीओं के माता-पिता
के साथ और अपने माता-पिता के साथ, आप स्वयं पौचसी सवारसैव होकर दूरे की निन्यानबे कोटि
स्वर्णमुद्राओं की तपा अपने घरकी अष्ट संघर्ष की त्याग कर सुवर्णस्वामी के पास प्रयत्नित हो गये।

जंबूस्वामी सोच वर्ष तक शूरवास में रहे, मोक्ष वर्ष तक छत्रस्यपाय में रहे, चारवीस वर्ष तक
केचनी-पर्याय में रहे। इस प्रकार अस्सी वर्ष की समस्त आयु मोग कर प्रमत्त अगार को अपने पाट पर
प्रतिष्ठित करके श्रीमहावीर भगवान् के निर्वाणकाल से बीसठे वर्ष में मोक्ष गये।

तब तक जंबूस्वामी मोक्ष नहीं गये थे तब तक मरत्येष में आगे करे दस स्थान थे। यथा—

आठे जंबूभारना वरभ पूर्ये। तेभने पञ्च तेवु प्रतिबोधित भव। त्वास्माद सुरेत्य भव्यं भंयसे व्योशनी साक्षे
आठे पत्नीजोनी साथे, पत्नीजोनीं माता-पितानी साथे अने पितामां भता-पितानी साथे जेभ दुव भंयसे।
सचपनीधमां ते घेते इहे= (हरिश्चन्द्र) सुवर्ण मुद्राकोटी अने पितामां अने पितामां अने पितामां अने पितामां
इतीने सुधमां स्वाभीनी पसे दक्षित यथा

जंबूस्वामी सोच वर्ष सुधी सवारभां रक्षा, वीस वर्ष सुधी छत्रस्यपायभां रक्षा, सुभागीय (४४) वर्ष
सुधी देवनी-पद्मभां रक्षा आ प्रभाक्षे व्योशनी (८०) वर्ष दुव आमुष्य व्योशनी, प्रलय अण्ण-मरने पितामां
पाट पर प्रतिष्ठित इति श्री महावीर राजबान्ना निवोण्ण लण्णो व्योशना वर्षे भासे सिध्दाम्। अमां सुधी ४४
स्वाभी योक्ष पाश्चा न देता, त्वां सुधी भस्म क्षेत्रभां आनज इहेव दस स्थान देता—

शमश्रेणि ६, जिनकल्प ७, संयमत्रिकम्=परिहारविशुद्धसूक्ष्मसंपराय-यथाख्यातचारित्र्यम्-इति चारित्र्ययम् ८, केवलज्ञानम् ९, सिद्धिः १०-इति । मोक्षं गते तु तस्मिन् एतानि दशस्थानानि व्युच्छिन्नानि ।

भक्तोऽत्र द्वे स्रग्द्वीपादे-‘वारस वरिसेहि’ इत्यादि । वीराद=वीरनिर्वाणाद् द्वादशवर्षेषु व्यतीतेषु गौतमः सिद्धः त्रिंशत् वर्षेषु व्यतीतेषु सुधर्मा मोक्षं गतः । तथा-चतुष्पष्टौ वर्षेषु व्यतीतेषु जंबूस्वामी मोक्षं गतः । तत्र=तस्मिन् जंबूस्वामिनि मोक्षं गते दशस्थानानि व्युच्छिन्नानि=विच्छेदं प्राप्ताणि । तानि दशस्थानानि=मनः=मनःपर्यवज्ञानम् १. परमावधिज्ञानम् २ पुलाकः=पुलाकलब्धिः ३, आहारकः=आहारकलब्धिः ४, क्षपकः=क्षपकश्रेणिः ५, उपशमः=उपशमश्रेणिः ६, कलः=जिनकल्पः ७, संयमत्रिकम् ८, केवलम्=केवलज्ञानम् ९, सिद्धिः=मोक्षश्चात दशस्थानानि जंबूस्वामिनि मोक्षं गते व्युच्छिन्नानीति ॥सू-१२०॥

(१) मनःपर्यवज्ञान, (२) परमावधिज्ञान, (३) पुलाकलब्धि, (४) आहारक शरीर, (५) क्षपकश्रेणी, (६) उपशमश्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) तीन चारित्र-रिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात, (९) केवलज्ञान और (१०) मोक्ष । जंबूस्वामी के मोक्ष पथारने पर यह दस स्थान विच्छिन्न हो गये ।

इस विषय में दो स्रग्द्वीपागाथाएँ हैं—

वीर-निर्वाण से बारह वर्ष वीतने पर गौतम सिद्ध हुए, बीस वर्ष वीतने पर सुधर्मास्वामी मोक्ष पथारे तथा चौसठ वर्ष वीतने पर जंबूस्वामी मोक्ष पथारे । जंबूस्वामी के मोक्ष जाने पर दसस्थान अर्थात् दस बातें विच्छिन्न हो गई । वह दसस्थान यह हैं—१ मनःपर्यवज्ञान, २ परमावधिज्ञान, ३ पुलाक-पुलाकलब्धि, ४ आहारकलब्धि, ५ क्षपकश्रेणी, ६ उपशमश्रेणी, ७ जिनकल्प, ८ तीन चारित्र, ९ केवलज्ञान और १० मोक्ष । जंबूस्वामी के मुक्त होने पर यह दस स्थान विच्छिन्न हुए ॥सू०१२०॥

(१) मन पर्यवज्ञान (२) परमावधिज्ञान (३) पुलाक-लब्धि (४) आहारक-शरीर (५) क्षपक-श्रेणी (६) उपशम-श्रेणी (७) जिन-कल्प (८) त्रय चारित्र परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्म-संपराय अने यथाभ्यात (९) डेवणज्ञान मोक्ष तेमना निर्वाण भाह अे दस स्थान विच्छिन्न पाग्या. ते विषे अे संश्रद्धणी गाथाअो छे. वीर-निर्वाणने आर वर्ष पसार थता गौतम सिद्ध बन्या, बीस वर्ष वीतता सुधर्मास्वामी मोक्ष गया तथा त्र्यासठ वर्ष वीतता जंबूस्वामी मोक्ष गया. जंभूस्वामी मोक्षे जतां नीयेना दस स्थान विच्छिन्न थर्ध गयां. ते दस स्थान आ छे—(१) मन-पर्यवज्ञान (२) परमावधिज्ञान, (३) पुलाकलब्धि, (४) आहारक-लब्धि, (५) क्षपकश्रेणी, (६) उपशम श्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) त्रय चारित्र, (९) डेवणज्ञान अने (१०) मोक्ष. जंभूस्वामी मोक्षे जतां आ दस स्थान विच्छिन्न थयां (सू०१२०)

मूस्म—सिरीर्जसूतामिम्मि माक्खल गए णप्पेट्ठे सिरियमवसाभो उवाविसीय । तउण्णचीवेचय—

विद्यायस्समीवे जयपुराभिहाण नयर आसि । तत्थ विद्धो जामणत्तर्बइ होत्था । तस्स पुचटुगं भासि-
एगो छेदुपमभाभाणो, अरओ कण्हिदुपमभाभिहाणो । तत्थ जेट्ठपमचो केणचि कारणेणं इद्धो जयपुरनयराओ
नितसरिय विद्यायन्त्सस्स स्सिमत्पळे अण्णिबं गामं वासिषा तत्थ निवसीय । सो य चोरिय—लुंणाइगरि-
रियविणि ओम्भेभीअ ।

एराया तेण आकण्णियं ज—रायगिरे नयर जंजु नामगो उसमद्वसोद्धिपुणो अट्ठ सेट्ठिक्खणाओ परि-
णीय । दाये तेण सट्ठुरदितो पक्खण्ण कौटि परिमियाओ सुवण्णसुराओ लद्धाभाण्णि । एव सोचा सो पमचो
चोरो गवण्णचइ अरिपरि चउरि चोरसएहिं पण्डितो रायगिरे नयर जंजुमारस्स गिरे चोरियट्ठ पविद्धो । तत्थ
सो ओसास्मीए विज्जाए सुब्बे जणे निरिए करीअ । भावसंजयमि जंजुमारामि सा विज्जा निष्फळा
जाया । सो जामाणो चैव विद्धीअ । तत्थभावेण तस्स अट्ठिरे मज्जा जागरणीओ चैव ठिया । तओ
सो पमचो चोरो चोरोहिं सदिं ताओ सुवण्णसुराओ गरिय वल्लिमारदो । तया जंजुमारो नमुकारसंतप्प-
मावेण वेमिं गंरं यमीअ । नियगं यमियं दट्ठण पमचो विम्विओ किंकायणविपूहो य जाओ । तस्स परिसिं
दिइ दट्ठण जंजुमारो हसीअ । तस्स हांस सोचा पमचो तं करीअ—भराभागा । जं मम इय ओसाङ्गी विज्जा
अमोआ अत्थि । सा चि दुममि निष्फळा जाया । तए शुण अन्धानं गई चावि यमिया । अओ हुव को वि-
निसिद्धो पुरिसो पढिमासि । हुम ममोचरि किं विद्धा यमणि विज्ज मम देहि । अरं च हुमं ओसाचणिं
विज्ज वल्लामि । तस्स इम वयणं सोचा जंजुमारो करीअ । इमाओ सोयविज्जाओ दुग्गकारणाओ सति ।
हुब्ब विज्जाए मज्जमि पमचो न जाआ । दुग्गण गई ज मए यमिया, एत्थ न काचि विज्जा कारणं ।
अय पणवो नमुकारमत्तस्स अत्थि । एव करिय जंजुमारो तस्स चारिषपम्मं उवादिसीअ । तं सोया
पमचारिअं चोरानं मज्जसि वेरमां सगाय । तओ भीए दिवसे सणरियारो जंजुमारो तेहिं पमचारएहिं चोरोहिं
सदिं सुअम्मसाभिसमीव पब्बइओ ।

जइसूतामिम्मि मोक्खे गए णप्पेट्ठे पमससाभी उवाविसीय । सो उ जंममक्खण्णवत्थोअ मज्जनीयानं
मनोरं पूरेमाओ सुयणाणमदस्सकिण्णकिरणेहिं मिच्छभतिमिरपट्ठं विणासेतो मज्जयियक्कमआइ विपासेतो
सुरम्मसाभिरिपीसियं चउग्गिअसयनादियं देसणामिणं अहिंसिषिय उक्कसम—विवेग—यरयणाइपुत्थेहिं पुण्णियं
अपच्छण्णफळेहिं कम्मियं च कुम्भतो विहर । एवं विहरमाणो सो कालमासे काष्ठ किंवा सग गमो । तओ
चुओ सो मराविदेरे लिसे सट्ठण्णजिय सासओ सिद्धो मविस्सइ ॥अ०१२१॥

छाया—श्री जवूस्वामिनि मोक्षं गते तत्पदे श्री प्रभवस्वामी उपाविशत् । तदुत्पत्तिश्चैवम्—
विन्ध्याचलसमीपे जयपुराभिधानं नगरमासीत् । तत्र विन्ध्यो नाम नरपतिरभवत् । तस्य पुत्रद्वयमासीत् ।
एको ज्येष्ठप्रभवाभिधानोऽपरः कनिष्ठप्रभवाभिधानः । तत्र ज्येष्ठप्रभवः केनापि कारणेन क्रुद्धो जयपुरनगराद्
निरसृत्य विन्ध्याचलस्य विपमस्थले अभिनवं ग्रामं वासयित्वा तत्र न्यवसत् । स च चौर्य-छुण्टनादि गर्हित
वृत्तिम् अवात्मन्वत् ।

एकदा तेन आकर्णित यद् राजगृहे नगरे जंवूनामकः ऋपभदत्तश्चेष्टिपुत्रः अष्ट्रेष्टिकन्या पर्यणयत् ।
दाये तेन श्वशुरेभ्यो नवनव्रतिकोटिपरिमिताः सुवर्णमुद्रा लब्धा इति । एवं श्रुत्वा स प्रभवश्चौरो नवनवस्यधिकैः

मूल का अर्थ—‘सिरिजंवूसामिमि’ इत्यादि-जवूस्वामी के मोक्ष पधारने पर श्री प्रभवस्वामी
उनके पाट पर बैठे । उनकी उत्पत्ति इस प्रकार है-विन्ध्य पर्वत के पास जयपुर नामकनगर था । वहाँ
विन्ध्य नामक राजा था । उसके दो पुत्र थे-एक ज्येष्ठप्रभव कहलाता था, और दूसरा कनिष्ठ (छोट्टा)
प्रभव कहलाता था । उनमें से ज्येष्ठप्रभव किसीकारणसे क्रोधित होकर जयपुरनगर से निकल कर विन्ध्याचल
के एक विपम स्थान में एक नया गाँव बसाकर वहीं रहने लगे । उन्होंने चोरी एवं लूटपाट आदि निन्दित
आजीविकाका अवलम्बन लिया ।

एकवार उन्होंने सुना कि राजगृहनगर में जंवू नामक ऋपभदत्त सेठ के पुत्रका आठ सेठों की कन्याओं के
साथ विवाह हुआ है । उन्हें अपने श्वसुरों से निन्त्यानवेंकरोड स्वर्ण-मुद्राएँ देहेज में मिली हैं । यह सुनकर प्रभव

भूलाने अर्थ—‘सिरिजंवूसामिमि’ धत्यादि जवूस्वामी मोक्ष पधारतां, प्रभवस्वामी तेभनी पाटे भिरान्या
तेभनी उत्पत्ति देवी रीते छे ते ब्रह्मावे छे । विन्ध्य पर्वतनी पासे जयपुर नासे नगर हटुं । त्यां विन्ध्यक नामे राज
हते । तेने जे पुत्रो हता । तेभांनो ओक ज्येष्ठप्रभव कहेवाता, अने गीब कनिष्ठप्रभव कहेवाता । केधियथु कारथु
वशात् शुस्से थर्धने ज्येष्ठप्रभवे जयपुर नगरथी अछार नीकणी विन्ध्याचल पहाडना ओक विषम स्थानमां ओक नवुं
गाम बसावी, ते त्या रह्यो त्यां तेणे चोरी अकु अने धाड आदि वडे आलुविका कस्वा मांडी । ओक वार तेणे
सांभल्यु डे, राजगृह नगरीमा ऋषभदत्त नामनो शेड छे । तेने ओक पुत्र छे, जेनुं नाम जवूकुमार छे ।
तेनुं लग्न आठ सर्वश्रेष्ठ कुमारीकाओ साथे थयेव छे । आ आठ कुमारीकाओ धणु धनाढ्य पिताओनी पुत्रीओ
छे । तेओ नव्वाणुं करोड सोनोभहोरो हाथजमां लावेव छे । आ उपशंत दर-हाजीनोनो ते । केअ आरो-तारो
नथी ! ओवुं अढेणक द्रव्य तेओ पोताना पियदेशी लावी छे ।

पतुर्मिः

सर्वान् ज्ञानान्

मायां भावत्य एव स्थि

चौपायै प्रविष्टः । तत्र सः अवस्थापित्वा विषया
सा विद्या निष्कला जाता । तत्प्रभावेण तस्याष्टापि

मदे ताः सर्वाः सुवर्णमुद्राः घटीत्या वस्तुमारब्धः । तदा

नैकुमारो नमस्कारमन्त्रप्रमाण गतिषु अस्मत् भवत् । निगर्तित्वा स्तम्भितां हृष्टा प्रमत्तो विस्मिताः । किं
कृत्यविपुलम् जातः । तस्य हस्तो स्थितिं हृष्टा नैकुमारोऽसत् । तस्य हस्तो स्थितिं हृष्टा प्रमत्तो विस्मिताः । किं
माग ! मय्यप्य अवस्थापनी विद्या प्रमोघा वसति । साऽपि स्थितिं निष्कला जाता । तस्या पुनरस्माकं गति
प्रापि स्तम्भिता । अतस्त्वं कोऽपि निश्चिष्टः पुरुषः प्रविशसि । त्वं यमोपरि कृपां कृत्वा स्तम्भनीं विद्यां

चोर अपने साबी ४९९ चोरो के साथ, राजपुत्रनगर में आकार चोरी करनेके लिए नैकुमार के घर में घुसे ।
उन्होंने अवस्थापिनी विद्या स चोरो के सब कोशों को निद्रापीन कर दिया । मगर नैकुमार तो भाव-साधु हो चुके
थे । अतः उन पर अवस्थापिनी विद्या का असर नहीं हुआ, वह जगते रहे । उनके प्रभाव से उनकी आठों मायायें भी
जागती ही रही । तत्प्रभावे प्रमत्त चोर अपने साबी चोरो के साथ उन सब स्वर्ण-मुद्राओं (सौनेयों) को बटोर
(रफ़्ता) कर बचने को उद्यत हुए । तब नैकुमारने नमस्कारमंत्र के प्रभाव से उनकी गति स्थिति कर ली ।
अपनीगति स्थिति (अवच्छेद) हुए देल प्रमत्त चकित रह गया और उन्हे सुझाने पड़ा कि अब क्या करना चाहिए ।

उनकी यह दृष्टा देलकर नैकुमार को हँसी आ गई । उनकी हँसी सुनकर प्रमत्त ने उनसे कहा-
महाभाग ! मेरी यह अवस्थापिनी विद्या अमोघ (विद्या न होमेवाली) है, परन्तु उसका भी भाप पर असर
नहीं हुआ । आपने हमारी गति भी स्थिति कर ली है । इससे प्रतीत होता है कि आप कोई निश्चिष्ट पुरुष है ।

आपु सांभली, प्रभवभार पीताना आसो । नव्याषु भार आधीजो आसै शब्दकोनअरीभां आनी पछोअसो
आनी करवाना छीदाबी, ते नैकुमारना बरभां प्रवेशो । तेखे अवस्थापिनी विद्यानी निसि भरी हवी तेबी घरना
सुवर्ण भाषसेने निद्रापीन भरी नाच्यो परतु नैकुमार, भाव साधु भई सुअभा कृता तेबी तेनी उपर भा विद्यानी
असर न भई तेबी तेजो बजता रहा । तेना नैकुमारो तेभनी आठ आसोअि पण नैकुमार हवी त्याप्याइ प्रभव
भार तमाभ सोना भक्षो । कोनी भरी आसोअिभां भापी पीताना आधीजो आसै स्वाना भवा तेभार भयो ते वभते
ते नैकुमार नमस्कार मन्त्रना प्रभाव बडे, तेने उखो स्थिर भरी दीपि । अवेदा उखो शब्दी दीपि है त्याबी कष्टी पण
आसो नकि । प्रभव स्थिति बर्ता, ते अवस्थापिनी, ने तेने भई सुअ नकि । तेनी आनी दया भेड, न भू-
भुभर दस्या तेभनु कास्य नेड ते कोबी हउयो है के आभयान । आनी अवस्थापिनी विद्या नभाभी बईअ । ते विद्याको
आपनी उपर असर भरी नही परतु उखे दु स्तम्भित भई अयो । आको नक्षुभ छे है, आप छेई आइशुव न्याअ

मद्य देहि । अहं च तुभ्यम् अवस्वाभिनीं विद्या दशमि । तस्येदं वचनं श्रुत्वा जंबूकुमारोऽकथयत्-इमा लौकिक-विद्या दुर्गतिकारणाः सन्ति । तव विद्याया मयि प्रभावो न जातः, युष्माकं गतिश्च मया स्तम्भिता, अत्र न कापि विद्याकारणम् । अयं प्रभावो नमस्कारमन्त्रस्यास्ति । एवं कथयित्वा जंबूकुमारस्तस्मै चारित्रधर्ममुपा-दिशत् । तं श्रुत्वा प्रभवादीनां चौराणां मनसि वैराग्यं सजातम् । ततो द्वितीये दिवसे जंबूकुमारः तैः प्रभवा-दिभिश्चौरैः सह सुधर्मस्वामिसमीपे प्रव्रजितः ।

जंबूस्वामिनि मोक्षं गते तत्पट्टे प्रभवस्वामी उपादिशत् । स तु जङ्गमकल्पवृक्ष इव भव्यजीवानां मनोरथं पुरयन् श्रुतज्ञानसहस्रकिरणकिरणैर्मिथ्यात्वतिमिरपटलं विनाशयन् भव्यहृदयकमलानि विकासयन् सुधर्मस्वामि

आप कृपा करके स्तंभनी विद्या मुझे दीजिए-सिखा दीजिए, और मैं आप को अवस्वापिनी विद्या सिखा देता हूँ । प्रभव के यह वचन सुनकर जंबूकुमारने कहा-यह लौकिक विद्याएँ अधोगति का कारण हैं । तुम्हारी विद्या का सुझावर प्रभाव नहीं हुआ और मैंने तुम्हारी गति अवरुद्ध करदी इसमें कोई विद्या कारण नहीं है । यह तो नमस्कार मंत्र का प्रभाव है । इस प्रकार कहकर जंबूकुमार ने प्रभव को चारित्र धर्मका उपदेश दिया । वह उपदेश सुनकर प्रभव आदि सभी चौरों के मन में विरक्ति उत्पन्न हुई । तत्पश्चात् दूसरे दिन जंबूकुमार उन प्रभव आदि चारों के साथ सुधर्मास्वामी के समीप दीक्षित हुए । जंबूस्वामी जब मोक्ष पथार गये तो प्रभवस्वामी उनके पाट पर विराजमान हुए । वे चलते-फिरते कल्पवृक्ष के समान भव्य जीवों के मनोरथों को पूर्ण करते हुए श्रुतज्ञान रूपी सूर्य की किरणों से मिथ्यात्व रूपी-अन्धकार के पटल का विनाश करते हुए, भव्य

लागे। छ। । आप महेश्वरानी करी भने ते 'स्तंभनी' विद्या आये। तेना यहदाभा हुं आपने भारी 'अवस्वापिनी' विद्या शीथली रह ।

प्रभवनुं आयु कथन साबणी ज'यूकुमार योदथा. 'आ लौकिक विद्याओ अघोगतिनुं' कारण छे. तारी विधाने। प्रभाव भारी उपर पड़े। नहीं अने भारी विद्याओ तारी पर असर पाडी । आभां डोह अलौकिकता नथी, पण नमस्कार मंत्रने। प्रभाव छ । आयुं कही ज'यूकुमादे, प्रभवने चारित्र धर्मने। उपदेश आय्ये। आ उपदेश साबणी, प्रभव आदि सर्वं योदेना मनमां विरति लाव उत्पन्न थये। भीने हिवसे ज'यूकुमार साथे, आ पांयसे। योदेओ सुधर्मास्वामी पासे दीक्षा अलु छरी ज'यूस्वामीनी सुकृतिपाद, प्रभव स्वाभी तेभनी पाटे आय्या तेओ। कल्प-वृक्ष सभान लव्य एवेना मनोरथे। पूरा करवा दाग्या। श्रुतज्ञानइपी किरणो वडे, मिथ्यात्वइपी अंधकारने। नाश

पारंपारिकां पदार्थविषयवाटिकां देवनागरेणामिषिष्य उपश्रम-निवेक-विरमणादि पुनैः पुष्पिताम् आत्मकस्याण फलैः फलिषां च कुर्वन् विहरति । एवं विहरन् स कालमासे काल कृत्वा स्वर्गं गतः । ततश्च्युत स महा निदेरे षष्ठे समुत्पद्य आश्रितः सिद्धो भविष्यति ॥ सू० १२१ ॥

टीका—‘तिरि जंबूसामिमि’ इत्यादि । व्याख्या सुगमा ॥ सू० १२१ ॥

उपसंहार

मूलम्—सम्पत्तिं सुप्रकारः सुभक्तिं कल्पयत्येन प्रसूयन् फलप्रदर्शनपूर्वकम् उपसहरति—

वयसारमत्रो भूमी आत्म्यान् च भावणा ।

सम्पत्तं वीपयत्नाय, जलं जिस्सकिया इयं ॥ १

श्वरो नदजम्बे च, कुत्ती ठण्ण सीसई ।

स्सत्तो वीरमयो जस्स, तादाजो गणहारिवो ॥ २

चत्तस्सयो पसादावो, सामायारी दळानि य ।

पुक्कावलि य तिवरो, वारसंगी सुगजो ॥ ३

जीवों क इदय-फल को निकसित करते हुए, सुवर्मास्वामो द्वारा पोषित चतुर्विध संपत्ती वाटिका को अपने उपदेष्टावृत्त से सींचते हुए, उपश्रम, निवेक और विरमण आदि पुण्यों से सुषिप्त करते हुए और आत्मकस्याण रूप फलों से फलवान् पनाते हुए विचरने लगे । इस प्रकार विचरते हुए प्रभवस्वामी काल-मास में काल करके क्याचित् यथासमय दोर त्यागकर देवलाक में पधारे । देवलोक से जब फर वे महाविदेह क्षेत्र में तत्तत्र होकर सिद्ध होगे ॥ सू० १२१ ॥

टीका का अर्थ—इस सूत्र की व्याख्या सरल है ॥ सू० १२१ ॥

कथा काव्या जम्भ एतेना हृदय-कर्मयोगेनो विकास कथा करता, सुप्रभस्वामी द्वारा पोषाज्जेड भटुविधि सूच इपी वाटीय पोदाना उपदेष्ट अग्रयवदाय, शिष्यन करतां उपश्रम, निवेक ज्जाने विरमण ज्जादि उपपायी युष्पित करतां ज्जाने ज्जपत्तम्भापुदण्ण इणोयो इति ज्जानतां विचारवा दाव्या ज्जा प्रभावे विचरतां ज्जह अवसरे ज्जह करी तेज्जा स्वर्गभां ज्जदा. स्वर्गभां ज्जदो महाविदेह क्षेत्रभां उत्तम धरो, ने त्तांवा कर्मक्षय करो, सिद्ध भवतिने पाभये. (सू० १२१)

टीकानो अर्थ—स्पष्ट छे (सू० १२१)

फलं मोक्खो निरावाहा-णंताक्खयि सुहं रसो ।
 वीरस्स भवरुक्खोऽमु, कप्पसुत्तस्सख्खगो ॥ ४
 भव्वसंकप्पकप्पहु-कप्पो चित्ति य दायगो ।
 सेवियो विणया णिच्चं देइ सिद्धिमणुत्तरम् ॥ ५

॥ इय कप्पसुत्तं संपूर्णं ॥

छाया—नयसारभवो भूमि, रालवालं च भावनाः ।
 सम्यत्ततं वीजमाख्यातं, जलं निश्शङ्कितादिकम् ॥ १
 अङ्कुरो नन्दजनं च वृत्तिः स्थानक विवृतिः ।
 वृक्षो वीरभवो यस्य शाखा गणधारिणः ॥ २
 चतुस्संवः प्रशाखाः सामाचार्यो दलानि च ।
 पुष्पावलि च त्रिपदी द्वादशङ्गी सुगन्धकः ॥ ३

उपसंहार

अब सूत्रकार इस कल्पसूत्र को कल्पवृक्ष के समान निरूपित करते हुए और फल वतलाते हुए उपसंहार करते हैं—भगवान् महावीर का कल्पसूत्ररूप यह भव-वृक्ष है । नयसार का भव इसकी भूमि है । भावनार्थ इसकी क्यारी हैं । समकित बीज है । निःशंकित आदि जल है ॥ १ ॥ नन्दका जन्म अंकुर है । बीस स्था-नक वाड है । महावीर का भव वृक्ष है, जिसकी शाखाएँ गणधर हैं ॥ २ ॥ चतुर्विधसंघ प्रशाखाएँ (टहनियाँ) हैं । समाचारियाँ पत्ते हैं । त्रिपदी फूल हैं । वारह अंग सौरभ-सुगंध है ॥ ३ ॥ मोक्ष इसका फल है । अन्यावाध,

उपसंहार—

भूणनेो अर्थ—हुवे सूत्रकार आ कल्पसूत्रने कल्पवृक्ष समान निरूपित करी तेनुं इद भतावे छे. कल्पसूत्ररूप भगवान महावीरनुं आ भव-वृक्ष छे ! नयसारनेो भव, आ भव-वृक्षनी भूमि छे. भावनाओ, ते भववृक्षनी क्यारी छे. आ वृक्षमा समकित तेनुं यीज छे; अने निःशंकित आदि पाखी छे. ॥ १ ॥ नन्देो जन्म अंकुर छे. बीस स्थानकेो आ महावीरना भववृक्षनी वाड छे. महावीरनेो भव वृक्ष छे, ने गणधरेो तेनी शाखाओ छे. ॥ २ ॥

फलं मोक्षो निराशाया नन्तासयि सुले रस ।

वीरस्य भवदुःखोऽसौ, कल्पद्रुमस्वरूपकः ॥ ४

भव्यसङ्कल्पकसङ्ग-कल्पधित्वितवायकः ।

सेविता विनयान्तित्यं यदायि-सिद्धिमनुष्याम् ॥ ५

॥ इति कल्पद्रुमं सम्पूर्णम् ॥

इति श्री चिन्मिल्ल्याह-जगद्धम-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलित भस्मिन्कला

पालापट्ट-प्रविशुद्धवर्णपत्तनैकान्यनिर्माणकचरित्रमानमर्यद-मीशाह्वप्रपति-

कात्तापुरारणमय्य 'जेनशास्त्राचार्य' पदयुपित-कोत्तापुरारणगुह

बालग्रन्थवाचि-जैनचार्य-जैनपरमविशारद-पूज्यधी-यासीकाक-

प्रतिविरचित-भीकृत्यमय्य सम्पूर्णम् ॥

टीका--'गणसारभक्तौ' इत्यादि । यथाहोत्सवियोग्यां सुधर्मि प्रथम निरीत्य आकवाले विषय
रसावाधिरसवत्पन्न वीनानि तपोप्यते । पुनस्तानि गठेन सिध्यते, तदनु तानि वीनानि अङ्कुररवेन नायते ।
तदुत्सार्य दुष्टिय कल्प्यते । एवं प्रयत्नेन तानि वीनानि सपञ्चालाप्रज्ञात्वात्मविविधालित्वेन नायते । एव
दुष्टेषु सत्त्वानि दुरभीणि पुण्याणि फलानि च भवन्ति । तथैव भगवतो वीरस्य कल्पद्रुमस्वरूपकोऽसौ भवदुःखो-
मनन्द, भय, सुख इत्यादि रसः । इति प्रकारं यः कल्पद्रुमं वीर भगवान् का भवदुःख-रूपः ॥४॥ यः कल्प
द्रुमं मय्य जीवो का मनोरथ सफल करने के लिए कल्पद्रुम के समान है । अमीष्ट प्रदान करनेवाला है
चिनपपूर्वक निम्न सेवन क्रिया हुआ या द्रुम सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्रदान करता है ॥५॥

॥ कल्पद्रुमं सम्पूर्णम् ॥

अनुविर्षे स च साधार्माधी इट्ठी प्रथाआळो छे सभाधारीआ तेना पांडा छे निरुदी तेनु इह छे आर
अन (दारशांज) वृक्षनी सोरह सुत्र छे ॥३॥ सोक्ष ते वृक्ष छे आन्धाआसपसु अन तता, जने आक्षय
मुअ, ते वृक्षने रस छे आ प्रक्षारे कवपसून, वीर जमवाननु अववृक्षसु छे ॥४॥
आ कल्पद्रुम अन्य एतेना भनोपदेस सहज भस्वावाणु कल्पवृक्ष छे आलीष्ट प्रदान भस्वावाणु छे जिनय
पूर्व तेनु जिन सेवन करवा आ सुत्र सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त करवे छे ॥५॥

उत्ति । अस्य वृक्षस्य भूमिः—उत्पत्तिस्थानं नयसारम्भवः । भावनाः—आनन्दस्थानादिकं निश्शङ्किताद्यदि—आनन्दस्थानं आनन्दस्य स्थानं । अस्य बीजं सम्यक्त्वम् आख्यात=कथितम् । जलं=सेचनजलस्थानीयं निश्शङ्कितादिकं निश्शङ्किताद्यदि—आनन्दस्थानं आनन्दस्य स्थानं । नन्दजननम्=पञ्चविंशतितमो भवोऽस्य वृक्षस्य अङ्कुरः । अस्य वृत्तिः स्थानकविशतिः=विंशति-चाररूपं बोध्यम् । नन्दजननम्=पञ्चविंशतितमो भवोऽस्य वृक्षस्य अङ्कुरः । अस्य वृत्तिः स्थानकविशतिः=विंशति-स्थानकानि । एवंरूपो वीरम्भवः=महावीरजनमूल्यो वृक्षोऽस्ति । अस्य वृक्षस्य शाखाः गणधारिणः=गणधरा गौतमादयः सन्ति, प्रशाखाः चतुस्सङ्घः=चतुर्विधः सङ्घः सन्ति, अस्य दलानि=पत्राणि सामाचार्यः=साध्याचाररूपादशआवश्य-कादि सामाचार्यश्च सन्ति । अस्य पुष्पावल्लि त्रिपदी=उत्पादव्ययध्रौव्यरूपा विज्ञेया । त्रिषदीरूपायाः पुष्पावल्याः सुगन्धकः=सुगन्धो द्वादशश्री विद्यते । फलं चास्य मोक्षः । तस्य रसो निरावाधानन्ताक्षयि=अव्याहतम् अनन्तं

टीका का अर्थ—सब से पहले वृक्ष की उत्पत्ति के योग्य अच्छी भूमि देखभाल कर क्यारी बनाकर, आम्र आदि रसदार फलों के बीज वहाँ बोये जाते हैं । फिर उन्हें जल से सींचे जाते हैं । तत्पश्चात् वे बीज श्रंकुररूप से उगते हैं । उनकी रक्षा के लिए बाड़ लगाई जाती है । इस प्रकार के प्रयत्न से वे बीज पत्तों, शाखाओं प्रशाखाओं (दहनियों) से युक्त वृक्षों के रूप में परिणत होजाते हैं । उनवृक्षोंमें सरस और सुगंधित पुष्प और फल लगते हैं । इसी प्रकार यह कल्पसूत्र भगवान के भव-वृक्ष के समान है । इसकी भूमि-उत्पत्तिस्थान नयसार का भव है । अनित्य, अशरण आदि वारह भावनाएँ इसकी क्यारी हैं । इसका बीज समर्पित कहा गया है । निःशक्ति आदि सम्यक्त्व के आठ आचार इसे सींचने के लिये जल के समान हैं । बीस स्थानक इसकी बाड़ है । ऐसा यह वीर-भव वृक्ष के समान है । गौतम आदि गणधर इस वृक्ष की शाखाएँ हैं । चतुर्विध संघ प्रशाखाएँ—शाखाओं की शाखाएँ हैं आवश्यक आदि साधु-आचार रूप दस प्रकार की समाचारियों इसके पत्ते हैं । उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप त्रिपदी इसकी पुष्पावली है । द्वादशांगी इसका सौरभ है । मोक्ष इसका फल है । अव्यावाध, अनन्त असीम और अक्षय सुख इसका रस है ।

टीकाનો अर्थ—सौधी पहला वृक्षनी उत्पत्तिने योग्य सारी जमीन जोड़ने क्यारी बनावीने आम्न आदि रसदार फलोंनां बीज त्हां बाववाभां आवे छे । पछी तेने पाणी पावाभां आवे छे । त्यारणाह ते बीज अङ्कुर इये उगे छे । तेना रक्षक्षु भाटे वाड बनावाय छे । आ प्रहारना प्रयत्नोत्ती ते बीज पान, उणिधे, अने प्रशाखाओ (दहनियो) वाणां वृक्ष इये परिशुसे छे । ते वृक्षोने सरस अने सुगंधिदार फूलो अने इणो आवे छे ।

जोण प्रमाणे आ कल्पसूत्र लगवाननां भव-वृक्ष जेवुं छे । तेनी भूमि-उत्पत्ति स्थान नयसारने । भव छे । अनित्य अशरण्य आदि आर भावनाओ तेनी क्यारी छे । सामञ्जित तेजुं बीज छेलायुं छे । निःशक्ति आदि सम्यक्त्वना आठ आचार तेने सिचवाना जण जेवां छे । बीस स्थानक तेनी वाड छे । जोवो आ बीर भव वृक्षना जेवो छे ।

संपरार्तिं च मुत्सर्गं मस्ति । एवं प्रकारकोऽसौ कृत्ययुग्मस्वरूपको वीरस्य मन्वृषो विशेषः । मत्स्यसङ्कल्पकस्य
 दुःकृत्यः-अभ्यासो मोक्षार्थिनां या संकल्पः=अथयसाय-अभिलाषस्तत्पूरणे कृत्यदुःकृत्य=अत्यवसृतुल्यः, अतएव-
 विनिवृत्तदायकः अस्ती कृत्ययुग्मस्वरूपो वीरमन्वृषो विनयात्=सर्विनयं नित्यं सेवित-पठन-पाठन-भक्षण-श्रावण-
 मननादिक्रमया आराधनया आराधितः सन् अनुसरो=सर्वोत्कृष्टा सिद्धिं ददातीति ॥ १. २. ३. ४. ॥ ५ ॥

एतिथी नैताचार्य नैनपर्मद्विषाकर पूर्यधी यासीलालजीमहाराज प्रयानिच्चिप्य-मिय-

व्याख्यानि-संस्कृत-याकुल-नैनागमनिष्ठात-ये मुनिधी कनैयालालजी महाराज

विरचिता श्रीकृत्ययुग्मस्य कृत्यमञ्जरी व्याख्या सम्पूर्णः ॥

॥ शुभं भूयात् ॥ अस्तु ॥

कृत्ययुग्मरूप वीर का यह मन्वृष है ऐसा समझना चाहिए । यह कृत्ययुग्म मुमुक्षु श्रीवैकी अमिलपा
 पूर्ण करने में कृतवत्स के समान है, अतएव सभी अभिष्ट पदार्थों का दाता है । विनयपूर्वक इत्सका नित्य पठन
 पाठन भक्षण श्रावण मनन आदिक्रम आराधना करने से यह सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्रदान करता है ॥ १-५ ॥

मियव्याख्यानी, संस्कृत-याकुलबेणा, नैनागमनिष्ठात पूर्यधी यासीलालजी म के प्रधान शिष्य
 पंडित मुनिमी कनैयालालजी म द्वारा रचित श्री कृत्ययुग्म की कृत्यमञ्जरी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥

॥ शुभं भूयात् ॥ अस्तु ॥

नैताम आदि अनुसरो का वृक्षणी थायावो है अतुविध सब प्रथायावो-थायावोनी थायावो है आत्मभक्त
 आदि समु-आचार्यप इत्य प्रशस्नी साभायादियो तेना थान छे कथाह, अन्य. प्रोभ्यरूप त्रिषदी तेनी पुण्यावदी छे
 क्षमथांभी तेनी सुत्र छे योष तनु देण छे मन्वाव्याध, जनत-अस्तीम जने अक्षय सुभ तेना रस छे

आ प्रशस्त आ कृत्ययुग्म स्वरूप कृत्ययुग्म मन्वावीरनु कृत्ययुग्म यथञ्जु जेअने आ कृत्ययुग्म मुमुक्षु लोवोनी
 अनिताया पूर्व कृत्याभां कृत्ययुग्म समान छे तेनी सधन आनिष्ट यथादे देना छे. विनयपूर्वक क भेयां तेनु
 थान प्यान, भवषु भावषु, अनन आदि रूप आराधना कथावी ते सवोत्कृष्ट सिद्धि आये छे ॥ १-५ ॥

मियव्याख्यानी, सरस्वत प्रादुर्देवता, नैनागमनिष्ठात पूर्यधी यासीलाल मन्वाव्यावो मन्वाव्यावो
 पंडित मुनिमी कनैयालाल मन्वाव्यावो द्वारा रचित श्री कृत्ययुग्म की कृत्यमञ्जरी व्याख्या सम्पूर्ण हुई
 ॥ शुभं भूयात् ॥ अस्तु ॥

	तवाण नामाणि	संख्या	तवदिवसा	पारणा दिवसा
१	छम्मासियं	१	१८०	१
२	पंचदिवस्मणं छम्मासियं	१	१७५	१
३	चउमासियं	९	१०८०	९
४	त्तिमासियं	२	१८०	२
५	अड्डुच्चिमासियं	२	१५०	२
६	दुमासियं	६	३६०	६
७	अद्धिगमासियं	२	९०	२
८	एगमासियं	१२	३६०	१२
९	अड्डुमासियं	७२	१०८०	७२
१०	अट्टभत्तं	१२	३६	१२
११	छट्टभत्तं	२२९	४५८	२२९
१२	भदपडिमा	१	२	१
१३	महाभदपडिमा	१	४	१
१४	सव्वओभदपडिमा	१	१०	१
	योगफलम्	३१५	४१६५	३५१

ग्यारह वर्ष छ मास पचीस दिन की तपस्या हुई, और ग्यारह मास इक्कीस दिन पारणा के हुए ।

